श्रीविद्यारण्ययतिप्रणीतं

श्रीविद्यार्णवतन्त्रम्

ŚRĪVIDYĀRṆAVATANTRAM

भाषाभाष्योपेतम्

भाषाभाष्यकारः

श्रीकपिलदेवनारायण

'स्वरूपावस्थित'

I

द्वितीयो भागः

भाषाभाष्यकारः

पिलदेवनाराय

श्रीविद्यार्णवतन्त्रम्

ŚRĪVIDYĀRṆAVATANTRAM

श्रीविद्यारण्ययतिप्रणीतं

श्रीविद्यार्णवतन्त्रम्

ŚRĪVIDYĀRṆAVATANTRAM

भाषाभाष्योपेतम्

भाषाभाष्यकार:

श्रीकपिलदेवनारायण

I

द्वितीयो भागः

श्रीविद्यार्णवतन्त्रम्

कपिलदेवनारायण

॥ श्रीः ॥
चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
496

श्रीविद्यारण्ययतिप्रणीतं

श्रीविद्यार्णवतन्त्रम्

भाषाभाष्योपेतम्

पूर्वार्द्धम् ※ **द्वितीयो भागः**

(द्वादशत अष्टादशश्वासात्मकः)

भाषाभाष्यकारः
श्री कपिलदेव नारायण
'स्वरूपावस्थित'

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

© **सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन**—प्रकृत ग्रन्थ के सशीर्षक संस्कृत विषयस्थान-क्रम-भाषाटीका, चित्र आदि का सर्वाधिकार प्रकाशक द्वारा स्वायत्तीकृत है। इसके किसी भी अंश का कहीं भी किसी भी प्रकार से प्रकाशक की लिखित अनुमति के विना उपयोग नहीं किया जा सकता।

ISBN 978-93-80326-46-7 (Set)
ISBN 978-93-80326-48-1 (Vol.I, Pt.2)

प्रकाशक :

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के-37/117 गोपाल मंदिर लेन,
पोस्ट बॉक्स न. 1129, वाराणसी-221001
दूरभाष : 0542-2335263
ई-मेल : csp_naveen@yahoo.co.in

प्रथम संस्करण : 2010

मूल्य : 7500.00 (1-5 भाग सम्पूर्ण)
1800.00 (प्रत्येक भाग)

अन्य प्राप्तिस्थान :

चौखम्बा पब्लिशिंग हाऊस

4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)
गली न. 21-ए, अंसारी रोड़,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002
दूरभाष : 011-23286537, 32996391
ई-मेल : chaukhamba_neeraj@yahoo.com

*

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

38. यू. ए. बंग्लो रोड़, जवाहर नगर,
पोस्ट बॉक्स न. 2113, दिल्ली - 110007

*

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)
पोस्ट बॉक्स न. 1069, वाराणसी-221001

मुद्रक

डीलक्स ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली

THE
CHAUKHAMBA SURBHARATI GRANTHMALA
496

ŚRĪVIDYĀRṆAVATANTRAM

of

ŚRĪ VIDYĀRAṆYAYATI

Sanskrit Text with Hindi Commentary

Pūrvārdha ❋ Part Two
(12-18 Śvāsas)

Commented by
Sri Kapildev Narayan
Svarūpāvasthita

Chaukhamba Surbharati Prakashan
Varanasi (India)

© All rights reserved.
No part of this publication may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronical or mechanical, including photocopying, recording or any information storage or retrieval system, without prior permission in writing from the publisher.

Publishers :

CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN
(Oriental Publishers & Distributors)
K. 37/117, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1129
Varanasi 221001
Tel. : 0542 2335263
e-mail : csp_naveen@yahoo.co.in

Also can be had from :

CHAUKHAMBA PUBLISHING HOUSE
4697/2, Ground Floor
Gali No. 21-A, Ansari Road
Daryaganj, New Delhi 110002
Tel. : 011 23286537
e-mail : chaukhamba_neeraj@yahoo.com

❖

CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
38 U.A. Bungalow Road, Jawahar Nagar
Post Box No. 2113
Delhi 110007

❖

CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
Chowk (Behind to Bank of Baroda Building)
Post Box No. 1069
Varanasi 221001

पुरोवाक्

श्रीविद्यारण्य यति द्वारा छत्तीस श्वासों में निबद्ध श्रीविद्यार्णव तन्त्र के पूर्वार्द्ध के इस द्वितीय भाग में बारह से अट्ठारह तक के छ: श्वासों को रखा गया है। इस भाग में श्रीचक्र के निर्माण की विशद् विधि, षडध्व शुद्धि, अभिषेक विधि, सन्ध्या, पुरश्चरण, रहस्यपुरश्चरण एवं समयाचार आदि साधक की साधना को सफल बनाने वाले आवश्यक विषय गुम्फित हैं। बारहवें श्वास में विविध धातुओं पर निर्मित श्रीचक्र के पूजन का फल, प्रस्तारभेद से चक्र का त्रैविध्यत्व एवं उनके फल, चक्रनिर्माण में निषिद्ध अधिकरण, पीठ का प्रमाण, सृष्टि आदि चक्र में क्रम से पूजन, चक्र के सृष्टि आदि भेद के लक्षण, सृष्टि आदि चक्र में पूजन का नियम, मण्डप-निर्माण में पूर्व दिशा ज्ञात करने की विधि, मण्डप-निर्माण, मण्डप-लक्षण, मण्डप बनाने की विधि, मण्डप में लगने वाले त्रिशूल-निर्माण की विधि, चतुरस्र कुण्ड-योनि कुण्ड-अर्धचन्द्र कुण्ड-त्रिकोण कुण्ड-वृत्त कुण्ड-षडस्र कुण्ड-पद्म कुण्ड-अष्टास्र कुण्ड-पञ्चास्र कुण्ड-सप्तास्र कुण्ड के निर्माण की विधि, काम्य होमों में कुण्ड के अनुसार फल, वर्ण के अनुसार कुण्ड के भेद, वेदी के चारो ओर विशेष कुण्ड का निर्माण, कुण्ड में राशि की स्थिति, कुण्ड-वासना, होम की संख्या के अनुसार कुण्ड की लम्बाई-चौड़ाई, दो हाथ आदि प्रमाण के कुण्डों के क्षेत्रफल, मेखला आदि का प्रमाण, निर्धारित विधि से कुण्ड न बनाने के दोष, कुण्ड के कण्ठ का प्रमाण, योनि का प्रमाण, नाल का प्रमाण आदि कुण्ड से सम्बद्ध समस्त विधियाँ विस्तार से वर्णित की गई हैं। आगे वास्तु-पूजन चक्र के निर्माण की विधि, वास्तु पूजा का फल एवं पूजा न करने से होने वाले दोष, अंकुरार्पण की विधि, वास्तु मण्डल रचना का प्रकार निरूपित है। तदनन्तर दीक्षा ग्रहण करने के मास, नक्षत्र, तिथि, वार आदि का कथन किया गया है। ग्रहण में दीक्षा का आरम्भ एवं क्रियावती दीक्षा का विधान भी बताया गया है। तत्पश्चात् मधुपर्क विधि, शक्तिगन्धाष्टक, वैष्णव गन्धाष्टक, शाम्भव गन्धाष्टक को स्पष्ट करते हुये वैदिक यन्त्रपञ्चक, कलशार्चन, मण्डपार्चन, अग्निसंस्कार, चरु-निर्माण, होमार्थ अस्निस्थापन, प्रणीतास्थापन आदि आवश्यक विषय विवेचित किये गये हैं।

तेरहवें श्वास में षडध्व शुद्धि, पूर्णाहुति, अग्न्युद्वासन आदि की विधियों को स्पष्टत: अभिव्यक्त करने के पश्चात् शिष्य का अभिषेक, गुरुदक्षिणा, वर्ण-कला-वेध-स्पर्श-वाक्-दृक्-शाम्भव दीक्षायें, पूर्णाभिषेक की विधि, दीक्षा का प्रयोग, गुरु का वरण करने की विधि निरूपित की गई है। इसके पश्चात् सर्वतोभद्र मण्डल का निर्माण, रजोविन्यास का प्रकार, मण्डल-पूजन, पूजन विधि-सहित कुण्डाग्नि-स्थापन, पूर्व आदि दिशाओं में बलि प्रदान करने की प्रक्रिया बताई गई है। तत्पश्चात् गणेश-पूजन, गौरी आदि मातृका-पूजन, पुण्याहवाचन, मण्डप देवता का स्थापन-पूजन एवं बलि, अधिदेवता-प्रत्यधिदेवता-विनायक-लोकपाल आदि का स्थापन, कलश का अभिमन्त्रण, अध्व भावना-शोधन, दीक्षाङ्ग-स्वरूप होम, अभिषेक, मन्त्रदान आदि की विधियाँ वर्णित हैं। इसके पश्चात् होमस्थ अग्नि के वर्णों का फल, जिह्वा के सात्त्विक आदि भेद, जिह्वा के अधिदेवता, स्रुक्-स्रुवा के निर्माण की विधि, होम द्रव्यों का प्रमाण, होमार्थ समिधाओं का विवेचन किया गया है। तदनन्तर वर्णदीक्षा एवं कलादीक्षा के प्रयोग का निरूपण करते हुये स्पर्श-वाक्-दृक्-वेध दीक्षा की विधियाँ प्रतिपादित करने के पश्चात् अन्त में पूर्णाभिषेक की विधि स्पष्ट की गई है।

चौदहवें श्वास में कादि मत में पूर्णाभिषेक की विधि, नवग्रह आदि मण्डल के पूजन की विधि, तिथि-वार-नक्षत्र के देवता, सम्बद्ध दिन के नित्या की पूजन विधि, डाकिनी आदि के पूजन की विधि, पचास युगल-पूजा, कामेश्वरी-भगमालिनी-नित्यक्लिन्ना-भेरुण्डा-वह्निवासिनी-वज्रेश्वरी-शिवदूती-त्वरिता-कुलसुन्दरी-नित्या-नीलपताका-विजया नित्या के पूजन की विधियाँ प्रयोगसहित निरूपित की गई हैं। तत्पश्चात् प्रयोग-सहित सर्वमङ्गला के पूजन की विधि स्पष्ट करते हुये

ज्वालामालिनी-चित्रा-कुरुकुल्ला-वाराही नित्या का पूजन विधान उनके विविध प्रयोगों के साथ स्पष्ट किया गया है। उसके अनन्तर वारदेवता, तिथिदेवता एवं नक्षत्रदेवता का पूजन विधान स्पष्टतया प्रतिपादित करते हुये नवग्रह-पूजन की विधि सम्यक् रूप से निरूपित करने के साथ ही श्वास का समापन किया गया है।

पन्द्रहवें श्वास में प्रातः, माध्यन्दिन, सायं एवं अर्धरात्र सन्ध्याओं की विधि प्रतिपादित करते हुये नित्यतर्पण, पीठपूजन, अर्घ्यस्थापन, आवरणपूजन एवं नित्य होम की विधियाँ स्पष्टतः निरूपित की गई हैं। तदनन्तर अक्षरों का वर्गविभाजन, पूर्ण मण्डल वर्णक्रम, कालनित्या विद्या के उद्धार के पूर्व पारायण एवं जप का क्रम, अङ्गविद्या का जप, कालनित्या का जप, युगाक्षरोत्थ विद्या का जप, त्रिपुरभैरवी की स्तुति, द्वादशश्लोकी स्तुति, नित्याकवच, अधिवासन दिन के कृत्य, कादिमत में पूर्णाभिषेक की विधि, खारी का लक्षण, कालचक्र-निर्माण का प्रकार, यन्त्रभेद, दिननित्या विद्या का ज्ञान, पर्यायनित्या का क्रम, नैमित्तिक पूजा, दमनारोपण की विधि, पवित्रारोपण की विधि, पूज्य-अपूज्य कुमारियों के लक्षण, पूज्य-अपूज्य सुवासिनियों के लक्षण, कालीमतीय पूर्णाभिषेक के समय शक्ति का न्यास, अन्तर्याग आदि विषय इस श्वास में क्रमशः निरूपित किये गये हैं।

सोलहवें श्वास में 'पुरश्चरण' शब्द की व्युत्पत्ति बताते हुये पुरश्चरण के समय किये जाने वाले विनियोग का लक्षण, पुरश्चरण में श्रीविद्या के जप की संख्या, तीन लाख जप के पूर्व श्रीचक्र का साधना, नव लाख जप से पुरश्चरण का साफल्य, जपसंख्या का निर्णय, कूर्म चक्र की रचना, विद्या-साधन-विद्याव्रत में वर्ज्य दिन, विद्या-सिद्धि के लक्षण, कूर्मस्थिति एवं उसके प्रयोग, साध्य-साधक के नाम में अरित्व ज्ञानपूर्वक वैरिस्थान का त्याग; अक्षमाला का स्वरूप, विधान एवं उसके मणियों का फल, मिश्रित मणियों का माला में निषेध, वश्य-उच्चाटन आदि में माला का प्रकार, माला के सात्त्विक आदि भेद, देवतानुसार माला के संस्कार का समय, माला में सूत्र का निर्णय, माला गूँथने की विधि एवं माला का संस्कार बताने के पश्चात् पञ्चगव्य में मिश्रित किये जाने वाले वस्तुओं का विवेचन किया गया है।

तदनन्तर रुद्राक्ष का माहात्म्य, उसकी उत्पत्ति, उसके एकमुखी आदि भेद एवं भेदानुसार रुद्राक्ष का फल बताया गया है। इसके बाद जप का समय, जपनियम, करमाला की विधि एवं फल, पुरश्चरण काल में विहित कर्तव्य, नित्य-नैमित्तिक जप, भिक्षा आदि का नियम, व्रत के समय में निषिद्ध कार्य, जप के मध्य में बोलने पर प्रायश्चित्त, पुरश्चरण करने वाले के लिये अनुष्ठेय नियम, कुश की पवित्री अथवा सुवर्ण की अंगुठी आदि धारण करने के नियम, दूर्वा के भेद, कुशा के प्रतिनिधि, नग्नता के भेद, जप के भेद, जप में विहित एवं निषिद्ध आसन, जप आरम्भ करने के पूर्व दिन का कृत्य, क्षेत्रपाल को बलि देने का मन्त्र, जपारम्भ में मास आदि के उल्लेख का निर्णय किया गया है।

इसके पश्चात् व्रत-यज्ञ-विवाह आदि में सूतक का विचार, प्रतिदिन बराबर संख्या में जप का विधान, रात्रि एवं दिन के पाँचवें भाग में जप का निषेध, जप के आरम्भ में माला की इतिकर्तव्यता, ध्यान, मन्त्रसेतु, माला का आवर्तन एवं धारण, मन्त्र का जप, माला का मन्त्र, कृतजप को देवता को निवेदित करने का मन्त्र, दो प्रहर जप के बाद कर्तव्य कर्म, व्रत में विहित हविष्य, व्रत में निषिद्ध, मन्त्र की सिद्धि-असिद्धि में हेतु, मन्त्रवीर्य का हरण, भोजन, शयन, शुभसूचक स्वप्न, अशुभसूचक स्वप्न, अशुभ स्वप्नों का प्रायश्चित्त, स्वप्न का प्रकटीकरण, मन्त्रसिद्धि के लक्षण, जप के उपरान्त होम, होम करने में अशक्तता होने पर द्विगुण जप, तर्पण एवं ब्राह्मण-भोजन, पुस्तक में लिखित मन्त्र का जप करने पर होने वाला पाप, मन्त्रसिद्धि के विविध प्रकार, पचास वर्णौषधियों के नाम, मन्त्रसिद्धि के लिये द्रावणादि संस्कार, सिद्धि के लक्षण, दिव्य पुरश्चरण एवं अन्त में कुलशक्ति के पूजन का विधान निरूपित किया गया है।

सत्रहवें श्वास में रहस्य एवं वीर पुरश्चरण की विधि स्पष्ट की गई है। इसके बाद कुलाङ्गनाओं का लक्षण, कुलाङ्गनास्तोत्र, वीरसाधन की विधि, सुरा-तर्पण का विचार, विविध सुराओं के फल, नीलक्रम में कथित वीरसाधन, वीरसाधन प्रयोग में चितासाधन, शवसाधन, शवसाधन प्रयोग, संक्षिप्त पुरश्चरण, षट्कर्म का लक्षण, षट्कर्म के देवता-

दिशा-ऋतु-आसन-मुद्रा-यन्त्र-बीज आदि, षट् यन्त्र लिखने का द्रव्य, प्राणयन्त्र, ग्रथित आदि के लक्षण, चक्रराज-साधन, कूटत्रय का साधन, तिलक-धारण, आन्तर उपासना की विधियाँ स्पष्ट की गई हैं। तदनन्तर प्रयोगों के प्रायश्चित्त, प्रयोगों के अधिकारी, पञ्च मुद्रा-वासना, काम्य होम की विधि, होम में अग्नि की स्थिति, सौम्य होम के द्रव्य, दशाङ्ग धूप, मन्त्रहोम की विधि, क्रूर होम की विधि, काम्य होम में द्रव्यों का मान, माष आदि के प्रमाण का लक्षण, समिधा का लक्षण काम्य जप की विधि, कूटत्रय के पृथक्-पृथक् साधन की विधि, श्रीचक्र-साधन की विधि, तिलक आदि वशीकरण प्रयोग एवं आकर्षण आदि प्रयोग बताये गये हैं।

अट्ठारहवें अध्याय में समयाचार, महामन्त्र के साधन में स्वेच्छाचार, महामन्त्र, महानिशा, समयाचार का रहस्य, कुलाचार के नियम, शिवाबलि, महामांसाष्टक, शिवा बलि का प्रयोग, दूतीयाग की विधि, दूती-लक्षण, कुलनायिका-लक्षण एवं इन सबके पूजन का फल बताया गया है। इसके अनन्तर त्याज्य शक्तियों के लक्षण, मातङ्गी-पूजन, पञ्चम याग की प्रशंसा, पञ्चम याग का प्रयोग, बाला का ध्यान, शक्तिशोधन का मन्त्र, काम एवं सोम की कला, कुलयाग के पश्चात् अन्तर्याग की कर्तव्यता, स्नान-सन्ध्या-तर्पण-अर्घ्यदान के लक्षण, ध्यान के लक्षण, पूजा-जप-हवन, मधुपर्क के अङ्गस्वरूप छाग आदि पशु की बलि का विधान, सप्रयोग कुमारी-यजन की विधि, पूज्य-अपूज्य कुमारी के लक्षण, वटुकादि बलि-प्रयोग, कुल्लिका आदि के लक्षण, कुल्लिका प्रयोग, प्राणप्रतिष्ठा का विधान एवं उपासना की विधि बताई गई है। तदनन्तर प्राणदूतियों को बताते हुये इसके पुरश्चरण की विशेष विधि प्रतिपादित की गई है। तत्पश्चात् आठ प्रकार के विष, शैवादि कला की गणना, प्राणयन्त्र के निर्माण का प्रकार, नित्य होम में अग्निस्थापन की विधि, अन्य मन्त्रों की सामान्यतया पूजा-विधि, पूजा का द्वैविध्य, गृहस्थों की पाँच प्रकार की बाह्य पूजा, समयानुसार गुरु का ध्यान, मल-मूत्र-शौचादि निर्णय, दातुन का मन्त्र, स्नान की विधि एवं उसके भेद, तान्त्रिक स्नान की विधि, गंगा मन्त्र, मन्त्रस्नान की विधि, ऊर्ध्वपुण्ड्र का लक्षण, भस्म त्रिपुण्ड्र धारण की विधि, त्रिपुण्ड्र धारण करने में अंगुलि-नियम, तिलक का प्रकार, सन्ध्याविधि, सन्ध्या न करने पर किया जाने वाला प्रायश्चित्त, यागमण्डप में प्रवेश का नियम, सूर्यार्घ्य दान की विधि, द्वारपूजन-विधि, विघ्नोत्सारण से पूर्व मण्डप-प्रोक्षण, आसन-स्थापन, पूजा द्रव्यों का स्थापन, सबका सम दृष्टि से अवलोकन, दीपशिखा का स्पर्श, जल-पात्र का अवलोकन, करशोधन, वैष्णव-प्रासाद मन्त्र एवं रोम बीज, अस्त्रमन्त्र से दिग्बन्धन, भूतशुद्धि, मन्त्रों के ऋषि आदि का निर्णय, षडङ्ग न्यास की विधि, जाति के लक्षण आदि विषय विवेचित किये गये हैं।

स्वरूपावस्थित कपिलदेव नारायण

विषयानुक्रमणी

द्वादश: श्वास:

विषया:	पृष्ठाङ्का:
श्रीचक्रनिर्माणप्रकार:	१
धातुविशेषे पूज्यकालसंख्याविशेष: तत्फलम्	१
चक्रस्य प्रस्तारभेदेन त्रैविध्यम्	२
प्रस्तारत्रयस्य फलानि	३
निषिद्धधातूनन्यानि निषिद्धाधिकरणानि	३
पीठप्रमाणम्	३
सृष्ट्यादिचक्रे तत्क्रमेण पूजा	४
चक्रस्य सृष्ट्यादिभेदलक्षणानि	४
मण्डपरचनार्थं प्राचीज्ञानप्रकार:	५
मण्डपरचना	७
मण्डपलक्षणम्	८
मण्डपनिर्माणविधि:	९
त्रिशूलनिर्माणप्रकार:	११
चतुरस्रकुण्डनिर्माणप्रकार:	१३
योनिकुण्डनिर्माणम्	१६
अर्धचन्द्रकुण्डनिर्माणम्	१६
त्रिकोणकुण्डनिर्माणम्	१७
वृत्तकुण्डनिर्माणम्	१७
षडकुण्डनिर्माणम्	१८
पद्मकुण्डनिर्माणम्	१८
अष्टास्रकुण्डनिर्माणम्	१९
पञ्चास्रकुण्डनिर्माणम्	१९
सप्तास्रकुण्डनिर्माणम्	२०
काम्यहोमेषु कुण्डभेदेन फलभेद:	२०
वर्णभेदेन कुण्डभेद:	२१
वेदिकापरित: कुण्डनिर्माणविशेष:	२१
कुण्डे राशिस्थिति:	२१
कुण्डवासना	२१
होमसंख्याभेदेन कुण्डमानभेद:	२२
द्विहस्तादिकुण्डविशेषाणां मानाङ्गुलक्षेत्रफलानि	२२
त्रसरेण्वादिमानभेद:	२२
कुण्डविस्तारायामसमानंनिम्नखातकरणे मेखलादिप्रमाणम्	२२
कुण्डानामयथाकरणे दोषा:	२५
कण्ठप्रमाणम्	२६
योनिप्रमाणम्	२६
नालप्रमाणम्	२७
नाभिप्रमाणम्	२८
वास्तुपूजा	२८
वास्तुपूजाचक्ररचनाप्रकार:	२८
वास्तुपूजाफलं तदकरणे फलवैपरीत्यम्	३०
अङ्कुरार्पणविधि:	३१
दीक्षाकाले मासा:	३३
दीक्षानक्षत्राणि	३४
दीक्षायां निषिद्धनक्षत्राणि	३४
दीक्षातिथय:	३४
दीक्षावारादिकम्	३५
दीक्षायोग:	३६
दीक्षाकरणानि	३६
दीक्षालग्नानि	३६
दीक्षाकाल:	३७
अधोमुखनक्षत्राणि	३७
ग्रहणे दीक्षारम्भ:	३७
क्रियावती दीक्षा	३८
मधुपर्कविधानम्	३९
शक्तिगन्धाष्टकम्	४४
वैष्णवगन्धाष्टकम्	४४
शाम्भवगन्धाष्टकम्	४५
वैदिकमन्त्रपञ्चकोद्धार:	४५
कलशमण्डलार्चाबह्निसंस्कारचरुसम्पादनादि	४६
अग्निस्थापनहोमकर्म	४९
प्रणीतास्थापनप्रकार:	५४
कुण्डाज्यस्रुगादिसंस्कार:	५६
मण्डले बलि:	६०

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
अध्वविवेचनम्	६२
षडध्वशुद्ध्यादि	६३
पूर्णाहुतिः	६४
अग्न्युद्वासनम्	६५
गुरुदक्षिणा	६७
वर्णदीक्षा	६७
कलादीक्षा	६८
वेधदीक्षा	६८
स्पर्शदीक्षा	६९
वाग्दीक्षा	६९
दृग्दीक्षा	६९
शाम्भवदीक्षा	६९
पूर्णाभिषेकविधिः	७०
खारीप्रमाणम्	७०
दीक्षाप्रयोगः	७०
कुण्डाग्निस्थापनतत्पूजा	७६
पूर्वादिदिक्षु बलिदानम्	८४
गणेशपूजा	८५

त्रयोदशः श्वासः

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
गौर्यादिमातृकापूजा	८५
पुण्याहवाचनम्	८६
मण्डपदेवतास्थापनपूजावलयः	८७
अधिदेवतास्थापनम्	९७
विनायकादिस्थापनम्	९७
कलशाभिमन्त्रणादि	९८
अध्वभावनाशोधनादि	९९
दीक्षाङ्गहोमविधिः	१००
क्रियादीक्षाकरणशक्तौ संक्षेपविधिः	१०३
अग्नेर्वर्णादिफलम्	१०३
सात्त्विकादिजिह्वाभेदः	१०५
सात्त्विकादिजिह्वाभेदः	१०६
स्रुक्स्रुवरचनाप्रकारः	१०६
होमद्रव्याणां प्रमाणानि	१०९
समिधः	११०
वर्णदीक्षाप्रयोगः	११०
कलादीक्षाप्रयोगः	१११
स्पर्श-वाग्-दृग्-वेधदीक्षाप्रकारः	१११

चतुर्दशः श्वासः

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
कादिमते पूर्णाभिषेकविधिः	११४
नवग्रहादिमण्डलपूजाविधिः	११६
तिथिवारर्क्षदेवता	११८
तद्दिननित्यापूजाविधिप्रयोगः	११९
डाकिन्यादिदेवतापूजाप्रयोगः	१२०
पञ्चाशन्मिथुनपूजा	१२२
कामेश्वरीनित्यायजनविधिः	१२३
भगमालिनीनित्यायजनविधिः	१२६
नित्यक्लिन्नापूजनविधिः	१३०
भेरुडानित्यापूजनविधिः	१३२
वह्निवासिनीनित्यापूजनविधिः	१३४
वज्रेश्वरीनित्यापूजनविधिः	१३६
शिवादूतीनित्यापूजनविधिः	१३९
सप्रयोगः त्वरिता नित्यापूजनविधिः	१४१
सप्रयोगः कुलसुन्दरीनित्यापूजनविधिः	१४३
सप्रायोगः नित्यानित्यापूजनविधिः	१४५
सप्रयोगः नीलपताकानित्यापूजनविधिः	१४८
सप्रयोगः विजयानित्यपूजनविधिः	१५०
सप्रयोगः सर्वमङ्गलासपर्याविधिः	१५३
सप्रयोगः ज्वालामालिनीनित्यापूजाविधिः	१५५
सप्रयोगः चित्रानित्यायजनविधिः	१५७
सप्रयोगः कुरुकुल्लासपर्याविधिः	१५९
वाराहीसपर्याविधिः सप्रयोगः	१६२
वारेशानां पूजाप्रयोगः	१६४
तिथीशार्चनप्रयोगः	१६४
नक्षत्रेशदेवतापूजाक्रमः	१६४
नवग्रहपूजाविधिः	१६५

विषयाः	पृष्ठाङ्काः	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
	पञ्चदश श्वास		
प्रात:कृत्योत्तरं सन्ध्याकथनम्	१६८	द्वादशश्लोकीस्तुति:	१९७
मध्यन्दिनसन्ध्या	१७४	नित्याकवचम्	१९८
सायंसन्ध्या	१७५	अधिवासनदिनकृत्यम्	१९९
अर्धरात्रसन्ध्या	१७७	कादिमते पूर्णाभिषेकविधि:	२००
नित्यतर्पणविधि:	१७८	खारीलक्षणम्	२००
पीठपूजा	१७९	कालचक्ररचनाप्रकार:	२००
अर्घ्यस्थापनम्	१८०	यन्त्रभेदकथनम्	२०१
आवरणपूजा	१८२	दिननित्याविद्यापरिज्ञानम्	२०४
नित्यहोमविधानम्	१८८	पर्यायनित्याक्रम:	२०४
अक्षराणां वर्णविभाग:	१८९	नैमित्तिकपूजा	२०५
पूर्णमण्डलवर्णक्रम:	१८९	दमनारोपणविधि:	२०६
उद्धारपूर्वं कालनित्याविद्यापारायणजपक्रम:	१९१	पवित्रारोपणविधि:	२०९
अङ्गविद्याजपकथनम्	१९२	पूज्यापूज्यकुमारीलक्षणम्	२१३
कालनित्याजप:	१९२	पूज्यापूज्यसुवासिनीलक्षणम्	२१३
युगाक्षरोत्थविद्याजपविशेष:	१९४	कालीमते पूर्णाभिषेके शक्तिन्यास:	२१५
त्रिपुरभैरवीस्तुति:	१९५	न्यासानुसन्धानशतश्लोकी	२१८
		अन्तर्यागकरणम्	२२२
	षोडश: श्वास:		
कालीमते पुरश्चरणविधौ पुरश्चरणशब्दनिरुक्ति:	२२५	मालामणिफलकथनम्	२३८
विनियोगलक्षणम्	२२५	मिश्रमणिनिषेध:	२३९
पुरश्चरणेऽङ्गसंख्याविकल्प:	२२५	वश्योच्चाटनादौ मालाप्रकार:	२३९
पुरश्चरणे श्रीविद्याजपसंख्या	२२७	मालाया: सात्त्विकादिभेदा:	२४०
त्रिलक्षजपपूर्वं श्रीचक्रसाधनम्	२२८	देवताभेदेन मालासंस्कारकाल:	२४०
नवलक्षावधि सफलं पुरश्चरणप्रकार:	२२९	सूत्रनिर्णय:	२४१
जपसंख्यानिर्णय	२३०	मालाग्रथनविधानम्	२४१
जपस्थानवचनम्	२३१	मालासंस्कार:	२४२
कूर्मचक्ररचनापरिज्ञानम्	२३३	पञ्चगव्यनिर्णय:	२४२
विद्यासाधनादि	२३४	रुद्राक्षमाहात्म्यं तदुत्पत्तिस्तन्मुखभेदास्तत्फलानि च	२४३
विद्याव्रतदिनवर्ज्यानि	२३५	करमालानिर्णयस्तत्फलञ्च	२४८
विद्यासिद्धिचिह्नानि	२३५	पुरश्चरणकालविहितानि	२५०
कूर्मस्थितितत्प्रयोग:	२३५	नित्यनैमित्तिकजपकथनम्	२५१
साध्यसाधकनाम्नोररित्वज्ञानपूर्वं वैरिस्थानत्याग:	२३७	गुरुसन्तोषफलम्	२५१
अक्षमालानिर्वचनम्	२३८	भैक्षादिनियम:	२५१

विषयाः	पृष्ठाङ्काः	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
निषिद्धकथनम्	२५२	व्रतवर्ज्यानि	२६८
जपमन्तरा भाषणे प्रायश्चित्तम्	२५२	मन्त्रसिद्ध्यसिद्ध्योर्हेतुकथनम्	२६८
पुरश्चरणकर्तुर्नियमः	२५३	भोजनसम्पादनादि	२६९
कुशपवित्रसुवर्णधारणनियमः	२५५	शयनप्रकारः	२६९
दर्भभेदादिकथनम्	२५५	स्वप्नमाणवमन्त्रः	२७०
नग्नभेदाः	२५६	शुभसूचकस्वप्नाः	२७१
प्रौढ़पादलक्षणम्	२५७	अशुभसूचकस्वप्नाः	२७२
जपतद्भेदलक्षणम्	२५७	अशुभस्वप्नप्रायश्चित्तम्	२७२
विहितासनानि	२५८	स्वप्ननिवेदनम्	२७३
निषिद्धासनानि	२५८	साधकस्य विघ्नपूर्वं मन्त्रसिद्धिचिह्नानि	२७३
जपपूर्वदिनकृत्यम्	२५९	सिद्धिप्रत्ययाः	२७४
क्षेत्रपालबलिमन्त्रः	२५९	होमक्रमः	२७५
जपारम्भकार्यम्	२५९	होमाशक्तौ द्विगुणादिजपः	२७५
व्रतयज्ञविवाहादौ सूतकविचारः	२६१	तर्पणब्राह्मणभोजने	२७६
प्रतिदिनं समसंख्यया जपविधिः	२६२	पुस्तकलिखितादिमन्त्रजपपातकम्	२७७
जपादौ दिनातिक्रमे सिद्धिरोधः	२६३	प्रोक्तमालासंस्कारादीनां प्रयोगः	२७७
जपादौ मालाया इतिकर्तव्यता	२६३	मन्त्रसिद्धिप्रकारान्तराणि	२८५
जपादौ ध्यानादीतिकर्तण्यता	२६४	कादिमते प्रकारान्तरम्	२८६
मन्त्रसेतुनिर्णयः	२६४	पञ्चाशद्वर्णौषधिनामानि	२८७
मालावर्तनधारणनियमः	२६५	मन्त्रसिद्धिप्रकारान्तरम्	२८७
मन्त्रजपविचारः	२६५	मन्त्रसिद्ध्यै द्रावणादिसंस्कारः तत्प्रयोगश्च	२८८
मालायाः मन्त्रोद्धारः	२६६	सिद्धिलक्षणानि	२८९
जपनिवेदनमन्त्रः	२६६	दिव्यपुरश्चरणम्	२९०
		कुलशक्तिपूजनक्रमः	२९१

अथ सप्तदशः श्वासः

रहस्यपुरश्चरणम्	२९३	प्रयोगविशेषाः	३१६
वीरपुरश्चरणम्	२९५	षट्कर्मलक्षणम्	३१७
वीरसाधनविधानम्	२९७	षट्कर्मदेवता-ऋतु-आसन-मुद्रा-यन्त्र-बीजादिकथनम्	३१७
सुरातर्पणविचारः	२९८	षट्कर्मयन्त्रलेखनद्रव्याणि	३१८
सुराभेदफलश्रुतिः	३००	प्राणयन्त्रोद्धारः	३१९
नीलक्रमोक्तवीरसाधनम्	३००	ग्रथितादिलक्षणम्	३२०
वीरसाधनप्रयोगे चितासाधनम्	३०४	चक्रराजसाधनम्	३२१
शवसाधनम्	३०६	मन्त्रयोगः	३२५
शवसाधनप्रयोगः	३११	तिलकधारणम्	३३२
संक्षेपपुरश्चरणम्	३१३	आन्तरोपासना	३३३

विषयाः	पृष्ठाङ्काः	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
अधिकारिकथनम्	३३४	माषादिप्रमाणलक्षणम्	३५३
पञ्चमुद्रावासना	३३४	समिधां लक्षणम्	३५३
काम्पहोमविधिः	३३५	काम्यजपविधिः	३५४
सौम्यहोमद्रव्याणि	३३६	कूटत्रयस्य पृथक्साधनविधिः	३५५
विद्याहोमविधानम्	३३८	श्रीचक्रसाधनविधिः	३५७
क्रूरहोमविधानम्	३४३	तिलकादिवश्यप्रयोगः	३५८
काम्यहोमद्रव्याणां मानम्	३५१	आकर्षणादिप्रयोगः	३५९

अष्टादशः श्वासः

विषयाः	पृष्ठाङ्काः	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
समयाचारः	३६३	कुमारीयजनविधिः	३९५
महामन्त्रसाधने स्वेच्छाचारः	३६९	कुमारीपूजनविधिः	३९६
महामन्त्राः	३६९	पूज्यकुमारीलक्षणानि	३९७
कुलाचारनियमः	३७२	अपूज्यकुमारीलक्षणानि	३९७
शिवाबलिः	३७२	फलविशेषे पूज्यविशेषः	३९७
दूतीयागविधिः	३७४	वटुकादिबलिपञ्चकप्रयोगः	३९७
दूतीलक्षणानि	३७५	कुल्लिकादिलक्षणम्	३९८
कुलनायिकाः	३७६	कुल्लिकाप्रयोगः	४०१
उत्तरोत्तरं कुलनायिकापूजनफलम्	३७७	प्राणप्रतिष्ठाविधानम्	४०१
वर्ज्यशक्तीनां लक्षणम्	३७८	उपासनाविधिः	४०३
मातङ्गीपूजनम्	३७८	प्राणदूत्यः	४०४
पञ्चमयागप्रशंसा	३८१	तत्पुरश्चरणविधिविशेषः	४०५
पञ्चमयागप्रयोगः	३८२	अष्टविषाणि	४०६
संक्षेपतः शक्तिशोधनम्	३८८	शैवादिकलापरिगणना	४०६
कामसोमयोः कलाः	३८९	प्राणयन्त्ररचनाप्रकारः	४०८
अन्तर्यजनम्	३९०	नित्यहोमेऽग्निस्थापनविधिः	४०९
स्नानलक्षणम्	३९१	सामान्येन मन्त्रान्तराणां नित्यपूजाविधिः	४११
सन्ध्यालक्षणम्	३९१	गृहस्थानां बाह्यपूजा पञ्चधा	४१३
तर्पणलक्षणम्	३९१	प्रातःप्रधानभूतेज्यानिरूपणम्	४१३
अर्घ्यदानलक्षणम्	३९१	मूलमूत्रशौचादिनिर्णयः	४१५
न्यासध्यानानि	३९१	दन्तकाष्ठमन्त्रः	४१६
ध्यानलक्षणम्	३९२	स्नानविधिस्तद्भेदाः	४१६
पूजनम्	३९२	तान्त्रिकस्नानम्	४१७
जपलक्षणम्	३९२	मन्त्रस्नानविधिः	४१८
हवनम्	३९३	ध्यानस्नानम्	४१९
मधुपर्काङ्गच्छागादिपशुबलिविधानम्	३९३	ऊर्ध्वपुण्ड्रलक्षणम्	४२०

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
भस्मत्रिपुण्ड्रधारणविधिः	४२०
गोमयापहरणादौ विशेषः	४२१
त्रिपुण्ड्रधारणेऽङ्गुलिनियमः	४२१
तिलकप्रकारः	४२२
सन्ध्याविधिः	४२२
सन्ध्यालोपे प्रायश्चित्तम्	४२३
यागमण्डपप्रवेशादि	४२४
सूर्यार्घ्यदानविधिः	४२४
द्वारपूजादिविधानम्	४२५
विघ्नोत्सारणपूर्वं मण्डपप्रोक्षणादि	४२६
आसनस्थापनविनियोगः	४२६
पूजाद्रव्यस्थापनम्	४२७
समदृष्ट्यवलोकनम्	४२७
दीपशिखास्पर्शः	४२८
जलपात्रावेक्षणम्	४२८
करशोधनकर्म	४२८
भूतशुद्धिः	४२९
ऋष्यादिपदार्थनिर्णयः	४३१
षडङ्गन्यासविधिः	४३१
जातिलक्षणम्	४३२

विष

अधि
पञ्च
काम
सौम
विद्य
क्रूर
काम

सम
महा
महा
कुल
शिव
दूती
दूती
कुल

पञ्च
पञ्च
संक्षे
का
अन
स्न
सन
तर्प
अ
न्य
ध्य
पूज
जप
हव
मह

श्रीविद्यारण्ययतिप्रणीतं

श्रीविद्यार्णवतन्त्रम्

(श्रीविद्या का सम्पूर्ण ग्रन्थ)

पूर्वार्द्धम् : द्वितीयो भागः

(१२-१८ श्वासात्मकः)

सर्वजन-विज्ञेय भाषा टीका से अलंकृत श्रीविद्यारण्य यति-प्रणीत प्रकृत श्रीविद्यार्णवतन्त्रम् ग्रन्थ का संशोधित एवं संस्कृत मूल पाठ तथा भाषा टीका प्रकाशक द्वारा पूर्णतया स्वायत्तीकृत हैं। प्रकाशक की लिखित अनुमति प्राप्त किये विना इसके किसी भी अंश को जिस किसी भी रूप में प्रकाशित अथवा उद्धृत नहीं किया जा सकता।

▼

यह विशेष रूप से ध्यातव्य है कि इस ग्रन्थ में पठित किसी भी मन्त्र अथवा यन्त्र का सद्गुरु से आज्ञा प्राप्त किये विना प्रयोग नहीं करना चाहिये; अन्यथा करने पर होने वाले किसी भी प्रकार के अनिष्ट के लिए स्वयम्भू उपासक स्वयं उत्तरदायी होगा।

॥ श्रीः ॥

श्रीविद्यारण्ययतिप्रणीतं

श्रीविद्यार्णवतन्त्रम्

भाषाभाष्योपेतम्

* पूर्वार्द्धम् : द्वितीयो भागः *

अथ द्वादशः श्वासः

श्रीचक्रनिर्माणप्रकारः

अथ श्रीचक्रनिर्माणप्रकारः। श्रीरुद्रयामले—

ततः कुङ्कुमसिन्दूरैः कार्यं यन्त्रं तु योगिना। सौवर्णे राजते ताम्रे स्फाटिके वैद्रुमे तथा ॥१॥
चक्रे यथोक्तविधिना पूज्या देवी नरोत्तमैः। इति।

तन्त्रराजे—

रत्ने हेमनि रूप्ये वा ताम्रे दृषदि च क्रमात्। कृत्वा चक्रस्य निर्माणं स्थापयेत् पूजयेदपि ॥१॥
लक्ष्मीकान्तियशःपुत्रधनारोग्यादिसिद्धये।

दृषदि गण्डकीशिलायाम्। 'गण्डकीभवपाषाणे स्वर्णे रजतताम्रयो'रिति दक्षिणामूर्तिसंहितावचनात्।

श्रीचक्र-निर्माण प्रकार—श्रीरुद्रयामल में कहा गया है कि योगियों को सिन्दूर, कुङ्कुम से यन्त्र बनाना चाहिये। सोना, चाँदी, ताम्बा, स्फटिक, मूँगा के चक्र में यथोक्त विधि से श्रेष्ठ जनों को देवी की पूजा करनी चाहिये।

तन्त्रराज में कहा गया है कि सोना, चाँदी, ताम्बा या शालग्राम से चक्र-निर्माण करने के पश्चात् उसे स्थापित करके उसका पूजन करे। इससे लक्ष्मी, कान्ति, यश, पुत्र, धन तथा आरोग्य की प्राप्ति होती है। इसी का समर्थन दक्षिणामूर्तिसंहिता में भी किया गया है।

धातुविशेषे पूज्यकालसंख्याविशेषः तत्फलम्

अथ धातुविशेषे पूज्यकालसंख्याविशेषमाह रत्नसागरे—

यावज्जीवं सुवर्णे स्याद्रूप्ये द्वाविंशतिः प्रिये। ताम्रे द्वादशकं वर्षं तदर्धं भूर्जपत्रके ॥१॥ इति।

तन्त्रान्तरे—

ताम्रे द्वादशकं वर्षं स्फाटिकादौ तु सर्वदा। तेषां मध्ये स्फाटिके तु सर्वसिद्धिप्रदं भवेत् ॥१॥ इति।

लक्षसागरे—

भूमौ सिन्दूररजसा रचितं सर्वकामदम्। सुवर्णरचितं यन्त्रं सर्वराजवशङ्करम् ॥१॥
रजतेन कृतं यन्त्रमायुरारोग्यकान्तिदम्। ताम्रैस्तु रचितं यन्त्रं सर्वैश्वर्यप्रदं मतम् ॥२॥
यन्त्रं हि स्फाटिके देवि मनोऽभिलषितप्रदम्। माणिक्यलिखितं यन्त्रं राज्यदं भुक्तिदं मतम् ॥३॥

गोमेदरचितं यन्त्रं सर्वैश्वर्यप्रदायकम् । क्लृप्तं मरकते यन्त्रं सर्वशत्रुविनाशनम् ।।४।।
लोहत्रयोद्भवं यन्त्रं सर्वसिद्धिकरं मतम् । इति।

धातुविशेष में पूज्यकाल—रत्नसागर में कहा गया है कि आजीवन सोने में, चाँदी में बाईस वर्ष तक, ताम्बा में बारह वर्ष तक और भोजपत्र में छः वर्ष तक पूजन करना चाहिये। अन्य तन्त्रों में कहा गया है कि ताम्बे में बारह वर्ष तक एवं स्फटिक आदि में सर्वदा पूजा करनी चाहिये। उनमें भी स्फटिक सर्वसिद्धिदायक होता है। लक्षसागर में कहा गया है कि भूमि पर सिन्दूर से रचित चक्र इच्छित फलदायक होता है। सोने पर अंकित यन्त्र सभी राजाओं को वश में करता है। चाँदी पर बना यन्त्र आयु, आरोग्य एवं कान्तिप्रदायक होता है। ताम्बे पर रचित यन्त्र समस्त ऐश्वर्य का प्रदायक होता है। हे देवि! स्फटिक यन्त्र मन की अभिलाषाओं को पूर्ण करता है। माणिक्य से निर्मित यन्त्र राज्य एवं भोग देता है। गोमेद से निर्मित यन्त्र सर्व ऐश्वर्यदायक होता है। मरकत से निर्मित यन्त्र समस्त शत्रुओं का नाश करता है। स्वर्ण, रजत एवं ताम्बे से निर्मित यन्त्र सभी सिद्धियों का दाता होता है।

देव्युवाच

लोहत्रयोद्भवं यन्त्रं कथं कार्यं महेश्वर । तन्मे वदस्व कृपया यद्यहं तव वल्लभा ।।१।।

देवी ने कहा कि हे महेश्वर! यदि मैं आपकी प्रियतमा हूँ तो लोहत्रय से किस प्रकार यन्त्र-निर्माण किया जाता है, इसे कृपया मुझे बताइये।

ईश्वर उवाच

भागा दश सुवर्णस्य रजतस्य च षोडश । ताम्रस्य रविभागेन पीठं कुर्यान्मनोहरम् ।।१।।
तस्मिन् पीठे तु निर्माणं श्रीचक्रस्य तु कारयेत् । शान्तिदं पुष्टिदं प्रोक्तं सर्वशत्रुनिवर्हणम् ।।२।।
आयुरारोग्यजनकं कान्तिदं पुष्टिदं मतम् । इति।

ईश्वर ने कहा—दश भाग सोना, सोलह भाग चाँदी और बारह भाग ताम्बा को मिलाकर मनोहर पीठ बनाये। उस पीठ पर श्रीचक्र बनावे। यह चक्र शान्ति और पुष्टिदायक होता है एवं सभी शत्रुओं का विनाशक होने के साथ-साथ आयु-आरोग्य का जनक, कान्ति तथा पुष्टिकारक होता है।

चक्रस्य प्रस्तारभेदेन त्रैविध्यम्

त्रैविध्यं तस्य चक्रस्य भूप्रस्तारोऽर्धमेरुकम् । पातालवासिनां देवि प्रस्तारो निम्नरेखकः ।।१।।
ऊर्ध्वरेखो महेशानि मर्त्यलोकनिवासिनाम् । स्वर्गलोकादिवासानां यन्त्रराण्मेरुसंज्ञकः ।।२।।
भूपुरं तु समारभ्य बैन्दवान्तं महेश्वरि । क्रमात्समुन्नतं सर्वं मेरुरूपं मयोदितम् ।।३।।
समोर्ध्वरेखानवकमूर्ध्वरेखं प्रकीर्तितम् । निम्नरेखासमायोगाद्भूप्रस्तारो मयोदितः ।।४।।
यन्त्रराजस्वरूपं ते मया स्नेहात्प्रकाशितम् । गोपितव्यं त्वया भद्रे स्वगुह्यमिव सन्ततम् ।।५।। इति।

अथ चक्रस्य प्रस्तारभेदेन त्रैविध्यं च तत्रैव—

श्रीचक्र का प्रस्तारभेद से तीन भेद—लक्षसागर में कहा गया है कि चक्र के तीन प्रकार में भूप्रस्तार, मेरुप्रस्तार और पातालवासियों के लिये निम्न रेखात्मक प्रस्तार होता है। मर्त्य लोक के निवासियों के लिये ऊर्ध्व रेखा वाला प्रस्तार होता है। स्वर्गलोकादि के वासियों के लिये मेरुप्रस्तार होता है। यह भूपुर से लेकर बिन्दु तक क्रमशः समुन्नत मेरुरूप होता है। सम नव ऊर्ध्व रेखा को ऊर्ध्वरेख कहते हैं। निम्न रेखा के योग से भूप्रस्तार होता है। हे शिवे! तुम्हारे स्नेहवश यन्त्रराज का स्वरूप मैंने प्रकाशित किया है; हे भद्रे! अपने गुह्य के समान यह गोप्तव्य है।

प्रस्तारत्रयस्य फलानि

अथैतत्प्रस्तारत्रयस्य फलानि प्रस्तारान्तरं च श्रीतन्त्रराजे—

चतुरस्त्रं समारभ्य नवचक्राण्यनुक्रमात्। उन्नतोन्नतमामध्याच्चक्रं स्यान्निधनं धनम्॥१॥
त्रिद्विक्रमादुन्नतं तदप्रजत्वं श्रियं लभेत्। एकद्विषट्क्रमोन्नामं श्रियै कीर्त्यै च कल्पते॥२॥
नवानि समरूपाणि सर्वाभीष्टार्थसिद्धये। इति।

प्रस्तारत्रय के फल—श्रीतन्त्रराज में कहा गया है कि चतुरस्र से प्रारम्भ करके नवचक्रों के अनुक्रम से उन्नतोन्नततम मध्यचक्र से धन का नाश होता है। तीन-दो क्रम से उन्नत चक्र से प्रजा एवं श्री का लाभ होता है। एक-दो-छः क्रम से उन्नत चक्र से श्री और कीर्ति की प्राप्ति होती है। नवों के समरूप होने से सभी अभीष्ट की सिद्धि होती है।

तथा कुलमूलावतारे—

उच्छ्रितं क्रमशो देवि वित्तप्राप्तिस्ततो मृतिः। भूचक्रं षोडशारं चाप्यष्टारं च समं भवेत्॥१॥
शेषमुन्नतमीशानि चार्थाप्त्यप्रजदं भवेत्। चतुरस्त्रं समं देवि षोडशारादिबिन्दुकम्॥२॥
मिथः समुन्नतं देवि श्रियै कीर्त्यै च कल्पते। चतुरस्त्रं समारभ्य बिन्द्वन्तं समरेखकम्॥३॥
तथा श्रीः कीर्तिरारोग्यममृतायोपकल्पते। इति।

कुलमूलावतार में कहा गया है कि क्रमशः उच्छ्रित चक्र से धनप्राप्ति के बाद मृत्यु होती है। भूपुर षोडशार और अष्टार सम हों और शेष उन्नत हों तो धन और प्रजा का लाभ होता है। चतुरस्र सम हो और षोडशार से बिन्दु तक समुन्नत हो तो श्री और कीर्ति मिलती है। चतुरस्र से बिन्दु तक समरेख हो तो श्री, कीर्ति, आरोग्य और अमृत की प्राप्ति होती है।

निषिद्धधातून्यानि निषिद्धाधिकरणानि

सीसकांस्यादिषु पुनः पूर्वोक्तविपरीतकृत्। फलकायां पटे भित्तौ स्थापयेन्न कदाचन॥१॥
स्थापितं यदि मोहेन लोभेनाज्ञानतोऽपि वा। कुलं वित्तमपत्यं च निर्मूलयति सर्वथा॥२॥ इति।

अथ श्रीचक्राधिकरणे निषिद्धधातून्यानि निषिद्धाधिकरणानि चाह तन्त्रराजे—

श्रीचक्र के अधिकरण में निषिद्ध धातु और निषिद्ध अधिकरण—तन्त्रराज के अनुसार सीसा, काँसा आदि से बने चक्र से पूर्वोक्त के विपरीत फल मिलते हैं। फलक, वस्त्र और भीति पर श्रीचक्र स्थापित नहीं करना चाहिये। यदि मोह, लोभ या अज्ञान से कोई इन पर चक्र को स्थापित करता है तो उसके कुल, धन एवं सन्तान का सर्वथा नाश हो जाता है।

पीठप्रमाणम्

अग्निरङ्गुलविस्तारं प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोत्तरम्। पलप्रमाणं कर्तव्यमर्चापीठं मनोहरम्॥१॥
यवार्धोच्चं प्रकुर्वीत चतुरस्त्रं समन्ततः। तस्मिन् पीठे च निर्माणं श्रीचक्रस्य तु कारयेत्॥२॥ इति।

कुलमूलावतार में कहा गया है कि पूर्व-पश्चिम-दक्षिण-उत्तर में तीन अंगुल विस्तार का मनोहर अर्चापीठ एक पल तौल में बनाना चाहिये। आधा यव की ऊँचाई वाले चतुरस्र पर श्रीचक्र अंकित करना चाहिये।

कुलमूलावतारे—

ऋजुरेखा भवेल्लक्ष्मीर्वक्ररेखा दरिद्रता। अग्निरङ्गुलविस्तारो यवार्धेनोच्छ्रितिर्भवेत्॥१॥ इति।

सौत्रामणितन्त्रे—

सौत्रामणि तन्त्र के अनुसार सीधी रेखा से लक्ष्मी प्राप्त होती है एवं टेढ़ी रेखा से दरिद्रता होती है। तीन अंगुल विस्तार और आधा यव उच्च चक्र बनाना चाहिये।

सृष्ट्यादिचक्रे तत्क्रमेण पूजा

लक्षसागरे—'अग्निरङ्गुलिहेमस्य' इत्यादि प्रागुक्तश्रीचक्रनिर्माणप्रस्तावे सृष्ट्यादिप्रपञ्चो न प्रपञ्चितोऽधुना विशेषमाह उत्तरतन्त्रे—

सृष्टिक्रमेण पूजा हि सृष्टिचक्रेऽभिधीयते। स्थितिक्रमेण पूजा स्यात् स्थितिचक्रे महेश्वरि ॥१॥
संहारक्रमयोगेन पूजा संहारचक्रके। इति।

उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि सृष्टिचक्र में सृष्टिक्रम से पूजा करनी चाहिये। स्थितिचक्र में स्थितिक्रम से पूजन करना चाहिये एवं संहारचक्र में संहारक्रम से पूजन करना चाहिये।

चक्रस्य सृष्ट्यादिभेदलक्षणानि

अत्र श्रीचक्रं त्रिविधं सृष्टिस्थितिसंहारभेदात्। तदुक्तं मातृकासर्वस्वे—

श्रीचक्रं त्रिविधं प्रोक्तं सृष्टिस्थितिलयात्मकम्। प्रत्येकं त्रिविधं ज्ञेयं तत्साङ्कर्यात् प्रयत्नतः ॥१॥
मूलभेदा नवैव स्युस्तत्तद्भेदा ह्यनेकधा।

अत्र सृष्टिसृष्ट्यात्मकं स्थितिस्थित्यात्मकं लयलयात्मकं चेति त्रिविधम्। सृष्टिस्थित्यात्मकं स्थितिसृष्ट्यात्मकं सृष्टिलयात्मकं लयसृष्ट्यात्मकं स्थितिलयात्मकं लयस्थित्यात्मकम्, एते नव भेदाः। एवं सर्वे द्वादश भेदाः। अत्र विवेकस्तु तत्रैव—

सृष्टिचक्रं समाख्यातं नवचक्राण्यनुक्रमात्। उन्नतोन्नतमामध्यं विज्ञेयं देशिकोत्तमैः ॥१॥
श्रीचक्रं सृष्टिसृष्ट्याख्यं प्रतिरेखं तथोन्नतम्। समोर्ध्वरेखानवकं समे पीठे च यद्भवेत् ॥२॥
स्थितिचक्रं तदेवोक्तं स्थूलरेखं महेश्वरि। सूक्ष्मरेखं भवेत्तत्र स्थितिस्थित्यात्मकं शिवे ॥३॥
लयात्मकं निम्नरेखं स्थूलं लयलयात्मकम्।

सूक्ष्मं पातालरेखं लयात्मकं, स्थूलं पातालरेखं लयलयात्मकमित्यर्थः। 'सृष्टिस्थित्यात्मकं चे'ति सृष्टिस्थित्यात्मकं त्वित्यर्थः।

अर्धमेर्वात्मकं यन्त्रं द्विधा ख्यातं महेश्वरि। अर्धं क्रमादुन्नतं यच्चतुरस्रादितस्ततः ॥१॥
तदूर्ध्वं समरेखं स्यात्सृष्टिस्थित्यात्मकं शिवे। वैपरीत्येन चैतस्य स्थितिसृष्ट्यात्मता भवेत् ॥२॥
चतुरस्रं समारभ्य चक्रत्रयमपीश्वरि। क्रमोन्नतं तदूर्ध्वं तु समं स्यान्निम्नरेखकम् ॥३॥
सृष्टिसंहाररूपं स्याद्वैपरीत्येन तस्य तु। लयसृष्ट्यात्मकत्वं तु प्रोक्तं ज्ञेयं मनीषिभिः ॥४॥
अर्धं पातालरेखं तु तदूर्ध्वं चोर्ध्वरेखकम्। लयस्थित्यात्मकं प्रोक्तं वैपरीत्येन तस्य तु ॥५॥
स्थितिसंहाररूपं तु विज्ञेयं देशिकोत्तमैः। स्थितिस्थित्यात्मकं चक्रं प्रशस्तं गृहमेधिनाम् ॥६॥
आयुःकीर्तिधनारोग्यपुत्रपौत्रविवर्धनम्। सृष्टिस्थित्यात्मकं चक्रमप्रजत्वं श्रियं लभेत् ॥७॥
पञ्चाशद्वर्षतश्चोर्ध्वं पुत्रपौत्रप्रदं भवेत्। स्थितिसृष्ट्यात्मकं यन्त्रं पुत्रायुर्धनवृद्धिदम् ॥८॥
पञ्चाशद्वर्षतश्चोर्ध्वमपत्यध्वंसकृद्भवेत्। अन्ये प्रोक्तास्तु ये भेदाः श्रीचक्रस्य महेश्वरि ॥९॥
यतिवैखानसानां तु विशेषो वर्णिनामिति।

उत्तरतन्त्रे—

कूर्मपृष्ठे तु यद्यन्त्रं न पूज्यं श्रेय इच्छता। तस्मात् सर्वप्रयत्नेन परीक्ष्यैव समाचरेत् ॥१॥
सृष्टिचक्रे महेशानि पूजा सृष्ट्यन्तता भवेत्। स्थितिचक्रे तु स्थित्यन्ता संहारे तु लयान्तता ॥२॥
गुरुपारम्पर्यतो वा पितृभ्रातृक्रमाच्च वा। प्राप्तं श्रीगुरुणा दत्तं गुरुज्येष्ठकनिष्ठकैः ॥३॥
दत्तं भाग्यवशाद् देवि लभ्यते यदि साधकः। पूजां तत्र प्रकुर्वीत स्थित्यन्तां परमेश्वरि ॥४॥

दुष्टयन्त्रमपि प्रोक्तं फलदं नान्यथा शिवे। इति।

पितृपितामहक्रमतो गुरुपारम्पर्यक्रमतश्च कालवशाद्भाग्यवशाद् दुष्टयन्त्रं प्राप्यते चेत्तस्मिन् यन्त्रे पूजा तु प्रथमतः संहारक्रमेण ततः सृष्टिक्रमेण ततः स्थितिक्रमेण विधेया, शुभफलदं भवतीत्यर्थः।

मातृकासर्वस्व के अनुसार श्रीचक्र सृष्टि-स्थिति-संहारभेद से तीन प्रकार का होता है। उनके साङ्कर्य से प्रत्येक पुनः तीन-तीन प्रकार का होता है। मूल रूप से इसके नव भेद हैं और उनके पुनः अनेक भेद होते हैं। जैसे—सृष्टि-सृष्टि, स्थिति-स्थिति, संहार-संहार—ये तीन प्रकार हैं। सृष्टि-स्थिति, स्थिति-सृष्टि, सृष्टि-संहार, संहार-सृष्टि, स्थिति-संहार, संहार-स्थिति—ये नव भेद हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर बारह भेद होते हैं।

मातृकासर्वस्व में ही नव चक्रों के अनुक्रम से सृष्टिचक्र का कथन किया गया है। उन्नतोन्नत चक्र को देशिकोत्तमों को मध्यम जानना चाहिये। सृष्टि-सृष्टि नामक श्रीचक्र में प्रत्येक रेखा उन्नत होती है। समान नव रेखाओं से समपीठ होता है। स्थूल रेखा के कारण इसे ही स्थितिचक्र कहते हैं। स्थिति-स्थिति चक्र में रेखायें सूक्ष्म होती हैं। लयात्मक निम्न रेखा होती है एवं लयलयात्मक स्थूल रेखा होती है। सूक्ष्म पाताल रेख लयात्मक होता है एवं स्थूल पाताल रेखा लयलयात्मक होती है।

उत्तरतन्त्र के अनुसार अर्धमेरुयन्त्र दो प्रकार का होता है। यह चतुरस्र से चारो ओर अर्धभाग में क्रमशः उन्नत होता है, उसके ऊपर समरेख होता है। इसे सृष्टिस्थित्यात्मक कहते हैं। इसके विपरीत स्थितिसृष्ट्यात्मक होता है। चतुरस्र से लेकर तीन चक्र तक क्रमोन्नत होता है। उसके ऊपर सम निम्नरेख होता है। इसके विपरीत सृष्टिसंहाररूप होता है। मनीषी इसे लयसृष्ट्यात्मक कहते हैं। अर्ध पाताल रेख एवं उसके ऊपर ऊर्ध्व रेख को लयस्थित्यात्मक कहते हैं। स्थितिसंहाररूप इसके विपरीत होता है। गृहस्थों के लिये स्थितिस्थित्यात्मक चक्र प्रशस्त होता है। इससे आयु, कीर्ति, धन, आरोग्य एवं पुत्र-पौत्र की वृद्धि होती है। सृष्टिस्थित्यात्मक चक्र से प्रजारहित श्री का लाभ होता है। पचास वर्षों से अधिक समय तक इसकी पूजा करने से साधकों को पुत्र एवं पौत्रों की प्राप्ति होती है। स्थितिसृष्ट्यात्मक चक्र साधक के पुत्र, आयु एवं धन की वृद्धि करने वाला होता है; लेकिन पचास वर्ष से अधिक समय तक पूजा करने से साधक के सन्तान का नाश होता है। वैखानस और विशेष वर्णों के लिये इनके अतिरिक्त अन्य प्रकार के श्रीचक्र कहे गये हैं।

उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि कूर्मपृष्ठ यन्त्र में श्रेय चाहने वालों को पूजन नहीं करना चाहिये। इसलिये सभी यत्नों से उसकी परीक्षा करनी चाहिये। सृष्टिचक्र में सृष्टि तक पूजा होती है, स्थितिचक्र में स्थिति तक और संहारचक्र में संहार-पर्यन्त पूजन करे। गुरुपरम्परा से या पिता-भ्राता क्रम से या गुरुप्राप्त क्रम से या गुरु के ज्येष्ठ-कनिष्ठ से प्राप्त अथवा यदि भाग्यवश प्राप्त चक्र हो तो उसी में स्थिति तक पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार से प्राप्त दुष्ट यन्त्र से भी पूर्वोक्त फल प्राप्त होते हैं।

पितृ-पितामहादि क्रम से, गुरुपारम्पर्य क्रम से, कालवश या भाग्यवश दुष्ट यन्त्र के प्राप्त होने पर उस यन्त्र में पहले संहार क्रम से तब सृष्टि क्रम से तब स्थिति क्रम से पूजा की जाय तो वह शुभफलद होता है।

मण्डपरचनार्थं प्राचीज्ञानप्रकारः

अथ दीक्षापूर्णाभिषेकाङ्गकुण्डमण्डपविधिः। दीक्षाङ्गभूतमण्डपरचनार्थं प्राचीपरिज्ञानस्यावश्यकत्वात् तत्परिज्ञानप्रकारः प्रदर्श्यते। तत्र दिव्यसारस्वततन्त्रे—

निर्मले दिवसे वृक्षप्रासादादिविवर्जिते। स्थाने समतले श्लक्ष्णं कृत्वा हंसपदं सुधीः ॥१॥
तदवष्टम्भतः कुर्याद्द्वादशाङ्गुलमानतः। वृत्तं तु परितो भ्रान्त्वा तन्मध्ये स्थापयेद्बुधः ॥२॥
सूच्यग्रं सरलं शङ्कुं वर्तुलं द्वादशाङ्गुलम्। षडङ्गुलपरीणाहमूलं शिल्पिवरेण तु ॥३॥
रचितं यत्नतस्तस्मिन् वृत्ते पूर्वापराह्वयोः। शंक्वग्रच्छायासम्पातस्थानयोश्चिह्नयुग्मकम् ॥४॥
कृत्वा चिह्नद्वयप्रापि सूत्रं प्राक्प्रत्यगायतम्। दत्त्वा वृत्तायतार्धेन सूत्रेणेच्छाधिकेन वा ॥५॥
पूर्वपश्चिमयोर्वृत्तद्वयं श्लिष्टं परस्परम्। विधाय च तयोः सन्धिद्वयप्रापि प्रसारयेत् ॥६॥

मध्यचिह्नस्पृष्टमध्यं तत्सूत्रं दक्षिणोत्तरम् । एतस्यार्धांशमानेन कृत्वा कोणेषु लाञ्छनम् ।।७।।
तेषु सूत्राष्टकन्यासाच्चतुरस्रं समं भवेत् । इति।

अथैतद्रचनाप्रकारः—अत्र मेघाद्यनावृतसूर्ये निर्मलनभोमण्डले दिवसे वृक्षप्रासादाद्यनावृते भूप्रदेशे समे स्थाने क्वचिद्बिन्दुं कृत्वा, तदवष्टम्भतः प्रतिदिशं द्वादशाङ्गुलमानेन वृत्तं निष्पाद्य, तत्र षडङ्गुलमानपरिणाहमूलम् उत्तरोत्तरपरिणाहापचयेन सूचीमात्रकृताग्रपरिणाहमृज्वाकृतिं द्वादशाङ्गुलोच्छ्रायोपेतं वृत्ताकारं शिल्पिवरेण निर्मितं शङ्कुं वृत्तमध्यस्थबिन्दुमध्यशङ्कुमूलपरिणाहमध्यं यथा भवति तथा संस्थाप्य तच्छङ्कुच्छायाग्रस्य पूर्वाह्णे तद्वृत्तरेखा-पश्चिमभागे यत्र सम्पातस्तत्र चिह्नं कृत्वा, अपराह्णेऽपि शङ्कुच्छायाग्रस्य तद्वृत्तरेखापूर्वभागे यत्र सम्पातो भवति तत्र च चिह्नं विधाय, तच्चिह्नद्वयप्रापि सूत्रं विधाय पूर्वपश्चिमं परिकल्प्य, तच्चिह्नद्वयावष्टम्भेन तच्चिह्नान्तरालस्थमानस्य स्वेष्टाधिकार्धमानेनान्योन्यं संश्लिष्टं पूर्वापरं वृत्तद्वयं विधाय, वृत्तरेखादक्षिणोत्तरसन्धिद्वयप्रापि प्राक्पश्चिमसूत्रमध्यगत्या तिर्यग्रूपेण यत्सूत्रं तत् दक्षिणोत्तरं परिकल्प्य पूर्वपश्चिमदक्षिणोत्तरसूत्रद्वयाग्रचतुष्कसम्पाताद्वक्ष्यमाणमानेन तुल्य-रूपकल्पितसूत्राग्रैस्तेषां मण्डपकुण्डादीनां प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोत्तरात्मकदिक्चतुष्टयं परिकल्पयेदिति स्थूलदृष्ट्या प्राचीसा-धनविधिः प्रदर्शितः।

पूर्णाभिषेक दीक्षा में कुण्डमण्डप विधि—दीक्षा के लिये मण्डप निर्माण हेतु पूर्व दिशा के ज्ञान का आवश्य-कत्व और उसके ज्ञान के प्रकार का अब यहाँ वर्णन किया जाता है।

पूर्व दिशा साधन—दिव्य सारस्वत तन्त्र में कहा गया है कि बादलरहित स्वच्छ आकाश वाले दिन में वृक्ष-गृह आदि से रहित समतल भूमि में एक बिन्दु चिह्न बनाये। इसे केन्द्र मानकर बारह अंगुल मान से वृत्त बनाये। केन्द्र में बारह अंगुल उच्च शंकु स्थापित करे। शंकु का गोल परिणाह छः अंगुल के मान का हो और वह सूई की नोक के समान ऊपरी भाग तक पतला होता जाय। पूर्वाह्न में शंकु की छाया वृत्त में जहाँ पड़े, वहाँ चिह्न पश्चिम में लगाये। अपराह्न में शंकु की छाया वृत्त रेखा में पूर्व में जहाँ पड़े, वहाँ चिह्न लगाये। उन दोनों बिन्दुओं को सूत्र से मिलाकर पूर्व-पश्चिम निश्चित करे। दोनों चिह्नों को केन्द्र मानकर उनकी दूरी के बराबर दो वृत्त बनाये। दोनों वृत्त उत्तर-दक्षिण में जहाँ एक-दूसरे को काटें, वहाँ चिह्न लगाये। दोनों चिह्नों को सीधी रेखा से मिलाये। तदनन्तर दक्षिण उत्तर दिशा निश्चित करे। पूर्व-पश्चिम, दक्षिण-उत्तर दो सूत्रों के चार अग्रभागों को केन्द्र मानकर सूत्र के अर्द्धभाग से चारो कोनों को चिह्नित करे। चारो कोण मिलाने से सम चतुरस्र बन जाता है। इसे पूर्व दिशा का साधन कहते हैं। यही स्थूल दृष्टि से प्राची साधन होता है।

सूक्ष्मप्रकारस्तु तन्त्रान्तरे—'सुसमे भूतले कृत्वे'त्यारभ्योक्तप्रकारेण पूर्वदिनकृत्यमुक्त्वा,

दिनान्तरेऽपि देवेशि प्राग्वच्चिह्नद्वयं सुधीः । कृत्वा वृत्ते तु यत्र स्याच्छायायाः परमेश्वरि ।।१।।
प्रवेशो निर्गमश्चैव तत्र पूर्वदिने यदा । प्रविष्टनिर्गता च्छाया यदा तन्मध्यनाडिकाः ।।२।।
छायादिना तु विज्ञाय च्छायापगमचिह्नयोः । अन्तरं दिनयोरिष्टैश्चतुराद्यैर्विभागतः ।।३।।
विभज्य तत्र चिह्नानि कृत्वा ताभिः सुरेश्वरि । नाडीभिः कल्पिता भागा गुणनीयाः प्रयत्नतः ।।४।।
षष्ट्या हृतं तु लब्धांशैः पूर्वेद्युर्यत्कृतं भवेत् । प्राचीसूत्रं पूर्वभागे उत्तरे तूत्तरायणे ।।५।।
अयने दक्षिणे चैव दक्षिणस्यां दिशि ध्रुवम् । चाल्यते चेत् स्फुटा सा स्यात्प्राची तु परमेश्वरि ।।६।।

इति प्राचीसाधनं विधाय,

पूर्व दिशा-साधन का सूक्ष्म प्रकार—अन्य तन्त्रों में कहा गया है कि सुन्दर समतल भूमि पर पूर्वोक्त प्रकार से पूर्व दिन कृत्य के बाद दूसरे दिन भी पूर्ववत् दो चिह्न वृत्त में वहाँ लगाये, जहाँ छाया पड़े। पहले दिन के समान छाया के

प्रवेश निर्गम होने पर जहाँ प्रविष्ट निर्गता छाया हो, उसे मध्य नाड़ी मान ले। छायादि को जानकर छायापगम चिह्नों के अन्तर दिन से इष्ट का चार विभाग करे, विभाजन के बाद वहाँ चिह्न लगाये। उस नाड़ी से कल्पित भाग में यत्नपूर्वक गुणा करे। उसमें छः से भाग दे। लब्धांश से पूर्व दिशा निश्चित होती है। प्राची सूत्र पूर्वभाग है, उसके उत्तर उत्तर भाग होता है। उसके दक्षिण दक्षिण दिशा होती है और चालन करने से पूर्व दिशा होती है।

मण्डपरचना

व्यासद्विगुणरज्ज्वान्तौ पाशौ कृत्वाङ्कयेदिमाम्। व्यासार्धमाने शंक्वर्धं सार्धेऽस्मिन्कर्षणाय च ॥१॥
प्राच्यन्तशङ्कोस्तत्पाशौ कृत्वा चाकर्षकर्षणे। शंक्वङ्केऽर्वाक्श्रोणिरेवमुदग्व्यत्यस्य चांसकौ ॥२॥

इति शिल्पिशास्त्रोक्तरीत्या मण्डपक्षेत्रमुद्दिष्टमानादधिकविस्तारायामसमचतुरस्रं कल्पयेत्। अस्यार्थः—कुण्डमण्डपादेर्व्यासो यावानिष्टस्तावद्द्विगुणरज्जुमुभयतः पाशं कृत्वा, तामेकतः पाशाद् व्यासार्धमात्रे शंक्वर्धं चिह्नयेत्। ततः शंक्वङ्कादग्रतो व्यासार्धमानेन चिह्नापकर्षणतः कुण्डमण्डपादौ प्राचीसूत्रं प्रमाणेन दत्वा, तदन्तयोः शङ्कुं निखन्य, तयोस्तद्रज्जुपाशौ तथा कुर्याद्यथा व्यासार्धादङ्को यतः कृतः स पाशः प्रतीच्यां स्यात् कर्षचिह्नदक्षिणत आकृष्य व्यासार्धचिह्ने दक्षिणश्रोणिशङ्कुं दत्वा तस्यैवोत्तरदिक्श्रोण्यां च शङ्कुं दद्यात्। ततः पाशौ व्यत्यस्यैवमंसौ साध्याविति। एवं समचतुरस्रं क्षेत्रं कृत्वा बाहुमात्रोद्दिष्टमानाभ्यधिकां चतुरस्रां भुवं बाहुमात्रखननादिभिस्तुषाङ्गारादि-लोष्टादिकं निरस्य शुद्धमृद्भिरापूर्य दृढीकृत्य,

कीलेनैकीकृते मूले पृथक्सूक्ष्मसमाग्रयोः। दण्डयोरग्रनैकट्येऽन्यस्तिर्यङ्मध्यचिह्नतः ॥१॥
कीलादिना योजनीये दण्डः समतया द्वयोः। मूलदेशे लम्बसूत्रमस्पृशद्भारवद्ध्रुवम् ॥२॥
भूस्थेऽग्रयुग्मे मध्याङ्कात् तिर्यग्दण्डगताद्यतः। स्खलेत्तत्पूरयेदन्यन्निम्नयेद्वापि युक्तितः ॥३॥
अङ्के यावत् सूत्रमेति भूरेवं समतां व्रजेत्। इति।

अयमर्थः—समस्थौल्यदीर्घरज्ज्वोः कीलेन प्रोतमूलयोर्दण्डयोरग्रनिकटे तादृशं तिर्यग्दण्डं तदर्धदीर्घं कीलेन योजयित्वा तन्मध्ये चिह्नं कृत्वा दण्डत्रयेण दीर्घत्रिकोणाकारं विधाय, दीर्घदण्डयोर्मूलाल्लम्बमानं सूत्रमग्रे लघुपाषाणादिबद्धं तिर्यग्दण्डस्य मध्यचिह्नोपरि भूमिं यथा न स्पृशति तथा विधाय भूमिं स्पृष्ट्वाग्रयोस्तयोर्मूलं धृत्वा शनैराकृष्टे तिर्य-ग्दण्डमध्याङ्काद्यत्र सूत्रं चलति तत्र निम्ना भूस्तां पूरयेत्। अन्यत्र खनित्वा वा यथा मध्यचिह्ने सूत्रमेति तथा सर्वत्र कुर्यादिति शिल्पिशास्त्रोक्तप्रकारेण भूमिं समीकृत्य तत्रोत्तममध्यमकनिष्ठाद्यन्यतमं मण्डपं कुर्यात्।

प्राची साधन के बाद कुण्डमण्डप-साधन—शिल्पि शास्त्रोक्त मण्डप क्षेत्र के मान से अधिक विस्तृत चतुरस्र भूमि निश्चित करे। कुण्डमण्डप का व्यास जहाँ तक इष्ट हो, वहाँ तक व्यास के दुगुना रस्सी ताने। उसमें एक पाश से व्यासार्ध से शंकु से आधा चिह्नित करे। शंकु अंक के आगे से व्यासार्ध मान से चिह्न कुण्डमण्डप के प्राची सूत्र प्रमाण से लगाये। उसमें काँटी गाड़े। पहले के समान ही व्यासार्ध से पश्चिम दिशा निश्चित करे। कर्ष चिह्न के दक्षिण से व्यासार्ध से चिह्न अङ्कित करे। दक्षिण श्रेणी शंकु देकर उसके उत्तर दिशा में काँटी गाड़े। तब पाश को व्यत्यय अंस साधित करे। इस प्रकार समचतुरस्र क्षेत्र बनाकर बाहुमात्र उद्दिष्ट मान से अधिक चतुरस्र भूमि को बाहुमात्र खोदने से भूसा, अंगार, पत्थर आदि को निकालकर शुद्ध मिट्टी से बराबर करने के पश्चात् उसे सुदृढ़ बनाकर सम स्थूल दीर्घ रस्सी को कील को बाँधे। उसमें चिह्न बनाकर तीन दण्ड से दीर्घ त्रिकोणाकार बनावे। दीर्घ दण्ड के मूल के आलम्बन से धागे में लघु पाषाणादि बाँधे। तिर्यक् दण्ड के मध्य चिह्न पर भूमि स्पर्श न करते हुए, भूमि छूते हुए उसके अग्र भाग को मूल से धीरे-धीरे खींचे। तिर्यक् दण्ड मध्याङ्क जहाँ सूत्र न चले, उस नीची भूमि को भर दे। सभी जगह पूर्ण समतल कर मध्य चिह्न में सूत्र को सर्वत्र घुमाये। इस प्रकार शिल्पि शास्त्रोक्त प्रकार से भूमि को समतल करके उसपर उत्तम मध्यम कनिष्ठ आदि मण्डप बनाये।

मण्डपलक्षणम्

मण्डपलक्षणं तु तन्त्रान्तरे—

राज्ञां होमाभिषेकेषु दीक्षादानव्रतादिषु। भानोर्गत्या दिशो ज्ञात्वा पुण्याहं वाचयेत्सुधीः ॥१॥
ततः पञ्चनिनादेन मण्डपं रचयेच्छुभम्। ज्येष्ठमध्याधमत्वेन तन्मानं त्रिविधं मतम् ॥२॥
षोडशाष्टादशमितैर्हस्तैर्मानमिहोत्तमम् । हस्तैर्विंशतिभिः केचिन्मानमुत्तममूचिरे ॥३॥
मध्यमं द्वादशकरैश्चतुर्दशकरैर्मितम्। अधमं दशभिर्हस्तैर्मितमाहुर्मनीषिणः ॥४॥
केचित्तु नवभिस्तद्वत्सप्तभिर्वाथ पञ्चभिः। हस्तैर्मितं वदन्त्येव विस्तारायामसंयुतम् ॥५॥
स्तम्भैः षोडशभिर्युक्तं चतुर्द्वारं सुशोभनम्। दिक्षु द्वाराणि चत्वारि साष्टाङ्गुलकरद्वयात् ॥६॥
साध्याङ्गुलकरद्वन्द्वाद्विदधीत करद्वयात्। ततो मण्डपसूत्रं तु त्रिगुणं परिकल्पयेत् ॥७॥
पूर्वादिषु क्रमात्तस्य मध्यभागस्तु वेदिका। इष्टकाभिर्मृदा वा सा कार्या दर्पणसन्निभा ॥८॥
वेदीकोणेषु विन्यस्याः स्तम्भा वेदस्वरूपकाः। ते चोत्तमे तदर्धोच्चा मध्यमाधमयोः पुनः ॥९॥
अष्टहस्तोन्नतिभृतस्ततो द्वादश शोभनाः। ऋजवः पञ्चहस्तास्ते सशिखास्तु समन्ततः ॥१०॥
चतुष्कोणेषु चत्वारश्चाष्टौ ते सूत्रकोटिषु। समान्तरालाः सर्वे ते स्थाप्याः षोडश देशिकैः ॥११॥
पञ्चमांशोन्मितांस्तांश्च निखनेद्भुवि देशिकः। मध्यस्तम्भचतुष्काग्रादेकीभूताग्रकं पुनः ॥१२॥
कृत्वा काष्ठचतुष्कं तु तदग्रे कलशं शुभम्। शोभितं कलशेनाथ मुखस्थेन सुदारुजम् ॥१३॥
निर्मितं शिल्पिभिः सम्यक्स्थापयेद्देशिकोत्तमः। आच्छादयेत्ततो वंशैः कटैः करदलैश्च तम् ॥१४॥

मण्डप-लक्षण—तन्त्रान्तर में कहा गया है कि राज्याभिषेक में एवं दीक्षादान-व्रतादि में सूर्य की दिशा जानकर विद्वान् पुरुष पुण्याहवाचन करे। तब पाँच निनाद से शुभ मण्डप की रचना करे। ज्येष्ठ मध्यम अधम के अनुसार उसका मान तीन प्रकार का कहा गया है। सोलह अट्ठारह हाथ के मान को उत्तर कहते हैं। कुछ लोग बीस हाथ के मान को उत्तम कहते हैं। बारह-चौदह हाथ के मान को मध्यम कहते हैं। दश हाथ के मान को मनीषीजन अधम कहते हैं। कुछ लोग नव, सात, पाँच हाथ के मान विस्तार का आयाम मानते हैं। सोलह खम्भों से युक्त मण्डप में चार द्वार चारो दिशाओं में दो हाथ आठ अंगुल का बनाये। दोनों हाथों की लम्बाई से तिगुना मण्डपसूत्र निश्चित करे। पूर्वादि क्रम से और मध्य भाग से ईंट या मिट्टी से सुन्दर वेदी बनाये। वेदी के कोणों में स्तम्भ वेदस्वरूप होता है। मण्डप की लम्बाई की आधी ऊँचाई वाले खम्भे उत्तम होते हैं। फिर क्रमशः मध्यम-अधम होते हैं। आठ हाथ और बारह हाथ लम्बे खम्भे सुन्दर सीधा ग्रहण करे। पाँच हाथ लम्बे खम्भों के चारो कोनों में चार और आठ सूत्र गाड़े। सोलह खम्भों को बराबर-बराबर दूरी पर गाड़े। खम्भों के पाँचवें भाग को जमीन के अन्दर रखे। मध्य में चार खम्भों को गाड़े। चारो खम्भों के ऊपर शिल्पी से चार काष्ठकुम्भ निर्मित करावे और उसे स्थापित करावे। मण्डप को बाँस और खर-पतवार से आच्छादित करे।

मण्डपद्वारबाह्ये च युग्मं युग्मं दिशां क्रमात्। अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षवटोत्थं तोरणं न्यसेत् ॥१५॥
सप्तषट्पञ्चककरं निखनेद्भुवि पूर्ववत्। विशालता च तस्याथ दशभिस्त्वङ्गुलैर्मता ॥१६॥
पञ्चाङ्गुलमितस्थौल्यं विषमं चतुरस्रकम्। मध्यभागे तोरणयोस्तिर्यक् काष्ठं प्रविन्यसेत् ॥१७॥
सार्धहस्तद्वयात् (पाद)हस्तयुग्घस्तयुग्मतः। अग्निमीळीतिमन्त्रेण विन्यसेत्पूर्वतोरणम् ॥१८॥
इषे त्वेत्यादिमन्त्रेण दक्षिणं तोरणं न्यसेत्। अग्न आयेति मन्त्रेण पश्चिमस्य निवेशनम् ॥१९॥
शन्नो देवीतिमन्त्रेण दद्यादुत्तरतोरणम्। ऊर्ध्वे ध्वजं च बध्नीयात् घण्टाचामरभूषितम् ॥२०॥
पञ्चहस्तो ध्वजः प्रोक्तो दण्डस्तु दशहस्तकः। ततस्तु लोकपालानां पताका बाहुसम्मिताः ॥२१॥
द्वादशाङ्गुलविस्तारास्तत्तन्मूर्त्या च लांछिताः। पीतारक्तश्यामधूम्राश्वेतधूम्रासितार्जुनाः ॥२२॥

आयुधाङ्का पताकाः स्युः पुष्पगन्धसमन्विताः । यथायोग्यं दण्डयुतास्तत्तन्मन्त्रेण तान्यसेत् ॥२३॥
चन्द्रमण्डलगौरेण वितानेन विभूषितम् । दुकूलवेष्टितस्तम्भं नानादीपाद्यलंकृतम् ॥२४॥
आम्रपल्लवमालाभिः शोभितं द्वारमुत्तमम् । वेष्टितं दर्भरज्ज्वा च विदध्यान्मण्डपं शुभम् ॥२५॥ इति।

मण्डप-द्वार के बारह चारो दिशाओं में दो-दो तोरणद्वार पीपल, गूलर, पाँकड़ और वटवृक्ष की लकड़ी से बनाये। सात, छः, पाँच हाथ ऊपर रखकर भूमि में इन्हें गाड़े। खम्भों की गोलाई दश अंगुल होनी चाहिये। पाँच अंगुल मोटाई विषम चतुरस्र होना चाहिये। तोरण के मध्य भाग पर तिर्यक् काष्ठ रखे। उसकी लम्बाई ढाई हाथ होनी चाहिये। 'अग्निमीळे' मन्त्र से पूर्व तोरण स्थापित करे। 'इषे त्वे' मन्त्र से दक्षिण तोरण बनाये। 'अग्न आयाहि' मन्त्र से पश्चिम तोरण निवेशित करे। 'शन्नो देवी' मन्त्र से उत्तर तोरण बनाये। ध्वज के ऊपर घण्टा-चामर बाँधे। सभी पर पाँच हाथ का झण्डा और दश हाथ का दण्ड होता है। लोकपालों का पताका हाथ भर का बनावे। पताका में बारह अंगुल विस्तृत लोकपालों की प्रतिमा अङ्कित कराये। पताकाओं का रंग पीला, लाल, काला, धूम्र, श्वेत, असित होता है। पताका में लोकपालों के आयुधों का अंकन होता है। लोक-पालों के मन्त्रों से गन्ध-पुष्प से समन्वित दण्डों को गाड़े। मण्डप में चन्द्रमण्डल गौर वितान ताने। खम्भों को अनेक दीपादि से अलंकृत एवं वस्त्रों से वेष्टित करे। द्वारों को आम्रपल्लव को माला से शोभित करे एवं दर्भरज्जु से मण्डप को वेष्टित करे।

मण्डपनिर्माणविधिः

उत्तरतन्त्रे—
विंशत्यूर्ध्वशतैर्हस्तैर्मण्डपश्चोत्तमो मतः । अष्टोत्तरशतैर्हस्तैः शतहस्तैरथापि वा ॥१॥
एकाशीतिमितैर्हस्तैर्द्वासप्ततिकरैरपि । षष्टिहस्तैरष्टचत्वारिंशद्भिर्हस्तकैः क्रमात् ॥२॥
षट्त्रिंशद्भिश्च त्रिंशद्भिः सप्तविंशतिहस्तकैः । चतुर्विंशतिहस्तैर्वा मण्डपं कारयेद्बुधः ॥३॥
चतुरस्रं तथा वृतं षट्कोणं चाष्टकोणकम् । त्रिकोणमष्टपत्राभं नवकोणं द्विकोणकम् ॥४॥
पञ्चकोणं सप्तकोणं रुद्रकोणं तथैव च । द्वादशं षोडशं चाष्टादशविंशतिकोणकम् ॥५॥
चतुर्विंशतिकोणं च सप्तविंशतिकोणकम् । द्वात्रिंशत्कोणकं चैव षट्त्रिंशत्कोणकं तथा ॥६॥
अष्टचत्वारिंशदस्रं मत्स्याकारो ध्वजाकृतिः । शूर्पकुन्तासिशृङ्गाटधनुर्मुद्गरकाकृतिः ॥७॥
मण्डपास्तत्र कर्तव्याः कुण्डान्यपि विशेषतः । पूर्णाभिषेके दीक्षायामभिषेकादिशान्तिषु ॥८॥
तत्तत्काम्यप्रयोगेषु तत्तत्कुण्डानि देशिकैः । कर्तव्यानि विशेषेण तत्तत्कर्मण्यतन्द्रितैः ॥९॥ इति।

अत्र यावन्तो मण्डपभेदा उक्तास्तावन्तः कुण्डभेदा अपि ज्ञेयाः। अथैतन्मण्डपरचनाप्रकारः—अत्र पूर्णाभिषेकादिषु चतुर्विंशतिहस्तपरिमिताः कुण्डमण्डपा ये उक्तास्ते कर्तव्याः। चतुर्विंशतिविंशति अष्टादशषोडशहस्तैर्वोत्तमो मण्डपः चतुर्धा। चतुर्दशहस्तैर्द्वादशहस्तैर्वा मध्यमो द्विविधः। दशहस्तैर्नवहस्तैः सप्तहस्तैः पञ्चहस्तैश्च समायामविस्तारैश्च कनिष्ठश्चतुर्विधः। अत्र पक्षे त्रिविधे यथावकाशं ऋत्विक्सदस्यसामाजिकाद्युपवेशादेः सौकर्ययुक्तं मण्डपं कुर्यात्। हस्तस्तु चतुर्विंशाङ्गुलदैर्घ्यः।

उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि एक सौ बीस हाथ विस्तृत मण्डप उत्तम होता है। एक सौ आठ हाथ, एक सौ हाथ, इक्यासी हाथ, बहत्तर हाथ, साठ हाथ, अड़तालीस हाथ, छत्तीस हाथ, बत्तीस हाथ, सत्ताईस हाथ, चौबीस हाथ विस्तृत मण्डप बनाना चाहिये। मण्डप का आकार चतुरस्र, गोलाकार, षट्कोणाकार, अष्टकोण, त्रिकोण, अष्टपत्राकार, नवकोण, दो कोण, पञ्चकोण, सप्तकोण, एकादश कोण, द्वादश कोण, षोडश कोण, अष्टादश कोण, विंश कोण, चौबीस कोण, सत्ताईस कोण, बत्तीस कोण, छत्तीस कोण, अड़तालीस कोण एवं मत्स्याकार, ध्वजाकार, सूप, कुन्त, तलवार, शृंगार, धनुष, मुद्गर के आकार का मण्डप बनावे। इस आकार के मण्डप में कुण्ड को अवश्य बनाना चाहिये। पूर्णाभिषेक, दीक्षा अभिषेक, शान्ति, काम्य प्रयोगों में इस प्रकार के कुण्डों को बनाना चाहिये। कर्म के अनुसार कुण्ड बनाना चाहिये।

इसमें जितने मण्डपभेद होते हैं, उतने कुण्डभेद जाना जाता है। इसमें मण्डप की रचना इस प्रकार होती है— पूर्णाभिषेकादि में चौबीस हाथ के कुण्डमण्डप बनते हैं। चौबीस, बीस, अट्ठारह, सोलह हाथ के चार मण्डपों को उत्तम कहते हैं। चौदह, बारह हाथ के दो मण्डप मध्यम होते हैं। दश हाथ, नव हाथ, सात हाथ, पाँच हाथ विस्तृत चार मण्डप को कनिष्ठ कहते हैं। इस पक्ष में यथावकाश ऋत्विक् सदस्य सामाजिक आदि के बैठने लायक सौकर्ययुक्त मण्डप बनावे। एक हाथ की लम्बाई चौबीस अंगुल होती है।

अंगुलमानं तु महाकपिलपञ्चरात्रे—

वातायनपथं प्राप्य ये भान्ति रविरश्मयः। तेषु सूक्ष्मा विसर्पन्ते रेणुकास्त्रसरेणवः ॥१॥
परमाणोरष्टगुणस्त्रसरेणुरुदाहृतः। तेऽष्टौ केशाह्वयास्तेऽष्टौ लिक्षा यूकास्तदष्टकम् ॥२॥
तदष्टकं यवस्तेऽष्टावङ्गुलिः समुदाहृता। सा तूत्तमाङ्गुलिः सप्तयवा सैव तु मध्यमा ॥३॥
षट्यवा साधमा प्रोक्ता मानाङ्गुलमितीरितम्। विन्यस्तैस्तिर्यगष्टाभिर्यवैर्मानान्तराङ्गुलम् ॥४॥
शालिभिर्वा ऋजुन्यस्तैस्त्रिभिर्मानान्तरं भवेत्। आचार्यदक्षिणकरे मध्यमाङ्गुलिमध्यगम् ॥५॥
पर्वणोरन्तरं दीर्घं मानाङ्गुलमुदाहृतम्। विनाङ्गुष्ठेन शेषाभिर्मुष्टिमङ्गुलिभिः कृतम् ॥६॥
चतुर्धा विभजेदेको भागो मुष्ट्यङ्गुलः स्मृतः। यं कञ्चित्पौरुषायामं विभज्य दशधा पुनः ॥७॥
एकं द्वादशधा भागं कृत्वा तेष्वेकमङ्गुलम्। देहलब्धाङ्गुलं नाम जानीयात्तस्य तत्पुनः ॥८॥
उच्छ्रायः प्रतिमायाः स्यान्महामानाङ्गुलाश्रयः। महामानाङ्गुलिरिति मात्राङ्गुलिरिहोच्यते ॥९॥
प्रासादादींश्च तेनैव कुर्यान्मानान्तरेण वै। वेदिकापीठशिविकारथादीनां विधिः पुनः ॥१०॥
मानान्तराङ्गुलेनैव भवेन्नान्येन केनचित्। यागोपकरणानां च कुर्यान्मानाङ्गुलेन वै ॥११॥
होमाङ्गादिस्रुवादीनि कुण्डं मुष्ट्यंगुलाश्रयम्। देहलब्धाङ्गुलेनैव प्रतिमाङ्गानि कल्पयेत् ॥१२॥
चतुर्विंशतिसंख्याभिर्हस्तस्त्वङ्गुलिभिर्भवेत्। इति।

अत्राचार्यो यजमानः। 'एतावदुक्तं यन्मानं यजमानस्य तद्भवे'दिति तन्त्रान्तरे, 'कर्तुर्दक्षिणहस्तस्ये'ति शारदावचनात्।

उत्तरतन्त्रे विशेषः—

नवैकादश कुण्डानि कुर्यादुत्तममण्डपे। चतुष्कुण्डी मध्यमे स्यात्कनिष्ठेऽप्येककुण्डकम् ॥१॥

इत्येवमुक्तप्रकारमात्राङ्गुलात्मकाङ्गुलादिभिर्हस्तादि परिकल्प्य प्रोक्तं मण्डपं कुर्यात्। तत्र प्रोक्तविधिना समीकृते भूतले पञ्चवाद्यघोषपुरःसरं ब्राह्मणैः स्वस्ति वाचयित्वा यथोद्दिष्टमानहस्तविस्तारं समचतुरस्रं कोणचतुष्टयनिखात-शङ्कुचतुष्टयं विधाय पूर्वापरायतं दक्षिणोत्तरायतं च मध्यसूत्रं दूरीकृत्य, तच्चतुरस्रक्षेत्रं पुनर्नवधा विभज्य परितः कोणचतुष्टये स्तम्भचतुष्टयं दिक्चतुष्टयगतपूर्वापरायतदक्षिणोत्तरायतचतुष्ककोट्यष्टकगतस्तम्भाष्टकमिति सम्भूय द्वादश स्तम्भानतिस्थूलान्नातिकृशानवक्रानव्रणानेकजातीयान् सुवृत्तान् पञ्चहस्तसमुच्छ्रायान् खातप्रविष्टस्वस्वपञ्चमांशान् प्रमाणाद्बहिर्हस्तस्थौल्यतृतीयांशान् स्थूलवितस्त्युन्नतिशिखायुक्तान् मध्यविभक्ते कोणचतुष्टये स्तम्भचतुष्टयं पूर्वस्तम्भसजातीयं पूर्वतः किञ्चित्स्थूलमुत्तममण्डपे तन्मानस्यार्धमानोच्चमन्यमण्डपेऽष्टहस्तोच्चं पूर्ववत् सशिखं पञ्चमांशेन प्रविष्टभूतलमिति सम्भूय षोडश स्तम्भान्निखाय, तेषामुपरि सजातीयानि ऋजून्यव्रणानि शिखाप्रवेशयोग्यवेधयुक्तकोटिद्वयवत् तिर्यक्काष्ठानि शिल्पिभिः परिकल्पितानि द्वादशस्तम्भाग्रेषु मध्यस्तम्भचतुष्टयाग्रेषु च चतुरस्राकारेण समारोप्य, मध्यस्तम्भचतुष्टयशिखा-ग्रप्रविष्टमूलवेधयुक्तमेकीकृताग्रकाष्ठचतुष्टयनिविष्टसजातीयकाष्ठकलशं कमलाकृतिशोभिताग्रं दिग्विदिक्स्थद्वादशस्त-म्भशिखाग्रप्रोतमूलमध्यस्तम्भचतुष्टयाग्रस्पृष्टाग्रमध्यतिर्यक्काष्ठचतुष्टयमध्यगताग्रम् ऋज्वाकृति यथायोग्यदीर्घस्थौल्ययुत-प्रसारितद्वादशकाष्ठयुतमन्यैरपि काष्ठैर्यथायोग्यं दृढीकृतं नारिकेलदलैर्वंशकटैर्वा सम्यगाच्छादितं तैरेव निःशेषपिहि-तकोणचतुष्टयं चतुर्दिक्षूत्तममध्यमकनिष्ठेषु साष्टाङ्गुलहस्तद्वयसचतुरङ्गुलहस्तद्वयद्विहस्तविस्तारयुतसशाखद्वारचतुष्टयोपेतं

मण्डपं विरच्य, मण्डपस्य पूर्वद्वाराद्बहिर्हस्तमात्रं परित्यज्याश्वत्थवृक्षस्योत्तममध्यमकनिष्ठेषु सप्तषट्पञ्चहस्तोच्छ्रितं दशाङ्गुलविस्तृतं पञ्चाङ्गुलस्थूलविस्तारस्य दशाङ्गुलत्वात् स्थौल्यस्य पञ्चाङ्गुलत्वाद्वैषम्यं बोद्धव्यम्। विषमचतुरस्त्रं प्रमाणातिरिक्तवितस्त्युन्नतशिखं द्वारस्योभयपार्श्वयोरुत्तममध्यमकनिष्ठेषु सार्धहस्तद्वयसपादहस्तद्वयहस्तद्वयान्तरालं यथापूर्वं पञ्चमांशेन प्रविष्टभूतलफलकद्वयं 'अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्' इति मन्त्रेण निखाय, तत्सजातीयकाष्ठेन समानविस्तारस्थौल्यं विषमचतुरस्त्रं कोटिद्वयेऽपि शिखाप्रवेशयोग्यवेधयुतं तिर्यक्तिर्यक्फलं समारोप्य, दर्भमालां च बध्नीयात्। एवं दक्षिणद्वारे उदुम्बरतरुमयं तोरणं 'इषे त्वोर्जे त्वा वायवः स्थोपायवः स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे' इति मन्त्रेण न्यसेत्। ततः पश्चिमद्वारे प्लक्षमयं तोरणं प्राग्वन्निर्मितं 'अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये। नि होता सत्सि बर्हिषि' इति मन्त्रेण न्यसेत्। ततः उत्तरद्वारे वटवृक्षमयं तोरणं प्राग्वन्निर्मितं 'शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभिस्रवन्तु नः' इति न्यसेत्। ततस्तेषामुपरिगततिर्यक्फलकेषु मध्यतः सुषिरं विधाय, तेषु तोरणसजातीयकाष्ठेन निर्मितमुत्तममध्यमकनिष्ठेषु त्रयोदशैकादशनवाङ्गुलमात्रदैर्घ्यं तच्चतुर्थांशविस्तारं, शैवे त्रिशूलाकारं, वैष्णवे चक्राकारं, तोरणोपरिगततिर्यक्फलकस्य द्वादशांशमात्रदीर्घं प्रागादिक्रमेण शङ्खचक्रगदापद्मलाञ्छितं प्रतितोरणमेकैकं कीलमारोपयेत्।

महाकपिलपञ्चरात्र के अनुसार अंगुलमान इस प्रकार होता है—खिड़की से आने वाली सूर्य की किरणों में जो सूक्ष्म कण दिखलाई पड़ते हैं, उन्हें त्रसरेणु कहते हैं। आठ त्रसरेणु का एक परमाणु होता है और आठ परमाणुओं से एक लिक्षा बनती है। आठ लिक्षा से एक यूका होता है और आठ यूका से एक यव बनता है। आठ यव एक अंगुल का मान होता है। सात यव का अंगुलमान मध्यम और छः यव का अंगुलमान अधम होता है। आठ यवों को सीधा मिलाने से एक अंगुल होता है। चावल को सीधा रखने से तीन मानान्तर होता है। आचार्य के दाहिने हाथ की मध्यमा अंगुलि के मध्य पर्व के बराबर एक अंगुल का मान होता है। अंगूठे को छोड़कर शेष अंगुलियों से मुट्ठी बाँध कर जो मान आये, उसे चार भाग में बाँटने से एक अंगुल का मान होता है। किसी पुरुष की लम्बाई के दशवें भाग को बारह भाग में बाँटने पर एक भाग का अंगुलमान होता है। इसे देहलब्ध अंगुलमान कहते हैं। प्रतिमा की ऊँचाई महामानांगुलि के आश्रित होती है। महामहानांगुलि अंगुलिमान को कहते हैं। इसी प्रकार मानान्तर से प्रासाद, महल आदि बनाना चाहिये। वेदी, पीठ, शिविका, रथ आदि का निर्माण भी मानान्तरांगुल से ही होता है; दूसरे प्रकार से नहीं होता। याग के उपकरणों को भी अंगुलमान से ही ग्रहण करना चाहिये। होमांग उपकरण, स्रुवा आदि एवं कुण्ड-निर्माण में मुष्टि अंगुल का आश्रय लेना चाहिये। देवलब्ध अंगुल मान से प्रतिमा के अंगों को बनावे। चौबीस अंगुल एक हाथ का मान होता है। यह आचार्य और यजमान के हाथ से होता है। यजमान के हाथ का मान ही ग्राह्य है। यजमान के दाहिने हाथ का मान ग्राह्य है। यह शारदातिलक की उक्ति हैं।

उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि उत्तम मण्डप में नौ या ग्यारह कुण्ड बनावे। मध्यम मण्डप में चार कुण्ड बनावे एवं निकृष्ट मण्डप में एक कुण्ड बनावे। इस प्रकार की उक्ति के अनुसार अंगुलात्मक हाथमान से उपर्युक्त मण्डपों का निर्माण करे।

त्रिशूलनिर्माणप्रकारः

तत्र त्रिशूलनिर्माणप्रकारस्तु पिङ्गलामते—

नवाङ्गुलं दैर्घ्यं तुरीयांशेन विस्तृतिः ॥१॥
शूलेन निर्मिताः कुर्याद् द्वारशाखास्तु मस्तके। शूले
ऋजुर्वै मध्यशृङ्गः स्यात्किञ्चिद्वक्रं च पार्श्वयोः। हीने चैवं समाख्यातं द्व्यंगुलं रोपयेत्तथा ॥२॥
शेषाणां द्व्यंगुला वृद्धिर्विंशश्चाङ्गुलवृद्धितः। इति।

हीने कनिष्ठमण्डपे। शेषाणां मध्यमोत्तमानाम्। विशः प्रवेशः। वास्तुशास्त्रे—

न्यसेत्तेषां स्वदारुजम् ॥१॥ इति।
मस्तके द्वादशांशेन शङ्खचक्रगदाम्बुजम्। प्रागादिक्रमयोगेन

तेन कनिष्ठमण्डपे चतुरङ्गुलोच्चं, द्वादशांशं तिर्यक्फलकस्य स्वदारुजं तत्तत्तोरणसजातीयकाष्ठसम्भवं,

मध्यमे सार्धचतुरङ्गुलमुत्तमे पञ्चाङ्गुलमिति। केचित्तु—'तत्र हस्तोन्मिताः कीलाः संस्थाप्या वैष्णवे तथा। शङ्खचक्र-गदापद्मलाञ्छिताः शूलसन्निभाः। शैवे' इति तन्त्रान्तरवचनाद्धस्तमात्रं कीलं वदन्ति। तत्र तिर्यक्फलकेषु तदा तु हस्तमात्रेषु कीलेषूक्तमानेनैवाग्रदेशेषु शङ्खचक्राकारं वा त्रिशूलाकारं वा कार्यं बिलप्रवेशश्च तथैव कार्यः, उर्वरितं तु तेषां दण्डवद्दृश्यते इति। ततो मण्डपाग्रे दशहस्तदैर्घ्यवंशदण्डावलम्बितं हस्तमात्रविस्तृतं पञ्चहस्तदैर्घ्यं दातव्यम्। मन्त्रदेवतावाहनमूर्त्यङ्कितघण्टादिभूषिताग्रं सुश्वेतं च तथैव तत्तद्दैवतवर्णानुरूपवर्णं वा ध्वजमारोप्य दशदिक्षु बाहुमात्रदीर्घा यथायोग्यमानदण्डावलम्बितास्तत्तल्लोकपालवर्णानुरूपवर्णास्तत्तल्लोकपालवाहनमूर्त्यङ्किता द्वादशाङ्गुलविस्तृता लोकपालानां वेदोक्ततत्तन्मन्त्रेण पताकाश्च बध्नीयात्। तत्रेन्द्रस्य पीतवर्णा, वह्नेः पिङ्गलवर्णा, यमस्य कृष्णवर्णा, निर्ऋतेः श्यामवर्णा, वरुणस्य श्वेतवर्णा, वायोर्धूम्रवर्णाः, सोमस्यामलवर्णा, ईशानस्य श्वेतवर्णा, ब्रह्मणो रक्तवर्णा, अनन्तस्य श्वेतवर्णाः, इति पताकाभिरलंकृत्य मण्डपाभ्यन्तरं सुश्वेतवितानपुष्पमालाभिरलंकृत्याम्राश्वत्थदलग्रथितदर्भ-रज्जुरूपवन्दनमालया मण्डपमन्तर्बहिश्च परिवेष्ट्य, स्तम्भान् दुकूलेन संवेष्ट्य, तन्मध्यस्तम्भचतुष्टयमध्यगते चतुरस्ररूपे मध्यखण्डेऽपक्वेष्टकादिभिः स्निग्धमृद्भिर्वा चतुरस्रां दर्पणोदरनिभपार्श्वचतुष्टयमध्यप्रदेशां समतलां वेद्यायामस्यैकादशांशेन नवमांशेन सप्तमांशेन पञ्चमांशेन चतुर्थांशेन तृतीयांशेन वा समुन्नतां हस्तमात्रोन्नतां वा वेदीं विदध्यात्। तदुक्तं तन्त्रान्तरे—'उच्छ्रायोऽस्या ईशनवसप्तेष्वब्धित्रिभागकै'रिति। कपिलपञ्चरात्रे—

चतुर्थांशोच्छ्रितस्तस्यास्त्रिपञ्चसप्तमोऽपि वा। नवैकादशभागैस्तामिष्टकाभिः प्रकल्पयेत् ॥१॥ इति।

तन्त्रराजे—'विदध्यान्मध्यतो वेदीं करमात्रसमुन्नताम्' इति। शारदायाम्—

नक्षत्रग्रहवाराणामनुकूले शुभेऽहनि। ततो भूमितले शुद्धे तुषाङ्गारविवर्जिते ॥१॥
पुण्याहं वाचयित्वा तु मण्डपं रचयेच्छुभम्। पञ्चभिः सप्तभिर्हस्तैर्नवभिर्वा मितान्तरम् ॥२॥
षोडशस्तम्भसंयुक्तं चत्वारस्तेषु मध्यगाः। अष्टहस्तसमुच्छ्रायाः संस्थाप्या द्वादशाभितः ॥३॥
पञ्चहस्तप्रमाणास्ते निश्छिद्रा ऋजवः शुभाः। तत्पञ्चमांशं निखनेन्मेदिन्यां तन्त्रवित्तमः ॥४॥
नारिकेलदलैर्वंशैश्छादयेत् तत्समन्ततः। द्वारेषु तोरणानि स्युः क्रमात्क्षीरमहीरुहाम् ॥५॥
स्तम्भोच्छ्रायः स्मृतस्तेषां सप्तहस्तैः पृथक्पृथक्। दशाङ्गुलप्रमाणेन तत्परीणाह ईरितः ॥६॥
तिर्यक्फलकमानं स्यात्स्तम्भानां मध्यमानतः। शूलानि कल्पयेन्मध्ये तोरणे हस्तमानतः ॥७॥
दिक्षु ध्वजान्निबध्नीयाल्लोकपालसमप्रभान्। वितानदर्भमालाद्यैरलङ्कुर्वीत मण्डपम् ॥८॥
तत्त्रिभागमिते क्षेत्रेऽरत्निमात्रसमुन्नताम्। चतुरस्रां ततो वेदीं मण्डलाय प्रकल्पयेत् ॥९॥

इति मण्डपनिर्माणविधिः

अत्र कनिष्ठाण्डपेषु दशहस्तमण्डपेऽपि मध्यत्र्यंशाधिकत्रिकरायता वेदी, कुण्डवेद्योरन्तरालमुभयतः पदद्वयमात्रं तद्बहिरुभयतः कण्ठमेखलासहितकुण्डद्वयव्याप्तभूमिश्चतुर्हस्तमिता, तद्बहिः पार्श्वद्वयेऽपि कुम्भस्थापनार्थं हस्तद्वयमिति-समस्तमण्डपभूमिर्व्याप्ता। अतः परमाचार्यऋत्विक्सदस्याद्युपवेशनस्थानमपि न लभ्यते, इति नायं पक्षः समीचीनः। तस्मादयं पक्षस्त्वैकैककुण्डैकमेखलादिसंक्षेपचिकीर्षायामेतावता चारितार्थ्यात्तत्तद्विषय इति ज्ञेयः। इत्थं मण्डपं विधाय तस्मिन् मण्डपे पूर्वाद्यष्टदिक्षु चतुरस्रयोन्यर्धचन्द्रत्रिकोणवृतषट्कोणपद्माष्टास्राख्यान्यष्टौ कुण्डानि कुर्यात्।

पिङ्गलामत में कहा गया है कि द्वारशाखाओं के मस्तकों पर त्रिशूल गाड़े। यह त्रिशूल नव अंगुल लम्बा और चार अंश विस्तृत बनावे। त्रिशूल का बीच वाला शूल सीधा रखे। अगल-बगल वाले दोनों शूलों के अग्रभाग को कुछ टेढा रखे और कनिष्ठ मण्डप में उसे दो अंगुल गाड़े। शेष मध्यम-उत्तम में दो-दो अंगुल बढ़ाकर बीस अंगुल तक गाड़े।

वास्तुशास्त्र में कहा गया है कि द्वारशाखाओं में मस्तक पर तिर्यक् फलक के द्वादशांश में शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म पूर्वादि क्रम से खम्भे की लकड़ी से ही बनवाकर लगावे।

कपिलपञ्चरात्र में कहा गया है कि मण्डपमध्य के चार खम्भों के बीच वाले चौकोर स्थल पर वेदी ईंट या मिट्टी की बनावे। वेदी की ऊँचाई खम्भों की दूरी का चौथाई भाग या तीन, पाँच, सात, नव, ग्यारह भाग होनी चाहिये। तन्त्रराज में कहा गया है कि मण्डप के मध्य में वेदी एक हाथ उच्च बनाना चाहिये।

शारदातिलक में कहा गया है कि अनुकूल ग्रह-नक्षत्र-वार के शुभ दिन में भूसा-अंगाररहित समतल भूमि में पुण्याहवाचन कराकर मण्डप बनावे। पाँच, सात या नव हाथ के सोलह खम्भों में से आठ हाथ के चार खम्भों को बीच में गाड़े। बारह खम्भों को चारो ओर गाड़े। इनकी ऊँचाई पाँच हाथ हो और ये सीधे एवं निश्छिद्र हों। खम्भों का पाँचवाँ अंश भूमि में गाड़े। उसे नारियल के पत्तों से आच्छादित करे। द्वारों पर तोरण दूध वाले वृक्षों की लकड़ी से बनावे। इन खम्भों की ऊँचाई सात हाथ की हो। इनका परिणाह दश अंगुल का हो। तिर्यक् फलक का मान खम्भों का मध्य होता है। एक हाथ का त्रिशूल तोरण में लगावे। सभी दिशाओं में लोकपालों के रंग के ध्वज लगाना चाहिये। मण्डप को चाँदनी और दर्भ, माला से अलंकृत करे। मण्डप के तीसरे भाग में वित्ता भर उच्च चतुरस्र वेदी बनावे।

यहाँ पर दश हाथ के कनिष्ठ मण्डप में भी मध्य में तीन अंश अधिक तीन हाथ की वेदी बनती है। कुण्ड और वेदी के बीच की दूरी दो पदमात्र दोनों तरफ होती है। कुण्ड मेखलासहित दो कुण्डों में व्याप्त भूमि चार हाथ होती है। उसके बाहर दोनों पार्श्वों में कलश-स्थापन के लिये दो हाथ की भूमि होती है। इसी प्रकार पूरे मण्डप में होता है। इसलिये परमाचार्य ऋत्विक् सदस्यों को बैठने के लिये स्थान भी नहीं बचते। अत: यह पक्ष समीचीन नहीं है। इसलिये इस पक्ष में कुण्ड में एक मेखला ही बनानी चाहिये। इस प्रकार मण्डप बनाकर उस मण्डप में पूर्वादि आठो दिशाओं में चतुरस्र, योनि, अर्धचन्द्र, त्रिकोण, वृत्त, षट्कोण, पद्म और अष्टार नामक आठ कुण्ड बनाना चाहिये।

चतुरस्रकुण्डनिर्माणप्रकार:

तत्रादौ चतुरस्रकुण्डनिर्माणप्रकारमाह शारदायाम्—

प्राक्प्रोक्ते मण्डपे विद्वान् वेदिकाया बहिस्त्रिधा। क्षेत्रं विभज्य मध्येंऽशे पूर्वादि परिकल्पयेत्॥१॥
अष्टास्वाशासु कुण्डानि रम्याकाराण्यनुक्रमात्। चतुरस्रं योनिमर्धचन्द्रं त्र्यस्रं च वर्तुलम्॥२॥
षडस्रं पङ्कजाकारमष्टास्रं तानि नामत:। आचार्यकुण्डं मध्ये स्याद्गौरीपतिमहेन्द्रयो:॥३॥
हस्तमानमितां भूमिं पूर्ववत्परिसूत्रयेत्। समन्तात्कुण्डमेतत्स्याच्चतुरस्रं शुभावहम्॥४॥
चतुर्विंशत्यङ्गुलाढ्यं हस्तं तन्त्रविदो विदु:। चतुरस्रीकृतं क्षेत्रं पञ्चधा विभजेत् सुधी:॥५॥
न्यसेत् पुरस्तादेकांशं कोणार्धार्धप्रमाणत:। भ्रामयेत् कोणमानेन तदान्यदपि मन्त्रवित्॥६॥
सूत्रयुग्मं ततो दद्यात्कुण्डं योनिनिभं भवेत्। चतुरस्रीकृतं क्षेत्रं दशधा विभजेत् पुन:॥७॥
एकमेकं त्यजेदंशमध ऊर्ध्वं च तन्त्रवित्। ज्यासूत्रं पातयेदग्रे तन्मानाद्भ्रामयेत्तत:॥८॥
अर्धचन्द्रनिभं कुण्डं रमणीयमिदं भवेत्। चतुर्धा भेदिते क्षेत्रे न्यसेदुभयपार्श्वयो:॥९॥
एकैकमंशं तन्मानादग्रतो लाञ्छयेत्तत:। सूत्रत्रयमध: कुर्यात्त्र्यस्रं कुण्डमुदाहृतम्॥१०॥
अष्टादशांशे क्षेत्रेंऽशे न्यसेदेकं बहिर्बुध:। भ्रामयेत्तेन मानेन वृत्तं कुण्डमनुत्तमम्॥११॥
अष्टधा विभजेत्क्षेत्रं मध्यसूत्रस्य पार्श्वयो:। भागं न्यसेदेकमेकं मानेनानेन मध्यत:॥१२॥
कुर्यात् पार्श्वयुगे मत्स्यचतुष्कं तन्त्रवित्तम:। सूत्रषट्कं ततो दद्यात्षडस्रं कुण्डमुत्तमम्॥१३॥
चतुरस्रीकृतं क्षेत्रं विभज्याष्टादशांशत:। एकभागं बहिर्न्यस्य भ्रामयेत्तेन वर्तुलम्॥१४॥
वृत्तादि कर्णिकादीनां बहिस्त्रीणि प्रकल्पयेत्। पद्मकुण्डमिदं प्रोक्तं विलोचनमनोहरम्॥१५॥
पूर्वोक्तं विभजेत्क्षेत्रं चतुर्विंशतिभागत:। भागमेकं बहिर्न्यस्य चतुरस्रं प्रकल्पयेत्॥१६॥
अंसयोश्चतुरस्रस्य कोणार्धार्धप्रमाणत:। बाह्यस्य चतुरस्रस्य कोणाभ्यां परिलाञ्छयेत्॥१७॥
दिशं प्रति यथान्यायमष्टौ सूत्राणि पातयेत्। अष्टास्रं कुण्डमेतद्धि तन्त्रविद्भिरुदीरितम्॥१८॥ इति।

चतुरस्र कुण्ड-निर्माण प्रकार—शारदातिलक के अनुसार पूर्वोक्त मण्डप में विद्वान् पुरुष को वेदी के बाहरी क्षेत्र का तीन भाग करके मध्य अंश से पूर्वादि दिशा निश्चित करनी चाहिये। आठो कुण्डों के रम्य अनुक्रम से चतुरस्र, योनि, अर्धचन्द्र, त्रिकोण, वर्तुल, षडस्र, पद्म, अष्टार कुण्ड आचार्य मध्य में बनावे। ईशान और पूर्व-मध्य में एक हाथ मान की भूमि पूर्ववत् निश्चित करे। उसमें समचतुरस्र शुभावह कुण्ड बनावे। तन्त्रविदों के अनुसार चौबीस अंगुल का एक हाथ होता है। चतुरस्र क्षेत्र को पाँच भागों में बाँटे। उसके सामने कोणार्ध प्रमाण से एक अंश पर सूत्र को कोणमान से घुमावे। तब दो सूत्र देने से योनि कुण्ड बनता है। चतुरस्रीकृत क्षेत्र का दश विभाग करे। उसमें एक भाग नीचे-ऊपर छोड़ कर ज्या सूत्रपात करे और उस मान से घुमावे। इससे अर्धचन्द्र कुण्ड बनता है। चतुर्धा भेदित क्षेत्र के दोनों पार्श्वों में एक-एक अंश पर चिह्न लगावे। उस पर तीन सूत्र डालने से त्रिकोण कुण्ड बनता है। क्षेत्र के अट्ठारहवें अंश के बाहर एक सूत्र देकर उसे घुमावे। इससे वृत्ताकार कुण्ड बनता है। क्षेत्र का आठ विभाग करे। मध्य सूत्र के पार्श्वों में एक भाग के मान से सूत्रपात करे। दोनों पार्श्वों में चार मत्स्य बनावे। उस पर छः सूत्र निपात करने से षडस्र कुण्ड बनता है। क्षेत्र को वर्गाकार बनाकर अट्ठारह भागों में बाँटे। एक भाग बाहर न्यस्त करके सूत्र को चारो ओर घुमाकर वृत्त बनावे। वृत्तादि कर्णिकादि में तीन वाहन कल्पित करे। इससे पद्म कुण्ड देखने में सुन्दर बनता है। पूर्वोक्त प्रकार से क्षेत्र को चौबीस भागों में विभाजित करे। एक भाग के बाहर चतुरस्र बनावे। चतुरस्र के कोणार्ध प्रमाण के अंश से चतुरस्र के बाहर कोणों में चिह्न लगावे। प्रत्येक आठ दिशाओं में सूत्र ताने। इससे अष्टार कुण्ड तन्त्रविदों के अनुसार बनता है।

श्रीतन्त्रराजे (२९ प० २६ श्लोक)—

प्राक्प्रत्यक्सूत्रमास्फाल्य तन्मध्ये चिह्नकल्पनम्। कृत्वा तत्पूर्वतः पश्चाद्द्वादशाङ्गुलमानतः ॥१॥
ततस्तदग्राण्यालम्ब्य मध्यचिह्नस्य मानतः। कुर्याद्धंसपदं कोष्ठान्यभितस्तेषु पातयेत् ॥२॥
परं प्रमृज्य तत्रापि विदध्याच्चिह्नयुग्मकम्। प्राक्प्रत्यक्चिह्नमानेन तयोरेवावलम्बतः ॥३॥
दक्षिणोत्तरतो हंसपदे कृत्वा तयोस्ततः। प्रसार्य सूत्रं तस्यापि मार्जयित्वोक्तमानतः ॥४॥
चतुष्टयं तु सूत्राणां चतुरस्रं भवेत्समम्। इति।

श्रीतन्त्रराज के २९वें पटल में कहा गया है कि पूरब से पश्चिम की ओर सूत्र ताने। उसके बीच में चिह्न लगावे। उसे पूर्ववत् करके बारह अंगुल मान से उसके अग्र भाग के अवलम्बन से मध्य चिह्न मान से हंस पद से अन्य कोष्ठक बनावे। उसका मार्जन करके दो चिह्न लगावे। पूर्व-पश्चिम चिह्न मान से उसका अवलम्बन लेकर दक्षिण उत्तरतः हंस पद करके सूत्र ताने। उसका भी मार्जन उक्त मान से करे। चार सूत्रों से चतुरस्र बनता है।

अथैतत्कुण्डरचनाप्रकारः—**तत्र वेद्याः पूर्वभागे मुष्ट्यङ्गुलमानेन हस्तमात्रां भुवं परित्यज्य, प्राक्कल्पित-दिक्क्रमेण प्राक्प्रत्यगायतं सूत्रमास्फाल्य, तन्मध्ये चिह्नं कृत्वा तच्चिह्नात्पूर्वतः पश्चिमतश्च मुष्ट्यङ्गुलैर्द्वादशमानेन चिह्नं कृत्वा, तत्तदधिकांशं मार्जयित्वा, तच्चिह्नद्वयावष्टम्भेन तत्सूत्रार्धात् किञ्चिदधिकमानभ्रमेण पूर्वापरतः किञ्चिदन्योन्यसंश्लिष्टं वृत्तद्वयं विधाय, तयोर्दक्षिणोत्तरसंदंशरूपहंसपदद्वयप्रापि प्राक्प्रत्यक्ब्रह्मसूत्रमध्यगतहंसपदभेदं दक्षिणोत्तरं सूत्रमास्फाल्य, तत्रापि मध्यचिह्नाद्द्वादशाङ्गुलमानेन दक्षिणोत्तरं चिह्नद्वयं विधाय तत्तदधिकांशं मार्जयित्वा, तत्सूत्राग्रचतुष्टयावलम्बेन द्वादशाङ्गुलमानेन चतुर्ष्वपि कोणेषु हंसपदं विधाय, तत्तदग्रात्तत्तद्धंसपदप्रापिप्राक्प्रत्यक्सूत्रद्वयं दक्षिणोत्तरं सूत्रद्वयं च सम्भूय सूत्रचतुष्टयमास्फाल्य चतुरश्रं कुर्यात्। ततस्तत्प्राक्प्रत्यगायतब्रह्मसूत्रमाननिम्नं समचतुरस्रं तत्र खातं कृत्वा, तत्परितः कुण्डमानस्य चतुर्विंशांशमितां भुवं परित्यज्य, तद्बहिर्द्वादशाङ्गुलविस्तारां चतुरङ्गुलोत्सेधां मेखलां कृत्वा, तदुपरि बाह्ये परितश्चतुरङ्गुलमानं त्यक्त्वाष्टाङ्गुलविस्तारां चतुरङ्गुलोन्नतां द्वितीयां मेखलां कृत्वा, तदुपरि बाह्ये चतुरंगुलं त्यक्त्वा विस्तारोत्सेधाभ्यां चतुरङ्गुलमितां तृतीयां मेखलां कुर्यात्। एवं कृते प्रथमा मेखला द्वादशाङ्गुलोन्नता चतुरङ्गुलविस्तृता, द्वितीयाष्टाङ्गुलोन्नता चतुरङ्गुलविस्तृता, तृतीया चतुरङ्गुलोन्नता चतुरङ्गुलविस्तृता च भवतीति। अत्र**

केचित्—प्रथमा मेखला चतुरङ्गुलविस्तृता नवाङ्गुलोन्नता, द्वितीया तु त्र्यङ्गुलविस्तृता पञ्चाङ्गुलोन्नता, तृतीया तु द्व्यङ्गुलविस्तृता द्व्यङ्गुलोन्नतेति मेखलामानमाहुः। एतन्मेखलया सह हस्तमात्रखातपक्षे ज्ञेयम्, तत्र पञ्चदशाङ्गुलनिम्नखातस्यैव विश्वकर्मणोक्तत्वात् तदूर्ध्वे नवाङ्गुलोच्छ्रायस्यैवावश्यकत्वात्। हस्तमात्रखातपक्षे तु—'सर्वेषां मेखलामानं वितस्त्यष्टतदर्धकैः। विस्तारोत्सेधयोः कुर्यात्' इति तन्त्रराजवचनात्।

सत्त्वपूर्वकगुणान्विताः क्रमाद् द्वादशाष्टाचतुरङ्गुलोच्छ्रिताः ।
सर्वतोऽङ्गुलचतुष्कविस्तृता मेखलाः सकलसिद्धिदा मताः ॥१॥ (५-३३)

इति प्रपञ्चसारवचनाच्च पूर्वोक्त एव पक्षः समीचीन इति। ततः सर्वबाह्यस्थमेखलाया बहिश्चतुरङ्गुलायामविस्तारोत्सेधं चतुरश्रं पीठं मृदा कृत्वा, तदुपरि निहितमूलद्वादशाङ्गुलदीर्घोत्तरोत्तरहीनपरिणाहमध्यमेखलासंलग्नरन्ध्रनालयुतां मूले कुम्भद्वययुक्तां मध्ये सगर्भामुपरितनमेखलोपरिगतामष्टांगुलमानमूलां तत्प्रदेशादुभयपार्श्वतः क्रमेण सङ्कुचितामेकाङ्गुलविस्ताराग्रां द्वादशाङ्गुलमानायामामेकाङ्गुलोत्सेधमेखलायुक्तामश्वत्थपत्राकारां मूलात्किञ्चित् क्रमान्निम्नामीषत्कुण्डप्रविष्टाग्रां योनिं कुर्यात्। अथ कुण्डमध्यस्थहंसपदावलम्बेन प्रतिदिशं चतुरङ्गुलमानेन वृत्तं निष्पाद्य, तद्बहिः पुनः षडङ्गुलमानेन च वृत्तं कृत्वा तद्वृत्तं कर्णिकां च परिकल्प्य वृत्तद्वयान्तरालवीथ्यामष्टदलानि कृत्वा षडङ्गुलोच्चनाभिं कुर्यात्।

इति चतुरस्रकुण्डनिर्माणविधिः

चतुरस्र कुण्ड-रचना प्रकार—प्रथम चतुरस्र कुण्ड हेतु वेदी के पूर्व भाग में मुष्टि अंगुल मान से हाथ भर भूमि छोड़कर पाँचों कल्पित दिशा क्रम से पूरब से पश्चिम की ओर सूत्र स्थापित करे। उसके बीच में चिह्न लगावे। उस चिह्न से पूर्व से पश्चिम की ओर बारह मुष्ट्यङ्गुल मान से चिह्न लगावे। उससे अधिक को भाजित करे। उन दोनों चिह्नों को केन्द्रबिन्दु मानकर उस सूत्र के अर्ध मान से घुमाकर दो वृत्त बनावे। वृत्त एक-दूसरे को जहाँ काटें, उस सन्धि बिन्दु से हंसद्वयप्रापी पूर्व-पश्चिम सूत्र मध्यगत हंस पदभेद से दक्षिण-उत्तर सूत्र को स्फालित करके उसमें भी मध्य चिह्न से बारह अंगुल कर दक्षिण-उत्तर में दो चिह्न बनावे। उससे अधिक अंश को मार्जित कर दे। इन चारो सूत्रों के अग्रभाग को केन्द्र मानकर बारह अंगुल मान से चारो कोनों पर हंस पद देकर उसके आगे से हंस पदप्राप्त पूर्व-पश्चिम सूत्रद्वय एवं दक्षिणोत्तर सूत्रद्वय के रूप में चार सूत्र स्थापित करे। तब पूर्व-पश्चिम ब्रह्मसूत्र के नीचे खात करके उसके सामने कुण्ड मान के चौबीस अंश जमीन को छोड़कर उसके बाहर बारह अंगुल विस्तृत चार अंगुल उत्सेध से मेखला बनावे। उसके ऊपर चार अंगुल मान विस्तृत एवं चार अंगुल उन्नत दूसरी मेखला बनावे। उसके ऊपर बाहर चार अंगुल छोड़कर चार अंगुल खड़ी तीसरी मेखला बनावे। इस प्रकार प्रथम मेखला बारह अंगुल उन्नत और चार अंगुल विस्तृत होती है। दूसरी मेखला आठ अंगुल उन्नत और चार अंगुल विस्तृत होती है। तीसरी मेखला चार अंगुल उन्नत और चार अंगुल चौड़ी होती है। किसी के मत से पहली मेखला नव अंगुल उन्नत और चार अंगुल विस्तृत, दूसरी पाँच अंगुल उन्नत और तीन अंगुल विस्तृत एवं तीसरी दो अंगुल उन्नत और दो अंगुल विस्तृत होती है। यह मेखला हाथ भर खात के पक्ष में है। तब विश्वकर्मा के अनुसार पन्द्रह अंगुल निम्न खात, उसके ऊपर नव अंगुल उन्नत आवश्यकता के अनुसार बनाना चाहिये। हाथ भर खात के पक्ष में सभी मेखला का मान वित्ता भर या उससे आधा होता है। विस्तार उत्सेध इसी प्रकार का करे। ऐसा तन्त्रराज में कहा गया है।

बारह, आठ, चार अंगुल उच्च और चार अंगुल विस्तृत मेखला सभी सिद्धियों को देने वाली होती है—इस प्रपञ्चसार-वचन के अनुसार भी पूर्वोक्त पक्ष ही समीचीन है। सबसे बाहरी मेखला चार अंगुल विस्तृत उत्सेध चतुरस्र पीठ मिट्टी से बनाकर उसके ऊपर निहित मूल द्वादश अंगुल दीर्घ उत्तरोत्तर हीन परिणाह मध्य मेखला संलग्न रन्ध्र, नालयुत मूल में दो कुम्भयुक्त मध्य में सगर्भा मेखला के ऊपर आठ अंगुल मूल तब वित्ता भर दोनों पार्श्वों में क्रम से एक अंगुल संकुचित विस्ताराग्र द्वादश अंगुल मान आयाम एक अंगुल उत्सेध मेखला में अश्वत्थ पत्राकार मूल से क्रमशः निम्न कुण्ड प्रविष्ट कुछ आगे की ओर योनि बनावे। कुण्ड मध्यस्थ हंस पद के अवलम्ब से प्रत्येक दिशा में चार अंगुल के मान से वृत्त बनावे। उसके बाहर पुनः छः अंगुल

के मान से वृत्त बनावे। उस वृत्त में कर्णिका कल्पित करके दोनों वृत्तों के अन्तराल वीथि में अष्टदल बनावे। उसकी नाभि को छः अंगुल ऊँचा करे। इस प्रकार चतुरस्र कुण्ड का निर्माण पूर्ण होता है।

योनिकुण्डनिर्माणम्

अथ योनिकुण्डमाह तन्त्रराजे—

तन्मध्यपञ्चमांशेन विकास्य ब्रह्मसूत्रकम् । पूर्वतः पश्चिमद्वन्द्वकोष्ठयोर्मध्यदेशतः ॥१॥
तत्कोणमानेन तथा भ्रामयेत्पश्चिमाग्रकात् । उत्तराग्रावधि तथा दक्षिणाग्रावधि प्रिये ॥२॥
तन्मध्यतिर्यक्सूत्राग्रद्वयावष्टम्भतस्तथा । विकासितब्रह्मसूत्रावधि सूत्रद्वयं भवेत् ॥३॥
योनिकुण्डमिदं भद्रे स्याच्चतुर्षूभयात्मसु । तस्मिन्नेवान्यकुण्डानि वदामि सममानतः ॥४॥
चतुरस्राभितो या तु त्याज्या भूः सान्यतः स्थिता । लभ्यते सर्वकुण्डेषु तेन सर्वाणि सर्वतः ॥५॥
तत्समान्येव जायन्ते षण्णवत्यङ्गुलात्मना । इति।

अथैतत्कुण्डरचनाप्रकारः—तत्र प्राग्वत् चतुरस्रं निर्माय चतुष्कोष्ठयुतस्य ब्रह्मसूत्रस्य तन्मानपञ्चमांशेन पूर्वस्यां दिशि वर्द्धयित्वा तत्कोष्ठचतुष्टयात्मकचतुरस्रस्य पश्चिमभागस्थदक्षिणोत्तरकोष्ठयोर्निर्ऋत्यादीशानान्तमाग्नेयादिवायव्यान्तं चतुष्कोणसूत्रद्वयस्फालनेन लक्षितसूत्रद्वयसम्पातनविदितमध्यदेशावष्टम्भतस्तत्कोणावधिमानेनोत्तरकोष्ठे प्राक्प्रत्यग्ब्रह्मसूत्रपश्चिमाग्रादिदक्षिणोत्तरतिर्यक्सूत्रोत्तराग्रावधि तद्दक्षिणकोष्ठे तत्सूत्रपश्चिमाग्रादि तत्तिर्यक्सूत्रदक्षिणाग्रावधि भ्रमादर्धचन्द्रद्वयमुत्पाद्य, तन्मध्यतिर्यक्सूत्राग्रमारभ्य प्राक्प्रसारितब्रह्मसूत्राग्रावधि सूत्रद्वयास्फालनेन योन्याकारं क्षेत्रं परिकल्प्य, तद्बहिश्च कण्ठमेखलयोर्यथोक्तमानेनोक्तयुक्त्या योनिमण्डलद्वयं निष्पाद्य, प्राग्वत् खातं कृत्वा योन्याकारमेव कण्ठमेखलादि कल्पयेदिति 'कुण्डानां यादृशं रूपं मेखलानां च तादृशम्। कुर्यात्सर्वेषु कुण्डेषु' इति कुलप्रकाशवचनात्।

योनिकुण्ड—तन्त्रराज में कहा गया है कि पूर्ववत् चतुरस्र कुण्ड बनाकर उसमें चार कोष्ठ बनावे। उसके मान के पाँचवें अंश में पूर्व दिशा में ब्रह्मसूत्र को बढ़ावे। उस चार कोष्ठयुक्त चतुरस्र के पश्चिम भागस्थ दक्षिण-उत्तर कोष्ठ से नैर्ऋत्य से ईशान तक अग्नि से वायव्य में दो सूत्रों का स्फालन करे। लक्षित सूत्रद्वय संपात विदित मध्य को केन्द्र बनाकर उस कोण के विधिमान से उत्तर कोष्ठ से दक्षिण कोष्ठ तक सूत्र घुमाकर दो अर्धचन्द्र बनावे। उनके मध्य में तिर्यक् सूत्र के अग्र से पूर्व प्रसारित ब्रह्मसूत्र के अग्र तक सूत्रद्वय के स्फालन से योन्याकार क्षेत्र बनावे। उसके बाहर कण्ठ मेखला यथोक्त मान से योनि मण्डलद्वय का निष्पादन करे। पूर्ववत् खोदकर योनि के आकार के कुण्ड-मेखलादि बनावे। कुलप्रकाश के अनुसार जैसा रूप कुण्ड का हो, वैसा ही रूप मेखला का भी होता है। सभी कुण्डों के निर्माण की यही प्रक्रिया होती है।

अर्धचन्द्रकुण्डनिर्माणम्

अथार्धचन्द्राकारकुण्डमाह तन्त्रराजे—

तन्मध्यदशमांशं तु परित्यज्याध ऊर्ध्वतः । शेषांशांशकमानेन तन्मध्याद्भ्रामयेत्तथा ॥१॥
अर्धचन्द्राकृतिर्येन भवेत् कुण्डं तदीरितम् । इति।

अथैतत्कुण्डरचनाप्रकारः—तत्र प्राग्वत् चतुरस्रं निर्माय तद्विष्कम्भमानं दशधा विभज्य तेष्वेकैकांश प्राक्पश्चिमयोः परित्यज्य चिह्नद्वयं कृत्वा, तत्पश्चिमचिह्नात् दक्षिणोत्तरायतं तिर्यक्सूत्रं तच्चतुरस्राद्बहिरप्यंशत्रयमानेन दक्षिणोत्तरयोर्वर्द्धयित्वा तदग्रद्वयावधि तत्कल्पितपश्चिमब्रह्मसूत्रसन्धिमध्यावलम्बनेन वार्धचन्द्रनिभं मण्डलद्वयं कृत्वा प्राग्रेखामध्यगतब्रह्मसूत्रसन्धिमारभ्याष्टांशमानसूत्रभ्रमादर्धचन्द्राकारं कुण्डं भवेत्। इत्यर्धचन्द्राकारं कुण्डं निर्माय तद्बहिरप्युक्तयुक्त्या एकाङ्गुलमानेन द्वादशाङ्गुलमानेन वार्धचन्द्रनिभं मण्डलद्वयं कृत्वा प्रथमकृतमण्डलमध्ये हस्तमात्रं निम्नं खातं कृत्वा बहिः कण्ठस्थानं परित्यज्य प्राग्वन्मेखलादिकं कुर्यादिति।

अर्ध चन्द्राकार कुण्ड—तन्त्रराज के अनुसार चतुरस्र मध्य में दशमांश छोड़कर शेष अंश मान से उसके मध्य से सूत्र घुमाने से अर्ध चन्द्राकृति कुण्ड बनता है। स्पष्ट रचना का प्रकार इस तरह है—पूर्ववत् चतुरस्र बनाकर उसे दश भागों में विभाजित करे। उसमें एक-एक कोष्ठ पूर्व-पश्चिम में छोड़कर दो चिह्न बनावे। पश्चिम चिह्न से दक्षिणोत्तरायत तिर्यक् सूत्र से चतुरस्र के बाहर तीन अंश मान से दक्षिणोत्तर में उसके अग्र भाग तक बढ़ावे। उस कल्पित पश्चिम ब्रह्मसूत्र सन्धिमध्य के अवलम्बन से अर्धचन्द्राकार दो मण्डल बनावे। पूर्व रेखा मध्यगत सन्धि से आरम्भ करके अष्टामांश मान से सूत्र घुमावे। तब अर्धचन्द्राकार कुण्ड बनता है। इस प्रकार अर्धचन्द्राकार कुण्ड बनाकर उसके बाहर एक अंगुल मान से या द्वादश अंगुल मान से अर्धचन्द्राकार दो मण्डल बनाकर प्रथम मण्डल मध्य में हाथ भर गड्ढा खोदकर उसके बाहर कुण्ड स्थान छोड़कर पूर्ववत् मेखलादि बनावे।

त्रिकोणकुण्डनिर्माणम्

अथ त्रिकोणकुण्डमाह तत्रैव—

तस्यैव षष्ठमंशं तु पार्श्वयोस्तु विकासयेत्। प्रत्येकं पश्चिमं सूत्रं तन्मानेनाथ सूत्रयोः ॥१॥
विन्यासाद्ब्रह्मसूत्रान्तं तद्द्वयाग्रावलम्बनात्। ····················कुण्डं त्रिकोणमुदितम् ॥२॥ इति।

अथैतत्कुण्डरचनाप्रकारः—तत्र प्रागवच्चतुरस्रं कृत्वा तद्ब्रह्मसूत्रस्य प्रागग्रं बहिर्गत्या प्रसार्य तच्चतुरश्रविष्कम्भमानं षोढा विभज्य, तेष्वेकैकांशेन पश्चिमतिर्यक्सूत्राग्रद्वयं पार्श्वद्वयेऽपि बहिः प्रसार्य, तदग्रद्वयात् तत्सूत्रमानोपेतसूत्रद्वयस्य प्राक्प्रसारितब्रह्मसूत्रस्य च यत्र सम्पातस्तदवध्यास्फाल्य त्रिकोणकुण्डं परिकल्प्य, तद्बहिरेकांशमानेन तद्बहिर्द्वादशांशमानेनोक्तयुक्त्या त्रिकोणद्वयं निष्पाद्य खातकण्ठमेखलादि प्राग्वत्कल्पयेदिति।

त्रिकोण कुण्ड—तन्त्रराज के अनुसार पूर्ववत् चतुरस्र बनाकर उसके ब्रह्मसूत्र के पूर्वाग्र बाहरी गति से रेखा को बढ़ावे। उस चतुरस्र को विष्कम्भ मान से छः भाग में विभाजित करे। उसके एक अंश से पश्चिम तिर्यक् दो सूत्र दोनों पार्श्वों में प्रसारित करे। उस अग्रद्वय से उसके सूत्रमान से दो सूत्र को पूर्व में प्रसारित करे। उसका ब्रह्मसूत्र से जहाँ सम्पात हो, वहाँ तक त्रिकोण कुण्ड परिकल्पित करे। उसके बाहर एक अंशमान से, उसके बाहर द्वादशांश मान से उक्त युक्ति से दो त्रिकोण बनाकर पूर्ववत् खोदकर मेखलादि बनावे।

वृत्तकुण्डनिर्माणम्

अथ वृत्तकुण्डमाह तत्रैव—

तन्मध्याष्टादशांशेन प्राक्सूत्राग्रं विकासयेत्। तिर्यक्सूत्राद्बहिस्तेन मानेन भ्रामयेतथा ॥१॥
मध्यचिह्नावलम्बेन तद्भवेद्वृत्तमण्डलम्। इति।

अथैतत्कुण्डरचनाप्रकारः—तत्र प्राग्वत् चतुरस्रं क्षेत्रं साधयित्वा, तन्मध्ये विष्कम्भमानमष्टादशधा विभज्य, तेष्वेकांशमानतश्चतुरस्राद्बहिर्ब्रह्मसूत्रस्थप्रागग्रं विस्तार्य, मध्यचिह्नमवलम्ब्य विस्तारितब्रह्मसूत्राग्रमानेन परितो भ्रमेण वृत्तं निष्पाद्य, तद्बहिः पुनश्चतुरस्रस्य चतुर्विंशमानेन कण्ठार्थं वृत्तं कृत्वा, तद्बहिः पुनर्द्वादशाङ्गुलमानेन वृत्तान्तरं निष्पाद्य, प्रथमकृतवृत्तमध्ये हस्तमात्रं निम्नं खातं कृत्वा कण्ठवृत्ताद्बहिर्द्वादशांगुलान्तरालं वीथ्यां प्राग्वन्मेखलात्रयं योन्यादिकं रचयेदिति। अथ वृत्तकुण्डे योनिर्नास्तीति कश्चित्, तन्न योनिकुण्डे योनिः, पद्मकुण्डे नाभिश्च नास्तीति तान्त्रिकसिद्धान्तः।

वृत्तकुण्ड—तन्त्रराज के अनुसार पूर्ववत् चतुरस्र क्षेत्र बनाकर उसे विष्कम्भ मान से अट्ठारह भागों में विभाजित करे। उसके एक अंश मान से चतुरस्र के बाहर ब्रह्मसूत्र के पूर्वाग्र को बढ़ावे। मध्य चिह्न के अवलम्बन से विस्तारित ब्रह्म सूत्राग्र मान से चारो ओर घुमाकर वृत्त बनावे। उसके बाहर पुनः चतुरस्र के चौबीसवें मान से कण्ठ के लिये वृत बनावे। उसके बाहर पुनः बारह अंगुल मान से वृत्तान्तर निष्पादित करके प्रथम कृत वृत्त मध्य में हाथ भर गड्ढा खोदे। कण्ठ वृत्त के बाहर बारह

अंगुल अन्तराल वीथि में पूर्ववत् तीन मेखला, योनि आदि बनावे। किसी के मत से वृत्तकुण्ड में योनि नहीं होती। योनिकुण्ड में योनि नहीं होती एवं पद्मकुण्ड में नाभि नहीं होती—ऐसा तान्त्रिक सिद्धान्त है।

षडस्रकुण्डनिर्माणम्

अथ षडस्रकुण्डमाह तत्रैव—

तन्मध्यषोडशांशेन विकास्य ब्रह्मसूत्रकम्। तेन मानेन च तथा कृत्वा वृत्तमतिस्फुटम्॥१॥
तद्वृत्ते वृत्तमध्यस्य कुर्यादर्धेन लाञ्छनम्। तत्र षट्सूत्रपातेन भवेत्कुण्डं षडस्रकम्॥२॥ इति।

अथैतत्कुण्डरचनाप्रकारः—तत्र प्राग्वच्चतुरस्रं विधाय, तन्मध्यमानं षोडशधा विभज्य, तेष्वेकांशमानेन ब्रह्मसूत्रस्य प्रागग्रं विकाश्य, तन्मानेन चतुरस्रतन्मध्यस्थहंसपदमध्यावलम्बेन भ्रमाद्वृत्तं निष्पाद्य, तन्मध्यविष्कम्भमानार्धेन तन्मध्यतिर्यक्सूत्रदक्षिणाग्रादिपरितोवृत्ते चिह्नषट्कं विधाय, तत्र चिह्नात् चिह्नं ज्यारूपं सूत्रषट्कमास्फाल्य, तत्तच्चापरूपवृत्तखण्डमार्जनेन षट्कोणकुण्डक्षेत्रं निष्पाद्य, तद्बहिरेकांशतो द्वादशांशतश्चोक्तयुक्त्या षट्कोणद्वयं निष्पाद्य खातादीनि प्राग्वत् कल्पयेदिति।

षडस्र कुण्ड—तन्त्रराज के अनुसार पूर्ववत् चतुरस्र बनाकर उसे सोलह भागों में विभाजित करे। उसमें एकांश मान से पूर्वाग्र ब्रह्मसूत्र बनावे। उसी मान से चतुरस्रस्थ हंस पद के अवलम्बन से घुमाकर वृत्त बनावे। उसमें विष्कम्भ मान के अर्द्धभाग से उसमें तिर्यक् सूत्र दक्षिणाग्रादि के चारो ओर वृत्त में छः चिह्न लगावे। उस चिह्न से ज्या रूप छः सूत्रों को स्फालित करे। उसमें चापरूप वृत्त खण्ड मार्जन से षट्कोण कुण्ड क्षेत्र का निष्पादन करे। उसके बाहर एक अंश से द्वादशांश तक उक्त युक्ति से दो षट्कोण बनावे। उसमें पूर्ववत् खात करे।

पद्मकुण्डनिर्माणम्

अथ पद्मकुण्डमाह लक्षणसंग्रहे—

चतुरस्त्रीकृतं क्षेत्रं विभजेदष्टधाम्बिके। अष्टमांशप्रमाणेन कर्कटेन तु मध्यतः॥१॥
वर्तुलं भ्रामयेत्सेयं कर्णिका केसराः पुनः। अष्टमांशद्वयेनैव मध्यतो वर्तुलं भवेत्॥२॥
तृतीयेनाष्टमांशेन पत्राणां मध्यभूर्मता। चतुर्थं तु भवेत्क्षेत्रं व्यासतुल्येन च भ्रमात्॥३॥
चतुर्विंशतिद्या भक्त्वा ब्रह्मसूत्रं वरानने। तस्यैकं भागमादाय भक्त्वा षोडशधा पुनः॥४॥
पञ्चभिः षोडशैर्भागैर्न्यूनं पञ्चकमष्टकम्। भागमादाय तद्बाह्ये पञ्चमं मण्डलं शिवे॥५॥
मध्यतो भ्रामयेत् सर्वैः पत्राणामग्रभूर्मता। शास्त्रोक्तविधिना देवि ततः पद्मं समालिखेत्॥६॥
बाह्यवृत्तान्तरालं यत्तन्मानं केसराग्रतः। तन्मानं कर्कटं कृत्वा केसराग्रे विधाय च॥७॥
गुरूपदिष्टमार्गेण षोडशार्धनिशाकरान्। लिखित्वा कृतिहस्तेन पत्राग्राणि समालिखेत्॥८॥
कर्णिकाव्यासमानेन परित्यज्य तदुच्यताम्। निखनेदवशिष्टं तु केसराणां च मण्डलम्॥९॥
खनेदन्तस्तथाकारं कुर्वन् पत्रभुवं खनेत्। पत्राकारा यथा सम्यग्जायन्ते परमेश्वरि॥१०॥
................पद्मकुण्डमिति प्रोक्तम्। इति।

अथैतत्कुण्डरचनाप्रकारः—तत्र प्राग्वच्चतुरस्त्रीकृतं क्षेत्रमष्टधा विभज्य, तन्मध्यचिह्नावलम्बेन परितस्तेष्वेकांशमानेन कर्णिकार्थं वृत्तं निष्पाद्य, तद्बहिरप्यंशद्वयमानेन केसरार्थं वृत्तं कृत्वा, तद्बहिरप्यंशत्रयमानेन तद्दलार्थं वृत्तं विरच्य, तद्बहिरप्यंशचतुष्टयमानेन वृत्तं भ्रामयित्वा, सार्धषड्यवमानेन चतुरस्रक्षेत्राद्बहिः वृत्तमेकं भ्रामयेदिति वृत्तपञ्चकं कृत्वा, द्वितीयवृत्तपञ्चमवृत्तयोरन्तरालमानकर्कटेन केसरवृत्ताग्रात् सर्वबाह्यवृत्तस्पृष्टशृङ्गद्वयाग्रकान् षोडशार्धचन्द्रान्निष्पाद्य साग्राण्यष्टदलानि कृत्वा, तन्मध्यकर्णिकावृत्तं विहाय केसराणि कर्णिकां परितः प्रकाशयत् केसरवृत्तं

दलमध्यवृत्तं च सम्यक् खनित्वा, चतुर्थपञ्चमवृत्तयोर्दलानि साग्राणि यथा भवन्ति चतुरस्रकुण्डस्य विस्तारायामखातसमानक्षेत्रफलवत् क्षेत्रफलं च यथा भवति तथा गुरूक्तयुक्त्या खननं विधाय बहिः पद्माकारेणैव कण्ठमेखलादिकं कुर्यादिति।

पद्मकुण्ड—लक्षणसंग्रह के अनुसार पूर्ववत् चतुरस्र क्षेत्र को आठ भागों में बाँटकर उसके मध्य के चिह्न के अवलम्ब से उसके चारो ओर एक अंश मान से कर्णिका के लिये वृत्त बनावे। उसके बाहर केसर के लिये दो अंशमान से वृत्त बनावे। उसके बाहर दल के लिये तीन अंश से वृत्त बनावे। उसके बाहर चार अंश मान से घुमाकर वृत्त बनावे। उसके बाहर भी साढ़े छः यव मान से चतुरस्र क्षेत्र के बाहर एक वृत्त बनावे। इस प्रकार पाँच वृत्त बनावे। द्वितीय वृत्त और पञ्चम वृत्त के अन्तराल मान के कर्कट से केसर वृत्त के अग्र से सबसे बाहरी वृत्त को स्पष्ट शृंगद्वयाग्र से सोलह अर्धचन्द्र बनावे। उससे अष्टदल बनावे। उसमें कर्णिका वृत्त को छोड़कर कर्णिका के सभी ओर फैलावे। केसर वृत्त दलमध्य वृत्त को सम्यक् खाने। चतुर्थ, पञ्चम दलों के अग्र जैसा हो एवं चतुरस्र कुण्ड के विस्तार आयाम समान खात क्षेत्रफल जैसा होता है, वैसा ही गुरुकथित युक्ति से खनन करे और बाहर पद्माकार में कुण्ड-मेखलादि बनावे।

अष्टास्रकुण्डनिर्माणम्

अथाष्टास्रकुण्डमाह तन्त्रराजे—

तन्मध्यस्य चतुर्विंशमाने बाह्येऽपि पूर्ववत्। विधाय चतुरस्रं तु पूर्वकोणार्धमानतः ॥१॥
कोणादभित एवास्य कृत्वा चिह्नानि चाष्ट वै। तेषु चिह्नेषु कृत्वाष्टसूत्राणि परितः शिवे ॥२॥
..........कुर्यादष्टास्रकं कुण्डं। इति।

अथैतत्कुण्डरचनाप्रकारः—तत्र प्राग्वच्चतुरस्रं विधाय तन्मध्यसूत्रमानं चतुर्विंशतिधा विभज्य, तेष्वेकांशमानं तद्बहिः प्रतिदिशं प्रसारितसूत्राग्रे पूर्ववच्चतुरस्रं प्रोक्तक्रमेण विधाय, तत्र पूर्वचतुरस्रस्थकोणसूर्यस्यार्धमानने बाह्यचतुरस्रे कोणचतुष्टयव्यत्यासावष्टम्भादुभयतः प्रतिरेखं चिह्नद्वयं क्रमात्सम्भूयाष्टचिह्नानि कृत्वा, चिह्नात् चिह्नं प्राग्वत्सूत्राष्टकमास्फाल्य तद्बहिर्गतकोणमार्जनादष्टाश्रं कुण्डं भवति। इत्थमष्टाश्रकुण्डक्षेत्रं परिकल्प्य खातकण्ठमेखलादिकं यथावत्कुर्यादिति दीक्षायामष्टौ कुण्डानि कार्याणि।

अष्टास्र कुण्ड—तन्त्रराज के अनुसार पूर्ववत् पूर्वोक्त चतुरस्र बनावे। उसके मध्य सूत्रमान से उसे चौबीस भागों में विभक्त करे। उसके एक अंशमान से उसके बाहर प्रत्येक दिशा में प्रसारित सूत्राग्र में पूर्ववत् प्रोक्त क्रम से चतुरस्र बनावे। पूर्व चतुरस्र के कोण के अर्धमान से चतुरस्र के बाहर कोण चतुष्टय व्यत्यास अवष्टम्भ से दोनों ओर प्रति रेखा में दो चिह्न लगावे। इससे आठ चिह्न होते हैं। चिह्न से चिह्न तक पूर्ववत् आठ सूत्रों को स्फालित करे। उसके बाहर के कोनों को मार्जित करने से अष्टास्र कुण्ड होता है। इस प्रकार अष्टास्र कुण्ड क्षेत्र बनाकर खानकर कुण्ड-मेखालादि यथावत् बनावे। दीक्षा में ये आठ कुण्ड बनते हैं।

पञ्चास्रकुण्डनिर्माणम्

अथ प्रसक्त्या काम्यहोमार्थं पञ्चाश्रसप्ताश्रकुण्डयोरपि लक्षणमुच्यते। तत्रादौ पञ्चास्रकुण्डमाह तत्रैव—

तन्मध्यसप्तमांशेन ब्रह्मसूत्रं विकास्य तत्। मानेन परितो भ्रान्त्या कृत्वा वृत्तं यथा ततः ॥१॥
तत्त्र्यंशमानात् तद्वृत्ते कृत्वा चिह्नानि तत्र वै। पातयेत्पञ्च सूत्राणि तत्स्यात्पञ्चास्रकुण्डकम् ॥२॥ इति।

अथैत्कुण्डरचनाप्रकारः—तत्र प्राग्वच्चतुरस्रक्षेत्रं कृत्वा तन्मध्यमानस्य सप्तमांशेन ब्रह्मसूत्रस्य प्रागग्रं बहिर्विकाश्य, तन्मानेन तच्चतुरश्रमध्यस्थहंसपदावलम्बनेन भ्रमाद् वृत्तं निष्पाद्य, तच्चतुरश्रमध्यसूत्रं चतुर्धा कृत्वा तेष्वंशत्रयेण अंशत्रयेण तद्वृत्ते ब्रह्मसूत्रप्रागग्रादिपरितः पञ्च चिह्नानि विधाय, तत्र चिह्नात् चिह्नं ज्यारूपाणि पञ्च सूत्राण्यास्फाल्य तत्तच्चाप(रूप)वृत्तखण्डमार्जनात् पञ्चाश्रकुण्डं भवति। इत्थं पञ्चाश्रकुण्डक्षेत्रं परिकल्प्य तद्बहिरपि प्रोक्तयुक्त्या कण्ठमेखलार्थं पञ्चास्रद्वयं परिकल्प्य खातादिकं कुर्यादिति।

पञ्चास्र कुण्ड—तन्त्रराज के अनुसार पूर्ववत् चतुरस्र क्षेत्र बनाकर उसके मध्यमान के सातवें अंश से ब्रह्मसूत्र को पूर्वाग्र बढ़ाकर उसके मान से चतुरस्र मध्यस्थ हंस पद के अवलम्ब से घुमाकर वृत्त बनावे। चतुरस्र मध्य सूत्र से चार सूत्र बनाकर उसके तीन अंश से वृत्त में ब्रह्मसूत्र के पूर्वाग्र के सब ओर पाँच चिह्न बनावे। उन चिह्नों से चिह्न पाँच ज्या रूप के पाँच सूत्रों को स्फालित करे। वृत्त खण्ड को चाप रूप में मार्जित करने से पञ्चास्र कुण्ड होता है। इससे पंचास्र कुण्ड का क्षेत्र निश्चित करे। उसके बाहर भी प्रोक्त युक्ति से कण्ठ मेखला के लिये दो पंचास्र बनावे। तब खातादि करे।

सप्तास्रकुण्डनिर्माणम्

अथ सप्तास्रकुण्डमाह तत्रैव—

तन्मध्यदशमांशेन विकाश्य ब्रह्मसूत्रकम् । तेन मानेन सम्भ्रान्त्या कृत्वा वृत्तं तथा ततः ॥१॥
तच्चतुष्षष्टिभागेषु त्रयस्त्रिंशांशमानतः । वृत्ते विधाय चिह्नानि सप्त सूत्राणि पातयेत् ॥२॥
................तत्सप्तास्रं भवेत्कुण्डम् । इति।

अथैतत्कुण्डरचनाप्रकारः—तत्र प्राग्वत्समचतुरश्रं कृत्वा तन्मध्यमानं दशधा विभज्य, तेष्वेकांशमानेन ब्रह्मसूत्रं बहिर्विकाश्य तन्मानेन तच्चतुरश्रमध्यस्थहंसपदमवष्टभ्य वृत्तं कृत्वा, तच्चतुरस्रमध्यसूत्रप्रमाणं चतुष्षष्टिधा विभज्य, तेषु त्रयस्त्रिंशदंशमानेन ब्रह्मसूत्रप्रागग्रादारभ्य वृत्ते सप्त चिह्नानि कृत्वा चिह्नाच्चिह्नं ज्यारूपेण सप्त सूत्राण्यास्फाल्य, तत्तच्चापरूपवृत्तखण्डमार्जनादेतत्सप्तास्रं कुण्डं भवेदिति। इति दशविधकुण्डनिर्माणप्रकारः।

अत्र दीक्षायामष्टौ कुण्डानि प्रागाद्यष्टदिक्षु नवममाचार्यकुण्डं चतुरस्रमेवेन्द्रेशानयोर्मध्ये कुर्यादिति सम्भूय नव कुण्डानि कार्याणि। अष्टकुण्डकरणाशक्तौ प्रागादिचतुर्दिक्षु चतुरस्रार्धचन्द्रवृत्तपद्माख्यानि चत्वार्येव कुण्डानि कुर्यात्। अत्राप्यशक्ताविन्द्रेशानयोर्मध्ये चतुरस्रमाचार्यकुण्डमेकमेव कुर्यादिति।

सप्तास्र कुण्ड—तन्त्रराज के अनुसार पूर्ववत् चतुरस्र बनाकर उसके मध्यमान से उसे दश भाग में बाँटे। उसके एक अंशमान से ब्रह्मसूत्र को बाहर निकाले। उस चतुरस्र के मध्यस्थ हंस पद के सहारे वृत्त बनावे। उस चतुरस्र के मध्य सूत्र प्रमाण से चौंसठ भाग करे। उसमें तैंतीस अंशमान से ब्रह्मसूत्र के पूर्वाग्र से प्रारम्भ करके वृत्त से सात चिह्न लगावे। चिह्न से चिह्न तक ज्या रूप में सात सूत्र स्फालित करे। उस वृत्त चाप रूप खण्ड के मार्जन से सप्तास्र कुण्ड बनता है। इस प्रकार ये दशविध कुण्ड-निर्माण के प्रकार हैं। दीक्षा में आठ कुण्ड आठो दिशाओं में बनावे। नवम आचार्यकुण्ड चतुरस्र के पूर्व और ईशान मध्य में बनावे। इस प्रकार नव कुण्ड बनावे। आठ कुण्ड बनाने में असमर्थ होने पर पूर्वादि चारो दिशाओं में चतुरस्र, अर्धचन्द्र, वृत्त, पद्म कुण्ड बनावे। इसमें भी अशक्त होने पर पूर्व, ईशान, मध्य में चतुरस्र एक आचार्य कुण्ड ही बनावे।

काम्यहोमेषु कुण्डभेदेन फलभेदः

अथैतेषां कुण्डानां काम्यहोमेषु कुण्डभेदेन फलभेदः। तत्र कुलप्रकाशतन्त्रे—

चतुरस्रे स्तम्भनं स्यात्सर्वसिद्धिकरञ्च तत् । भोगाः पुत्रा योनिकुण्डे ह्यर्धचन्द्रं शुभावहम् ॥१॥
मारणे केचिदिच्छन्ति त्रिकोणं द्वेषकारकम् । रिपुघातकरं केचिद्वृत्तं शान्तिकरं जगुः ॥२॥
षट्कोणमुच्चाटमृतिभेदेषु सुविशिष्यते । वृष्टिदं पुष्टिदं वापि पद्मकुण्डं विदुर्बुधाः ॥३॥
अष्टकोणं तु मुक्तौ स्यादरोगेऽपीति केचन । पञ्चकोणं चाभिचारशमने भूतकृन्तने ॥४॥
सप्तास्रमेव विज्ञाय काम्यकर्माणि साधयेत् । इति।

काम्य होमों में कुण्डानुसार फल-प्राप्ति—इन कुण्डों में काम्य होम करने पर कुण्डभेद से फल में भी भेद होता है। कुलप्रकाशतन्त्र में कहा गया है कि चतुरस्र कुण्ड में होम करने से स्तम्भन और सभी सिद्धियाँ मिलती हैं। योनिकुण्ड में हवन से भोग एवं पुत्र प्राप्त होते हैं। अर्धचन्द्र कुण्ड शुभदायक होता है, उसमें मारण कर्म भी होता है। त्रिकोण कुण्ड से विद्वेषण होता है और शत्रुओं का नाश होता है। वृत्त कुण्ड शान्तिकारक होता है। षट्कोण में उच्चाटन एवं मारण कर्म होते

है। त्रिकोण से विद्वेषण होता है। विद्वानों का कथन है कि पद्म कुण्ड वृष्टिकारक और पुष्टिदायक होता है। अष्टकोण से रोगमुक्ति होती है। पञ्च कोण से अभिचार-शमन और भूत-निकृन्तन होता है। सप्तास्र कुण्ड में काम्य कर्म साधित करना चाहिये।

वर्णभेदेन कुण्डभेदः

अथ वर्णभेदेन कुण्डभेदः। कुलमूलावतारे—

वर्णानामादितः कुण्डान्युक्तानि क्रमतः शिवे। चतुरस्रं वृत्तमर्धचन्द्रं त्र्यस्रमिति क्रमात् ॥१॥
सर्वेषां चतुरस्रं वा दीक्षायामुत्तमं शिवे। इति।

वर्णभेद से कुण्डभेद—कुलमूलावतार के अनुसार ब्राह्मणों के लिये चतुरस्र, क्षत्रियों के लिये वृत्त, वैश्यों के लिये अर्धचन्द्र और शूद्रों के लिये त्रिकोण कुण्ड प्रशस्त होते हैं। सबों के लिए चतुरस्र कुण्ड प्रशस्त होता है। दीक्षा में चतुरस्र उत्तम कहा गया है।

वेदिकापरितः कुण्डनिर्माणविशेषः

कुण्डान्यष्टौ चतुष्कं च तेषां रूपञ्च नामकम्। निर्माणं सकलं वक्ष्ये यथाविधि तवानघे ॥१॥
तुलाकुलीरमेषाणां मकरस्य च देशतः। विदध्याद्वृत्तकुण्डानि चरराशिचतुष्टये ॥२॥
वृषे सिंहे वृश्चिके च कुम्भे च स्थिरराशिषु। विदध्याच्चतुरस्राणिः ततः कुण्डान्यनुक्रमात् ॥३॥
मिथुने कन्यकायां च चापे मीने क्रमेण वै। उभयात्मसु कुर्वीत योनिकुण्डानि मङ्गले ॥४॥
अमङ्गलेषु कुर्वीत चरेष्वर्धशशाङ्ककम्। स्थिरेष्वपि त्रिकोणानि परेषु तु चतुष्टये ॥५॥
पञ्चास्रं च षडस्रञ्च सप्तास्रं चाष्टकोणकम्। इति।

अथ वेदिकापरितः कुण्डनिर्माणे विशेषमाह तन्त्रराजे—

वेदी के सब ओर कुण्डनिर्माण में विशेष—तन्त्रराज के अनुसार आठ कुण्डों के रूप-नाम-निर्माण—सबों को चतुष्टय रूप में कहता हूँ। तुला-कर्क-मेष-मकरचतुष्टय चर राशि वाले देश में वृत्त कुण्ड बनावे। वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ स्थिरराशिचतुष्टय वाले देश में चतुरस्र कुण्ड बनावे। मिथुन, कन्या, धनु, मीन उभयात्मक राशिचतुष्टय में मांगलिक कार्य में योनिकुण्ड बनावे। क्रूर कर्मों में चर राशि में अर्धचन्द्र कुण्ड बनावे। स्थिर में त्रिकोण बनावे। उभयात्मक चर राशि में पंचास्र, षड्स्र, सप्तास्र और अष्टास्र कुण्ड बनावे।

कुण्डे राशिस्थितिः

प्राच्यां मेषवृषौ वह्नौ मिथुनं दक्षिणे तथा। कुलीरसिंहावथ तन्निर्ऋत्यां कन्यका तथा ॥१॥
तुलाकीटौ पश्चिमतो धनुर्वायौ तु संस्थितम्। नक्रकुम्भावुत्तरतो मीनमीशे तु संस्थितम् ॥२॥ इति।

राशिस्थितिमाह तत्रैव—

कुण्ड में राशि-स्थिति—तन्त्रराज के अनुसार कुण्ड के पूर्व में मेष, वृष, आग्नेय में मिथुन, दक्षिण में कर्क-सिंह, नैर्ऋत्य में कन्या-तुला-वृश्चिक, पश्चिम में धनु, वायव्य में मकर-कुम्भ और ईशान में मीन राशि की स्थिति रहती है।

कुण्डवासना

परं शरीरं प्रकृतेः कुण्डरूपं पुरः शिरः। याम्यसौम्यकरौ कुण्डमुदरं पश्चिमे तथा ॥१॥
योनिश्च चरणौ प्रोक्ता सर्वतन्त्रेषु शाम्भवि। इति।

अथ कुण्डस्वरूपं तद्वासना च, प्रथमतन्त्रे—

कुण्डस्वरूप एवं उसकी वासना—कुण्ड परा शक्ति का शरीर है। सामने शिर है। दक्षिण-उत्तर हाथ हैं। कुण्ड उदर है। पश्चिम में योनि और चरण हैं। यह सभी तन्त्रों का मत है।

होमसंख्याभेदेन कुण्डमानभेदः

अथ होमसंख्याभेदेन कुण्डमानभेदस्तत्र लक्षसागरे—

पञ्चाशत्प्रमिते होमे कुण्डं रत्निमितं भवेत्। अरत्निमात्रं तु शते सहस्रमितहोमके ॥१॥
चतुर्विंशत्यङ्गुलाढ्यं द्विहस्तमयुते मतम्। चतुर्हस्तमितं लक्षे षट्करं दशलक्षके ॥२॥
कोटिहोमे चाष्टहस्तं कुण्डं कुर्यान्महेश्वरि। इति।

प्रकारान्तरं च तत्रैव—

एकलक्षं समारभ्य यावत्स्याद् दशलक्षकम्। तथैकहस्तमारभ्य दशहस्तं विवर्द्धयेत् ॥१॥
कोट्यां दशकरं प्रशस्तं परमेश्वरि। इति।

एतत्पत्रपुष्पकेवलघृतहोमेष्विति ज्ञेयम्। तत्रातिविस्तारस्य प्रयोजनाभावात्।

होमसंख्याभेद से कुण्डमानभेद—लक्षसागर के अनुसार पचास आहुतियों के लिये कुण्ड का मान केहुनी से मुट्ठी तक होता है। केहुनी से कानी अंगुली तक का मान सौ आहुतियों के लिये होता है। एक हजार आहुतियों के लिये कुण्ड का मान चौबीस अंगुल होता है। दश हजार हवन में दो हाथ का कुण्ड होता है। एक लाख हवन में कुण्ड का मान चार हाथ होता है। दश लाख हवन में कुण्ड छः हाथ का होता है। एक करोड़ हवन में आठ हाथ का कुण्ड होता है।

वहीं पर प्रकारान्तर से यह भी कहा गया है कि एक लाख से दश लाख तक के हवन में कुण्ड को एक हाथ से लेकर दश हाथ तक बढ़ाना चाहिये। करोड़ हवन में दश हाथ का कुण्ड प्रशस्त कहा गया है। ये सभी कुण्ड पत्र, पुष्प, घी आदि से हवन के लिये होते हैं। प्रयोजन के अभाव से उनका विस्तार नहीं बताया गया है।

द्विहस्तादिकुण्डविशेषाणां मानाङ्गुलक्षेत्रफलानि

अथैतेषां द्विहस्तादिकुण्डविशेषाणां मानाङ्गुलक्षेत्रफलानि लक्षसागरे—

फलाङ्गुलानि यावन्ति हस्तक्षेत्रे भवन्ति हि। द्विहस्तस्य च कुण्डस्य ततो द्वैगुण्यमिष्यते ॥१॥
हस्तक्षेत्राङ्गुलान्यत्र षट्सप्तत्या सहैव च। शतानि पञ्च विद्यन्ते तन्मूलं ब्रह्मसूत्रकम् ॥२॥
चतुर्विंशत्यङ्गुलानि विदध्याद्विधिवत्पुनः। अङ्गुलानि द्विपञ्चाशदेकादशशतानि च ॥३॥
तद्बीजं मध्यतो लिक्षाचतुष्कं चार्धसंयुतम्। चतस्रश्च तथा यूका यवाः सप्त तथैव च ॥४॥
अंगुलानि त्रयस्त्रिंशन्मानं सूत्रे तु मध्यमे। सप्तदशशतान्यष्टाविंशतिस्त्वङ्गुलानि च ॥५॥
क्षेत्रस्य तु त्रिहस्तस्य मानमेतदुदीरितम्। तन्मूलमङ्गुलान्येकचत्वारिंशच्चतुर्यवाः ॥६॥
यूकाचतुष्टयं किञ्चिन्न्यूनं लिक्षाचतुष्टयम्। चतुरङ्गुलयुक्तानि त्रयोविंशच्छतानि च ॥७॥
चतुर्हस्तस्य कुण्डस्य मानमेवमुदीरितम्। मूलं तस्याङ्गुलान्यष्टचत्वारिंशन्मितं भवेत् ॥८॥
ब्रह्मसूत्रं ततः पञ्चहस्तक्षेत्राङ्गुलानि तु। द्विसहस्रं शतान्यष्टावशीतिर्बीजमुच्यते ॥९॥
षट्पञ्चाशदङ्गुलानि चतुस्त्रिंशच्छतानि च। तन्मूलमष्टपञ्चाशदङ्गुलानि च षड्यवाः ॥१०॥
किञ्चिद्भागादिकं यूकाद्वयं सप्तकरस्य च। वेदसंख्यासहस्राणि द्वाविंशत्सहितानि च ॥११॥
मूलं चतुर्यवैः साकं त्रिषष्टिरङ्गुलानि च। ब्रह्मसूत्रं ततश्चाष्टहस्तक्षेत्राङ्गुलानि च ॥१२॥
वेदसंख्यासहस्राणि साष्टानि षट्शतानि च। अंगुलानि तथा सप्तषष्टिः सप्त यवाः पुनः ॥१३॥
किञ्चिदूनं मूलमस्य नवहस्तेषु दृश्यते। शतानि त्वेकपञ्चाशच्चतुर्भिरधिकानि च ॥१४॥
अशीतिरङ्गुलान्यत्र क्षेत्रं मानमितं भवेत्। द्वासप्ततिरङ्गुलानि मूलमस्य प्रकीर्तितम् ॥१५॥
पञ्चाङ्गुलानि क्षेत्रस्य दशहस्तमितस्य च। सहस्राणीषुसंख्यानि मुनिसंख्यशतानि च ॥१६॥
षष्टिश्च कथितान्यस्य तन्मूलं ब्रह्मसूत्रकम्। वर्धयेत् पञ्चसप्तत्याधिकैः सप्तयवैस्तथा ॥१७॥

अस्याधिकाभ्यां लिक्षाभ्यां साकमेवं प्रकल्पयेत् । अतियत्नं समास्थाय कुण्डान्यारचयेत् सुधीः ॥१८॥
द्विहस्तादिमितानां च निर्माणं दुर्घटं शिवे । इति।

अतियत्नमिति—अत्र त्रसरेण्वादिदशपर्यन्तान् मानभेदान् सम्यग्ज्ञात्वा तत्कुण्डविस्तारायामसमाननिम्नखातं यथोक्तमानकण्ठमेखलादिकं च कुर्यादित्यर्थः। दुर्घटं चातियत्नसाध्यत्वात्।

द्विहस्तादि कुण्डों का मान, क्षेत्रफल आदि—लक्षसागर में कहा गया है कि केहुनी से अंगुली के अग्रभाग तक हाथ का मान होता है। दो हाथ के कुण्ड में पहले का दुगुना होता है। हाथ भर के कुण्ड के अलावे पाँच सौ छिहत्तर अंगुलियों तक के मान होते हैं। उसके मूल में ब्रह्मसूत्र चौबीस अंगुल का होता है। फिर ग्यारह सौ बावन अंगुलियों के कुण्ड का मध्य साढ़े चार लिक्षा का चतुरस्र होता है। तैंतीस अंगुल, सात यव, एक यूका का मध्यम सूत्र होता है। अट्ठाईस सौ सत्रह अंगुल क्षेत्र के लिये तीन हाथ का मान होता है। उसका मूल इकतालीस अंगुल, चार यव होता है। तेईस सौ चार अंगुल, चार लिक्षा, चार यूका वाले क्षेत्र में चार हाथ का कुण्ड होता है। उसका मूल अड़तालीस अंगुल होता है। पाँच हाथ के क्षेत्र का अंगुल दो हजार दो सौ अट्ठासी होता है। छः हाथ में चौंतीस सौ छप्पन अंगुल, छः यव, दो यूका का मूल होता है। सात हाथ में चार हजार बाईस अंगुल होता है। मूल तिरसठ अंगुल का ब्रह्मसूत्र होता है। आठ हाथ के क्षेत्र में अंगुलमान चार हजार छः सौ साठ होता है। नव हाथ के क्षेत्र में सरसठ अंगुल सात यव का मूल होता है। दश हाथ में इक्यावन सौ चौरासी अंगुल का क्षेत्रमान होता है। बहत्तर अंगुल का मूल होता है। पाँच हजार सात सौ छियासठ अंगुल का ब्रह्मसूत्र होता है। इसे पचहत्तर अंगुल, सात यव, एक लिक्षा तक बढ़ाकर कल्पित करे। अति यत्न से कुण्डों की रचना करे। दो हाथ तक के कुण्डों का निर्माण अतिशय प्रयत्न से साध्य है। यहाँ पर अतियत्न का अर्थ यह है कि दश त्रसरेणु आदि तक मानभेद का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करके कुण्ड का विस्तार आयामसमान निम्न खात यथोक्त मान से मेखलादि बनाना चाहिये।

त्रसरेण्वादिमानभेदः

त्रसरेण्वादिमानभेदास्तु लक्षणसंग्रहे—
जालान्तरगते भानौ यत् सूक्ष्मं दृश्यते रजः । प्रथमं तत्प्रमाणानां त्रसरेणुं प्रचक्षते ॥१॥
त्रसरेणुस्तु विज्ञेयो ह्यष्टौ स्युः परमाणवः । त्रसरेणुरष्टगुणौ रथरेणुस्तु संस्मृतः ॥२॥
रथरेणवस्तु ते ह्यष्टौ बालाग्रं तन्मतं बुधैः । बालाग्राण्यष्ट लिक्षा तु यूका लिक्षाष्टकं स्मृतम् ॥३॥
अष्टौ यूका यवं प्राहुरंगुलं तु यवाष्टकम् । रत्निरङ्गुलिपर्वाणां विज्ञेयस्त्वेकविंशतिः ॥४॥
कर एव कलांशेन हीनोऽरत्निरुदाहृतः । चत्वारि विंशतिश्चैव हस्तः स्यादङ्गुलानि तु ॥५॥ इति।

त्रसरेणु आदि मानभेद—त्रसरेणु आदि का मानभेद लक्षणसंग्रह में स्पष्ट किया गया है। उसके अनुसार जाल से होकर आने वाली सूर्यकिरणों में जो सूक्ष्म कण दिखते हैं उन्हीं का प्रमाण त्रसरेणु है। आठ त्रसरेणु का एक परमाणु होता है, आठ त्रसरेणु का एक रथरेणु होता है। आठ रथरेणु का एक बालाग्र होता है। आठ बालाग्र का एक लिक्षा होता है। आठ लिक्षा का एक यूका होता है। आठ यूका का एक यव होता है। आठ यव का एक अंगुल होता है। अंगुलपर्वों को रत्नि कहा जाता है, जो इक्कीस अंगुल का होता है। एक कला कम अरत्नी होता है। चौबीस अंगुल का एक हाथ होता है।

कुण्डविस्तारायामसमाननिम्नखातकरणे मेखलादिप्रमाणम्

अथास्य कुण्डविस्तारायामसमाननिम्नखातकरणे मेखलादीनां च प्रमाणवचनानि। तथाच—
विंशत्या चतुरधिकाभिरङ्गुलीभिः सूत्रेणाप्यथ परिसूत्र्य भूमिभागम् ।
ताभिश्च प्रखनतु तावतीभिरेकां त्यक्त्वा चाङ्गुलिमपि मेखलाश्च कार्याः ॥१॥

इति प्रपञ्चसारवचनात्। 'यावान् कुण्डस्य विस्तारः खननं तावदीरितम्' इति शारदावचनात्। 'कुण्ड-विस्तारवन्निम्न'मिति वायवीयसंहितावचनात्।

चतुरस्रं चतुष्कोष्ठं सूत्रैः कृत्वा यथा पुरा। हस्तमानेन तन्मध्ये तावन्निम्नायतं खनेत्॥१॥

इति दिव्यसारस्वतप्रयोगसारवचनात्। 'चतुर्विंशाङ्गुलायामं तावत्खातसमन्वितम्' इति गणेश्वरपरामर्शिनी-वचनात्। 'चतुर्विंशतिसंख्याभिरङ्गुलीभिः सविस्तृतम्। खातं च रचयेत्कुण्डं' इति दक्षिणामूर्तिसंहितावचनाच्च कुण्डं विस्तारायामसमाननिम्नखातं कर्तव्यमिति सिद्धान्तः। अत्र केचित्—'हस्तमात्रं खनेत् तिर्यगूर्ध्वमेखलया सह' इति होमसारवचनात्। 'पञ्चत्रिमेखलोच्छ्रायं ज्ञात्वा शेषमधः खनेत्' इति प्रतिष्ठासारसंग्रहवचनात्। 'व्यासात् खातकरः प्रोक्तो निम्नस्तिथ्यङ्गुलेन तु' इति विश्वकर्मवचनात्। 'कुण्डं निजाङ्गुले तिर्यगूर्ध्वमेखलया सह' इति प्रथमतन्त्रे वचनात्। 'खातं कुण्डप्रमाणं स्यादूर्ध्वमेखलया सह' इति सिद्धान्तशेखरवचनाच्च मेखलया सह हस्तमानं खातं वदन्ति, एतन्न रम्यं मेखलयानुगमनेन खातस्याप्यनुगमनप्रसङ्गात्। 'खातं कुण्डायतेस्तुल्यमङ्गत्वं तस्य कीर्तितम्। सन्निपत्योपकारेण मेखलादेर्विशिष्यते' इति योगिनीहृदयवचनात् सन्निपत्योपकारस्य खातस्यारादुपकाराङ्गमेखलया सह निर्वाहानौचित्यात् तथोक्तपक्षस्यैव नियुक्तत्वात्। किञ्च—

मध्यमाङ्गुलिमध्यस्थपर्वणः परिणाहतः। तृतीयांशो भवेदत्र तन्त्रे सर्वत्र चाङ्गुलिः॥१॥
तैश्चतुर्भिर्भवेन्मुष्टिर्वितस्तिस्तत्त्रिभिर्गुणैः। अरत्निस्तद्द्वयेन स्याद्धस्तस्तद्द्वयतः शिवे॥२॥
तद्द्वयं तु भवेद्व्यामस्तन्माना स्यान्नरोन्नतिः। षण्णवत्यङ्गुला सा स्यात्तन्मानैः कुण्डकल्पनम्॥३॥

इति श्रीतन्त्रराजवचनात् कुण्डस्य षण्णवत्यङ्गुलायामविस्तारस्यावश्यकत्वात्, पञ्चदशाङ्गुलखातपक्षे खातमध्यादारभ्य मेखलोर्ध्वपर्यन्तस्य द्वादश-पञ्चदश-नवेति षट्त्रिंशदङ्गुलमात्रदर्शनात् तस्य पार्श्वद्वयेऽपि द्वैगुण्येन द्वासप्तत्यङ्गुलमात्रया चतुर्विंशत्यङ्गुलस्य तृतीयांशस्य न्यूनत्वाद्, द्वादशाङ्गुलोच्चमेखलासहितहस्तमात्रखाते तु पार्श्वद्वयेऽपि मध्यप्रदेशाद् द्वादश-त्रतुर्विंशतिर्द्वादशेति गणनयाष्टाचत्वारिंशद्द्वैगुण्येन षण्णवतिरिति प्रोक्तसंख्या-परिपूर्णत्वात् हस्तमात्रखातयुक्तद्वादशाङ्गुलोच्चमेखलापक्ष एव श्रेयानिति। एकाङ्गुलविस्तारस्य कण्ठस्य विद्यमानत्वात् पार्श्वद्वयेऽपि तद्ग्रहणेन द्व्यंगुलविस्ताराधिक्यात् षण्णवत्यङ्गुलायामत्वं कुण्डस्यानुपपन्नमिति चेन्न कण्ठस्यानावश्यकत्वात्। अत एव तन्त्रराजे कण्ठो नोक्तः। तर्हि कण्ठाकरणेऽपि दोषः श्रूयते। सत्यं तस्य तन्त्रराजविरोधादेव न्यूनमेखलान्यूनखातपरत्वं कल्पनीयमिति। तस्मान्मेखलया सह खातप्रतिपादकवचनानि रत्न्यरत्न्यादिषु कुण्डेषु पञ्चाशदादिहोमविधानेन खाताधिक्यप्रयोजनाभावात् तद्विषयकाणि इति मन्तव्यानि। अथात्र 'मेखलाः पञ्च वा कार्याः षट्पञ्चाब्धित्रिपक्षकैः' इति लक्षणसंग्रहवचनात्। 'षड्बाणाब्धिवह्निनेत्रमिताः स्युः पञ्च मेखलाः' इति सिद्धान्तशेखरवचनाच्च पञ्च वा मेखलाः कार्याः। तथा पिङ्गलामते—

षष्ठांशेनाष्टमांशेन मेखलाद्वितयं मतम्। एका षडङ्गुलोत्सेधविस्तरा मेखला मता॥१॥ इति।

कुण्ड के विस्तार-आयाम के समान खात-मेखलादि के प्रमाण-वचन—प्रपञ्चसार के अनुसार चौबीस अंगुल के सूत्र से भूमिभाग निश्चित करे। खोदकर खात बनावे। एक अंगुल छोड़कर मेखला बनावे। शारदातिलक के अनुसार कुण्ड की लम्बाई-चौड़ाई के बराबर गहराई खोदनी चाहिये। वायवीय संहिता के अनुसार कुण्डविस्तार के अनुसार ही उसका खात भी बनाना चाहिये।

एक हाथ का चतुरस्र बनाकर उसकी गहराई एक हाथ की खोदकर बनावे—ऐसा दिव्य सारस्वत में कहा गया है। प्रयोगसार के अनुसार चौबीस अंगुल आयाम वाला और उसी के बराबर चौबीस अंगुल गहरा कुण्ड बनाना चाहिये। गणेश्वर-परामर्शिनी—चौबीस अंगुल विस्तृत और उतना ही खात बनावे। दक्षिणामूर्तिसंहिता के अनुसार कुण्ड के विस्तार आयाम के

समान गहराई बनावे। किसी का मत है कि सीधी मेखला के साथ हाथ भर की गहराई करे—ऐसा होमसार में कहा गया है। पाँच तीन मेखला की ऊँचाई ज्ञात करके शेष से नीचे खाने—यह प्रतिष्ठासार का मत है। व्यास से पन्द्रह अंगुल कम गहराई करे—ऐसा विश्वकर्मा का कथन है। तिर्यक् ऊर्ध्व मेखलासहित अपने अंगुल से कुण्ड बनावे—ऐसा प्रथम तन्त्र में कहा गया है। ऊर्ध्व मेखलासहित मान से कुण्ड की गहराई करे—यह सिद्धान्तशेखर का मत है। मेखलासहित हाथ भर की गहराई करे। मेखला अनुगमन से खात बनाना रम्य नहीं होता।

मध्यमा अंगुलि के मध्य पर्व के परिणाह (गोलाई) का तृतीयांश अंगुलमान होता है। मुट्ठी का मान चार अंगुल है। उसका तिगुना बारह अंगुल का एक वित्ता होता है। दो वित्ता का अरत्नि और दो वित्ता का हाथ होता है। दो हाथ का एक व्याम होता है। छिआनबे अंगुल की ऊँचाई मनुष्य की होती है। अंगुल मान से ही कुण्ड की कल्पना होती है। इस तन्त्रराज वचन के अनुसार आवश्यकतानुसार कुण्ड का विस्तार छिआनबे और गहराई पन्द्रह अंगुल करे। खात मध्य से प्रारम्भ करके मेखला तक बारह, पन्द्रह, नव और छत्तीस अंगुल मात्र दर्शन से बनावे। दोनों पार्श्वों में उसका दुगुना बहत्तर अंगुल मात्रा से चौबीस अंगुल के तृतीयांश आठ अंगुल से कम बारह अंगुल ऊच्च मेखलासहित हाथ भर गहराई खाने। दोनों पार्श्वों के मध्य से बारह, चौबीस बारह गणना से चालीस का दुगुना, छिआनवे प्रोक्त संख्या पूर्ण होने से हस्तमात्र खातयुक्त बारह अंगुल उच्च मेखला पक्ष प्रशस्त होता है। एक अंगुल विस्तृत कण्ठ होने से दोनों पार्श्वों को उसके ग्रहण से दो अंगुल से अधिक विस्तार होता है। छिआनवे अंगुल आयाम कुण्ड में कण्ठ का आवश्यकत्व नहीं है; अतएव तन्त्रराज में कण्ठ उक्त नहीं है। कण्ठ नहीं बनाने से दोष होता है। यहाँ पाँच मेखला छः, पाँच, तीन के पक्ष में है। छः पाँच चार तीन दो की पाँच मेखला बनती है। सिद्धान्तशेखर के अनुसार भी पाँच ही मेखला बनानी चाहिये। पिंगलामत के अनुसार षष्ठांश, अष्टमांश से दो मेखला बनावे। एक मेखला का उत्सेध और विस्तार छः अंगुल होता है।

कुण्डानामयथाकरणे दोषाः

अथ कुण्डानामयथाकरणे दोषा भवन्तीत्याह वसिष्ठः—

अनेकदोषदं कुण्डमत्र न्यूनाधिकं यदि। तस्मात्सम्यक् परीक्ष्यैवं कर्तव्यं शुभमिच्छता ॥१॥ इति।

तत्र दोषानाह विश्वकर्मा—

खाताधिके भवेद्रोगी हीने धेनुधनक्षयः। वक्रकुण्डे तु सन्तापो मरणं छिन्नमेखले ॥१॥
मेखलारहिते शोकोऽभ्यधिके वित्तसंक्षयः। भार्याविनाशकं कुण्डं प्रोक्तं योन्या विना कृतम् ॥२॥
अपत्यध्वंसनं प्रोक्तं कुण्डं यत्कण्ठवर्जितम्। इति।

तथा क्रियासागरे—

न्यूनाधिकप्रमाणं यत्कुण्डं जर्जरमेखलम्। शृङ्गाररहितं यच्च यजमानविनाशकृत् ॥१॥ इति।

तथा जयद्रथयामले—

सूत्राधिके सुहृद्द्वेषो मानहीने दरिद्रता। वाग्रोधः कण्ठहीने स्यादसिद्धिर्न्यूनखातके ॥१॥
अधिके चासुरभोगो मानेनाधिकमेखले। व्याधयः सम्प्रवर्तन्ते वियोनौ स्यादपस्मृतिः ॥२॥
उच्चाटः स्फुटिते छिद्रसङ्कुले वाच्यता भवेत्। इति।

इत्थं निन्दाश्रवणाद् यथोक्तलक्षणसम्पन्नानि सर्वाणि कुण्डानि कार्याणि इति।

कुण्डों में अयथाकरण से दोष होता है, जैसा कि वशिष्ठ ने कहा भी है—न्यूनाधिक कुण्ड बनाने से अनेक दोष होते हैं। इसलिये सम्यक् परीक्षा के बाद शुभ की इच्छा से कुण्ड बनाना चाहिये।

दोषों का विवेचन करते हुये विश्वकर्मा ने कहा है कि खात के अधिक होने से साधक रोगी होता है। कम होने से उसके गाय और धन का नाश होता है। टेढ़े कुण्ड से सन्ताप और छिन्न मेखला होने से मृत्यु होती है। मेखलारहित कुण्ड

से शोक और धननाश होता है। योनिरहित कुण्ड से पत्नी की मृत्यु होती है। कण्ठरहित कुण्ड से अपत्य का नाश होता है। क्रियासार में कहा गया है कि जो कुण्ड प्रमाण से कम या अधिक, जर्जर, मेखला-शृंगाररहित होता है, वह यजमान का विनाशक होता है।

जयद्रथयामल में कहा गया है कि सूत्र से अधिक होने पर सुहृदों में विद्वेष, मानहीन होने से दरिद्रता, कण्ठहीन होने से वाक्-रोध, न्यून खात होने से सिद्धि नहीं मिलती है। मान से अधिक होने पर असुरों का भोग होता है। मान से अधिक मेखला से व्याधि होती है। योनिरहित कुण्ड से पत्नी की मृत्यु होती है। स्फुटित छिद्र संकुल होने उच्चाटन होता है। इस प्रकार की निन्दा सुनने के बाद यथोक्त लक्षणसम्पन्न सभी कुण्डों को बनाना चाहिये।

कण्ठप्रमाणम्

अथ कण्ठः। तत्र वसिष्ठः 'कण्ठोऽष्टयवमात्रः स्यात् कुण्डे तु करमात्रके' इति। तथा कालोत्तरे—

खाताद्वाह्योऽङ्गुलः कण्ठः सर्वकुण्डेष्वयं विधिः। चतुर्विंशतिकं भागमङ्गुलं परिकल्पयेत् ॥१॥ इति।

कण्ठ के बारे में वसिष्ठ का मत है कि एक हाथ के कुण्ड में आठ यव का कण्ठ बनाना चाहिये। कालोत्तर के अनुसार सभी कुण्डों में खात के बाहर कण्ठ होना चाहिये। यह चौबीस अंगुल का बनाना चाहिये।

योनिप्रमाणम्

अथ योनिः वायवीयसंहितायाम्—

मेखलामध्यतः कुर्यात्पश्चिमे दक्षिणेऽपि वा। योनिं सुशोभनां किञ्चिन्निम्नामुन्नालिकां शनैः ॥१॥
अग्रेण कुण्डाभिमुखीं किञ्चिदस्पृष्टमेखलाम्। कुम्भद्वयसमायुक्तामश्वत्थदलसन्निभाम् ॥२॥ इति।

तथा च वसिष्ठसंहितायाम्—

योनिश्च मध्यमे भागे प्राङ्मुखी मध्यसंस्थिता। अष्टाङ्गुलैश्च विस्तीर्णा चायता द्वादशाङ्गुलैः ॥१॥
पृष्ठोन्नता गजोष्ठी च सच्छिद्रा मध्यतोन्नता। इति।

सच्छिद्रा मध्ये। 'मध्ये त्वाज्यधृतिः स्मृता' इति त्रैलोक्यसारवचनात्, आज्यधृतिरिति योनिमध्ये गर्तं कर्तव्यमित्याहुः साम्प्रदायिकाः। तथा लक्षणसंग्रहे—

ईषत्कुण्डप्रविष्टाग्रा जिनांशकृतमेखला। मेखलार्थं पृथग्भूमिर्न ग्राह्या बाह्यतः प्रिये ॥१॥ इति।

'योनिक्षेत्रे तु सा कार्या' इति नारदः। 'कुण्डे त्र्यंशेन विस्तारा योनिरुच्छ्रायतोऽङ्गुला। कुण्डार्धेन तु दीर्घा स्यात्' इति। तथा त्रैलोक्यसारे—'दैर्घ्यात् सूर्यांगुला नालत्र्यंशोना विस्तरेण तु। एकाङ्गुलोच्छ्रिता सा तु' इति नालत्र्यंशोनाष्टाङ्गुलविस्तारा नालस्य द्वादशाङ्गुलदैर्घ्यादिति। स्वायम्भुवेऽपि—'मेखलामध्यतो योनिः कुण्डार्धा त्र्यंशविस्तृता' इति। विस्तारो मूलदेशे पिप्पलपत्राकृतित्वात्, द्विहस्तादिकुण्डेष्वनया रीत्या तत्तत्कुण्डार्धदीर्घा तत्तत्तृतीयांशविस्तारा तत्तच्चतुर्विंशांशोच्चा च योनिः कार्या। तदुक्तं सोमशम्भौ—

कुण्डानां यश्चतुर्विंशो भागः सोऽङ्गुलसंज्ञकः। विभज्य तेन कर्तव्या मेखलाकण्ठनाभयः ॥१॥ इति।

सिद्धान्तशेखरेऽपि—'चतुर्विंशतिमो भागः कुण्डानामङ्गुलं स्मृतम्' इति। दीर्घार्कपर्वभिर्योनिर्विस्तारेण षडङ्गुला। उन्नतिर्द्व्यङ्गुलेनोना स्यात्' इत्युक्तम्। अत्राष्टाङ्गुलषडङ्गुलयोरेकाङ्गुलद्व्यङ्गुलयोश्च विकल्पः। तथा 'होतुरग्रे योनिरासामुपर्यश्वत्थपत्रवत्' इति शारदावचनात् योनिः सर्वत्र होतुरग्रे प्रोक्तविधिना स्थाप्येति। तत्र चतुष्कुण्डपक्षे चतुरस्रे अर्धचन्द्रे कुण्डे च योनिर्दक्षिणभागस्थमेखलोपरि स्थाप्या तयोर्होत्रोरुत्तराभिमुखत्वात्। अन्यकुण्डयोः पश्चिममेखलोपरि योनिः स्थाप्या तयोर्होत्रोः पूर्वाभिमुखत्वात्।

दक्षस्था पूर्वयाम्ये तु जलस्था पश्चिमोत्तरे। पञ्चमस्यापि कुण्डस्य योनिर्दक्षिणदिक्स्थिता ॥१॥

इति त्रैलोक्यसारवचनात्। पञ्चमस्याचार्यकुण्डस्येत्यर्थः। अत्र कुण्डपक्षे तु—'प्रागग्नियाम्यकुण्डानां प्रोक्ता योनिरुदङ्मुखी। शेषाणां प्राङ्मुखी प्रोक्ता' इति तन्त्रान्तरवचनात् पूर्वाग्नेययाम्येषु उदङ्मुखी योनिरन्येषु प्राङ्मुखी नवमस्य तु प्राग्वदेव। एतेन योनिकुण्डेऽपि योनिः कर्तव्येति केचित्। तत्र 'योनिकुण्डे योनिमब्जकुण्डे नाभिं च वर्जयेत्' इति विश्वकर्मवचनात्।

योनि—वायवीय संहिता के अनुसार पश्चिम या दक्षिण मेखला के मध्य में सुन्दर योनि बनावे। इसे थोड़े-थोड़े ढालू बनावे। आगे कुण्डाभिमुखी मेखला से कुछ सटी हुई कुम्भद्वय-समायुक्त पीपल के पत्ते के समान बनावे। वसिष्ठसंहिता के अनुसार मध्य भाग में योनि पूर्वमुखी, आठ अंगुल विस्तृत और बारह अंगुल आयत का पृष्ठोन्नत गजोष्ठी सच्छिद्रा और मध्य में उन्नत बनानी चाहिये। त्रैलोक्यसार के अनुसार मध्य में छिद्र नहीं बनाना चाहिये। साम्प्रदायिकों का कथन है कि इसमें घी रहने के लिये छिद्र बनाना चाहिये। लक्षणसंग्रह के अनुसार कुण्डप्रतिष्ठा में तेईस अंश की मेखला बनावे। मेखला के लिये बाहर से भूमि ग्रहण करे। नारद के अनुसार योनिक्षेत्र में छिद्र बनाना चाहिये। कुण्ड तीन अंश विस्तृत और एक अंगुल उच्च बनावे। कुण्डार्ध दीर्घ होना चाहिये।

नाल—त्रैलोक्यसार के अनुसार बारह अंगुल दीर्घ तीन अंश आठ अंगुल का नाल विस्तृत एक अंगुल उच्च बनाना चाहिये। स्वायम्भुव में भी कहा है कि कुण्ड के साढ़े तीन अंश विस्तृत योनि मेखला मध्य में बनानी चाहिये। कुण्ड के मूल का विस्तार पीपल-पत्ते के आकार का बनावे। दो हाथ तक के कुण्ड में इस प्रकार से बनावे। उस कुण्ड का आधा लम्बा, उसके तीसरे भाग से विस्तृत, चौबीस अंश उच्च योनि बनावे। सोमशम्भु में भी कहा गया है कि हाथ भर के कुण्ड का चौबीसवाँ अंश एक अंगुल होता है। उसे विभाजित करके मेखला, कण्ठ और नाभि बनानी चाहिये। सिद्धान्तशेखर के अनुसार कुण्ड का चौबीसवाँ भाग एक अंगुल होता है। बारह अंगुल लम्बी, छः अंगुल विस्तृत, दो अंगुल उच्च योनि बनावे। यहाँ पर आठ अंगुल, छः अंगुल, एक अंगुल, दो अंगुल का विकल्प है। होता के आगे मेखला पर पीपल पत्ते की आकृति की योनि बनावे, शारदातिलक के इस कथन के अनुसार होता के आगे सर्वत्र प्रोक्त विधि से योनि बनावे। चार कुण्डीय मण्डप में चतुरस्र, अर्धचन्द्र कुण्ड में योनि दक्षिण भागस्थ मेखला पर बनानी चाहिये। उसमें होता उत्तराभिमुख बैठता है। अन्य कुण्डों में पश्चिम मेखला पर योनि बनावे। इसमें होता पूर्वाभिमुख बैठता है। दक्षिण कुण्ड पूर्व-दक्षिण कोण में, पश्चिमस्थ वायव्य में और पञ्चम कुण्ड की योनि दक्षिण दिशा में बनानी चाहिये। त्रैलोक्यसार के उक्त वचनानुसार पञ्चम आचार्य कुण्ड होता है। यहाँ पर कुण्ड के सम्बन्ध में तन्त्रान्तरों का कथन है कि पूर्व अग्नि दक्षिण कुण्डों में योनि उत्तरमुख बनानी चाहिये। शेष में पूर्वमुखी बनावे। इस प्रकार पूर्व आग्नेय दक्षिण में योनि उत्तरमुखी और अन्य में पूर्वमुखी बनावे। नवम पूर्ववत् होता है। इतने कुण्डों में योनि के बारे में कुछ का कथन है कि योनिकुण्ड में भी योनि बनानी चाहिये। योनिकुण्ड में योनि और पद्मकुण्ड में नाभि नहीं बनानी चाहिये—यह विश्वकर्मा का मत है।

नालप्रमाणम्

आसां मेखलानां नालमुक्तं तन्त्रराजे—'बहिःस्थमेखलामध्यादारभ्य निजनालकम्। वितस्तिमात्रकम्' इति। बहिःस्थमेखलामध्यात् तन्मध्यगतचतुरस्रपीठादित्यर्थः। तथैव तट्टीकाकृता मनोरमाकारेण व्याख्यातत्वात्। आचार्यचरणैस्तु—'योनिस्तत्पश्चिमायामथ दिशि चतुरस्रस्थलारब्धनाला' इत्युक्तं, तत्र पद्मपादाचार्यैः—मेखलात्रयाद्बहिश्चतुरङ्गुलायामविस्तारं कृत्वा तत्र नालं स्थाप्यमिति व्याख्यातम्। वितस्तिमात्रं द्वादशाङ्गुलमात्रम्। प्रयोगसारे तु—

योन्याः पश्चिमतो नालमायामे चतुरङ्गुलम्। त्रिद्व्येकाङ्गुलविस्तारं क्रमान्न्यूनाग्रमिष्यते ॥१॥

इति चतुरङ्गुलमानेन नालमुक्तम्। एतच्चतुरङ्गुलषडङ्गुलादि स्वल्पमेखलापक्षे ज्ञेयम्।

तन्त्रराज में कहा गया है कि बाह्य स्थित मेखला से आरम्भ करके निजनाल को वित्ते भर की दूरी पर बनावे। बाह्य स्थित मेखला मध्यगत चतुरस्र पीठ के लिये कहा गया है। आचार्यचरण के अनुसार योनि पश्चिम दिशा में बनानी चाहिये। जैसाकि पद्मपादाचार्य ने भी कहा है—मेखलात्रय के बाहर चार अंगुल आयाम विस्तार से नाल बनावे। एक वित्ता बारह अंगुल

का होता हैं। प्रयोगसार में भी कहा गया है कि योनि पश्चिम में और नाल दक्षिण में चार अंगुल का बनावे। तीन दो एक अंगुल क्रमश: न्यून अग्रभाग में बनावे। इसमें नाल का मान चार अंगुल है। चार अंगुल छ: अंगुलादि स्वल्प मेखला के सम्बन्ध मे है।

नाभिप्रमाणम्

नाभिमाह तन्त्रराजे—

नाभिं कुर्यात्तु सर्वत्र कुण्डमध्ये विधानतः। अष्टच्छदं सरोजं तु विदध्याच्चरुविग्रहम् ॥१॥
चतुर्भिरङ्गुलैः कुर्यात्कर्णिकां दलमेव च। विस्तारादपि चोत्सेधं षड्भिः षड्भिरुदाहृतम् ॥२॥ इति।

शारदायाम्—

कुण्डानां कल्पयेदन्तर्नाभिमम्बुजसन्निभम्। तत्तत्कुण्डानुरूपं वा मानमस्य निगद्यते ॥१॥
मुष्ट्यरत्न्येकहस्तानां नाभिरुत्सेधतारतः। द्वित्रिवेदाङ्गुलोपेतः कुण्डेष्वन्येषु वर्द्धयेत् ॥२॥
यवद्वयक्रमेणैव नाभिं पृथगुदारधीः। नाभिक्षेत्रं त्रिधा भित्त्वा ततः कुर्वीत कर्णिकाम् ॥३॥
बहिरंशद्वयेनाष्टौ पत्राणि परिकल्पयेत्।

इति नाभिलक्षणमुक्तं तत्र यथारम्यं ज्ञेयम्। 'आतपे क्षत्रिये नाभिः प्राण्यङ्गेऽपि द्वयो'रिति नाभिशब्दाः पुंलिङ्गेऽप्यस्ति।

नाभि—तन्त्रराज के अनुसार सभी कुण्डों के मध्य में विधिवत् नाभि बनावे। सुन्दर अष्टदल कमल बनावे। चार अंगुल की कर्णिका, दलों का विस्तार छ: अंगुल और ऊँचाई छ: अंगुल बनावे। शारदातिलक के अनुसार कुण्डों के मध्य में कमलाकृति की नाभि बनावे। कुण्डों के मान के अनुरूप नाभि का मान होता है। नाभि की ऊँचाई एक मुट्ठी, एक वित्ता या एक हाथ होती है। अन्य कुण्डों में दो-तीन-चार अंगुल बढ़ाकर बनावे। दो यव के क्रम से नाभि बनावे। नाभि क्षेत्र का तीन भाग करके कर्णिका बनावे। उसके बाहर दो अंशों का पत्र बनावे। उक्त नाभिलक्षण यथारम्भ ज्ञेय है।

वास्तुपूजा

अथ वास्तुपूजा। तत्र श्रीतन्त्रराजे—

चतुरस्राकृतिः कश्चिदसुरः सर्वनाशकः। पुरा तस्य वधायैव सर्वे देवाः समुद्यमम् ॥१॥
कृत्वा निहन्तुमुद्युक्तास्तैरवध्योऽभवद्वरात्। आवयोस्तन्निरासाय मामेत्याकथयंस्तथा ॥२॥
कथयास्माकमधुना तद्वास्तुपुरुषस्य तु। दर्पशान्तिर्न चेदस्य विश्वमासीदुपद्रुतम् ॥३॥
इत्युक्तं तैर्मया प्रोक्तं निधनं तस्य दुःशकम्। खात्वा तमवनौ तस्य शरीरे स्थापयेत्तथा ॥४॥
नित्यशश्च त्रिपञ्चाशन्निःस्पन्दाक्रमणाय वै। नियोज्य तेषां ये पूजाविमुखास्तैः कृतानि तु ॥५॥
सुकृतानि समादध्युर्दुष्कृतानि च कुर्वते। तस्मात्तेषामर्च्चनं तु प्रत्यब्दं कुर्वतां सदा ॥६॥
शुभान्येवासु जायन्ते नाशुभानि कदापि च। इति।

वास्तुपूजा—तन्त्रराज के अनुसार पूर्व समय में समस्त नाश करने वाला कोई चतुरस्राकृति असुर हुआ था। उसके वध के लिये सभी देवों ने यत्न किया; लेकिन वर के प्रभाव से उसका वध नहीं हो सका। शिव जी कहते हैं कि उसके निराकरण के लिये मैंने देवों से जो कहा, उस वास्तु पुरुष के बारे में अब कहता हूँ। यदि यह शान्त नहीं हुआ तो सारे संसार को खा जायगा; इसलिये मैंने कहा कि यह अवध्य है। वन में गड्ढा खोदकर उसे गड़वा दिया गया। नित्य तिरपन स्पन्द क्रम से उसे पूजा-विमुखों को खाने के लिये कहा। वह सुकृतों को शुभफल देता है और दुष्कृतों को अशुभ फल देता है। इसलिये प्रत्येक वर्ष उसका अर्चन करना चाहिये। इससे शुभ होता है; अशुभ कदापि नहीं होता।

वास्तुपूजाचक्ररचनाप्रकारः

तच्चक्रादिकमाह—

तच्चक्रादिविधानं तु यथावदभिधीयते। कृत्वा समतलां भूमिं चतुरस्राकृतिं शुभाम् ॥१॥

अष्टाष्टकोद्यतपदां कोणसूत्रसमन्विताम्। चतुष्पदयुते तस्यां मध्यकोष्ठे च देशिकः ॥२॥
ब्रह्माणमर्चयेत्तत्र चतुष्पदयुते पुनः। प्रादक्षिण्येन पूर्वादि यजेत् कोष्ठचतुष्टये ॥३॥
अर्यकं च विवस्वन्तं मित्रमन्यं महीधरम्। कोणार्धकोष्ठयोरेकमेकं मन्त्री समर्चयेत् ॥४॥
वह्न्यादीशान्तमभितो वक्ष्यमाणेष्वनुक्रमात्। सावित्रः सविता शक्र इन्द्रजिद्रुद्रतज्जितौ ॥५॥
आपापवत्सकौ चेति प्रोक्तास्तेऽष्टौ तु नामतः। कोणार्धकोणपार्श्वेषु वह्न्यादीशान्तमर्चयेत् ॥६॥
शर्वं गुहं चार्यमणं जम्भकं पिलिपिच्छकम्। चरकिं च विदारिं च पूतनां चैव देशिकः ॥७॥
ततः पूर्वादिपरतो यजेदष्टौ दिशं प्रति। ईशानश्चा(थ पर्जन्यो जयन्तः शक्रभास्करौ ॥८॥
सत्यो वृषोऽन्तरिक्षश्च पूर्वाशाकोष्ठगाः क्रमात्। अग्निः पूषा च वितथो यमोऽथ गृहरक्षकः ॥९॥
गन्धर्वो भृङ्गराजश्च मृगो दक्षिणकोष्ठगाः। निर्ऋतिश्च) तथा दौवारिकः सुग्रीवकस्तथा ॥१०॥
वरुणः पुष्पदन्तश्चासुरः शोषाख्यरोगकौ। पश्चिमाशास्थकोष्ठेषु पूज्या एते यथाक्रमम् ॥११॥
वायुर्नागस्तथा मुख्यः सोमो भल्लाटकस्तथा। अर्गलो दितिरप्येवमदितिश्च यथाक्रमम् ॥१२॥
कोष्ठेषूत्तरसंस्थेषु देवा एते समीरिताः। चित्रै रजोभिरापूर्य देवतानां पदानि वै ॥१३॥
व्रीहिमुद्गयवैः क्षौद्रघृतदुग्धाप्लुतैः क्रमात्। अष्टोत्तरशतं चाष्टोत्तरविंशतिमेव वा ॥१४॥
प्रत्येकं तद्धुनेद् द्रव्यैर्मन्त्रैस्तद्वच्च पायसैः। बलिं च तेषां कुर्वीत पायसैर्व्यञ्जनान्वितैः ॥१५॥
ससितैर्दुग्धकदलीफलापूपादिसंयुतैः। इति।

अथैतच्चक्ररचनाप्रकारः पूजाविधिं च वक्ष्यते—तत्र मण्डपस्य नैर्ऋतकोणे हस्तमात्रविस्तारायामां वितस्त्युन्नतां समचतुरस्रां वेदिकामतिश्लक्ष्णां कृत्वा प्राक्प्रत्यगायता दक्षिणोत्तरायताश्च नव नव रेखाः कृत्वा समान्तरालानि चतुष्षष्टिकोष्ठानि कृत्वा, तत्र वायुकोणादाग्नेयकोणगतं नैर्ऋतकोणादीशानगतं चेति कर्णसूत्रद्वयमास्फाल्य वास्तुचक्रं निर्माय, तन्मध्यकोष्ठचतुष्टयमेकीकृत्य तद्बहिः प्रागादिचतुर्दिक्षु प्रतिदिशं चत्वारि कोष्ठानि मध्यकोष्ठसंलग्नान्येकीकृत्य, त्रिपञ्चाशद्देवतास्थानानि परिकल्प्य, तानि स्थानानि वक्ष्यमाणरजोभिर्मनोहरं यथा भवति तथा सम्यगापूर्य, पुष्पाञ्जलिमादाय 'ब्रह्मादित्रिपञ्चाशद्देवता इहागच्छतागच्छते'ति पुष्पाञ्जलिप्रक्षेपेणावाह्य 'ब्रह्मादित्रिपञ्चाशद्देवता यथास्थानमिह तिष्ठत तिष्ठते'ति संस्थाप्य 'ब्रह्मादिभ्य इदमासनम्' इति पुटपुष्पाञ्जलिं दत्त्वा सर्वमध्ये ब्रह्मणे नमः। पूर्वादिचतुर्दिक्षु ॐ अर्यकाय नमः, ॐ विवस्वते नमः, ॐ मित्राय नमः, ॐ महीधराय नमः, इति प्रादक्षिण्येन सम्पूज्याग्नेयादिकोणचतुष्कगतार्धकोष्ठाष्टके प्रादक्षिण्येनाग्नेयादीशानपर्यन्तं ॐ सावित्राय नमः, ॐ सवित्रे नमः, ॐ शक्राय नमः, ॐ शक्रजिते नमः, ॐ रुद्राय नमः, ॐ रुद्रजिते नमः, ॐ आपाय नमः, ॐ आपवत्सकाय नमः, इति सम्पूज्य तद्बहिःस्थवेद्यामाग्नेयादिकोणचतुष्कगतकर्णसूत्रभिन्नकोष्ठाचतुष्टयपार्श्वगतकोष्ठाष्टके आग्नेयादीशानपर्यन्तं ॐ शर्वाय नमः, ॐ गुहाय नमः, ॐ अर्यम्णे नमः, ॐ जम्भकाय नमः, ॐ पिलिपिच्छकाय नमः, ॐ चरिक्यै नमः, ॐ विदार्यै नमः, ॐ पूतनायै नमः, इति सम्पूज्यः तद्बहिर्गतवीथीचतुष्टये प्राचीदिग्गतवीथ्यामीशानाद्याग्नेयान्तं ॐ ईशानाय नमः, ॐ पर्जन्याय नमः, ॐ जयन्ताय नमः, ॐ शक्राय नमः, ॐ भास्कराय नमः, ॐ सत्याय नमः, ॐ वृषाय नमः, ॐ अन्तरिक्षाय नमः, इत्यष्टौ देवताः सम्पूज्य, दक्षिणवीथ्यामाग्नेयादिनैर्ऋतान्तं ॐ अग्नये नमः, ॐ पूष्णे नमः, ॐ वितथाय नमः, ॐ यमाय नमः, ॐ गृहरक्षकाय नमः, ॐ गन्धर्वाय नमः, ॐ भृङ्गराजाय नमः, ॐ मृगाय नमः, इति सम्पूज्य, ततः पश्चिमवीथ्यां नैर्ऋतादिवायव्यान्तं ॐ निर्ऋतये नमः, ॐ दौवारिकाय नमः, ॐ सुग्रीवाय नमः, ॐ वरुणाय नमः, ॐ पुष्पदन्ताय नमः, ॐ असुराय नमः, ॐ शोषाय नमः, ॐ रोगाय नमः, इति सम्पूज्योत्तरवीथ्यां वायव्यादीशानान्तं ॐ वायवे नमः, ॐ नागाय नमः, ॐ मुख्याय नमः, ॐ सोमाय नमः, ॐ भल्लाटकाय नमः, ॐ अर्गलाय नमः, ॐ दित्यै नमः, ॐ अदित्यै नमः, इति गन्धपुष्पाद्यै-

स्त्रिपञ्चाशद्देवताः सम्पूज्य, कुण्डस्थण्डिलादौ वक्ष्यमाणविधिनाग्निस्थापनं कृत्वा ॐ ब्रह्मणे स्वाहा' अर्यकाय स्वाहा, इत्यादिपूजितदेवतानां स्वाहान्तैर्नाममन्त्रैः प्रत्येकं व्रीहियवमुद्गैर्घृतमधुदुग्धपरिप्लुतैः सघृतैः पायसैश्चैकैकद्रव्येणाष्टोत्तरशतसंख्यमष्टाविंशतिसंख्यं वैकैकदेवतानाम्ना हुत्वा ॐ ब्रह्मणे एष बलिर्नमः, इत्यादि पूजितदेवताभ्यस्तत्तन्नाम्ना तिलदुग्धकदलीफलापूपनानाव्यञ्जनान्वितपायसैस्तत्तत्पदे तस्यै तस्यै बलिं निवेदयेत्।

इति वास्तुपूजाविधिः

वास्तु-पूजन चक्र—मण्डप के नैर्ऋत्य कोण में एक हाथ विस्तार आयाम, एक वित्ता उच्च समचतुरस्र वेदिका चिकनी बनाकर पूर्व से पश्चिम एवं दक्षिण से उत्तर नव-नव रेखा समानान्तर खींचकर चौंसठ कोष्ठ बनावे। उसमें वायव्य से आग्नेय तक, ईशान से नैर्ऋत्य तक दो कर्णसूत्र खींचकर वास्तुचक्र बनावे। उसके बीच के चार कोष्ठों को एक में मिला दे। उसके बाहर पूर्वादि चारो दिशाओं में प्रत्येक दिशा में चार कोष्ठ मध्य कोष्ठ संलग्न करके मिला दे। उसके बाद तिरपन देवताओं के स्थान को कल्पित करके उनको वक्ष्यमाण रंग से सम्यक् रूप में भरे। पुष्पाञ्जलि लेकर 'ब्रह्मादि त्रिपंचाशद्देवता इहागच्छतागच्छ' कहकर पुष्पाञ्जलि अर्पण करके आवाहन करे। 'ब्रह्मादि त्रिपंचाशद्देवता यथास्थानमिह तिष्ठ तिष्ठ' कहकर उन्हें संस्थापित करे। 'ब्रह्मादिभ्य इदमासनम्' कहकर पुष्पाञ्जलि देवे। सबके मध्य में 'ब्रह्मणे नमः' से पूजा करे। पूर्वादि चारो दिशाओं में ॐ अर्यकाय नमः, ॐ विवस्वते नमः, ॐ मित्राय नमः, ॐ महीधराय नमः मन्त्रों से प्रदक्षिणक्रम पूजन करे। अग्न्यादि कोण चतुष्टयगत अर्द्धकोष्ठों में प्रादक्षिण्य से आग्नेय से ईशान तक ॐ सावित्राय नमः, ॐ सवित्रे नमः, ॐ शुक्राय नमः, ॐ शक्रजिते नमः, ॐ रुद्राय नमः, ॐ रुद्रजिते नमः, ॐ रुद्राय नमः, ॐ आपवत्सकाय नमः से पूजा करे। उसके बाहर वेदी के आग्नेयादि कोण चतुष्कगत कर्णसूत्र से विभक्त कोष्ठचतुष्टय के पार्श्वगत आठ कोष्ठों में आग्नेय से ईशान तक इनका पूजन करे—ॐ शर्वाय नमः, ॐ गुहाय नमः, ॐ अर्यम्णे नमः, ॐ जम्भकाय नमः, ॐ पिलिपिच्छकाय नमः, ॐ चरक्यै नमः, ॐ विदार्यै नमः, ॐ पूतनायै नमः से पूजा करे। उसके बाहर चार वीथियों में पूर्वगत वीथि में ईशानादि से आग्नेय तक इन आठ का पूजन करे—ॐ ईशानाय नमः, ॐ पर्जन्याय नमः, ॐ जयन्ताय नमः, ॐ शक्राय नमः, ॐ भास्कराय नमः, ॐ सत्याय नमः, ॐ वृषाय नमः, ॐ अन्तरीक्षाय नमः। दक्षिण वीथि में आग्नेय से नैर्ऋत्य तक इन आठ की पूजा करे—ॐ अग्नये नमः, ॐ पूष्णे नमः, ॐ वितथाय नमः, ॐ यमाय नमः, ॐ गृहरक्षकाय नमः, ॐ गन्धर्वाय नमः, ॐ भृङ्गराजाय नमः, ॐ मृगाय नमः। पश्चिम वीथि में नैर्ऋत्य से वायव्य तक इन आठ की पूजा करे—ॐ निर्ऋतये नमः, ॐ दौवारिकाय नमः, ॐ सुग्रीवाय नमः, ॐ वरुणाय नमः, ॐ पुष्पदन्ताय नमः। ॐ असुराय नमः, ॐ शोषाय नमः, ॐ रोगाय नमः। उत्तर वीथि में वायव्य से ईशान तक इन आठ की पूजा करे—ॐ वायवे नमः, ॐ नागाय नमः, ॐ मुख्याय नमः, ॐ सोमाय नमः, ॐ भल्लातकाय नमः, ॐ अर्गलाय नमः, ॐ दित्यै नमः, ॐ अदित्यै नमः।

इस प्रकार गन्धाक्षत-पुष्पों से तिरपन देवताओं की पूजा करके कुण्ड स्थण्डिल आदि में वक्ष्यमाण विधि से अग्नि-स्थापन करे। ॐ ब्रह्मणे स्वाहा, ॐ अर्काय स्वाहा से पूजित देवताओं को स्वाहान्त नाममन्त्रों से प्रत्येक को चावल, यव, मूंग को घी, मधु, दूध से परिप्लुत करके घी-सहित पायस द्रव्य से एक सौ आठ या अट्ठाईस आहुतियाँ प्रत्येक को देवे। ॐ ब्रह्मणे बलिर्नमः इत्यादि से पूजित देवताओं के नाममन्त्र से तिल, दूध, केला, पूआ, नाना व्यंजन-अन्वित पायस की बलि प्रत्येक को प्रदान करे।

वास्तुपूजाफलं तदकरणे फलवैपरीत्यम्

अथ वास्तुपूजाफलं तदकरणे फलवैपरीत्यं च तन्त्रराजे—

एवं सिंहगते भानौ पूर्णायां प्रतिवत्सरम्। स्वगेहे वास्तुपूजायां मण्डले तु समाचरेत् ॥१॥
न बालमरणव्याधिभूतप्रेतादिकानि च। न सर्पपीडा नान्योन्यकलहाद्यशुभानि च ॥२॥
पुत्रपौत्रधनारोग्यपशुदासीसमृद्धिभाक्। अरोगी विजयी ख्यातः चिरं जीवति तद्गृहे ॥३॥
राजवेश्मसु सर्वत्र तथा च महिषीगृहे। सचिवामात्यसेनानीभवनेषु पुरे तथा ॥४॥

विदध्यात्प्रतिवर्षं तु प्रोक्तसिद्ध्यै तु देशिकः। न चेदुक्तान्यथारूपफलैः क्लेशोऽनिशं भवेत्॥५॥ इति।

वास्तुपूजा-फल एवं न करने से विपरीत फल—तन्त्रराज के अनुसार इस प्रकार सिंह राशिगत सूर्य पूर्णिमा तिथि में प्रत्येक वर्ष अपने घर में वास्तुमण्डल में पूजा करे। ऐसा करने से बालमरण, व्याधि, भूत-प्रेत की बाधा नहीं होती। न सर्पपीड़ा और न ही आपस में कलह आदि अशुभ होते हैं। पुत्र, पौत्र, धन, आरोग्य, पशु, दासी, समृद्धि की प्राप्ति होती है। निरोग, विजयी, प्रसिद्ध और दीर्घायु उसके घर के सभी होते हैं। राजमहल में सर्वत्र रानी महल में, सचिव, अमात्य, सेनानी गृह में, नगर में उक्त फलों की प्राप्ति के लिये प्रतिवर्ष वास्तु-पूजन करना चाहिये। न करने से इन फलों के विपरीत फल प्राप्त होते हैं।

अङ्कुरार्पणविधिः

अथाङ्कुरार्पणविधिः तन्त्रान्तरे—

सप्तभिर्नवभिर्वापि दिनैर्दीक्षादिनात् पुरा। बीजारोपणकर्मेदं कर्तव्यं सर्वकामदम्॥१॥
मण्डपोत्तरदिग्भागे सुसंवृततरे परे। भवने मण्डले कुर्यादिके प्राग्वरुणायतम्॥२॥
याम्योदीच्यायतं त्वन्ये प्रवदन्ति मनीषिणः। पदानि द्वादशात्र स्युस्तेषु स्थानत्रयं भवेत्॥३॥
चतुष्टयपदोपेतं पदान्यापूरयेत्ततः। पीतरक्तसितश्यामै रजोभिर्वह्निपूर्वकम्॥४॥
ईशान्तं क्रमतस्त्वाहुः पात्राणि त्रिविधानि च। वैष्णव्यः पालिकाः प्रोक्ताश्चतुर्विंशाङ्गुलोच्छ्रिताः॥५॥
वैरिञ्च्यः पञ्चमुख्यश्चाप्युच्छ्रिताः षोडशाङ्गुलैः। शैवाः शरावाश्चत्वारो भान्वङ्गुलसमुच्छ्रयाः॥६॥
प्रक्षाल्य सूत्रैः संवेष्ट्य स्थानेष्वग्न्यादि विन्यसेत्। शालिपूर्णेषु गन्धादिदर्भकूर्चयुतेषु च॥७॥
पूरयेत्तानि पात्राणि वालुकामृत्करीषकैः। शङ्खस्वनेन नादैश्च पञ्चभिर्ब्राह्मणाशिषा॥८॥
क्षालयेद् दुग्धवंबीजैस्ततो बीजानि निर्वपेत्। तानि प्रियंगुश्यामाकतिलसर्षपशालयः॥९॥
मुद्गाढकीसुनिष्पावखल्वमाषाः प्रकीर्तिताः। हरिद्राभिश्च संसिच्य वस्त्रैराच्छादयेद्गुरुः॥१०॥
सन्ध्ययोरुभयो रात्रौ प्रदद्यादुत्तमं बलिम्। त्रिविधस्यापि पात्रस्य सप्तस्वपि दिनेषु च॥११॥
प्रथमेऽहनि भूतेभ्यस्तिला लाजा हरिद्रया। दधिसक्त्वन्नमित्युक्तं पितृभ्यस्तिलतण्डुलाः॥१२॥
तृतीयेऽहनि यक्षेभ्यः करम्भा लाजसंयुताः। चतुर्थेऽहनि नागेभ्यो नारिकेलघृताप्लुतम्॥१३॥
सक्तुपिष्टं च सम्प्रोक्तं पञ्चमे ब्रह्मणे बलिम्। पद्माक्षताश्च षष्ठेऽह्नि शिवायापूपसंयुतम्॥१४॥
अन्नं स्यात्सप्तमे चाह्नि विष्णवे स्याद्गुडौदनम्। यदि स्यान्नवरात्रं च तदोभयदिने बलिम्॥१५॥
विष्णवे स्याच्च दुग्धान्नं कृसरं च क्रमात्ततः। प्रणवाद्यैर्हृदन्तैः स्वनामभिर्बलिमन्त्रकः॥१६॥ इति।

करम्भा दधिसक्तवः। पद्माक्षताः पद्मबीजानि। कृसरस्तिलमुद्गैः सह सिद्ध ओदनः।

अथैतन्मण्डलरचनाप्रकारः—तत्र दीक्षादिनात्पूर्वमेव नवभिः सप्तभिर्वा दिनैः प्राङ्निर्मितमण्डपस्योत्तरभागे सुसंवृतं गृहं निर्माय, तत्र गोपयोपलिप्ते सुसमे भूतले प्राक्प्रत्यगायताः पञ्चहस्तदीर्घाः पञ्च रेखा यामयोदीच्यायता वितस्त्यन्तरालाश्चैकादश रेखाः कृत्वा, चत्वारिंशत्कोष्ठोपेतं सार्धद्वयहस्तविस्तारोपेतं मण्डलं कृत्वा, तत्रोदग्गतकोष्ठान्येकीकृत्य वीथीः कृत्वा, मध्यचतुष्कोभयपार्श्वयोः कोष्ठद्वयं कोष्ठद्वयं सम्मार्ज्यावशिष्टचतुष्कत्रयात्मकं द्वादशपदोपेतं मण्डलं निर्माय, चतुश्चतुःकोष्ठैरेकमेकं स्थानं ब्रह्मविष्णुरुद्राणां पश्चिममध्यमपूर्वक्रमेण परिकल्प्य, तत्र पश्चिमादिचतुष्कत्रयेऽपि प्रतिचतुष्कं आग्नेयकोष्ठमारभ्य ईशानकोष्ठपर्यन्तं पीतरक्तश्वेतश्यामवर्णैः रजोभिः प्रतिचतुष्कमेकेन रजसा एकैकं कोष्ठमिति क्रमेण द्वादश कोष्ठान्यापूर्य, तत्र स्थानत्रये मध्यमचतुष्के विष्णुदैवत्याश्चतुर्विंशत्यङ्गुलोन्नतविस्तृतियुक्ता डमरुकाकाराश्चतस्रः पालिका मध्ये पिप्पलदलाग्रपल्लवैः सह श्वेतसूत्रेण संवेष्टिताः संस्थाप्य, तथा पश्चिमचतुष्केप्येकस्मिन् पात्रे पञ्च पात्राणि यथा भवन्ति तथा शिल्पिवरनिर्मितानि प्राग्वत् डमरुकाकाराणि

षोडशाङ्गुलोन्नतविस्तृतियुक्तानि ब्रह्मदैवत्यानि चत्वारि पात्राणि तथैव पिप्पलादिदलयुक्तानि संस्थाप्य, तथा पूर्वचतुष्के द्वादशाङ्गुलोन्नतविस्तृतिभृतः शिवदैवत्याः प्राग्वत् पिप्पलादिदलयुक्ताश्चत्वारः शरावाः संस्थाप्याः इति द्वादशपात्राणि प्रक्षालितानि द्वादशकोष्ठेषु प्रतिकोष्ठमेकमेकं पात्रं शालिपुञ्जेषु गन्धाक्षतकूर्चयुक्तेषु संस्थाप्य, तानितानि पात्राणि वालुकामृत्करीषकैः सम्पूर्यैकस्मिन् नूतनभाण्डे स्वर्णादिरचिते मृण्मये वा प्रियङ्गुश्यामाकतिलसर्षपशालिमुद्गाढकीनिष्पा-वखल्वमाषाख्यानि दशधान्यान्येकीकृत्य, वमिति अमृतबीजेन गोदुग्धैः प्रक्षाल्य, शङ्खस्वनादिपञ्चवाद्यपुरःसरं तेषु पात्रेषु ब्रह्मदैवत्येषु प्रथमं, ततो विष्णुदैवत्येषु ततः शिवदैवत्येष्विति क्रमेण बीजानि निर्वाप्य, हरिद्रामिश्रजलैः संसिच्य, नूतनवस्त्रैराच्छाद्य सन्ध्ययोरर्धरात्रे च सप्तस्वपि दिनेषु प्रतिदिनं बलिं दद्यात्। तत्र प्रथमदिवसे तिलला-जासक्तुशाल्योदनानि हरिद्राचूर्णसंयुक्तान्येकीकृत्य कवलत्रयं निष्पाद्य, त्रिविधस्यापि पात्रस्य समीपे 'सर्वभूतानि इहागच्छतेह तिष्ठते'ति भूतान्यावाह्य संस्थाप्य 'ॐ सर्वभूतेभ्यो नमः' इति गन्धादिभिः सम्पूज्य, सर्वभूतबलिद्रव्याय नमः इति बलिद्रव्यं सम्पूज्य हस्ततले जलं गृहीत्वा वामहस्तेन बलिपात्रं स्पृशन् 'ॐ सर्वभूतेभ्य एष बलिर्नमः' इति बलिपात्रोपरि जलं निःक्षिप्य बलिमुत्सृजेत्। एवं विष्णुपात्रसमीपे शिवपात्रचतुष्कसमीपे च बलिं दद्यादिति प्रोक्तकालत्रयेऽपि बलिदानविधिः। अत्र मण्डलस्य चतुर्दिक्षु बलिर्देयः इति केचिदाहुस्तत्र यथागुरूपदेशं कार्यमिति। ततो द्वितीयदिने पितृभ्यस्तिलतण्डुलैः प्रागुक्तपरिपाट्यैव प्रोक्तकालत्रयेऽपि बलिं दद्यात्। चतुर्थेऽह्नि नागेभ्यो नारिकेलजलाप्लुतसक्तु-पिष्टबलिः। पञ्चमदिवसे ब्रह्मणे पद्माक्षतबलिः। षष्ठदिवसे शिवायापूपसंयुतौदनबलिः। सप्तमदिवसे विष्णवे गुडौदनबलिः। नवरात्रपक्षे विष्णव एवाष्टमदिवसे दुग्धौदनबलिः, नवमदिने कृसरबलिर्देयः। अत्र सर्वत्र बलिदाने प्रथमदिनप्रोक्त एव विधिर्ज्ञेयः, तत्तन्नाम्ना पूजनं बल्युत्सर्जनं च ज्ञेयमिति। अत्र नवस्वपि दिनेषु प्रतिदिनं तत्तद्देवताया बलिदानानन्तरं दशदि-क्पालेभ्योऽपि तत्तद्दिक्षु 'ॐ इन्द्राय एष बलिर्नमः' इत्यादितत्तन्नाम्ना घृतशर्करासहितपायसेन बलिर्देयः।

इति बीजारोपणविधिः

अङ्कुरार्पण-विधि—दीक्षा-दिवस के नव या सात दिन पहले पूर्वनिर्मित मण्डप के उत्तर तरफ सुसंवृत घर बनाकर भूतल को समतल कराकर गोबर से लीपकर उस भूतल पर पूर्व से पश्चिम पाँच हाथ लम्बा एवं दक्षिण से उत्तर ढाई हाथ चौड़ा आयत में पूर्व से पश्चिम बराबर दूरी पर तीन रेखा और दक्षिण से उत्तर की ओर नव रेखा एक वित्ते की दूरी पर खींचकर चालीस कोष्ठ का मण्डल बनावे। इन कोष्ठों को एकीकृत करके वीथि बनावे। मध्य के चार कोष्ठों के दोनों पार्श्वों में दो-दो कोष्ठों को मिटा दे। अवशिष्ट चतुष्क त्रयात्मक से द्वादश पदों से युक्त मण्डल बनावे। तीन चतुष्कों में से प्रत्येक में पश्चिम मध्य पूर्व क्रम से ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रस्थान की कल्पना करे। तीनों चतुष्कों में प्रत्येक में आग्नेय से प्रारम्भ करके ईशान तक पीला, लाल, सफेद, काले रंग के चूर्ण से पूरित करे। इस प्रकार बारहों कोष्ठों को पूरित करे। उन स्थानत्रय में से मध्य चतुष्क में चौबीस अंगुल लम्बी-चौड़ी ऊँची डमरू के आकार की चतुरस्र पालिका विष्णु देवत्वरूप में स्थापित करे। उसमें पीपल और आम्रपल्लवों को सफेद धागे से वेष्टित करके डाले। पश्चिम चतुष्क में एक बड़े पात्र में पाँच पात्रों को रखने के लायक डमरू के आकार का सोलह अंगुल उच्च विस्तृत पात्र बनवाकर ब्रह्म देवत्व रूप में स्थापित करे। पूर्ववत् उसमें पीपल आम्रपल्लवों को डाले।

पूर्व चतुष्क में बारह अंगुल उच्च और इतना ही विस्तृत चार पात्र शिव देवता के रूप में स्थापित करके पूर्ववत् पीपल-आम के पल्लवों को डाले। बारह प्रक्षालित पात्रों को बारह कोष्ठों में से प्रत्येक कोष्ठ में एक-एक करके रखे। शालिपुंज को गन्धाक्षत कूर्चयुक्त करके उनमें डाले। पात्रों में बालू, मिट्टी, गोबर मिलाकर भरे। एक सोने आदि के नये बर्तन में या मिट्टी के बर्तन में प्रियंगु, साँवाँ, तिल, सरसो, धान, मूंग, आढकी, निष्पाव, खल्व, उड़द, दश धान्य को मिलावे। 'वं' मन्त्र से दूध से प्रक्षालित करे। शङ्खध्वनिसहित पञ्च वाद्यों को बजाते हुए पहले ब्रह्म देवत्व पात्र में, तब विष्णु देवत्व पात्र में, तब शिव देवत्व पात्र में उन बीजों का वपन करे। हल्दी मिश्रित जल से उसे सिंचित करे। नये वस्त्र से ढँके। सन्ध्या और आधी रात में सात दिनों तक प्रतिदिन बलि प्रदान करे। पहले दिन में तिल, लावा, सत्तू, भात में हल्दी चूर्ण मिलाकर तीन ग्रास

बनावे। तीनों पात्रों में से प्रत्येक के समीप 'सर्वभूतानि इहागच्छ इह तिष्ठ' कहकर आवाहित स्थापित करे। 'ॐ सर्वभूतेभ्यो नमः' कहकर गन्धादि से पूजा करे। 'सर्वभूतबलिद्रव्याय नमः' कहकर बलि द्रव्य की पूजा करे। हाथ में जल लेकर बाँयें हाथ से बलि पात्र को छूकर कहे—ॐ सर्वभूतेभ्यः एष बलिर्नमः। बलि पात्र पर जल छोड़कर बलि प्रदान करे।

इसी प्रकार विष्णुपात्र शिवपात्र चतुष्क के समीप बलि प्रदान करे। तीनों सन्ध्याओं में बलि प्रदान करे। मण्डल के चारो ओर बलि प्रदान करे। किसी का मत है कि गुरु के उपदेशानुसार कार्य करे। दूसरे दिन पितरों को तिल-तण्डुल से पूर्वोक्त रीति से तीन सन्ध्याओं में बलि प्रदान करे। चौथे दिन नागों को बलि नारियल जल से सत्तूपिष्ठ बनाकर प्रदान करे। पाँचवें दिन कमल और अक्षत की बलि ब्रह्मा को प्रदान करे। छठे दिन पूआ और भात की बलि शिव को प्रदान करे। सातवें दिन विष्णु को गुड़-भात की बलि प्रदान करे। नवरात्र पक्ष में आठवें दिन विष्णु को दूध-भात की बलि देवे। नवें दिन खिचड़ी की बलि प्रदान करे। प्रथम दिन की बलि-विधान से ही सभी दिनों में बलि प्रदान करे। देवताओं के नाम से पूजन बलि प्रदान करे। इन नवों दिनों में प्रतिदिन देवता की बलि के बाद दश दिक्पालों को भी बलि प्रदान करे। बलि मन्त्र ॐ इन्द्राय एष बलिर्नमः इत्यादि कहकर घी, शक्कर और पायस की बलि प्रदान करे।

दीक्षाकाले मासाः

अथ दीक्षाकालः तत्रादौ मासाः। तत्र मन्थानभैरवतन्त्रे—

चैत्रे दुःखाय दीक्षा स्याद्वैशाखे सर्वसिद्धिदा। ज्यैष्ठे मृत्युप्रदा सा स्यादाषाढे बन्धुनाशिनी ॥१॥
श्रावणे वृद्धिदा नृणां नभस्ये दुःखदा मता। आश्विने सर्वसिद्धि स्यात्कार्तिके ज्ञानदायिनी ॥२॥
शुभदा मार्गशीर्षे च पौषे मेधाविनाशिनी। माघे सुवर्णलाभः स्यात्फाल्गुने सर्वसिद्धिदा ॥३॥ इति।

तथा तन्त्रान्तरे—

मधुमासे भवेद्दुखं माधवे रत्नसञ्चयः। मरणं भवति ज्यैष्ठे चाषाढे बन्धुनाशनम् ॥१॥
समृद्धिः श्रावणे नूनं भवेद्भाद्रपदे क्षयः। प्रजानामाश्विने मासे सर्वतः शुभमेव हि ॥२॥
ज्ञानं स्यात्कार्तिके सौख्यं मार्गशीर्षे भवत्यपि। पौषे ज्ञानक्षयो माघे भवेन्मेधाविवर्धनम् ॥३॥
फाल्गुनेऽपि समृद्धिः स्यान्मलमासं परित्यजेत्। इति।

ददन्मन्त्रं लभेन्मन्त्री दारिद्र्यं सप्तजन्मसु।

इति शिवयामलवचनादाश्विनमासो दीक्षायां विहितोऽपि निषिद्धः। महाबलचतुर्दशी शिवरात्रिः। तथा श्रीकण्ठसंहितायाम्—

शरत्काले च वैशाखे दीक्षा श्रेष्ठफलप्रदा। मार्गफाल्गुनके श्रेष्ठा ज्यैष्ठे चैव तु साधमा ॥१॥
माघमासे तु शुभदा दुष्टा साषाढमासके। आनन्ददा श्रावणे सा पौषे भाद्रे च निन्दिता ॥२॥ इति।

तथा च ज्ञानार्णवे—'शुक्लपक्षे शुभदिने शुभवारे वरानने। मन्त्राद्यारम्भणं कुर्यात्' इति। तथा कालोत्तरे—'मुक्तिकामैः कृष्णपक्षे भूमिकामैः सिते तथा। दीक्षा कार्या महादेवि' इति। तथा शैवागमे—

शुक्लपक्षे प्रकुर्वीत कृष्णे वा देशिकोत्तमः। शुक्ले सर्वसमृद्धिः स्यात्कृष्णे मध्यमतो भवेत् ॥१॥ इति।

दीक्षाकाल में मासविचार—मन्थानभैरव तन्त्र में कहा गया है कि चैत्र मास में दीक्षा लेने वाला मनुष्य दुःखी होता है। वैशाख में दीक्षा से सभी सिद्धियाँ मिलती हैं। ज्येष्ठ की दीक्षा मृत्युप्रदा होती है। आषाढ़ में दीक्षा से बन्धु का नाश होता है। श्रावण की दीक्षा वृद्धि करती है। भादो की दीक्षा दुःखदा होती है। आश्विन की दीक्षा सर्वसिद्धिदा होती है। कार्तिक की दीक्षा ज्ञानदायिनी होती है। अगहन की दीक्षा से शुभ होता है। पौष मास की दीक्षा से मेधा का नाश होता है। माघ में दीक्षा से स्वर्णलाभ होता है। फाल्गुन की दीक्षा सभी सिद्धियों को देने वाली होती है।

तन्त्रान्तर में कहा गया है कि चैत्र में दीक्षा लेने से दुःख होता है। वैशाख में रत्नों की प्राप्ति होती है। ज्येष्ठ में मरण होता है। आषाढ़ी दीक्षा से बन्धु का नाश होता है। श्रावण में दीक्षा से समृद्धि मिलती है। भादो में दीक्षा से धननाश होता है। आश्विन मास की दीक्षा सभी प्रकार से शुभ होती है। कार्तिक की दीक्षा से ज्ञान, मार्गशीर्ष की दीक्षा से सौख्य होता है। पौष की दीक्षा से ज्ञान का क्षय और माघ की दीक्षा से मेधावर्द्धन होता है। फाल्गुन की दीक्षा से समृद्धि होती है। मलमास में दीक्षा वर्जित है; क्योंकि इससे सात जन्मों में भी मन्त्रसिद्धि नहीं होती। शिवयामल के अनुसार आश्विन मास में दीक्षा विहित होने पर भी निषिद्ध है। शिवरात्रि चतुर्दशी में महाबल मिलता है। शरत्काल और वैशाख की दीक्षा श्रेष्ठ फल देने वाली होती है। अगहन-फाल्गुन की दीक्षा श्रेष्ठ और ज्येष्ठ की अधम होती है। माघ मास की दीक्षा शुभदा एवं आषाढ़ मास की दुष्टा होती है। श्रावण मास की दीक्षा आनन्ददायिनी होती है एवं पौष-भाद्र की दीक्षा निन्दनीय है। ज्ञानार्णव के अनुसार शुक्ल पक्ष, शुभ दिन एवं शुभ वार में मन्त्रानुष्ठान का आरम्भ करना चाहिये। कालोत्तर में कहा गया है कि मुक्ति की कामना से कृष्ण पक्ष में और भूमिलाभ के लिये शुक्ल पक्ष में दीक्षा लेनी चाहिये। शैवागम के अनुसार देशिक शुक्ल या कृष्ण पक्ष में दीक्षा दे सकता है। शुक्ल पक्ष में सर्वसमृद्धि और कृष्ण में मध्यम होती है।

दीक्षानक्षत्राणि

अथ नक्षत्राणि चिन्तामणौ—

अश्विनी रोहिणी चार्द्रा तथा पुष्योत्तरात्रयम् । हस्तचित्रास्वातिमैत्रविशाखाश्च धनिष्ठया ॥१॥
पुनर्वसू रेवती च दीक्षायामुत्तमा मता । इति।

मैत्रमनूराधा। तथा कामधेनौ—

रोहिणी मृगशीर्ष च तथा पुष्यश्च हस्तकः । स्वातीराधे रेवती च तथा चाप्युत्तरात्रयम् ॥१॥
शुभान्येतानि दीक्षायां नक्षत्राणि वरानने । इति।

नक्षत्र-विचार—चिन्तामणि में कहा गया है कि अश्विनी, रोहिणी, आर्द्रा, पुष्य, तीनों उत्तरा, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, विशाखा, धनिष्ठा, पुनर्वसु और रेवती दीक्षा के लिये उत्तम नक्षत्र कहे गये हैं।

कामधेनु में कहा है कि रोहिणी, मृगसिरा, पुष्य, हस्त, स्वाती, अनुराधा, रेवती और तीनों उत्तरा दीक्षा के लिये शुभ नक्षत्र हैं।

दीक्षायां निषिद्धनक्षत्राणि

अथ निषिद्धानि पिङ्गलामते—

कृत्तिकायां मनस्तापो भरण्यां च महापदः । पूर्वायां दण्डयेद्राजा मघायां मृत्युमादिशेत् ॥१॥
मूलेन कलहं विद्याज्ज्येष्ठा भवति हानिदा । पूर्वाषाढे भयं प्रोक्तं श्रवणेऽनेकरोगदा ॥२॥
शतभिषायां क्षोभदा सन्तापं भाद्रपदा भवेत् । इति।

दीक्षा में निषिद्ध नक्षत्र—पिंगला के अनुसार कृत्तिका में दीक्षा से मनस्ताप, भरणी में महा आपद, पूर्वा में दीक्षा से राजदण्ड प्राप्त होता है। मघा में मृत्यु होती है। मूल में कलह होता है। ज्येष्ठा से हानि होती है। पूर्वाषाढ़ा की दीक्षा से भय होता है। श्रवण में दीक्षा से अनेक रोग होते हैं। शतभिषा में दीक्षा लेने से क्षोभ होता है। भाद्रपदा में सन्ताप होता है।

दीक्षातिथयः

अथ तिथयः—

पूर्णिमा पञ्चमी चैव द्वितीया सप्तमी तथा । त्रयोदशी च दशमी प्रशस्ता सर्वकामदा ॥१॥ इति।

तथा श्रीकण्ठसंहितायाम्—

द्वितीया सप्तमी श्रेष्ठा षष्ठी सर्वत्र निन्दिता । द्वादश्यामपि कर्तव्यं त्रयोदश्यामथापि वा ॥१॥ इति।

विजयमालिनीतन्त्रे—

पञ्चम्येकादशी शुक्ला सप्तमी च त्रयोदशी। दशमी शुक्लपक्षस्य द्वादशी च विशेषतः॥१॥ इति।

रत्नसागरे—

तृतीया विहिता नित्यं षष्ठी सर्वत्र निन्दिता। सप्तम्यां धनलाभः स्यादष्टम्यां गुरुनाशनम्॥१॥
नवम्यामृक्थनाशः स्याद्दशमी सुखदायिनी। एकादश्यां भवेल्लाभो धनस्य वृषभस्य च॥२॥
द्वादश्यां धनलाभः स्यात्त्रयोदश्यां सदोदयः। शिष्यहानिश्चतुर्दश्यां पौर्णमासी तु सिद्धिदा॥३॥
अमायां पुत्रनाशः स्यात् प्रतिपद्बुद्धिनाशिनी। इति।

तिथि-विचार—पूर्णिमा, पञ्चमी, द्वितीया, सप्तमी, त्रयोदशी, दशमी तिथियाँ दीक्षा के लिये प्रशस्त एवं सर्वकामदा कही गई हैं। श्रीकण्ठसंहिता के अनुसार दीक्षा के लिये द्वितीया एवं सप्तमी श्रेष्ठ हैं। षष्ठी सर्वत्र निन्दित है। द्वादशी या त्रयोदशी में दीक्षा लेनी चाहिये। विजयमालिनी तन्त्र के अनुसार शुक्लपक्ष की पञ्चमी, एकादशी, सप्तमी, त्रयोदशी, द्वादशी दीक्षा के लिये प्रशस्त है।

रत्नसागर के अनुसार दीक्षा के लिये तृतीया विहित है। षष्ठी सर्वत्र निन्दित है। सप्तमी से धनलाभ होता है। अष्टमी में दीक्षा देने वाले गुरु की मृत्यु होती है। नवमी में दीक्षा से धन का नाश होता है। दशमी की दीक्षा से सुख मिलता है। एकादशी की दीक्षा से धन और बैल का लाभ होता है। द्वादशी की दीक्षा से धन-लाभ और त्रयोदशी की दीक्षा से तदैव उदय होता है। चतुर्दशी की दीक्षा से शिष्य को हानि होती है। पूर्णिमा की दीक्षा सिद्धिदा होती है। अमावस्या की दीक्षा से पुत्रनाश होता है। प्रतिपदा की दीक्षा से बुद्धिनाश होता है।

अथ देवताविशेषे तिथिविशेषः। कालोत्तरे—

ब्रह्मणः पौर्णमास्युक्ता द्वादशी चक्रधारिणः। चतुर्दशी शिवस्योक्ता वाचः प्रोक्ता त्रयोदशी॥१॥
द्वितीया तु श्रियः प्रोक्ता पार्वत्याश्च तृतीयका। चतुर्थी गणनाथस्य भानोः प्रोक्ता तु सप्तमी॥२॥ इति।

देवताविशेष की दीक्षा में तिथि-विशेष—कालोत्तर के अनुसार पूर्णमासी में ब्रह्मा, द्वादशी में विष्णु, चतुर्दशी में शिव, त्रयोदशी में सरस्वती, द्वितीया में लक्ष्मी, तृतीया में पार्वती, चतुर्थी में गणेश और सप्तमी में सूर्यमन्त्र की दीक्षा प्रशस्त होती है।

दीक्षावारादिकम्

अथ वासराणि तत्र मन्त्रसद्भावे—

मन्त्रारम्भो रवौ शुक्ले बुधे जीवे विशेषतः। शनौ मृत्युः क्षयं भौमे सोमे सर्वत्र निष्फलम्॥१॥ इति।

उत्तरतन्त्रे—

रवौ गुरौ बुधे शुक्रे कर्तव्यं परमेश्वरि। इति ज्ञात्वा वरारोहे मन्त्रं दद्याद्विचक्षणः॥१॥ इति।

विजयमालिनीतन्त्रे—

रवौ बुद्धिमवाप्नोति शुक्रे चैव धनागमम्। बुधेऽभियोगरहिता गुरौ पुत्रान्वितो भवेत्॥१॥
शन्यङ्गारकयोर्मृत्युरविद्या सोमके भवेत्। इति ज्ञात्वा वरारोहे दीक्षां दद्याद्विशालधीः॥२॥ इति।

वासर-विचार—मन्त्रसद्भाव के अनुसार शुक्ल पक्ष के रविवार में, बुध और गुरुवार में मन्त्रारम्भ उत्तम होता है। शनिवार से मृत्यु, मंगल से क्षय और सोमवार से मन्त्रारम्भ निष्फल होता है।

उत्तरतन्त्र के अनुसार रविवार, गुरुवार, बुधवार, शुक्रवार में मन्त्रारम्भ श्रेष्ठ कहा गया है। इसे जानकर ही बुद्धिमान को मन्त्रदीक्षा देनी चाहिये।

विजयमालिनी तन्त्र के अनुसार रविवार में दीक्षा से बुद्धि प्राप्त होती है। शुक्रवार से धनागम होता है। बुधवार की दीक्षा से अभियोगरहित होता है। गुरुवार की दीक्षा से पुत्रवान होता है। शनिवार मंगलवार की दीक्षा से मृत्यु होती है। सोम से विद्या होती है, यह जानकर दीक्षा देनी चाहिये।

दीक्षायोगः

अथ योगास्तन्त्ररत्नावल्याम्—

योगाश्च प्रीतिरायुष्मान्सौभाग्यः शोभनस्तथा। सुकर्मा च धृतिर्वृद्धिर्ध्रुवः सिद्धिश्च हर्षणः ॥१॥
वरीयांश्च शिवः सिद्धो ब्रह्मा ऐन्द्रश्च षोडशः। इति।

तथात्र योगास्तत्र वसिष्ठः—

पूर्वाषाढां प्रतिपदं पञ्चमीं कृत्तिकामथ। पूर्वाभाद्रपदा षष्ठी दशमी रोहिणी तथा ॥१॥
द्वादश्यां सर्पनक्षत्रमार्यम्णं च त्रयोदशी। नक्षत्रलुम्पा इत्येते देवानामपि नाशदाः ॥२॥ इति।
सर्पनक्षत्रमश्लेषा। उत्तराफाल्गुनी आर्यम्णम्।

दीक्षा में योगविचार—तन्त्ररत्नावली के अनुसार प्रीति, आयुष्मान, सौभाग्य, शोभन, सुकर्मा, धृति, वृद्धि, ध्रुव, सिद्धि, हर्षण, वरीयान, शिव, सिद्ध, ब्रह्म और ऐन्द्र सोलह योग दीक्षा में प्रशस्त कहे गये हैं। वसिष्ठ संहिता के अनुसार पूर्वाषाढ़ा, प्रतिपदा, पञ्चमी, कृत्तिका, षष्ठी, पूर्वाभाद्र, दशमी, रोहिणी, द्वादशी, सर्पनक्षत्र उत्तराफाल्गुनी, त्रयोदशी, नक्षत्रलुम्पा— ये सभी देवताओं के लिये भी विनाशकारक हैं। सर्पनक्षत्र आश्लेषा को कहते हैं।

दीक्षाकरणानि

अथ ज्योतिषशास्त्रे करणानि—

शुभानि करणान्याहुर्दीक्षायां तु विशेषतः। शकुन्यादीनि विष्टिं च विशेषेण विवर्जयेत् ॥१॥ इति।
अत्रादिपदेन किंस्तुघ्नचतुष्पदनागानां ग्रहणम्।

करणविचार—शकुनि, किंस्तुघ्न एवं विष्टि के अतिरिक्त सभी करणा दीक्षा में शुभ कहे गये हैं।

दीक्षालग्नानि

अथ लग्नानि तन्त्रान्तरे—

मन्त्राद्यारम्भणं मेषे धनधान्यप्रदं भवेत्। वृषे मरणमाप्नोति मिथुनेऽपत्यनाशनम् ॥१॥
कर्कटे सर्वसिद्धिः स्यात्सिंहे मेधाविनाशनम्। कन्या लक्ष्मीप्रदा नित्यं तुलायां सर्वसिद्धयः ॥२॥
वृश्चिके सर्वसिद्धिः स्याद्धनुर्ज्ञानविनाशनम्। मकरः पुत्रदः प्रोक्तः कुम्भो धनसमृद्धिदः ॥३॥
मीनो दुःखप्रदो नित्यमेवं राशिफलं प्रिये। इति।

तथा च रुद्रयामले—

मीने सिंहे तथा चापे वृषे हानिः प्रजायते। मेषे सर्वसमृद्धिः स्यात्कन्या रत्नप्रदा भवेत् ॥१॥
तुलायां धनधान्यं स्याद्वृश्चिके सर्वसिद्धयः। मकरे पुत्रलाभः स्यात्कुम्भे पशुसमृद्धयः ॥२॥
मिथुने पशुनाशः स्यात् कर्कटो राज्यदो मतः। एवं लग्नफलं ज्ञात्वा मन्त्रं दद्याद्विशालधीः ॥३॥
वृषमीनं तथा चापं सिंहलग्नं विवर्जयेत्। सुखदं शुभदं नित्यं कन्याद्यं सर्वसिद्धिदम् ॥४॥ इति।

लग्न-विचार—तन्त्रान्तर में कहा गया है कि मेष की दीक्षा धन-धान्यप्रद है। वृष से मृत्यु और मिथुन से सन्तान का नाश, कर्क से सर्वसिद्धिलाभ, सिंह से मेधा का विनाश होता है। कन्या से लक्ष्मी-प्राप्ति एवं तुला से सभी सिद्धियाँ मिलती है। वृश्चिक में सर्वसिद्धिलाभ, धनु में ज्ञान का नाश होता है। मकर पुत्रद एवं कुम्भ धन-समृद्धिदायक होता है। मीन की दीक्षा

से दुःख होता है। रुद्रयामल के अनुसार मीन-सिंह-धनु-वृष लग्न हानिकारक हैं। मेष से समृद्धि एवं कन्या से रत्नलाभ होता है। तुला से धन-धान्य एवं वृश्चिक से सर्वसिद्धि-लाभ होता है। मकर से पुत्रलाभ एवं कुम्भ से समृद्धि तथा पशुलाभ होता है। मिथुन से पशु-नाश होता है। कर्क राज्यप्रद है। इस प्रकार लग्न को जानकर विद्वान् मन्त्र-दीक्षा प्रदान करे। वृष, मीन, धनु, सिंह लग्न में दीक्षा न दे। कन्यादि सुखद, शुभद एवं सर्वसिद्धिप्रद हैं।

अथ दीक्षालग्नात् स्थानविशेषेषु स्थितानां ग्रहाणां शुभाशुभफलानि—

त्रिषडायगताः पापाः शुभाः केन्द्रत्रिकोणगाः । दीक्षायां तु शुभाः सर्वे रन्ध्रस्थाः सर्वनाशकाः ॥१॥ इति।

आयः एकादशस्थानम्। लग्नचतुर्थसप्तमदशमस्थानानां केन्द्रसंज्ञा। पञ्चमनवमस्थानयोस्त्रिकोणसंज्ञा। सूर्यशनिराहुकेतुकुजाः पापयुतो बुधः क्षीणशशी च पापाः। गुरुभृगुसुतपापरहितबुधपूर्णचन्द्राः शुभाः। रन्ध्रमष्टमस्थानम्। सर्वे नवग्रहा अपि।

अथ चन्द्रफलम्—'जन्मत्रिषट्सप्तैकादशपंक्तिगः शशी शुभफलप्रदो मतः। नेत्रद्वादशवसुपञ्चवेदग्रहराशिगः शशी दुष्टः स्मृतः'।

लग्न से स्थानस्थिति से ग्रह के शुभ-अशुभ फल—लग्न से तीसरे, छठे और ग्यारहवें में स्थित पापग्रह अशुभ होते हैं। लग्न से चौथे, सातवें, दशवें, पाँचवें, नवें स्थान में स्थित ग्रह शुभ होते हैं। अष्टमस्थ सर्वविनाशक होते हैं। सूर्य, शनि, राहु, केतु, पापयुत बुध, क्षीण चन्द्र पाप ग्रह होते हैं। गुरु, शुक्र, पापरहित बुध, पूर्ण चन्द्र शुभ होते हैं। रन्ध्र अष्टम स्थान है। चन्द्रफल—लग्न, तृतीय, षष्ठ, सप्त, एकादश का चन्द्रमा शुभ फलप्रद होता है। द्वितीय, द्वादश, अष्टम, पञ्चम, चतुर्थ, नवम स्थान का चन्द्र दुष्ट होता है।

दीक्षाकालः

अथ दीक्षायां कालः, तत्र शैवागमे—

अधोमुखे शुभे भे च चन्द्रशुद्धौ विशेषतः । कृष्णे ताराबलं कुर्यात्स्वनामादिविचिन्तनम् ॥१॥
धर्मदः प्रातःकालः स्यात्सङ्गवो राज्यदः स्मृतः । मध्याह्ने सर्वसिद्धिः स्यात्सायाह्ने सर्वतो भवेत् ॥२॥
रजनी मन्त्रदाने तु निषिद्धा देशिकोत्तमैः । दिवा सर्वं प्रकुर्वीत सिद्धिदं परमं स्मृतम् ॥३॥

दीक्षाकाल—शैवागम के अनुसार अधोमुख शुभ नक्षत्र, चन्द्र शुद्धि कृष्णपक्ष की, ताराबल का विचार अपने नाम से करके दीक्षा का समय निर्धारित करे। प्रातःकाल की दीक्षा से धर्म और षडङ्ग राज्यलाभ होता है। मध्याह्न की दीक्षा से सर्वसिद्धि और सायाह्न की दीक्षा से सर्वत्र लाभ होता है। रात में दीक्षा निषिद्ध है। दिन में दीक्षा से सिद्धि मिलती है।

अधोमुखनक्षत्राणि

अधोमुखनक्षत्राणि तु—

मूलाग्नेयमघाद्विदैवभरणीसार्पाणि पूर्वात्रयं ज्योतिर्विद्भिरधोमुखं हि नवकं भानामिदं कीर्तितम् ।
वापीकूपतडाकगर्तपरिखाखातो निधेरुद्धृतिः क्षेपो द्यूतबिलप्रवेशगणनारम्भाः प्रसिद्ध्यन्ति च ॥१॥
द्विदैवं विशाखा 'विशाखानक्षत्रस्येन्द्राग्नी देवते'ति श्रुतिः।

अधोमुख नक्षत्र—मूल, कृत्तिका, विशाखा, भरणी, आश्लेषा, मघा, पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाभाद्र, पूर्वाषाढा—इन नव नक्षत्रों को अधोमुख कहते हैं। इनमें क्रमशः वापी, कूप, तड़ाग, गर्त, परिखा, खात, निधिग्रहण, क्षेप, द्यूत, बिलप्रवेश कार्य सिद्ध होते हैं।

ग्रहणे दीक्षारम्भः

अथ दीक्षायाः कालविशेषस्तत्र ज्ञानार्णवे—

मन्त्राद्यारम्भणं कुर्याद्ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। ग्रहणाद्देवदेवेशि कालः सप्त दिनावधि ॥१॥
पवित्रपर्व देवेशि वाममेवाशुभे दिने। कालचर्चा न कर्तव्या ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥२॥
पुण्यतीर्थे कुरुक्षेत्रे देवीपीठचतुष्टये। इति।

तथा रत्नसागरे—
सत्तीर्थेऽर्कविधुग्रासेऽनन्तवामनपर्वणोः। मन्त्रदीक्षां प्रकुर्वाणो मासर्क्षादीन्न शोधयेत् ॥१॥ इति।

अत्र यद्यपि—
सूर्यग्रहणकाले तु नान्यदन्वेषितं भवेत्। सूर्यग्रहणकालेन समो नान्यः कदाचन ॥१॥
तत्र यद्यत्कृतं सर्वमनन्तफलदं भवेत्। न मासतिथिवारादिशोधनं सूर्यपर्वणि ॥२॥
ददातीष्टं च गृह्णीयात् तस्मिन्काले गुरोर्नरः। सिद्धिर्भवति मन्त्रस्य विनाभ्यासेन वेगतः ॥३॥
इति चिन्तामणिकालिकोद्भवयोः सूर्यग्रहणस्यैव विधायकवचनदर्शनात्।

चन्द्रग्रहे तु या दीक्षा या दीक्षा वनचारिणाम्। जनकस्य तु या दीक्षा दारिद्र्यं सप्तजन्मसु ॥१॥

इति योगिनीतन्त्रे चन्द्रग्रहे दीक्षानिषेधवचनदर्शनात् प्रागुक्तरजनीमन्त्रनिषेधवचनाच्चेति सूर्योपरागकालोऽप्युपरागसाधारणतया प्रागुक्तशिवयामलवचनेन निषिद्धत्वान्नात्यन्तं प्रशस्त इत्यवधेयम्। किन्तु—
चन्द्रसूर्यग्रहे तीर्थे सिद्धिक्षेत्रे शिवालये। मन्त्रमात्रस्य कथनमुपदेशः स उच्यते ॥१॥
इति कालिकोद्भववचनान्मन्त्रान्तरेषु विधिवद्दीक्षितानां दोषावह इति।

दीक्षाकाल में विशेष—ज्ञानार्णव में कहा गया है कि चन्द्र-सूर्यग्रहण में मन्त्रारम्भ करे। इन ग्रहणों से सात दिनों की अवधि को पवित्र काल कहा गया है। शुभ दिन में मन्त्रारम्भ करे। चन्द्र-सूर्यग्रहण, पुण्य तीर्थ, कुरुक्षेत्र और देवी पीठचतुष्टय में कालगणना नहीं होती है।

रत्नसागर में कहा गया है कि पुण्य तीर्थ, सूर्य-चन्द्र ग्रहण, अनन्त वामन पर्व में मन्त्र दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये। इनमें मास-नक्षत्रादि का शोधन नहीं करना चाहिये। सूर्यग्रहण में अन्य किसी का भी विचार नहीं किया जाता, क्योंकि इसके समान अन्य कोई भी समय पुण्य फलप्रद नहीं है। इस समय में जो कुछ भी किया जाता है, उसका अनन्त फल प्राप्त होता है। सूर्य पर्व में मास-तिथि-वारादि का शोधन नहीं करना चाहिये। इस समय में गुरु द्वारा प्रदत्त कोई भी मन्त्र बिना अभ्यास के ही सद्यः सिद्ध होता है—इस चिन्तामणि और कालिका पुराण के वचनानुसार सूर्यग्रहण ही प्रशस्त कहा गया है। चन्द्र ग्रहण की दीक्षा, वनचारियों से दीक्षा, पिता से दीक्षा प्राप्त करने से सात जन्मों तक दरिद्रता होती है—इस प्रकार योगिनीतन्त्र में पठित होने से चन्द्र ग्रहण को दीक्षा में प्रशस्त नहीं कहा गया है।

चन्द्र-सूर्य ग्रहण, तीर्थ, सिद्ध क्षेत्र और शिवालय में मन्त्र के कथनमात्र से ही उपदेश हो जाता है—इस कालिकापुराण के मन्त्रों में अन्तर से विधिवत् दीक्षा दोषावह होती है।

क्रियावती दीक्षा

अथ क्रियावती दीक्षा, उत्तरतन्त्रे—
अथ वक्ष्यामि दीक्षाणां विधानं मन्त्रकाम्यया। याभिर्विना न लभ्यन्ते सर्वमन्त्रफलानि वै ॥१॥
आत्मलाभं ददत्येताः क्षिण्वन्ति दुरितान्यपि। तेन दीक्षा इति प्रोक्तास्तासां तत्त्वविचारकैः ॥२॥
ताश्च क्रमेण कथिताः क्रियामय्यर्णमय्यपि। कलामयी वेधमयी चतस्रो ज्ञानदाः शुभाः ॥३॥ इति।
पञ्चमीश्वरीतन्त्रे—
पुण्याहं वाचयित्वादौ ब्राह्मणैः स्वस्तिपूर्वकम्। पञ्चवाद्यनिनादैश्च वेदघोषैः सुहृद्वृतः ॥१॥

गत्वा गुरुगृहं शिष्यः प्रणम्य गुरुपादुकाम् । दत्त्वा वरणसामग्रीं सङ्कल्प्य वृणुयाद्गुरुम् ॥२॥
उच्चार्यामुकमन्त्रस्य ग्रहणाय द्विजोत्तमः । गुरुत्वेनेति सम्भाष्य त्वामहं च ततो वृणे ॥३॥
इत्युक्त्वा वृणुयाच्छिष्यो वृतोऽस्मीति ततो गुरुः । यथोचितं गुरो कर्म कुरुष्वेति वदेच्छिशुः ॥४॥
करवाणीति चोच्चार्य पञ्चवाद्यपुरःसरम् । ततः शिष्येण सहितो यायाद्यागगृहं गुरुः ॥५॥
पुण्याहवाचनं कृत्वा शिष्यो भक्तिपरायणः । हारकुण्डलकेयूरमुद्रिकाङ्गदभूषणैः ॥६॥
हेमयज्ञोपवीतैश्च मधुपर्कैर्यथाविधि । महार्घवस्त्रताम्बूलैः फलपुष्पसुगन्धकैः ॥७॥
अवित्तशाठ्यमभ्यर्च्य यथावद्वृणुयाद्गुरुम् । ऋत्विजोऽपि तथाभ्यर्च्य वृणुयादुक्तसंख्यकान् ॥८॥ इति।

क्रियावती दीक्षा—उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि मन्त्रसिद्धि के लिये दीक्षा-विधान कहता हूँ; जिसके बिना सभी मन्त्रों के फल नहीं मिलते। विधिवत् दीक्षा से आत्मलाभ होता है, कष्टों का नाश होता है। तत्त्वविचारकों ने इसीलिये इसका नाम दीक्षा रखा है। इसलिये दीक्षा का क्रम कहता हूँ। इसमें क्रियावती, मन्त्रमयी, कलामयी और वेधमयी चारो दीक्षा से शुभ ज्ञान प्राप्त होता है। पञ्चमीश्वरी तन्त्र में कहा गया है कि पहले स्वस्तिपूर्वक पुण्याहवाचन ब्राह्मणों से कराकर पञ्चवाद्य बजाते और वेदघोष करते हुए सुहृदों के साथ गुरुगृह में जाय। शिष्य प्रणाम करके गुरु को पादुका देकर वरण सामग्री का संकल्प कराकर वरण करे। मन्त्र का नाम कहकर कहे कि इस मन्त्र को ग्रहण करने के लिये हे द्विजोत्तम! आपको मैं गुरुरूप में वरण करना चाहता हूँ। तब गुरु कहे कि मैं तुम्हें शिष्य बनाने के लिये वृत हूँ। यह कहकर गुरु शिष्य को यथोचित कर्म करने के लिये कहे। तब शिष्य 'मैं वरण करता हूँ' कहकर पञ्चवाद्य बजाते हुए शिष्यसहित यागगृह में आये। गुरु को आसन पर बैठाकर शिष्य भक्तिसहित हार-कुण्डल-केयूर-मुद्रिका-अंगद-आभूषण-सोने का जनेऊ, मधुपर्क, महार्घ वस्त्र, ताम्बूल, फल, पुष्प, गन्ध से वित्तशाठ्य छोड़कर पूजन करके गुरु का वरण करे। ऋत्विजों की संख्या बोलकर उनकी पूजा करे। तब उनका वरण करे।

मधुपर्कविधानम्

अथ मधुपर्कविधानमुक्तं डामरे—

मधुपर्कविधानं ते यथावत् कथयाम्यहम् । श्रीपर्णीवृक्षपीठानि हस्तमानानि मानतः ॥१॥
अष्टांगुलसमुच्छ्रायसहितानि समानि च । सप्तविंशतिदर्भाणां वेण्योऽग्रे ग्रन्थिभूषिताः ॥२॥
विष्टरे सर्वयज्ञेषु लक्षणं परिकीर्तितम् । सुखोष्णोदकसम्पूर्णाः पाद्यार्थे ताम्रगण्डकाः ॥३॥
शङ्खा अर्घ्यप्रदानाय गन्धपुष्पजलान्विताः । दूर्वोदकसमायुक्ताः स्थापनीयाः पृथक्पृथक् ॥४॥
कमण्डलुः सुताम्रस्य आचम्योदकपूरितः । सम्पुटा मधुपर्कार्थं कांस्या दध्यादिपूरिताः ॥५॥
महान्त्यर्घ्याणि द्रव्याणि मुद्रिकाद्यं सुभूषणम् । मयूरपत्रच्छत्राणि सोष्णीषाणि समाहरेत् ॥६॥
पादुका आहरेत्तत्र चर्मभूषणभूषिताः । अन्यत्स्मार्ते यदप्युक्तं मधुपर्कस्य पूजने ॥७॥
तत्कृत्वा फलमाप्नोति महायज्ञार्हणोपमम् । अन्येभ्यो मधुपर्कस्य विप्रेभ्यः पूजनं स्मृतम् ॥८॥
भक्त्या तद्द्विगुणं दद्यादाचार्याय सुभक्तिमान् । अन्यैर्द्विजैः समं यत्र देशिकस्य प्रपूजनम् ॥९॥
तस्मिन् यज्ञे फलं स्वल्पमनावृष्टै यथा क्षितिः । देशिकेन्द्रो विधानेन स्नात्वा निर्वर्तिताह्निकः ॥१०॥
मौनमास्थाय भूषाढ्यो गच्छेद्यागगृहं प्रति । आचार्यः पूर्वदिवसे उपवेश्य समासने ॥११॥
शिष्यं मूलेन सञ्ज्ञप्तं दद्याद्वै दन्तधावनम् । दन्तान् विशोध्य पुरतः स्थण्डिले हस्तमात्रके ॥१२॥
चतुरस्रे पूजयत्तत्परीक्षेत ततो गुरुः । ईशानाग्रे ज्ञानलाभः प्रागग्रे भूतिरुत्तमा ॥१३॥
आग्नेयाग्रे मनस्तापो बन्धुनाशश्च दक्षिणे । राक्षसाग्रे मृत्युभयं वारुण्यग्रे मनःशुचम् ॥१४॥
वायव्याग्रे व्यग्रता च कौवेराग्रे सुखावहम् । अमङ्गलस्थानपाते प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥१५॥

प्रायश्चित्तमग्रे पुरश्चरणप्रकरणे वक्ष्यते।

मधुपर्क-विधान—डामरतन्त्र में कहा गया है कि अब मधुपर्क-विधान को यथावत् कहता हूँ। श्रीपर्णी वृक्ष (गम्हार) की लकड़ी का एक हाथ लम्बा चौड़ा वित्ता भर ऊँचा वर्गाकार पीढ़ा बनवाकर रखे। सत्ताईस कुशों की वेण्यग्र भूषित गाँठ से बनी चटाई उस पर रखे। सभी यज्ञों की चटाई का लक्षण यही होता है। सुखोष्णोदक-पूर्ण ताम्र गण्डक पाद्य के लिये रखे। अर्घ्य प्रदान के लिये गन्ध-पुष्प जलान्वित शङ्ख रखे। दूर्वा जल से युक्त पात्र स्थापित करे। ताम्बे के कमण्डलु को आचमनीय जल से पूर्ण करके रखे। मधुपर्क के लिये काँसे का सम्पुट दही आदि से भरकर रखे। महान्त्य अर्घ्य द्रव्य, मुद्रिका, भूषण, मोरपंख का छत्र उष्णीश-सहित रखे। चमड़े का जूता रखे। अन्य स्मृति के अनुसार पूजन करे। इससे महायज्ञ का फल प्राप्त होता है। अन्य विप्रों का पूजन भी मधुपर्क से करे। विप्रों से दुगुना दक्षिण द्रव्य आचार्य को देवे। अन्य द्विप्रों के समान देशिक की भी पूजा करे। उस यज्ञ में अल्प वृष्टि से अच्छा फल मिलता है। देशिक विधन से स्नान करके आह्निक कर्म से निवृत्त होकर मौन होकर भूषा से शोभित होकर यागगृह में जाय। आचार्य को पूर्व दिशा में आसन पर बिठाये। मूल मन्त्र जपकर शिष्य को दतुवन दे। दाँतों को साफ करके हाथ भर के चतुरस्र स्थण्डिल का पूजन करे। तब गुरु का परीक्षण करे। ईशानाग्र से ज्ञानलाभ, पूर्वाग्र में धनलाभ, आग्नेयाग्र में मनस्ताप, दक्षिणाग्र में बन्धुनाश, नैर्ऋत्याग्र में मृत्युभय, पश्चिमाग्र में मन की पवित्रता, वायव्याग्र में व्यग्रता, उत्तराग्र में सुखप्रद होता है। अशुभ स्थान में प्रवेश करने पर प्रायश्चित्त करना चाहिये। प्रायश्चित्त का निरूपण आगे पुरश्चरण प्रकरण में किया जायेगा।

ततः स्वप्नपरीक्षां च कुर्याद्देशिकसत्तमः। क्रूरस्वप्नेऽधमा दीक्षा ह्यक्रूरे मध्यमा मता ॥१६॥
उत्तमस्वप्नपूर्वा तु दीक्षा सर्वोत्तमा मता।

स्वप्नलक्षणानि तन्निवेदनप्रकारं दुःखस्वप्ने प्रायश्चित्तं चाग्रे पुरश्चरणप्रकरणे वक्ष्यते।

एवं विचार्य पुरतो गुरुः पूजां समाचरेत्। विधायाचमनं तत्र सामान्यार्घ्यं विधाय च ॥१७॥
अर्घ्योदकेन सम्प्रोक्ष्य द्वारपूजां समाचरेत्। ततश्च देशिको विघ्नान् दिव्यानालोकनेन च ॥१८॥
अन्तरिक्षगतानस्त्रोदकैरुत्सारयेत्ततः। पार्थिवान् पार्ष्णिघातैस्तत्त्रिभिरुत्सार्य यत्नतः ॥१९॥
अङ्गं सङ्कोच्य किञ्चित्तु शाखां वामगतां स्पृशन्। उत्सारितानां भूतानां ददद्वर्त्म तु दक्षिणे ॥२०॥
पादेन दक्षिणेनाथ प्रविशेद्यागमण्डपम्। इति।

स्वप्नपरीक्षा—तब देशिकसत्तम स्वप्न-परीक्षा करे। क्रूर स्वप्न आने पर दीक्षा अधम होती है। अक्रूर स्वप्न से मध्यम दीक्षा होती है। दीक्षा के पहले उत्तम स्वप्न होने से दीक्षा सर्वोत्तम होती है।

स्वप्न लक्षण, निवेदन प्रकार, दुःस्वप्न का प्रायश्चित्त आदि का वर्णन आगे पुरश्चरण प्रकरण में किया जायेगा। इस प्रकार विचार कर गुरुपूजा करे। आचमन करके सामान्यार्घ्य स्थापित करे। अर्घ्योदक से द्वार को प्रोक्षित करके द्वारपूजन करे। दिव्य दृष्टि से अन्तरीक्षगत अस्त्रोदक में विघ्नों का उत्सारण करे। एँड़ी-घात से भूमिगत विघ्नों का उत्सारण करे। अङ्ग को सिकोड़कर वाम शाखा को छूते हुए उत्सारित भूतों को दक्षिण में छोड़कर दक्षिण पाद से यागमण्डप में प्रवेश करे।

द्वारपूजा वक्ष्यते। दक्षिणपादपुरःसरं प्रवेशः पुंदैवतविषयः, शाक्ते तु वामपादपुरःसरमेव 'वामपादं पुरस्कृत्य प्रविशेद्यागमण्डपम्' इति त्रिपुरार्णववचनात्। तथा—

ब्रह्माणं वास्त्वधीशं च नैर्ऋत्यां दिशि पूजयेत्। अर्घ्याम्बुना च गव्येन यागस्थाने सुसेचिते ॥२१॥
वीक्षणाद्यैस्ततः शुद्धिं चतुर्द्वारान्तमाचरेत्। संवीक्ष्य मूलमनुना ह्यस्त्रेण प्रोक्षयेत्ततः ॥२२॥
कुर्यात् ताडनमस्त्रेण कवचेनाथ सेचयेत्। श्रीखण्डागरुचन्द्रैश्च भूषितेऽस्त्रेण सप्तधा ॥२३॥
जप्तांश्चन्दनसिद्धार्थदूर्वाभस्माक्षतान् कुशान्। सजलान् विकिरेन्मन्त्री प्रत्यूहघ्नान् हि मण्डलम् ॥२४॥
मार्जयेदस्त्रमन्त्रेण तान् मन्त्री दर्भमुष्टिना। आसनाय तु वार्द्धान्या ईशाने स्थापयेच्च तान् ॥२५॥
पुण्याहं वाचयित्वाथ विप्रान् सन्तोष्य यत्नतः। वेदिकायां लिखेत्पश्चात्सर्वतोभद्रमण्डलम् ॥२६॥

द्वारपूजा—दक्षिण पाद से प्रवेश पुरुष देवताओं के लिये होता है। शाक्तों के लिये वाम पाद आगे करके प्रवेश करना चाहिये—ऐसी त्रिपुरार्णव की उक्ति है। ब्रह्मा और वास्तुपति का पूजन नैर्ऋत्य दिशा में करे। अर्घ्य जल और गोबर से यागस्थान को सुसेचित करे। चारो द्वारों की शुद्धि वीक्षण आदि से करे। मूल मन्त्र से वीक्षण करे। अस्त्र मन्त्र से प्रोक्षण करे। अस्त्र मन्त्र से ताड़न करे। कवच से सेचन चन्दन, अगर, कपूर, जल से करे। अस्त्र मन्त्र के सात जप से मन्त्रित चन्दन, सरसों, दूब, भस्म, अक्षत, कुश, जल का छींटा विघ्न-नाश के लिये मण्डल में करे। अस्त्र मन्त्र से कुशमुष्टिका से मार्जन करे। वर्द्धनि के ईशान में आसन के लिये उसे स्थापित करे। पुण्याहवाचन कराकर विप्रों को सन्तुष्ट करे। वेदी पर सर्वतोभद्र मण्डल बनावे। सभी तन्त्रों के अनुसार अब उसका लक्षण कहता हूँ।

तल्लक्षणमथो वक्ष्ये सर्वतन्त्रानुसारतः। देशिको वेदिकामध्ये गोमयेनोपलेपिते ॥२७॥
पूर्वोक्तक्रमयोगेन चतुरस्त्रं प्रकल्पयेत्। चतुष्कोष्ठसमायुक्तं कर्णसूत्रविभूषितम् ॥२८॥
तत्र कोष्ठचतुष्कान्तःसूत्राणां स्याच्चतुष्टयम्। कोणस्थकोष्ठमध्येषु दृश्यन्ते मत्स्यका यथा ॥२९॥
ऐन्द्रवारुणगं युग्मं सौम्ययाम्यगतद्वयम्। मकरेष्वेषु सूत्राणि दद्याच्चत्वारि मन्त्रवित् ॥३०॥
पूर्वपश्चिमगं तद्वद्दक्षोत्तरगतं पुनः। मकरान् पूर्ववत्कुर्यात्तत्र सूत्राणि पातयेत् ॥३१॥
शतयुग्मं च पञ्चाशत्षट्पदानि यथा पुनः। प्रादुर्भवन्ति रम्याणि सूत्राण्येवं विकाशयेत् ॥३२॥
षट्त्रिंशत्कोष्ठकैर्मध्ये सरोजं परिकल्पयेत्। तद्बहिः परितः पीठमेकपंक्त्या प्रकल्पयेत् ॥३३॥
पंक्तिद्वयेन तद्बाह्ये वीथीकल्पनमीरितम्। ततोऽन्यपंक्तियुग्मेन द्वारशोभा विधानतः ॥३४॥
उपशोभाश्च कोणानि मन्त्रवित्परिकल्पयेत्। अथ वक्ष्ये विधानेन सरोजलेखनक्रमम् ॥३५॥
सरोजस्थानजं भागं द्वादशं तु परित्यजेत्। ततो वृत्तत्रयं मध्ये कुर्यात्सम्यग् यथाविधि ॥३६॥
कर्णिकां मध्यवृत्तेन द्वितीयेन तु केसरान्। अन्त्यवृत्तेन पत्राणि पत्राग्रांस्त्यक्तभागतः ॥३७॥
अन्त्यवर्तुलमध्यस्य परिमाणं च यद्भवेत्। किञ्जल्काग्रेषु संस्थाप्य पार्श्वतस्त्वर्धचन्द्रकान् ॥३८॥
संलिख्य सन्धिसम्बद्धसूत्रन्यासं विधाय च। दलाग्रमानतो वृत्तं कुर्यात्सम्यग् विचक्षणः ॥३९॥
वृत्तान्तर्मध्यसूत्रस्य पार्श्वयोस्तु यथाविधि। बहिरेकेन कुर्वीत पत्राग्राणि विधानवित् ॥४०॥
किञ्जल्कान् पत्रमूलेषु द्विशः कुर्वीत देशिकः। सामान्यं कमलं ह्येतच्छास्त्रे सर्वत्र गीयते ॥४१॥
त्रिभिः पदैस्तु पीठस्य पादान् कोणेषु कल्पयेत्। अतिरिक्तैः पदैः पीठगात्राणि रचयेत्ततः ॥४२॥
वीथीपंक्तिद्वयं सम्यगेकीकृतय प्रमार्जयेत्। कोष्ठद्वयेन चैकेन प्रत्येकं द्वारपार्श्वयोः ॥४३॥
शोभा भवत्यतः कोष्ठैरेकतस्त्रिभिरेव च। उपशेभास्ततः कोष्ठैः षड्भिः कोणानि कल्पयेत् ॥४४॥
रजोभिर्भूषयेत् पञ्चवर्णैरितत्तु मण्डलम्। निशारजो भवेत्पीतं शुक्लं तण्डुलजं स्मृतम् ॥४५॥
रक्तं कौसुम्भमुद्दिष्टं कृष्णमाहुर्मनीषिणः। पुलाकदाहसम्भूतं श्यामं बिल्वच्छदोत्थितम् ॥४६॥
पञ्चवर्णाः समाख्याता दीक्षामण्डलकर्मणि। उत्सेधतारतो रेखाः शुक्ला अंगुलमानतः ॥४७॥
तारो विस्तारः।

सर्वतोभद्र मण्डल—गोबर से लेपित वेदी में देशिक सर्वतोभद्र मण्डल बनावे। इसके पहले पूर्वोक्त क्रमयोग से चतुरस्त्र बनावे। चतुरस्त्र की चारो भुजायें बराबर हों। चार कोष्ठ बनाकर कोना से कोना तक सूत्र से कर्णसूत्र बनावे। कोष्ठ चतुष्कान्त चार सूत्रों से कोणस्थ कोष्ठ मध्य में मछली के आकार की दिखायी पड़ता है। पूर्व से पश्चिम दो एवं उत्तर से दक्षिण दो कुलसूत्र स्फालित करे। फिर पूर्व से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर की ओर जाने वाले सूत्रों को स्फालित करे। फिर सूत्रों को इस प्रकार स्फालित करे कि दो सौ छप्पन कोष्ठ बन जाय।

छत्तीस कोष्ठों के मध्य में कमल कल्पित करे। उसके बाहर सब ओर एक-एक पंक्ति से पीठ कल्पित करे। उसके

बाहर पंक्तिद्वय से वीथि कल्पित करे। तब अन्य पंक्तियुग्म से विधानतः द्वारशोभा बनावे। कोणों में उपशोभा कल्पित करे। अब कमल बनाने का क्रम कहता हूँ। सरोज स्थानज भाग में से बारह को त्याग दे। तब तीन वृत्त के मध्य में कमल बनावे। कर्णिका मध्य द्वितीय वृत्त से केसर बनावे। अन्त वृत्त से बराबर दूरी पर पत्रों को बनावे। अन्त्य वर्तुल मध्य परिमाण में किञ्जल्काग्रों में अर्धचन्द्र बनावे। सन्धि सम्बन्ध सूत्र न्यास से दलाग्र मान से सम्यक् वृत्त बनावे। वृत्तान्तर्मध्यस्थ सूत्र के पार्श्वों के बाहर पत्राग्रों को बनावे। किञ्जल्क पत्रमूल का दो विभाग करे। यह सामान्य कमल की सभी शास्त्रों में प्रशंसा है। पीठ के तीन पद से कोण में पादों को कल्पित करे। अतिरिक्त पदों से पीठ के गात्रों को बनावे। वीथि पंक्ति द्रय एक करके मिटा दे। दो या एक कोष्ठ से द्वार के दोनों पार्श्वों में शोभ बनावे। एक कोष्ठ या तीन कोष्ठ से उपशोभा बनावे। छः कोष्ठों से कोनों को कल्पित करे। मण्डल को पाँच रंग के चूर्णों से भूषित करे। हल्दी चूर्ण पीला एवं तण्डुल चूर्ण उजला होता है। लाल कौसुम्भ होता है और काले के बारे में मनीषी कहते हैं कि पुआल को जलाकर काला चूर्ण बनावे। बेल की छाल से श्याम रंग होता है। दीक्षा मण्डल में पाँच रंग के चूर्ण विहित हैं। उत्सेध के विस्तार से अंगुल मान की रेखा उजली होती है।

सर्वाः सीमागतः कार्याः शुभ्रा मण्डलकर्मणि। पीतवर्णेन चूर्णेन कर्णिकां पूरयेत्ततः ॥४८॥
किञ्जल्कान् रक्तवर्णेन दलानि श्वेतवर्णतः। श्यामेन रजसा सन्धिं मन्त्रविच्चाभिपूरयेत् ॥४९॥
अथवा कर्णिकां मन्त्री पीतेनैव प्रपूरयेत्। किञ्जल्कान् पीतरक्तेन पीठगात्राणि शुभ्रतः ॥५०॥
वीथीचतुष्कमध्येषु कल्पवल्लीः प्रकल्पयेत्। पत्रमूलफलाकारमण्डिता हृदयङ्गमाः ॥५१॥
नानावर्णरजोभिस्ता रञ्जयेत्कुशली गुरुः। शुभ्रेण रजसा द्वारचतुष्कं पूरयेत्ततः ॥५२॥
रक्तवर्णेन तच्छोभाः पीतेनैवोपशोभिकाः। कृष्णवर्णेन कोणानि बही रेखात्रयं ततः ॥५३॥
शुक्लारुणाख्यकृष्णैस्तु रजोभिर्भूषयेत्क्रमात्। सामान्यं सर्वतोभद्रं मण्डलं ह्येतदुत्तमम् ॥५४॥
अन्यानि मण्डलान्यत्र वक्ष्यन्तेऽपि प्रसङ्गतः। पूर्वोक्ते चतुरस्रे तु तावत्सूत्राणि पातयेत् ॥५५॥
यावत्स्यात्कोष्ठशतकं चत्वारिंशत्समन्वितम्। वेदान्वितं तु तन्मध्ये पद्मं षट्त्रिंशता शुभम् ॥५६॥
एकपंक्त्या भवेत्पीठं वीथी नैवात्र दृश्यते। पूर्ववद्द्वारशोभा स्यादुपशोभात्र नास्ति वै ॥५७॥
षड्भिः कोष्ठैस्तथा कुर्यात्कोणानि प्रोक्तवर्त्मना। अन्यत्सर्वं विधातव्यं प्रोक्तमण्डलवच्छुभम् ॥५८॥
एतन्मण्डलमन्यत्तु चतुरस्रे सुशोभने। पातयेत् क्रमशः सूत्रं यावत्कोष्ठानि सर्वतः ॥५९॥
(षष्टिस्तथा चतुर्युक्तानि स्युस्तन्मध्यतस्ततः। पद्मं चतुर्भिः कोष्ठैः स्यात्कुर्यात्तत्परितः पुनः ॥६०॥
चतुर्वीथीर्मण्डलान्तावसाना दिग्गतेषु च)। चतुष्केषु तु पद्मानि विदध्यान्मन्त्रवित्तमः ॥६१॥
चतुष्काणि विदिक्स्थानि चत्वारि विभजेत्सुधीः। यावत्षोडश कोष्ठानि भवन्त्येतानि मार्जयेत् ॥६२॥
तथा यावत्स्वस्तिकानामाकारः प्रकटीभवेत्। रजोभिः शुक्लहारिद्ररक्तनीलैः प्रपूरयेत् ॥६३॥
स्वस्तिकानि शतं चान्यत्पूर्ववत्परिकल्पयेत्। उदितं मण्डलं ह्येतन्नवनाभं सुशोभनम् ॥६४॥
एतदेवोक्तमार्गेण स्वस्तिकाख्यमनुत्तमम्। मण्डलं स्यात्तु पञ्चाब्जं सर्वकामफलप्रदम् ॥६५॥
दीक्षायां वा महादाने देवपूजाव्रतादिषु। एतन्मण्डलमध्ये तु कुर्यादन्यतमं बुधः ॥६६॥

शुभ मण्डल के लिये सभी कार्य सीमा के अन्दर करे। पीले रंग के चूर्ण से कर्णिका को पूरे। किञ्जल्क को लाल चूर्ण से और दलों को श्वेत चूर्ण से पूर्ण करे। श्याम रंग के चूर्ण से सन्धि को पूर्ण करे। अथवा कर्णिका को पीले चूर्ण से भरे। किञ्जल्क को पीले से एवं पीठ गात्रों को लाल से भरे। वीथि चतुष्क में कल्पवल्ली की कल्पना करे। इसे पत्र मूल फलाकार मण्डित बनावे। पत्र-मूलादि को नाना रंगों से कुशल गुरु रँगे। शुभ चूर्ण से चारो द्वारों को पूरित करे। लाल चूर्ण से शोभा बनावे। पीले से उपशोभा बनावे। काले चूर्ण से कोनों को बनावे। इसके बाहर की तीन रेखाओं को उजला, लाल, काला चूर्ण से पूरित करे। इस प्रकार का सामान्य सर्वतोभद्र मण्डल उत्तम होता है। अब अन्य मण्डलों का भी प्रसङ्गानुसार वर्णन किया

जा रहा है। पूर्वोक्त चतुरस्र में वहाँ वह सूत्रपात करे, जहाँ कोष्ठ शतक चालीस तक समन्वित है। उसके मध्य में वेदान्वित छत्तीस पद्म शुभ होते हैं। एक पंक्ति में पीठ होता है, वीथि नहीं होती है। पूर्वद्वार में शोभा होती है, उपशोभा नहीं होती। प्रोक्त मार्ग से छः कोष्ठों से कोनों को बनावे। प्रोक्त मण्डल के समान दूसरों को भी शुभ्र बनावे। इस मण्डल के अतिरिक्त अन्य सुन्दर चतुरस्र में कोनों तक सूत्रपात करे। उसके मध्य में चौंसठ कोष्ठ होते हैं, चार पद्म होते हैं। उसके चारो ओर चार वीथि बनावे। चतुष्कों में पद्म बनावे। चतुष्कों की चारो विदिशाओं को विभाजित करे। सोलह कोष्ठों को छोड़कर औरों को मिटा कर स्वस्तिकाकार बनावे। श्वेत पीला लाल नीचे चूर्ण से पूरे। सौ स्वस्तिक पूर्ववत् कल्पित करे। इससे सुन्दर नवनाभ मण्डल बन जाता है। इसी प्रकार का उत्तम पञ्चाब्ज मण्डल सर्वकाम-फलप्रद होता है। दीक्षा में, महादान में, देवपूजा व्रतादि में इन मण्डलों के मध्य में अन्य कार्य करे।

एवं मण्डलमालिख्य प्रोक्तेष्वन्यतमं गुरुः। वेदिकायामासने स प्राङ्मुखः संविशेदथ ॥६७॥
बद्धपद्मासनो मौनी ऋजुकायो जितेन्द्रियः। देशिकेन्द्रस्तु संस्थाप्य पूजोपकरणानि तु ॥६८॥
दक्षिणे वामभागे तु स्थापयेत्कलशं शुभम्। सुगन्धिजलपूर्णं च हस्तप्रक्षालनाय च ॥६९॥
पश्चात्पात्रं विधायाथ दीपान् प्रज्वालयेच्छुभान्। व्यजनं मुकुरं छत्रं चामरं दिक्षु मन्त्रवित् ॥७०॥
संस्कुर्यात्तानि सर्वाणि वक्ष्यमाणविधानतः। करशुद्धिं विधायाथ कुर्यात्तालत्रयं बुधः ॥७१॥
शरमन्त्रेण दिग्बन्धं कुर्यान्मन्त्री समाहितः। महस्तु तत उत्पन्नं रक्षयेत्तं हि सर्वतः ॥७२॥
भूतशुद्धिं ततः कृत्वा प्राणस्थापनमाचरेत्। न्यासादिकं ततः कुर्याद्देशिको यतमानसः ॥७३॥
ऋषिं न्यसेत्ततो मूर्ध्नि च्छन्दो वक्त्रगतं न्यसेत्। देवतां हृदये न्यस्य मूलमन्त्रस्य देशिकः ॥७४॥
षडङ्गं विन्यसेन्मन्त्री पञ्चाङ्गं वा यथाविधि। यस्य मन्त्रस्य पञ्चाङ्गं नेत्रं तस्य विहीयते ॥७५॥
अङ्गैर्विहीनस्य मनोरङ्गं तेरैव कल्प्यते। तत्तन्मन्त्रोक्तमार्गेण न्यासानन्यान् समाचरेत् ॥७६॥
शरीरे स्वस्य मन्त्रस्य योगपीठं प्रकल्पयेत्। देहात्मके ततः पीठे ध्यायेन्मन्त्रस्य देवताम् ॥७७॥
दर्शयित्वा ततो मुद्राः स्थापयेदर्घ्यमुत्तमम्। जलेन पूरितां दक्षे प्रोक्षणीं स्थापयेत्ततः ॥७८॥
तत्राल्पमल्पं शङ्खाम्बु तत उत्तरतो न्यसेत्। पाद्यमाचमनीयं च मधुपर्कञ्च मन्त्रवित् ॥७९॥
ततो मूलाणुना मन्त्री प्रोक्षण्यद्भिः समाहितः। स्वात्मानं मण्डलं चान्यत्पूजोपकरणादिकम् ॥८०॥
प्रोक्षयेद्गन्धपुष्पाद्यैर्देहे स्वे देशिकोत्तमः। योगपीठं समभ्यर्च्य न्यासमार्गेण मन्त्रवित् ॥८१॥
पीठान्तं च ततस्तत्र पूजयेदिष्टदेवताम्। देवतात्मा ततः पश्च कुर्याद्वा सुमनोञ्जलीन् ॥८२॥
शीर्षे हृदि तथाधारे चरणे सर्वगात्रके। पूजयेच्च निवेद्येन रहितैश्चन्दनादिभिः ॥८३॥
सर्वोपचारैस्तच्छेषं गुर्वादिष्टेन कर्मणा। समापयेदिदं सर्वं प्रोक्षण्यद्भिः समाचरेत् ॥८४॥
पानीयं प्रोक्षणीसंस्थं त्यक्त्वा सम्पूर्य पूर्ववत्। उपचारैश्चन्दनाद्यैर्मण्डलं पूजयेद्गुरुः ॥८५॥
पूरयेत्कर्णिकां पूर्वं शालिभिस्तण्डुलैस्ततः। दर्भान् न्यसेदुपर्येषां साक्षतं कूर्चकं ततः ॥८६॥
छिन्नमूलाः कुशा दीर्घाः सप्तविंशतिसंख्यकाः। ब्रह्मग्रन्थियुतास्त्वग्रदेशे कूर्च इहोच्यते ॥८७॥
यजेदाधारशक्त्यादिपीठमन्त्रावसानकम्। स्वर्णादिरचितं तत्र कलशं छिद्रवर्जितम् ॥८८॥
त्रिगुणात्मकसूत्रेण वेष्टितं सर्वतो बहिः। चन्दनागुरुकर्पूरैर्मध्ये सम्यक्प्रधूपितम् ॥८९॥
ध्रुवं जपविधानेन स्थापयेद्देशिकोत्तमः। नव रत्नानि निःक्षिप्य कुम्भे कूर्चमथोपरि ॥९०॥
दूर्वाचन्दनसंयुक्तं विन्यसेदक्षतान्वितम्। पुष्पं नीलं च वैडूर्यं विद्रुमं मौक्तिकं तथा ॥९१॥
ततो मरकतं वज्रं गोमेदं पद्मरागकम्। मौक्तिकानि च रत्नानि देशिकस्तन्त्रवित्तमः ॥९२॥
क्षाद्यान्तक्रमतो मन्त्री मातृकां मनसा जपन्। मूलमन्त्रं जपन्नन्ते चिन्तयन्नैक्यमात्मनः ॥९३॥

घटस्य पीठभेदं च चिन्तयेत्साधकोत्तमः। पञ्चाशदोषधिक्वाथैः पूरयेत्तदनन्तरम् ॥९४॥
दुग्धवृक्षत्वचा क्वाथैर्ब्रह्मभूरुट्त्वगुद्भवैः। गन्धपङ्कप्रसूनादिवासितैर्वा शुभैर्जलैः ॥९५॥
क्वाथादितोयैरापूर्य शङ्खं तस्मिन् विलोडयेत्। गन्धाष्टकं शुभं मन्त्री सर्वसम्पत्प्रदायकम् ॥९६॥
कलाः सर्वाः समावाह्य पूजयेच्च यथाविधि। कलादिदेवतारूपं शङ्खनीरं घटे क्षिपेत् ॥९७॥

प्रोक्त अन्यतम मण्डल बनाकर वेदी के सामने पूर्वमुख बैठे। पद्मासन बाँधकर मौन सीधा शरीर करके जितेन्द्रिय होकर बैठे। पूजोपकरणों को दाँयें भागे में स्थापित करे। बाँयें भाग में कलश स्थापित करे। उसे सुगन्धि से पूर्ण करे। हाथ धोने के लिये अपने पीछे एक पात्र रखे। शुभ दीप को जलाये। व्यजन, ऐनक, छत्र, चामर को विधिवत् संस्कारित करे। करशुद्धि के लिये तीन ताली बजाये। अस्त्र मन्त्र से दिग्बन्ध करे। तदनन्तर उत्पन्न तेज की सब प्रकार से रक्षा करे। भूतशुद्धि करके प्राणप्रतिष्ठा करे। इसके बाद न्यासादि करे। ऋषि का न्यास मूर्धा में, छन्द का मुख में, देवता का हृदय में न्यास करे। मूल मन्त्र से षडङ्ग न्यास करे या पञ्चाङ्ग न्यास करे। पञ्चाङ्ग न्यास में नेत्रन्यास नहीं होता। अंग के कम होने पर मन्त्र को वैसे ही विभाजित करके न्यास करे। उस मन्त्रोक्त मार्ग से अन्य न्यास करे। अपने शरीर में योगपीठ कल्पित करे। देहात्मक पीठ में मन्त्र देवता का ध्यान करे। तब मुद्रा दिखाकर उत्तम अर्घ्य स्थापित करे। जलपूर्ण प्रोक्षणी पात्र को अपने दाँयें भाग में रखे। थोड़ा-थोड़ा शङ्ख जल से न्यास करे। पाद्य आचमनीय मधुपर्क मात्र को मूल मन्त्र से प्रोक्षित करे। अपना मण्डल और पूजा उपकरणों का प्रोक्षण करे। अपने देह का प्रोक्षण गन्ध पुष्पादि से करे। न्यास मार्ग से योगपीठ का अर्चन करे। पीठान्त में इष्ट देवता का पूजन करे। देवता को पाँच पुष्पाञ्जलि शिर, हृदय, आधार, चरण और पूरे शरीर में प्रदान करे। चन्दनादि से रहित नैवेद्य से पूजा करे। तब शेष सभी उपचारों से पूजा करे। गुरु के आदेशानुसार समापन करे। प्रोक्षण भी करे। प्रोक्षणी के जल को गिराकर उसे पुनः पूर्ववत् पूरित करे। चन्दनादि उपचारों से गुरुमण्डल की पूजा करे। कर्णिका को धान चावल से पूरित करे। कुश बिछाकर अक्षतसहित कूर्च स्थापित करे। कूर्च में जड़रहित सत्ताईस कुशों के ब्रह्मग्रन्थियुक्त अग्र होते हैं। आधारशक्तियों का यजन पीठ मन्त्रों के अन्त तक करे। सोने आदि के छिद्ररहित कलश को बाहर से तीन धागों से वेष्टित करे। चन्दन, अगर, कपूर से धूपित करे। ॐ जपते हुए उसे स्थापित करे। कलश में नवरत्न डाले। उसके ऊपर कूर्च रखे। दूर्वा-चन्दन संयुत अक्षत छोड़े। पुष्पराग, नीलम, वैडूर्य, मूंगा, मोती, मरकत, हीरा, गोमेद, पद्मराग नवरत्न होते हैं। देशिकोत्तम आद्यन्त क्रम से मातृकाओं का मानसिक जप करे। तब मूल मन्त्र जप कर देवतारूप अपने को माने। घटस्थ भेद का चिंतन साधकोत्तम करे। पचास औषध क्वाथ से कलश को भरे। दुग्ध वृक्ष छाल के क्वाथ या पलाश छाल के क्वाथ से भरे या गन्ध लेप प्रसूनादि से वासित शुभ जल से कलश को भरे। क्वाथादि के जल से भरकर उसमें शङ्ख विलोडित करे। सर्वसम्पत्प्रदायक गन्धाष्टक में सभी कला को आवाहित करके यथाविधि पूजा करे। कलादि देवतारूप शङ्खजल कलश में डाले।

शक्तिगन्धाष्टकम्

चन्दनागरुकर्पूरकाश्मीरं रोचनान्वितैः। ससिह्लकजटामांसीसटीभिः शक्तिसम्भवम् ॥९८॥
गन्धाष्टकं शुभं वश्यं शक्तिमन्त्रेषु योजयेत्। इति।

काश्मीरं कुङ्कुमम्। सिह्लकं शिलारसः। सटी कचोरः। 'चन्दनागरुकर्पूरचोरकुङ्कुमरोचनाः। जटामांसीकपियुताः शक्तेर्गन्धाष्टकं मतम्' इति शारदातिलकवचनात्।

शक्तिगन्धाष्टक—चन्दन, अगर, कपूर, कङ्कुम, गोरोचन, शिलाजीत, जटामासी, कचूर शक्तिशम्भव गन्धाष्टक शक्ति मन्त्र से योजित करे।

वैष्णवगन्धाष्टकम्

ह्रीवेरं चदनं कुष्ठमगुरुं कुङ्कुमं मुरम्। सेव्यकं च जटामांसी वैष्णवं तदुदीरितम् ॥१॥

ह्रीवेरं बालकम्। सेव्यकमुशीरम्। सुरं मोरहरीति प्रसिद्धम्।

मुरा गन्धवती दैत्या गन्धाढ्या गन्धमादिनी। सुरभिर्भूतगन्धा च कुठी गन्धकुठी स्मृता ॥१॥

एकाङ्गी'ति नानार्थवचनादेकांग्येव मुरशब्देनोच्यते। एकाङ्गी छर्व्युरिति लोके प्रसिद्धा।

वैष्णव गन्धाष्टक—बालछड़, चन्दन, कूट, अगर, कुङ्कुम, मुरा, खश, जटामासी—ये वैष्णव अष्टगन्ध कहे गये हैं। मुरा, गन्धवती, दैत्या, गन्धाढ्या, गन्धमादिनी, सुरभि, भूतगन्धा, कूठ, गन्धकुठी—ये अष्टगन्ध हैं।

शाम्भवगन्धाष्टकम्

जलकाश्मीरकुष्ठैस्तु रक्तचन्दनचन्दनैः। तमालागरुकर्पूरैः शाम्भवं चाष्टगन्धकम् ॥१॥

जलं बालकम्।

शाम्भव अष्टगन्ध—शाम्भव अष्टगन्ध आठ हैं—बालछड़, कुङ्कुम, कूठ, रक्त चन्दन, चन्दन तमाल, अगर, कपूर।

वैदिकमन्त्रपञ्चकोद्धारः

गन्धाष्टकस्य संयोगात् सामर्थ्याद्देशिकस्य च। सशक्तिकं जलं कुम्भे भवेदेव न संशयः ॥९९॥
आदौ कृशानुसम्बन्धि कलादशकमर्चयेत्। कलाद्वादशकं सौरं पूजयेत्तदनन्तरम् ॥१००॥
कलाषोडशकं चान्द्रं यजेत्पश्चाद्गुरूत्तमः। वेदादिभेदसञ्जाताः कलाः पञ्चाशतैर्युताः ॥१०१॥
सन्निधाप्य समभ्यर्च्य ततो मन्त्री तु ताः क्रमात्। मध्ये मध्ये ऋचः पञ्च पूजनीया इमा अपि ॥१०२॥
आत्ममन्त्रं समुच्चार्य शुचिषत्पदमुच्चरेत्। वसुरन्तमन्त्रपदं रिक्षसद्धोपदं ततः ॥१०३॥
पदं ता वेदिषपदे दतिथिर्दुपदं ततः। रोणसत्पदमुच्चार्य नृषद्वरपदे वदेत् ॥१०४॥
वदेत् सदृतसद् व्योमसदब्जा गोपदं वदेत्। वदेज्जा ऋतजेत्यस्मादद्रिजाशब्दमुच्चरेत् ॥१०५॥
सप्तमस्वरमुच्चार्य सबिन्द्वाषाढिनं वदेत्। उक्त्वा बृहत्पदं वान्ते प्रथमो मन्त्र ईरितः ॥१०६॥ इति।

आत्ममन्त्रः हंस इति। सप्तमस्वर ऋकारः। आषाढी तकारः। अन्यानि पदानि स्वरूपाणि। तथा—

लोहितो वह्निसहितः पूतना द्व्यन्तिका ततः। उक्त्वा ष्णुः स्तवते पश्चाद्वीर्येण मृपदं वदेत् ॥१०७॥
गो न भीमश्च कुचरो गिरिष्ठाश्च ततो वदेत्। यस्योरुषु त्रिषु पदं ततो विक्रमणेष्वधि ॥१०८॥
क्षियन्ति तु पदं ब्रूयाद्भुवनानि ततो वदेत्। तोयस्थो माधवः पश्चाद्वान्तं स्यात्तोयशान्तियुक् ॥१०९॥
द्वितीयो मनुराख्यातस्तृतीयः प्रोच्यतेऽधुना।

लोहितः पकारः, वह्नी रेफस्तेन प्र, पूतना तकारः। तोयं वकारः, तत्स्थो माधव इकारः, तेन वि, वान्तं श, तोयं व, शान्ति आ तेन श्वा। अन्यानि पदानि स्वरूपाणि।

णान्तोऽग्निमान्तोपान्त्यस्य कलायुक् पतृतीयकः। चतुर्मुखः सचन्द्रार्धस्ततः स्याच्च यजामहे ॥११०॥
परं सुगन्धिं पुष्टीति वर्धनं च ततो भवेत्। पदमुर्वारुकमिव बन्धनान्मृपदं वदेत् ॥१११॥
त्योर्मुक्षीयपदे पश्चान्मामृतात्पदमुच्चरेत्।

णान्तस्तकारः अग्नी रेफः मान्तो यकारः, उपान्त्यकला बिन्दुरेतेन त्र्यं, पतृतीयो वकारः, चतुर्मुखः ककारः चन्द्रार्धो बिन्दुस्तेन कं, अन्यानि पदानि स्वरूपाणि।

गायत्र्यात्मा चतुर्थः स्यान्मन्त्रः ख्यातो जगत्यलम्। तोयस्था शाल्मली प्रोक्ता सहजाढान्तविष्णुयुक् ॥११२॥
अग्निश्च केवलः प्रोक्तो योनिं कल्पपदं वदेत्। यतु त्वष्टापदं पश्चात्ततो रूपाणि पिंशतु ॥११३॥
आसिञ्चतु प्रजा पश्चात्पतिर्धातापदं वदेत्। गर्भं दधात्विति पदमाषाढी पद्मनाभयुक् ॥११४॥
पञ्चैते वैदिका मन्त्रास्तेष्वेकैकं प्रपूजयेत्।

तोयं वकारः, शाल्मली इकारस्तेन वि, सहजा षकारः, ढान्तो णकारो, विष्णुयुक् उकारयुक्तस्तेन ष्णु। अग्नी रेफः, केवलो विस्वरः। आषाढी तकारः, पद्मनाभ एकारस्तेन ते इति।

गन्धाष्टक के संयोग से देशिक सामर्थ्यवान होता है। इससे कलश जल भी शक्तियुक्त हो जाता है। पहले अग्नि की दश कलाओं का अर्चन करे। तब सूर्य की बारह कलाओं का पूजन करे। तब चन्द्रमा की षोडश कलाओं का यजन करे। इसके बाद गुरूत्तम वेदादि भेद से उत्पन्न पचास कलाओं का पूजन करे। बीच-बीच में पाँच ऋचाओं से पूजन करे। वे पाँच ऋचायें हैं—

१. हंसश्शुचिषद् वसुरन्तरिक्षं सद् होता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।
नृषद् वर सदऋत सद् व्योम सदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं वृहत् नमः।।

२. प्रतद् विष्णुस्ववते वीर्याय मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा नमः।।

३. त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ।।

४. तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

५. विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु।
आषिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते।।
गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति।
गर्भं ते अश्विनौ देवा बाधन्तां पुष्करस्रजा।।

इन पाँच मन्त्रों से पूजन करे।

तारस्य पञ्चभेदोत्थकलानामन्तरे सुधीः। आवाह्यादौ कलाः पश्चात्सन्निधाप्य च देशिकः ।।११५।।
प्राणान् संस्थाप्य गन्धाद्यैः पूजयेत्साधकोत्तमः। यत्र यत्र कलापूजाविधिस्तत्रैवमेव हि ।।११६।।
तारस्य पञ्चभेदोत्थकलानां पूजयेत्सुधीः। कलादशकमावाह्य सृष्ट्याद्याः सन्निधाप्य च ।।११७।।
हंसः शुचिषदित्याद्यामृतं सञ्जप्य पूजयेत्। प्राणसंस्थापनं कृत्वा कलानां पूजयेच्च ताः ।।११८।।
एवं जराद्यास्तीक्ष्णाद्याः पीताद्याश्च विधानतः। निवृत्याद्याश्चापि यजेदुक्तयुक्त्या विचक्षणः ।।११९।।
अकारोकारकौ प्रोक्तौ मकारो बिन्दुनादकौ। शक्तिसान्तावमी सप्त ध्रुवभेदाः समीरिताः ।।१२०।।
अन्तिमौ द्वाविमौ भेदौ पृथगेव समीरितौ ।

शक्तिः सकारः, सान्तो हकारः।

ॐ की पाँच कलाओं का आवाहन, सन्निधापन, प्राणप्रतिष्ठा करके गन्धादि से पूजन करे। कलापूजन के स्थानों में इनका पूजन करे। कलादशक सृष्ट्यादि का आवाहन सन्निधापन करके हंसः शुचिषद इत्यादि मन्त्र जप करे, पूजा करे। प्राण प्रतिष्ठा करके कला पूजन करे। जराद्या, तीक्ष्णाद्या, पीताद्या, निवृत्त्याद्या का पूजन करे। ॐकार के भेद अ, उ, म, नाद बिन्दु शक्ति सान्ता सात हैं। अन्तिम दो भेदों को पृथक् माना गया है।

कलशमण्डलार्चावह्निसंस्कारचरुसम्पादनादि

ततो रसालपनसपिप्पलद्रुमपल्लवैः। सुत्रामवल्लरीनद्धैः कल्पवृक्षमनीषया ।।१२१।।
कलशस्थापनं मन्त्री विदधीत समाहितः। पश्चादक्षतसंयुक्तां सफलां शुभचक्रिकाम् ।।१२२।।
देशिकेन्द्रः समादाय स्थापयेत्पल्लवोपरि। कल्पवृक्षफलानां हि मत्या विशदधीर्गुरुः ।।१२३।।
पट्टाम्बरयुगेनैव घटं पश्चात् प्रवेष्टयेत्। प्रधानकुम्भं संस्थाप्य वेद्यामेवं गुरूत्तमः ।।१२४।।

तोरणानां समीपेषु पूर्वादिषु यथाक्रमम्। प्राग्वन्मण्डलमालिख्य पद्मं चाष्टदलं शुभम् ॥१२५॥
प्रागुक्तविधिना तेषु कुम्भान् संस्थाप्य देशिकः। ध्रुवं धरां वाक्पतिं च विघ्नेशं तेषु पूजयेत् ॥१२६॥
आग्नेयादिषु कोणेषु कुम्भान् संस्थाप्य पूर्ववत्। अमृतं दुर्जयं चैव सिद्धार्थं मङ्गलं तथा ॥१२७॥
सम्पूज्य वह्निकोणादिष्विन्द्रादीनथ पूजयेत्। पूर्वादिष्वष्टकुम्भेषु तेषां मन्त्रैस्तु वैदिकैः ॥१२८॥
पुनः पूर्वादिकुम्भेषु पूजयेद् दिग्गजानपि। ऐरावतं पुण्डरीकं वामनं कुमुदाञ्जनौ ॥१२९॥
पुष्पदन्तं सार्वभौमं सुप्रतीकं च देशिकः। पुनर्वेद्यां गुरुर्गत्वा उपविश्य निजासने ॥१३०॥
सञ्चिन्त्य मूलमन्त्रेण मूर्तिं तस्मिन् गुरूत्तमः। तस्यां मूर्तौ समावाह्य पूजयेदिष्टदेवताम् ॥१३१॥
स्मृत्वा मूलमनुं मन्त्री सम्यङ्नाडीपथा ततः। निर्गमय्य च चैतन्यं नासिकाग्रविनिर्गतम् ॥१३२॥
अञ्जलौ मातृकापद्मे महः पुष्पान्विते गुरुः। मस्तकान्तं समुत्थाप्य तस्यामावाहयेत्ततः ॥१३३॥
संस्थापनं प्रथमतः सन्निधानमतः परम्। सन्निरोधं च सकलीकरणं त्ववगुण्ठनम् ॥१३४॥
अमृतीकरणं परमीकरणं स्वस्वमुद्रया।

सन्निरोधं चेति चकारात्सम्मुखीकरणमपि ज्ञेयम्।

क्रमाद् विदध्याच्च तत उपचारान् प्रकल्पयेत्। आसनादिप्रसूनान्तानुपचारान् प्रकल्प्य च ॥१३५॥
तत्तन्मन्त्रविधानेषु प्रोक्ताङ्गावरणान्यपि। सर्वान्ते लोकपालानां तदस्त्राणां च पूजनम् ॥१३६॥
विधाय पूजामेवं हि धूपदीपनिवेद्यकैः। इति।

तब आम, कटहल, पीपल के पल्लवों की वल्लरी को धागे से बाँधकर कल्पवृक्ष माने। उसे कलश पर स्थापन करे। तब चक्रमुद्रा से फल लेकर पल्लव पर रखे। इसे कल्पवृक्ष का फल समझे। तब कलश में दो वस्त्र लपेटे। प्रधान कलश स्थापन के बाद वेदी तोरण के समीप पूर्वादि क्रम से दिशाओं में पूर्ववत् अष्टदल मण्डल बनाकर पूर्वोक्त प्रकार से उनमें कलश स्थापित करे। उनमें ध्रुव धरा वाक्पति विघ्नेश की पूजा करे। आग्नेयादि कोणों में कलशस्थापन पूर्ववत् करके अमृत, दुर्जय, सिद्धार्थ, मंगल की पूजा करे। वह्निकोणादि से इन्द्रादि का पूजन पूर्वादि आठ कलशों में वैदिक मन्त्रों से करे। तब पूर्वादि कलशों में ऐरावत, पुण्डरीक, वामन, कुमुद, अंजन, पुष्पदन्त, सार्वभौम और सुप्रतीक—इन आठ दिग्गजों का पूजन करे।

तब गुरु वेदी के समीप अपने आसन पर बैठे। वेदी में मूल मन्त्र से इष्टमूर्ति का चिन्तन करे। इष्ट देवता का आवाहन करके पूजन करे। मूल मन्त्र का स्मरण करके सम्यक् नाड़ी पथ से चैतन्य रूप में नासिकाग्र से निकाल कर मातृका महापद्म पुष्पों-सहित मस्तक तक अंजलि को उठाकर उसमें आवाहित करके संस्थापित करे। तदनन्तर सन्निधान, सन्निरोध, सकलीकरण, अवगुण्ठन, अमृतीकरण, परमीकरण सम्बन्धित मुद्राओं का प्रदर्शन करते हुये करे।

क्रमशः उपचारों की कल्पना करे। आसन से पुष्प तक उपचारों को कल्पित करके सम्बन्धित मन्त्रविधान से अंग आवरण का पूजन करके लोकपालों और उनके अस्त्रों का पूजन करे। तब धूप-दीप-नैवेद्य आदि अर्पित करें।

प्रपञ्चसारे—

कृते निवेद्ये च ततो मण्डलं परितः क्रमात्। मङ्गलाङ्कुरपात्राणि स्थापनीयानि मन्त्रिणा ॥१॥ इति।

तथा—

वेदिकाया दक्षभागे कृत्वा स्थण्डिलमुत्तमम्। संस्थाप्य वह्निं संस्कृत्य वैश्वदेवं समाचरेत् ॥१३७॥
तत्र प्रणवपूर्वाभिर्हुत्वा व्याहृतिभिः पुनः। मूलाणुना ततो हुत्वा साज्येन हविषा सुधीः ॥१३८॥
पञ्चविंशतिधा पश्चाद् हुत्वा व्याहृतिभिः पुनः। सम्पूज्य तां चन्दनाद्यैः पीठमूर्तौ तु योजयेत् ॥१३९॥
अग्निं विसृज्य शिष्टेन पायसेन बलिं हरेत्। पार्षदेभ्यश्चन्दनादिपुष्पाक्षतसमन्वितम् ॥१४०॥

तत् उत्थाप्य नैवेद्यं तत्स्थलं शोधयेत्सुधीः । पुनर्यजेच्चोपचारैः पञ्चभिर्दर्शयेत् ततः ॥१४१॥
छत्रं च चामरं पश्चाद् दद्यात्ताम्बूलमुत्तमम् ।

छत्रं चेति चकाराद्दर्पणव्यजनेऽपि गृह्येते।

सहस्रं च जपेन्मन्त्री मूलमन्त्रं समाहितः । देवतायै निवेद्याथ तं जपं सम्पदे ततः ॥१४२॥
ईशानदिशि यः पूर्वं स्थापितो विकिरोऽत्र च । सुवर्णवस्त्रसंयुक्तं करकं जलपूरितम् ॥१४३॥
न्यसेदत्र यजेदस्त्रदेवतां घोररूपिणीम् । *पश्चिमास्यां खड्गखेटधारिणीं सिंहसंस्थिताम्* ॥१४४॥
तिष्ठन् सम्पूज्य च ततो गृहीत्वा तं प्रदक्षिणम् । भ्रमेदन्तस्तु रक्षेति लोकेशानामितीरयन् ॥१४५॥
नालयुक्तेनोदकेन देवतां भावयेत्ततः । स्वस्थाने स्थापयेत्तं तु फण्मन्त्रेण ततोऽर्चयेत् ॥१४६॥
उपविश्य तु भूयोऽस्त्रं गन्धाद्यैर्मन्त्रवित्तमः । ततो वह्निं सुसंस्कृत्य चरुं गोपयसा पचेत् ॥१४७॥
नवे ताम्रादिजे पात्रे क्षालिते च शराणुना । मूलाणुनाभिमन्त्र्याथ तण्डुलाञ्शालिसम्भवान् ॥१४८॥
तिथिप्रसृतिमानेन शराणुं प्रजपन् क्षिपेत् । प्रक्षालितेन पात्रेण पात्रवक्त्रं पिधाय च ॥१४९॥
हुंमन्त्रेण ततो मूलमनुना देशिकोत्तमः । पचेद् गुरुः प्राङ्मुखस्तु स्विन्ने तमभिघारयेत् ॥१५०॥
मूलेन स्रुवसंस्थेन घृतेनाथावतारयेत् । हुंमन्त्रेणास्त्रसञ्ज्ञप्ते कुशास्तीर्णे विभज्य तत् ॥१५१॥
त्रिधा त्वेकं देवतायै परं वह्नौ निवेदयेत् । शिष्टं शिष्येण सहितो गुरुर्भुञ्जीत मन्त्रवित् ॥१५२॥
कृताचमन आचान्तं शिष्यमानीय मन्त्रवित् । प्रादेशमात्रं हृज्जप्तं यथोक्तं दन्तधावनम् ॥१५३॥
शिष्याय दद्यात्स रदान् विशोध्य क्षालितं त्यजेत् ।
आचान्तमत्र च यथाविधि तच्छिखाया बन्धैः सुरक्षितममुं प्रविधाय मन्त्री ।
वेद्यां शयीत कुशसंस्तरणे रजन्यां शिष्येण सार्धममुना गदितोऽधिवासः ॥१५४॥

ताम्रादीत्यादिपदेन मृण्मयग्रहणम्। तल्लक्षणमुक्तं कात्यायनेन—

तिर्यगूर्ध्वं समिन्मात्रा दृढा नातिबृहन्मुखी । मृण्मय्यौदुम्बरी वापि चरुस्थाली प्रशस्यते ॥१॥ इति।

समिन्मात्रा प्रादेशप्रमाणा 'प्रादेशान्नाधिकानूना' इति कपिलवचनात्। तिथिप्रसृतिः पञ्चदशप्रसृतिः, शराणुरस्त्रमन्त्रः, तण्डुलांस्त्रिःक्षालितान्। तदुक्तं गोभिलेन 'त्रिःफलीकृतांस्तण्डुलान् त्रिर्देवेभ्यः प्रक्षालयेदित्याहु'रिति। कुशलो दक्षस्तेन श्रृतमिव प्रदक्षिणम्। ततः ऊर्ध्वमवदानक्रियाक्षममिति। स्विन्न इति—

सुशाखोक्तश्च सुस्विन्नो ह्यदग्धोऽकठिनः शुभः । नचातिशिथिलः पाच्यो नच वीतरसो भवेत् ॥१॥

इत्युक्तलक्षणे घृतेन संस्कृते, हुंमन्त्रेणावतारयेदिति पूर्वेणान्वयः। अत्र हुंमन्त्रेणेत्यादिषु तत्तत्कल्पोक्तकवचमन्त्रास्त्रमन्त्रादयो ज्ञेयाः, न तु हुंमात्रं फण्मात्रं वा।

प्रपञ्चसार में कहा गया है कि—इस प्रकार पूजा करके मण्डल के बगल में मंगलांकुर पात्रों को स्थापित करे। वेदी के दक्षिण भाग में उत्तम स्थण्डिल बनावे। उसमें अग्निस्थापन करके संस्कार करे। वैश्वदेव करे। तब प्रणव व्याहृतियों से हवन करे। मूल मन्त्र से हवन गोघृत और खीर से पच्चीस बार करे। फिर व्याहृतियों से हवन करे। पुनः चन्दनादि से पीठमूर्ति योजित करे। शिष्ट से अग्नि का विसर्जन करके बलि प्रदान करे। चन्दनादि पुष्पाक्षत से पार्षदों की पूजा करे। नैवेद्य को उठाकर स्थान का शोधन करे। पुनः पञ्चोपचार से पूजन करके छत्र, चामर आदि दिखावे। ताम्बूल प्रदान कर समाहित चित्त होकर मूल मन्त्र का एक हज़ार जप करे। उस जप को देवता को निवेदित करने से धन-सम्पत्ति का लाभ होता है। ईशान में पूर्व स्थापित सुवर्ण वस्त्रसंयुक्त जलपूर्ण करक में अस्त्र देवता का न्यास करे, यजन करे। यह देवी घोररूपिणी, पश्चिममुखी, खड्ग खेटधारिणी, सिंह-संस्थित है। उसकी पूजा करे। उसे ग्रहण करके प्रदक्षिणक्रम से नैर्ऋत्य से ईशान तक घुमावे। नालयुक्त जल से देवता

की भावना करे। फट् मन्त्र से अपने स्थान में स्थापित करे, पूजन करे। तब भूमि पर बैठकर अस्त्र गन्धादि मन्त्र से वह्नि को संस्कृत करके गोदुग्ध में पायस पकावे। नये ताम्रादि पात्र को धोकर शराणु से क्षालित करे, मूलाणु से अभिमन्त्रित करे। शालितण्डुल को पन्द्रह अस्त्र मन्त्र जप से मन्त्रित करके पात्र में डाले। प्रक्षालित पात्र में पात्र वक्त्र मानकर 'हुं' मन्त्र से मूल मन्त्र से पकावे। गुरु पूर्वमुख होकर उसे धारण करे। मूल मन्त्र से स्रुव के घी को उसमें डाले। हुं फट् से कुश से तीन भाग में विभाजित करे। उसमें से एक भाग परदेवता को और एक भाग अग्नि को निवेदित करे। बचे हुए भाग को शिष्य के सहित गुरु भक्षण करे। आचमन करके शिष्य को लाकर ह्रीं जप कर एक वित्ता का दतुवन शिष्य को देवे। उससे शिष्य दाँतों को साफ करने के बाद दतुवन को धोकर फेंक दे। तब आचान्त को शिष्य यथाविधि शिखा में बाँधकर सुरक्षित करे। वेदी के कुश से शिष्य को रात में अधिवास कराये। कात्यायन के अनुसार पात्र तिर्यक्, ऊर्ध्व, वित्ता भर, दृढ़, सामान्य मुख का मिट्टी का या गूलर का चरुस्थाली प्रशस्त होता है। सुशाखोक्त सुस्विन्न अदग्ध कोमल शुभ चरु का पाक करे। वह चरु न तो ज्यादा शिथिल होना चाहिये और न ही रसरहित होना चाहिये।

अग्निस्थापनहोमकर्म

अथाग्निस्थापनं नारदपञ्चरात्रे—

कुण्डस्यारम्भकाले तु संस्कारा न कृता यदि। निष्पन्नस्य च ते सर्वे विधेयाः स्युः क्रमेण वै ॥१॥ इति।

उत्तरतन्त्रे—

होमकर्म ततो वक्ष्ये सकलागमसंमतम्। सुसंस्कृते गुरोः कुण्डे संस्कारैश्च यथाविधि ॥१॥
ते दशाष्टाधिकाः प्रोक्ताः सर्वागमविशारदैः। मूलाणुना च संवीक्ष्य संप्रोक्ष्यास्त्राणुना ततः ॥२॥
कुशैः संताड्य चास्त्रेण प्रोक्षयेत्कवचाणुना। खननं स्याच्छरेणाथ तेनैवोद्धार ईरितः ॥३॥
पूरणं च हृदास्त्रेण समीकुर्याच्च सेचनम्। कवचेनाथ शस्त्रेण कुट्टनं वर्मणा मतम् ॥४॥
मार्जनं च विलेपं च सञ्चिन्त्य च कलात्मताम्। कुर्यात् त्रिसूत्रीकरणं नमोमन्त्रेण पूरयेत् ॥५॥
शरेण वज्रीकरणं कुशैः कुर्याच्चतुष्पथम्। कवचेनेन्द्रियाणां चाप्युद्घाटनमथाचरेत् ॥६॥
एवमुक्तैस्तु संस्कारैर्होमे कुण्डानि देशिकः। संस्कुर्यादथवा तानि चतुर्भिः प्रथमोदितैः ॥७॥

शरेण तत्तदङ्गभूतास्त्रमन्त्रेण, प्रोक्षणमुत्तानहस्ताग्रेण। अभ्युक्षणं मुष्टिबन्धेनासेचनम्। उद्धारः खातमृदा। पूरणमन्यमृदा। उक्तं च नारदपञ्चरात्रे—

गृहीत्वा चैकदेशात्तु कुण्डमध्यात्तु मृत्तिकाम्। अंगुष्ठानामिकाभ्यां तु हृदयेनाथ पूरयेत् ॥१॥

सेचनमभ्युक्षणमेव, शस्त्रेणास्त्रमन्त्रेण। वर्मणेत्येतदग्रिमेषु चतुर्षु सम्बध्नाति। तदुक्तं सोमशम्भुना—

सम्मार्जनं समालेपं कलारूपप्रकल्पनम्। त्रिसूत्रीपरिधानं च वर्मणाभ्युक्षणं हृदा ॥१॥

कलारूपप्रकल्पनं सोमसूर्याग्निकलारूपप्रकल्पनम्। त्रिसूत्रीकरणं सूत्रत्रयकल्पनम्। हृदयेन पूजनं तु मेखलात्रयस्यैव। तदुक्तं नारदपञ्चरात्रे—

समभ्यर्च्य ततो बाह्ये मध्यतः प्रणवेन च। तेनैव विधिना नाभिं पूजयेच्चन्द्रसन्निभाम् ॥१॥
मेखलात्रयपूजायां हृन्मन्त्रं तु प्रपूजयेत्। इति।

वज्रीकरणं वज्रवद्दृढचिन्तनम्। चतुष्पथं कुशैश्चतुर्दिक्षु मार्गचतुष्टयकरणम्। शारदातिलके तु—'तनुत्रेण तदुयादक्षपाटन'मित्युक्तम्। अक्षपाटनलक्षणं तु नारदपञ्चरात्रे—

अच्छिन्नाग्रैस्तदा दर्भैरस्त्रमन्त्राभिमन्त्रितैः। कुण्डभित्तिगणं सर्वं वर्मणा परिभूषयेत् ॥१॥
इत्येवमक्षपाटाख्यं कुण्डसंस्कारमुत्तमम्।

अत्रेन्द्रियाणामुद्घाटनवमिति यदुक्तं तत्त्वेमेव कर्तव्यम्। अक्षशब्दस्येन्द्रियवाचकत्वादक्षपाटनमिन्द्रियाणामुद्घाटनमित्यर्थः। हुंकारेण राक्षसनिवारणमिति केचित्। आदिक्षान्तानां वर्णानां पाटनं व्याप्तिरित्यपरे। पक्षान्तरमाह— अथ वेति। प्रथमोदितैर्वीक्षणप्रोक्षणताडनाभ्युक्षणैः। तथा 'त्रिशस्त्रिशो लिखेल्लेखाः प्रागुदग्रा हृदाणुना'। उदग्रा इति दिव्यत्वादुदगग्राः।

स्मृताश्च प्राङ्मुखाग्राणां देवा विष्ण्वीशवासवाः। उदङ्मुखाग्ररेखाणां ब्रह्मसूर्येन्दवः क्रमात् ॥१॥

अत्र रेखालिखने कुत आरम्भः कुत्रावसानमित्याकाङ्क्षायामाह सौत्रामणीतन्त्रे—

प्राचीमूर्धमुदक्संस्थं दक्षिणारम्भमालिखेत्। उदगग्रं पुरःसंस्थं पश्चिमारम्भमालिखेत् ॥१॥

प्राचीमूर्धं प्रागग्रम्। उदगग्रं पुरःसंस्थं पूर्वावसानकम्। नारदपञ्चरात्रे—

उल्लिखेदस्त्रराजेन दर्भकाण्डेन यत्नतः। भूमावभ्यन्तरे कुण्डे दक्षिणाशादितः क्रमात् ॥१॥
उत्तराशावधि यावद्दद्याद्रेखात्रयं समम्। प्रत्यग्भागात्समारभ्य यावत्पूर्वावधि तथा ॥२॥ इति।

अत्र हृन्मन्त्रास्त्रमन्त्रयोर्विकल्पः। तथा: 'अथवाग्नियुगान्तःस्थं वह्निगेहं (कोणं) लिखेत् क्रमात्'। अग्नियुगं त्रिकोणद्वयरूपं षट्कोणं, वह्निकोणं त्रिकोणम्। अत्र रेखाषट्कोणयोर्विकल्पः। तथा यामले—'षट्कोणेनावृतं देवि त्रिकोणं तत्र संलिखेत्' इति। अत एव नारदपञ्चरात्रे रेखामात्रमुक्तम्। शारदातिलके—'वर्मणाभ्युक्ष्य तारेण योगपीठमथार्चयेत्' इति। सौत्रामणीतन्त्रे तु—'प्रोक्षयेद्वाग्भवेन वे'त्युक्तं वाशब्दः प्रणवापेक्षया। अभ्युक्ष्य कुशसलिलेन। 'अभ्युक्ष्य च कुशाम्भोभि'रिति योगिनीतन्त्रवचनात्। प्रपञ्चसारे—'प्राणाग्निहोत्रविधिनाप्यावसथीयेऽनलस्थाने'। प्राणाग्निहोत्रविधिरपि तत्रैव—'मध्येन्द्रवरुणशशियमदिग्गतानि क्रमेण कुण्डानि। आवसथ्यसभ्याहवनीयान्वाहार्यगार्हपत्यानि' इति। उत्तरतन्त्रे—'सम्प्रोक्ष्य प्रणवेनाथ योगपीठं समर्चयेत्'। योगपीठार्चनं प्रयोगे वक्ष्यते।

अग्नि-स्थापन—नारद पञ्चरात्र में कहा गया है कि कुण्ड के आरम्भ काल में यदि संस्कार न किया हो तब उसे क्रमशः विधान के अनुसार करे।

हवन—उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि सभी आगमों से सम्मत होमकर्म कहता हूँ। सुसंस्कृत गुरुकुण्ड में यथाविधि सर्वागम-विशारदों के द्वारा कथित अट्ठारह प्रकार के संस्कारों को करे। मूल मन्त्र से देखे। अस्त्र-मन्त्र से प्रोक्षण करे। कुशों से ताड़न करे। कवच मन्त्र से प्रोक्षण करे। अस्त्र से खात करे। इसी से उनका उद्धार कहा गया है। फट् नमः से पूरण करे। हुं फट् से सेचन और समतल करे। हुं कवच से कुट्टन करे। मार्जन और विलेपन करके कलात्मक बनावे। नमो मन्त्र से त्रिसूत्री करके पूरित करे। अस्त्र मन्त्र से वज्रीकरण करे। कुश से चतुष्पथ बनावे। कवच से इन्द्रियों का उद्घाटन करे। इस प्रकार देशिक कुण्ड का संस्कार करे। प्रथमोक्त चार से संस्कार करे। अस्त्र मन्त्र से प्रत्येक अंग का प्रोक्षण उत्तान हाथ से करे। हस्ताग्र से अभ्युक्षण करे। बन्ध मुट्ठी से सेचन करे। उद्धार मिट्टी का खनन है। पूरण मिट्टी से बराबर करना है।

नारद पञ्चरात्र में कहा भी गया है कि कुण्डमध्य की मिट्टी लेकर अंगूठा अनामिका से हृदय को पूरित करे। सोमशम्भु में कहा गया है कि सम्मार्जन, समालेप एवं कलारूप प्रकल्पन त्रिसूत्री परिधान कवच से और अभ्युक्षण नमः से करे।

नारद पञ्चरात्र के अनुसार बाहर और मध्य में प्रणव से पूजन करे। चन्द्रमा के समान गोल नाभि का पूजन प्रणव से ही करे। मेखलात्रय का पूजन नमः से करे। अक्षपाटन का लक्षण नारद पञ्चरात्र में इस प्रकार बताया गया है—

अच्छिन्न अग्र के कुशों को अस्त्र मन्त्र से मन्त्रित करे। कुण्ड की सभी भीतों पर कवच मन्त्र से बिछावे। यह अक्षपाटन नामक कुण्ड का उत्तम संस्कार होता है।

इनमें पूर्व मुखाग्र कुशों के देवता विष्णु, शिव और इन्द्र हैं। उत्तर मुखाग्र रेखाओं के देवता ब्रह्मा, सूर्य, चन्द्र हैं।

रेखात्रय अंकन में कहाँ से आरम्भ और कहाँ अन्त हो, इसकी जानकारी के लिये सौत्रामणी तन्त्र में कहा गया है कि दक्षिण से आरम्भ करके पूर्वाग्र रेखा लिखे। उत्तराग्र रेखा पश्चिम से आरम्भ करके लिखें।

नारद पञ्चरात्र में कहा गया है कि अस्त्र मन्त्र बोलकर कुशकाण्ड से रेखा लिखे। भूमि के भीतर कुण्ड में दक्षिण से प्रारम्भ करके उत्तर तक तीन रेखा बराबर-बराबर लिखे। पश्चिम से प्रारम्भ करके पूर्व तक लिखे। यामल में कहा है कि षट्कोण से आवृत त्रिकोण लिखे। नारदपञ्चरात्र में रेखामात्र कहा गया है। शारदातिलक के अनुसार कवच से अभ्युक्षण करके ॐ से योगपीठ का अर्चन करना चाहिये। सौत्रामणी तन्त्र में कहा गया है कि वाग्भव से प्रोक्षण करे। कुश जल से अभ्युक्षण करे। योगिनीतन्त्र के अनुसार कुशजल से अभ्युक्षण करे। प्रपञ्चसार में कहा गया है कि प्राणाग्नि होत्र विधि से अनल स्थान में अभ्युक्षण करे। वहीं पर यह भी कहा है कि प्राणाग्नि होम विधि से भी मध्य पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण में कुण्ड का अभ्युक्षण करे। ये आवसथ्य, सभ्याहवनीय, अन्वाहार्य एवं गार्हपत्य कुण्ड होते हैं। उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि प्रणव से प्रोक्षण करके योगपीठ का अर्चन करे।

तत्र शक्तिं च संस्मृत्य सम्यगृतुमतीं शुभाम्। अतीन्द्रियाभां सकलजगदात्मस्वरूपिणीम् ॥१॥
ईशानसहितां तत्र सम्यग्गन्धादिभिर्यजेत्। शक्तिमन्त्रेण तां शक्तिमीशानं मूलमन्त्रतः ॥२॥
अभ्यर्च्य मूलवित्सम्यक् मणिजं वाऽऽरणेयकम्। कुलीनद्विजगेहोत्थं पात्रे हुतवहं ततः ॥३॥
आनीयास्त्रेण नैर्ऋत्यां क्रव्यादांशं परित्यजेत्। देवांशं मूलमन्त्रेण स्थापयेदग्रतः सुधीः ॥४॥
पश्चात्तमग्निं संस्कारैः संस्कुर्याद्वीक्षणादिभिः। प्रदीपकलिकाकारं तेज आवाह्य यत्नतः ॥५॥
ऐक्यं जाठरबैन्दववह्निभ्यां पार्थिवस्य च। स्मृत्वाग्निबीजकेनास्य चैतन्यं योजयेदथ ॥६॥
ओंकारेणाभिमन्त्र्याथ धेनुमुद्रामृतीकृतम्। संरक्ष्य च शरेणाथ कवचेनावगुण्ठयेत् ॥७॥
ततः सम्पूज्य कुण्डस्य भ्रामयेत्त्रिः प्रदक्षिणम्। प्रणवेन ततः स्वस्य सम्मुखं स्वीयकुण्डके ॥८॥
देव्या योनौ तत्र जानुस्पृष्टभूमिश्च देशिकः। शिवबीजमिति ध्यात्वा निक्षिपेदाशुशुक्षणिम् ॥९॥
तत आचमनीयं च देव्या देवस्य कल्पयेत्।

वहाँ पर सम्यक् ऋतुमती शक्ति का अतीन्द्रियाभा सकल जगदात्मस्वरूपिणी ईशान-सहित का स्मरण करे। शक्ति मन्त्र से शक्ति का एवं मूल मन्त्र से ईशान का गन्धादि से पूजन करे। मूलवित् सम्यक् मणिज या अरणिमंथन से प्रकट या कुलीन द्विज गृह की अग्नि को ले आये। अस्त्र मन्त्र से क्रव्याद का त्याग नैर्ऋत्य में करे। देवांश को आगे स्थापित करे। तब अग्नि का संस्कार वीक्षण आदि से करे। प्रदीपकलिकाकार तेज का आवाहन करे, जाठर वैन्दव वह्नि से पार्थिव का ऐक्य स्मरण करके अग्नि बीज से चैतन्य योजित करे। ओंकार से अभिमन्त्रित करे। धेनुमुद्रा से अमृतीकरण करे। अस्त्र मन्त्र से संरक्षण करे। कवच से अवगुण्ठन करे। तब पूजकर कुण्ड के चारो ओर प्रदक्षिणक्रम से तीन बार घुमावे। तब प्रणव से अपने सम्मुख अपने कुण्ड में देवी की योनि में ठेहुने पर खड़ा होकर देशिक शिवबीज मानकर स्थापित करे। तब देवी एवं देव को आचमनीय दे।

वैष्णवयागे तु नारदपञ्चरात्रे—

तत्र नारायणाख्यस्य शक्तिर्विद्योतलक्षणा। लक्ष्म्याकृतिपदं प्राप्ता अमृतामृतजीवनी ॥१॥ इति।

तथा कपिलपञ्चरात्रे—

कामोन्मत्तं ततः कृष्णं लक्ष्मीमृतुमतीं स्मरेत्। तयोः सङ्गमयोगेन वह्निः सञ्जातसंस्थितिः ॥१॥ इति।

कुम्भसम्भवोऽप्याह—

लक्ष्मीमृतुमतीं भद्रां प्रभां नारायणस्य च। ग्राम्यधर्मेण सञ्जातमग्निं तत्र विचिन्तयेत् ॥१॥

पात्रे ताम्रादिपात्रे। यदाहात्रिः—

पात्रान्तरेण पिहिते ताम्रपात्रादिके शिवे। अग्निप्रणयनं कुर्याच्छरावे तादृशेऽपि वा ॥१॥

पिहिते कवचमन्त्रेण। तदुक्तं पिङ्गलामते—

अस्त्रेणाग्निं समाधाय कवचेन पिधाय च। क्रव्यादांशं च नैर्ऋत्यां त्यजेदस्त्रेण पार्वति ॥१॥ इति।

तथा नारदपञ्चरात्रे—'तैजसे ताम्रपात्रे वा मृण्मयेऽभिनवेऽपि वा' इति। तैजसपदं गोवलीवर्दन्यायेन ताम्रेतरपरम्। एतेन—

शरावे भिन्नपात्रे वा कपाले चोल्मुकेऽपि वा। नाग्निप्रणयनं कुर्याद्व्याधिहानिभयावहम् ॥१॥

इति सरस्वतीसारलिखितवचनं पुरातनमृत्पात्रपरम् अभिनवेत्युक्तेः। भैरवीतन्त्रे तु—'योनावेवं विन्यसेत् स्वाभिवक्त्रं पश्चादेवं मूलमन्त्रेण मन्त्री' इत्युक्तं तदत्र प्रणवमूलमन्त्रयोर्विकल्पः। जाठर इति—बिन्दुः परमात्मा तस्याग्नीषोमकत्वात्तद्भवो वह्निर्वैन्दवः, पार्थिवो भौमः। अमृतीकृतं वंबीजेन। 'अमृतीकरणं ततो विदध्याज्जल-बीजेन सबिन्दुना कृशानोः' इति योगिनीतन्त्रवचनात्। शरेणास्त्रेण। उत्तरतन्त्रे—

उक्त्वा चित्पिङ्गलपदं हनयुग्मं पचद्वयम्। दहयुग्मं च सर्वज्ञं आज्ञापय ततो द्विठः ॥१॥
अमुं मन्त्रं प्रभाष्यैव कृशानुं ज्वालयेत्ततः। इति।

द्विठः स्वाहाकारः प्रपञ्चसारे—

अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्। सुवर्णवर्णममलं समिद्धं सर्वतोमुखम् ॥१॥
अनेन ज्वलितं मन्त्रेणोपतिष्ठेद्धुताशनम्। इति।

सर्वज्ञमिति शब्दकर्मणि द्वितीया। मन्त्रे तु सम्बुद्ध्यन्तं ज्ञेयम्। 'सर्वाज्ञापय स्वाहा' इति दक्षिणामूर्तिवचनात्। ज्वालयेत् कुशैर्मुखेन वा। 'ततः प्रज्वालयेत् कुशैः' इति कुम्भसम्भववचनात्। मुखेनैव धमेदग्निं मुखादेषोऽध्यजायत' इति कात्यायनवचनाच्च।

वैष्णव याग के सम्बन्ध में नारद पञ्चरात्र का वचन है कि नारायण की शक्ति विद्युत् स्वरूपा लक्ष्मी की आकृति को प्राप्त होकर अमृतामृतजीवनी-स्वरूपा है। कपिलपञ्चरात्र में कहा गया है कि कामोन्मत्त कृष्ण और ऋतुमती लक्ष्मी का संगमयोग से अग्नि की उत्पत्ति हुई है। कुम्भसम्भव में कहा गया है कि नारायण की प्रभा और ऋतुमती लक्ष्मी के संयोग से उत्पन्न अग्नि का चिन्तन करना चाहिये। अत्रि में भी कहा है कि पात्रान्तर में पिहित अग्नि का ताम्रादि पात्र में प्रणयन करे। अथवा उसी प्रकार के शराव में करे। पिङ्गला में कहा गया है कि अस्त्र से अग्नि ले आये। कवच से ढककर क्रव्यादांश को नैर्ऋत्य में अस्त्र मन्त्र से त्याग दे। नारद पञ्चरात्र में कहा गया है कि तैजस ताम्र पात्र या नये मिट्टी पात्र में अग्नि का प्रणयन करना चाहिये। शराव से भिन्न पात्र, कपाल या उल्मुक में अग्नि-प्रणयन करना व्याधि-हानि एवं भयकारक होता है। इसीलिये सरस्वती सार में मिट्टी के पात्र का ही ग्रहण किया गया है। उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि 'चिल्पिङ्गल हन हन पच पच दह दह सर्वज्ञं आज्ञापय स्वाहा' मन्त्र से अग्नि को प्रज्वलित करना चाहिये। प्रपञ्चसार के अनुसार—

अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्। सुवर्णवर्णममलं समिद्धं सर्वतोमुखम्।।

इस मन्त्र से हुताशन को प्रतिष्ठित करें।

मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—

ततः प्रविन्यसेज्जिह्वा देहे मन्त्रैर्विभावसोः। सलिङ्गगुदमूर्धास्यनासानेत्रेषु च क्रमात् ॥१॥
ससर्वाङ्गेषु सर्वास्ता वक्ष्यन्ते त्रिविधा अपि। हिरण्या कनका रक्ता कृष्णा चैव तु सुप्रभा ॥२॥
बहुरूपातिरक्ता च जिह्वाः सप्तेति सात्त्विकाः। अनलेरार्घिबिन्द्वन्तसादियान्ताक्षरान्विताः ॥३॥ इति।

अनलो रेफः, ईरः यकारः, अर्घिरूकारः। अयं क्रमो बीजोद्धारसौकर्यायैव। न्यासे तु—

सलिङ्गगुदमूर्धास्यनासानेत्रेषु च क्रमात्। विन्यसेदतिरक्तान्ताः सर्वाङ्गे बहुरूपिणीम् ॥१॥

इति सिद्धान्तशेखरवचनात् सर्वाङ्गे बहुरूपां न्यसेत्। प्रपञ्चसारे—

मन्त्री प्रविन्यसेद्भूयो वह्नेरङ्गानि वै क्रमात्। सहस्रार्चिः स्वस्तिपूर्ण उत्तिष्ठ पुरुषस्तथा ॥१॥
धूमव्यापी सप्तजिह्वो धनुर्धरः इतीरितः। अङ्गमन्त्रान् क्रमादष्ट मूर्तींश्चापि प्रविन्यसेत् ॥२॥
मूर्धांसपार्श्वकट्यन्धुकटिपार्श्वांसकेषु च। प्रादक्षिण्येन विन्यसेद् यथावद्देशिकोत्तमः ॥३॥
जातवेदाः सप्तजिह्वो हव्यवाहन एव च। अश्वोदरजसंज्ञश्च सवैश्वानर एव च ॥४॥
कौमारतेजाश्च तथा विश्वदेवमुखाह्वयौ। स्युरष्ट मूर्तयो वह्नेरग्नये पदपूर्विकाः ॥५॥

'प्रणवादिनमोऽन्ताश्च' इति। प्रादक्षिण्येन शिर आरभ्य वामांसादिक्रमेण दक्षिणांसावधि न्यसेदिति। अन्धु लिङ्गं, गुदमिति केचित्। मुखशब्दः प्रत्येकं सम्बध्यते। कौमारतेजाः स्याद्विश्वमुखो देवतामुखस्तथा' इति शारदातिलकवचनात्।

मन्त्रतन्त्रप्रकाश में कहा गया है कि अग्नि के देह में मन्त्र से जिह्वा का न्यास लिङ्ग, गुदा, मूर्धा, मुख, नाक, नेत्र और देह में क्रम से करे। सभी अंगों में सबों का न्यास तीन बार करे। हिरण्या, कनका, रक्ता, कृष्णा, सुप्रभा, बहुरूपा, अतिरिक्ता एवं सप्तजिह्वा—ये सात्त्विक अग्नियाँ हैं। रेफ यकार रूकार क्रम से बीजोद्धार करके लिङ्ग गुदा मूर्धा मुख नासा नेत्र और सभी अंगों में न्यास करे। सिद्धान्तशेखर के अनुसार सर्वांग में बहुरूपा का न्यास करे।

प्रपञ्चसार में कहा गया है कि षडङ्ग न्यास इस प्रकार करे—सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः, स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा, उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै वषट्, धूमव्यापिने कवचाय हुम्, सप्तजिह्वाय नेत्रत्रयाय वौषट्, धनुर्धराय अस्त्राय फट्। अंगमन्त्र क्रम से अष्ट मूर्ति का न्यास मूर्धा, कन्धा, कटि, पार्श्वों में इस प्रकार करे—ॐ जातवेदसे नमः, ॐ सप्तजिह्वाय नमः, ॐ हव्यवाहनाय नमः, ॐ अश्वोदरजाय नमः, ॐ वैश्वानराय नमः, ॐ कौमारतेजसे नमः, ॐ विश्वमुखाय नमः, ॐ देवमुखाय नमः। इनका प्रदक्षिण क्रम से शिर, वामांस, पार्श्व, कटि, लिङ्ग में न्यास करे।

उत्तरतन्त्रे—

प्रादक्षिण्यक्रमेणैव संसिच्य च ततो जलैः। मेखलोपरि संशुद्धैः पुनर्दर्भचतुष्टयैः ॥१॥
दिक्क्रमेण परिस्तीर्य दिक्ष्वैन्द्रीवर्जमात्मवित्। निक्षिपेत् परिधीन् ब्रह्मविष्ण्वीशांस्तत्र पूजयेत् ॥२॥

दर्भचतुष्टयैः प्रागुदगग्रैः। 'पूर्वाग्रैरुत्तराग्रैश्च दर्भैरग्निं परिस्तरेत्' इति गणेश्वरपरामर्शिनीवचनात्। प्रागग्रैरथ दर्भैर्धनददिशाग्रैः परिस्तरेत् कुण्डम्' इति भैरवीतन्त्रवचनात्। त्रिमेखलकुण्डे मध्यमेखलायां परिस्तरणपरिधिप्रक्षेपः कार्यः। तदुक्तं योगिनीतन्त्रे—

एकमेखलके कुण्डे मेखलाधः परिस्तरेत्। द्विमेखले द्वितीयायां मध्यमायां त्रिमेखले ॥१॥ इति।

ननु पश्चिममेखलासंलग्नतया नालस्य विद्यमानत्वान्मध्यमेखलायां परिस्तरणपरिधिप्रक्षेपः कथं भवेदित्याङ्कायामाह उत्तरतन्त्रे—

नालमेखलयोर्मध्ये परिधेः स्थापनस्य तु। रन्ध्रं कुर्यात्तथा विद्वान् मध्यस्थमेखलोपरि ॥१॥ इति।

'स्थण्डिले सिकतानां तु बाह्ये भूमेः परिस्तरेत्' इति। परिधयस्तु कात्यायनेनोक्ताः—'परिधीन् परिदधात्यार्द्रानेकवृक्षीयान् बाहुमात्रान् पलाशवैकङ्कतकाश्मर्यवैल्वादि' इति। 'स्थण्डिले सिकतानां बाह्येऽथ विन्यसेत् परिधी'निति च। ऐन्द्रीवर्जं परिधीन् दिक्षु क्षिपेदिति सम्बन्धः। दिक्षु पश्चिमदक्षिणोत्तरासु। 'स्थविष्ठो मध्यमः। अणीयान् द्राघीयान् दक्षिणार्थः। कनिष्ठो ह्रंसिष्ठ उत्तरार्थः' इति सूत्रितत्वात्। 'पश्चिमे उत्तराग्रमन्ययोः पूर्वाग्रं चे'ति। दक्षिणमूर्तिसंहितायाम्—'प्रणीताप्रोक्षणीयुग्मे जलं चाथ घृतं तथा' इति।

उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि प्रादक्षिण्य क्रम से जल का छींटा देकर मेखला पर शुद्ध चार कुशों से दिशाक्रम से परिस्तरण करे। ब्रह्मा, विष्णु, शिव की उनमें पूजा करे। परिस्तरण पूर्वाग्र उत्तराग्र कुशों से करे।

योगिनी तन्त्र में कहा गया है कि एक मेखला के कुण्ड में परिस्तरण मेखला के नीचे करे। द्विमेखला में द्वितीया में परिमेखला में मध्यमा में, परिस्तरण करे। पश्चिम मेखला में नाल संलग्न होने से मध्य मेखला में परिस्तरण कैसे करें—इसका समाधन उत्तरतन्त्र में इस प्रकार किया गया है—नाल मेखला मध्य में परिधि स्थापन में रन्ध्र बनाकर मध्य मेखला पर परिस्तरण करे। स्थण्डिल में वालू के बाहर भूमि में परिस्तरण करे। कात्यायन का मत है कि परिधि के लिये पलाश, वैकंकत, काश्मरी बेल की हाथ भर की लकड़ी का न्यास करे। स्थण्डिल में बालू के बाहर परिधि बनावे। पूर्वादि क्रम से परिधि रखे। पश्चिम में उत्तराग्र अन्यत्र पूर्वाग्र रखे। प्रणीता प्रोक्षणी दोनों पात्रों में जल या घी रखे।

प्रणीतास्थापनप्रकारः

तत्पात्रस्थापनप्रकारमाह कुम्भसम्भवः—

प्राणानायम्य विधिवत् परिस्तीर्य कुशान्तरैः। स्वगृह्योक्तविधानेन वायुदेशात्ततो मुने ॥१॥
पात्राण्यासाद्य विधिवदिध्मं तन्त्रेण मन्त्रवित्। तान्यवोक्ष्य पवित्रेण चोत्तानानि विधाय च ॥२॥
पुनः प्रोक्ष्य नयेत् पात्रं परिपूर्य शुभाम्बुना। दत्त्वाक्षतान् पवित्रं च तदुत्पूय निधापयेत् ॥३॥
दिश्युत्तरस्यां तत्पात्रं प्रणीतेत्युच्यते बुधैः। ततः किञ्चित्प्रणीताम्बु प्रोक्षण्यादाय तज्जलैः ॥४॥
यज्ञसाधनसम्भारं प्रोक्षयेन्मूलमन्त्रतः। इति।

उत्तरतन्त्रे—

आसनं च ततो वह्नेः कल्पयित्वा प्रपूजयेत्।

आसनं योगपीठं च प्रयोगे वक्ष्यते। तथा—

कोणषट्के च मध्ये च जिह्वा अङ्गानि केसरे। तद्बाह्ये वसुमूर्तींश्च मध्ये वह्निं ततो यजेत् ॥१॥
वक्ष्यमाणेन विधिना गन्धपुष्पादिभिः सुधीः। इति।

प्रपञ्चसारे—

कोणषट्के च मध्ये च जिह्वाभिः केसरेषु च। अङ्गमन्त्रैस्ततो बाह्ये चाष्टभिः मूर्तिभिः क्रमात् ॥१॥
ततोऽग्निमनुना तेन मन्त्री मध्ये च संयजेत्। वैश्वानर जातवेद प्रोक्त्वा चेहावहेति च ॥२॥
लोहिताक्षपदं सर्वकर्माणीति समीरयेत्। ब्रूयाच्च साधयेत्यन्तं वह्निजायान्तिको मनुः ॥३॥ इति।

मन्त्रे सर्वाणि पदानि सम्बुद्ध्यन्तानि ज्ञेयानि।

त्रिनयनमरुणप्ताबद्धमौलिं सुशुक्लांशुकमरुणमनेकाकल्पमम्भोजसंस्थम्।
अभिमतवरशक्तिस्वस्तिकाभीतिहस्तं नमत कनकमालालंकृतांसं कृशानुम् ॥४॥
जिह्वा ज्वालारुचः प्रोक्ता वराभययुतानि च। अङ्गानि मूर्तयः शक्तिस्वस्तिकोद्यतदोर्द्वयाः ॥५॥

'कोणषट्के च मध्ये चे'ति सम्बन्धः। तदुक्तं सोमशम्भुना—

रुद्रेन्द्रवह्निमांसादवरुणानिलगोचरे। हिरण्याद्याः स्थिता वह्ने रसनाः षडनुक्रमात् ॥१॥
'मध्यतो बहुरूपा तु' इति।

पात्रस्थापन क्रम—कुम्भसम्भव में कहा गया है कि विधिवत् प्राणायाम करके कुशपरिस्तरण करके अपने गृह्य सूत्र के अनुसार वायु कोण में पात्रासादन विधिवत् तन्त्र से करे। उसका वीक्षण करके उत्तान रखे। पुनः पात्र को पोंछकर लाये।

शुद्ध जल से उसे परिपूर्ण करे। उसमें अक्षत-कुश डालकर पवित्र करके स्थापित करे। इसे प्रणीता पात्र कहते हैं। इसमें कुश जल प्रोक्षणी में लेकर पूजा सामग्रियों का प्रोक्षण करे।

उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि तब अग्नि का आसन कल्पित करके पूजा करे। षट्कोण के कोनों में तथा मध्य में जिह्वा अंग केसर में कल्पित करे। उसके बाहर आठ वसुओं का और मध्य में अग्नि की पूजा वक्ष्यमाण क्रम से गन्ध-पुष्पादि से करे।

प्रपञ्चसार में कहा गया है कि छः कोनों में, केसर में, मध्य में जिह्वाओं का पूजन करे। षडङ्ग पूजन करे। इसके बाहर अष्ट मूर्तियों का पूजन करे। अग्नि मन्त्र से मध्य में वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा कहकर पूजन करे। तदनन्तर निम्नवत् ध्यान करे—

त्रिनयनमरुणप्ताबद्धमौलिं सुशुक्लांशुकमरुणमनेकाकल्पमम्भोजसंस्थम्।
अभिमतवरशक्तिस्वस्तिकाभीतिहस्तं नमत कनकमालालंकृतांसं कृशानुम्।।
जिह्वा ज्वालारुचः प्रोक्ता वराभययुतानि च। अङ्गानि मूर्तयः शक्तिस्वस्तिकोद्यतदोर्द्वयाः।।

सोमशम्भु में कहा गया है कि ईशान, पूर्व, अग्निकोण, नैर्ऋत्य, पश्चिम, वायव्य में हिरण्यादि छः अग्निजिह्वा अनुक्रम से स्थित हैं, मध्य में बहुरूपा होती है।

गणेश्वरपरामर्शिन्याम्—

मध्ये च कोणषट्के च जिह्वाः सप्त यजेत्ततः। हिरण्या तप्तहेमाभा शूलपाणिदिशि स्थिता ।।१।।
वैदूर्यवर्णा कनका प्राच्यां दिशि समाश्रिता। तरुणादित्यसङ्काशा रक्ता जिह्वाग्निसंस्थिता ।।२।।
कृष्णाञ्जनचयप्रख्या नैर्ऋत्यां दिशि संस्थिता। सुप्रभा पद्मरागाभा वारुण्यां दिशि संस्थिता ।।३।।
अतिरक्ता जपाभासा वायव्यां दिशि संस्थिता। बहुरूपा यथार्थाभा दक्षिणोत्तरमध्यगा ।।४।। इति।

नारदपञ्चरात्रे—

प्रभा दीप्ता प्रकाशा च मरीचिस्तापिनी तथा। कराला लेलिहा चेति कुण्डं व्याप्य व्यवस्थिताः ।।१।।
ईशपूर्वाग्निदिग्भागे प्रभाद्यं त्रितयं स्थितम्। रक्षोवारुणवायव्ये मरीच्याद्यं त्रयं तथा ।।२।।
सौम्ये च मध्यमे याम्ये स्थितैका लेलिहाभिधा। इति।

हिरण्यादीनामेव नामान्तराणि प्रभादीनि। यद्वा वैष्णवयागे त्वेताः स्वतन्त्राः। तथा वायवीयसंहितायाम्—
हिरण्या प्रागुदग्जिह्वा कनका पूर्वतः स्थिता। रक्ताग्नेयी नैर्ऋती च कृष्णान्या सुप्रभा मता ।।१।।
अतिरक्ता मरुज्जिह्वा स्वनामानुगुणप्रभाः। अन्या च अरुणा।

त्रिशिखा मध्यमा जिह्वा बहुरूपासमाह्वया। तच्छिखैका दक्षिणतो ज्वलन्ती वामतः परा ।।१।।

इति सात्त्विकजिह्वाः। राजस्यस्तामस्यश्च वक्ष्यन्ते। केचित्तु—

कुण्डस्य मध्ये ह्यथ सा प्रशस्ता जिह्वा हिरण्या भुवि कार्मणादौ।
स्तम्भनादिषु मता कनकान्तर्द्वेषणादिषु मता खलु रक्ता।
मारणे निगदिता भुवि कृष्णा सुप्रभा बुधवरैरिह शान्त्याम् ।।१।।

उच्चाटनेऽतिरक्तान्तर्' इति वदन्ति। ज्वालारुच इति जिह्वानां ध्यानम्। 'जिह्वाः सर्वाः परिज्ञेया ज्वालाभासाः स्वरूपतः' इति प्रयोगसारवचनात्। 'एता ज्वालारुचा वीता वराभययुता अपि' इति गणेश्वरपरामर्शिनी-वचनाच्च। प्रपञ्चसारे—

संस्कृतेन घृतेनाभिद्योतनोद्द्योतनेन च। व्याहृत्यनन्तरं तेन जुहुयान्मनुना त्रिशः ॥१॥

अभिद्योतनोद्द्योतनाख्यसंस्कारद्वयसंस्कृतेनेति सम्बन्धः। अपरे तु संस्कारान्तरमप्यङ्गीकुर्वन्ति। पिङ्गलामते—'कुण्डे चाष्टादश ज्ञेयाः संस्काराः शिवशास्त्रतः। घृते स्रुचि स्रुवे चाष्टौ' इति।

गणेश्वरपरामर्शिनी में कहा गया है कि मध्य और छः कोनों में सात जिह्वाओं की पूजा करे। हिरण्या एवं तप्तहेमाभा ईशान में रहती है। वैदूर्यवर्णा, कनका पूर्व दिशा के समाश्रित है। तरुण आदित्य वर्ण की रक्ता जिह्वा आग्नेय में रहती है। अंजन वर्ण की कृष्णा नैर्ऋत्य दिशा में रहती है। पद्मराग वर्ण की सुप्रभा पश्चिम दिशा में रहती है। अड़हुल फूल के वर्ण की अतिरिक्ता वायव्य में रहती है। बहुत वर्णों की बहुरूपा दक्षिण-उत्तरगामिनी है।

नारद पञ्चरात्र में कहा गया है कि प्रभा, दीप्ता, प्रकाश, मरीचि, तापिनी, कराला एवं लेलिहा कुण्ड को व्याप्त करके व्यवस्थित रहती है। ईशान पूर्व आग्नेय में प्रभा आदि तीन की स्थिति है। नैर्ऋत्य, पश्चिम, वायव्य मरीचि आदि तीन रहती है। उत्तर मध्य और दक्षिण में लेलिहाना रहती है। वायवीय संहिता के अनुसार हिरण्या पूर्वोत्तर जिह्वा है। कनका पूर्व में स्थित रहती है। रक्ता आग्नेय में, नैर्ऋत्य में कृष्णा, पश्चिम में अरुणा, सुप्रभा ईशान में रहती है। त्रिशिखा मध्यमा जिह्वा बहुरूपा के समान है। उसकी एक शिखा दक्षिण में जलती है। दूसरी शिखा उत्तर में जलती है। ये सात्त्विक जिह्वा हैं।

राजसी तामसी जिह्वा—कुण्ड के मध्य में प्रशस्त जिह्वा हिरण्या लौकिक कर्मों के लिये है। कनका स्तम्भन में और विद्वेषण में रक्ता प्रशस्त होती है। मारण के लिये कृष्णा है। सुप्रभा शान्ति कर्म में उपयुक्त है। प्रपञ्चसार में कहा गया है कि अभिद्योतनोद्योतन दो संस्कारों से घी को शुद्ध करके उस घी से व्याहृतियों से हवन करे। पिङ्गला में कहा गया है कि शिवशास्त्र से कुण्ड के अट्ठारह संस्कार होते हैं। घी, स्रुचि और स्रुवा के आठ संस्कार होते हैं।

कुण्डाज्यस्रुगादिसंस्कारः

उत्तरतन्त्रे—

समादाय घृतस्थालीमस्त्रमन्त्रेण सेचयेत्। घृतं तत्र समापूर्य वीक्षणादिसुसंस्कृतम् ॥१॥
वायव्ये बाह्यतोऽङ्गारान् कृत्वा तेषु हृदा न्यसेत्। तापनं तु समुद्दिष्टं कुशद्वयमतः क्षिपेत् ॥२॥
आज्ये प्रज्वलितं वह्नौ विन्यसेत्तु घृतान्वितम्। पवित्रीकरणं दर्भद्वयेन ज्वलितेन तु ॥३॥
वर्मणाज्यं च नीराज्य वह्नौ दर्भद्वयं क्षिपेत्। अभिद्योतनमेतत् स्यादुद्द्योतनमथोच्यते ॥४॥
कुशं प्रज्वलितं वह्नौ विन्यसेत्तद् हृदा क्षिपेत्। वह्नावुद्वास्य च घृतमङ्गारानग्निषु क्षिपेत् ॥५॥
अपः संस्पृश्य मन्त्रज्ञः कुर्यादुत्पवनं ततः। अस्त्रमन्त्रं जपन्मन्त्री कुशौ प्रादेशमात्रकौ ॥६॥
अंगुष्ठानामिकाभ्यां च गृहीत्वा घृतमृत्पवेत्। ततो हृदा कुशाभ्यां तु स्वाभिमुख्येन सम्प्लवेत् ॥७॥
घृतं तत्स्यात् सम्प्लवनं षट् संस्काराः प्रकीर्तिताः । इति।

आज्यमिति—

उत्तमं गोघृतं प्रोक्तं मध्यमं महिषीभवम्। अधमं छागलीजातं तस्माद्गव्यं प्रशस्यते ॥१॥

इति पिङ्गलामतोक्तं वीक्षणादिसुसंस्कृतं घृतं समापूर्य मूलमन्त्रेणाभिमन्त्र्य धेनुमुद्रयामृतीकृत्य पश्चादुक्तसंस्कारैः संस्कुर्यात्। उक्तं च शैवागमे—

गव्यमाज्यं समादाय मूलमन्त्राभिमन्त्रितम्। स्वकां ब्रह्ममयीं मूर्तिं सञ्चिन्त्य परितापयेत् ॥१॥ इति।

वायवीयसंहितायाम्—'न्यस्य मन्त्रं घृते मुद्रां दर्शयेद्धेनुसंज्ञिताम्' इति। बाह्यतः कुण्डव्यासादिति शेषः। प्रज्वलितं कुशद्वयं हृदा आज्ये क्षिपेदित्यन्वयः। नीराज्याभितः परिभ्राम्य दर्भद्वयं, दर्भाणामग्नौ प्रक्षेपः प्रतिपत्तिकर्म, अत एव मन्त्रोऽपि नोक्तस्तेन दर्भनाशे सति अकृतेऽपि प्रक्षेपे न वैगुण्यमिति। अंगुष्ठानामिकाभ्यां हस्तद्वयेनेति शेषः। उत्पवेदग्निसंमुखमित्यर्थः। शैवागमे—

प्रादेशमात्रदर्भाभ्यामङ्गुष्ठानामिकाग्रकैः । धृताभ्यां सम्मुखं वह्नेरस्त्रेणोत्पवमाचरेत् ॥१॥ इति।

उभयत्र वह्निप्रक्षेप एव कुशानां प्रतिपत्तिकर्म। पुनस्तत्रैव—

गृहीत्वा स्रुक्स्रुवावूर्ध्वमुखावधोमुखौ क्रमात् । प्रताप्याग्नौ त्रिधा दर्भमूलमध्याग्रकैः स्पृशेत् ॥१॥
मूलमध्याग्रदेशे तु आत्मविद्याशिवात्मकम् । क्रमात्तत्त्वत्रयं न्यस्येत् ह्रांह्रींहूंबीजकैः प्रिये ॥२॥
स्रुचि शक्तिं स्रुवे शम्भुं विन्यस्य हृदयाणुना । त्रिसूत्रवेष्टितग्रीवौ पूजितौ कुसुमादिभिः ॥३॥
कुशानामुपरिष्टात्तु स्थाप्यावेतौ स्वदक्षिणे ।

दर्भमूलादिभिः स्रुक्स्रुवयोर्मूलादिस्पर्शः।

उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि घी की थाली को लेकर अस्त्र मन्त्र से सेचन करे। तब उस थाली में घी भरे। वीक्षणादि से संस्कृत करे। वायव्य में बाहर से अंगार लेकर उसमें नमः से न्यास करे। तापन के उद्देश्य से उसमें दो कुश डाले। आज्य को प्रज्वलित अग्नि पर रखे। घृतान्वित पवित्रीकरण दो ज्वलित कुशों से करे। कवच से आरती उतारे। अग्नि में दो कुश डाले। इतने कर्मों को अभिद्योतन कहते हैं। अब उद्योतन को कहता हूँ। प्रज्वलित अग्नि में कुश रखे। उसे हृदय में स्थापित करे। अग्नि को उद्वासित करके घी में अंगार डाले। जल स्पर्श कराकर उत्पवन करे। मन्त्री अस्त्र मन्त्र जपते हुए वित्ता भर के कुश को अंगूठा-अनामिका से पकड़कर घृत में डुबोये। तब नमः कहकर कुश से अपने आगे से संप्लवन करे। संप्लवन तक घी के छः संस्कार होते हैं।

आज्य में गोघृत उत्तम होता है। भैंस का घी मध्यम होता है। बकरी का घी अधम होता है। इसलिये गोघृत को प्रशस्त कहा गया है। पिङ्गला मत से वीक्षणादि संस्कृत घी को भरकर मूल मन्त्र से अभिमन्त्रित करे। धेनुमुद्रा से उसका अमृतीकरण करें तब उक्त संस्कारों से संस्कृत करे। शैवागम में कहा भी है—गोघृत लेकर मूल मन्त्र से अभिमन्त्रित करे। अपने को ब्रह्ममयी मूर्ति मानकर घी को गरम करे। वायवीय संहिता में कहा गया है कि घी में मन्त्र न्यास करके धेनुमुद्रा दिखावे। शैवागम में कहा गया है कि वित्ता भर के कुश को अंगूठा अनामिका के अग्र से पकड़कर सम्मुख अग्नि में अस्त्र से उत्पव करे। साथ ही यह भी कहा है कि ऊर्ध्वमुख स्रुव एवं अधोमुख स्रुवा को क्रमशः लेकर आग में तीन बार तपावे। कुश से मूल मध्य अग्र का स्पर्श करावे। मूल मध्य अग्र प्रदेश में आत्मविद्या शिवात्मक है। क्रम से तत्त्वत्रय का न्यास ह्रां ह्रीं ह्रूं बीज से करे। स्रुचि शक्ति है और स्रुव शिव है। हृदयाणु से न्यास करके जले तीन सूत लपेटकर पुष्पादि से पूजा करे। तब अपने दाँयें भाग में कुश पर स्थापित करे।

स्पर्शमभिधायोक्तमुत्तरतन्त्रे—

तत आदाय वामेन प्रोक्षयेद्दक्षपाणिना । भूयोऽग्नौ तौ प्रताप्याथ कुशानग्नौ निवेदयेत् ॥१॥

प्रताप्य त्रिश इति शेषः। उक्तं च पिङ्गलामते—

पुनस्त्रिशः प्रताप्याधोमुखावग्नौ कुशान् क्षिपेत् । मूलमध्याग्रके न्यसेच्छक्तीरिच्छादिकाः क्रमात् ॥१॥ इति।

इच्छाज्ञानक्रियाः शक्तयः। उत्तरतन्त्रे—

कुशद्वयं घृते न्यस्य ततः प्रादेशसंमितम् । सग्रन्थि कृत्वा साग्रं द्वौ शुक्लकृष्णौ विचिन्तयेत् ॥१॥
पक्षौ वाम इडां दक्षे पिङ्गलां मध्यतस्ततः । सुषुम्नां संस्मरेन्मन्त्री ततो होमं समाचरेत् ॥२॥

सग्रन्थि कुशद्वयमित्यन्वयः।

दक्षभागाद्गृहीत्वाज्यं स्रुवेणाथ हृदाणुना । जुहुयाद्दक्षनेत्रेऽग्नेः स्वाहान्तायाग्नये ततः ॥१॥
गृहीत्वा वामभागाच्च घृतं वामेऽग्निलोचने । जुहुयाच्च हृदा सोमाय स्वाहेति च देशिकः ॥२॥
गृहीत्वा मध्यतस्त्वाज्यमग्नेरलिकलोचने । हृदाणुनाग्नीषोमाभ्यां स्वाहेति जुहुयात्सुधीः ॥३॥

दक्षभागाद्गृहीत्वा तु हृदाज्यं जुहुयात् सुधीः। वक्त्रे वह्नेः स्विष्टकृते स्वाहेति च ततो गुरुः ॥४॥

सर्वत्र हृन्मन्त्रस्त्वाज्यग्रहणे ज्ञेयः।

उत्तरतन्त्र में कहा है कि बाँयें हाथ में कुश लेकर दाँयें हाथ से उसका प्रोक्षण करे। आग में उसे तीन बार तपावे। तब कुश को आग में डाल दे। पिङ्गला मत में कहा है कि कुश को तीन बार तपाकर अधोमुख करके आग में डाल दे। मूल मध्य अग्र में क्रमशः इच्छा ज्ञान क्रिया शक्ति का न्यास करे। उत्तरतन्त्र में कहा है कि वित्ता भर के दो कुशों को घी में डाल दे। कुशों के अग्रभाग में गाँठ बाँधे। दोनों कुशों का चिन्तन श्वेत और काले वर्ण का करे। बाँयें पक्ष में इड़ा, दाँयें में पिङ्गला और मध्य में सुषुम्णा का स्मरण करके हवन करे। दाँयें भाग से स्रुव के द्वारा घी लेकर अग्नि के दाँयें नेत्र में 'अग्नये नमः स्वाहा' कहकर आहुति दे। बाँयें भाग से घी लेकर अग्नि के बाँयें नेत्र में 'ॐ सोमाय नमः स्वाहा' कहकर डाले। मध्य भाग में घी लेकर अग्नि के तीसरे नेत्र में 'अग्निषोमाभ्यां नमः स्वाहा' कहकर डाले। नमः कहकर दक्ष भाग से घी लेकर 'वह्ने स्विष्टकृते स्वाहा' से मुख में आहुति देवे। शारदा तिलक के अनुसार ॐ भू स्वाहा, ॐ भुवः स्वाहा, ॐ स्वः स्वाहा, ॐ अग्नये स्वाहा। ॐ अग्नये स्वाहा से तीन आहुति प्रदान करे।

शारदातिलके—

सताराभिर्व्याहृतिभिराज्येन जुहुयात् पुनः। जुहुयादग्निमन्त्रेण त्रिवारं देशिकोत्तमः ॥१॥

व्याहृतिभिर्व्यस्तसमस्ताभिस्तिसृभिः। प्रपञ्चसारे—

गर्भाधानादिका वह्नेः समुद्वाहावसानिकाः। क्रियास्तारेण वै कुर्यादाज्याहुत्यष्टभिः क्रमात् ॥१॥ इति।

शारदातिलके—'गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं तथा' इति। वायवीयसंहितायाम्—

जातं ध्यात्वैवमाकारं जातकर्म समाचरेत्। नालापनयनं कृत्वा ततः संशोध्य सूतकम् ॥१॥
शिवाग्निरिति नामास्य कृत्वाहुतिपुरःसरम्। पित्रोर्विसर्जनं कृत्वा चूडोपनयनादिकम् ॥२॥
अथोद्वाहावसानं यत् कृत्वा संस्कारमस्य तु। इति।

शिवाग्निरिति शैवे। अन्यत्र तु नारायणाग्निर्दुर्गाग्निरित्यादि। उत्तरतन्त्रे—

गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं तथा। जातकर्म ततो नामकरणं चोपनिष्क्रमम् ॥१॥
अन्नप्राशनचौलोपनयनानि ततः परम्। महानाम्न्यं महापूर्वव्रतं च तदनन्तरम् ॥२॥
अथौपनिषदं चैव गोदानं तदनन्तरम्। समावर्तनमुद्वाहः संस्कारा मरणान्तिकाः ॥३॥
क्रूरकर्मणि कर्तव्या मरणान्ताश्च देशिकैः। इति।

एतन्मन्त्रश्च नारदपञ्चरात्रे—

प्रणवं पूर्वमुच्चार्य ततः कर्म समुच्चरेत्। सम्पादयामि स्वाहेति सर्वकर्मस्वयं विधिः ॥१॥ इति।

सौत्रामणीतन्त्रे—'विवाहान्ता वाग्भवेन' इत्युक्तम्, तदेतयोर्विकल्पः। उत्तरतन्त्रे—विवाहानन्तरम् 'अभ्यर्च्य वह्निं पितरौ संयोज्यात्मनि मन्त्रवित्' इत्युक्तं यथासम्प्रदायं ज्ञेयम्। तथा—

आद्यन्ते घृतसंश्लिष्टाः पञ्चाथ समिधो हुनेत्। जुहुयाद्रसनाङ्गाष्टमूर्तिमन्त्रैः सकृद्घृतैः ॥१॥ इति।

गणेश्वरपरामर्शिन्याम्—

ततोऽपि जुहुयादङ्गमन्त्राद्यैश्च सकृत्सकृत्। तन्नामान्ते निशितधीः स्वाहान्तैश्च यथाक्रमम् ॥१॥ इति।

विष्णुधर्मोत्तरे—

मन्त्रेणोङ्कारपूर्वेण स्वाहान्तेन विचक्षणः। स्वाहावसाने जुहुयाद्ध्यायन्वै मन्त्रदेवताम् ॥१॥ इति।

श्रुतिरपि—'यस्यै देवतायै हविर्गृहीतं स्यात्तां मनसा ध्यायेद्वषट् करिष्यन्' इति। स्वाहान्तमन्त्रस्तु तदन्तो न कर्तव्यः। उत्तरतन्त्रे—

चतुर्वारं स्रुवेणाज्यं गृहीत्वा स्रुचि निःक्षिपेत् । तेनैव तां पिधायाग्नौ हुनेत्तिष्ठन् गुरुः स्वयम् ॥१॥
वौषडन्तेन वह्नेस्तु मनुना सम्पदे ततः । इति।

प्रपञ्चसार में कहा गया है कि गर्भाधान से समुद्वाह तक आठ संस्कार घृताहुतियों से करे। गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चौलकर्म, उपनयन—इन आठ संस्कारों को करे। वायवीय संहिता में उक्त है कि जन्म के बाद जातकर्म संस्कार करे। नाल काटने के बाद सूतक का संशोधन करे। शिवाग्नि नामक इस अग्नि में आहुति डाले। पितरों के विसर्जन के बाद चूड़ोपनयनादि से उद्वाहन तक जो संस्कार होते हैं, उन्हें करे। उत्तरतन्त्र के अनुसार गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, उपनिष्क्रमण, अन्नप्राशन, चौल, उपनयन, महानाम्नि, महाव्रत, औपनिषद, गोदान, समावर्तन, उद्वाह संस्कार के पश्चात् अन्तिम मरण संस्कार होता है। क्रूर कर्म में अन्तिम संस्कार भी किया जाता है।

नारद पंचरात्र के अनुसार संस्कार के मन्त्र इस प्रकार हैं—ॐ गर्भाधानसंस्कारं करोमि स्वाहा। ॐ पुंसवनसंस्कारं करोमि स्वाहा। इसी प्रकार अन्य मन्त्र भी होते हैं। उत्तरतन्त्र के अनुसार विवाह के बाद अग्नि का अर्चन करके अपने पितरों को संयोजित करे। यह यथासम्प्रदाय ज्ञेय है। कहा भी है कि समिधा के दोनों ओर घृत लगाकर हवन करे। अष्टाङ्ग मूर्ति मन्त्र से रसना में आहुतियाँ डाले। गणेश्वरपरामर्शिनी में कहा गया है कि अंग-नाममन्त्रों में स्वाहा जोड़कर यथाक्रम हवन करे; जैसे—ॐ हृदयाय नमः स्वाहा इत्यादि। विष्णुधर्मोत्तर में कहा गया है कि मन्त्र के पहले ॐ और बाद में स्वाहा जोड़कर ध्यानसहित मन्त्रदेवता का हवन कर्म करे। श्रुतिवचन है कि जिस देवता के लिये आहुति दी जाय, उसका ध्यान करके आहुति डाले। उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि चार बार स्रुव से आज्य लेकर स्रुचि में गिराये। उसी से अग्नि में हवन स्वयं गुरु करे। वौषट् जोड़कर हवन करने से सम्पदा मिलती है।

प्रपञ्चसारे—

जिह्वायां मध्यसंस्थायां मन्त्री ज्वालावलीतनौ । ताराद्यैर्दशभिर्मन्त्रैः पूर्वपूर्वसमन्वितैः ॥१॥
मनुना गाणपत्येन हुनेत् पूर्वं दशाहुतीः । जुहुयाच्च चतुर्वारं समस्तेनैव तेन तु ॥२॥
आज्येन साध्यमनुना पञ्चविंशतिसंख्यकम् । जुहुयात् सर्वहोमेषु सुधीरनलतृप्तये ॥३॥
तान्त्रिकाणामयं न्यायो हुतानां समुदीरितः । इति।

गाणपत्येन महागणेशमन्त्रेण। गणेश्वरपरामर्शिन्याम्—

महागणेशमन्त्रेण पूर्वपूर्वयुतेन च । तारादिबीजषट्केषुकरणेष्वद्रिवर्णकैः ॥१॥
भिन्नेन दशधा तेन समस्तेन हुनेत् प्रिये । इति।

मन्त्रः प्रयोगे वक्ष्यते। इषवः पञ्च, करणानीन्द्रियाणि पञ्च, अद्रयः सप्त, बीजषट्क—इषु पदच्छेदः। चरुहोमे तु चरुमिदानीं श्रपयेत्, तत्प्रकारः प्रागेव प्रपञ्चितः। उत्तरतन्त्रे—

सम्पूज्य देवतापीठं वह्नौ सम्यक् ततो गुरुः । अग्निरूपधरां तत्र पूजयेदिष्टदेवताम् ॥१॥
आज्येन साध्यमनुना पञ्चविंशतिसंख्यकम् । हुनेन्मन्त्री चाग्निमुखे वक्त्रैकीकरणं मतम् ॥२॥
आत्माग्निदेवतानां च चिन्तयन्नैक्यमात्मवित् । एकादशाथ मूलेन हुनेदाज्येन चाहुतीः ॥३॥
नाडीसंधानमेवं हि प्रोक्तं देशिकसत्तमैः । अङ्गप्रभृत्यावृतीनामेकैकामाहुतिं हुनेत् ॥४॥
पूर्वादिदिक्षु कुण्डेषु सर्वेष्वपि यथाविधि । गुरुर्वह्निं प्रविहरेत् संस्कृतेषूक्तवर्त्मना ॥५॥
सर्वर्त्विजश्चन्दनाद्यैः सम्पूज्य प्रोक्तदेवताम् । सर्वावरणसंयुक्तां मूलेन जुहुयुस्ततः ॥६॥
पञ्चविंशतिधा सर्पिः संयुतेन पयोन्धसा । इति।

वायवीयसंहितायाम्—

स्रुवेणाज्यं समित्पाणिस्रुचा शेषं करेण वा। तत्तद्द्रव्येण होतव्यं तीर्थेनार्षेण वा तथा ॥१॥ इति।

छन्दोगपरिशिष्टे—'**दैवेन तीर्थेन च हूयते हविः स्वङ्गारिणि स्वर्च्चिषि तच्च पावके**' इति।

योऽनर्च्चिषि जुहोत्यग्नौ व्यङ्गारिणि च मानवः। मन्दाग्निरामयावी च दरिद्रश्चोपजायते ॥१॥ इति।

प्रपञ्चसार का वचन है कि ज्वालावली शरीर के मध्य में मुख मानकर तारा गणपति मन्त्र से दश आहुति प्रदान करे; जैसे—ॐ स्वाहा, ॐ श्रीं स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये स्वाहा, ॐ श्रीं क्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वरवरद स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा। अन्तिम मन्त्र से चार आहुतियाँ देवे। साध्य मन्त्र से घी की पच्चीस आहुति डाले। सभी हवनों में साधक अनल तृप्ति के लिये हवन करे। तान्त्रिक मत से आहुतियों का यह सम्यक् क्रम कहा गया है। गणेश्वरपरामर्शिनी के अनुसार महागणेश मन्त्र के दस भागों को तारादि बीजषट्क के बाद जोड़कर दश आहुति देने के बाद समस्त मन्त्र से हवन करे। चरु हवन का विवेचन करते हुये उत्तर तन्त्र में कहा गया है कि देवता, पीठ और अग्नि का सम्यक् पूजन करने के बाद अग्निरूप धरा इष्ट देवता का पूजन करे। आज्य से साध्य मन्त्र के द्वारा पच्चीस आहुति मुख में डाले। यह वक्त्रैकीकरण होता है। देवता से अपने तादात्म्य का चिन्तन करे। ऐसा चिन्तन करके घी की ग्यारह आहुतियाँ डाले। इसे नाड़ीसन्धान कहते हैं। प्रत्येक अंग नाम से एक-एक आहुति प्रदान करे। कुण्ड की पूर्वादि दिशाओं में गुरु अग्नि के प्रविहरण संस्कार उक्त मार्ग से करे। प्रोक्त देवताओं का पूजन चन्दनादि से करे। मूल से समस्त आवरण देवताओं के लिये हवन करे। वायवीय संहिता में कहा गया है कि स्रुवा में भर-भर कर घी से हवन करे। शेष को हाथ से करे। तब उपयुक्त द्रव्यों से तीर्थ से या आर्ष से हवन करे। जो अर्चितथा अग्नि में एवं अंगाररहित अग्नि में मन्दाग्नि में हवन करता है, वह दरिद्रता को प्राप्त होता है।

मण्डले बलिः

तथा प्रपञ्चसारे—

हुते तु देशिकः पश्चान्मण्डले बलिमाहरेत्। नक्षत्राणां सवाराणां सराशीनां यथाक्रमम् ॥१॥
दद्याद्बलिं गन्धपुष्पधूपदीपकमादरात्। ताराणामश्विन्यादीनां राशिः पादाधिकं द्वयम् ॥२॥
मेषादियुक्तनक्षत्रसंज्ञापूर्वमनन्तरम्। देवताभ्यः पदं प्रोक्त्वा दिवानक्तं वदेत्तथा ॥३॥
चारिभ्यश्चाथ सर्वेभ्यो भूतेभ्यो वै नमो वदेत्। एवं राशौ तु सम्पूर्णे तस्मिंस्तद्वत्प्रयोजयेत् ॥४॥
तथा राश्यधिपानां च ग्रहाणां तत्र तत्र च। सप्तानां करणानां च दद्यान्मीनाह्वमेषयोः ॥५॥
अन्तराले बलिस्त्वेवं सम्प्रोक्तः कलशात्मकः। पुनर्निवेद्यमुद्धृत्य पूर्ववत् परिपूज्य च ॥६॥
मुखवासादिकं दत्त्वा तदा तद्युक्तया पुनः। स्तुत्वा यथावत् प्रणमेद्भक्तियुक्तस्तु साधकः ॥७॥ इति।

मीनाह्वमेषयोरन्तराले ईशानपूर्वदिशोर्मध्ये। तथा तन्त्रराजे—

प्राच्यां मेषवृषौ वह्नौ मिथुनं दक्षिणे तथा। कुलीरसिंहौ च तथा नैर्ऋत्यां कन्यका स्थिता ॥१॥
तुलाकीटौ पश्चिमतो धनुर्वायौ तु संस्थितम्। नक्रकुम्भावुत्तरतो मीनमीशे तु संस्थितम् ॥२॥

इति श्रीमहामहोपाध्यायभगवत्पूज्यपाद-श्रीगोविन्दाचार्यशिष्य-श्रीभगवच्छङ्कराचार्यशिष्य-श्रीविष्णुशर्माचार्यशिष्य-श्रीप्रगल्भाचार्यशिष्य-श्रीविद्यारण्ययतिविरचिते श्रीविद्यार्णवाख्ये तन्त्रे द्वादशः श्वासः ॥१२॥

●

प्रपञ्चसार में कहा गया है कि हवन के बाद देशिक मण्डल में बलि प्रदान करे। यह बलि नक्षत्रों को, वारों को, राशियों को यथाक्रम प्रदान करे। गन्ध, पुष्प, धूप, दीपसहित आदर से बलि प्रदान करे। अश्विनी आदि नक्षत्र राशियों को बलि प्रदान

करे। मेषादि युक्त नक्षत्र नाम देवताभ्यः दिवानक्तं चारिभ्यः सर्वेभ्यो भूतेभ्यो नमः कहकर बलि दे। राशि सम्पूर्ण जैसी है, वैसा ही प्रयोग करे। राशि अधिपति ग्रहों को, सात करणों को एवं मीन से मेष तक की राशियों को बलि दे। अब कलशात्मक बलि कहता हूँ। पुनः समुद्धृत करके पूर्ववत् पूजा करके मुखवासादि देकर स्तुति करके भक्तिपूर्वक प्रणाम करे।

तन्त्रराज में कहा गया है कि पूर्व में मेष, अग्नि में वृष, दक्षिण में मिथुन, कर्क एवं सिंह; नैर्ऋत्य में कन्या-तुला, वृश्चिक पश्चिम में, धनु वायव्य में, मकर-कुम्भ उत्तर में और मीन राशि ईशान में निवास करती है।

इस प्रकार श्रीविद्यारण्ययतिविरचित श्रीविद्यार्णव तन्त्र के कपिलदेव नारायण-कृत भाषा-भाष्य में द्वादश श्वास पूर्ण हुआ

अथ त्रयोदशः श्वासः

अध्वविवेचनम्

उत्तरतन्त्रे—

समुत्थायोषसि तिलैर्जुहुयुः सर्पिरन्वितैः। पुनः साध्येन मनुना अष्टोत्तरसहस्रकम् ॥१॥
द्रव्यैर्विधानप्रोक्तैर्वा हुनेदष्टाधिकं शतम्। शिष्यं स्नातं पञ्चगव्यं पाययेन्मन्त्रवित्तमः ॥२॥
कुण्डस्याभ्याशमानीय दिव्यदृष्ट्यावलोकयेत्। हृत्पुण्डरीकाच्चैतन्यं तस्य स्वात्मनि योजयेत् ॥३॥
आचार्यस्तत अध्वानं षड्विधं शोधयेत्क्रमात्। ते कलातत्त्वभुवनार्णपदा मन्त्रपूर्वकाः ॥४॥
अध्वानः षट्च सम्प्रोक्तास्तेषां लक्षणमुच्यते। कला निवृत्तिप्रमुखास्तदध्वा पञ्च कीर्तिताः ॥५॥
शैवादिनिगमैर्भिन्नास्तत्त्वाध्वानो बहुक्रमाः। तत्र शैवानि तत्त्वानि षट्त्रिंशत्प्रमितान्यथ ॥६॥
वक्ष्यन्ते शिवशक्ती च सदाशिव इतीरितः। विद्या चैतानि शुद्धानि शुद्धाशुद्धानि सप्त च ॥७॥
माया विद्या कला रागः कालो नियतिरेव च। पुरुषश्चाप्यशुद्धानि प्रकृतिर्बुद्ध्यहंकृतिः ॥८॥
मनश्चेन्द्रियदशकं तन्मात्रा भूतपञ्चकम्। उक्तानि शैवतत्त्वानि षट्त्रिंशन्मन्त्रवेदिभिः ॥९॥
अथ वैष्णवतत्त्वानि द्वात्रिंशत्प्रमितानि च। वक्ष्यन्ते जीवसहितः प्राणो बुद्धिर्मनस्ततः ॥१०॥
दशेन्द्रियाणि तन्मात्रा भूतानां पञ्चकं तथा। हृतपद्मं तेजसां चैव त्रयं चत्वार एव च ॥११॥
वासुदेवादयः सौराण्युच्यन्ते भूतपञ्चकम्। तन्मात्राश्चेन्द्रियाणि स्युर्मनोऽहङ्कारबुद्धयः ॥१२॥
प्रधानं चेति शक्तेस्तु तत्त्वानि स्युर्दशैव हि। (निवृत्त्याद्याः कलाः पञ्च ततो बिन्दुकला पुनः ॥१३॥
नादः शक्तिः सदापूर्वः शिवश्च प्रकृतेर्विदुः। सप्त तत्त्वानि प्रोक्तानि तन्त्रज्ञैस्त्रिपदात्मनः)॥१४॥
आत्मविद्याशिवा एते विपरीतास्त एव च। सर्वतत्त्वञ्च सम्प्रोक्तास्तत्त्वाध्वानस्तु देशिकैः ॥१५॥
भुवनानीह सर्वाणि भुवनाध्वा प्रकीर्तितः। इति।

भुवनानि लोकाः। ते तु कुलार्णवे—

अतलो वितलश्चैव सुतलश्च महातलः। रसातलश्च तदनु तलातल इति स्मृताः ॥१॥
पातालो भूर्भुवः स्वश्च महर्जनतपाह्वयाः। सत्यलोकश्च सम्प्रोक्ता लोका एते यथाक्रमम् ॥२॥
आदिक्षान्तांस्तथा वर्णान् वर्णाध्वानं प्रचक्षते। पदाध्वा वर्णवृन्दं स्यान्मन्त्राध्वा पदसञ्चयः ॥३॥
शिष्ये स्मरेत्तान् पादान्धुनाभिहृद्भालमूर्धसु। कूर्चेन च गुरुः शिष्यं स्पृशन् कुण्डे स्वके हुनेत् ॥४॥
तिलैर्घृताक्तैस्ताराद्यममुकाध्वानमत्र च। शोधयामि द्विठान्तेन मन्त्रेणाष्टाहुतीः पृथक् ॥५॥ इति।

कुलार्णवे—

शूद्रसङ्करजातीनां नाध्वशुद्धिर्विधीयते। पादोदकप्रदानाद्यैः कुर्यात्पापविमोचनम् ॥१॥ इति।

अध्व-विवेचन—उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि प्रात:काल उठकर गोघृत और तिल से साध्य मन्त्र के द्वारा एक हजार आठ या एक सौ आठ हवन करे। शिष्य को स्नान कराकर पञ्चगव्य पिलावे। कुण्ड के पास लाकर दिव्य दृष्टि से अवलोकन करे। उसके चैतन्य को अपने हृदय कमल में योजित करे। तब आचार्य शिष्य के षडध्वों का शोधन करे। ये कलाध्व, तत्त्वाध्व, भुवनाध्व, वर्णाध्व, पदाध्व और मन्त्राध्व के भेद से छ: प्रकार के होते हैं। उनके लक्षण इस प्रकार कहे गये हैं—कलाध्व में निवृत्ति आदि पाँच कलायें होती हैं। शैवादि निगमों में से भिन्न तत्वाध्व बहुत प्रकार के हैं। शैव तत्त्व छत्तीस प्रकार

के होते हैं। वे छत्तीस इस प्रकार हैं—१. शिव, २. शक्ति, ३. सदाशिव, ४. ईश्वर, ५. शुद्धविद्या, ६. माया, ७. कला, ८. अविद्या, ९. राग, १०. काल, ११. नियति, १२. पुरुष, १३. प्रकृति, १४. अहंकार, १५. बुद्धि, १६. मन, १७. श्रोत्र, १८. त्वक्, १९. नेत्र, २०. जीभ, २१. नाक, २२. वाक्, २३. पाणि, २४. पाद, २५. पायु, २६. उपस्थ, २७. शब्द, २८. स्पर्श, २९. रूप, ३०. रस, ३१. गन्ध, ३२. आकाश, ३३. वायु, ३४. अग्नि, ३५. जल और ३६. भूमि।

वैष्णव तत्त्व बत्तीस प्रकार के होते हैं—जीव, प्राण, बुद्धि, मन, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच तन्मात्रा, पञ्चमहाभूत, हृदयकमल, तीन तेज एवं वासुदेवादि चार। सौर तत्त्व चौबीस होते हैं—मन, अहंकार, बुद्धि, पाँच महाभूत, पाँच तन्मात्रा, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, एक प्रधान। शाक्त तत्त्व भी शैव तत्त्व के समान छत्तीस ही होते हैं। इनके अतिरिक्त निवृत्ति आदि पाँच कला, तब बिन्दु कला, नाद शक्ति सदाशिव हैं। तन्त्रज्ञों ने सात तत्त्वों को त्रिपदात्मक कहा है, जो आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्व है। इनमें कुछ एक-दूसरे से विपरीत हैं। इस प्रकार तत्त्वाध्वान से सभी तत्त्वों को कहा गया। भुवनाध्व में सभी भुवन विवेचित किये गये हैं।

कुलार्णव के अनुसार—अतल, वितल, सुतल, महातल, रसातल, तलातल, पाताल, भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक एवं सत्यलोक—ये कुल चौदह भुवन होते हैं। वर्णाध्व में—अ से क्ष तक के इक्यावन वर्ण आते हैं। पदाध्व वर्णवृन्द हैं। मन्त्राध्व पदसंचय है। गुरु शिष्य के पैर जानु, नाभि, हृदय, भाल और मूर्धा में छः अध्वों का चिन्तन करे। इन छः स्थानों में गुरु कूर्च से स्पर्श करे। अपने कुण्ड में हवन करे। तिल घी से निम्न मन्त्रों से शोधन करे—ॐ शोधयामि कलाध्वानं स्वाहा, ॐ शोधयामि तत्त्वाधानं स्वाहा, ॐ शोधयामि भुवनाध्वानं स्वाहा, ॐ शोधयामि वर्णाध्वानं स्वाहा, ॐ शोधयामि पदाध्वानं स्वाहा, ॐ शोधयामि मन्त्राध्वानं स्वाहा। प्रत्येक मन्त्र से आठ-आठ आहुतियाँ प्रदान करे। कुलार्णव में कहा गया है कि शूद्र और संकर जातियों के लिये अध्वशुद्धि का विधान नहीं है। पादोदक प्रदान करने से ही उनके पापों का विमोचन हो जाता है।

षडध्वशुद्ध्यादि

तथा—

षडध्वनः क्रमात्सम्यक् प्रविलाप्य शिवावधि । सृजेत्सृष्ट्या विलीनांस्ताञ्शिवान्तांश्च गुरूत्तमः ॥१॥
देशिकेन्द्रश्च तं शिष्यं दृष्ट्या दृष्ट्वा च दिव्यया । तच्चैतन्यं स्थितं तस्मिंस्तस्मिन्नेव नियोजयेत् ॥२॥
हुनेन्महाव्याहृतिभिस्ततो देशिकसत्तमः । अङ्गप्रभृत्यावृतीनां हुनेद्भ्यो घृतेन वै ॥३॥
भूरग्नये च पश्चाच्च पृथिव्यै च युतो मनुः । भुवः स्याद्वायवे चान्तरिक्षाय च युतो मनुः ॥४॥
स्वरादित्याय च दिवे च युतो मनुरीरितः । भूर्भुवःस्वश्चन्द्रमसे नक्षत्रेभ्यश्च पूर्वतः ॥५॥
दिग्भ्यस्ततो वदेदेष मन्त्रः प्रोक्तस्तुरीयकः । महते च द्विठान्ताः स्युर्महाव्याहृतिमन्त्रकाः ॥६॥

महते इति पदं भूरित्यादिचतसृष्वप्यन्वेति। द्विठः स्वाहाकारः।

ब्रह्मार्पणाह्वमन्त्रेण सर्वकर्मच्छिदे सुधीः । जुहुयादाहुतीरष्टौ केवलाज्येन मन्त्रवित् ॥७॥
वदेदितः परं पूर्वप्राणबुद्धिस्ततो वदेत् । देहधर्माधिकारं च जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु ॥८॥
वदेत् स्वावस्थासु मनसा वाचा पदमुद्धरेत् । कर्मणा चैव हस्ताभ्यां पद्भ्यामुक्त्वोदरेण च ॥९॥
वदेच्छिश्ना च यच्छब्दं स्मृतं यत्पदमुच्चरेत् । उक्तं य यत्कृतं तच्च सर्वं ब्रह्मार्पणं भव ॥१०॥
तु स्वाहान्तश्च सम्प्रोक्तो ब्रह्मार्पणमनूत्तमः । हुत्वा पूर्णाहुतिं मन्त्री स्रुचा मूलाणुना ततः ॥११॥ इति।

ब्रह्मार्पणमन्त्रः प्रयोगे स्पष्टीक्रियते। कपिलपञ्चरात्रे—

अर्चयित्वा यथान्यायं जुहुयाद्वै पुनः सुधीः । न्यूनातिरिक्तपूर्णार्थं ददामि सघृतं तिलम् ॥१॥
विष्णुबीजं समुच्चार्य साङ्गं कुरुकुरु द्विठः । यानुलोमाष्टमं वर्णं षष्ठोपान्त्यस्वराकुलम् ॥२॥

प्रणवेन समायुक्तं विष्णुबीजं प्रकीर्तितम्। इति।

यानुलोमाष्टमो हकारः, षष्ठस्वरः ऊकारः, उपान्त्यस्वरो बिन्दुः।

साथ ही यह भी कहा गया है कि षडध्वों को क्रम से शिव में विलीन कर दे। फिर सृष्टिक्रम से उन्हें परमशिव से उत्पन्न होने की भावना करे। देशिकेन्द्र शिष्य को दिव्य दृष्टि से देखे। उसकी चेतना में स्थित होकर उनमें नियोजित करे। तब देशिक महाव्याहृतियों से अंगों के अनुसार घी से हवन करे। भुरग्नये पृथिव्यै स्वाहा। भुवः वायवे अन्तरिक्षाय स्वाहा। स्वरादित्याय दिवे स्वाहा। भूर्भुवःस्वः चन्द्रमसे नक्षत्रेभ्य स्वाहा। दिग्भ्यः देवाय स्वाहा। महते स्वाहा—ये महाव्याहृति मन्त्र हैं।

'ब्रह्मार्पणे सर्वकर्मच्छिदे स्वाहा' से घी की आठ आहुति प्रदान करे। तब—पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतो जाग्रत् स्वप्न-सुषुप्ति-अवस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत्कृतं यत्स्मृतं यदुक्तं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा। इसके बाद देशिक स्रुचा से मूल मन्त्र कहकर पूर्णाहुति प्रदान करे।

कपिल पञ्चरात्र में कहा गया है कि यथाविधि अर्चन के बाद फिर हवन करे। हवन मन्त्र है—न्यूनातिरिक्तपूर्णार्थं ददामि सघृतं तिलं ॐ हूं सांगं कुरु कुरु स्वाहा।

पूर्णाहुतिः

शैवागमे—

कृत्वा तु मृडनामाग्निमभ्यर्च्य प्रयतः पठेत्। सहस्रार्चिर्महातेजः नमस्ते बहुरूपधृक् ॥१॥
सर्वाशिने सर्वगते पावकाय नमोऽस्तु ते। त्वं रौद्रो रौद्रकर्मा च घोरहा त्वं नमामि ते ॥२॥
विष्णुस्त्वं लोकपालोऽसि शान्तिमत्र प्रयच्छ मे। सर्पिषा स्रुचमापूर्य पुष्पं चोपर्यधोमुखम् ॥३॥
स्रुगुपरि स्रुचं दत्त्वा पुष्पं तत्र प्रदापयेत्। सव्योत्तरकराभ्यां च सम्पुटाभ्यां च शङ्खवत् ॥४॥
संगृह्योत्थाय संलग्नौ नाभौ तिर्यङ्निधाय च। पूर्णादर्वीति मन्त्रेण मूलेन च सुसंयतः ॥५॥
दद्यात् पूर्णाहुतीस्तिस्रः सर्वकामप्रपूरणीः। इति।

पुष्पदानं स्रुगुपरि। तदुक्तं वायवीयसंहितायाम्—

ततो होमावशिष्टेन घृतेनापूर्य वै स्रुचम्। निधाय पुष्पं तस्याग्रे स्रुवेणाधोमुखेन ताम् ॥१॥
सदर्भेण समाच्छाद्य मूलेनाञ्जलिना ततः। वौषडन्तेन जुहुयाद्धारां जपसमन्विताम् ॥२॥ इति।

पूर्णादर्वीति शाखाविशेषे वैदिकहोमे। मूलेन वौषडन्तेन। 'स्वाहाकारं ततो होमे पूर्णायां वौषडेव हि' इति तदीयवचनात्।

हुत्वा च हविषा दद्यात्स्रुचा पूर्णाहुतित्रयम्। वौषडन्तेन मन्त्रेण वैष्णवेन सुरोत्तम ॥१॥

इति हयशीर्षपञ्चरात्रवचनाच्च। घृताभावे तु नारदपञ्चरात्रे—

अभावे तु घृतस्यैव होमद्रव्येण पूरयेत्। तस्योपरि घृतं दद्यात्तदूर्ध्वं कुसुमादिकम् ॥१॥ इति।

देवीहोमे तु, पूर्णायागे—

आज्येन स्रुवमापूर्य तेनापूर्य स्रुचं ततः। तदूर्ध्वेऽधोमुखं कृत्वा स्रुवमुत्थाय मन्त्रवित् ॥१॥
ऋजुकायस्तयोर्मूलं नाभिमूले निधाय च। मूलं नमोन्तमुच्चार्य वामपादपुरःसरम् ॥२॥
दद्यात् पूर्णाहुतीर्मन्त्री परामृतधिया ततः। इति।

शैवागम में कहा गया है कि अग्नि का नाम मृड रखकर सावधानी से निम्न मन्त्र पढ़े—

सहस्रार्चिर्महातेजः नमस्ते बहुरूपधृक्। सर्वाशिने सर्वगते पावकाय नमोस्तु ते॥
त्वं रौद्रो रौद्रकर्मा च घोरहा त्वं नमामि ते। विष्णुस्त्वं लोकपालोऽसि शान्तिमत्र प्रयच्छ मे॥

स्रुच को घी से भरकर उसपर अधोमुख स्रुच रखकर उस पर पुष्प रखे। बाँयें-दाँयें हाथों से शंखवत् सम्पुट बनाकर उसे लेकर संलग्न नाभि तिर्यक् रखकर पूर्णादर्वी मन्त्र को मूल मन्त्र से संयुक्त करके सर्वकाम-प्रपूरणी पूर्णाहुति प्रदान करे।

स्रुक् पर पुष्पदान—वायवीय संहिता के अनुसार तब होमावशिष्ट घृत स्रुच में भरकर उस पर फूल रखकर स्रुव को उस पर अधोमुख रखकर कुश से आच्छादन करे। मूल मन्त्र से अंजलि से वौषट् का जप करते हुए धारा गिराकर हवन करे।

हवि से हवन करके स्रुचा से तीन पूर्णाहुति प्रदान करे। वैष्णव मन्त्र के साथ वौषट् जोड़कर पूर्णाहुति प्रदान करे। यह हयशीर्ष पञ्चरात्र में कहा गया है। नारद पञ्चरात्र में कहा गया है कि घी के अभाव में होम द्रव्य से स्रुच को भरे। उस पर घी देकर पुष्पादि रखे। पूर्णायाग में देवी होम के सन्दर्भ में कहा गया है कि स्रुव को आज्य से भरकर आज्य को स्रुच में डाल दे। तब स्रुव को अधोमुख करके स्रुच पर रखे। सीधे खड़े होकर स्रुच को नाभि के सामने करके मूल मन्त्र के बाद नमः कहकर बाँयाँ पैर आगे करके परामृत रूप में पूर्णाहुति प्रदान करे।

अग्न्युद्वासनम्

गणेश्वरपरामर्शिन्याम्—

ॐ भोभो वह्ने महाशक्ते सर्वकर्मप्रसाधक। कर्मान्तरेऽपि संप्राप्ते सन्निधिं कुरु सादरम् ॥१॥
इति मन्त्रेण संप्रार्थ्य वह्निमुद्वासयेदपि। इति।

उतरतन्त्रे—

पुनः सम्पूज्य गन्धाद्यैर्मूलमन्त्रेण मन्त्रवित्। कुण्डादुद्वास्य चाचार्यो देवतां कलशे न्यसेत् ॥१॥
साङ्गां सावरणां तत्र पूजयेच्च यथाविधि। सप्तव्याहृत्यग्निजिह्वादीनामेकाहुतिं क्रमात् ॥२॥
हुत्वाद्भिः परिषिच्याग्निम्..........। इति।

कपिलपञ्चरात्रे—

ततो ब्रह्माणमुद्वास्य ब्राह्मणाय प्रदापयेत्। द्वात्रिंशत्पलताम्रेण निर्मितं ताम्रपात्रकम् ॥१॥
तण्डुलेन समापूर्य सहिरण्यं सदक्षिणम्। गुरुर्वृताय तत्तस्मै पूर्णपात्रं विदुर्बुधाः ॥२॥ इति।

गणेश्वरपरामर्शिनी में कहा गया है कि अग्नि का उद्वासन निम्न मन्त्र से करे—

ॐ भो भो वह्ने महाशक्ते सर्वकर्मप्रसाधक। कर्मान्तरेऽपि संप्राप्ते सन्निधिं कुरु सादरम् ॥

उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि पुनः गन्धादि से मूल मन्त्र के द्वारा पूजनकर कुण्ड का उद्वासन करके आचार्य देवता को कलश में न्यस्त करे। सांग सावरण यथाविधि पूजन करे। सप्तव्याहृति से सप्त जिह्वा को एक-एक आहुति प्रदान करे। हवन के बाद अग्नि का परिसिंचन करे। कपिलपञ्चरात्र में कहा गया है कि ब्रह्मा का उद्वासन करके ब्राह्मण को बत्तीस पल के ताम्र पात्र में चावल भरकर उस पर सोना रखकर दक्षिणासहित गुरु को पूर्णपात्र प्रदान करे।

उत्तरतन्त्रे—

...............संयोज्यात्मनि मन्त्रवित्। ततः परिस्तरानग्नौ परिधीन् निक्षिपेन्न तु ॥१॥
नित्ये नैमित्तिके तांस्तु क्षिपेद्देशिकसत्तमः। वस्त्रेण नेत्रमन्त्रेण शिष्यनेत्रे निबध्य च ॥२॥
कुण्डाद्धस्ते समादाय नयेन्मण्डलसन्निधौ। सुमनोभिः प्रपूर्यास्य ह्यञ्जलिं क्षेपयेद्घटे ॥३॥
मूलमन्त्रोच्चारपूर्वं देवताप्रीतये गुरुः। नेत्रबन्धमपास्योपवेशयेत् कुशसंस्तरे ॥४॥
ततश्च पाठयेच्छिष्यं मन्त्रमेनं गुरुत्तमः। अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ॥५॥
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः। अतः पूजाविधानेन संहरेज्जनयेच्च तम् ॥६॥
तान्मनूक्ताञ्शिशोर्देहे न्यासान्सर्वान्प्रविन्यसेत्। पञ्चोपचारैरभ्यर्च्य कलशस्थेष्टदेवताम् ॥७॥
तन्त्रोक्तवर्त्मना तत्र सकलीकृतिमाचरेत्। अथोपवेशयेच्छिष्यं भूषितं मण्डलान्तरे ॥८॥

कुम्भास्यस्थसुरद्रूंश्च मूर्ध्नि न्यस्य शिशोर्गुरुः । अथ पञ्चनिनादैश्च विप्राशीर्वचनैः सह ॥९॥
सुस्थितं नियतात्मानं सिञ्चेत्कलशपुष्करैः । येन प्रकारेण पुरा पूरितश्च सुधारसैः ॥१०॥
तोयैरक्षरसंयुक्तैर्घटस्तेनैव वर्त्मना । तथैवैनं चाभिषिञ्चेदाशु सम्पदवाप्तये ॥११॥
गृहीत्वाभ्यर्चितं पूर्वं करकं ह्यस्त्ररूपिणम् । तत्तोयैरभिषिञ्चैत्तं रक्षायै देशिकोत्तमः ॥१२॥
जलेन शिष्टेन शिशुं गुरुराचामयेत्ततः । तद्देवतास्वरूपं च विदध्यात्सकलीकृतिम् ॥१३॥
वाससी विमले रम्ये परिधायाज्ञया गुरोः । आचम्य निकटे तस्य निविशेद्वाग्यतः शिशुः ॥१४॥
गुरुः सम्पूज्य शिष्यस्थदेवतां भावयंस्तयोः । ऐक्यं गुरुविनीतस्य सम्यक् तस्य मनुं त्रिशः ॥१५॥
दक्षकर्णे वदेद्वान् विप्रायोदकपूर्वकम् । अन्येभ्यस्तु वदेदेवमेवं मन्त्री विचक्षणः ॥१६॥ इति।

अगस्त्यः—
स्वयंज्योतिर्मयीं विद्यां गच्छन्तीं भावयेद्गुरुः । आगतां भावयेच्छिष्यो धन्योऽस्मीति विशेषतः ॥१॥ इति।

तथा—
अष्टोत्तरशतं शिष्यः प्रजपेद्गुरुणोदितम् । अष्टाविंशतिवारं वा ह्यष्टकृत्वोऽथवा जपः ॥१॥
गुरुदेवात्ममन्त्राणामैक्यं शिष्यो विभावयेत् । प्रणामं विभवे कुर्यात्साधको भक्तिमान् मुहुः ॥२॥
सोऽष्टाङ्गश्चाथ पञ्चाङ्गः पूजाकर्मसु सम्मतः । हस्ताभ्यां चरणाभ्यां च जानुभ्यां वक्षसा तथा ॥३॥
मूर्ध्ना दृष्ट्या तथा वाचा चित्तेनाष्टाङ्ग ईरितः । हस्तजानुशिरोवाक्यधीभिः पञ्चाङ्ग ईरितः ॥४॥
आचार्याज्ञां ततः कुर्यात्सद्यः शिष्यो विभाव्य च । अलङ्कारांश्च वासांसि दद्यादृत्विग्भ्य आदरात् ॥५॥
ईश्वरार्पणबुद्ध्या तु द्विजाशीर्भिश्च नन्दितः । प्रदद्याद्गुरवे शिष्यो विचार्यार्धं तदर्धकम् ॥६॥
दशांशं वा प्रदद्याच्च वित्तशाठ्यविवर्जितः । तदधीनमना नित्यं तच्चित्तस्तत्परायणः ॥७॥
तत्पादाब्जरजोभूषो भवेत् साधकसत्तमः । इति।

शिष्य का अभिषेक—उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि मन्त्रज्ञ आत्मा को जोड़कर अग्नि के चारो ओर परिस्तरण निक्षिप्त करे। नित्य नैमित्तिक दोनों में परिस्तरण का निक्षेप करे। नेत्रमन्त्र से वस्त्र के द्वारा शिष्य को आँखों को बाँधे। कुण्ड पर हाथ रखकर मण्डल के पास ले आये। अंजलि में फूल भरकर कलश पर क्षेपित करे। मूलमन्त्र के उच्चारण-सहित देवता की प्रीति के लिये नेत्र-बन्द शिष्य को कुश की चटाई पर बैठावे। तदनन्तर शिष्य से निम्न मन्त्र का पाठ करवावे—

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया। चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

तब पूजा-विधान से संहार करके फिर जनन के द्वारा भूतशुद्धि करावे। मन्त्रोक्त सभी न्यास शिष्य के देह में करे। कलशस्थ इष्ट देवता का पञ्चोपचार से पूजन करे। तन्त्रोक्त मार्ग से सकलीकरण करे। भूषित शिष्य को दूसरे मण्डल में बैठाये। कलश पर रखे सुरद्रुम को गुरु शिष्य के शिर पर रखकर पाँच वाद्यों को बजाते हुये विप्राशीर्वचन के साथ न्यास करे। नियतात्मा होकर कलश पुष्कर से सेचन यह समझकर करे कि सेचन द्रव्य सुधारस है। जैसे कलश अक्षय जल से संयुक्त है, वैसे ही संपत् प्राप्ति के लिये सेचन करे। पूर्व अभ्यर्चित कलश को लेकर उसके जल से रक्षा के लिये सेचन करे। बचे हुए जल से शिष्य को आचमन करावे। उसे देवता स्वरूप मानकर सकलीकरण करे। आज्ञा देकर गुरु उसे विमल रम्य वस्त्र पहनावे। उसके निकट आचमन करके उसमें वाक् का निवेश करे। शिष्यस्थ देवता का पूजन करके गुरु ऐक्य की भावना करे। गुरु विनीत शिष्य के दाहिने कान में देवता का मन्त्र तीन बार कहे। अन्य देवमन्त्रों को भी इसी प्रकार कहे।

अगस्त्यसंहिता में कहा गया है कि शिष्य भावना करे कि स्वयं ज्योतिर्मयी विद्या गुरु के रूप में उसमें आ गयी और अपने को धन्य माने। साथ ही यह भी कहा गया है कि दीक्षा में गुरु से प्राप्त मन्त्र का शिष्य एक सौ आठ जप करे। अथवा अट्ठाईस बार या कम से कम आठ बार जप करे। गुरु आत्मा और मन्त्र को एक ही मानकर जप करे। साधक भक्तिपूर्वक गुरु

को धन आदि देकर प्रणाम करे। अष्टाङ्ग या पञ्चाङ्ग प्रणाम पूजाकर्म-सम्मत है। हाथ, पैर, घुटना, छाती, मूर्धा, दृष्टि, वचन और चित्त—इन आठ को मिलाकर अष्टाङ्ग होता है। हाथ, घुटना, शिर, वचन और बुद्धि मिल कर पञ्चाङ्ग होता है। आचार्य की आज्ञा पाकर शिष्य ऋत्विजों को भी आदरसहित वस्त्रादि प्रदान करे। ईश्वरार्पण बुद्धि से द्विज भी आशीर्वाद देकर प्रसन्न हो जाय। गुरु को सर्वस्व या आधा या आधा का आधा या दशांश धन वित्तशाठ्य-रहित होकर प्रदान करे। मन से गुरु के अधीन रहे और चित्त को बराबर गुरु में लगाये रखे। गुरु की चरणधूलि को माथे पर लगावे।

गुरुदक्षिणा

तन्त्रराजे—

गुरवे दक्षिणां दद्यात् प्रत्यक्षाय शिवात्मने। सर्वस्वं वा तदर्धं वा तदर्धं वा तदाज्ञया ॥१॥
न चेत्तच्छक्तिसंक्रान्तिः कथमस्य भविष्यति। गजाश्वमहिषीमेषपशुदासीमहीयुतम् ॥२॥
सुवर्णं भूषणं वासो भवनं चान्यदीप्सितम्। स्वदेहं स्वात्मप्राणांश्च दद्यात् स्वशक्तिभक्तितः ॥३॥ इति।

तथा—

ततो नानाविधैर्भक्ष्यैर्लेह्यैश्चोष्यैस्तथेतरैः। ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चात्प्रदद्याद्भूरिदक्षिणाम् ॥१॥
एवं क्रियामयी दीक्षा सम्बन्धात्र निरूपिता। इति।

अत्रोदकपूर्वकमित्यनेन गोहिरण्यवन्मन्त्रस्य प्रदानं प्रतीयते। दानं तु स्वस्वत्वपरित्यागपूर्वकं विधिवत् परस्वत्वप्रतिपादनरूपं भवति। तत्तु क्वापि शिष्याय मन्त्रं दत्त्वा पुनस्तं मन्त्रं गुरुर्न जपति नाराधयति च। तं पुनरन्यस्मै कस्मैचित् न ददाति, इति वचनं सम्प्रदायो वा न दृश्यते। तस्मादुदकदानं त्वौपचारिकमिति वाच्यम्। तर्हि चतुर्णामपि वर्णानामुदकदानं साधारणं कथं न स्याद् दीक्षायां विशेषाभावादौपचारिकत्वाच्च। तस्मादुदकदानं मन्त्रदानरूपमेव। तत्र परस्वत्वापादने कृतेऽपि स्वस्वत्वापरित्यागराहित्यं तु कन्यादानवद्भवितुमर्हतीत्यास्तां विचारः।

गुरुदक्षिण—तन्त्रराज में कहा गया है कि गुरु को प्रत्यक्ष शिव मानकर दक्षिणा प्रदान करे। दक्षिणा में अपना सर्वस्व या उसका आधा या आधा का आधा गुरु के आदेशानुसार प्रदान करे। ऐसा नहीं करने पर शक्ति संक्रान्ति कैसे होगी। गुरुदक्षिणा में हाथी, घोड़ा, भैंस, भेड़, गाय, दासी, भूमि, सोना, गहना, वस्त्र, भवन एवं अन्य ईप्सित द्रव्य प्रदान करे। अपनी शक्ति और भक्ति के अनुसार अपना देह, प्राण भी प्रदान करे।

इसके बाद नाना प्रकार के भक्ष्य, लेह्य, चोष्य आदि से ब्राह्मणों को भोजन कराकर प्रचुर मात्रा में दक्षिणा प्रदान करे। इस प्रकार क्रियादीक्षा से सम्बन्धित विषयों का निरूपण किया गया। यहाँ पर उदकपूर्वक कहने से गाय, सोना आदि का दान करने के समान ही मन्त्र-दान करना भी प्रतीत होता है। अपने स्वत्व के परित्यागपूर्वक विधिवत् परस्वत्व का प्रतिपादनरूप दान होता है। अत: शिष्य को प्रदत्त मन्त्र का जप गुरु नहीं करता। उस मन्त्र को दूसरे किसी को नहीं देता—यह वचन या सम्प्रदाय का नहीं दीखता; इसलिये उदकदान औपचारिकतामात्र है। इसलिये उदकदान मन्त्रदानरूप ही समझना चाहिये।

वर्णदीक्षा

अनन्तरोक्तवर्णात्मदीक्षां वक्ष्ये यथाविधि। पुंस्प्रकृत्यात्मकत्वं हि वर्णानां समुदीरितम् ॥१॥
तादृक्त्वं च शरीरस्य प्रोक्तमेवात्र देशिकैः। ततस्तनौ शिशोर्न्यसेद्वर्णान् देशिकसत्तमः ॥२॥
संहरेद्वैपरीत्येन वर्णान् तत्स्थानसंस्थितान्। देशिकेन्द्रस्य सामर्थ्यादाज्ञया देवतात्मनः ॥३॥
देवतात्मा भवेच्छिष्यस्तदा संलीनतत्त्वकः। ततस्तु शिष्यचैतन्यं परमात्मनि योजयेत् ॥४॥
तानर्णांस्तत उत्पाद्य न्यसेच्छिशुशरीरके। तस्मिंश्च सृष्टिक्रमतस्तच्चैतन्यं पुनर्न्यसेत् ॥५॥
भवेच्छिष्यो देवतात्मा नित्यानन्दात्मकः शिशुः। ज्ञानदार्णमयी दीक्षा कथिता सर्वसिद्धिदा ॥६॥

वर्णदीक्षा—इसके बाद अब वर्णात्म दीक्षा का वर्णन यथाविधि किया जाता है। सभी वर्ण पुरुष प्रकृत्यात्मक हैं।

उन्हीं के समान देशिक शिष्य के शरीर में वर्णों का न्यास करे। शिष्य शरीरस्थ वर्णों का विपरीत क्रम से संहार करे। देशिक के सामर्थ्य एवं आज्ञा से शिष्य देवतात्मा रूप हो जाता है, तब वह तत्त्वों में लीन हो जाता है। तब उसके चैतन्य को परमात्मा में योजित करे। उससे उन वर्णों को उत्पन्न करके शिष्य के शरीर में न्यस्त करे। यह न्यास सृष्टिक्रम से करे। उसमें फिर चैतन्य का न्यास करे। इससे देवतात्मा शिष्य नित्यानन्द से युक्त होता है। वर्णदीक्षा ज्ञानदा एवं सर्वसिद्धिदा होती है।

कलादीक्षा

अथोच्यते कलात्मा सा दीक्षा दिव्यत्वदायिनी । कला निवृत्तिप्रमुखा भूतानां पञ्च चेरिताः ॥७॥
शिष्यकाये भूतमये वेधयेत्ताः क्रमात्सुधीः । पादादिजानुपर्यन्तं निवृत्तिः संस्थिता कला ॥८॥
जान्वोः सकाशादानाभि प्रतिष्ठाख्या कला स्मृता । नाभितः कण्ठपर्यन्तं विद्याख्या संस्थिता कला ॥९॥
कण्ठतो ह्याललाटं तु शान्त्याख्या संस्थिता कला । भालाच्छिरोवधि प्रोक्ता शान्त्यतीता कला तथा ॥१०॥
अयथाक्रमतो विद्वान् वेधयेत्स्थानतोऽन्यतः । स्थानेष्वीशाज्ञया चैषा कलादीक्षा समीरिता ॥११॥

कलादीक्षा—अब दिव्यत्वदायिनी कला दीक्षा को कहता हूँ। निवृत्ति आदि पाँच कलायें होती हैं। शिष्य के भूतमय शरीर में गुरु क्रमशः उनका वेध करे। पैर से जानु तक निवृत्ति कला संस्थित रहती है। जानु से नाभि तक प्रतिष्ठा कला का वास रहता है। नाभि से कण्ठ तक विद्या कला संस्थित रहती है। कण्ठ से ललाट तक शान्ता कला का वास रहता है और ललाट से शिर तक शान्त्यतीता कला का वास होता है। स्थानक्रम से गुरु इनका वेध करे। ईश्वरी की आज्ञा से इसे कलादीक्षा कहते हैं।

वेधदीक्षा

अथ वेधात्मिका दीक्षा प्रोच्यते भवमोचनी । चतुर्दले स्मरेत्पत्रे मूलाधारे शिशोस्तनौ ॥१२॥
धामत्रितयसंयुक्ते त्रिकोणोक्तबिले सुधीः । त्रिरावर्तमयीं देवीं विद्युत्पुञ्जस्वरूपिणीम् ॥१३॥
महादेवमयीं साक्षाज्ज्ञानमात्रस्वरूपिणीम् । अणोरणीयसीं देवीं चक्रषट्कप्रभेदिनीम् ॥१४॥
सुषुम्नावर्त्मना दिव्यां यान्तीं शिवगृहं प्रति । सान्तान् वादीन् दलस्थार्णान् पद्मयोनौ समाहरेत् ॥१५॥
षड्दले कमले तं तु लान्तबाद्यर्णयुग्दले । स्वाधिष्ठाने गुरुः सम्यग्योजयित्वा तु वेधयेत् ॥१६॥
तानर्णानानयेद्विष्णौ विष्णुं तं नाभिपङ्कजे । फान्तडाद्यर्णसंयुक्ते दिग्दले वेधयेत् स्वयम् ॥१७॥
वर्णांस्तान् योजयेद्रुद्रे रुद्रं तं हृत्सरोरुहे । ठान्तकाद्यर्णपत्राब्जे वेधयेदीश्वरे स्वयम् ॥१८॥
वर्णांस्तानाहरेदस्मिन् कण्ठपद्मे च तं तथा । कलामयदले पद्मे स्वरान् संयोज्य यत्नतः ॥१९॥
सदाशिवे च संयोज्य तांस्तद्भ्रूमध्यपङ्कके । द्विदले हक्षसंयुक्ते वेधयित्वा तु देशिकः ॥२०॥
हक्षौ तावाहरेद्बिन्दौ कलायामाहरेच्च तम् । कलां नादे समायोज्य नादं नादान्तके पुनः ॥२१॥
नादान्तमुन्मनीमध्ये विषुवक्त्रे तथोन्मनीम् । विषुवक्त्रं स्वके वक्त्रे संहरेद्देशिकः स्वयम् ॥२२॥
शक्त्या सहैवमात्मानं नयेत्परशिवावधि । देशिकाज्ञावशाच्छिष्यो दग्धाज्ञानस्तदा क्षितौ ॥२३॥
पतेदवाप्तविज्ञानः सर्वज्ञो जायते ततः । सदाशिवः स्वयं भूयात्सत्यमेव न संशयः ॥२४॥
ज्ञानप्रदा मया प्रोक्ता दीक्षा वेधात्मिका शुभा । चतस्रस्त्वेवमुद्दिष्टा दीक्षाः सम्यक् शुभावहाः ॥२५॥ इति।

वेधदीक्षा—अब भवमोचनी वेधात्मिका दीक्षा को कहता हूँ। शिष्य के शरीरस्थ चतुर्दल मूलाधार पद्म का चिन्तन गुरु करे। त्रिधामसंयुक्त त्रिकोणोक्त बिल में त्रिरावर्तमयी देवी विद्युत् पुञ्जस्वरूपिणी महादेवमयी ज्ञानमात्रस्वरूपिणी अणोरणीयसी षट्चक्रप्रभेदिनी सुषुम्ना मार्ग से दिव्य शिवगृह जाती है। सं षं शं वं दलस्थ वर्णों को योनि त्रिकोण में विलीन करे। षड्दल पद्म स्वाधिष्ठान में लं रं यं मं भं बं को सम्यक् योजित करके वेध करे। उन वर्णों को विष्णु के नाभि-स्थित दश दल पद्म मणिपूर में लाकर फं पं नं धं दं थं तं णं ढं डं से वेध करे। द्वादश दल हृदय पद्म अनाहत में रुद्र से जोड़कर ठं टं ञं झं जं छं चं ङं घं गं खं कं से वेध करे। सोलह दल कण्ठ पद्म में वर्णों को लाकर सोलह स्वरों से जोड़कर वेध करे। उन्हें दो

दल पद्म भ्रूमध्य आज्ञा में सदाशिव से जोड़ ह क्ष से वेध करे। ह क्ष से बिन्दु लेकर कला में जोड़े। कला को नाद में जोड़े। नाद को नादान्त में योजित करे। नादान्त को उन्मनी में जोड़े। उन्मनी को विषुवक्त्र में योजित करे। विषुवक्त्र को अपने मुख में योजित करे। शक्तिसहित आत्मा का परशिव तक ले आये। तब देशिक की आज्ञा से शिष्य का अज्ञान दग्ध हो जाता है। शिष्य भूमि पर गिर जाता है। इसके बाद वह सर्वज्ञ हो जाता है। वह शिष्य स्वयं सदाशिव हो जाता है। इस प्रकार ज्ञानप्रदा शुभा वेधात्मिका दीक्षा कही गई। ये चारो दीक्षायें सम्यक् होने से शुभदायक होती है।

स्पर्शदीक्षा

श्रीकुलार्णवे—

हस्ते शिवपुरं ध्यात्वा जपन् मूलाङ्गमालिनीम्। गुरुः स्पृशेच्छिष्यतनुं स्पर्शदीक्षा भवेदियम्॥१॥

स्पर्श दीक्षा—श्रीकुलार्णव में कहा गया है कि हाथ में शिवलोक का ध्यान करके अंगमाला पर मूल विद्या का जप कर शिष्य के शरीर का स्पर्श करे तो यह स्पर्शदीक्षा होती है।

वाग्दीक्षा

चित्तं तत्त्वे समाधाय परतत्त्वोपबृंहितान्। उच्चरेत्संहतान् मन्त्रान् वाग्दीक्षेति निगद्यते॥२॥

वाग्दीक्षा—चित्त को तत्त्वों में समाहित करके परतत्त्वोपबृंहित होकर मन्त्र का उच्चारण करे तो वाग्दीक्षा होती है।

दृग्दीक्षा

निमील्य नयने ध्यात्वा परतत्त्वं प्रसन्नधीः। सम्यक्पश्येद्गुरुः शिष्यं दृग्दीक्षा सा भवेत्प्रिये॥३॥

दृग्दीक्षा—गुरु अपनी आँखों को मूँदकर प्रसन्न मन से परतत्त्व का ध्यान करके सम्यक् रूप से शिष्य को देखे तो यह दृग्दीक्षा होती है।

शाम्भवदीक्षा

गुरोरालोकमात्रेण भाषणात् स्पर्शनादपि। सद्यः सञ्जायते ज्ञानं सा दीक्षा शाम्भवी मता॥४॥
ज्ञेया सिद्धान्तशास्त्रार्थसंप्रदायादिहेतुभिः। अन्तरेणोपदिष्टा ये मन्त्राः स्युर्विफला यतः॥५॥
देवास्तमेव शंसन्ति पारम्पर्यप्रवर्तकम्। गुरुमन्त्रागमाभिज्ञं समयाचारपालकम्॥६॥
गुरुः शिष्याधिकारार्थं विरक्तोऽपि शिवाज्ञया। कञ्चित्कालं विधायैतत् सुशिष्याय समर्पयेत्॥७॥
तस्यार्पिताधिकारस्य योगः साक्षात्परे शिवे। ततस्तु शाश्वती मुक्तिरिति शङ्करभाषितम्॥८॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन साक्षात् परशिवोदितम्। सम्प्रदायमविच्छिन्नं सदा कुर्याद्गुरुः प्रिये॥९॥
भुक्तिमुक्तिप्रसिद्ध्यर्थं परीक्ष्य विधिवद्गुरुः। पश्चादुपदिशेन्मन्त्रमन्यथा निष्फलं भवेत्॥१०॥
अन्यायेन च यो दद्याद्गृह्णात्यन्यायतश्च यः। ददतो गृह्णतो देवि कुलशापो भविष्यति॥११॥
गुरुशिष्यावुभौ मोहादपरीक्ष्य परस्परम्। उपदेशं दददगृह्णन् तौ प्रयातां पिशाचताम्॥१२॥
अशास्त्रीयोपदेशं तु यो गृह्णाति ददाति च। भुञ्जाते तावुभौ घोरान् नरकानेकविंशतिम्॥१३॥
असंस्कृत्योपदेशं तु यः करोति विमूढधीः। विन्यस्यति च तं मन्त्रं सैकते शालिबीजवत्॥१४॥
अनर्हे तत्त्वविज्ञानं न तिष्ठति कदाचन। तस्मात्परीक्ष्य वक्तव्यमन्यथा निष्फलं भवेत्॥१५॥
सुशिष्यायातिभक्ताय यज्ज्ञानमुपदिश्यते। तत्प्रापयति तत्तत्त्वं गौः क्षीरात्तु घृतं यथा॥१६॥
धनेच्छाभयलोभाद्यैरयोग्यं परिदीक्षयेत्। देवताशापमाप्नोति कृतं च विकृतं भवेत्॥१७॥ इति।

शाम्भव दीक्षा—गुरु के अवलोकन, भाषण एवं स्पर्शमात्र से तुरन्त ही शिष्य को जब ज्ञान हो जाता है तो यह शाम्भवी दीक्षा होती है। सिद्धान्त शास्त्रार्थ सम्प्रदाय आदि हेतुओं से जानने योग्य एवं थोड़े-थोड़े अन्तर से उपदिष्ट मन्त्र विफल

होते हैं। पारम्पर्य प्रवर्तक, गुरु मन्त्र आगम के जानकार समयाचार पालक की देवता भी प्रशंसा करते हैं। विरक्त गुरु भी शिव की आज्ञा से शिष्य के अधिकार के लिये कुछ काल तक जप करके मन्त्र को शिष्य को समर्पित कर दे। गुरु द्वारा समर्पित अधिकार के योग से शिष्य को परशिव का साक्षात्कार होता है। शंकर कहते हैं कि उसे शाश्वती मुक्ति मिलती है। इसलिये सभी प्रयत्न से साक्षात् परशिवोदित सम्प्रदाय का अनुगमन गुरु को करना चाहिये। भुक्ति-मुक्ति-प्रसिद्धि के लिये गुरु शिष्य की विधिवत् परीक्षा करके मन्त्र का उपदेश करे; अन्यथा मन्त्र विफल होता है। अन्याय से जो मन्त्र देता है और जो लेता है, इससे देने वाले और लेने वाले—दोनों को कुलशाप मिलता है। गुरु-शिष्य दोनों एक-दूसरे की परीक्षा न लेकर मन्त्र देते और लेते हैं तो वे पिशाच होते हैं। शास्त्र के विरुद्ध जो उपदेश देता और लेता है तो वे दोनों अनेक घोर नरकों को भोगते हैं। जो मूढ़ बुद्धि संस्काररहित उपदेश देता है, वह मन्त्र को वैसे ही विफल करता है, जैसे बालू पर धान बोने से होता है। अयोग्य में तत्त्वज्ञान कदापि नहीं ठहरता; इसलिये परीक्षा के बाद ही ज्ञान देना चाहिये; अन्यथा वह निष्फल होता है। सुशिष्य अतिभक्त शिष्य को जिस ज्ञान का उपदेश दिया जाता है, वह उपदेश उसे वैसे ही प्राप्त होता है, जैसे दूध से मक्खन प्राप्त होता है। धन की इच्छा से, भय-लोभ आदि से अयोग्य शिष्य को जो दीक्षा देता है, उसे देवता शाप देते हैं और उसका किया हुआ सब कुछ विकृत हो जाता है।

पूर्णाभिषेकविधिः

(अथ पूर्णाभिषेकविधिर्लिख्यते) उत्तरतन्त्रे—

पूर्णाभिषेकं वक्ष्यामि साधकानां शुभावहम् । विना येनाभिषेकेण साधकः पूर्णबोधताम् ।।१।।
आचार्यत्वं च नाप्नोति सद्गतिं च समीहिताम् । तस्माद् गुरुः प्रियं शिष्यं बोधयित्वाभिषेचयेत् ।।२।।
विरच्य विपुलं चक्रं मण्डपेऽतिमनोरमे । खारीतोयभृतं कुम्भं स्थापयेच्चक्रमध्यतः ।।३।।
अन्येषु कलशान् रत्नवस्त्रहेमसमन्वितान् । दलेषु विधिवत् स्थाप्य तत्रावाह्येष्टदेवताम् ।।४।।
अभ्यर्च्य मध्ये चान्येषु चाङ्गावरणदेवताः । शिष्यस्य जन्मनक्षत्रे प्राग्वत्तैरभिषेचयेत् ।।५।।
अयं पूर्णाभिषेकः स्यात्साधकाभीष्टसिद्धिदः । इति।

पूर्णाभिषेक विधि—उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि साधकों के लिये शुभदायक पूर्णाभिषेक विधि को अब मैं कहता हूँ। इस अभिषेक के बिना साधक पूर्ण बोध नहीं प्राप्त करता। आचार्यत्व प्राप्त नहीं करता एवं सद्गति समीहित होती है। इसीलिये गुरु प्रिय शिष्य को बोध कराकर उसका अभिषेक करता है। इसके लिये मनोहर मण्डप बनाकर उसमें विपुल चक्र बनाकर चक्र में खारी तौल के बराबर जल भरने लायक कुम्भ स्थापित करे। बाहर के दलों में रत्न-वस्त्र-सोनायुक्त कलशों को स्थापित करे। उसमें इष्ट देवता का आवाहन करे। मध्य में इष्ट देवता का पूजन करे। अन्य कलशों में अंगदेवता का पूजन करे। यह पूर्णाभिषेक साधक को अभीष्ट सिद्धि प्रदान करता है।

खारीप्रमाणम्

खारीप्रमाणं तु स्कन्दपुराणे—

पलद्वयं तु प्रसृतं कुडवं द्विगुणं मतम् । चतुर्भिः कुडवैः प्रस्थमाढकं तैश्चतुर्गुणैः ।।१।।
चतुर्गुणो भवेद्द्रोणः कुम्भस्तद्द्वयतः स्मृतः । कुम्भैस्तैरष्टभिः खारी.....................।।२।। इति।

खारी-प्रमाण—स्कन्दपुराण में कहा गया है कि दो पल का प्रसृत एवं दो प्रसृत अर्थात् चार पल का एक कुडव होता है। चार कुडव का एक प्रस्थ होता है। चार प्रस्थ का एक आढ़क होता है एवं चार आढ़क का एक द्रोण होता है। चार द्रोण का एक कुम्भ होता है एवं आठ कुम्भ की एक खारी होती है।

दीक्षाप्रयोगः

अथ दीक्षाप्रयोगः—तत्रैवं विचार्य विहितकालेषु दीक्षादिनात् पूर्वदिने शिष्यः प्रातःस्नातः कृतनित्यक्रियः

समलंकृतः पञ्चवाद्यघोषपुरःसरं ब्राह्मणैः कृतस्वस्तिवाचनः प्रियसुहृद्भिः सार्धं स्वयं गुरुगृहं गत्वा तं विधिवत् प्रणम्य तदाज्ञया प्राणायामपुरःसरम् ॐअद्यामुकमासेऽमुकराशिगते सवितर्यमुकपक्षेऽमुकतिथावमुकगोत्रो, ब्राह्मणश्चेदमुकशर्मा, क्षत्रियश्चेदमुकवर्मा, वैश्यश्चेदमुकगुप्तः, शूद्रश्चेदमुकदासोऽहं चतुर्विधपुरुषार्थसिद्धिकामोऽमुकन्त्रग्रहणं करिष्ये, इति कुशहस्तः प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा सङ्कल्पं विधाय, प्रमाणोक्तमधुपर्कसामग्रीभिः स्वशाखोक्तविधिना श्रीगुरुं मधुपर्केणाभ्यर्च्य, धौतोत्तरीयप्रच्छदपटस्वर्णाङ्गुलीयककर्णाभरणस्वर्णयज्ञोपवीतहारकेयूराङ्गदादिनानाभरणच्छत्रचामरोपानद्युगलशय्यातल्पास्तरणसम्पन्नां वरणसामग्रीं गुरुसन्निधौ निधाय, अद्येत्यादि प्राग्वत् तिथ्युल्लेखनान्तेऽमुकगोत्रोऽमुकशर्मेत्यादि यथावर्णविहितमुच्चार्याहं चतुर्विधपुरुषार्थसिद्धिकामोऽमुकमन्त्रग्रहणार्थममुकगोत्रममुकवेदान्तर्गतामुखशाखाध्यायिनममुकमेभिर्यथाशक्ति विहितवरणसाधनैर्गुरुत्वेन वृणे, इति गुरुपादयोः प्रणम्य वरणसामगीं निवेदयेत्। ततो वृतोऽस्मीति गुरुणा प्रतिवचने दत्ते, शिष्यः कृताञ्जलिर्यथोक्तं गुरो कर्म कुरुष्वेति ब्रूयात्। ततो गुरुः करवाणीति प्रतिब्रूयात्। इत्थं गुरुवरणं विधाय तदनुज्ञयाष्टौ ब्राह्मणान् वेदवेदाङ्गपारगान् स्वेष्टदेवतोपासकान् प्रागुक्तगुरुवरणोक्तसामग्रीभिस्तथैव ऋत्विक्त्वेन वृणुयात्। चतुष्कुण्डपक्षे चत्वार एव ऋत्विज कार्याः। ततः शिष्येणैवंवृतो गुरुः कृतनित्यक्रियः समलंकृतः पञ्चवाद्यघोषपुरःसरं ब्राह्मणैः सुहृज्जनैश्च वृतः शिष्येण सह मण्डपद्वारं गत्वा तत्र वक्ष्यमाणविधिना द्वारपूजां विधाय, तथैव भूतोत्सादनपूर्वकं मण्डपान्तः प्रविश्य, तथैव पञ्चगव्यार्घ्यतोयप्रोक्षणपूर्वकं वक्ष्यमाणवीक्षणादिचतुर्भिः संस्कारैः संस्कृतमण्डपाभ्यन्तरे चन्दनागरुकर्पूरधूपिते चन्दनसर्षपदूर्वाभस्माक्षतलाजान् अस्त्रमन्त्रेण सप्तधाभिमन्त्रितान् मण्डपान्तर्विकीर्य, अस्त्रमन्त्रेण कुशमुष्टिना सम्मार्ज्य मण्डपस्येशानकोणे संस्थाप्य, ब्राह्मणैः पुण्याहवाचनं कारयित्वा वास्तुपुरुषपूजादिकं विधाय भैरवाज्ञापुरःसरं वेदिकायामास्तीर्य वक्ष्यमाणविधिना सम्पूज्य, तत्र प्राङ्मुखोपविष्टः स्वपुरतः सुसमे भूतले वेदिकोपरि सर्वतोभद्रमण्डलं कुर्यात्। तत्र प्राक्प्रत्यगायता दक्षिणोत्तरायताश्च सप्तदश सप्तदश रेखाः कृत्वा षट्पञ्चाशदुत्तरशतद्वयकोष्ठयुतं चतुरस्रमण्डलं कृत्वा तन्मध्यगतषट्त्रिंशत्कोष्ठान्येकीकृत्य तद्बहिश्चतुर्दिक्ष्वेकपंक्तिं परितः सम्मार्ज्यैकीकृत्य पीठं परिकल्प्य, तद्बहिश्चतुर्दिग्गतपंक्तिद्वयमेकीकृत्य सम्मार्ज्य वीथीं परिकल्प्य, सर्वमध्यगतसरोजस्थाने बहिः परितः द्वादशभागं परित्यज्य सर्वमध्यावलम्बनेन समान्तरालवृत्तत्रयं निष्पाद्य, तत्र सर्ववृत्तमध्यकर्णिकां परिकल्प्य, तद्बहिर्गतवृत्तवीथीं केसरार्थं परिकल्प्य, केसरस्थानं षोडशधा विभज्य तच्चिह्नावलम्बनेन द्वितीयतृतीयवृत्तयोरन्तरालमानसूत्रमानेन गुरूक्तयुक्त्या षोडशार्धचन्द्रान् परिकल्प्य तेनाष्टदलानि कृत्वा, तृतीयवृत्ताद्बहिस्त्यक्तैकांशतो मध्यचिह्नावलम्बनेन वृत्तान्तरं निष्पाद्य, गुरूक्तयुक्त्या पात्राग्राणि विधायैकैकदलमूले केसरद्वयं यथा दृश्यते तथा विरच्य पद्मं कृत्वा, पद्मबहिर्गतैकपंक्तिरूपचतुरस्रपीठस्य कोणचतुष्टयेऽपि कोष्ठत्रयेण कोष्ठत्रयेण पीठपादान् परिकल्प्यावशिष्टकोष्ठैरेकीभूतैः पीठगात्राणि विधाय, तद्बहिर्गतपंक्तिद्वयकोष्ठानि सम्यक् प्रमार्ज्य तद्बहिर्गतपंक्तेश्चतुर्दिक्षु मध्ये मध्ये कोष्ठद्वयं कोष्ठद्वयमेकीकृत्य सर्वबाह्यगतपंक्तेरपि चतुर्दिक्षु प्रतिदिशं कोष्ठचतुष्टयमार्जनेन द्वारचतुष्टयं परिकल्प्य, द्वारचतुष्टयस्यापि पार्श्वयोः पंक्तिद्वयगतकोष्ठेषु अन्तःपंक्तेः कोष्ठत्रयं बहिःपंक्तेः कोष्ठमेकमिति कोष्ठचतुष्टयमेकीकृत्य शोभां विधाय, तत्पार्श्वयोरप्यन्यः पंक्तेः कोष्ठमेकं बहिःपंक्तेः कोष्ठत्रयमिति कोष्ठचतुष्टयं कोष्ठचतुष्टयम् एकीकृत्योपशोभां विधायावशिष्टैः षड्भिः कोष्ठैश्चत्वारि कोणानि कल्पयेत्, इति सर्वतोभद्रमण्डलं निर्माय सरोजकर्णिकाकेसरदलाग्रपीठवीथीद्वारशोभोपशोभाकोणस्थानानि पञ्चवर्णरजोभिर्भूषयेत्।

दीक्षा-प्रयोग—दीक्षा के लिये विहित कला निश्चित करके दीक्षा-दिवस के एक दिन पहले शिष्य प्रात:काल में स्नान करके नित्य क्रिया करके समलंकृत होकर पाँच प्रकार का बाजा बजवावे। ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन करावे। आगे बाजा बजवाते हुए ब्राह्मण और सुहृदों के साथ स्वयं गुरुगृह जाये। गुरु को विधिवत् प्रणाम करे। गुरु की आज्ञा से प्राणायाम करके हाथ में कुश लेकर पूर्व या उत्तरमुख बैठकर संकल्प करे।

प्रमाणोक्त मधुपर्क सामग्री से मधुपर्क बनाकर गुरु का अर्चन करे। धोती, गमछा, प्रच्छद पट, सोने की अंगूठी, कर्णाभरण, सोने का जनेऊ, हार, केयूर, अंगदादि नाना आभूषण छत्र, चामर, उपानहयुगल, शय्या, तल्प, आस्तरणयुक्त वरण सामग्री गुरु के समीप रखे। मूलोक्त वरण मन्त्र कहकर गुरुचरणों में प्रणाम करके वरण सामग्री को निवेदित करे। गुरु के 'वृतोऽस्मि' कहने पर शिष्य हाथ जोड़कर—'यथोक्तं गुरुकर्म गुरुष्व' कहे। तब गुरु बोले 'करवाणि'। इस प्रकार गुरुवरण के बाद गुरु की आज्ञा से वेद-वेदाङ्गपारग स्वेष्ट देवता उपासक आठ ब्राह्मणों का वरण ऋत्विज रूप में प्रागुक्त गुरु वरणित सामग्रियों से करे। चतुष्कुण्ड पक्ष में चार ऋत्विजों का वरण करे। तब शिष्य द्वारा वृत गुरु नित्य कृत्य करके समलंकृत होकर आगे पाँच वाद्यों को बजवाते हुए ब्राह्मणों और सुहृद् से घिरे शिष्य के साथ मण्डपद्वार पर जाय। वहाँ पर वक्ष्यमाण विधि से द्वारपूजा करे। भूतोत्सादन-पूर्वक मण्डप में प्रवेश करे। पञ्चगव्य और जल से प्रोक्षण करे। वीक्षण आदि चार संस्कार करे। संस्कृत मण्डप में चन्दन, अगर, कपूर से धूपित चन्दन, सरसों, दूब, भस्म, अक्षत, लावा, अस्त्रमन्त्र से सात बार अभिमन्त्रित करके बिखेर दे। अस्त्रमन्त्र से कुशमुष्टी से मार्जन करे। मण्डप के ईशान कोण में स्थापित करे। ब्राह्मणों से पुण्याहवाचन करावे। वास्तुपुरुष का पूजन करे। भैरवाज्ञा लेकर वेदी का आस्तरण करे। वक्ष्यमाण विधि से वेदी का पूजन करे। पूर्वमुख बैठे। अपने आगे वेदी के बराबर तल पर सर्वतोभद्र मण्डल बनावे। पूरब से पश्चिम सत्रह एवं दक्षिण से उत्तर सत्रह रेखा बराबर दूरी पर खींचकर दो सौ छप्पन कोष्ठ वाला चतुरस्र बनावे। बीच वाले छत्तीस कोष्ठों को एक कोष्ठ करे। इसके बाहर चारो दिशाओं में एक पंक्ति मिटा कर पीठ कल्पित करे। उसके बाहर चारो दिशाओं में दो-दो पंक्तियों को एक-एक करके वीथि बनाने के लिये कोष्ठों को मिटा दे।

सर्वमध्यगत कमल स्थान में सभी ओर से द्वादशांश छोड़कर सर्वमध्य के अवलम्बन से तीन वृत्त बनावे। उनमें से मध्य वृत्त में कर्णिका कल्पित करे। पहले और दूसरे वृत्त परिधि के अन्तराल में केसर कल्पित करे। केसर स्थान का सोलह भाग करे। इन चिह्नों के सहारे द्वितीय तृतीय वृत्त के अन्तराल मान से सोलह अर्धचन्द्र बनावे। उनसे अष्टदल बनावे। तृतीय वृत्त के बाहर एकांश मध्य चिह्न के अवलम्बन से वित्तान्तर निष्पादित करके पत्राग्र और मूल में दो केसर-युक्त पद्म बनावे। पद्म के बाहर एक पंक्ति से निर्मित चतुरस्र पीठ के चारो कोनों के तीन-तीन कोष्ठों से पीठ की कल्पना करे। शेष कोष्ठों को एकीकृत करके पीठगात्र बनावे। उसके बाहर दो पंक्ति के कोष्ठों को सम्यक् रूप से मिटाकर उसके बाहर के पंक्ति की चारो दिशाओं के बीच-बीच में दो-दो कोष्ठों को एक करे। सबसे बाहरी पंक्ति में भी चारो दिशाओं में प्रति दिशा में चार-चार कोष्ठों का मार्जन करके चार द्वारों को कल्पित करे। चारो द्वारों के पार्श्वों में पंक्तिद्वय के कोष्ठों में भीतरी पंक्ति के तीन कोष्ठ और बाहरी पंक्ति के एक कोष्ठ—इन चार कोष्ठों को एक करके शोभा बनावे। उसके बगल की अन्य पंक्ति का एक एवं बाहरी पंक्ति के तीन कोष्ठ को मिलाकर चार कोष्ठों से उपशोभा बनावे। अवशिष्ट छः कोष्ठों से कोनों को कल्पित करे। इस प्रकार का सर्वतोभद्र मण्डल बनाकर सरोज कर्णिका केसर दलाग्र पीठ वीथि द्वारशोभा उपशोभा कोण स्थानों को पाँच रंग के चूर्णों से भूषित करे।

पञ्चवर्णरजांसि तु—हरिद्राचूर्णं पीतं रजः, तण्डुलचूर्णं शुक्लं, कुसुम्भकुसुमचूर्णं रक्तं, दग्धतण्डुलचूर्णं कृष्णं, बिल्वपत्रचूर्णं श्याममिति।

रजोविन्यासप्रकारस्तु—सीमागताः सर्वरेखाः शुक्लरजसा एकाङ्गुलोत्सेधविस्तारयुताः कार्याः। पीतरजसा कमलकर्णिकां केसराणि च सम्यक् समापूर्य, शुक्लरजसा दलानि च सम्पूर्य श्यामरजसा दलसन्धीनापूरयेत्। अथवा कर्णिकां पीतेन, केसरान् पीतरक्ताभ्यां, दलानि रक्तेन, दलसन्धीन् कृष्णेन रजसा सम्पूर्य, पीतेन कृष्णेन वा पीठगर्भमापूर्य पीठपादान् रक्तेनापूर्य, पीठगात्राणि शुभ्ररजसापूर्य, वीथीचतुष्टये कल्पवल्लीः कोरकपुष्पपल्लव-फलमण्डिता नानावर्णरजोभिरारचय्य, शुभ्रेण रजसा द्वारचतुष्कमापूर्य रक्तवर्णेन द्वारशोभाः पीतेनोपशोभाः कृष्णेन कोणानि चापूर्य, तद्बही रेखात्रयमेकैकाङ्गुलान्तरालं शुक्लरक्तकृष्णरजोभिः कुर्यादिति सर्वतोभद्रमण्डलं विधाय, वेदीपरितो दीपान् प्रज्वाल्य वक्ष्यमाणविधिना पूजाद्रव्याण्यासाद्य, तथैव तानि संस्कृत्य छत्रचामरद्वयदर्पणव्यजनादिकं च यथायथं निधाय गुर्वादिवन्दनपूर्वकं करशुद्धितालत्रयदिग्बन्धनाग्निप्राकारत्रयभूतशुद्धिप्राणप्रतिष्ठामातृकान्या-सयोगपीठन्यासमूलमन्त्रन्यासांश्च विधाय, मुद्राविरचनस्वेष्टदेवताध्यानमानसपूजान्ते वैश्वदेवमूलमन्त्रजपतत्समर्पणार्घ्य-

स्थापनात्मपूजान्तर्हवनमूलमन्त्रजपतत्समर्पणानि विधाय 'सर्वतोभद्रमण्डलाय नमः' इति मण्डलं गन्धादिपञ्चोपचारैः सम्पूज्यार्घ्यजलेन प्रोक्ष्य, तत्र वक्ष्यमाणविधिना पीठपूजां विधाय, तत्कर्णिकां शालिभिरापूर्य तण्डुलान् कुशान् दूर्वाः सप्तविंशतिभिः कुशैरेकीकृताग्रविरचितब्रह्मग्रन्थिकं कूर्चं च निधाय, तत्र वक्ष्यमाणविधिना शालिपुञ्जोपरि वह्निमण्डलं वह्निकलाश्च सम्पूज्य, तत्र स्वर्णादिनिर्मितं त्रिगुणीकृतसूत्रवेष्टितसर्वाङ्गं चन्दनागरुकर्पूरधूपधूपितं कुम्भं प्रणवमुच्चरन् संस्थाप्य, तत्र पुष्परागनीलवैदूर्यविद्रुममौक्तिकमरकतवज्रगोमेदपद्मरागाख्यानि नवरत्नानि ससुवर्णानि निक्षिप्य, कुम्भस्योपरि गन्धाक्षतदूर्वान्वितप्रागुक्तलक्षणं कूर्चं च निधाय, तत्र क्षंलमित्यादिविलोममातृकान्ते मूलमन्त्रं त्रिर्जपन् आत्मनः कुम्भस्य योगपीठस्य चैक्यं भावयन् वक्ष्माणपञ्चाशदक्षरौषधिक्वाथैरश्वत्थोदुम्बरप्लक्षवटक्वाथैः पलाशवृक्षत्वचाक्वाथैः कर्पूरचन्दनकस्तूरीकुङ्कुमवासितैस्तीर्थजलैर्वा कुम्भमापूर्य, स्वपुरतो वक्ष्यमाणविधिना शङ्खं संस्थाप्य, कुम्भपूरितजलसजातीयजलेनापूर्य तत्र गन्धाष्टकं विलोड्य, तत्र वक्ष्यमाणवह्निकलाः सूर्यकलाः सोमकलाश्चावाह्य तासां पृथक्पृथक् प्राणप्रतिष्ठां विधाय सम्पूज्य, प्रणवोत्थैकपञ्चाशत्कलाः कलामातृकान्यासोक्ताः सम्पूज्याः। तत्र प्रथममकाराद्ब्रह्मण उत्पन्नाः कचवर्गोत्थाः सृष्ट्यादिदशकलाः समावाह्य, हंसः शुचिषदिति ऋचो वामदेव ऋषिर्जगतीच्छन्दः सूर्यो देवतेति ऋष्यादीन् स्मृत्वा 'ॐ हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्। नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा आद्रिजा ऋतं बृहत्' इति मन्त्रमुच्चार्य 'ब्रह्मणे नमः' इति सम्पूज्य, पूर्वोक्तप्राणप्रतिष्ठामन्त्रेण ममपदस्थाने सृष्ट्यादीनामिति पदं दत्त्वा सृष्ट्यादीनां प्राणप्रतिष्ठां विधाय 'ॐ कँ सृष्ट्यै नमः' इत्यादि दशकलाः सम्पूज्याः। उकाराद्विष्णोरुत्पन्नाष्टतवर्गोत्था जरादिदशकलाः समावाह्य, ॐ प्रतद्विष्णुरिति मन्त्रस्य दीर्घतमा ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो विष्णुर्देवता, इति ऋष्यादिकं स्मृत्वा 'ॐ प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः। यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा' इति पठित्वा 'विष्णवे नमः' इति सम्पूज्य, प्राग्वज्जरादिदशकलानां प्राणप्रतिष्ठां विधाय 'ॐ टं जरायै नमः' इत्यादिदशकलाः सम्पूज्याः। मकाराद्रुद्रादुत्पन्नाः पयवर्गोत्थास्तीक्ष्णादिदशकलाः समावाह्य, ॐ त्र्यम्बकमिति मन्त्रस्य वसिष्ठ ऋषिरनुष्टुप्छन्दः त्र्यम्बकरुद्रो देवता, इति ऋष्यादिकं स्मृत्वा 'ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्' इति पठित्वा 'रुद्राय नमः' इति सम्पूज्य तासां प्राणप्रतिष्ठां विधाय 'ॐ पं तीक्ष्णायै नमः' इत्यादिदशकलाः सम्पूज्याः। ईश्वराद्बिन्दोरुत्पन्नाः षकारादिक्षकारान्ताः पञ्चवर्णोत्थाः पीतादिपञ्चकला आवाह्य ऋष्यादिस्मरणपूर्वकं गायत्रीमुच्चार्य 'ईश्वराय नमः' इति सम्पूज्य, तासां प्राणप्रतिष्ठां विधाय 'ॐ षं पीतायै नमः' इत्यादिपञ्चकलाः सम्पूज्याः। ततो नादोत्थाः सदाशिवादुत्पन्नाः स्वरजा निवृत्त्याद्याः षोडशकलाः समावाह्य 'विष्णुर्योनिं कल्पयत्वि'ति मन्त्रस्य त्वष्टा गर्भकर्ता ऋषिरनुष्टुप्छन्दो विष्णुर्देवतेति ऋष्यादिकं स्मृत्वा 'ॐ विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु। आसिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते' इति पठित्वा 'सदाशिवाय नमः' इति सम्पूज्य, तासां प्राणप्रतिष्ठां विधाय 'अं निवृत्त्यै नमः' इत्यादिषोडशकलाः सम्पूज्याः।

पाँच रंग के चूर्णों में हरिद्राचूर्ण पीला, तण्डुलचूर्ण श्वेत, कुसुम्भ कुसुमचूर्ण लाल, दग्ध तण्डुलचूर्ण काला एवं बिल्वपत्रचूर्ण नीला होता है। रजोविन्यास इस प्रकार करे—सभी रेखाओं की सीमा में एक अंगुल उच्च और एक अंगुल विस्तृत स्थान को श्वेत चूर्ण से पूर्ण करे। पीले चूर्ण से कमल कर्णिका और केसरों को सम्यक् पूरित करे। श्वेत चूर्ण से दलों को पूरित करे। दलों की सन्धियों को काले चूर्ण से पूरित करे। पीले या काले चूर्ण से पीठगर्भ को पूरित करे। पीठपादों को लाल चूर्ण से पूरित करे। पीठगात्रों को श्वेत चूर्ण से पूरित करे। वीथिचतुष्टय कल्पवल्ली के कोरक पुष्प पल्लव फलों को विविध रंग के चूर्णों से पूरित करे। श्वेत चूर्ण से चारो द्वारों को, लाल चूर्ण से द्वारशोभा को, पीले चूर्ण से उपशोभा को और काले चूर्ण से कोनों को पूरित करे। उसके बाहर तीन रेखाओं को एक-एक अंगुल की दूरी पर उजले, लाल और काले चूर्ण से पूरित करे।

सर्वतोभद्र मण्डल बनाकर वेदी के चारो ओर दीप जलावे। वक्ष्यमाण विधि से पूजाद्रव्यों को रखे। उन्हें संस्कृत करे।

छत्र, चामर, दर्पण, पंखा को यथास्थान रखे। गुरुवन्दना करके करशुद्धि करे। तीन ताली बजाकर दिग्बन्ध करे। अग्नि का तीन प्राकार बनावे। भूतशुद्धि, प्राण-प्रतिष्ठा, मातृका न्यास, योगपीठ न्यास, मूल मन्त्र न्यास करे। मुद्रा बनाकर इष्ट देवता का ध्यान करके मानस पूजन करे। वैश्वदेव, मूलमन्त्र का जप, समर्पण करे। अर्घ्य-स्थापन, आत्मपूजा, अन्तर्हवन कर मूल मन्त्र जप कर उसे समर्पित करे।

'सर्वतोभद्रमण्डलाय नमः' से गन्धादि पञ्चोपचार से मण्डल को पूजकर जल से प्रोक्षण करे। वक्ष्यमाण विधि से पीठपूजा करे। उसकी कर्णिका को धान से पूरित करके ऊपर से चावल छिड़के। सत्ताईस कुश एवं दूब को मिलाकर ब्रह्मगाँठ लगाकर कूर्च बनावे। वक्ष्यमाण विधि से शालिपुंज के ऊपर वह्निमण्डल और वह्निकलाओं की पूजा करे। स्वर्णादि से निर्मित कलश को तीन धागों को मिलाकर वेष्टित करे। ॐ बोलते हुए कलश में चन्दन, अगर, कपूर को धूपित करके डाल दे। तब कलश में पुष्पराग, नीलम, वैदूर्य, मूंगा, मोती, पन्ना, हीरा, गोमेद और पद्मराग—इन नवरत्नों के साथ सोना निक्षिप्त करे। कलश के मुख पर गन्धाक्षत दूर्वायुक्त कूर्च को रखे। क्षं से अं तक विलोम मातृका बोलकर मूल मन्त्र का तीन बार जप करे। अपने को, कलश को और योग पीठ को एक रूप की भावना करे। वक्ष्यमाण पचास अक्षरौषधि क्वाथ, पीपल-गूलर-वट-क्वाथ-पलाश की छाल के क्वाथ, कपूर, चन्दन, कस्तूरी, कुंकुम वासित तीर्थ जल से कुम्भ को पूर्ण करे। वक्ष्यमाण विधि से अपने आगे शंखस्थापन करे। कुम्भ पूरित जल, सजातीय जल से भरे। गन्धाष्टक मिलाकर उसमें वक्ष्यमाण वह्निकला, सूर्यकला, सोमकला का आवाहन करे। उनमें अलग-अलग प्राणप्रतिष्ठा करे, पूजा करे। प्रणव से उत्पन्न पचास कला का पूजन कलामातृका न्यासोक्त अंगों से करे। उसमें प्रथम अकाररूप ब्रह्म से उत्पन्न कचवर्गोत्थ सृष्ट्यादि दश कला का आवाहन करे। हंसः शुचिषद् इस ऋचा से वामदेव ऋषि, जगती छन्द, सूर्य देवता इस प्रकार ऋष्यादि का स्मरण करे। 'ॐ हंसः शुचिषदः वसुरन्तरिक्ष सद् होता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्। नृषद्वरसदृत सद् व्योम सदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं वृहत्' मन्त्र कहकर 'ब्रह्मणे नमः' से पूजन करे। पूर्वोक्त प्राण प्रतिष्ठा मन्त्र से 'मम' पद के बदले सृष्ट्यादि नाम पद देकर सृष्ट्यादि की प्राणप्रतिष्ठा करे। ॐ कं सृष्ट्यै नमः' इत्यादि के रूप में दश कलाओं का पूजन करे।

उकार रूप विष्णु से उत्पन्न टतवर्गोत्थ जरादि दश कलाओं का आवाहन करे। ॐ प्रतद् विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः। यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा—कहकर विष्णवे नमः से पूजा करे। पूर्ववत् जरादि दश कलाओं की प्राणप्रतिष्ठा करे। 'ॐ टं जरायै नमः' इत्यादि से दश कलाओं की पूजा करे। मकार रूप रुद्र से उत्पन्न प य वर्गोत्थ तीक्ष्णादि दश कलाओं का आवाहन करे। ॐ त्र्यम्बकं मन्त्र के वसिष्ठ ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, त्र्यम्बक रुद्र देवता इस प्रकार ऋष्यादिकों का स्मरण करे। ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्—कहकर 'रुद्राय नमः' से पूजा करे। उनमें प्राणप्रतिष्ठा करके 'ॐ पं तीक्ष्णायै नमः' इत्यादि दश कलाओं की पूजा करे। ईश्वर रूप बिन्दु से उत्पन्न षकार से क्षकार तक पञ्च वर्णोत्थ पीतादि पञ्च कलाओं का आवाहन करे। ऋष्यादि का स्मरण करे। गायत्री का उच्चारण करके 'ईश्वराय नमः' से पूजा करे। उनमें प्राणप्रतिष्ठ। करके 'ॐ पं पीतायै नमः' इत्यादि से पञ्च कलाओं की पूजा करे। तब नादोत्थ सदाशिव से उत्पन्न स्वरजा निवृत्ति आदि षोडश कलाओं का आवाहन करे। 'विष्णुर्योनिं कल्पयतु' मन्त्र के त्वष्टा गर्भकर्ता ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, विष्णु देवता इस प्रकार ऋष्यादि का स्मरण करे। ॐ विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु। आसिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते—कहकर 'सदाशिवाय नमः' से पूजा करे। उनमें प्राणप्रतिष्ठा करे। 'अं निवृत्त्यै नमः' इत्यादि रूप में षोडश कलाओं का पूजन करे।

इत्थं चतुर्नवतिदेवताः शङ्खे सम्पूज्य सकलकलामयं शङ्खजलं मूलमन्त्रेण कुम्भे संयोज्य, ततोऽश्वत्थपनसाम्रपल्लवान् इन्द्रवारुणीलतया संवेष्ट्य कल्पवृक्षधिया कलशे निधाय, तदुपरि कलशसजातीयं तण्डुलपूर्णं नारिकेलफलाढ्यकल्पवृक्षफलबुद्ध्या पात्रं संस्थाप्य पट्टवस्त्रयुगेन घटं संवेष्टयेदिति वेद्यां प्रधानकुम्भस्थापनं विधाय, पूर्वादितोरणसमीपे प्रागुक्तमण्डलेऽपि अष्टदलकमलेषु वा शालिपुञ्जोपरि प्रागुक्तविधिना प्रतिद्वारमेकमेकं संस्थाप्य, तत्र पूर्वदिग्गतकुम्भे ध्रुवं, दक्षिणे धरां, पश्चिमे वाक्पतिमुत्तरे विघ्नेशं च सम्पूज्य, तद्वदाग्नेयादिकोणचतुष्टये कुम्भान् संस्थाप्याग्नेयकुम्भेऽमृतं,

नैर्ऋते दुर्जयं' वायव्ये सिद्धार्थमीशाने मङ्गलं च सम्पूज्य, पुनः पूर्वादिकुम्भेष्विन्द्रादि-लोकपालानावाह्य वेदोक्ततत्तन्मन्त्रेण सम्पूज्य पुनः पूर्वाद्यष्टदिक्षु कुम्भाद्बहिः 'ऐरावतं पुण्डरीकं वामनं कुमुदाञ्जनौ। पुष्पदन्तं सार्वभौमं सुप्रतीकं च पूजयेत्' इति दिग्गजान् सम्पूज्य, पुनर्गुरुर्वेद्यां गत्वा स्वासने समुपवेश्य स्वेष्टमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा, तस्य मन्त्रस्य-र्ष्यादिकरषडङ्गन्यासपूर्वकं सकलन्यासजालं विधाय देवतां ध्यात्वा मानसैरुपचारैः सम्पूज्य, प्रधानकुम्भे वक्ष्यमाणप्रकारेण मूर्तिं परिकल्प्य, तत्र स्वेष्टदेवतामावाह्य वक्ष्यमाणप्रकारेण षोडशोपचारैः साङ्गावरणं तत्तत्कल्पोक्तविधिना सम्पूज्य, वेद्या दक्षिणभागे हस्तमात्रायामविस्तारमङ्गुष्ठापर्वमात्रोच्चं वालुकाभिः समचतुरस्रं स्थण्डिलं कृत्वा वक्ष्यमाणनित्य-होमप्रोक्तविधिना वह्निं संस्थाप्य चरुं श्रपयित्वा तत्र देवतामावाह्य सम्पूज्य, नित्यहोमोक्तविधिना साज्येन तेन चरुद्रव्येण हुत्वा, पुनर्देवं सम्पूज्य कुम्भस्थमूर्तौ संयोज्य तथैव वह्निं सम्पूज्य विसृज्य वक्ष्यमाणविधिना सर्वभूतबलिं तत्तत्कल्पोक्तबलिदानं च विधाय, देवायोत्तरापोशानादिनीराजनान्तं नित्यपूजोक्तविधिना विधाय, प्राणायामत्रयऋष्यादिकर-षडङ्गन्यासपूर्वकं मूलमन्त्रमष्टोत्तरसहस्रं जपित्वा देवाय वक्ष्यमाणविधिना जपं समर्प्य, पूर्वमण्डपस्येशानकोणे स्थापि-तविकिरपुञ्जोपरि सुवर्णगर्भं वस्त्रयुग्मवेष्टितं जलपूरितं करकं विन्यस्य, तत्रास्त्रदेवतां सिंहरूपां दक्षवामकरयोः खड्ग-खेटकधारिणीं घोररूपां पश्चिमाभिमुखां ध्यात्वा, तिष्ठन् गन्धादिपञ्चोपचारैः सम्पूज्य नमस्कृत्य, तं करकं कराभ्यामुद्धृत्य मण्डपाभ्यन्तरे प्रदक्षिणं भ्रमन् करकं स्वस्थाने निवेश्योपविश्यास्त्रमन्त्रेण पुनस्तामस्त्रदेवतां पञ्चोपचारैः सम्पूज्य, ततः प्राक्कृतेषु कुण्डेषु इन्द्रेशानयोर्मध्यगताचार्यकुण्डे गुरुरग्निस्थापनं कुर्यात्।

इन चौरानबे देवताओं को शङ्ख में पूजकर सकल कलामय शङ्खजल को मूलमन्त्र कहकर कलश में डाल दे। तब पीपल, कटहल, आम्रपल्लवों को इन्द्रवारुणी लता से वेष्टित करके कल्पवृक्षरूप में कलश पर स्थापित करे। तब कलश-जातीय पात्र में चावल भरकर ऊपर नारियल रखकर उसे कल्पवृक्ष का फल मानकर पात्र को कलश के मुख पर रखे। दो वस्त्र कलश में लपेटे। इस प्रकार वेदी पर प्रधान कलश का स्थापन करे। इसके बाद पूर्वादि तोरण द्वार के समीप पूर्वोक्त मण्डल के अष्टदल कमल के दलों में शालिपुंज पर पूर्वोक्त विधि से प्रत्येक में एक-एक कलश स्थापित करे। पूर्व में स्थापित कलश में ध्रुव, दक्षिण में धरा, पश्चिम में वाक्पति, उत्तर में विघ्नेश का पूजन करे। इसी प्रकार आग्नेयादि कोणचतुष्टय में कलश स्थापित करे। आग्नेय कुम्भ में अमृत, नैर्ऋत्य में दुर्जय, वायव्य में सिद्धार्थ एवं ईशान में मंगल की पूजा करे। पुनः पूर्वादि कलशों में इन्द्रादि लोकपालों का आवाहन करे। वेदोक्त मन्त्र से पूजा करे। फिर पूर्वादि आठो दिशाओं में कलश के बाहर ऐरावत, पुण्डरीक, वामन, कुमुद, अञ्जन, पुष्पदन्त, सार्वभौम एवं सुप्रतीक—इन आठ दिग्गजों का पूजन करे।

कुण्ड में अग्नि-स्थापन—दिग्गजों की पूजा के बाद गुरु वेदी के पास जाकर अपने आसन पर बैठे। अपने इष्ट मन्त्र से तीन प्राणायाम करे। मन्त्र से करन्यास, षडङ्ग न्यास करे। समस्त न्यासों को करने के बाद देवता का ध्यान करके मानसोपचार से पूजा करे। प्रधान कलश में वक्ष्यमाण प्रकार से मूर्ति कल्पित करके उसमें इष्ट देवता का आवाहन करे। साङ्ग सावरण षोडशोपचार पूजन वक्ष्यमाण प्रकार से तत्कल्पोक्त विधि से करे। वेदी के दक्षिण भाग में हस्तमात्र आयाम विस्तार अंगुष्ठ मात्र उच्च समचतुरस्र स्थण्डिल बालू से बनावे। नित्य होमोक्त विधि से आज्य और चरु द्रव्य से हवन करे। पुनः देवता का पूजन करके कुम्भस्थ मूर्ति को योजित करे। उसी प्रकार अग्निपूजन करके विसर्जन करके वक्ष्यमाण विधि से सर्वभूत बलि तत्कल्पोक्त विधि से प्रदान करे। देवता के लिये उत्तरापोशन आदि के बाद नीराजन नित्य पूजोक्त विधि से करे। तीन प्राणायाम करके ऋष्यादि कर-षडङ्ग न्यास करे। मूल मन्त्र का एक हजार आठ जप करे। वक्ष्यमाण विधि से देवता को जप समर्पित करे। मण्डप के ईशान कोण में पूर्व-स्थापित विकीरित पुञ्ज पर सुवर्णगर्भ दो वस्त्र से वेष्टित जलपूर्ण करक (कमण्डल) स्थापित करे। सिंहरूपा दक्ष-वाम हाथ में खड्ग एवं खेटकाधारिणी घोररूपा पश्चिमाभिमुखी अस्त्रदेवता का बैठी हुई ध्यान करे। गन्धादि पञ्चोपचार से उसका पूजन करे। नमस्कार करे। तब उस करक को हाथों में लेकर मण्डप के अन्दर प्रदक्षिण क्रम से भ्रमण करके करक को अपने स्थान पर रखे। आसन पर बैठकर अस्त्र मन्त्र से पुनः उस अस्त्रदेवता का पंचोपचार पूजन करे। तब पूर्वनिर्मित कुण्डों में से ईशान पूर्व मध्य में स्थित आचार्य कुण्ड में गुरु अग्निस्थापन करे।

कुण्डाग्निस्थापनतत्पूजा

तत्रादौ कुण्डं गोमयेनोपलिप्य कुण्डसमीपे नित्यपूजोक्तविधिना स्वासनमास्तीर्य सम्पूज्य, तत्रोदङ्मुखः प्राङ्मुखो वोपविश्य मूलमन्त्रेण प्राणायाममृष्यादिकरषडङ्गन्यासान् विन्यस्य, देवतां ध्यात्वा मानसोपचारैः सम्पूज्य मूलं यथाशक्ति जपित्वा जपं समर्प्य श्रीगुरुं प्रणम्य कुण्डसंस्कारान् कुर्यात्। तत्रादौ कुण्डं मूलमन्त्रेण वीक्ष्यास्त्रमन्त्रेण प्रोक्ष्यास्त्रेणैव कुशैस्त्रिः संताड्य कवचेनाभ्युक्ष्यास्त्रेण कुण्डमध्ये किञ्चित् खात्वास्त्रमन्त्रेण तां मृदमङ्गुष्ठानामिकाभ्यां उद्धृत्य बहिस्त्यक्त्वा हृन्मन्त्रेण शुद्धमृत्तिकया खातमापूर्य अस्त्रमन्त्रेण समीकृत्य कवचमन्त्रेण जलैः संसिच्यास्त्रमन्त्रेण काष्ठादिना कुट्टयित्वा दृढीकृत्य, कवचमन्त्रेण कुशैः कुण्डं सम्मार्ज्य कवचेनैव गोमयाद्भिः संलिप्य, कवचेनैवाग्निसूर्यसोमानामष्टात्रिंशत्कलारूपं सञ्चिन्त्य, कवचेनैव मेखलात्रयेऽपि त्रिगुणीकृतसूत्रेण प्रतिमेखलं त्रिस्त्रिः संवेष्ट्य 'ॐ अमुककुण्डाय एतदासनं नमः' इत्याद्यासनादिदीपान्तैरुपचारैः प्रथमचतुरस्रादितत्तत्कुण्डनाम्ना चतुर्थीनमोऽन्तेन सम्पूज्य तथैव नाभिं च सम्पूज्य, मेखलात्रयं तथैव हृन्मन्त्रेण सम्पूज्यास्त्रमन्त्रेण कुण्डं वज्रवद्दृढं सञ्चिन्त्य, हृन्मन्त्रेण कुशैः कुण्डस्य चतुर्दिक्षु वह्निज्वालाविलासाय चतुष्पथं मार्गचतुष्टयं परिकल्प्य, कवचमन्त्रेणाच्छिन्नाग्रैः कुशैरस्त्रमन्त्राभिमन्त्रितैः कुण्डभित्तिगणं सर्वमाच्छादयन् अक्षपाटनं कुर्यात्, इत्यष्टादश संस्कारान् कुर्यात्।

पहले कुण्ड को गोबर से लीपे। कुण्ड के निकट नित्य पूजोक्त विधि से अपने आसन को बिछाकर पूजे। उस पर उत्तरमुख या पूर्वमुख होकर बैठे। मूलमन्त्र से प्राणायाम ऋष्यादि कर षडङ्ग न्यास करे। देवता का ध्यान करके मानसोपचार पूजन करे। मूल मन्त्र का जप यथाशक्ति करके जप-समर्पण करे। श्री गुरु को प्रणाम करके कुण्ड का संस्कार करे। कुण्ड को मूल मन्त्र बोलकर देखे। फट् से प्रोक्षण करे। फट् से तीन कुशों से ताड़न करे। हुं से अभ्युक्षण करे। कुण्डमध्य से खानकर फट् से कुछ मिट्टी अंगूठा अनामिका से लेकर कुण्ड के बाहर फेंके। हृन्मन्त्र से शुद्ध मिट्टी गड्ढे में भरे। अस्त्र मन्त्र से बराबर करे। कवच मन्त्र बोलकर उसे जल से सीचित करे। काष्ठादि से कूट कर दृढ़ करे। कवच मन्त्र कहकर कुश से कुण्ड का सम्मार्जन करे। कवच से गोबर आदि से लीपे। कवच मन्त्र बोलकर अग्नि, सूर्य, सोम की अड़तीस कला का चिन्तन करे। कवच से तीनों मेखलाओं से प्रत्येक को तीन सूतों से वेष्टित करे। 'ॐ अमुककुण्डाय एतदासनं नमः' कहकर आसन से दीपदान तक प्रथम चतुरस्र तब चतुर्थ्यन्त कुण्डनाम में नमः जोड़कर पूजा करे। उसी प्रकार नाभि की पूजा करे। हृन्मन्त्र से मेखला को पूजे। अस्त्र मन्त्र से वज्रवत् दृढ़ कुण्ड का चिन्तन करे। हृन्मन्त्र कहकर कुण्ड के चारो तरफ वह्निज्वाला विलास के लिये कुशों से चार मार्ग बनावे। कवच मन्त्र से अच्छिन्न अग्र वाले कुशों को अस्त्र मन्त्र से मन्त्रित करके कुण्डभीत्ति का आच्छादन करके अक्षपाटन करे। इस प्रकार अट्ठारह संस्कार करे।

अशक्तौ प्रथमोदितैश्चतुर्भिरेव संस्कारैः कुण्डं संस्कृत्य, तत्र हृन्मन्त्रेणा-स्त्रमन्त्रेण वा दक्षिणमध्योत्तरेषु प्रागग्राः पश्चिममध्यपूर्वेषूदगग्रा इति तिस्रस्तिस्रो रेखाः कुशमूलेन विलिख्य प्रणवेनाभ्युक्ष्य, प्रागग्रासु रेखासु दक्षिणरेखायां विष्णवे नमः। मध्यरेखायां रुद्राय नमः। उत्तरस्याम् इन्द्राय नमः। उदगग्रासु रेखासु पश्चिमायां ब्रह्मणे नमः। मध्यमायां सूर्याय नमः। पूर्वरेखायां सोमाय नमः। इति सम्पूज्य, तत्र वक्ष्यमाणयोगपीठक्रमेण मण्डूकादिपरतत्त्वान्तं योगपीठं सम्पूज्य, तत्र पद्मकेसरेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन मध्यान्तं ॐ जयायै नमः। एवं विजयायै नमः। अजितायै नमः। अपराजितायै नमः। नित्यायै नमः। विलासिन्यै नमः। दोग्ध्र्यै नमः। अघोरायै नमः। मङ्गलायै नमः, इति सम्पूज्य 'ह्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः' इति मध्ये पुष्पाञ्जलिं निक्षिप्य, तत्र भुवनेश्वरीं तत्तन्मन्त्रेणावाह्यावाहनादिपरमीकरणान्तं तत्तन्मुद्रया विधायासनादिषोडशोपचारैराराध्य, तत्र श्रीशिवं ध्यात्वा मूलमन्त्रेण तथैव सम्पूज्य देवीमृतुस्नातां देवं च कामोन्मत्तं विचिन्त्य, स्वर्णादिपात्रेण मृत्पात्रं चेत् नूतनेन सूर्यकान्तादिभवमरणिभवं श्रोत्रियगृहाद्वाग्निमस्त्रमन्त्रेण पात्रे कृत्वा कवचमन्त्रेण सजातीयेन पात्रान्तरेण पिधाय, कन्यया सुवासिन्या वा समानीतं गुरुरादायास्त्रमन्त्रेणैकमङ्गारं तन्मध्यात् क्रव्यादांशं नैर्ऋतकोणे परित्यज्य, देवांशं मूलेन वीक्ष्यास्त्रेण प्रोक्ष्यास्त्रेण कुशैः संताड्य कवचेनाभ्युक्ष्य, तत्र स्वमूलाधारस्थवह्निमण्डलगतपरमात्मस्वरूपाग्नीषोमात्मकाद्बिन्दोः सकाशाद्वह्निं,

मणिपूरगतजाठरानलेन सह सुषुम्नामार्गेण वहन्नासापुटाध्वना निष्कास्य, रमिति वह्निबीजमुच्चरन् पुरतः पात्रस्थिते वह्नौ वह्निचैतन्यं संयोज्य औदर्यबैन्दवपार्थिववह्नीनामैक्यं विभावयन्, प्रणवेनाभिमन्त्र्य वमिति धेनुमुद्रयामृतीकृत्यास्त्रमन्त्रेण संरक्ष्य कवचेनावगुण्ठ्य 'ॐ रं वह्नये नमः' इति गन्धादिभिः सम्पूज्य, जानुभ्यामवनिं गतस्तत्पात्रं कराभ्यामादाय कुण्डोपरि त्रिःप्रदक्षिणं परिभ्राम्य, देव्या योनौ शिवबीजमिति ध्यायन् स्वाभिमुखं कुण्डमध्ये प्रणवमुच्चरन् तमग्निं निक्षिप्य, मैथुनधिया देवदेव्योराचमनं दत्त्वा 'ॐ चित्पिङ्गल हनहन पचपच दहदह सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा' इति मन्त्रमुच्चरन् मुखेन फूत्कृत्य कुशैरग्निं प्रज्वाल्य काष्ठैः पटूकृत्य, कृताञ्जलिस्तिष्ठन् 'ॐ अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्। सुवर्णवर्णममलं समिद्धं सर्वतोमुखम्' इति ज्वलन्तं वह्निमुपस्थाय वक्ष्यमाणवह्निमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि भृगुऋषये नमः। मुखे गायत्रीछन्दसे नमः। हृदये अग्नये देवतायै नमः। गुह्ये रंबीजाय नमः। पादयोः स्वाहाशक्तये नमः इति विन्यस्य दीक्षाङ्गहोमे विनियोगः, इति कृताञ्जलिर्वदेत्। लिङ्गे सरयूं हिरण्यायै नमः। गुदे षरयूं कनकायै नमः। शिरसि शरयूं रक्तायै नमः। मुखे वरयूं कृष्णायै नमः। नासिकायां लरयूं सुप्रभायै नमः। नेत्रयोः ररयूं रक्तायै नमः। सर्वाङ्गे यरयूं बहुरूपायै नमः, इति सप्तजिह्वा विन्यस्य, ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः। स्वस्ति-पूर्णाय शिरसे स्वाहा। उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै वषट्। धूमव्यापिने कवचाय हुं। सप्तजिह्वाय नेत्रत्रयाय वौषट्। धनुर्धरायास्त्राय फट्। इति षडङ्गानि विन्यस्य, शिरसि अग्नये जातवेदसे नमः। वांमांसे अग्नये सप्तजिह्वाय नमः। वामपार्श्वे अग्नये हव्यवाहनाय नमः। वामकट्यां अग्नये अश्वोदरजाय नमः। लिङ्गे अग्नये वैश्वानराय नमः। दक्षकट्यां अग्नये कौमारतेजसे नमः। दक्षपार्श्वे अग्नये विश्वमुखाय नमः। दक्षांसे अग्नये देवमुखाय नमः, इति मूर्तीर्विन्यस्य, वह्निरूपं स्वात्मानं ध्यात्वा सप्तजिह्वामुद्रां प्रदर्श्य, कुण्डस्योत्तरभागे कुशास्तरे स्रुक्स्रुवौ प्रोक्षणीपात्रे आज्यस्थाली चरुस्थाली परिधित्रयं समित्पञ्चात्मकमिध्मं लूनमूलसाग्रकुशमुष्टिरिति पात्राण्यधोमुखानि संस्थाप्य, अन्यान्यपि दध्य-क्षतादिबलिद्रव्याणि गन्धपुष्पादिपूजाद्रव्याणि च यथायथं संस्थाप्याधोमुखानि स्रुक्स्रुवादीनि सपवित्राधोमुखहस्तसेक-रूपावोक्षणपूर्वकमुत्तानीकृत्य, प्रणीतपात्रं प्रक्षाल्य स्वपुरतः कुशास्तरे निधाय शुद्धजलैरापूर्य तत्र गन्धाक्षतान् निक्षिप्य, प्रादेशमात्रं साग्रं कुशद्वयं मध्ये ब्रह्मग्रन्थियुतं जलाग्रे उत्तराग्रं पवित्रं निधाय करद्वयानामिकाङ्गुष्ठाभ्यां पवित्रं मूलाग्रे विधृत्यास्त्रमन्त्रमुच्चरन् पवित्रमध्येन जलं पात्राद्बहिस्त्रिवारं भूमौ निक्षिपेत्।

उपर्युक्त अट्ठारह संस्कारों को करने में असमर्थ होने पर पहले चार संस्कारों से कुण्ड को संस्कृत करे। तब हृन्मन्त्र या अस्त्र मन्त्र से दक्षिण-उत्तर में पूर्वाग्र एवं पश्चिम मध्य पूर्व में उत्तराग्र तीन-तीन रेखा कुशमूल से बनावे। प्रणव से अभ्युक्षण करे। पूर्वाग्र रेखाओं में से दक्षिण रेखा में विष्णवे नमः से पूजा करे। मध्य रेखा में रुद्राय नमः से पूजा करे। उत्तर रेखा में इन्द्राय नमः से पूजा करे। उत्तराग्र रेखाओं में पश्चिम रेखा में ब्रह्मणे नमः से पूजा करे। बीच वाली रेखा में सूर्याय नमः एवं पूर्व रेखा में सोमाय नम से पूजा करे।

तत्पश्चात् वक्ष्यमाण योगपीठ क्रम से मण्डूकादि से परतत्त्व तक योगपीठ की पूजा करे। पद्मकेसरों में अपने आगे से प्रादक्षिण्य क्रम से मध्य से अन्त तक—ॐ जयायै नमः, ॐ विजयायै नमः, ॐ अजितायै नमः, ॐ अपराजितायै नमः, ॐ नित्यायै नमः, ॐ विलासिन्यै नमः, ॐ दोग्ध्र्यै नमः, ॐ अघोरायै नमः, ॐ मंगलायै नमः से नव शक्तियों का पूजन करे। 'ह्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः' से मध्य में पुष्पाञ्जलि दे। वहीं भुवनेश्वरी को उसके मन्त्र से आवाहन से परमीकरण तक करके सम्बन्धित मुद्रा दिखाकर आसनादि देकर षोडशोपचार से पूजन करे। श्री शिव का ध्यान करके मूल मन्त्र से उसी प्रकार पूजन करे। देवी को ऋतुस्नाता एवं देव को कामोन्मत्त चिन्तन करके स्वर्णादि या मिट्टीपात्र में सूर्यकान्तादि से उत्पन्न या अरणि से उत्पन्न या श्रोत्रिय गृह की अग्नि को अस्त्र मन्त्र से पात्र में ग्रहण करे। कवच मन्त्र से सजातीय अन्य पात्र में कन्या या सुवासिनी द्वारा लायी गयी अग्नि में से गुरु अस्त्रमन्त्र से एक अंगार लेकर क्रव्यादांश को नैर्ऋत्य कोण में फेंक दे। देवांश को मूल मन्त्र से देखे, अस्त्र से प्रोक्षण करे। कुश से ताड़न करे। कवच से अभ्युक्षण करे।

तब अपने मूलाधारस्थ वह्निमण्डलगत परमात्मस्वरूप अग्निषोमात्मक बिन्दु के समीप से अग्नि को मणिपूरगत

जाठरानल के साथ सुषुम्ना मार्ग से गतिमान नासापुट से बाहर निकाले। वह्निबीज 'रं' कहकर सामने स्थित पात्र में वह्निचैतन्य को योजित करे। औदर्य वैन्दव पार्थिव वह्नि में ऐक्य की भावना करे। प्रणव से अभिमन्त्रित करे। वं धेनुमुद्रा से अमृतीकरण करे। अस्त्र मन्त्र से संरक्षण करे। कवच से अवगुण्ठन करे। 'ॐ रं वह्नये नमः' से गन्धादि से पूजन करे। घुटनों को भूमि पर रखकर उस पात्र को हाथ में लेकर कुण्ड पर तीन बार घुमाकर देवी की योनि में शिवबीज मानकर स्वाभिमुख कुण्ड में प्रणव बोलते हुए उस अग्नि को डाल दे। देवी-देव का मैथुन मानकर देव-देवी को तीन आचमन प्रदान करे।

'ॐ चित्पिंगल हन हन पच पच दह दह सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा' मन्त्र बोलकर मुख से फूँक मारे। कुश से अग्नि प्रज्वलित करके उस पर लकड़ी रखे। हाथ जोड़कर बैठे और कहे—ॐ अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्। सुवर्णवर्णममलं समिद्धं सर्वतोमुखम्'। जलती अग्नि को स्थापित करे। वक्ष्यमाण अग्निमन्त्र से तीन प्राणायाम करे। तब विनियोग करे—शिरसि भृगु ऋषये नमः। मुखे गायत्री छन्दसे नमः। हृदये अग्निदेवतायै नमः। गुह्ये रं बीजाय नमः। पादयोः स्वाहा शक्तये नमः। तब हाथ जोड़कर 'दीक्षांगहोमे विनियोगः' कहे।

सप्तजिह्वा न्यास—लिंगे सरयूं हिरण्यायै नमः। गुदे षरयूं कनकायै नमः। शिरसि शरयूं रक्तायै नमः। मुखे वरयूं कृष्णायै नमः। नासिकायां लरयूं सुप्रभायै नमः। नेत्रयोः ररयूं रक्तायै नमः। सर्वांगे यरयूं बहुरूपायै नमः।

षडङ्ग न्यास—सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः। स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा। उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै वषट्। धूमव्यापिने कवचाय हुम्। सप्तजिह्वाय नेत्रत्रयाय वौषट्। धनुर्धरायास्त्राय फट्।

मूर्तिन्यास—शिरसि अग्नये जातवेदसे नमः। वामांसे अग्नये सप्तजिह्वाय नमः। वामपार्श्वे अग्नये हव्यवाहनाय नमः। वामकट्यां अग्नये अश्वोदरजाय नमः। लिङ्गे अग्नये वैश्वानराय नमः। दक्षकट्यां अग्नये कौमारतेजसे नमः। दक्षपार्श्वे अग्नये विश्वमुखाय नमः। दक्षांसे अग्नये देवमुखाय नमः।

उत्पवन—इन न्यासों के बाद अपने को अग्निरूप मानकर सप्तजिह्वा मुद्रा दिखावे। कुण्ड के उत्तर भाग में कुश पर स्रुच, स्रुवा, प्रोक्षणी पात्र, आज्य थाली, चरुथाली, परिधित्रय समित् पञ्चात्मक अग्नि, लून मूल साग्र कुशमुष्टि के समान पात्रों को अधोमुख स्थापित करे। अन्य दही अक्षतादि बलि द्रव्य गन्ध-पुष्पादि पूजा द्रव्य यथास्थान स्थापित करे। अधोमुख स्रुच, स्रुवादि को अधोमुख हाथ में कुश लेकर सेक रूप से वीक्षण करे। तब उत्तान करके प्रणीता पात्र को धोकर अपने आगे कुश पर रखे। उसमें शुद्ध जल भरे। गन्धाक्षत डाले। वित्ता भर के अग्रयुक्त दो कुश के मध्य में ब्रह्मगाँठ लगावे। जल के आगे उत्तराग्र कुश को रखे। दोनों हाथ की अनामिका अंगूठों से कुश को मूलाग्र में ग्रहण करे। अस्त्र मन्त्र का उच्चारण करे। कुश मध्य से जल पात्र के बाहर तीन बार फेंके।

इत्युत्पवनं विधाय तन्मध्ये किञ्चित् घृतं निक्षिप्य, तत्पात्रं कराभ्यामामस्तकमुद्धृत्य कुण्डस्योत्तरभागे कुशास्तरे निधाय तदुपरि प्रागग्रान् दर्भान् निक्षिपेत्, इति प्रणीतापात्रं संस्थाप्य, प्रोक्षणीपात्रं प्रक्षाल्य शुद्धजलैरापूर्य तन्मध्ये प्रणीतापात्रजलं पात्रान्तरेणोद्धृत्य किञ्चिद्दत्त्वा, तेन जलेन मूलमन्त्रेण सर्वाणि पात्राणि होमद्रव्याणि पूजाद्रव्याणि च प्रोक्षयेत्, इति द्रव्यासादनं विधाय, प्रोक्षणीयजलेनाग्निं परिषिच्यागभैश्चतुर्भिर्दर्भैः प्राचीदिशमारभ्य प्राच्यामुत्तराग्रैरीशानाद्याग्नेयान्तं परिस्तीर्य, पुनर्दक्षिणस्यां प्रागग्रैः पूर्वपरिस्तरणमूलमग्रैराच्छादयन् पुनः पश्चिमायामुत्तराग्रैर्दक्षिण-परिस्तणमूलं मूलेनाच्छादयन्, पुनरुत्तरस्यां प्रागग्रैः पश्चिमपरिस्तरणाग्रं पूर्वपरिस्तरणाग्रमग्रेण च परिस्तीर्य, परिधित्रयमादाय सर्वतः स्थूलं पश्चिम उत्तराग्रं, ततः कनिष्ठं दक्षिणे पूर्वाग्रं, पश्चिमपरिधेर्मूलोपरि मूलं यथा भवति तथा, पुनस्ततोऽपि कनिष्ठमुत्तरस्यां पूर्वाग्रं, पश्चिमपरिधेरग्रोपरि मूलमिति कुण्डस्य मध्यमेखलोपरि परिस्तरणोपरि परिधित्रयं निक्षिपेत्। अत्र पश्चिममेखलायां तु परिस्तरणपरिधिस्थापनं योनिनालोर्ध्वमेखलयोरन्तराले कार्यमिति।

इस प्रकार उत्पवन करने के बाद उसमें थोड़ा घी डाले। उसे हाथों से मस्तक तक ले जाय। तब कुण्ड के उत्तर भाग में कुश पर रखे। उस पर पूर्वाग्र कुशों को रखे। इस प्रकार प्रणीता पात्र का स्थापन करे। प्रोक्षणी पात्र को धोकर शुद्ध जल

से भरकर उसमें प्रणीता पात्र का थोड़ा जल दूसरे पात्र में लेकर डाले। उस जल से मूल मन्त्र द्वारा सभी पात्रों, होमद्रव्य एवं पूजा द्रव्य का प्रोक्षण करे। द्रव्यासादन के बाद प्रोक्षणी जल से अग्नि का परिसेचन करे। चार कुशों को पूर्व दिशा से आरम्भ करके प्राची से उत्तराग्र एवं ईशान से आग्नेय तक बिछा दे। फिर दक्षिण में पूर्वाग्र कुशों से पूर्व परिस्तरण मूल और अग्र को आच्छादित करे। फिर पश्चिम में उत्तराग्र दक्षिण के परिस्तरण मूल को मूल से आच्छादित करे। फिर पूर्वाग्र पश्चिम परिस्तरण के अग्र, पूर्व परिस्तरण अग्र से परिस्तरण करे। परिधित्रय लेकर सभी ओर स्थूल पश्चिम उत्तराग्र, कनिष्ठ दक्षिण पूर्वाग्र परिधि के मूल पर रखे। पुनः उसे भी कनिष्ठ उत्तर के पूर्वाग्र पश्चिम परिधि के अग्र पर रखे। कुण्ड की मध्य मेखला के परिस्तरण पर तीनों परिधियों को रखे। पश्चिम मेखला में परिस्तरण-स्थापन योनि नाल के अन्तराल में करे।

पश्चिमपरिधौ ॐ ब्रह्मणे नमः। दक्षिणपरिधौ ॐ विष्णवे नमः। उत्तरपरिधौ ॐ रुद्राय नमः। इति सम्पूज्य, स्वेष्टदेवतादीक्षितं ब्राह्मणमाहूय, कुण्डस्य दक्षिणे भागे कुशासने समुपवेश्य, अमुकगोत्रोऽमुकशर्माहममुकगोत्रा-मुकवेदान्तर्गतामुकशाखाध्यायिनममुकशर्माणं ममेष्टदीक्षाङ्गभूतहोमकर्मणि कृताकृतावेक्षणाय ब्रह्मत्वेन त्वां वृणे, इति वस्त्रालङ्कारादिभिर्वृणुयात्। ततस्तं गन्धादिभिः सम्पूज्य, ब्राह्मणालाभे कुशवटुं वा सम्पूज्य वह्निमन्त्रेणार्घ्यपाद्या-द्याचमनीयमधुपर्कपात्राणि संस्थाप्य संस्कृत्य कुण्डमध्ये षट्कोणगर्भितकर्णिकं सकेसरं चतुर्द्वारयुक्तचतुरस्रत्रयवेष्टित-मष्टदलकमलं वह्नेः पूजापीठं विभाव्य, तत्र प्रागुक्तविधिना मण्डूकादिपरतत्त्वान्तं योगपीठं समभ्यर्च्य, अष्टदलकेसरेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन पीतायै नमः, श्वेतायै नमः, अरुणायै नमः, कृष्णायै नमः, धूम्रायै नमः, तीव्रायै नमः, विस्फु-लिङ्गिन्यै नमः, रुचिरायै नमः, ज्वालिन्यै नमः इति मध्यान्तं नवशक्तीः सम्पूज्य, 'रं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः' इति समस्तं पीठं सम्पूज्य, तन्मध्ये वह्निं,

करैर्वरस्वस्तिकशक्त्यभीतीर्दधानमम्भोजगतं त्रिनेत्रम्।
सिन्दूरवर्णं तपनीयभूषं वह्निं जटाभूषितमौलिमीडे ॥१॥

इति ध्यात्वा, सप्तजिह्वामुद्रां प्रदर्श्य 'ॐ वैश्वानर जातवेद लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा अग्नये नमः' इत्यग्निं त्रिः पुष्पाञ्जलिना सम्पूज्य, पुनर्वह्निमन्त्रमुच्चार्याग्नये एतदासनं नमः, एवमग्ने एष ते अर्घः स्वाहा, एतत्ते पाद्यं नमः, एतत्ते आचमनीयं स्वधा, एष ते मधुपर्कः स्वधा, एतत्ते पुनराचमनीयं स्वधा, एतत्ते स्नानं नमः, इति पुरश्चरणमुखमूर्धादिवसर्वाङ्गोद्देशेन मेखलाया बहिः पात्रान्तरे अर्घ्यपाद्यादिस्नानान्तां वह्नेस्तत्तदङ्गभावनां परिकल्प्य, पुनराचमनीयं दत्त्वा वह्नावेव वस्त्रं दत्त्वा पुनराचमनीयं दत्त्वा यज्ञोपवीतं निवेद्य बहिः पुनराचमनीयं दत्त्वा गन्धपुष्पे वह्नावेव निवेदयेत्, इति वह्निमन्त्रेणासनादिपुष्पान्तानुपचारानुपचर्य षट्कोणेषु देवाग्रादिकोणमारभ्य मध्यान्तं सरयूं हिरण्यायै नमः। षरयूं कनकायै नमः। शरयूं रक्तायै नमः। वरयूं कृष्णायै नमः। लरयूं प्रभायै नमः। ररयूं अतिरक्तायै नमः। यरयूं बहुरूपायै नमः, इति सम्पूज्य, अष्टदलकेसरेषु अग्नीशासुरवायव्यदेवताग्रतदादिचतुर्दिक्षु ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः। ॐ स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा नमः। ॐ उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै वषट् नमः। ॐ धूमव्यापिने कवचाय हुं नमः। सप्तजिह्वाय नेत्रत्रयाय वौषट् नमः। ॐ धनुर्धरायास्त्राय फट् नमः। इति षडङ्गानि सम्पूज्य, अष्टदलेषु देवाग्रादिप्रादक्षिण्येन ॐ अग्नये जातवेदसे नमः। एवं अग्नये सप्तजिह्वाय नमः, अग्नये हव्यवाहनाय नमः, अग्नयेऽश्वोदरजाय नमः, अग्नये वैश्वानराय नमः, अग्नये कौमारतेजसे नमः, अग्नये विश्वमुखाय नमः, अग्नये देवमुखाय नमः, इति प्रादक्षिण्येनाष्टमूर्तीः सम्पूज्य, तद्बहिश्चतुरस्रे इन्द्रादीन् सायुधान् सम्पूज्य, पुनर्वह्निमन्त्रेण वह्निं सम्पूज्य, धूपदीपादि दत्त्वा नैवेद्यमुत्सृज्याग्नौ प्रक्षिप्य प्राग्वदाचमनीयं दत्त्वा, ततः स्रुक्स्रुवौ प्राञ्चावधोमुखावग्नौ सन्ताप्य, तयोरग्रं कुशाग्रैर्मध्यं मध्यैर्मूलं मूलैरिति त्रिः सम्मृज्याग्नौ तान् प्रक्षिप्य, स्रुक्स्रुवौ स्वदक्षिणभागे कुशास्तरे निधाय, आज्यस्थालीमादायास्त्रमन्त्रेण प्रक्षाल्य स्वपुरतः कुशास्तरे निधाय, तदुपर्युत्तराग्रं प्रादेशमात्रं मध्ये ब्रह्मग्रन्थियुतं कुशद्वयरूपं पवित्रं निधाय, पात्रान्तरस्थं शुद्धं गोघृतं दुर्गन्धादिदूषणरहितं वीक्षणादिचतुःसंस्कारैः संस्कृतं वमिति

धेनुमुद्रयामृतीकृतं मूलेनाष्टधाभिमन्त्रितमाज्यस्थाल्यां निक्षिप्य, कुण्डादङ्गारानुद्धृत्य मेखलाया बहिर्भूमौ वायव्यकोणे निक्षिप्य, तेष्वाज्यस्थालीं हृन्मन्त्रेण निधाय, कुशद्वयं प्रज्वाल्य हृन्मन्त्रेणाज्ये निक्षिप्य शेषमग्नौ निक्षिप्य, पुनर्दर्भद्वयं प्रज्वाल्य कवचमन्त्रेणाज्यस्थालीमभितः परिभ्राम्य दग्धशेषमग्नौ निक्षिप्य, पुनः कुशान् प्रज्वाल्य हृन्मन्त्रेणाज्ये प्रदर्श्य दग्धशेषमग्नौ निक्षिप्य, आज्यस्थालीमुद्धृत्य प्रादक्षिण्येन कुण्डं परितो भ्रामयन् आनीय स्वपुरतः कुशास्तरे निधाय, बाह्यस्थानङ्गारान् कुण्डमध्ये निक्षिप्य, अपः संस्पृश्याङ्गुष्ठानामिकाभ्यां करद्वयेन पवित्रं मूलाग्रे धृत्वा मन्त्रमुच्चरन् पवित्रमध्येन घृतमुत्पूय, हृन्मन्त्रमुच्चरन् तथैव पवित्रमध्येन स्वाभिमुखं घृतं त्रिः संप्लाव्य, तत्पवित्रमाज्यस्थाल्यां प्रागग्रं मध्ये निवेश्य, भागद्वयं कृत्वा दक्षिणभागं शुक्लपक्षं वामभागं कृष्णपक्षं परिकल्प्य, पुनस्तथैव वामभागे इडां दक्षिणभागे पिङ्गलां मध्ये सुषुम्नामिति नाडीत्रयं सञ्चिन्त्य, स्रुवेण दक्षिणभागात् हृन्मन्त्रेणाज्यमादाय 'अग्नये स्वाहा' इति वह्नेर्दक्षिणनेत्रे हुत्वा अग्नये इदं न मम, इत्युद्देशत्यागं विधाय, पुनर्हृन्मन्त्रेण वामभागादाज्यं गृहीत्वा 'सोमाय स्वाहा' इति वह्नेर्वामनेत्रे हुत्वा सोमाय इदं न मम, इत्युद्देशत्यागं विधाय, पुनर्हृदयमन्त्रेण मध्यादाज्यं गृहीत्वा 'ॐ अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा' इति वह्नेर्ललाटलोचने हुत्वा इदमग्नीषोमाभ्यां न मम, इत्युद्देशत्यागं कृत्वा, पुनर्दक्षिणभागाद्धृदाज्यं गृहीत्वा 'अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' इति वह्नेर्वक्त्रे हुत्वा अग्नये स्विष्टकृते इदं न मम, इत्युद्देशत्यागं विधाय 'ॐ भूः स्वाहा' अग्नये इदं न मम, 'ॐ भुवः स्वाहा' वायवे इदं न मम, 'ॐ स्वः स्वाहा' सूर्याय इदं न मम, 'ॐ भूर्भुवःस्वः स्वाहा' प्रजापतये इदं न मम, 'ॐ वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा' इति वह्निमन्त्रेण वारत्रयं हुत्वा अग्नये इदं न मम, इत्युद्देशत्यागं कृत्वा 'ॐ अग्नेर्गर्भाधानं सम्पादयामि स्वाहा' एवं पुंसवनं, सीमन्तोन्नयनम्, इति प्रतिकर्माज्याहुत्यष्टकं हुत्वा, वागीश्वराज्जातं वह्निं प्रागुक्तरूपं ध्यायन् 'अग्नेर्जातकर्म०' इत्यष्टावाज्याहुतीर्हुत्वा, वह्नेर्नालच्छेदं कृत्वा सूतकं संशोध्य 'वह्नेर्नामकरणं सम्पादयामि स्वाहा' इत्यष्टावाज्याहुतीर्हुत्वा शिवाग्निरिति तस्य नाम कृत्वा, 'ॐवह्नेरुपनिष्क्रमणं सम्पादयामि स्वाहा, अग्नेरन्नप्राशनं सम्पादयामि स्वाहा, अग्नेश्चौलं सम्पादयामि स्वाहा, अग्नेरुपनयनं सम्पादयामि स्वाहा, अग्नेर्महानाम्न्यं सम्पादयामि स्वाहा, अग्नेर्महाव्रतं सम्पादयामि स्वाहा, अग्नेरौपनिषदं सम्पादयामि स्वाहा, अग्नेर्गोदानं सम्पादयामि स्वाहा, अग्नेः समावर्तनं सं०, अग्नेरुद्वाहं सम्पादयामि स्वाहा' इति प्रतिकर्माष्टावाज्याहुतीर्हुत्वा, वह्नेर्गर्भाधानाद्युद्वाहान्तान् संस्कारान् विधाय, वह्नेः पितरौ देवदेव्यौ प्राग्वत् सम्पूज्य विसृज्य, मूलाग्रेषु घृतसंसिक्ताः पञ्च समिधस्तूष्णीमेकदैवाञ्जलिना वह्नौ समर्प्य, ॐ सरयूं हिरण्यायै स्वाहा, एवं षरयूं कनकायै स्वाहा, शरयूं रक्तायै स्वाहा, वरयूं कृष्णायै स्वाहा, लरयूं सुप्रभायै स्वाहा, ररयूं अतिरक्तायै स्वाहा, यरयूं बहुरूपायै स्वाहा, ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय स्वाहा, एवं स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा, उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै स्वाहा, धूमव्यापिने कवचाय स्वाहा, सप्तजिह्वाय नेत्रत्रयाय स्वाहा, धनुर्द्धराय अस्त्राय स्वाहा। ॐ अग्नये जातवेदसे स्वाहा, एवं अग्नये सप्तजिह्वाय स्वाहा, अग्नये हव्यवाहनाय स्वाहा, अग्नये अश्वोदराय स्वाहा, अग्नये वैश्वानराय स्वाहा, अग्नये कौमारतेजसे स्वाहा, अग्नये विश्वमुखाय स्वाहा, अग्नये देवमुखाय स्वाहा, इति जिह्वाङ्गमूर्तिमन्त्रैरेकैकामाहुतिं दत्त्वा, ॐ लं इन्द्राय स्वाहा, इन्द्राय इदं न मम, एवं अग्नये स्वाहा, यमाय स्वाहा, निर्ऋतये स्वाहा, वरुणाय स्वाहा, वायवे स्वाहा, कुवेराय स्वाहा, ईशानाय स्वाहा, ब्रह्मणे स्वाहा, अनन्ताय स्वाहा, वज्राय स्वाहा, शक्तये स्वाहा, दण्डाय स्वाहा, खड्गाय स्वाहा, पाशाय स्वाहा, अङ्कुशाय स्वाहा, गदायै स्वाहा, शूलाय स्वाहा, पद्माय स्वाहा, चक्राय स्वाहा। एवं तत्तन्नामभिरेकैकामाहुतिं हुत्वा सर्वत्र तत्तन्नामोद्देशत्यागं कुर्यात्। ततः स्रुवेणाज्यमादाय चतुर्वारं निक्षिप्याधोमुखं स्रुचो मुखे निधायोत्थाय, प्रागुक्तवह्निमन्त्रमुच्चार्य स्वाहास्थाने वौषडित्यग्नौ तिष्ठन् स्रुचा हुत्वोपविश्य, ॐ स्वाहा, ॐ श्रीं स्वाहा, ॐश्रींह्रीं स्वाहा, ॐश्रींह्रींक्लीं स्वाहा, ॐ श्रींह्रींक्लींग्लौं स्वाहा, ॐ श्रींह्रींक्लींग्लौंगं स्वाहा, ॐ श्रींह्रींक्लींग्लौंगं गणपतये स्वाहा, ॐ श्रींह्रींक्लींग्लौंगं गणपतये वरवरद स्वाहा, ॐ श्रींह्रींक्लींग्लौंगं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे स्वाहा,

ॐ श्रींह्रींक्लींग्लौंगं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा, इति दशधा विभक्तेन महागणपतिमन्त्रेण दशाहुतीर्हुत्वा, 'ॐ श्रींह्रींक्लींग्लौंगं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा' इति समस्तव्यस्तमन्त्रेण चतस्त्र आज्याहुतीर्जुहुयात्।

इत्यग्निस्थापनविधिः

पश्चिम परिघा में ॐ ब्रह्मणे नमः, दक्षिण परिघा में ॐ विष्णवे नमः, उत्तर परिघा में ॐ रुद्राय नमः से पूजा करे। अपने इष्ट देवता में दीक्षित ब्राह्मण को लाकर कुण्ड के दक्षिण भाग में कुशासन पर बैठाये। अमुक गोत्र, अमुक शर्मा अमुक गोत्र अमुक वेदान्तर्गत अमुक शास्त्राध्यायी अमुक शर्मा मैं इष्ट दीक्षा के अङ्गीभूत हवन कर्म में कृताकृत देखने के लिये ब्रह्मा के रूप में तुम्हें वरण करता हूँ—यह कहकर वस्त्रालङ्कार से वरण करे। ब्राह्मण के न होने पर कुशवटु का पूजन करे।

वह्निमन्त्र से अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय, मधुपर्क के पात्रों को स्थापित करे। संस्कृत करे। कुण्ड में षट्कोण-गर्भित केसर चतुर्द्वारयुक्त तीन चतुरस्र वेष्टित अष्टदल कमल को वह्नि की पूजापीठ बनाकर वहाँ पूर्वोक्त विधि से मण्डूकादि परतत्त्वान्त योगपीठ का अर्चन करे। अष्टदल के केसर में अपने आगे से प्रादक्षिण्यक्रम से पीतायै नमः, श्वेतायै नमः, अरुणायै नमः, कृष्णायै नमः, धूम्रायै नमः, तीव्रायै नमः, विस्फुलिङ्गिन्यै नमः, रुचिरायै नमः, ज्वालिन्यै नमः से मध्य तक नव शक्तियों की पूजा करे। रं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः से पूरे पीठ का पूजन करे। तदनन्तर उसमें इस प्रकार अग्नि का ध्यान करे—

करैर्वरस्वस्तिकशक्त्यभीतिर्दधानमम्भोजगतं त्रिनेत्रम्। सिन्दूरवर्णं तपनीयभूषं वह्निं जटाभूषितमौलिमीडे॥

ध्यान करने के बाद सप्तजिह्वा मुद्रा दिखाये।

'ॐ वैश्वानर जातवेद लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा अग्नये नमः' कहकर तीन पुष्पाञ्जलि से पूजा करे। पुनः वह्निमन्त्र कहकर 'अग्नये एतदासनं नमः, एष ते अर्घः स्वाहा, एतत्ते पाद्यं नमः, एतत्ते आचमनीयं स्वधा, एष ते मधुपर्कः स्वधा, एतत्ते पुनराचमनीयं स्वधा, एतत्ते स्नानं नमः—इस प्रकार पुरश्चरण मुख मूर्धादि सर्वांगों के उद्देश्य से मेखला के बाहर दूसरे पात्र में अर्घ्य पाद्यादि स्नान तक अग्नि अङ्गों की भावना करके स्थापित करे। पुनः आचमनीय देकर वस्त्र दान करे। पुनराचमनीय देकर यज्ञोपवीत देवे। पुनः आचमनीय देकर गन्ध-पुष्पादि का निवेदन करे। वह्निमन्त्र से आसन से लेकर पुष्प तक के उपचारों से पूजन करे। षट्कोण में देवाग्र कोण से प्रारम्भ करके मध्य तक इनकी पूजा करे—सरयूं हिरण्यायै नमः। षरयूं कनकायै नमः। शरयूं रक्तायै नमः। वरयूं कृष्णायै नमः। लरयूं प्रभायै नमः। ररयूं अतिरक्तायै नमः। यरयूं बहुरूपायै नमः।

अष्टदल के केसर में अग्नि-ईशान-नैर्ऋत्य-वायव्य, देवता के आगे तथा दिशाओं में षडङ्ग पूजन करे—ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः। ॐ स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा। ॐ उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै वषट्। ॐ धूमव्यापिने कवचाय हुम्। सप्तजिह्वाय नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ धनुर्धरायास्त्राय फट्। अष्टदल के आठ दलों में देवता के आगे से प्रारम्भ करके प्रादक्षिण्य क्रम से इस प्रकार पूजन करे—ॐ अग्नये जातवेदसे नमः। ॐ अग्नये सप्तजिह्वाय नमः। ॐ अग्नये हव्यवाहनाय नमः। ॐ अग्नये अश्वोदरजाय नमः। ॐ अग्नये वैश्वानराय नमः। ॐ अग्नये कौमारतेजसे नमः। ॐ अग्नये विश्वमुखाय नमः। ॐ अग्नये देवमुखाय नमः।

इसके बाहर चतुरस्र में अस्त्रों सहित इन्द्रादि का पूजन करे। पुनः वह्निमन्त्र से वह्नि की पूजा करे। धूप-दीपादि प्रदान करे, नैवेद्य लेकर अग्नि में डाले। पूर्ववत् आचमनीय देवे। स्रुक् स्रुव को अधोमुख करके अग्नि में तपाये। कुश के अग्रमध्य में, मध्य मूल में एवं मूल में मूल मन्त्र से तीन बार मार्जन कर अग्नि में डाल दे।

अपने दाँयें भाग में कुश पर स्रुक् स्रुव को रखे। आज्यस्थाली को अस्त्र मन्त्र से धोकर अपने आगे कुश पर रखे। उस पर एक वित्ता के दो कुशों में ब्रह्मगाँठ लगाकर उत्तराग्र करके रखे। दूसरे पात्र में दुर्गन्धादि-रहित गोघृत लेकर चार संस्कारों से संस्कृत करे। वं कहकर धेनुमुद्रा से अमृतीकरण करे। मूल मन्त्र के आठ जप से मन्त्रित करे, तब आज्यस्थाली में उसे डाल दे। कुण्ड से अङ्गार लेकर मेखला के बाहर भूमि पर वायव्य कोण में फेंक दे। उस आज्यस्थाली को हृन्मन्त्र से स्थापित करे। दो कुशों को आग में तपाकर घी में डाल दे। बचे घृत को आग में डाल दे। पुनः दो कुश तपाकर कवच मन्त्र से आज्यस्थाली के चारो ओर घुमाकर दग्ध शेष को आग में डाल दे। फिर कुशों को तपाकर हृन्मन्त्र से आज्य को दिखाकर दग्ध शेष को

अग्नि में डाल दे। आज्यस्थाली को लेकर प्रादक्षिण्य क्रम से कुण्ड के चारो ओर घुमाकर अपने आगे कुश पर रखे। कुण्ड में अङ्गारों को एकत्रित कर दे। दोनों हाथों के अंगूठा-अनामिका को सटाकर कुशों के मूल और अग्र को पकड़कर मन्त्रोच्चार करके कुश के मध्य से घृत को हिलाये। हृन्मन्त्र कहकर उसी प्रकार कुश मध्य से घी का अपनी ओर तीन बार संप्लावन करे। उस कुश को आज्यस्थाली मध्य में पूर्वाग्र रखकर घी को दो भाग बना दे। दक्षिण भाग को शुक्ल पक्ष एवं वाम भाग को कृष्ण पक्ष कल्पित करे। फिर उसमें वाम भाग में इड़ा, दक्षिण भाग में पिङ्गला और मध्य भाग में सुषुम्ना नाड़ियों का चिन्तन करे।

स्रुव से दक्षिण भाग से हृन्मन्त्र से आज्य लेकर 'अग्नये स्वाहा' से अग्नि के दक्षिण नेत्र में आहुति डाले और कहे— अग्नये इदं न मम। पुनः वाम भाग से आज्य लेकर 'सोमाय स्वाहा सोमाय इदं न मम' से अग्नि के वाम नेत्र में हवन करे। पुनः हृदय मन्त्र से मध्य आज्य लेकर 'ॐ अग्निषोमाभ्यां स्वाहा इदं अग्निषोमाभ्यां न मम' से अग्नि के तृतीय नेत्र में हवन करे। फिर दक्षिण भाग से आज्य लेकर 'अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा, अग्नये स्विष्टकृते इदं न मम' कहकर अग्नि के मुख में हवन करे। तब इस प्रकार से हवन करे—ॐ भू स्वाहा अग्नये इदं न मम। ॐ भुवः स्वाहा वायवे इदं न मम। ॐ स्वः स्वाहा सूर्याय इदं न मम। ॐ भूर्भुव स्वः स्वाहा प्रजापतये इदं न मम। पुनः वह्निमन्त्र से तीन हवन करे—ॐ वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्मणि साधय स्वाहा अग्नये इदं न मम। इसके बाद अग्नि का संस्कार इस प्रकार करे—ॐ अग्नये गर्भाधानसंस्कारं करोमि स्वाहा। इसी प्रकार पुंसवन, सीमन्तोन्नयन कर्म के लिये भी आठ-आठ आज्याहुति से हवन करे।

वागीश्वर से उत्पन्न अग्नि के पूर्वोक्त रूप का ध्यान करके 'अग्नेर्जातकर्म सम्पादयामि स्वाहा' से आठ आज्याहुति से हवन करे। अग्नि का नालच्छेद करके सूतक का संशोधन करे। 'वह्नेर्नामकरणं सम्पादयामि स्वाहा' से आठ आहुतियाँ प्रदान करे। उसका नाम शिवाग्नि रखकर आगे का संस्कार करे। ॐ वह्नेर्निष्क्रमणं सम्पादयामि स्वाहा। अग्नेरन्नप्राशनं सम्पादयामि स्वाहा, अग्नेश्चौलं सम्पादयामि स्वाहा, अग्नेरुपनयनं सम्पादयामि स्वाहा, अग्नेर्महानाम्न्यं सम्पादयामि स्वाहा, अग्नेर्महाव्रतं सम्पादयामि स्वाहा, अग्नेरौपनिषदं सम्पादयामि स्वाहा, अग्नेर्गोदानं सम्पादयामि स्वाहा, अग्नेः समावर्तनं सम्पादयामि स्वाहा, अग्नेरुद्वाहं सम्पादयामि स्वाहा से प्रत्येक के लिये आठ-आठ आहुतियों से हवन करे। अग्नि के गर्भाधान से उद्वाह तक के संस्कारों को करे। अग्नि के पितरों एवं देव-देवी का पूर्ववत् पूजन करके विजर्सन करे। पाँच समिधाओं के दोनों छोरों को घी से संसिक्त करके एक अञ्जली में लेकर मौन होकर अग्नि में प्रक्षिप्त करे। तब निम्न प्रकार से हवन करे—

सप्तजिह्वाओं का हवन—ॐ सरयूं हिरण्यायै स्वाहा। इसी प्रकार षरयू कनकायै स्वाहा, शरयूं रक्तायै स्वाहा, वरयूं कृष्णायै स्वाहा, लरयूं सुप्रभायै स्वाहा, ररयूं अतिरक्तायै स्वाहा, यरयूं बहुरूपायै स्वाहा।

अङ्गों के लिये हवन—ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय स्वाहा। इसी प्रकार स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा। उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै स्वाहा। धूमव्यापिने कवचाय स्वाहा। सप्तजिह्वाय नेत्रत्रयाय स्वाहा। धनुर्धराय अस्त्राय स्वाहा।

मूर्तियों के लिये हवन—ॐ अग्नये जातवेदसे स्वाहा। इसी प्रकार अग्नये सप्तजिह्वाय स्वाहा, अग्नये हव्यवाहनाय स्वाहा, अग्नये अश्वोदराय स्वाहा, अग्नये वैश्वानराय स्वाहा, अग्नये कौमारतेजसे स्वाहा, अग्नये विश्वमुखाय स्वाहा, अग्नये देवमुखाय स्वाहा। जिह्वा, अङ्ग, मूर्तिमन्त्रों से एक-एक आहुति प्रदान करे।

तब दश दिक्पालों और उनके दश अस्त्रों के लिये एक-एक आहुति से हवन करे—ॐ लं इन्द्राय स्वाहा इन्द्राय इदं न मम। इसी प्रकार अग्नये स्वाहा अग्नये इदं न मम, यमाय स्वाहा यमाय इदं न मम, निर्ऋतये स्वाहा निर्ऋतये इदं न मम, वरुणाय स्वाहा वरुणाय इदं न मम, वायवे स्वाहा वायवे इदं न मम, कुबेराय स्वाहा कुबेराय इदं न मम, ईशानाय स्वाहा ईशानाय इदं न मम, ब्रह्मणे स्वाहा ब्रह्मणे इदं न मम, अनन्ताय स्वाहा अनन्ताय इदं न मम, वज्राय स्वाहा वज्राय इदं न मम, शक्तये स्वाहा शक्तये इदं न मम, दण्डाय स्वाहा दण्डाय इदं न मम, खड्गाय स्वाहा खड्गाय इदं न मम, पाशाय स्वाहा पाशाय इदं न मम, अङ्कुशाय स्वाहा अङ्कुशाय इदं न मम, गदायै स्वाहा गदायै इदं न मम, शूलाय स्वाहा शूलाय इदं न मम, पद्माय स्वाहा पद्माय इदं न मम, चक्राय स्वाहा चक्राय इदं न मम। इस प्रकार उन-उन नामों से एक-एक आहुति देकर सर्वत्र उनके-उनके उद्देश्य से क्षेत्र-निर्धारण करे।

इनसे हवन के बाद स्रुव से आज्य लेकर चार बार निक्षेप करके चारो बार स्रुव को अधोमुख करके स्रुचा के मुख पर रखकर उसे उठाकर पूर्वोक्त अग्निमन्त्र में स्वाहा के स्थान पर वौषट् कहकर हवन करे—ॐ स्वाहा, ॐ श्रीं स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वरवरद स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा। इस प्रकार महागणपति मन्त्र के दश भागों से दश आहुति से हवन करे। 'ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा' के समस्त व्यस्त मन्त्र से चार आज्य आहुतियाँ प्रदान करे। इस प्रकार अग्निस्थापन विधि पूर्ण होती है।

इत्थमग्निस्थापनं विधाय नूतनताम्रादिपात्रमस्त्रमन्त्रेण प्रक्षाल्य, तत्र मूलमन्त्रेणाष्टधाभिमन्त्रितांस्तण्डुलान् पञ्चदशप्रसृतिमितान् त्रिःप्रक्षालितानस्त्रमन्त्रं जपन्निक्षिप्य, तत्र गोदुग्धं वाष्पं यावत्तावत् पक्वं भवति तावन्निक्षिप्य, प्रक्षालितेन पात्रेण कवचमन्त्रमुच्चरन् तत्पात्रवदनं पिधाय यदा तद्दुग्धं वाष्पवशादुपर्यायाति तदा मेक्षणेन प्रदक्षिण-मूर्ध्वमवघट्टयन् मूलमन्त्रं स्मरन् प्राङ्मुखो गुरुश्चरुं पाचित्वा, शृते तस्मिन् मूलमन्त्रेणाज्यं स्रुवेण निक्षिप्य कवचमन्त्रेण तत्पात्रमवतार्य अस्त्रमन्त्रेणाभिमन्त्रितं कुशास्तरे चरुं निक्षिप्य त्रिधा विभज्यैकं भागं देवाय कुम्भस्थाय निवेद्य, मण्डपपरितः पूर्वमङ्कुरार्पणकर्मणि कृताङ्कुरभाजनानि निक्षिप्य, घृतपूर्णान् पिष्टमयदीपांश्च निधाय, कुण्डसमीपं गत्वा स्वासने समुपविश्य, तत्र वक्ष्यमाणविधिना मूलमन्त्रेणार्घ्यादिपात्रस्थापनं विधाय, कुण्डमध्ये वह्नेर्मुखे पूजाचक्रं विभाव्य, तत्र वक्ष्यमाणविधिना मण्डूकादिपीठमन्वन्तं सम्पूज्य, तत्र देवतामावाह्य वक्ष्यमाणविधिना साङ्गं सावरणं सर्वोपचारैः पूजयेत्। अत्रार्घ्यादिस्नानान्तमग्निपूजावदेव कुण्डाद्बहिः पात्रान्तरे देवमुद्दिश्य कल्पयेत्। अन्यत्सर्वं कुण्डमध्ये एव कल्पयेत्। ततो मूलमन्त्रेण वह्निदेवतयोर्वक्त्रैकीकरणार्थं पञ्चविंशत्याज्याहुतीर्हुत्वा, स्वात्माग्निदेवतानामैक्यं विभावयन् मूलेन नाडीसन्धानार्थमेकादशवारं घृतैर्हुत्वा, षडङ्गावरणदेवतानामेकैकामाहुतिं हुत्वा, प्राङ्निर्मितचरोस्तृतीयांशं नवधा विभज्यैकांशेन मूलेन पञ्चविंशतिधा हुत्वा, प्रागादिदिक्स्थकुण्डेषु ऋत्विग्भिः प्रागुक्तविधिनाष्टादशसंस्कारैः संस्कृतेषु गुरुः स्वकुण्डादग्निमुद्धृत्योद्धृत्य निक्षिपेत्। ऋत्विजश्च स्वस्वकुण्डे वह्निं प्रागुक्तविधिना प्रज्वाल्योपस्थाय परिषेचनपरिस्तरणपरिधिप्रक्षेपणपूजादिभिः सम्यक्परितोष्य, समिद्धे तस्मिन् स्वेष्टदेवतानित्यपूजोक्तविधिना देवमावाह्य, ताम्बूलान्तैरुपचारैः सम्यक् सम्पूज्य वक्त्रैकीकरणनाडीसन्धानाङ्गावरणहोमान्ते मूलमन्त्रेण गुरुणा विभज्य दत्तेन घृतमिश्रेण पायसेन पञ्चविंशतिधा स्वस्वकुण्डे जुहुयुः।

अग्नि-स्थापन के बाद नये ताम्रादि पात्र को अस्त्र मन्त्र से प्रक्षालित करे। मूल मन्त्र के आठ जप से अभिमन्त्रित पन्द्रह अञ्जुली चावल तीन बार प्रक्षालित करके अस्त्रमन्त्र जपकर पात्र में डाले। उसमें गाय का दूध डालकर तब तक पकाये जब तक वाष्प एवं फेन रहे। प्रक्षालित पात्र से कवच मन्त्र कहकर उसके मुख को खोलकर वाष्पफेन के ऊपर आने तक अर्थात् उबाल आने तक उसे देखे। प्रदक्षिण क्रम से उसे चलाये। मूलमन्त्र का स्मरण करते हुये पूर्वमुख होकर गुरु चरु को पकाये। मूलमन्त्र से स्रुवा के द्वारा उसमें आज्य डाले। कवच मन्त्र से उस पात्र को उतार कर अस्त्र मन्त्र से मन्त्रित करे। चरु को कुश पर रखे। उसका तीन भाग करे। एक भाग कुम्भस्थ देवता को निवेदित करे। एक भाग को मण्डप के बाहर पूर्व अङ्कुरार्पण के पात्रों में डाल दे। पिष्टनिर्मित दीपक में घी भरकर रखे। कुण्ड के समीप जाय। अपने आसन पर बैठे। वहाँ वक्ष्यमाण विधि से मूल मन्त्र से अर्घ्य आदि पात्र-स्थापन करे। कुण्डमध्य में अग्निमुख में पूजाचक्र की भावना करे। उसमें मण्डूकादि पीठमन्त्रों से पूजा करे। उसमें देवता को आवाहित करे। वक्ष्यमाण विधि से साङ्ग, सपरिवार देवता का पूजन सभी उपचारों से करे। अर्घ्यादि स्नानपात्र अग्निपूजा के समान कुण्ड के बाहर दूसरे पात्रों में कल्पित करे। अन्य सब कुण्ड के मध्य में ही कल्पित करे। तब मूल मन्त्र से अग्निदेवता के मुखों को एकीकरण के लिये पच्चीस घी की आहुतियाँ डाले। अपने और अग्नि में ऐक्य की भावना करे। मूल मन्त्र से नाड़ीसन्धान के लिये ग्यारह घृताहुतियाँ डाले। षडङ्गावरण देवताओं को एक-एक आहुति प्रदान करे। पूर्वनिर्मित चरु के तृतीयांश का नव भाग करे। एक अंश से पच्चीस हवन मूल मन्त्र से करे।

प्राच्यादि दिशाओं में स्थित कुण्डों में ऋत्विज पूर्वोक्त विधि से अट्ठारह संस्कार करे। संस्कृत कुण्डों में गुरु अपने कुण्ड से अग्नि निकालकर डाले। ऋत्विज भी अपने-अपने कुण्डों में पूर्वोक्त विधि से अग्नि प्रज्वलित करे। उपस्थान करे। परिषेचन, परिस्तरण, परिधि, प्रक्षेपण, पूजादि से सम्यक् परितुष्ट करे। उसमें स्वेष्ट देवता का नित्य पूजोक्त विधि से आवाहन करे। ताम्बूलान्त तक उपचारों से सम्यक् पूजा करे। वक्त्र एकीकरण, नाड़ी-सन्धान, अङ्गावरण एवं हवन के अन्त में गुरु से प्राप्त घृत-मिश्रित पायस से मूल मन्त्र के द्वारा पच्चीस आहुतियों से अपने-अपने कुण्डों में हवन करे।

पूर्वादिदिक्षु बलिदानम्

अथ गुरुः सर्वतोभद्रमण्डलस्य पूर्वादिवीथीचतुष्टये मेषादिराशिस्थानेषु, प्राच्यां मेषवृषौ, आग्नेय्यां मिथुनं, दक्षिणे कर्कटसिंहौ, नैर्ऋते कन्यां, पश्चिमे तुलावृश्चिकौ, वायव्ये धनुः, उत्तरे मकरकुम्भौ, ईशाने मीनः, इति विभक्तेषु राशिस्थानेषु राश्यधिनाथेभ्यो ग्रहेभ्यो नक्षत्रेभ्यः करणेभ्यश्च हुतशेषेण पायसेन बलिं दद्यात्। यथा—मेषवृश्चिकस्थानयोः कंखंगंघंङं मेषवृश्चिकराश्यधिपतये मङ्गलाय एष गन्धपुष्पा क्षतयुक्तः पायसबलिर्नमः। एवं चं ५ वृषतुलाराश्यधिपतये शुक्राय एष०। टं ५ मिथुनकन्याराश्यधिपतये बुधाय एष०। यं १० कर्कटराश्यधिपतये सोमाय एष०। अं १६ सिंहराश्यधिपतये सूर्याय एष०। तं ५ धनुर्मीनाधिपतये गुरवे एष०। पं० ५ मकरकुम्भाधिपतये शनैश्चराय एष गन्धपुष्पाक्षतयुक्तः पायसबलिर्नमः। पुनः क्रमेण मेषादिस्थानेषु मेषराश्यंशभूताश्विनीभरणीकृत्तिकापादनक्षत्रदेवताभ्यो दिवानक्तंचरेभ्यः सर्वेभ्यो भूतेभ्यः एष गन्ध० इत्यादि प्राग्वत्। एवं वृषराश्यंशभूतकृत्तिकापादत्रयरोहिणीमृगशिरोर्धनक्षत्रदेवताभ्यो०। मिथुनराश्यंशभूतमृगशिरउत्तरार्धाद्रापुनर्वसुपादत्रयनक्षत्रदेवताभ्यो०। एवमग्रेऽपि मन्त्रा ऊह्याः। ततो मीनमेषयोरन्तराले ववकरणाय एष० इत्यादि। एवं वृषमिथुनयोरन्तराले वालवाय एष०। मिथुनकर्कयोर्मध्ये कौलवाय०। सिंहकन्ययोर्मध्ये तैतिलाय०। कन्यातुलयोर्मध्ये गराय०। वृश्चिकधन्वोर्मध्ये वणिजे०। धनुर्मकरयोर्मध्ये विष्टये एष गन्धाक्षतपुष्पयुतपायसबलिर्नमः, इति बलिं दद्यात्। अत्र राशिद्वयाधिपतीनां राशिद्वयस्थानेऽपि बलिर्देयः इति सम्प्रदायः। ततो गुरुः कुम्भस्थाय देवायोत्तरापोशानादिनीराजनान्तं वक्ष्यमाणविधिना कृत्वा स्तुत्वा प्रणम्य क्षमापयेत्। ततस्तृतीयं भागं शिष्येण सह गुरुर्भुक्त्वा स्वयमाचान्तः स्वाचान्ताय शिष्याय षडङ्गन्यासयोगेन सकलीकृताय प्रादेशमात्रं यथोक्तहृन्मन्त्रेणाष्टधाभिमन्त्रितं दन्तकाष्ठं दद्यात्। शिष्योऽपि तेन दन्तधावनं विधाय, दन्तकाष्ठं प्रक्षाल्य पुरतः परित्यज्याचम्य गुरोः समीपं गच्छेत्। ततो गुरुः शिष्यं शिखाबन्धनेन मूलमन्त्राभिमन्त्रितेन संरक्ष्य, तेन सार्धं वेद्यां कुशास्तरणे तस्यां रात्रौ शयनं कुर्यादित्यधिवासः।

अत्र प्राक्प्रोक्तविधिनोर्ध्वाम्नायाद्याम्नायदेवतानां दीक्षायां तत्तन्मन्त्रहोमस्तत्तद्देवतापूजनक्रम ऋत्विग्भिर्विधेयः। नगग्रहपूजा तु आगमोक्तैर्वैदिकमन्त्रैर्वा विधेया ईशानकोणवेद्यां पृथगेवेति सम्प्रदायः। 'पञ्चषट्कूटविद्याभ्यां शोधितं बहुवासरैः' इति क्रमे प्रोक्तक्रमेणैव दीक्षाप्रयोगक्रमः साधीयान् तत्राङ्गत्वेनान्यमन्त्राकथनात्। षड्दर्शनाङ्गभूतप्रधानविद्यादीक्षाविधौ तु षड्दर्शनेष्वङ्गत्वेन ये ये मन्त्रा अभिहितास्तद्रीत्यैवर्त्विक्सामयिकैर्होमजपपूजादयो विधेयाः। गुरुणापि तथैव साङ्गोपाङ्गपूर्णरूपेणोपदेशः कार्यः। पूर्णाभिषेकविधिमग्रे तत्प्रकरणे वक्ष्यामः। वैदिकदर्शनप्राधान्येन यत्रोपदेशस्तत्र श्रुतिस्मृत्युक्तविधिनैव विशेषो बोद्धव्यः, अन्यत्साम्यम्।

तदनन्तर गुरु सर्वतोभद्र मण्डल-स्थित देवताओं का पूजन करे। पूर्वादि वीथिचतुष्टय में, मेषादि राशिस्थानों में, पूरब में मेष-वृष को, आग्नेय में मिथुन को, दक्षिण में कर्क-सिंह को, नैर्ऋत्य में कन्या को, पश्चिम में तुला-वृश्चिक को, वायव्य में धनु को, उत्तर में मकर-कुम्भ को, ईशान में मीन को बलि प्रदान करे। विभक्त राशिस्थानों में 'राश्यधिनाथेभ्यो ग्रहेभ्यो नक्षत्रेभ्यो करणेभ्यश्च' कहकर हुतशेष पायस से बलि प्रदान करे। जैसे—

मेष-वृश्चिक स्थान में कं खं गं घं ङं मेषवृश्चिकराश्यधिपतये मङ्गलाय एष गन्धपुष्पाक्षतयुक्तः पायसबलिर्नमः। इसी प्रकार चं छं जं झं ञं वृषतुलाराश्यधिपतये शुक्राय एष गन्धाक्षतपुष्पयुक्तः पायसबलिर्नमः। टं ठं डं ढं णं मिथुनकन्या-

राश्यधिपतये बुधाय एष गन्धाक्षतपुष्पयुक्त: पायसबलिर्नम:। यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं कर्कटराश्यधिपतये सोमाय एष गन्धाक्षतपुष्पयुक्त: पायसबलिर्नम:। अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अ: सिंहराश्यधिपतये सूर्याय एष गन्धाक्षतपुष्पयुक्त: पायसबलिर्नम:। तं थं दं धं नं धनुर्मीनाधिपतये गुरवे एष गन्धाक्षतपुष्पयुक्त: पायसबलिर्नम:। पं फं वं भं मं मकरकुम्भाधिपतये शनैश्चराय एष गन्धपुष्पाक्षतयुक्त: पायसबलिर्नम:।

पुन: क्रम से मेषादि स्थानों में मेषराश्यंशभूताश्विनीभरणीकृत्तिकापादनक्षत्रदेवताभ्यो दिवानक्तञ्चरेभ्य: सर्वेभ्यो भूतेभ्य: एष गन्धाक्षतपुष्पयुक्त: पायसबलिर्नम:, वृषराश्यंशभूतकृत्तिकापादत्रयरोहिणीमृगशिरोर्धनक्षत्रदेवताभ्यो दिवानक्तञ्चरेभ्यो सर्वेभ्यो भूतेभ्य: एष गन्धाक्षतपुष्पयुक्त: पायसबलिर्नम:, मिथुनराश्यंशभूतमृगशिर उत्तरार्ध आर्द्रा पुनर्वसुपादत्रयनक्षत्रदेवताभ्यो दिवानक्तञ्चरेभ्यो सर्वेभ्यो भूतेभ्य: एष गन्धाक्षतपुष्पयुक्त: पायस बलिर्नम: कहकर बलि प्रदान करे। इसी प्रकार आगे भी तत्तत् मन्त्रों से नक्षत्र-देवताओं को बलि दे। तब मीन-मेष के अन्तराल में ववकरणाय एष०। वृष-मिथुन अन्तराल में बालवाय० एष०। मिथुन-कर्क के मध्य में कौलवाय०। सिंह-कन्या के मध्य में तैतिलाय०। कन्या-तुला के मध्य में गराय०। वृश्चिक-धनु के मध्य में वणिजे०। धनु मकर के मध्य में विष्टये एष गन्धाक्षतपुष्पयुतपायसबलिर्नम:—इस प्रकार बलिदान देवे। यहाँ दो राशियों के अधिपतियों को राशिद्वय स्थानों में भी बलि देनी चाहिये, यही सम्प्रदायगत सिद्धान्त है।

तब गुरु कुम्भस्थ देवता को उत्तरापोशनादि से नीराजन तक वक्ष्यमाण विधि से पूजा करके स्तुति करके क्षमापन करे। तब तृतीय भाग को गुरु शिष्य के सहित खाकर स्वयं आचमन करके आचमन किये हुये शिष्य को षडङ्ग न्यासयोग से सकलीकरण किये हुये वित्ताभर के दतुवन को हृन्मन्त्र के आठ जप से मन्त्रित करके प्रदान करे। शिष्य भी दतुवन करके दतुवन को धोकर अपने सामने फेंक दे। तदनन्तर आचमन करके गुरु के निकट जाय। तब गुरु शिष्य के शिखाबन्धन को मूलमन्त्र से अभिमन्त्रित करके संरक्षित करे। शिष्य के साथ वेदी के बगल में गुरु कुश पर ही उस रात्रि में शयन करे। यही अधिवास की प्रक्रिया होती है।

गणेशपूजा

अथ वैदिकदर्शनदीक्षाया आदौ गणाधिपपूजादिमण्डपपूजाप्रयोग:। तत्रादौ गणेशपूजा:—यजमान आसनोपर्य्युपविश्याचम्य प्राणायामत्रयं कृत्वा, कुशाक्षतान् हस्ते गृहीत्वा सङ्कल्पं कुर्यात्। तद्यथा—अद्येत्यादिमासपक्षाद्युल्लेखानन्तरं करिष्यमाणामुकदेवतामन्त्रदीक्षाकर्मणि प्रत्यूहशान्तये गणपतिपूजनमहं करिष्ये, इति सङ्कल्प्यावाहनादिषोडशोपचारै: 'गणानां त्वा' इति मन्त्रेण गणपतिं सम्पूज्य बद्धाञ्जलि: प्रार्थयेत्।

वक्रतुण्ड महाकाय सूर्यकोटिसमप्रभ। अविघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा ॥१॥
पूजा सम्पूर्णतां यातु वाचयित्वा विसर्जयेत्। इति।

गणपति-पूजा—वैदिक दर्शन दीक्षा में पहले गणाधिप पूजादि करके मण्डप पूजा करे। यजमान आसन पर बैठकर आचमन करके तीन प्राणायाम करे। हाथ में कुश-अक्षत लेकर सङ्कल्प करे; जैसे—अद्येत्यादि कहकर मास-पक्ष आदि का उल्लेख करते हुये 'करिष्यमाणामुकदेवतामन्त्रदीक्षाकर्मणि प्रत्यूहशान्तये गणपतिपूजनमहं करिष्ये' कहे। सङ्कल्प-आवाहनादि षोडशोपचार से 'गणानां त्वा' मन्त्र से गणपति का पूजन कर हाथ जोड़कर प्रार्थना करे—

वक्रतुण्ड महाकाय सूर्यकोटिसमप्रभ। अविघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा॥

'पूजा सम्पूर्णतां यातु' कहकर विसर्जन कर दे।

गौर्यादिमातृकापूजा

तत: पीठेऽक्षतपुञ्जेषु गौर्यादिषोडशमातृका ब्राह्म्यादिसप्तमातृकाश्च पूजयेत्। तास्तु—

गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया। देवसेना स्वधा स्वाहा मातरो लोकमातर: ॥१॥
धृतिस्तुष्टिस्तथा पुष्टिरात्मन: कुलदेवता। ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा ॥२॥

वाराही च तथेन्द्राणी चामुण्डा सप्त मातरः । इति।

पूजाप्रकारस्तु—पूजोपकरणान्युपकल्प्य प्राङ्मुख उपविश्य कुशयवतिलान्यादय, अद्येहेत्यादि० करिष्यमाणमन्त्रदीक्षाङ्गभूततया गौर्यादिषोडशमातृपूजनं ब्राह्म्यादिसप्तमातृपूजनं च करिष्ये, इति सङ्कल्प्य, अक्षतैः 'ॐ भूर्भुवःस्वः गौरीहागच्छ इह तिष्ठे'त्यावाह्य स्वशाखोक्तमन्त्रेण प्रतिष्ठाप्य गौर्यै नमः, इदमासनमित्यादिरीत्या पदार्थानुसमयेन सर्वाः प्रत्येकमुत्तरसंस्थाः पूज्याः। एवं ब्राह्म्याद्या अपि। यदा तु मातॄणां गणदेवतात्वं तदा प्रत्येकं नाम गृहीत्वा गौर्यादिभ्य इति चोक्त्वा युगपत्पूजयेत्, एवं ब्राह्म्याद्या अपि। ततः स्वाचारतो 'वसोः पवित्रमसी'ति कुण्ड्यलग्नाः पञ्च सप्त वा घृतेन धाराः कुर्यात्। तत्पूजनमपि केचिदाहुः। ततः शान्तिपाठः। ततो यथाचारं वृद्धिश्राद्धं सङ्कल्पपूर्वकं स्वशाखोक्तं कुर्यात्।

गौरी आदि मातृका-पूजा—तब पीठ पर अक्षतपुंज से गौर्यादि षोडश मातृका एवं ब्राह्मी आदि सप्त मातृकाओं का पूजन करे। षोडश मातृकाओं में गौरी, पद्मा, शचि, मेधा, सावित्री, विजया, जया, देवसेना, स्वधा, स्वाहा, मातृ, लोकमातृ, धृति, तुष्टि, पुष्टि और कुलदेवता आते हैं। सप्तमातृका में ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी और चामुण्डा आती हैं।

पूजा-प्रकार—पूजोपकरण जुटाकर पूर्वमुख बैठे। हाथ में कुश-यव-तिल आदि लेकर सङ्कल्प करे--'अद्येहेत्यादि० करिष्यमाणमन्त्रदीक्षाङ्गभूततया गौर्यादिषोडशमातृपूजनं ब्राह्म्यादिसप्तमातृपूजनं च करिष्ये'। अक्षत से ॐ भूर्भुवः स्वः गौरी इहागच्छ इह तिष्ठ कहकर आवाहन करे। स्वशाखोक्त मन्त्र से प्रतिष्ठा करे। 'गौर्यै नमः इदं आसनं' इत्यादि रीति से उपलब्ध उपचारों से प्रत्येक का पूजन उत्तरोत्तर संस्थित रूप में करे। इसी प्रकार ब्राह्मी आदि का भी पूजन करे। जहाँ मातृकाओं का गणदेवतात्व है, वहाँ प्रत्येक का नाम लेकर गौर्यादिभ्य कहकर एक साथ पूजा करे। इसी प्रकार ब्राह्मी आदि का भी पूजन करे। तब अपने आचारानुसार 'वसोः पवित्रमसि' से कुण्डी में पाँच या सात घृतधार डाले। तब शान्तिपाठ करे। तब यथाचार सङ्कल्पपूर्वक वृद्धिश्राद्ध स्वशाखोक्त विधि से करे।

पुण्याहवाचनम्

ततः पुण्याहवाचनम्—तच्चावनिकृतजानुमण्डल इत्यादि पुण्याहं भवन्तो ब्रुवन्त्विति त्रीन् ब्राह्मणान् श्रावयेत्। ते च पुण्याहमिति त्रिः प्रतिब्रूयुः। ॐ स्वस्ति भवन्तो ब्रुवन्त्विति त्रिः। ॐ स्वस्ति इति त्रिः प्रतिवचनम्। ॐ ऋद्धिं भवन्तो ब्रुवन्त्विति त्रिः। ॐ ऋध्यतामिति त्रिः प्रतिवचनम्। ततो मण्डपाद्बहिः पश्चिमदेशे उपलिप्ते यजमानः प्राङ्मुख उपविश्याचम्य प्राणानायम्य, अद्येहेत्यादि अमुकदेवतामन्त्रदीक्षाकर्मकर्तुमाचार्यर्त्विजां वरणमहं करिष्ये इति सङ्कल्प्य, आचार्यमुदङ्मुखमुपवेश्य सिताम्बरहेमकुण्डलसूत्रकेयूरकण्ठाभरणाभिरामं कृत्वा बद्धाञ्जलिः, 'दीक्षादाने त्वं मे गुरुर्भव' इति प्रार्थ्य, भवानि इति तेनोक्ते, अमुकप्रवरान्वितामुकगोत्रममुकवेदान्तर्गतामुकशाखाध्यायिनममुकशर्माणममुकप्रवरान्वितामुकगोत्रोऽमुकशर्माहम् एभिर्गन्धपुष्पाक्षतताम्बूलहेमाभरणाङ्गुलीयकवासोभिरमुकमन्त्रदीक्षादाने गुरुत्वेन त्वां वृणे। वृतोऽस्मीति स वदेत्। एवं पूर्वकुण्डे गायत्रीहोमार्थमेकमाग्नेयदक्षिणनैर्ऋतपश्चिमवायव्यसौम्येशानकुण्डेषु होमार्थं सप्त ब्राह्मणान्, एवं नव ब्राह्मणान् वृणुयात्। ततः पूर्वद्वारपालनार्थं द्वावृग्वेदिनौ, दक्षिणद्वारपालनार्थं द्वौ यजुर्वेदिनौ, पश्चिमद्वारपालनार्थं द्वौ सामगौ, उत्तरद्वारपालनार्थं द्वावथर्वाणौ, एवमष्टौ पृथक्पृथग्वृणुयात्। वरणवाक्यं प्राग्वदेव। एवं पुस्तकाचार्यं वृणुयात्। अत्र द्वारपालकास्तु सर्वदर्शनसाधारणाः। ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लमाल्यानुलेपनः सपत्नीकः सशिष्यर्त्विक् आचार्यो मङ्गलघोषे जायमाने सम्पूर्णकलशहस्तो 'भद्रं कर्णेभिः' इत्यादिमन्त्रघोषेण मण्डपं प्रदक्षिणीकृत्य, पश्चिमद्वारेण प्रविश्य मण्डपान्तः पश्चिमदेशे उपविश्याचम्य प्राणानायम्य, देशकालौ स्मृत्वा करिष्यमाणदीक्षादानाङ्गतया अद्य गणेशपूजामण्डपदेवतास्थापनादि करिष्ये, इति सङ्कल्प्य षोडशोपचारैर्गणेशं प्रपूज्य गौरसर्षपान् सर्वतो मण्डपान्तर्विकिरेत्। तत्र मन्त्रा रक्षोघ्नाः—

यदत्र संश्रितं भूतं स्थानमाश्रित्य सर्वदा। स्थानं त्यक्त्वा तु तत्सर्वं यत्रस्थं तत्र गच्छतु ॥१॥
अपक्रामन्तु भूतानि पिशाचाः सर्वतो दिशम्। सर्वेषामविरोधेन ब्रह्मकर्म समारभे ॥२॥

इति पञ्चगव्येन कुशैः सर्वत्र सर्वतः प्रोक्षयेत् 'शुचि वो हव्ये'ति 'आपो हि ष्ठे'ति ऋचा। ततः कृताञ्जलिः स्वस्त्ययनं तार्क्ष्यमिति मन्त्रद्वयं जपेत्।

तदनन्तर पुण्याहवाचन करने के लिये तीन ब्राह्मणों से कहे। तीन बार 'पुण्याहवाचन किया' ऐसा वे ब्राह्मण कहें। तदनन्तर यजमान उनसे तीन बार 'कल्याण हों' कहने के लिये कहे और वे ब्राह्मण भी उसका उत्तर दें। तदनन्तर उनसे अपनी समृद्धि की कामना करने के लिये कहे और वे ब्राह्मण भी वैसा ही करें। तब मण्डप के बाहर पश्चिम में उपलिप्त भूमि पर यजमान पूर्वमुख बैठे। आचमन प्राणायाम करे। 'अद्येहेत्यादि अमुकदेवतामन्त्रदीक्षाकर्मकर्तुमाचार्यर्त्विजां वरणमहं करिष्ये' कहकर सङ्कल्प करे। आचार्य को उत्तरमुख बैठाकर श्वेत वस्त्र सोने का कुण्डल, सूत्र, केयूर, कण्ठाभरण देकर हाथ जोड़कर कहे—'दीक्षादाने त्वं मे गुरुर्भव'। 'गुरुं भवानि' ऐसा गुरु के कहने पर शिष्य अमुकप्रवरान्वित-अमुकगोत्रममुकवेदान्तर्गतामुकशाखाध्ययिनममुकशर्माणममुकप्रवरान्वितामुकगोत्रोऽमुकशर्माहम् एभिर्गन्धपुष्पाक्षतताम्बूलहेमाभरणाङ्गुलियकवासोभिः अमुकमन्त्रदीक्षादाने गुरुत्वेन त्वां वृणे' कहे। तब गुरु कहे—वृतोस्मि। पूर्वकुण्ड में गायत्री हवन के लिये एक एवं आग्नेय दक्षिण नैर्ऋत्य पश्चिम वायव्य सौम्य ईशान कुण्डों में हवन के लिये सात ब्राह्मणों के साथ कुल नव ब्राह्मणों का वरण करे। तब पूर्व द्वारपाल के लिये दो ऋग्वेदियों, दक्षिण द्वारपाल के लिये दो यजुर्वेदियों, पश्चिम द्वारपाल के लिये दो सामवेदियों एवं उत्तर द्वारपाल के लिये दो अथर्ववेदिभ्यो अलग-अलग वरण करे। इसी प्रकार पुस्तकाचार्य का वरण करे। यहाँ द्वारपालक सर्वदर्शनसाधारण होते हैं। तब श्वेत वस्त्रधारी श्वेत माला अनुलेपनयुक्त सपत्नीक सशिष्य ऋत्विक आचार्य मङ्गल घोष करके सम्पूर्ण कलश हाथ में लेकर भद्रं कर्णेभिः इत्यादि मन्त्रघोष करते हुए मण्डप की प्रदक्षिणा करे। तब पश्चिम द्वार से मण्डप में प्रवेश करके पश्चिम देश में बैठकर आचमन प्राणायाम कर देश-काल का स्मरण करके कहे—करिष्यमाणदीक्षादानाङ्गतया अद्य गणेशपूजामण्डपदेवतास्थापनादि करिष्ये। ऐसा सङ्कल्प करके षोडशोपचारों से गणेश की पूजा करके पीले सरसों को मण्डप में बिखेर दे। तदनन्तर निम्न रक्षोघ्न मन्त्र का पाठ करे—

यदत्र संश्रितं भूतं स्थानमाश्रित्य सर्वदा। स्थानं त्यक्त्वा तु तत्सर्वं यत्रस्थं तत्र गच्छतु।
अपक्रामन्तु भूतानि पिशाचाः सर्वतो दिशम्। सर्वेषामविरोधेन ब्रह्मकर्म समारभे।

कुशों से पञ्चगव्य से सभी ओर प्रोक्षण करते हुये 'शुचि वो हव्ये', 'आपो हिष्ठा' ऋचा का उच्चारण करे। तब हाथ जोड़कर स्वस्त्ययन एवं 'तार्क्ष्य०' मन्त्र का पाठ करे।

मण्डपदेवतास्थापनपूजावलयः

ततः पूर्वस्यां दिशि मण्डपद्वाराद्बहिर्हस्तमात्रे वटतोरणमाश्वत्थं वा सुदृढनामकं सुशोभननामकं वा शङ्खाङ्कितम् 'अग्निमीळे पुरोहित'मिति निधाय नाम्ना, सम्पूज्य चन्दनादिचर्चितं कृत्वा राहुं बृहस्पतिं तत्र न्यसेत्। तत्रैकः कलशः स्थाप्यः। तत्र मन्त्राः—'महीद्यौ'रिति भूमिं स्पृशन् प्रार्थ्य, 'ओषधयः स'मिति यवान् क्षिप्त्वा, 'आकलशेष्वि'ति 'आजिघ्र कलश'मिति वा कलशं निधाय, 'इमं मे गङ्गे' इति जलेनापूर्य, 'गन्धद्वारां' इति गन्धं 'या ओषधी'रिति सर्वौषधीः, 'ओषधयः स'मिति यवान्, 'काण्डात्काण्डा'दिति दूर्वाः, 'अश्वत्थे वो' इति पञ्चपल्लवान्, 'स्योना पृथिवि' इति पञ्च मृदः 'याः फलिनी'रिति फलम्, 'स हि रत्नानी'ति पञ्च रत्नानि, 'हिरण्यरूप'मिति हिरण्यं क्षिप्त्वा 'युवा सुवासा' इति वस्त्रेण रक्तसूत्रेण च मुखे वेष्टयेत्। 'पूर्णा दर्वी'त्युपरि धान्यपूर्णशरावं निधाय तत्र ध्रुवमावाह्य पूजयेत्। ततो दक्षिणे औदुम्बरं वा सुभद्रं विकटं वा चक्राङ्कितं तोरणं 'इषे त्वोर्जे त्वा' इति निधाय नाम्ना पूर्ववत् सम्पूज्य चन्दनादिचर्चितं कृत्वा सूर्यमङ्गारकं च न्यसेत्। ततः पूर्ववत् कलशं स्थापयित्वा तत्र धरामावाह्य पूजयेत्। ततः पश्चिमे प्लाक्षमौदुम्बरं वा सुहोत्रं सुप्रभं पद्माङ्कितं तोरणं 'शन्नो देवी'रिति निधाय नाम्ना पूर्ववत् सम्पूज्य चन्दनादिचर्चितं कृत्वा शुक्रं बुधं च तत्र न्यसेत्। पूर्ववत् कलशं निधाय वाक्पतिमावाह्य पूजयेत्। तत उत्तरे

वाटमाश्वत्थं पालाशं वा पूर्णसुकर्म सुभीमं वा गदाङ्कितं तोरणम् 'अग्न आयाहि' इति निधाय नाम्ना सम्पूज्य चन्दनादिचर्चितं कृत्वा सोमकेतुशनींस्तत्र न्यसेत्। ततः पूर्ववत् कलशं निधाय तत्र विघ्नेशमावाह्य पूजयेत्। ततः पुनः पूर्वद्वारे द्वारशाखाद्वये कलशद्वयं दध्यक्षतभूषितं पूर्ववन्मन्त्रैः स्थापयेत्। प्रतिकलशं मन्त्रावृत्तिः। ऐरावतकलशद्वयं न्यस्य पूजयेत्। तत्र ऋग्वेदिनौ ऋत्विजौ—

ऋग्वेदः पद्मपत्राक्षो गायत्र्यः सोमदेवता। अत्रिगोत्रस्तु विप्रेन्द्र शान्तिपाठं मखे कुरु ॥१॥

इति प्रार्थ्य प्रत्येकमग्निमीळे इति गन्धादिना पूजयेत्। ततः—

एह्येहि सर्वामरसिद्धसाध्यैरभिष्टुतो वज्रधरामरेश। संवीज्यमानोऽप्सरसां गणेन रक्षाध्वरं नो भगवन् नमस्ते ॥१॥

भो इन्द्रेहागच्छेह तिष्ठेति इन्द्रं साङ्गं सपरिवारं सायुधं सशक्तिकं द्वारकलशे आवाह्य तत्र 'त्रातारमिन्द्र'मितीन्द्रं सम्पूज्य, 'आशुः शिशान' इति पीतां पताकां पीतं च ध्वजद्वयमपि पञ्चहस्तदण्डमुच्छ्रयेत्। 'इन्द्रं वो विश्वतस्परि' इति वा मन्त्रः। तत्र सहस्राक्षं मत्तैरावणस्थितं पीतकिरीटकुण्डलधरं दक्षिणवामकरस्थवज्रोत्पलमिन्द्रं ध्यात्वा,

इन्द्रः सुरपतिः श्रेष्ठो वज्रहस्तो महाबलः। शतयज्ञाधिपो देवस्तस्मै नित्यं नमोनमः ॥१॥

इति नत्वा इन्द्राय साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकायैतं माष(भक्त)बलिं समर्पयामि, इति बलिं दद्यात्।

तब पूर्व दिशा के मण्डप द्वार से एक हाथ की दूरी पर वट या अश्वत्थ का सुदृढ़ नामक या सुशोभन नामक तोरण शङ्खाङ्कित बनाकर 'अग्निमीले पुरोहित' नाम से पूजन करके चन्दनादि चर्चित करते हुये राहु एवं वृहस्पति का वहाँ न्यास करे। वहाँ एक-एक कलश स्थापित करे। तदनन्तर भूमि-स्पर्श करके 'ओषधयः' मन्त्र से प्रार्थना करे। यव डाले। 'आकलशे' या 'आजिघ्र कलश' से कलश में यव डाले।

'इमं मे गंगे' से कलश में जल भरे। 'गन्धद्वारां' से गन्ध डाले। 'या ओषधो' से सर्वौषधी डाले। 'ओषधयः' से यव डाले। 'काण्डात् काण्डात्' से दूर्वा डाले। 'अश्वत्थे वो' से पञ्चपल्लव डाले। 'स्योना पृथिवि' से पञ्चमृत्तिका डाले। 'याः फलिनी' से फल, 'स हि रत्नानि' से पञ्चरत्न, 'हिरण्यरूप' से सोना डालकर। युवा सुवासा' से वस्त्र और लाल धागा से मुख वेष्टित करे। 'पूर्णा दर्वी' से उसके ऊपर धान्य पूर्ण शराव रखे। तब ध्रुव से आवाहन करके पूजन करे। तब दक्षिण में गूलर या सुभद्र विकट या चक्राङ्कित तोरण 'इषे त्वेर्जे त्वा' से बनाये। नाम से पूर्ववत् पूजन करे। चन्दनादि से चर्चित करे। वहाँ पर सूर्य और मङ्गल का न्यास करे। तब पूर्ववत् कलश-स्थापन करके उसमें पृथ्वी का आवाहन करके पूजन करे। तब पश्चिम में पाकड़, गूलर, सुहोत्र सुप्रभ पद्माङ्कित तोरण कौशन्नो देवी' से स्थापित करके नाम से पूर्ववत पूजा करे चन्दनादि से चर्चित करे और वहीं पर शुक्र बुध का न्यास करे। पूर्ववत् कलश रखकर वाक्पति का आवाहन-पूजन करे। तब उत्तर में वट, पीपल या पलाश का पूर्ण सुकर्म सुभीम या गदाङ्कित तोरण का स्थापन 'अग्न आयाहि' करे। नाम से पूजन कर उसे चन्दन-चर्चित करे। वहाँ सोम-केतु-शनि का न्यास करे। तब पूर्ववत् कलश रखकर उसमें विघ्नेश का आवाहन-पूजन करे। तब पुनः पूर्व द्वार के शाखाद्वय पर कलशद्वय को दधि-अक्षत से भूषित कर पूर्ववत् मन्त्रों से स्थापित करे। प्रति कलश मन्त्रावृत्ति करे। ऐरावत के लिये कलशद्वय का न्यास करे, पूजन करे। वहाँ ऋग्वेदी ऋत्विजों से शान्तिपाठ करने की प्रार्थना करे।

शान्तिपाठ-हेतु प्रार्थना करके प्रत्येक का 'अग्निमीले' मन्त्र बोलकर गन्धादि से पूजा करे। तब मूलोक्त 'एह्येहि' बोलते हुये 'भो इन्द्र इहागच्छ इह तिष्ठ' कहकर साङ्ग सपरिवारं सायुध सशक्तिक, इन्द्र का द्वारकलश में आवाहन करके 'त्रातारमिन्द्र' से इन्द्र की पूजा करे। 'आशुः शिशान' से पीत पताका एवं पीला ध्वज पाँच हाथ लम्बे बाँस में लगाकर 'इन्द्रं वो विश्वतस्परि' मन्त्र से स्थापित करे। तब सहस्राक्ष, मत्त ऐरावत पर आरूढ़, पीत किरीट कुण्डलधारी, दक्षिण-वामकरस्थ वज्रधारी इन्द्र का ध्यान करके 'इन्द्रः सुरपतिः' इत्यादि मन्त्र से इन्द्र को प्रणाम कर 'इन्द्राय साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकायैतं माषभक्तबलिं समर्पयामि' कहकर बलि प्रदान करे।

तत आचम्याग्नेये गत्वा पूर्ववत् कलशं निधाय तत्र पुण्डरीकं पूजयित्वाऽमृतं च प्रपूज्य,

एह्येहि वैश्वानर हव्यवाह मुनिप्रवीरैरभितोऽभिजुष्ट ।
तेजोवता लोकगणेन सार्धं ममाध्वरं पाहि कवे नमस्ते ॥१॥

भो अग्ने इहागच्छेह तिष्ठेति साङ्गं सपरिवारं सायुधं सशक्तिमग्निं कलशे आवाह्य, 'त्वन्नो अग्ने' इत्यग्निं गन्धादिना प्रपूज्य, 'अग्निं दूत'मिति रक्तां पताकां रक्तध्वजं पञ्चहस्तदण्डमुच्छ्रयेत्। ततः छागस्थं रक्तं दक्षिणवामकरधृतरक्त-कमण्डलुं यज्ञोपवीतिनमग्निं ध्यात्वा,

आग्नेयः पुरुषो रक्तः सर्वदेवमयोऽव्ययः । धूम्रकेतुरजोऽध्यक्षस्तस्मै नित्यं नमोनमः ॥१॥

इति नत्वा साङ्गायेत्यादिकमुक्त्वा अग्नये एतं माषभक्तबलिं समर्पयामि इति बलिं दद्यात्।

तत आचम्य दक्षिणे गत्वा प्रतिद्वारशाखं पूर्ववत् कलशद्वयं संस्थाप्य वामनगजं तत्र न्यस्य पूजयेत्। ततो यजुर्वेदविदावृत्विजौ—

कातराक्षो यजुर्वेदस्त्रैष्टुभो विष्णुदैवतः । काश्यपेयस्तु विप्रेन्द्र शान्तिपाठं मखे कुरु ॥१॥

इति प्रत्येकं प्रार्थ्य गन्धादिना 'इषे त्वोर्जे त्वा' इति पूजयेत्। ततः—

एह्येहि वैवस्वत धर्मराज सर्वामरैरर्चित धर्ममूर्ते ।
शुभाशुभानन्दशुचामधीश शिवाय नः पाहि मखं नमस्ते ॥१॥

भो यमेहागच्छेह तिष्ठेति साङ्गादिविशिष्टं यममावाह्य 'यमाय सोम'मिति गन्धादिभिः पूजयित्वा कृष्णां पताकां कृष्णं च ध्वजं पञ्चहस्तायतं दण्डं 'आयं गौ'रित्युच्छ्रयेत्। ततो महिषारूढं धृतदण्डपाशदक्षिणवामकरद्वयं कृष्णाञ्जनचयनिभमग्निसमनयनं यमं ध्यात्वा,

महामहिषमारूढं दण्डहस्तं महाबलम् । आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन् पूजा मे प्रतिगृह्यताम् ॥१॥

इति नत्वा, साङ्गायेत्यादि यमायैतं माषभक्तबलिं समर्पयामि, इति बलिं दद्यात् ।

ततः आचम्य नैर्ऋत्यां पूर्ववत् कलशं स्थापयित्वा कुमुदगजं दुर्जयं च पूजयित्वा,

एह्येहि रक्षोगणनायकस्त्वं विशालवेतालपिशाचसङ्घैः ।
ममाध्वरं पाहि पिशाचनाथ लोकेश्वरस्त्वं भगवन् नमस्ते ॥१॥

भो निर्ऋते इहागच्छेह तिष्ठेति साङ्गादिविशिष्टमावाह्य 'मो षु ण' इति 'असुन्वत'मिति वा निर्ऋतिं गन्धादिभिः पूजयित्वा नीलां पताकां ध्वजं च पञ्चहस्तदण्डं 'मा षु ण' इत्युच्छ्रयेत्। ततो नरारूढं खड्गहस्तं नीलवर्णं नीलाभरणं निर्ऋतिं ध्यात्वा,

नरारूढं महाकायं खड्गहस्तं महाबलम् । नीलं रक्षोगणैर्जुष्टं नीलाभरणभूषितम् ॥१॥
निर्ऋतिं खड्गहस्तं च सर्वलोकैकनायकम् । आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन् पूजा मे प्रतिगृह्यताम् ॥२॥

इति नत्वा, साङ्गायेत्यादि निर्ऋतये एतं माषभक्तबलिं समर्पयामि, इति बलिं दद्यात्।

इसके बाद आचमन करके आग्नेय कोण में जाकर पूर्ववत् कलश रखकर पुण्डरीक का पूजन करके अमृत का पूजन करते हुये निम्न श्लोक का पाठ करे—

एह्येहि वैश्वानर हव्यवाह मुनिप्रवीरैरभितोऽभिजुष्ट। तेजोवता लोकगणेन सार्धं ममाध्वरं पाहि कवे नमस्ते ।।

तदनन्तर 'भो अग्ने इहागच्छ इह तिष्ठ' कहकर साङ्ग सपरिवार सायुध, सशक्तिक अग्नि का आवाहन कलश में करे। 'त्वन्नो अग्ने' मन्त्र द्वारा गन्धादि से उसका पूजन करे। 'अग्निं दूतं' से लाल पताका एवं लाल ध्वज पाँच हाथ उच्च दण्ड में

लगाकर स्थापित करे। तब छागस्थ रक्त को दक्षिण-वामकरस्थित कमण्डलु में धारण किये हुये, यज्ञोपवीतयुक्त अग्नि का ध्यान करके निम्नवत् प्रणाम करे—

आग्नेयः पुरुषो रक्तः सर्वदेवमयोऽव्ययः। धूम्रकेतुरजोऽध्यक्षस्तस्मै नित्यं नमोनमः।।

तदनन्तर साङ्गाय इत्यादि कहकर 'अग्नये एतं भाषभक्तबलिं समर्पयामि' कहकर बलि प्रदान करे।

तब आचमन करके दक्षिण द्वार पर जाकर प्रत्येक द्वारशाखा पर एक-एक कलश स्थापित करे। वहाँ पर वामन गज का न्यास करके पूजन करे। तब यजुर्वेदी ऋत्विज निम्न श्लोक पढ़ें—

कातराक्षो यजुर्वेदस्त्रैष्टुभो विष्णुदैवतः। काश्यपेयस्तु विप्रेन्द्र शान्तिपाठं मखे कुरु।।

इस श्लोक से प्रत्येक की प्रार्थना करके 'इषे त्वेर्जेत्वा' मन्त्र द्वारा गन्धादि से पूजा करे। तब यमराज का निम्न मन्त्र से आवाहन करे—

एह्येहि वैवस्वत धर्मराज सर्वामरैरर्चित धर्ममूर्ते। शुभाशुभानन्दशुचामधीश शिवाय नः पाहि मखं नमस्ते।।

भो यम इहागच्छ इह तिष्ठ कहकर साङ्गादिविशिष्ट यम का आवाहन करके 'यमाय सोम' मन्त्र से गन्धादि से पूजन करे। काला पताका एवं काला ध्वज पाँच हाथ लम्बे दण्ड में लगाकर 'आयं गौ' मन्त्र से खड़ा करे। तब महिषारूढ़, दक्षिण वाम कर में दण्ड-पाशधारी, कृष्ण वर्ण, अग्निसम नयन यम का निम्नवत् ध्यान करे—

महामहिषमारूढं दण्डहस्तं महाबलम्। आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन् पूजा मे प्रतिगृह्यताम्।।

उपर्युक्त श्लोक से प्रणाम करके 'साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय यमाय एतं माषभक्तबलिं समर्पयामि' कहकर बलि प्रदान करे। तब आचमन करके नैर्ऋत्य में पूर्ववत् कलश स्थापित करके उसमें कुमुद गज और दुर्जय का पूजन करे। तदनन्तर—

एह्येहि वैवस्वत धर्मराज सर्वामरैरर्चित धर्ममूर्ते। शुभाशुभानन्दशुचामधीश शिवाय नः पाहि मखं नमस्ते।।

कहते हुये भो निर्ऋते इहागच्छ इह तिष्ठ इत्यादि कहकर साङ्गादि विशिष्ट दोनों का आवाहन करके 'मो षु ण' या 'असुवन्तं' से निर्ऋति का गन्धादि से पूजन कर नीला पताका एवं ध्वज को पाँच हाथ के दण्ड में लगाकर 'मा षु ण' कहकर खड़ा करे। तब नरारूढ़, खड्गहस्त, नील वर्ण, नीलाभरण-भूषित निर्ऋति का निम्नवत् ध्यान करे—

नरारूढं महाकायं खड्गहस्तं महाबलम्। नीलं रक्षोगणैर्जुष्टं नीलाभरणभूषितम्।।
निर्ऋतिं खड्गहस्तं च सर्वलोकैकनायकम्। आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन् पूजा मे प्रतिगृह्यताम्।।

निर्ऋति को विहित मन्त्र से प्रणाम करके बलि प्रदान करे।

तत आचम्य पश्चिमद्वारे प्रतिशाखं कलशद्वयं पूर्ववत् स्थापयित्वा अञ्जनं दिग्गजं न्यस्य पूजयेत्। ततः सामवेदविदावृत्विजौ

सामवेदस्तु पिङ्गाक्षो जागतः शक्रदैवतः। भारद्वाजस्तु विप्रेन्द्र शान्तिपाठं मखे कुरु ।।१।।

इति प्राथ्र्य गन्धादिना 'अग्न आयाहि' इति पूजयेत्। ततः—

एह्येहि यादोगणवारिधीनां गणेन पर्जन्य सहाप्सरोभिः।
विद्याधरेन्द्रामरगीयमान पाहि त्वमस्मान् भगवन् नमस्ते ।।१।।

भो वरुणेहागच्छेह तिष्ठेति साङ्गादिविशिष्टं वरुणमावाह्य, 'तत्त्वा यामि' इति गन्धादिभिः पूजयित्वा श्वेतां पताकां ध्वजं चं 'इम मे वरुण' इत्युच्छ्रयेत्। ततो मकरस्थं पाशहस्तं शुक्लवर्णं किरीटधारिणं वरुणं ध्यात्वा,

पाशहस्तं च वरुणमर्णसां निधिमीश्वरम्। आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन् वरुणाय नमोनमः ।।१।।

इति नत्वा साङ्गायेत्यादि वरुणायैतं माषभक्तबलिं समर्पयामि, इति बलिं दद्यात्।

तत आचम्य वायव्यां पूर्ववत् कलशं निधाय पुष्पदन्तं सिद्धार्थं च सम्पूज्य,

एह्येहि यज्ञे मम रक्षणाय मृगाधिरूढः सह सिद्धसङ्घैः ।
प्राणाधिपः कालकवेः सहाय गृहाण पूजां भगवन् नमस्ते ॥१॥

भो वायो इहागच्छेह तिष्ठेति साङ्गादिविशिष्टं वायुमावाह्य 'तव वायवृतस्पते' इति गन्धादिना पूजयित्वा धूम्रां पताकां ध्वजं च 'वायो शत'मित्युच्छ्रयेत्। ततो मृगाधिरूढं चित्राम्बरध्वजधरदक्षवामहस्तं वायुं ध्यात्वा,

वायुमाकाशगं चैव पवनं वेगवाहनम् । आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन् पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ॥१॥
अनाकारो महौजाश्च पशुदृष्टगतिर्दिवि । तस्मै पूज्याय जगतो वायवेऽहं नमामि च ॥२॥

इति नत्वा साङ्गायेत्यादि वायवे एतं माषभक्तबलिं समर्पयामि, इति बलिं दद्यात्।

तत आचम्योत्तरद्वारे प्रतिद्वारशाखं कलशद्वयं प्रागवत् स्थापयित्वा सार्वभौमं दिग्गजं न्यस्य प्रपूज्याथर्वविदावृत्विजौ,

बृहन्नेत्रोऽथर्ववेदोऽनुष्टुभो गुरुदैवतः । वैशम्पायन विप्रेन्द्र शान्तिपाठं मखे कुरु ॥१॥

इति प्रार्थ्य 'शन्नो देवी'रिति गन्धादिना प्रपूज्य, ततः

एह्येहि यक्षेश्वर यज्ञरक्षां विधत्स्व नक्षत्रगणेन सार्धम् ।
सर्वौषधीभिः पितृभिः सहैव गृहाण पूजां भगवन् नमस्ते ॥१॥

भो सोमेहागच्छेह तिष्ठेति साङ्गादिविशिष्टं सोममाह्य 'सोमो धेनुं' 'वयं सोमे'ति वा पूजयित्वा हरितां श्वेतां पताकां ध्वजं च 'आप्यायस्व' इति न्यस्य नरयुतविमानस्थं कुण्डलहारकेयूररुचिरं वरगदाधरदक्षिणवाम-भुजद्वयं मुकुटिनं महोदरं महाकायं हरितवर्णं कुवेरं ध्यात्वा,

सर्वनक्षत्रमध्ये तु सोमो राजा व्यवस्थितः । तस्मै सोमाय देवाय नक्षत्रपतये नमः ॥१॥

इति नत्वा साङ्गायेत्यादि सोमायैतं माषभक्तबलिं समर्पयामि, इति बलिं दद्यात्।

तब आचमन करके पश्चिम द्वार में प्रतिशाखा पर एक-एक कलश का स्थापन करे एवं वहीं पर अञ्जन दिग्गज का न्यास करके उनका पूजन करे। तब सामवेदी ऋत्विज निम्न श्लोक से उनकी प्रार्थना करें—

सामवेदस्तु पिङ्गाक्षो जागतः शक्रदैवतः। भारद्वाजस्तु विप्रेन्द्र शान्तिपाठं मखे कुरु।।

प्रार्थना करके गन्धादि से 'अग्न आयाहि' मन्त्र द्वारा उनकी पूजा करे। तदनन्तर—

एह्येहि यादोगणवारिधीनां गणेन पर्जन्य सहाप्सरोभिः। विद्याधरेन्द्रामरगीयमान पाहि त्वमस्मान् भगवन् नमस्ते।।

भो वरुण इहागच्छ इह तिष्ठ कहकर साङ्गादिविशिष्ट वरुण का आवाहन करे। 'तत्त्वा यामि' मन्त्र द्वारा गन्धादि से पूजा करे। श्वेत पताका एवं ध्वज 'इमं मे वरुण' कहकर फहराये। तब मकरारूढ़ पाशहस्त शुक्ल वर्ण किरीटधारी वरुण का निम्नवत् ध्यान करे—

पाशहस्तं च वरुणमर्णसां निधिमीश्वरम्। आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन् वरुणाय नमोनमः।।

प्रणाम विहित मन्त्र द्वारा वरुण को बलि प्रदान करे।

तब आचमन करके वायव्य में पूर्ववत् कलश स्थापित करके पुष्पदन्त और सिद्धार्थ का उसमें पूजनकर निम्न श्लोक का पाठ करे—

एह्येहि यज्ञे मम रक्षणाय मृगाधिरूढः सह सिद्धसङ्घैः। प्राणाधिपः कालकवेः सहाय गृहाण पूजां भगवन् नमस्ते।।

भो वायो इहागच्छ इह तिष्ठ कहकर साङ्गादिविशिष्ट वायु का आवाहन करे। 'तब वायवृतस्पते' कहकर गन्धादि से उनकी पूजा करे। तदनन्तर धूम्र वर्ण की पताका एवं ध्वजा 'वायो शत' कहकर खड़ा करे। तब मृगाधिरूढ़, चित्राम्बर एवं

ध्वजधारी वायु का ध्यान करके निम्न मन्त्र पढ़ते हुये उन्हें प्रणाम करे—

वायुमाकाशगं चैव पवनं वेगवाहनम्। आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन् पूजेयं प्रतिगृह्यताम्।।
अनाकारो महौजाश्च पशुदृष्टगतिर्दिवि। तस्मै पूज्याय जगतो वायवेऽहं नमामि च।।

तदनन्तर विहित मन्त्र से वायुदेव को बलि प्रदान करे।

तदनन्तर आचमन करके उत्तर द्वार के प्रातिशाखा में पूर्ववत् कलश स्थापित करके वहाँ सार्वभौम दिग्गज का न्यास करने के बाद अथर्ववेदी ऋत्विज निम्न श्लोक का पाठ करें—

बृहन्नेत्रोऽथर्ववेदोऽनुष्टुभो गुरुदैवत:। वैशम्पायन विप्रेन्द्र शान्तिपाठं मखे कुरु।।

प्रार्थना करके 'शन्नो देवी' मन्त्र से गन्धादि से उनका पूजन करे। तदनन्तर—

एह्येहि यक्षेश्वर यज्ञरक्षां विधत्स्व नक्षत्रगणेन सार्धम्। सर्वौषधीभि: पितृभि: सहैव गृहाण पूजां भगवन् नमस्ते।।

मन्त्र पढ़ते हुये भो सोम इहागच्छ इह तिष्ठ कहकर साङ्गादि-विशिष्ट सोम का आवाहन करे। 'सोमो धेनुं' या 'वयं सोम से उनकी पूजा करे। हरे रङ्ग की पताका एवं ध्वजा 'आप्यायस्व' से खड़ा करके नरयुत विमानस्थ कुण्डल-हार-केयूर से भूषित वर-गदाधारी, मुकुटधारी, महोदर, महाकाय, हरित वर्ण कुबेर का ध्यान करके निम्न मन्त्र से प्रणाम करे—

सर्वनक्षत्रमध्ये तु सोमो राजा व्यवस्थित: । तस्मै सोमाय देवाय नक्षत्रपतये नम:।।

प्रणाम करके विहित मन्त्र से बलि प्रदान करे।

तत आचम्य ऐशान्यां पूर्ववत् कलशं निधाय सुप्रतीकं दिग्गजं मङ्गलं च तत्र सम्पूज्य

एह्येहि विश्वेश्वर नस्त्रिशूलखट्वाङ्गधारिन् स्वगणेन सार्धम्।
लोकेश यज्ञेश्वर यज्ञसिद्ध्यै गृहाण पूजां भगवन् नमस्ते ।।१।।

भो ईशानेहागच्छेह तिष्ठेति साङ्गादिविशिष्टमीशानमावाह्य 'तमीशान'मिति गन्धादिना प्रपूज्य श्वेतां सर्ववर्णां वा पताकां ध्वजं च 'अभि त्वा देव सवित:' इत्युच्छ्रयेत्। ततो वृषारूढं दक्षिणवामहस्तधृतवरत्रिशूलं त्रिनेत्रं शुभ्रवर्णमीशानं ध्यात्वा,

वृषस्कन्धसमारूढं शूलहस्तं त्रिलोचनम्। आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन् पूजा मे प्रतिगृह्यताम् ।।१।।
सर्वाधिपो महादेव ईशान: शुक्ल ईश्वर:। शूलपाणिर्विरूपाक्षस्तस्मै नित्यं नमोनम: ।।२।।

इति नत्वा साङ्गायेत्यादि ईशानायैतं माषभक्तबलिं समर्पयामि, इति बलिं दद्यात्। तत आचम्य ईशानपूर्वयोर्मध्येऽध:

एह्येहि पातालधरामरेन्द्र नागाङ्गनाकिन्नरगीयमान्।
यक्षोरगेन्द्रामरलोकसङ्घैरनन्त रक्षाध्वरमस्मदीयम् ।।१।।

भो अनन्तेहागच्छेह तिष्ठेति साङ्गादिविशिष्टमनन्तमावाह्य 'आयं गौ'रिति गन्धादिभिरभ्यर्च्य मेघवर्णां श्वेतां पताकां ध्वजं च 'आयं गौ'रित्युच्छ्रयेत्।

अनन्तशयनासीनं फणसप्तकमण्डितम्। पद्मशङ्खधरोर्ध्वाधोदक्षभागकरद्वयम् ।।१।।
चक्रगदाधरोर्ध्वाधोवामभागकरद्वयम्।

इति नीलवर्णमनन्तं ध्यात्वा,

योऽसावनन्तरूपेण ब्रह्माण्डं सचराचरम्। पुष्पवद्धारयेन्मूर्ध्नि तस्मै नित्यं नमोनम: ।।१।।

इति नत्वा साङ्गायेत्यादि अनन्तायैतं माषभक्तबलिं समर्पयामि, इति बलिं दद्यात्।

तत आचम्य पश्चिमनैर्ऋतमध्ये ऊर्ध्वम्

एह्येहि सर्वाधिपते सुरेन्द्रलोकेन सार्धं पितृदेवताभिः ।
सर्वस्य धातास्यमितप्रभावो विशाध्वरं नः सततं शिवाय ॥१॥

भो ब्रह्मन्निहागच्छेह तिष्ठेति साङ्गादिविशिष्टं ब्रह्माणमावाह्य 'ब्रह्म जज्ञान'मिति गन्धादिभिरभ्यर्च्य रक्तां पताकां ध्वजं च तेनैवोच्छ्रित्य, अक्षसूत्रकुशमुष्टिधरोर्ध्वाधोदक्षिणकरं स्रुवकमण्डलुधरोर्ध्वाधोवामकरद्वयं चतुर्मुखं श्मश्रुलं जटिलं लम्बोदरं रक्तवर्णं ब्रह्माणं ध्यात्वा,

पद्मयोनिश्चतुर्मूर्तिर्वेदावासः पितामहः । यज्ञाध्यक्षश्चतुर्वक्त्रस्तस्मै नित्यं नमोनमः ॥१॥

इति नत्वा साङ्गायेत्यादि ब्रह्मणे एतं माषभक्तबलिं समर्पयामि, इलि बलिं दद्यात्।

तदनन्तर आचमन करके ईशान में पूर्ववत् कलश स्थापन करके सुप्रतीक, दिग्गज और मङ्गल की उसमें पूजा करके निम्न श्लोक को पढ़कर उनका आवाहन करे—

एह्येहि विश्वेश्वर नस्त्रिशूलखट्वाङ्गधारिन् स्वगणेन सार्धम् । लोकेश यज्ञेश्वर यज्ञसिद्ध्यै गृहाण पूजां भगवन् नमस्ते।।

भो ईशान इहागच्छ इह तिष्ठ कहकर साङ्गादिविशिष्ट ईशान का आवाहन करके। 'तामीशान' मन्त्र से गन्धादि से उनकी पूजा करे। श्वेत वर्ण पताका एवं ध्वजा को 'अभि त्वा देव सवितः' कहकर खड़ा करे। तब वृषारूढ़, वर-त्रिशूलधारी, त्रिनेत्र शुभ्रवर्ण ईशान का ध्यान करते हुये निम्न मन्त्र से उन्हें प्रणाम करे—

वृषस्कन्धसमारूढं शूलहस्तं त्रिलोचनम्। आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन् पूजा मे प्रतिगृह्यताम्।।
सर्वाधिपो महादेव ईशानः शुक्ल ईश्वरः। शूलपाणिर्विरूपाक्षस्तस्मै नित्यं नमोनमः।।

प्रणाम करके विहित मन्त्र से उन्हें बलि प्रदान करे। तदनन्तर आचमन करके ईशान-पूर्व मध्य में नीचे—

एह्येहि पातालधरामरेन्द्र नागाङ्गनाकिन्नरगीयमान्। यक्षोरगेन्द्रामरलोकसङ्घैरनन्त रक्षाध्वरमस्मदीयम्।।

पढ़ते हुये भो अनन्त इहागच्छ इह तिष्ठ कहकर साङ्गादिविशिष्ट अनन्त का आवाहन करे। 'आयं गौः' मन्त्र से गन्धादि से उनका अर्चन करके मेघवर्ण श्वेत पताका एवं ध्वजा को 'आय गौ' मन्त्र बोलकर खड़ा करे। इसके बाद—

अनन्तशयनासीनं फणसप्तकमण्डितम्। पद्मशङ्खधरोर्ध्वाधोदक्षभागकरद्वयम्।।
चक्रगदाधरोर्ध्वाधोवामभागकरद्वयम्।

से नील वर्ण अनन्त का ध्यान करके निम्न मन्त्र से प्रणाम करे—

योऽसावनन्तरूपेण ब्रह्माण्डं सचराचरम्। पुष्पवद्धारयेन्मूर्ध्नि तस्मै नित्यं नमोनमः।।

प्रणाम करके विहित मन्त्र से उन्हें बलि प्रदान करे।

तदनन्तर आचमन करके पश्चिम-नैर्ऋत्य मध्य में ऊपर की ओर—

एह्येहि सर्वाधिपते सुरेन्द्रलोकेन सार्धं पितृदेवताभिः। सर्वस्य धातास्यमितप्रभावो विशाध्वरं नः सततं शिवाय।।

कहकर भो ब्रह्मन इहागच्छ इह तिष्ठ बोलकर साङ्गादि विशिष्ट ब्रह्मा का आवाहन करे। 'ब्रह्म जज्ञान' मन्त्र से गन्धादि द्वारा उनका पूजन करे। लाल पताका एवं ध्वजा पूर्ववत् खड़ा करे। अक्षसूत्रकुशमुष्टिधारी एवं स्रुव-कमण्डलुधारी चतुर्मुख घनी दाढ़ी, लम्बा पेट, रक्त वर्ण ब्रह्मा का निम्नवत् ध्यान करे—

पद्मयोनिश्चतुर्मूर्तिर्वेदावासः पितामहः । यज्ञाध्यक्षश्चतुर्वक्त्रस्तस्मै नित्यं नमोनमः।।

प्रणाम करके विहित मन्त्र से बलि प्रदान करे।

तत आचम्य मण्डपमध्ये चामरकिङ्किणीयुतात्युच्चदण्डो वा दशषोडशहस्तदण्डो वा दशहस्तदीर्घस्त्रिहस्त-विस्तारः पञ्चहस्तदीर्घो हस्तविस्तारो वा महाध्वजो विचित्रवर्णः 'इन्द्रस्य वृष्णो' इति संस्थाप्यः। 'ब्रह्म जज्ञान'मिति

च तत्रैव ब्रह्मपूजनं कार्यम्। ततो मण्डपषोडशस्तम्भेषु सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः। वंशेषु किन्नरेभ्यो नमः। ततः पूर्वस्यां दिशि किञ्चिद्भूमिमुपलिप्योपविश्य,

त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च। ब्रह्मविष्णुशिवैः सार्धं रक्षां कुर्वन्तु तानि मे ॥१॥
देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः। ऋषयो मनवो गावो देवमातर एव च ॥२॥
सर्वं ममाध्वरे रक्षां प्रकुर्वन्तु मुदान्विताः। ब्रह्मा विणुश्च रुद्रश्च क्षेत्रपाला गणैः सह ॥३।
रक्षन्तु मण्डपं सर्वे घ्नन्तु रक्षांसि सर्वतः। इति।

त्रैलोक्यस्थेभ्यः स्थावरेभ्यो भूतेभ्यो नमः। त्रैलोक्यस्थेभ्यश्चरेभ्यो भूतेभ्यो नमः। ब्रह्मणे नमः। विष्णवे नमः, शिवाय नमः, देवेभ्यो नमः, दानवेभ्यो नमः, गन्धर्वेभ्यो नमः, यक्षेभ्यो नमः, राक्षसेभ्यो नमः, पन्नगेभ्यो नमः, ऋषिभ्यो नमः, मनुष्येभ्यो नमः, गोभ्यो नमः, देवमातृभ्यो नमः। इति प्रत्येकं सम्पूज्य पुष्पादियुतं पूर्ववन्मन्त्रैरेव तस्यां भूमावेवैतेभ्य एव माषभक्तबलिं दद्यात्।

तत आचार्यः सर्त्विक् प्रक्षालितपादपाणिराचान्तः प्राग्द्वारेण मण्डपं प्रविश्य दक्षिणद्वारपश्चिमदेशे उपविश्याचम्य 'भो ब्राह्मणा यथाविहितं कर्म कुरुध्व'मिति ब्रूयात्। ततो गुरुर्महावेद्युपरि पुष्पाणि विकीर्य उपरि च वितानं पञ्चवर्णं फलपुष्पोपशोभितं वेदिमानं बध्नीयात्। ग्रहवेद्यां च तन्मानं बध्नीयात्, सर्वतोभद्रं च लिखेत्। पूर्णाभिषेकदीक्षायां तु नवहस्तपरिमितमध्यवेद्यां श्रीचक्रं तत्तदिष्टदेवताचक्रं वा रचयेत्।

नवहस्तं त्रिहस्तं वा श्रीचक्रमभिषेचने। स्थण्डिले नित्यपूजायां हस्तमात्रं प्रशस्यते ॥१॥

इति तन्त्रराजवचनात्। तस्मिन् पक्षे ग्रहवेदी सर्वतोभद्रमण्डलवेदी चैशान्यां क्रियते। गुरुमण्डलवेदी वायव्ये, मिथुनपूजावेदी आग्नेये, तद्दिननित्यापूजावेदी वास्तुमण्डलसमीपे, इति सम्प्रदायः। तथात्रावसरे आचार्यः स्वगृह्योक्तविधिना स्वकुण्डेऽग्निस्थापनं कुर्यात्। तेनैव क्रमेणान्यकुण्डेष्वपि स्वस्वशाखोक्तविधिना ऋत्विजोऽग्निस्थापनं कुर्युः। गुरुश्च सर्वकर्माध्यक्षस्तिष्ठेत्। एवमग्निषु प्रणीतेषु गुरुर्ग्रहवेद्यां सर्वतोभद्रे च, अद्येहेत्यादि दीक्षादानाख्यकर्माङ्गतया मण्डपदेवतास्थापनं करिष्ये, इति सङ्कल्प्य ब्रह्मादीन् स्थापयेत्। मध्ये ब्रह्मा 'ब्रह्म जज्ञानं' गौतमो वामदेवो ब्रह्मा त्रिष्टुप् ब्रह्मस्थापने पूजने च विनियोगः। एवमुत्तरत्र, 'ॐ ब्रह्म जज्ञानं'।१। उत्तरे सोमः।२। 'ॐ अभि त्वा देव सवितः'।३। पूर्वे इन्द्रः 'इन्द्रं वो' मधुच्छन्दा इन्द्रो गायत्री।४। आग्नेये अग्निः 'अग्निं' काण्वो मेधातिथिरग्निर्गायत्री 'अग्निं दूतं वृणीमहे'।५। दक्षिणे यमः 'यमाय सोमं' वैवस्वतो यमो यमोऽनुष्टुप्।६। नैर्ऋत्यां निर्ऋतिः 'मोषुणो' घोरः कण्वो निर्ऋतिर्गायत्री।७। पश्चिमे वरुणः 'तत्त्वा यामि' शुनःशेपो वरुणस्त्रिष्टुप्।८। वायव्यां वायुः 'वायो शतं' गौतमो वामदेवो वायुरनुष्टुप्।९। वायुसोममध्येऽष्टौ वसवः 'ज्मया अत्र' मैत्रावरुणो वसिष्ठो वसवस्त्रिष्टुप्।१०। सोमेशानमध्ये एकादश रुद्राः 'आ रुद्रासः' श्यावाश्वस्यैकादश रुद्रा जगती 'आ रुद्रासः'।११। ईशानेन्द्रमध्ये द्वादशादित्याः 'त्यान्नु क्षत्रियान्' साम्मदो (मत्स्यो) मगे द्वादशादित्या गायत्री।१२। इन्द्राग्निमध्ये अश्विनौ 'अश्विना' राहूगणो गौतमोऽश्विनौ उष्णिक्।१३। अग्नियममध्ये विश्वेदेवाः सपैतृकाः 'ओमासः' मधुच्छन्दा विश्वेदेवा गायत्री।१४। यमनिर्ऋतिमध्ये सप्तयक्षाः 'अभि त्यं' वामदेवः सप्तयक्षाः प्रकृतिः 'ॐ अभि त्यं देवं सवितारमोण्यो कविक्रतुमर्चामि सत्यसवं रत्नधामभिः प्रियं मतिकविं मतिम्। ऊर्ध्वा यस्या मतिर्भा अदिद्युतत्सवीमनि हिरण्यपाणिरमिमीतः सुक्रतुः प्रिया स्वः'।१५। निर्ऋतिवरुणमध्ये भूतनागाः 'आयं' गौः सार्पराज्ञी सर्पा गायत्री 'आयं गौः'।१६। वरुणवायुमध्ये गन्धर्वाप्सरसः 'अप्सरसाम्' एतश ऋष्यश्रृङ्गो गन्धर्वाप्सरसोऽनुष्टुप्। 'ॐ अप्सरसां गन्धर्वाणां';१७। ब्रह्मसोममध्ये स्कन्दनन्दीश्वरशूलमहाकालाः 'कुमारं' कुमारः स्कन्दस्त्रिष्टुप् 'कुमारं माता'।१८। 'ऋषभं' ऋषभो वैराजोऽनुष्टुप् 'ऋषभं मा'।१९। ब्रह्मेशानमध्ये दक्षादिः सप्तकोणे वा 'अदितिः' लोक्यो बृहस्पतिर्दक्षोऽनुष्टुप् 'ॐअदितिर्ह्यजनिष्ट'।२०।

ब्रह्मेन्द्रमध्ये दुर्गा विष्णुश्च 'तामग्निवर्णां' सौभरिर्दुर्गा त्रिष्टुप् 'ॐ तामग्निवर्णां'।२१। 'इदं विष्णुः' काण्वो मेधातिथिर्गायत्री 'ॐ इदं विष्णुः'।२२। ब्रह्माग्नेयमध्ये स्वधा 'उदीरतां' शङ्खः स्वधा त्रिष्टुप् 'उदीरतामवर'।२३। ब्रह्मयममध्ये विष्णुमृत्युरोगाः 'परं मृत्यो' सङ्कसुको मृत्युरोगास्त्रिष्टुप्।२४। ब्रह्मनिर्ऋतिमध्ये गणपतिः 'गणानां त्वा' गृत्समदो गणपतिर्जगती।२५। ब्रह्मवरुणमध्ये आपः 'शन्नो' अम्बरीषः सिन्धुद्वीप आपो गायत्री।२६। ब्रह्मवायुमध्ये मरुतः 'मरुतो यस्य' राहूगणो गौतमो मरुतो गायत्री।२७। ब्रह्मणः पादमूले कर्णिकाधः पृथ्वी 'स्योना' मेधातिथिर्भूमिर्गायत्री।२८। तत्रैव गङ्गादिनद्यः 'इमं मे' सिन्धुक्षित् प्रैयमेधो, गङ्गायमुनासरस्वत्यो जगती।२९। तत्रैव सप्त सागराः 'धाम्नो धाम्नो राजन्नितो वरुण नो मुञ्च। यदापो अघ्न्या इत् वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च। मयि वायो मोषधीर्हिंसीरतो विश्वव्यचा भूस्त्वेतो वरुण नो मुञ्च।३०। तदुपरि मेरुं नाम्ना पूजयेत्।

तब आचमन करके मण्डपमध्य में चामर-किङ्किणीयुक्त अत्यन्त उच्च दण्ड में महाध्वज या दश अथवा सोलह हाथ के दण्ड में दश हाथ लम्बा एवं तीन हाथ विस्तृत या पाँच हाथ लम्बा एवं हाथ भर विस्तृत विचित्र वर्ण का महाध्वज 'इद्रस्य विष्णो' मन्त्र से स्थापित करे। 'ब्रह्म जज्ञान' से वहाँ ब्रह्म का पूजन करे। तब मण्डप के सोलह स्तम्भों में 'सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः' से पूजा करे। बाँसों में किन्नरेभ्यो नमः से पूजा करे। तब पूर्व दिशा में थोड़ी भूमि को लीपकर उस पर बैठकर रक्षामन्त्र का निम्नवत् पाठ करे—

त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च । ब्रह्मविष्णुशिवैः सार्धं रक्षां कुर्वन्तु तानि मे।।
देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः । ऋषयो मनवो गावो देवमातर एव च।।
सर्वं ममाध्वरे रक्षां प्रकुर्वन्तु मुदान्विताः । ब्रह्मा विणुश्च रुद्रश्च क्षेत्रपाला गणैः सह।।
रक्षन्तु मण्डपं सर्वे घ्नन्तु रक्षांसि सर्वतः ।

तदनन्तर निम्न प्रकार से पूजा करे—त्रैलोक्यस्थेभ्यः स्थावरेभ्यो भूतेभ्यो नमः। त्रैलोक्यस्थेभ्यश्चरेभ्यो भूतेभ्यो नमः। ब्रह्मणे नमः। विष्णवे नमः। शिवाय नमः। देवेभ्यो नमः। दानवेभ्यो नमः। गन्धर्वेभ्यो नमः। यक्षेभ्यो नमः। राक्षसेभ्यो नमः। पन्नगेभ्यो नमः। ऋषिभ्यो नमः। मनुष्येभ्यो नमः। गोभ्यो नमः। देवमातृभ्यो नमः। इस प्रकार प्रत्येक की पुष्पादि से पूजा करके पूर्ववत् मन्त्रों से उन्हें भूमि पर ही बलि प्रदान करे।

तब ब्राह्मणों के साथ आचार्य हाथ-पैर धोकर आचमन करके पूर्व द्वार से मण्डप में प्रवेश करे। दक्षिण द्वार के पश्चिम तरफ बैठकर आचमन करे। तब कहे—भो ब्राह्मणा यथाविहितं कर्म कुरुध्वम्। तब गुरु महावेदी पर पुष्प बिखेरे। वेदों के ऊपर पाँच रङ्गों की चाँदनी बनाकर उसे फल-पुष्पों से उपशोभित करे। ग्रहवेदी के ऊपर उसी के मान की चाँदनी बाँधे। तब सर्वतोभद्र बनाये। पूर्णाभिषेक दीक्षा में नव हाथ परिमित मध्य वेदी बनती है। उसमें श्रीचक्र एवं इष्टदेवता का चक्र बनाये। जैसा कि तन्त्रराज में कहा भी गया है कि श्रीचक्र के अभिषेक में नौ हाथ अथवा तीन हाथ की वेदी बनानी चाहिये। साथ ही नित्य पूजा में एक हाथ की स्थण्डिल ही उपयुक्त होती है।

इसके अनुसार ग्रहवेदी एवं सर्वतोभद्रमण्डल वेदी ईशान में बनाना चाहिये गुरु मण्डल वेदी वायव्य में, मिथुन पूजा वेदी आग्नेय में, उस दिन की नित्या पूजा वेदी वास्तु मण्डल के समीप बनाये। यह सम्प्रदाय-मत है। इस अवसर पर आचार्य स्वगृह्योक्त विधि से अपने कुण्ड में अग्निस्थापन करे। उसी क्रम से अन्य कुण्डों में भी स्व-स्व शाखोक्त विधि से ऋत्विज् अग्निस्थापन करें। गुरु सभी कर्मों के अध्यक्ष रूप में बैठे। इसी प्रकार अग्नि कोण में प्रणीत में ग्रह वेदी में एवं सर्वतोभद्र में सङ्कल्प करके ब्रह्मादि का स्थापन करे। मध्य में ब्रह्मा, उत्तर में सोम, पूर्व में इन्द्र, आग्नेय कोण में अग्नि, दक्षिण में यम, नैर्ऋत्य में निर्ऋति, पश्चिम में वरुण, वायव्य में वरुण, वायु-सोममध्य में आठ वसु, सोम-ईशानमध्य में एकादश रुद्र, ईशान-इन्द्र मध्य में अश्विनी कुमार, अग्नि-यममध्य में विश्वेदेव, निर्ऋति-वरुणमध्य में भूत-नाग, वरुण-वायु मध्य में गन्धर्व-अप्सरायें, ब्रह्म-सोममध्य में स्कन्द-नन्दी-ईश्वर-शूल-महाकाल-ऋषभ, ब्रह्म-ईशान मध्य में दक्ष आदि अथवा सप्तकोण में अदिति, ब्रह्मा-

इन्द्रमध्य में दुर्गा-विष्णु, ब्रह्मा-आग्नेय मध्य में स्वधा, ब्रह्मा-यममध्य में विष्णु-मृत्युरोग, ब्रह्मा-निर्ऋतिमध्य में गणपति, ब्रह्मा-वरुणमध्य में आप, ब्रह्मा-वायुमध्य में मरुत्, ब्रह्मा के पादमूल में पृथ्वी, वहीं पर गङ्गादि नदियों, सप्त समुद्रों, उसके ऊपर मेरु का तत्तत् मन्त्रों से पूजन करे।

बाह्ये सोमादिसमीपे क्रमेणायुधानि—गदां० त्रिशूलं० वज्रं० शक्तिं० खड्गं० पाशं० अङ्कुशं०। तद्वाह्ये उत्तरादितः—गौतमः भरद्वाजः विश्वामित्रः कश्यपः जमदग्निः वसिष्ठः अत्रिः अरुन्धतीति।८। तद्वाह्ये पूर्वादि ऐन्द्री कौमारी ब्राह्मी वाराही चामुण्डा वैष्णवी माहेश्वरी वैनायकी इत्यष्टौ शक्तयः, एतान् स्वस्वमन्त्रैः प्रतिष्ठाप्य प्रत्येकं सह वा पूजयेत्। एवमग्निं प्रणीय देवतास्थापनवेद्यां ग्रहादिपञ्चाशीतिदेवतास्थापनं कुर्यात्। तत्रायं प्रयोगः—अद्येहेत्यादि दीक्षादानाख्यकर्मणि ग्रहादिपीठदेवतास्थापनमहं करिष्ये। प्रणवस्य परब्रह्मऋषिः परमात्मा देवता देवीगायत्री छन्दः, व्याहृतीनां क्रमेण जमदग्निभरद्वाजभृगवो ऋषयः अग्निवायुसूर्या देवताः देवोगायत्री-देवीउष्णिक्-देवीबृहत्यः छन्दांसि सूर्याद्यावाहने विनियोगः। तत्राग्रपीठमध्ये वर्तुले द्वादशाङ्गुले मण्डले प्राङ्मुखं सूर्यं रक्तपुष्पाक्षतैः आकृष्णेति हिरण्यस्तूप ऋषि सविता देवता त्रिष्टुप् छन्दः सूर्यावाहने विनियोगः। 'आकृष्णेन' ॐ भूर्भुवःस्वः कलिङ्गदेशोद्भव काश्यपसगोत्र सूर्येहागच्छेत्यावाह्येह तिष्ठेति स्थापयेत्।१। तत आग्नेये चतुरस्रे चतुर्विंशांगुले मण्डले प्राङ्मुखं सोमं श्वेतपुष्पाक्षतैः आप्यायस्वेति गौतमः सोमो गायत्री सोमावाहने विनियोगः। 'ॐ आप्यायस्व०' ॐ भूर्भुवःस्वः यमुनातीरोद्भव आत्रेयसगोत्र सोमेहागच्छेत्यावाह्येह तिष्ठेति स्थापयेत्।२। ततो दक्षिणे त्रिकोणे त्र्यङ्गुले मण्डले दक्षिणमुखं भौमं रक्तपुष्पाक्षतैः अग्निर्मूर्धेति विरूपः आङ्गिरसोऽङ्गारको गायत्री अङ्गारकावाहने विनियोगः। 'ॐ अग्निर्मूर्धा' ॐ भूर्भुवःस्वः सरस्वतीसमुद्भव भारद्वाजसगोत्र भौमेहागच्छेत्यावाह्येह तिष्ठेति स्थापयेत्।३। तत ऐशाने बाणाकारे चतुरङ्गुले मण्डले उदङ्मुखं बुधं पीतपुष्पाक्षतैः उद्बुध्यध्वमिति बुधः सौम्यो बुधस्त्रिष्टुप् बुधावाहने विनियोगः। 'ॐ उद्बुध्यध्वं' ॐ भूर्भुवःस्वः मगधदेशोद्भवात्रेयसगोत्र बुधेहागच्छेत्यावाह्येह तिष्ठेति स्थापयेत्।४। तत उत्तरतो दीर्घचतुरस्रे षडङ्गुले उदङ्मुखं बृहस्पतिं पीतपुष्पाक्षतैः बृहस्पते इति गृत्समदो बृहस्पतिस्त्रिष्टुप् बृहस्पत्यावाहने विनियोगः। 'बृहस्पतेऽति य' ॐ भूर्भुवःस्वः सिन्धुदेशोद्भवाङ्गिरसगोत्र बृहस्पते इहागच्छेत्यावाह्येह तिष्ठेति स्थापयेत्।५। ततः पूर्वे पञ्चकोणे नवाङ्गुले मण्डले प्राङ्मुखं शुक्रं शुभ्रपुष्पाक्षतैः शुक्र इति पाराशरः शुक्रो द्विपदा विराट् शुक्रावाहने विनियोगः। 'ॐ शुक्रः शुशुक्वान्' ॐ भूर्भुवःस्वः भोजराड्देशोद्भव भार्गवसगोत्र शुक्रेहागच्छेत्यावाह्येह तिष्ठेति स्थापयेत्।६। ततः पश्चिमे धनुषि द्व्यङ्गुले मण्डले प्रत्यङ्मुखं शनिं कृष्णपुष्पाक्षतैः शमग्निरिति इरिंबिठिः शनैश्चर उष्णिक् शन्यावाहने विनियोगः। 'शमग्निः' ॐ भूर्भुवःस्वः सौराष्ट्रदेशोद्भव काश्यपसगोत्र शने इहागच्छेत्यावाह्येह तिष्ठेति संस्थापयेत्।७। ततः कृष्णशूर्पमण्डले दक्षिणमुखं राहुं धूम्रपुष्पाक्षतैः कया न इति वामदेवो राहुर्गायत्री विनियोगः। 'ॐ कया नः' ॐ भूर्भुवःस्वः पूर्वदेशोद्भव पाटलिसगोत्र राहो इहागच्छेत्यावाह्येह तिष्ठेति स्थापयेत्।८। ततो वायव्ये ध्वजाकारे मण्डले दक्षिणमुखान् केतून् कृष्णपुष्पाक्षतैः केतुं कृण्वन् इति मधुच्छन्दाः केतवो गायत्री केत्वावाहने विनियोगः। 'ॐ केतुं कृण्वन्' ॐ भूर्भूवःस्वः मध्यदेशोद्भवा जैमिनिगोत्राः केतव इहागच्छतेत्यावाह्येह तिष्ठतेति स्थापयेत्।।९।।

बाहर सोमादि के समीप क्रम से आयुध—गदा, त्रिशूल, वज्र, शक्ति, खड्ग, पाश, अङ्कुश का पूजन करे। उसके बाहर उत्तर से प्रारम्भ करके गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र, कश्यप, जमदग्नि वसिष्ठ, अत्रि, अरुन्धति आठ का पूजन करे। उसके बाहर पूर्वादि क्रम से ऐन्द्री, कौमारी, ब्राह्मी, वाराही, चामुण्डा, वैष्णवी, माहेश्वरी, वैनायिकी—इन आठ की पूजा करे। इन्हें अपने-अपने मन्त्रों से प्रतिष्ठित करके प्रत्येक का अलग-अलग या एक साथ पूजन करे। इस प्रकार अग्नि का प्रणयन कर, देवतास्थापन वेदी में ग्रहादि पच्चासी देवता का स्थापन करे। ग्रहवेदी पर अपने सामने के पीठ पर बारह अंगुल के गोलाकार मण्डल में पूर्वमुख सूर्य लाल पुष्पाक्षत से बनाये और उसपर सूर्य को स्थापित करे। आग्नेय चतुरस्र चौबीस अंगुल मण्डल में पूर्वमुख चन्द्र श्वेत पुष्पाक्षत से बनाये और उसी पर सोम को आवाहित करते हुये स्थापित करे।

उसके दक्षिण त्रिकोण में तीन अंगुल के त्रिकोण मण्डल में दक्षिणमुख मङ्गल को लाल पुष्पाक्षत से बनाये और उसी में मंगल का आवाहन कर विहित मन्त्रों द्वारा उनका प्रतिष्ठापन करे। ईशान में बाणाकार चार अंगुल के मण्डल में उत्तरमुख बुध को पीले पुष्पाक्षत से बनाये एवं वहीं पर बुध को आवाहित करते हुये विहित मन्त्रों से प्रतिष्ठापित करे। उसके उत्तर में दीर्घ चतुरस्र मण्डल में उत्तरमुख बृहस्पति को पीले पुष्पाक्षत से बनाकर वहीं पर विहित मन्त्रों से बृहस्पति का आवाहन करके उन्हें यथास्थान प्रतिष्ठापित करे। तब पूर्व-पश्चिम कोण में नव अंगुल के पञ्चकोण मण्डल में पूर्वमुख शुक्र की आकृति श्वेत पुष्पाक्षत से बनाये एवं विहित मन्त्रों से वहीं पर शुक्र का आवाहन करते हुये उन्हें प्रतिष्ठापित करे। पश्चिम में धनुषाकार द्व्यङ्गुल मण्डल में पश्चिममुख शनि को काले पुष्पाक्षत से बनाये एवं विहित मन्त्रों से वहीं पर शनि का आवाहन करते हुये उनका स्थापन करे। कृष्ण वर्ण शूर्पमण्डल में दक्षिणमुख राहु को धूम्र-पुष्पाक्षत से बनाये एवं वहीं पर विहित मन्त्रों से उनका आवाहन करते हुये स्थापन करे। वायव्य में ध्वजाकार मण्डल में दक्षिणमुख केतु को काले पुष्पाक्षत से बनाकर केतु का आवाहन करते हुये उनका स्थापन करे।

अधिदेवतास्थापनम्

अथाधिदेवताः श्वेतपुष्पाक्षतैः क्रमात् सूर्यादीनां दक्षिणतः स्थाप्याः। 'त्र्यम्बकं' वसिष्ठो रुद्रोऽनुष्टुप्। विनियोगः सर्वत्र देयः। 'त्र्यम्बकं' ॐ भूर्भुवःस्वः ईश्वर०।१। 'गौरीर्मिमाय' दीर्घतमा उमा जगती सोमदक्षिणे।२। 'यदक्रन्दो' दीर्घतमा स्कन्दस्त्रिष्टुप्।३। 'विष्णो' दीर्घतमा विष्णुस्त्रिष्टुप्।४। 'ब्रह्म जज्ञानं' गौतमो वामदेवो ब्रह्मा त्रिष्टुप्।५। 'इन्द्रं वो' मधुच्छन्दा इन्द्रो गायत्री।६। 'यमाय सोमं' यमो यमोऽनुष्टुप्।७। 'मोषुणो' घोरः कण्वो गायत्री।८। 'उषो वाजं' प्रस्कण्वश्चित्रगुप्तो बृहती।९। एवमेव शुक्लपुष्पाक्षतैर्ग्रहाणां वामे मन्त्रान्ते व्याहृतीरुक्त्वा इहागच्छेह तिष्ठेति चोक्त्वा प्रत्यधिदेवताः स्थापयेत्। 'अग्निं' काण्वो मेधातिथिरग्निर्गायत्री, 'अग्निं दूतं'।१। 'अप्सु' मेधातिथिरापोऽनुष्टुप्।२। 'स्योना' मेधातिथिर्भूमिर्गायत्री।३। 'इदं विष्णुः' मेधातिथिर्विष्णुर्गायत्री।४। 'इन्द्र श्रेष्ठानि' गृत्समद इन्द्रस्त्रिष्टुप्।५। 'इन्द्राणी' वृषाकपिरिन्द्राणी पंक्तिः।६। 'प्रजापते नहि' हिरण्यगर्भः प्रजापतिस्त्रिष्टुप्।७। 'आयं गौः' सार्पराज्ञी सर्पा गायत्री।८। 'ब्रह्म जज्ञानं' गौतमो वामदेवो ब्रह्मा त्रिष्टुप्।९।

अधिदेवता-स्थापन—सूर्यादि के दक्षिण दिशा से प्रारम्भ करते हुये श्वेत पुष्पाक्षत से क्रमश इन अधिदेवताओं को यथास्थान विहित मन्त्रों से स्थापित करे। इसी प्रकार श्वेत पुष्पाक्षत से ग्रहों के बाँयें भाग में मन्त्र के बाद व्याहृति लगाते हुये विहित मन्त्रों से यथास्थान प्रत्यधिदेवताओं को स्थापित करे।

विनायकादिस्थापनम्

ततः शुक्लपुष्पाक्षतैर्विनायकादीन् पञ्च०। 'गणानां त्वा' गृत्समदो गणपतिर्जगती, राहोः (वामे) विनायकम्।१। 'जातवेदसे' कश्यपो दुर्गा त्रिष्टुप्, शनेरुत्तरतो दुर्गा०।२। 'तववायवृतस्पते' आङ्गिरसो वायुर्गायत्री, रवेरुत्तरतो वायुं०। एतान् मन्त्रान् पठन्ति साम्प्रदायिकाः।३। 'आदित्प्रत्नस्य' वत्स आकाशो गायत्री, राहोर्दक्षिणे आकाशम्।४। 'एषो उषा' प्रस्कण्वोऽश्विनौ गायत्री। अश्विनाविहागच्छतेह तिष्ठतेति केतोर्दक्षिणेऽश्विनौ।।५।।

अथ लोकपालाः—'इन्द्रं विश्वा जेता' माधुच्छन्दस इन्द्रोऽनुष्टुप्, इन्द्रेहागच्छेह तिष्ठेति पूर्वे इन्द्रं०। एवमुत्तरत्र।१। 'अग्निः' मेधातिथिरग्निर्गायत्री।२। 'यमाय सोमं' यमो यमोऽनुष्टुप्।३। 'मोषुणो' घोरः कण्वो निर्ऋतिर्गायत्री।४। 'त्वन्नो अग्ने' वामदेवो वरुणस्त्रिष्टुप्।५। 'तव वायो' व्यश्व्यो वायुर्गायत्री।६। 'सोमो धेनुं' गौतमः सोमस्त्रिष्टुप्।७। 'तमीशानं' गौतमः सोम ईशानो गायत्री।८। 'सहस्रशीर्षः' नारायणोऽनन्तोऽनुष्टुप्, ईशानपूर्वयोर्मध्येऽनन्तम्०।९। 'ब्रह्म जज्ञानं' गौतमो वामदेवो ब्रह्मा त्रिष्टुप्।१०। नैर्ऋत्यपश्चिमयोर्मध्ये ब्रह्माणम्०।१२। ततः उत्तरे 'क्षेत्रस्य' वामदेवः क्षेत्रपालोऽनुष्टुप्। 'वास्तोष्पते' वसिष्ठो वास्तोष्पतिस्त्रिष्टुप्। ततः—

सामध्वनिशरीरस्त्वं वाहनं परमेष्ठिनः। विषपापहरो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ।।१।।

इत्यनेन चोत्तरे गरुत्मन्तमावाह्य। रवेः पूर्वे शेषं, सोमस्याग्रे वासुकिं, भौमाग्रे तक्षकं, बुधोत्तरे कार्कोटकं, बृहस्पतेरग्रे पद्मकं, शनिपश्चिमे शङ्खपालं, राहोः पुरः कम्बलं, केतोः पुरः कुलिकं। पीठात् प्राच्यामश्विन्यादिसप्त-नक्षत्राणि, विष्कम्भदिसप्तयोगान् ववबालवकरणे सप्तद्वीपानि ऋग्वेदं च। दक्षिणे पुष्यादिसप्तनक्षत्राणि, धृत्यादिसप्तयोगान् कौलवतैतिले करणे, सप्तसागरान् यजुर्वेदं च। पश्चिमे स्वात्यादिसप्तनक्षत्राणि, वज्रादिसप्तयोगान्, गरवणिजे करणे, सप्तपातालानि सामवेदं च। उत्तरेऽभिजिदादिसप्तनक्षत्राणि, साध्यादिषड्योगान्, विष्टिकरणं, भूरादिसप्तलोकान् अथर्ववेदं च। वायव्ये ध्रुवं सप्तर्षींश्च। अथ यथावकाशं गङ्गादिसप्तसरितः, सप्त कुलाचलान्, अष्टौ वसून्, द्वादशादित्यान्, एकादशरुद्रान्, एकोनपञ्चाशन्मरुतः, षोडश मातॄः, षड्ऋतून्, द्वादश मासान्, द्वे अयने, पञ्चदश तिथीन्, षष्टिं संवत्सरान्, नागान्सर्पान्, यक्षान्, गन्धर्वान्, विद्याधरान्, अप्सरसः, रक्षांसि, भूतानि, मनुष्यान् इति।

विनायकादि-स्थापन—तदनन्तर श्वेत पुष्पाक्षत से विनायक, दुर्गा, वायु, आकाश एवं अश्विनी कुमारों का आवाहन एवं स्थापन करे।

लोकपालों का स्थापन—तदनन्तर पूर्वादि क्रम से यथाविहित मन्त्रों से इन्द्रादि लोकपालों का क्रमशः आवाहन-स्थापन करे। लोकपालों के स्थापन के पश्चात् 'सामध्वनिशरीरस्त्वं वाहनं परमेष्ठिनः। विषपापहरो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे' पढ़कर उत्तर में गरुड़ का आवाहन करे। तदनन्तर सूर्य के पूर्व में शेष, चन्द्र के आगे वासुकी, मङ्गल के आगे तक्षक, बुध के उत्तर में कर्कोटक, बृहस्पति के आगे पद्म, शनि के पश्चिम में शङ्खपाल, राहु के आगे कम्बल एवं केतु के आगे कुलिक का आवाहन करे। पीठ के पूर्व में अश्विनी आदि सात नक्षत्र, विष्कम्भादि सात योग, वव-वालव दो करण, सप्त द्वीप एवं ऋग्वेद का आवाहन करे। दक्षिण में पुष्यादि सात नक्षत्र, धृति आदि सात योग, कौलव-तैतिल करण, सप्तसागर एवं यजुर्वेद का आवाहन करे। पश्चिम में स्वाति आदि सात नक्षत्र, वज्र आदि सात योग, गर-वणिज करण, सप्त पाताल एवं सामवेद का आवाहन करे। उत्तर में अभिजित आदि सात नक्षत्र, साध्य आदि छः योग, विष्टि करण, भूः आदि सात लोक अथर्ववेद का आवाहन करे। वायव्य में ध्रुव एवं सप्तर्षि का आवाहन करे।

यथास्थान गङ्गादि सात नदियाँ, सात कुलाचल, आठ वसु, द्वादश आदित्य, एकादश रुद्र, उनचास मरुत्, षोडश मातृका, छःऋतु, बारह मास, दो अयन, पन्द्रह तिथि, साठ संवत्सर, नाग, सर्प, यक्ष, गन्धर्व, विद्याधर, अप्सरा, राक्षस, भूत, मनुष्य का आवाहन करे।

कलशाभिमन्त्रणादि

ततो वेद्यैशान्यां कलशं स्थाप्य, तत्र वरुणमावाह्य सम्पूज्याभ्यर्चयेत्। यथा कलशाभिमन्त्रणम्—

कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः। मूले तस्य स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणाः स्मृताः ॥१॥
कुक्षौ तु सागराः सप्त सप्तद्वीपा वसुन्धरा। ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः ॥२॥
अङ्गैश्च सहितः सर्वे कलशं तु समाश्रिताः। अत्र गायत्री सावित्री शान्तिः पुष्टिकरी तथा ॥३॥
आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः। देवदानवसंवादे मथ्यमाने महोदधौ ॥४॥
उत्पन्नोऽसि तदा कुम्भ विधृतो विष्णुना स्वयम्। त्वत्तोये सर्वतीर्थानि देवाः सर्वे त्वयि स्थिताः ॥५॥
त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः। शिवः स्वयं त्वमेवासि विष्णुस्त्वं च प्रजापतिः ॥६॥
आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवाः सपैतृकाः। त्वयि तिष्ठन्ति सर्वेऽपि यतः कामफलप्रदाः ॥७॥
त्वत्प्रसादादिमं यज्ञं कर्तुमीहे जलोद्भव। सान्निध्यं कुरु मे देव प्रसन्नो भव सर्वदा ॥८॥ इति।

ततः फलपुष्पमालोल्लसितं वितानं बृहस्पतिदैवतं सूर्यादिभ्य इदं न ममेत्युत्सृज्य ग्रहवेद्युपरि बध्नीयात्। एवं वेदोक्तमण्डपप्रतिष्ठादिकं विदध्यादिति। अन्यत्सर्वं प्रागुक्तविधिना विधेयम्।

कलश-स्थापन—तदनन्तर वेदी के ईशान में कलश स्थापित करते हुये उनका पूजन आदि करके कलश को निम्न

मन्त्रों से अभिमन्त्रित करे—

कलशस्य मुखे विष्णु: कण्ठे रुद्र: समाश्रित:। मूले तस्य स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणा: स्मृता:।।
कुक्षौ तु सागरा: सप्त सप्तद्वीपा वसुन्धरा। ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेद: सामवेदो ह्यथर्वण:।।
अङ्गैश्च सहित: सर्वे कलशं तु समाश्रिता:। अत्र गायत्री सावित्री शान्ति: पुष्टिकरी तथा।।
आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारका:। देवदानवसंवादे मथ्यमाने महोदधौ।।
उत्पन्नोऽसि तदा कुम्भ विधृतो विष्णुना स्वयम्। त्वत्तोये सर्वतीर्थानि देवा: सर्वे त्वयि स्थिता:।।
त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि त्वयि प्राणा: प्रतिष्ठिता:। शिव: स्वयं त्वमेवासि विष्णुस्त्वं च प्रजापति:।।
आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा: सपैतृका:। त्वयि तिष्ठन्ति सर्वेऽपि यत: कामफलप्रदा:।।
त्वत्प्रसादादिमं यज्ञं कर्तुमीहे जलोद्भव। सान्निध्यं कुरु मे देव प्रसन्नो भव सर्वदा।।

तत्पश्चात् फल-फूल-माला से सुशोभित चन्दोवा को सूर्यादि ग्रहों के आच्छादन के उद्देश्य से फैलाते हुये ग्रहवेदी के ऊपर बाँध दे। इस प्रकार वेदोक्त प्रक्रियानुसार मण्डप-प्रतिष्ठा आदि करनी चाहिये।

अध्वभावनाशोधनादि

ततो गुरु: सशिष्य: प्रातरुत्थाय कृतावश्यकक्रिय: प्रादेशमात्रं शिष्याय यथोक्तं दन्तकाष्ठं मूलमन्त्रेण सप्तवाराभिमन्त्रितं दत्त्वा दन्तधावनं कारयेत्। दन्तान् विशोध्य दन्तकाष्ठं प्रक्षाल्य पुरश्चतुरस्रे हस्तमात्रे वा स्थण्डिले त्यजेत्। ततो गुरुस्तत्परीक्षां कुर्यात्। तत्र शुभाशुभफलानि प्रागेव प्रमाणनिरूपणे प्रोक्तानि, प्रायश्चित्तं चाग्रे वक्ष्यते। तत: शिष्योऽपि स्नात: कृतपौर्वाह्णिकक्रिय: समलंकृत: श्रीगुरुं प्रणम्य तदाज्ञया तत्पार्श्वे उपविशेत्। ततो गुरुश्च ऋत्विजश्च स्वस्वकुण्डे तथैव देवं साङ्गं सावरणं सम्पूज्य सघृतैस्तिलैस्तत्तत्कल्पोक्तपुरश्चरणहोमद्रव्यैर्वाऽष्टोत्तर-सहस्रमष्टोत्तरशतं वा जुहुयु:। ततो गुरु: शिष्यं शूद्रव्यतिरिक्तं पञ्चगव्यं पाययित्वा कुण्डसमीपं नीत्वा दिव्यदृष्ट्या विलोक्य तस्य हृदयारविन्दात् जीवात्मानं भूतशुद्ध्युक्तपरिपाट्या तद्देहाद् ब्रह्मरन्ध्रमार्गात् नि:सार्य स्वात्मनि गुरूक्तयुक्त्या योगबलेन संयोज्य शिष्यषडध्वशोधनं कुर्यात्। तत्र शिष्यस्य पादयो: कलाध्वानं निवृत्तिप्रतिष्ठाविद्याशान्तिशान्त्यतीताश्चेति पञ्चकलात्मकं सञ्चिन्त्य, ततस्तस्य लिङ्गप्रदेशे शिवशक्तिसदाशिवेश्वरशुद्धविद्यामायाकलाविद्याकालरागनियतिपुरुष-प्रकृत्यहङ्कारबुद्धिमन:श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवाक्पाणिपादपायूपस्थशब्दस्पर्शरूपरसगन्धाकाशवाय्वग्निसलिलपृथि-व्यात्मकषट्त्रिंशत्तत्त्वारूपं शिवतत्त्वाध्वानं ध्यायेत्। इति शैवदीक्षायाम्।

वैष्णवदीक्षायां तु—जीवप्राणधियो मन इन्द्रियदशकं तन्मात्रा:, भूतानां पञ्चकमपि हृत्पद्मतेजसां त्रितयं तद्वच्च वासुदेवप्रमुखाश्चत्वार उपदिष्टा इति। इन्द्रियदशकं प्रागुक्तं श्रोत्रादयो वागादयश्च। तन्मात्राश्च शब्दादय:। भूतपञ्चकमाकाशादि। तेजसां त्रितयं सोमसूर्याग्निमयं वासुदेवप्रमुखाश्च वासुदेवसङ्कर्षणप्रद्युम्नानिरुद्धाश्चत्वार:।

सौरदीक्षायां तु—भूततन्मात्रेन्द्रियाणि मनो गर्वश्च बुद्धिश्च धीस्तथा प्रधानं चेति। इन्द्रियाणि दश ज्ञानक्रमभेदात्। गर्वोऽहङ्कार:। प्रधानं प्रकृतितत्त्वम्।

शक्तिदीक्षायां तु—(निवृत्त्याद्या: पञ्च कला:, बिन्दु: नाद: शक्ति: सदाशिव: शिव इति दश तत्त्वानि। त्रिपददीक्षायां तु)—'आत्मविद्याशिवा एते विपरीतास्त एव च। सर्वतत्त्वं चे'ति। विपरीता: शिवविद्यात्मान: इति क्रमेण त एव च आत्मविद्याशिवा एवेति सप्त तत्त्वानि। इत्थं तत्तद्दीक्षायां तत्तदध्वानं चिन्तयेदिति। गाणपत्यदीक्षायां तु शैवतत्त्वान्येव ज्ञातव्यानि।

अध्वभावना-शोधनादि—प्रात:काल में गुरु शिष्य के साथ उठकर आवश्यक क्रिया करके एक वित्ता के दतुवन को मूल मन्त्र के सात जप से अभिमन्त्रित करके शिष्य को देकर उसका मुख धुलवाये। शिष्य दाँत साफ करने के बाद दतुवन को धोकर हाथ भर चतुरस्र पर या स्थण्डिल पर छोड़ दे। तब गुरु शिष्य की परीक्षा करे।

तदनन्तर शिष्य स्नान करके पौर्वाह्णिक क्रिया सम्पन्न कर समलंकृत होकर श्रीगुरु को प्रणाम करके उनकी आज्ञा से उनके बगल में बैठे। तब गुरु और ऋत्विज अपने-अपने कुण्ड में साङ्ग सावरण देवपूजन करके घी, तिल से तत्तत् कल्पोक्त पुरश्चरण द्रव्य से एक हजार आठ या एक सौ आठ हवन करे। तब शूद्र-भिन्न शिष्य को गुरु पञ्चगव्य पिलाकर कुण्ड के समीप लाकर दिव्य दृष्टि से देखकर उसके हृदयकमल से जीवात्मा को भूतशुद्धि विधि से देह के ब्रह्मरन्ध्र मार्ग से निकालकर अपनी आत्मा में गुरुक्त युक्ति से योग बल से जोड़कर शिष्य का षडध्व शोधन करे।

उस शिष्य के पैरों में निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति, शान्त्यतीता—इन पाँच कलाओं का चिन्तन करे। अनन्तर उसके लिङ्गप्रदेश में शिवशक्ति, सदाशिवेश्वर, शुद्ध विद्या, माया, कला, विद्या, काल, राग, नियति, पुरुष, प्रकृति, अहङ्कार, बुद्धि, मन श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण, वाक्, पाणि, पाद, वायु, उपस्थ, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, आकाश, वायु, अग्नि, सलिल, पृथिव्यात्मक छत्तीस तत्त्वरूप शिव तत्त्वाध्वान का चिन्तन करे। यही शैव दीक्षा की प्रक्रिया है।

वैष्णवी दीक्षा में जीव, प्राण, बुद्धि, मन, दश इन्द्रियाँ, तन्मात्रा, पञ्चभूत, हृत्पद्म, सोम, सूर्य, अग्नि एवं वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध का चिन्तन किया जाता है। सौर दीक्षा में भूततन्मात्रा, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ एवं पाँच कर्मेन्द्रियाँ, मन अहंकार, चित्त, बुद्धि धी एवं प्रधान अर्थात् प्रकृतितत्त्व का चिन्तन किया जाता है। शक्ति दीक्षा में निवृत्ति आदि पाँच कला, बिन्दु, नाद, शक्ति, सदाशिव एवं शिव—इन दश तत्त्वों का चिन्तन किया जाता है। त्रिपद दीक्षा में आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्व होते हैं। विपरीतक्रम से भी इनका चिन्तन किया जाता है। इनकी दीक्षा में उनके अध्वों का चिन्तन भी होता है। गाणपत्य दीक्षा में भी शैवतत्त्व का ही चिन्तन किया जाता है।

दीक्षाङ्गहोमविधिः

ततः शिष्यस्य नाभौ अतलवितलसुतलमहातलतलातलरसातलपातालभूर्भुवःस्वर्महर्जनस्तपःसत्यलोकात्मकचतुर्दशभुवनाध्वानं सञ्चिन्त्य, (ततस्तस्य हृदये आदिक्षान्तार्णस्वरूपं वर्णाध्वानं भावयेत्। ततः शिष्यललाटे वर्णसङ्घमयं पदाध्वानं विभावयेत्।) ततः शिष्यशिरसि पदसमुदायमयं मूलमन्त्रस्वरूपं मन्त्राध्वानं भावयेत्, इति शिष्यशरीरेऽध्वषट्कं सञ्चिन्त्य, तं कूर्चेन स्पृशन् गुरुः, स्वकुण्डे 'ॐ अमुकस्य कलाध्वानं शोधयामि स्वाहा' इति घृताक्तैस्तिलैरष्टधा हुत्वा कलाध्वानं तत्त्वाध्वनि विलीनं विभाव्य 'ॐ अमुकस्य तत्त्वाध्वानं शोधयामि स्वाहा' इत्यष्टधा हुत्वा तत्त्वाध्वानं भुवनाध्वनि विलीनं विभाव्य पुनः 'ॐ अमुकस्य भुवनाध्वानं शोधयामि स्वाहा' इत्यष्टधा हुत्वा भुवनाध्वानं वर्णाध्वनि विलीनं विमाव्य पुनः 'ॐ अमुकस्य वर्णाध्वानं शोधयामि स्वाहा' इत्यष्टधा हुत्वा तं पदाध्वनि विलीनं विभाव्य पुनः 'ॐ अमुकस्य पदाध्वानं शोधयामि स्वाहा' इत्यष्टधा हुत्वा तं मन्त्राध्वनि विलीनं विभाव्य पुनः 'ॐ अमुकस्य मन्त्राध्वानं शोधयामि स्वाहा' इत्यष्टधा हुत्वा तं ब्रह्मरन्ध्रस्थपरशिवे लीनं विभाव्य पुनः संहृतिप्रतिलोमेन परमशिवस्य सकाशात् मन्त्राध्वानं सृष्ट्वा, ततः पदाध्वानं तस्माद्वर्णाध्वानं ततो भुवनाध्वानं तस्मात्तत्त्वाध्वानं ततः कलाध्वानं च सृष्ट्वा तत्तत्स्थाने संस्थाप्य, शिष्यं दिव्यदृष्ट्या विलोक्य, स्वस्मिन् स्थितं शिष्यचैतन्यं ततो हृदयारविन्दे आवाहनोक्तप्रकारेण तद्ब्रह्मरन्ध्रे नियोजयेत्। अत्र शूद्रसङ्करजातीनामध्वशोधनं न कार्यम्। तेषां पादोदकप्रदानेन शोधनं कुर्यात्। ततः पूर्ववत् स्वेष्टदेवताया अङ्गावरणदेवतानां घृतेनैकैकामाहुतिं दत्त्वा, ॐ भूरग्नये च पृथिव्यै च महते च स्वाहा, ॐ भुवो वायवे चान्तरिक्षाय च महते च स्वाहा, ॐ स्वरादित्याय च दिवे च महते च स्वाहा, ॐ भूर्भुवःस्वश्चन्द्रमसे च नक्षत्रेभ्यश्च दिग्भ्यश्च महते च स्वाहा इत्याहुतिचतुष्टयं हुत्वा, इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत् स्मृतं यदुक्तं यत्कृतं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा, इत्यष्टावाज्याहुतीर्हुत्वा,

ॐ सहस्रार्चिर्महातेजा नमस्ते बहुरूपधृक्। सर्वाशिने सर्वगत पावकाय नमोऽस्तु ते ॥१॥
त्वं रौद्र घोरकर्मा च घोरहा त्वं नमोऽस्तु ते। विष्णुस्त्वं लोकपालोऽसि शान्तिमत्र प्रयच्छ मे ॥२॥

इत्यग्निं प्रार्थ्य अग्निमन्त्रेण प्राग्वदग्निं सम्पूज्य, न्यूनातिरिक्तसिद्ध्यर्थं ददामि सघृतं तिलं ॐहूं साङ्गं कुरु कुरु स्वाहा, इति तिलैराहुतिं हुत्वा, घृतेन स्रुवमापूर्य तदुपरि पुष्पमधोमुखं स्रुचं च निधाय शङ्खवत्सम्पुटाभ्यां कराभ्यां गृहीत्वोत्थाय, स्रुक्स्रुवयोर्मूलं नाभौ निधाय वौषडन्तेन मन्त्रेणाहुतित्रयं दत्त्वा प्राग्वत्तत्र देवं सम्पूज्य वह्नेः सकाशादुद्वास्य कलशे विसृज्य, प्राग्वद् व्याहृत्याग्निजिह्वाङ्गमूर्तिमन्त्रैरेकैकामाज्याहुतिं हुत्वा प्राग्वत् प्रोक्षणीय-जलेनाग्निं परिषिच्य,

भो भो वह्ने महाशक्ते सर्वकामप्रसाधक। कर्मान्तरेऽपि सम्प्राप्ते सान्निध्यं कुरु सादरम्॥१॥

इत्यग्निं प्रार्थ्य, संहारमुद्रया तं स्वात्मन्युद्वास्य परिधीन् परिस्तरणांश्च तूष्णीमग्नौ प्रक्षिप्य, प्रणीतापात्रमुद्वास्य स्वपुरतः कुशास्तरे निधाय, ॐ प्राच्यै दिशे नमः, एवं दक्षिणायै दिशे नमः, प्रतीच्यै दिशे नमः, उदीच्यै दिशे नमः, ऊर्ध्वायै दिशे नमः, इति तत्तद्दिशि प्रणीताजलमुत्क्षिप्य, अधरायै दिशे नमः, इति भूमौ जलं निक्षिप्य, भूमौ पतितजलेन स्वात्मानं शिष्यं च कुशैः सम्प्रोक्षयेदिति प्रणीतोद्वासनं विधाय, ब्रह्माणमुद्वास्य ब्रह्मस्थाने ब्राह्मणाय सहिरण्यं पूर्णपात्रं दापयेत् इति दीक्षाङ्गहोमविधिः। पूर्णपात्रस्वरूपं तु दीक्षाप्रकरणेऽभिहितम्।

तदनन्तर शिष्य की नाभि में अतल, वितल, सुतल, महातल, तलातल, रसातल, पाताल, भूर्भुवः स्वः महः जनः तपः सत्य लोकात्मक चौदह भुवनाध्वान का चिन्तन करके उसके हृदय में 'अ' से लेकर क्ष-पर्यन्त वर्णाध्वा की भावना होती है। तब शिष्य के ललाट में वर्ण संघमय पदाध्वा की भावना होती है। तब शिष्य के शिर में पदसमुदायमय मूल मन्त्रस्वरूप मन्त्राध्वा की भावना होती है। इस प्रकार शिष्य के शरीर में छः अध्वों का चिन्तन करके उन्हें कूर्च से स्पर्श गुरु अपने कुण्ड में इस प्रकार हवन करे—ॐ अमुकस्य कलाध्वानं शोधयामि स्वाहा; घृताक्त तिल से आठ आहुतियाँ निक्षिप्त करे। तदनन्तर कलाध्वा को तत्त्वाध्वा में विलीन करके 'ॐ अमुकस्य तत्त्वाध्वानं शोधयामि स्वाहा' इस प्रकार आठ हवन करके तत्त्वाध्वा को भुवनाध्वा में विलीन करके पुनः 'ॐ अमुकस्य भुवनाध्वानं शोधयामि स्वाहा' कहकर आठ आहुतियाँ डाले। इस प्रकार भुवनाध्वा को वर्णाध्वा में विलीन करके 'ॐ अमुकस्य वर्णाध्वानं शोधयामि स्वाहा' कहकर आठ आहतियों डाले। तदनन्तर वर्णाध्वा को पदाध्वा में विलीन करके ॐ अमुकस्य पदाध्वानं शोधयामि स्वाहा कहकर आठ आहुतियाँ निक्षिप्त करे और उस पदाध्वा को मन्त्राध्वा में विलीन करके 'ॐ अमुकस्य मन्त्राध्वानं शोधयामि स्वाहा' कहकर आठ आहुतियाँ डाले। उस मन्त्राध्वा को ब्रह्मरन्ध्रस्थ परशिव में विलीन करके पुनः संहृति प्रतिलोम से परमशिव के समीप से मन्त्राध्वा को उत्पन्न करके उससे पदाध्वा को उस वर्णाध्वा, से भुवनाध्वा, भुवनाध्वा से तत्त्वाध्वा, तत्त्वाध्वा से कलाध्वा उत्पन्न करके अपने-अपने स्थान में उन्हें स्थापित करे। दिव्य दृष्टि से शिष्य का अवलोकन करे। अपने में स्थित शिष्यचैतन्य को हृदयारविन्द में आवाहनादि प्रकार से ब्रह्मरन्ध्र में नियोजित करे। शूद्र एवं सङ्कर जातियों का अध्वशोधन नहीं होता; उन्हें चरणोदक-प्रदान से ही शुद्ध करे।

इसके बाद पूर्ववत् अपने इष्ट देवता के अङ्गावरण देवताओं को घी की एक-एक आहुति देकर ॐ भूरग्नये च पृथिव्यै च महते च स्वाहा। ॐ भुवो वायवे चान्तरिक्षाय च महते च स्वाहा, ॐ स्वरादित्याय च दिवे च महते च स्वाहा, ॐ भूर्भुवःस्वश्चन्द्रमसे च नक्षत्रेभ्यश्च दिग्भ्यश्च महते च स्वाहा—इस प्रकार चार आहुतियों से हवन करके आठ आहुतियाँ मन्त्र से निक्षिप्त करे—इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत् स्मृतं यदुक्तं यत्कृतं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा। तदनन्तर निम्न मन्त्र से अग्नि की प्रार्थना करे—

ॐ सहस्रार्चिर्महातेजा नमस्ते बहुरूपधृक्। सर्वाशिने सर्वगत पावकाय नमोऽस्तु ते।।
त्वं रौद्र घोरकर्मा च घोरहा त्वं नमोऽस्तु ते। विष्णुस्त्वं लोकपालोऽसि शान्तिमत्र प्रयच्छ मे।।

अग्नि की प्रार्थना करके पूर्ववत् अग्नि मन्त्र से अग्नि की पूजा करे। तत्पश्चात् 'न्यूनातिरिक्तसिद्ध्यर्थं ददामि सघृतं तिलं ॐ हूं साङ्गं कुरु कुरु स्वाहा' मन्त्र से तिल की आहुति से हवन करे। स्रुव को घी से भरकर उसके ऊपर पुष्प एवं अधोमुख स्रुच को रखकर शङ्खवत् सम्पुटित हाथों से पकड़कर उठाये। स्रुच एवं स्रुव के मूल को नाभि पर रखकर वौषडन्त मन्त्र से तीन आहुतियाँ डाले। पूर्ववत् देव का पूजन करके अग्नि के समीप से उसका उद्वासन कर कलश में विसर्जन करके पूर्ववत्

व्याहृति, अग्नि जिह्वा, अङ्ग, मूर्तिमन्त्रों से एक-एक आज्याहुति से हवन करे। तदनन्तर पूर्ववत् प्रोक्षणी के जल से अग्नि का परिषेचन करे और निम्न मन्त्र से अग्नि की प्रार्थना करे—

भो भो वह्ने महाशक्ते सर्वकामप्रसाधक। कर्मान्तरेऽपि सम्प्राप्ते सान्निध्यं कुरु सादरम्।।

इस प्रकार अग्नि की प्रार्थना करके संहारमुद्रा उसे अपनी आत्मा में स्थापित करे परिधियों एवं परिस्तरणों को मौनभाव से अग्नि में प्रक्षिप्त कर दे। प्रणीता पात्र का उद्वासन करके उसे अपने आगे कुशास्तरण पर रखकर ॐ प्राच्यै दिशे नमः। इसी प्रकार रखकर दक्षिणायै दिशे नमः, प्रतीच्यै दिशे नमः, उदीच्यै दिशे नमः, ऊर्ध्वायै दिशे नमः कहकर इन दिशाओं में प्रणीता के जल को उछाले। अधरायै दिशे नमः से भूमि पर जल छोड़े। भूमि पर गिरे जल से अपना और शिष्य का कुश से सम्प्रोक्षण करे। इस प्रकार प्रणीता का उद्वासन करने के बाद ब्रह्मा का उद्वासन करके ब्रह्मस्थान में स्थित ब्राह्मण को सोना-सहित पूर्णपात्र प्रदान करे। यही दीक्षाङ्ग होमविधि होती है। पूर्णपात्र का स्वरूप दीक्षा प्रकरण में विवेचित किया गया है।

ततो नेत्रमन्त्रेण शिष्यनेत्रे नूतनवस्त्रपट्टेन बद्ध्वा तं हस्तेन गृहीत्वा कुम्भसमीपे गत्वा तेन सह, तस्याञ्जलिं पुष्पैरापूर्य स्वयं मूलमन्त्रमुच्चरन्, घटस्थदेवतायै पुष्पाञ्जलिं दापयित्वा तस्य नेत्रबन्धनं विमुच्य कुशास्तरे तमुपवेश्य,

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया। चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।१।।

इति मन्त्रं पाठयित्वा कुम्भे देवं साङ्गावरणं सर्वोपचारैः सम्पूज्य, प्रागुक्तभूतशुद्धिविधिना शिष्यस्य देहं संस्मृत्य संशोध्योत्पाद्य, तस्य देहे मूलमन्त्रस्य ऋष्याद्यखिलन्यासजालं विधाय, पुनः कुम्भस्थदेवतां गन्धादिपञ्चोपचारैः सम्पूज्य, मण्डपद्वारदेवताः सलोकपालाङ्गावरणदेवता गणेशादिचतुरायतनदेवताः स्वस्वाङ्गावरणसहिता देवस्याङ्गे विलीना इति विभाव्य, तं प्रागुक्तविधिना षडङ्गन्यासयोगेन सकलीकृत्य तेजोरूपमापाद्य, तत्तेजोरूपं कलशजलं परब्रह्ममयं सञ्चिन्तयन्, शिष्यं समलंकृतं वेद्याः समीपे पूर्वेशानोत्तरान्यतमदिशि सर्वतोभद्रादिमण्डले पूर्वाभिमुखं भद्रपीठे समुपवेश्य, पञ्चवाद्यघोषपुरःसरं गुरुः कुम्भं समुद्धृत्य, कुम्भस्थाम्रपल्लवादिकं कल्पवृक्षशाखाबुद्ध्या शिष्यशिरसि निधाय, वेदघोषं कुर्वद्भिर्ऋत्विग्भिरन्यैश्च ब्राह्मणैः सह मूलमन्त्रेण विलोममातृकया तं पूर्वाभिमुखोपविष्टमुत्तराभिमुखस्तिष्ठन् अभिषिच्य, पुनः पूर्वमभ्यर्चितमस्त्ररूपं गृहीत्वा, तत्तोयैरभिषिच्य, तत्करकावशिष्टजलेन शिष्यमाचामयित्वा, देवतास्वरूपं तं प्राग्वत् षडङ्गन्यासेन सकलीकृत्य, शुद्धे नूतने वाससी परिधाप्य स्वाचान्तं स्वसमीपे समुपवेश्य, शिष्यदेहे संक्रान्तं देवं तस्यैव देहे गन्धादिपञ्चोपचारैः सम्पूज्य शिष्यदेवतयोरैक्यं बिभावयन्, सुविनीतस्य शिष्यस्य दक्षिणकर्णे श्रीमूलमन्त्रं गणेशादिचतुरायतनमन्त्रपूर्वकं, गणेशदीक्षायां सूर्यादिपूर्वकं तत्तदङ्गतया पूजनक्रमेण वारत्रयं च वदेत्। शिष्यो ब्राह्मणश्चेत्तस्य हस्ते मन्त्रदानरूपेणोदकं दद्यात्, अन्येभ्यस्त्वेवमेव वदेत्। ततः शिष्यः स्वगुरूपदिष्टमन्त्रमृष्यादिक-रषडङ्गन्यासपूर्वकमष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिवारमष्टधा वा जपित्वा, जपं समर्प्य गुरुमन्त्रदेवतानामैक्यं विभाव्य, साष्टाङ्गं बहुशो गुरुं प्रणम्य पुनः पञ्चाङ्गं प्रणमेत्। तत्राष्टाङ्गपञ्चाङ्गयोर्लक्षणमुक्तं प्रागेव प्रमाणे। इत्थं प्रणम्य गुरवे ऋत्विग्भ्यश्च प्रमाणोक्तां दक्षिणां दद्यात्, इति क्रियामयी दीक्षा।

तब नेत्रमन्त्र से शिष्य की आँखों पर नये वस्त्र की पट्टी बाँधकर उसे हाथ से पकड़कर कलश के समीप उसके साथ जाकर उसकी अञ्जली को पुष्प से भरकर स्वयं मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुये घटस्थ देवता को पुष्पाञ्जलि दिलवाने के बाद उसके आँखों की पट्टी खोलकर कुशास्तर पर बैठाकर उससे निम्न मन्त्र पढ़वाये—

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया। चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

मन्त्र पढ़वाकर कलश के देव का साङ्गावरण सभी उपचारों से पूजन करे। तत्पश्चात् पूर्वोक्त भूतशुद्धि विधि से शिष्य के देह का स्मरण, संशोधन एवं उत्पादन करके उसके देह में मूलमत्र के ऋष्यादि सभी न्यासों को करके पुनः कलशस्थ देवता का गन्धादि पञ्चोपचार से पूजन करे। तब मण्डप द्वारा देवता, लोकपाल, अङ्गदेवता, आवरणदेवता, गणेश आदि चतुरायतन देवता अपने-अपने अङ्गावरण सहित देवता के अङ्ग में विलीन हो गये, इस प्रकार चिन्तन करते हुये पूर्वोक्त विधि से षडङ्ग

न्यासादि द्वारा सकलीकरण कर उसे तेजोरूप बनाकर उस तेजोरूप कलशजल को परब्रह्ममय समझते हुये समलंकृत शिष्य को वेदी के समीप पूर्व ईशान उत्तर में से किसी दिशा में सर्वतोभद्रादि मण्डलस्थ में भद्रपीठ पर पूर्वाभिमुख बैठाकर। पाँच प्रकार के बाजा बजवाते हुए गुरु कलश को उठाकर कुम्भस्थ आम्रपल्लवादि को कल्पवृक्ष शाखा मानकर शिष्य के शिर पर रखे। ऋत्विजों और अन्य ब्राह्मणों के वेदघोष के साथ मूल मन्त्र से विलोम मातृका से शिष्य को पूर्वमुख बैठाकर स्वयं गुरु उत्तरमुख बैठकर उसका अभिषिञ्चन करे। पुनः पूर्व अभ्यर्चित अस्त्ररूप ग्रहण करके उसी जल से अभिषेचन करने के बाद बचे हुए जल से शिष्य को आचमन कराये। देवतास्वरूप शिष्य का पूर्ववत् षडङ्ग न्यास से सकलीकरण करे। शुद्ध नया वस्त्र पहनाये। अपने समीप बैठाये। शिष्यदेह में संक्रान्त देव को उसी के देह में गन्धादि पञ्चोपचार से पूजन करके शिष्य और देवता में ऐक्य की भावना करे। सुविनीत शिष्य के दक्षिण कान में श्री मूल मन्त्र को गणेशादि चतुरायतन मन्त्रपूर्वक, गणेश-दीक्षा में सूर्यादिपूर्वक तत्तत् अङ्गतया पूजन करके तीन बार कहे। ब्राह्मण शिष्य के हाथ में मन्त्रदानरूप जल देवे। ब्राह्मणेतर को इसी प्रकार कहे। तब शिष्य स्वगुरूपदिष्ट मन्त्र के ऋष्यादि कर षडङ्ग न्यास करके एक सौ आठ बार अथवा अट्ठाईस बार या आठ बार मन्त्र का जप का करे। जप समर्पण करे। गुरु, मन्त्र एवं देवता में ऐक्य की भावना करे। गुरु को साष्टाङ्ग प्रणाम श्रद्धापूर्वक बार करके पञ्चाङ्ग प्रणाम करे। इस प्रकार गुरु और ऋत्विजों को प्रणाम करके प्रमाणोक्त दक्षिणा प्रदान करने से क्रियामयी दीक्षा की विधि पूर्ण होती है।

क्रियादीक्षाकरणाशक्तौ संक्षेपविधिः

अथैवं विस्तरतः क्रियादीक्षां कर्तुमशक्तश्चेत् पूर्वोक्ते कनिष्ठमण्डपं प्राग्वद्वेदिकायां मण्डलं कृत्वा तथैव तत्र कुम्भस्थापनं कृत्वा, ऋत्विग्वरणाशक्तौ गुरुश्चतुरस्त्रमेव कुण्डं कृत्वा, तत्राग्निस्थापनाद्यखिलं कृत्वोक्तविधिनाभिषिच्य दीक्षां दद्यात्। मण्डपकरणाशक्तौ क्वचित् प्रशस्ते स्थले प्राग्वत् मण्डलं तत्तद्देवतापूजाचक्रं च वा कृत्वा, तदशक्तौ प्रागुक्तविधिना स्थण्डिलं कृत्वा तत्रोक्तविधिनाग्निं संस्थाप्योक्तविधिना होमादिकं कृत्वाभिषिच्य मन्त्रं दद्यात्।

इस प्रकार की विस्तृत क्रिया-दीक्षा करने में असमर्थ होने पर पूर्वोक्त कनिष्ठ मण्डप वेदी मण्डल बनाकर उसी प्रकार कलश-स्थापन करे। ऋत्विजों के वरण में अशक्त होने पर गुरु चतुरस्त्र कुण्ड ही बनाये। उसमें अग्निस्थापन आदि सभी कृत्य करे। उक्त विधि से अभिषेचन करके दीक्षा प्रदान करे। मण्डल बनाने में अशक्त होने पर किसी प्रशस्त स्थल में पूर्ववत् मण्डल बनाकर उस देवता का पूजाचक्र बनाकर दीक्षा दे। इसे करने में भी अशक्त होने पर पूर्वोक्त विधि से स्थण्डिल बनाकर उक्त विधि से अग्निस्थापन करे एवं उक्त विधि से हवनादि करके अभिषेक करके मन्त्र प्रदान करे।

अग्नेर्वर्णादिफलम्

अथ येऽग्नेर्वर्णाद्यास्तानाह, तत्र नारदपञ्चरात्रे—

अग्नेर्भासश्च गन्धाश्च शब्दाश्चाकृतयस्तथा। विकाशाश्च शिखाश्चैव संवेद्याः कर्मसिद्धये ॥१॥
पद्मरागद्युतिः श्रेष्ठो लाक्षारससमप्रभः। बालार्कवर्णो हुतभुग्जपाभः शस्यते बुधैः ॥२॥
इन्द्रगोपकसंकाशः शोणिताभोऽथ पावकः। शक्रचापनिभः श्रेष्ठः कुसुम्भाभस्तथैव च ॥३॥
रक्तानां पुष्पजातीनां वर्णेनाग्निरिहोच्यते। इति।

अथ गन्धः—

सुगन्धद्रव्यगन्धोऽग्निर्घृतगन्धः सुशोभनः। आयुर्दः पद्मगन्धः स्याद्बिल्वगन्धश्च सुव्रतः ॥१॥
नागचम्पकपुन्नागपाटलीयूथिकानिभः। पद्मेन्दीवरकह्लारसर्पिगुग्गुलसन्निभः ॥२॥
पावकस्य शुभो गन्धः······················। इति।

अथ शब्दः—

जीमूतवल्लकीशिखिमृदङ्गध्वनितुल्यकः। शब्दोऽग्नेः सिद्धये होतुरन्यथा स्यादसिद्धिदः ॥१॥ इति।

शारदातिलके—'भेरीवारिदहस्तीन्द्रध्वनिर्वह्नेः शुभावहः' इति।

अथाकृतिः—

वृत्ताकारो द्विजश्रेष्ठ ध्वजचामरसन्निभः। विमानानां हयानां च प्रासादानां वृषस्य च ॥१॥
आकारेणाथ हंसानां मयूराणां च सिद्धिदः। तदाकृतिः सदा वह्निः सद्यः सिद्धिकरः स्मृतः ॥२॥
शेषाणां दंष्ट्रिणां रूपं न शस्तं होमकर्मणि। यद्रूपं कथितं चैतद्यदि तस्य प्रतीक्षणम् ॥३॥
अन्योन्यत्वं प्रपद्येत तदा सिद्धिकरोऽनलः। इति।

अथ शिखाः—

विषमाश्च शिखा वह्नेस्त्र्यादयश्च शुभावहाः। ह्रस्वा ह्रस्वोन्नता दीर्घाग्निज्वालाः सिद्धिदाः स्मृताः ॥१॥ इति।

तथा शारदातिलके—

प्रदक्षिणास्त्यक्तकम्पाश्छत्राभाः शिखिनः शिखाः। शुभदा यजमानस्य राज्यस्यापि विशेषतः ॥१॥ इति।

अथ नारदपञ्चरात्रे—

प्रदीप्ते लेलिहानेऽग्नौ निर्धूमे सगुणे तथा। हृद्ये तुष्टिप्रदे चैव होतव्यं सिद्धिमिच्छता ॥१॥
स्निग्धः प्रदक्षिणावर्तः सुशब्दश्चापि यो भवेत्। नित्यमेवं शुभकरो यदन्यैर्वर्जितोऽगुणैः ॥२॥ इति।

अथ निषिद्धः—

अल्पतेजाश्च रूक्षश्च विफुलिङ्गसमन्वितः। धूमावलीढज्वालश्च कृशानुर्नैव सिद्धिदः ॥१॥
दुर्गन्धश्चावलीढश्च सितकृष्णश्च यो भवेत्। भूमिं च विलिखेद्यस्तु सोऽपि दद्यात्पराभवम् ॥२॥ इति।

तथा शारदातिलके—

कृष्णः कृष्णगतेर्वर्णो यजमानं विनाशयेत्। श्वेतो राष्ट्रं निहन्त्याशु वायसस्वरसन्निभः ॥१॥
खरस्वरसमो वह्नेर्ध्वनिः सर्वविनाशकृत्। पूतिगन्धो हुतवहो होतुर्दुःखप्रदो भवेत् ॥२॥
छिन्नावृत्ता शिखा कुर्यान्मृत्युं धनपरिक्षयम्। शुकपक्षनिभो धूमः पारावतसमप्रभः ॥३॥
हानिं तुरङ्गजातीनां गवां च कुरुतेऽचिरात्। इति।

तथा तन्त्रसारे—

खरोष्ट्रमहिषादीनां रुतमत्र न सिद्धये। रूक्षश्चटचटाशब्दस्त्वपसव्यगतिस्तथा ॥१॥
उल्लिखेद्वसुधां यश्च यश्चाधःशिख एव च। नेष्यतेऽसौ मुनिश्रेष्ठ शास्त्रेऽस्मिन् पारमेश्वरे ॥२॥ इति।

अत्रैवंविधेषु दोषेषु प्रायश्चित्तमुक्तं कुलप्रकाशतन्त्रे—

एवंविधेषु दोषेषु प्रायश्चित्ताय देशिकः। मूलेनाज्येन जुहुयात् पञ्चविंशतिमाहुतीः ॥१॥
पञ्चविंशतिरेकैकस्मिन् दोषे।

अग्निवर्णादि के फल—नारदपञ्चरात्र में कहा गया है कि अग्नि के प्रकाश, गन्ध, शब्द, आकृति, विकाश एवं शिखा से कर्मसिद्धि का विचार करे। पद्मराग द्युति श्रेष्ठ होती है। लाक्षारस के समान प्रभा, नवोदित सूर्य की प्रभा, अड़हुल फूल के समान प्रभा प्रशस्त होती है। इन्द्रगोप वर्ण की आभा, लहू के रङ्ग के समान प्रकाश और इन्द्रधनुष के समान प्रकाश वाला पावक श्रेष्ठा होता है। इसी प्रकार कुसुम्भपुष्प के समान आभा और लाल फूलों के समान वर्ण वाला पावक श्रेष्ठ होता है।

गन्ध—सुगन्धित द्रव्यों का गन्ध, घृताग्नि का गन्ध, कमल का गन्ध एवं बेल का गन्ध आयु प्रदान करने वाला होता है। नागचम्पा, पुन्नाग, पाटलि, जूही, कमल, नीलकमल, कल्हार, गोघृत एवं गुग्गुलयुक्त अग्नि का गन्ध शुभ माना जाता है।

शब्द—जीमूत, वल्लकी, मोर, मृदङ्ग के शब्द के समान अग्नि के शब्द सिद्धिदायक होते है; अन्य शब्द सिद्धिदायक नहीं होते। शारदातिलक में कहा गया है कि ढोल, बादल, हाथी, इन्द्रध्वनि के समान अग्नि के शब्द शुभावह होते हैं।

आकृति—वृत्ताकार, ध्वज एवं चामर के समान, विमान, घोड़े, प्रासाद, वृष, हंस एवं मोर के आकार की अग्नि सद्य: सिद्धिदायक होती है। शेष एवं दाँत वाले रूप की अग्नि होमकर्म में प्रशस्त नहीं होती। इन कथित रूपों की अग्नि की प्रतिक्षण अन्योन्यत्व प्रतिपादित होने से सिद्धिकारक होती है।

शिखा—अग्नि की विषम शिखा शुभावह होती है। ह्रस्व, ह्रस्वोन्नत एवं दीर्घ अग्निज्वाला सिद्धिदायक होती है। शारदातिलक में कहा गया है कि प्रदक्षिणा करती हुई, कम्पनरहित, छत्राकार एवं मोरपंख के समान अग्नि-शिखा यजमान के लिये शुभद होती है। विवेषत: राजाओं के लिये यह अत्यन्त शुभदायक होती है। नारदपञ्चरात्र में कहा गया है कि प्रदीप्त, लपलपाती शिखा वाली निर्धूम, सगुण, रुचिकारक एवं तुष्टिप्रद अग्नि में सिद्धि की इच्छा से हवन करना चाहिये। स्निग्ध प्रदक्षिणावर्त सुशब्द अग्नि नित्य शुभद होती है।

निषिद्ध अग्नि—कम तेज वाली, रूखी, चिनगारी वाली एवं धूमावली-युक्त ज्वाला से सिद्धि नहीं मिलती। दुर्गन्धयुक्त, उजले काले रङ्ग वाला पावक पराभव देता है। शारदातिलक में कहा गया है कि काले रङ्ग की ज्वाला में हवन करने से यजमान का विनाश होता है। उजले वर्ण की अग्नि में हवन करने से राष्ट्र का नाश होता है। कौआ के समान स्वर और गदहे की बोली के समान शब्दयुक्त अग्नि में हवन से सब कुछ नष्ट हो जाता है। वदबूदार अग्नि में हवन होता के लिये दु:खप्रद होता। छिन्ना एवं आवृता शिखा मृत्युकारक और धनक्षयकारक होती है। सुग्गे के पंख के समान धूम्रयुक्त एवं कबूतर के समान प्रभायुक्त अग्नि में हवन से घोड़ों, गायों का अल्पकाल में ही विनाश होता है।

तन्त्रसार में कहा गया है कि गदहा, ऊँट, भैंसे की बोली के समान शब्दयुक्त अग्नि में हवन से सिद्धि नहीं मिलती। रूखा, चटचट शब्दयुक्त, अपसव्य गति वाली, भूमि को छूने वाली, नीची शिखा वाली अग्नि को अनिष्टप्रद कहा गया है।

इन दोषों से युक्त अग्नि में हवन के लिये प्रायश्चित्त कुलप्रकाशतन्त्र में कहा गया है कि इस प्रकार के दोषों के निवारण के लिये देशिक को मूल मन्त्र से पच्चीस आहुति गोघृत की डालनी चाहिये। यहाँ पर प्रत्येक दोष के लिये अलग-अलग पच्चीस आहुतियाँ देय हैं।

सात्त्विकादिजिह्वाभेद:

अथ वह्ने: सात्त्विकादिजिह्वाभेदा:—तत्र दीक्षाङ्गहोमे सात्त्विकशान्तिकहोमे हिरण्याद्या: प्रागेवोक्ता:। अथ वश्यादिकाम्यहोमेषु राजस्यो जिह्वा: कुलमूलावतारे—

राजस्य: पद्मरागैका सुवर्णा भद्रलोहिता। चतुर्थी लोहिता श्वेता धूमिन्यन्या करालिका ॥१॥ इति।

तामस्योऽपि तत्रैव—

····················तामस्यो विश्वमूर्तिका। स्फुलिङ्गिनी धूम्रवर्णा चतुर्थी तु मनोजवा ॥१॥
पञ्चमी लोहिताख्या स्यात्कराली गदिता तथा। काली च सप्तमी प्रोक्ता ज्ञातव्या: कार्यभेदत: ॥२॥
यागक्रियाकाम्यहोमक्रूरहोमेषु च क्रमात्। इति।

अग्नि के सात्त्विक आदि जिह्वाभेद—दीक्षाङ्ग हवन में सात्त्विक, शान्तिक हवन में हिरण्यादि जिह्वा का वर्णन पहले ही किया जा चुका है। वश्यादि काम्य होम में राजसिक जिह्वा के बारे 'कुलमूलावतार' में कहा गया है कि राजसिक अग्निज्वाला पद्मराग के समान वर्ण वाली, सुवर्णा, भद्रलोहिता, लोहिता, श्वेता, धूमिनी एवं करालिका होती है। वहीं पर तामसिक अग्निज्वाला को बताते हुये कहा गया है कि विश्वमूर्तिका, स्फुलिङ्गिनी, धूम्रवर्णा, मनोजवा, लोहिताख्या, कराली एवं काली—ये सात कार्यभेद से तामसी अग्निज्वाला कही गई हैं। ये सभी यागक्रिया, काम्य होम एवं क्रूर होम में क्रम से होती हैं।

सात्त्विकादिजिह्वाभेदः

अथ जिह्वानामधिदेवताः कुलप्रकाशतन्त्रे—

जिह्वानामधिदेवाः स्युर्विबुधाः पितरस्तथा। गन्धर्वयक्षनागाश्च पिशाचा राक्षसास्तथा ॥१॥
रसनासु सुरादीनां जुहुयात् कार्यसिद्धये। तृप्ता दद्युस्ततो देवा वाञ्छितां सिद्धिमुत्तमाम् ॥२॥
रसनाः स्वीयनामाभाः कृशानोः प्रायशो मताः। इति।

उत्तरतन्त्रे—

वैश्वानरं स्थितं ध्यायेत् समिद्धोमेषु देशिकः। शयानमाज्यहोमेषु निषण्णं शेषकर्मसु ॥१॥ इति।

अथात्र होमकाले वह्नेर्जिह्वाशिरःकर्णादिकं ज्ञात्वा जिह्वायामेव जुहुयात्। तथा चोक्तं महाकपिलपञ्चरात्रे राहुकल्पे च—

सर्वकार्यप्रसिद्ध्यर्थं जिह्वायां तस्य होमयेत्। चक्षुःकर्णादिकं ज्ञात्वा होमयेद् देशिकोत्तमः ॥१॥
अग्निकर्णे हुतं यत्तत्कुर्याच्च व्याधितो भयम्। नासिकायां महद्दुःखं चक्षुषोर्नाशनं भवेत् ॥२॥
केशे दारिद्र्यदं प्रोक्तं तस्माज्जिह्वासु होमयेत्। यत्र काष्ठं तत्र कर्णौ यत्र धूमस्तु नासिका ॥३॥
यत्राल्पज्वलनं नेत्रं यत्र भस्म तु तच्छिरः। यत्र प्रज्वलितो वह्निस्तत्र जिह्वाः प्रकीर्तिताः ॥४॥ इति।

तथा शारदातिलके—

आस्यान्तर्जुहुयाद्वह्नेः विपश्चित् सर्वकर्मसु। कर्णहोमे भवेद्व्याधिर्नेत्रे त्वन्धत्वमीरितम् ॥१॥
नासिकायां मनःपीडा मस्तके धनसंक्षयः। सधूमोऽग्निः शिरः प्रोक्तं निर्धूमश्चक्षुरेव च ॥२॥
ज्वलन् कृशो भवेत्कर्णः काष्ठमग्नेश्च नासिका। अग्निर्विजायते यत्र शुद्धस्फटिकसन्निभः ॥३॥
तन्मूलं तत्र विज्ञेयं चतुरङ्गुलमानतः। इति।

जिह्वाओं के अधिदेवता—कुलप्रकाशतन्त्र में कहा गया है कि देवता, पितर, गन्धर्व, यक्ष, नाग, पिशाच एवं राक्षस जिह्वाओं के अधिदेवता कहे गये हैं। कार्यसिद्धि के लिये देवताओं का हवन जिह्वाओं में करना चाहिये। इससे देवता तृप्त होकर वाञ्छित उत्तम सिद्धि देते हैं। अपने-अपने नाम के अनुसार ही इन अग्नियों की ज्वाला होती है। उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि समिधा हवन में देशिक अग्नि के बैठे रूप का ध्यान करे। आज्य हवन में सोये हुए रूप का ध्यान करे एवं शेष कार्यों में बैठे हुए का ध्यान करे। हवन के समय अग्नि के जीभ, शिर, कान आदि को जानकर जिह्वा में ही हवन करना चाहिये। इसीलिये महाकपिलपञ्चरात्र के राहुकल्प में कहा है कि सभी कार्यों की सिद्धि के लिये अग्नि की जिह्वा में हवन करना चाहिये। आँख, कान को जानकर ही देशिकोत्तम हवन करे। अग्निकर्ण में हवन करने से व्याधि होती है। नाक में हवन से महादुःख और आँख में हवन से नाश होता है। केश में हवन करने से दरिद्रता होती है। इसलिये जिह्वा में ही हवन करना चाहिये। जहाँ लकड़ी हो वहाँ कान एवं जहाँ धूआँ होता है, वहाँ नाक होता है। जहाँ ज्वलन होता है वहाँ नेत्र और जहाँ भस्म होता है वहाँ पर शिर होता है। प्रज्वलित ज्वाला ही अग्नि की जीभ होती है। शारदातिलक में कहा गया है कि विद्वान् सभी कर्मों में हवन अग्निमुख में ही करे। कान में हवन करने से व्याधि होती है। नेत्र में हवन से होता अन्धा होता है। नासिका में हवन से मनस्ताप होता है एवं मस्तक में हवन से धननाश होता है। धूआँ अग्नि का मस्तक है। धूआँ-सहित अग्नि नेत्र है। कम ज्वाला अग्नि का कान है एवं लकड़ी अग्नि की नासिका है। अग्नि जहाँ शुद्ध स्फटिक के समान होती है, उसके चार अंगुल मान तक अग्नि का मूल कहा गया है।

स्रुक्स्रुवरचनाप्रकारः

अथ स्रुक्स्रुवौ उत्तरतन्त्रे—

स्रुक्स्रुवौ शिंशपाश्वत्थश्रीपर्णीखदिराग्रजौ। चन्दनद्वयदेवद्रुविकङ्कतशमीभवौ ॥१॥

बिल्वोदुम्बरपलाशनागकेसरसम्भवौ । बकुलाशोकपुन्नागप्लक्षन्यग्रोधचम्पकैः ॥२॥
निर्मितौ……………………। इति।

शारदातिलके—
श्रीपर्णीशिंशपाक्षीरशाखिष्वेकतमं बुधः । गृहीत्वा विभजेद्धस्तमात्रं षट्त्रिंशता पुनः ॥१॥
विंशत्यंशैर्भवेद् दण्डो वेदिस्तैरष्टभिर्भवेत् । एकांशेन मितः कण्ठः सप्तभागमितं मुखम् ॥२॥
वेदिर्त्र्यंशेन विस्तारः कण्ठस्य परिकीर्तितः । अग्रं कण्ठसमानं स्यान्मुखे मार्गं प्रकल्पयेत् ॥३॥
कनिष्ठाङ्गुलिमानेन सर्पिषो निर्गमाय वै । वेदीमध्ये विधातव्या भागेनैकेन कर्णिका ॥४॥
विदधीत बहिस्तस्या एकांशे नाभिपङ्कजम् । तस्य खातं त्रिभिर्भागैर्वृत्तमर्धांशतो बहिः ॥५॥
अंशेनैकेन परितो दलान्यष्टौ प्रकल्पयेत् । मेखला मुखवेद्योः स्यात्परितोऽर्धांशमानतः ॥६॥
दण्डमूलाग्रयोः कुम्भौ गुणवेदाङ्गुलैः क्रमात् । गण्डीयुगं यमांशैः स्याद्दण्डस्यानाह ईरितः ॥७॥
षड्भिरंशैः पृष्ठभागो वेद्याः कूर्माकृतिर्भवेत् । हंसस्य वा हस्तिनो वा पोत्रिणो वा मुखं लिखेत् ॥८॥
मुखस्य पृष्ठभागोऽस्याः सम्प्रोक्तं लक्षणं स्रुचः । स्रुचश्चतुर्विंशतिभिर्भागैराराचयेत् स्रुवम् ॥९॥
द्वाविंशत्या दण्डमानमंशैरेतस्य कीर्तितम् । चतुर्भिरंशैरानाहः कर्षाज्यग्राहि तच्छिरः ॥१०॥
अंशद्वयेन निखनेत् पङ्के मृगपदाकृतिम् । दण्डमूलाग्रयोर्गण्डी भवेत् कङ्कणभूषिता ॥११॥ इति।

गण्डीयुगं कङ्कणाकारं, 'कङ्कणभूषिते'ति स्वयमुक्तत्वात्। 'गण्डी कङ्कणवद् भवे'दिति वायवीयसंहितावचनाच्च। अन्यत्र तु गण्डी कुम्भः। तत्र तस्यैवावश्यकत्वात्। वायवीयसंहितायां—'स्रुक्स्रुवौ तैजसौ वापि' इति। स्रुक्स्रुवाभावे कुम्भसम्भवः—

पलाशपत्रे निश्छिद्रे रुचिरौ स्रुक्स्रुवौ मुने । विदध्याद्वाश्वत्थपत्रे संक्षिप्ते होमकर्मणि ॥१॥ इति।

अथैतद्रचनाप्रकारमाह—तत्र शिंशपाश्वत्थश्रीपर्णीखदिराम्रचन्दनरक्तचन्दनदेवदारुविकङ्कतशमीपलाशोदुम्बरबिल्वपनसबकुलाशोकनागकेसरपुन्नागचम्पकवटवृक्षाणामन्यतममशुष्कमव्रणमशीर्णं घुणादिभिरदुष्टमुद्दिष्टमानादधिकस्थूलदीर्घं समचतुरस्रं काष्ठं गृहीत्वा, तत्र मुष्ट्यङ्गुलेन चतुर्विंशत्यङ्गुलमानं षट्त्रिंशदंशेन विभज्य, तेषु विंशत्यंशं दण्डार्थं विभज्यावशिष्टषोडशभागेष्वग्रदेशे भागाष्टकं मुखार्थं परिकल्प्यावशिष्टभागाष्टकेन समचतुरस्रां वेदीं कृत्वा तन्मध्यचिह्नं कृत्वा तच्चिह्नमवलम्ब्यार्धांशमानेनाभितो वृत्तं निष्पाद्य, तद्बहिरप्येकांशमानेन वृत्तान्तरं निष्पाद्य, वृत्तयोरन्तराले भागत्रयं निम्नं मध्ये वृत्ताकारां कर्णिकां स्थापयित्वा तद्बहिर्गर्तं कृत्वा तद्बहिरर्धांशमानेनाभितो वृत्तं निष्पाद्य, तद्बहिरपि एकांशमानेन वृत्तान्तरं निष्पाद्य, वृत्तयोरन्तरालेऽष्टदलानि परिकल्प्य तद्बहिरर्धांशमाने सुसमाकारां चित्रितां वा शोभां विदध्यात्। ततोऽग्रेऽवशिष्टांशेन वेद्यास्तृतीयांशेन पार्श्वद्वयखण्डनेन मध्ये एकांशेन कण्ठं विधाय कण्ठतः किञ्चिदुच्चमवशिष्टं सप्तभिरंशैरग्रं कण्ठसमानविस्तरं समतलमधस्तादधोधः क्षीयमाणविस्तारं कृत्वा, मुखेऽपि वेदीवत् मेखलां परिकल्प्य कण्ठादधो मुखस्य मेखलामभिन्दन् प्रणालिकाकारमेकांशमाननिम्नं कनिष्ठाप्रवेशयोग्यं खातं कृत्वा कर्णिकामध्यस्थखातमध्यात् मुखमध्यस्थप्रणालिकाकारखातमध्ये यथा घृतं निःसरति तथा तप्तलोहशलाकया कण्ठवेदिपरिधिभेदनं सुषिरं विधाय, तथैवाग्रेऽपि मुखपरिधिभेदनं घृतनिर्गमाय कनिष्ठाप्रवेशयोग्यं रन्ध्रं कुर्यात्। ततो वेद्याः पृष्ठभागे कूर्माकारं मध्ये किञ्चित्समतलं भूमौ यथा निश्चलं तिष्ठति तथा कृत्वा मुखस्य पृष्ठभागे मध्ये किञ्चिन्निम्नं कृत्वा, मुखरन्ध्राधस्तात् उच्चभागं हंसमुखाकारं गजमुखाकारं वराहमुखाकारं वा सुरम्यं कारयित्वा, दण्डस्याग्रे वेधत एकाङ्गेन कङ्कणाकारत्रयं चतुष्टयं वा कृत्वा तदर्धांशचतुष्टयेन मुखकण्ठमध्यमूलादिसुशोभितमूर्ध्वमुखं निर्माय, तदधः पुनरेकांशेन प्राग्वत् कङ्कणानि कृत्वा तदधो नवांशमानं सुवर्तुलं षडंशमानदैर्घ्यं सूत्रेण वेष्टनयोग्यस्थलं दण्डमध्यं कृत्वा तदधः पुनरेकांशेन कङ्कणानि तदर्धांशत्रयेण प्राग्वदूर्ध्वमुखं कुम्भं तदधः पुनरेकांशेन कङ्कणानि च

कुर्यात्, इति स्रुचं निर्माय, स्रुचः षट्त्रिंशभागेषु चतुर्विंशतिभागदैर्घ्यमग्रदेशेंऽशद्वयमानेन वर्तुलाकारं स्थूलशिरोभागयुतं सुवर्तुलं स्रुवं निर्माय, तस्य मुखप्रदेशे पङ्कमध्यगतमृगपदाकारं कर्षमात्रग्राहि खातं कृत्वा तदधस्त्वेकांशमानेन प्राग्वत् कङ्कणानि तदर्धांशचतुष्टये कुम्भं तत एकांशेन पुनः कङ्कणानि तत एकादशांशमानं चतुरंशमानदैर्घ्यसूत्रवेष्टन-योग्यस्थलं कृत्वा पुनरेकांशेन ततोंऽशत्रयेण कुम्भं पुनरेकांशेन कङ्कणानि च कुर्यादिति स्रुवनिर्माणप्रकारः। एवं स्वर्णरौप्यताम्रमयौ वा स्रुक्स्रुवौ कार्यौ। स्रुवाभावे पालाशस्य मध्यपत्रद्वयं पिप्पलदलद्वयं वा होमे ग्राह्यं, संस्कारोऽपि स्रुक्स्रुवयोरिव पत्रयोरपि कार्यः।

स्रुक्-स्रुव रचना-प्रकार—उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि शीशम, श्रीपर्णी, खैर, आम, श्वेत-रक्त चन्दन, पलाश, वट, विकङ्कत, शमी, बेल, गूलर, पलाश, नागकेसर, बकुल, अशोक, पुन्नाग, पाँकड़, वट एवं चम्पक की लकड़ी का स्रुक्-स्रुवा बनाना चाहिये। शारदातिलक में कहा गया है कि श्रीपर्णी, शिशम या दूध वाले वृक्ष में से किसी एक की एक हाथ लम्बी लकड़ी लेकर विद्वान् उसे छत्तीस भागों में विभाजित करे। बीस अंश का दण्ड, आठ अंश की वेदी, एक अंश का कण्ठ एवं सात अंश का मुख बनाये। वेदी के तीन अंश का कण्ठ होता है। अग्रभाग कण्ठ के समान होता हैं एवं उसके मुख में मार्ग कल्पित करे। वेदी के मध्य में कनिष्ठा अंगुली की मोटाई के बराबर घी निकलने के लिये छेद बनाये। एक अंश की कर्णिका बनाये। उसके बाहर एक अंश का नाभिकमल बनाये। तीन भाग का गड्ढा बनाये एवं उसके बाहर अर्द्धवृत्त की गोलाई बनाये। उसके सभी ओर एक-एक अंश से अष्टदल कमल बनाये। वेदी के मुख के चारो ओर आधे अंश से मेखला बनाये। दण्डमूल में और अग्रभाग में क्रमश तीन-चार अंगुल का कुम्भ बनाये। यमांश के कंकण की आकृति बनावे। इसे ही दण्ड का आनाह कहते हैं। वेदी के पीठ-भाग में छः अंश से कूर्म बनाये। हंस या हाथी या सूकरमुख के समान मुख बनाये। इसके मुख के पृष्ठ भाग का वर्णन किया गया। अब स्रुव का लक्षण कहते हैं। स्रुच के चौबीसवें भाग से स्रुव बनाये। इसका दण्ड बीस अंश का होता है। चार अंश का आनाह होता है। एक कर्ष आज्य ग्रहण करने वाला उसका शिर होता है। दो अंश से करने वाला मृगपद की आकृति बनाये। दण्डमूल और अग्रभाग में गण्डी में कङ्कण को भूषित बनाये। स्रुक् एवं स्रुव अभाव में अगस्त्य के अनुसार संक्षिप्त हवन में निश्छिद्र पलाशपत्र से सुन्दर स्रुक् स्रुवा बनाये अथवा पीपल के पत्तों का स्रुक्-स्रुवा बनाये। स्रुक्-स्रुवा के निर्माण की रीति इस प्रकार है—शीशम, पीपल, श्रीपर्णी, खैर, आम, चन्दन, लाल चन्दन, देवदार, विकङ्कत, शमी, पलाश, गूलर, बेल, कटहल, बकुल, अशोक, नागकेशर, पुन्नाग, चम्पक, वटवृक्ष आदि की सूखी, व्रण-रहित, अशीर्ण, घुणादि से रहित उद्दिष्ट मान से अधिक मोटी लम्बी लकड़ी मुट्ठी अंगुल मान से चौबीस अंगुल की लाकर उसे छत्तीस भागों में विभाजित करे। उसके बीस अंश से दण्डार्ध बनाये। शेष सोलह अंश के अग्रभाग में से आठ अंश का मुख कल्पित करे। शेष आठ भाग से वेदी बनाये। वेदी के मध्य में चिह्न लगाये। उस चिह्न को केन्द्र मानकर वेदी के अर्धमान से वृत्त बनाये। उसके बाहर अर्धांश मान से एक वृत्त बनाये। उसके बाहर एक अंश मान से एक और वृत्त बनाये। वृत्तों के अन्तराल में तीन भाग वृत्ताकार कर्णिका बनाये। उसके बाहर अर्धांश मान से वृत्त बनाये। उसके बाहर भी अर्धांश मान से वृत्त बनाये। वृत्तों के अन्तराल में अष्टदल बनाये। उसके बाहर अर्धांश मान से सुन्दर सम आकृति की शोभा बनाये।

अवशिष्ट अंश में वेदी के तृतीयांश से दोनों पार्श्वों के खण्डन के साथ मध्य में कण्ठ बनाये। अवशिष्ट उच्च भाग के सात अंश कण्ठसमान विस्तृत समतल नीचे की ओर क्रमशः क्षीयमाण विस्तार बनाये। मुख में भी वेदीवत् मेखला कल्पित करके कण्ठ के नीचे मेखला को भेदित करते हुये प्रणालिकाकार एकांश मान निम्न कनिष्ठा अंगुलि के प्रवेशयोग्य खात करे। कर्णिका-मध्यस्थ खात के मध्य से मुख-मध्यस्थ प्रणालिकाकार खात मध्य से जैसे घृत निकलता है, उसी तरह तथा तप्त लौह शलाका से वेदी के कण्ठ की परिधि का भेदन कर छिद्र बनाये। उसके आगे भी मुखपरिधि का भेदन करके घी निकलने के लिये कनिष्ठा के प्रवेशयोग्य छेद करे। तब वेदी के कूर्माकार पीठ में कुछ समतल भूमि निश्चल बैठने लायक बनाये। मुख के पृष्ठ भाग के मध्य में कुछ नीचा करे। मुखरन्ध्र के नीचे से उच्च भाग हंसमुखाकार या गजमुखाकार या वाराह, मुखात्कार सुरम्य बनाये। दण्ड के आगे वेधके एक अङ्ग से कङ्कणाकार तीन या चार करके उसके चार अर्धांश से मुख-कण्ठ-मध्य-मूल आदि से सुशोभित ऊर्ध्वमुख बनाये। उसके नीचे फिर एकांश से पूर्ववत् कङ्कण बनाये। उसके नीचे नवांश मान से वर्तुल

षडंश मान दीर्घ सूत्र से वेष्टन योग्य स्थल दण्डमध्य में बनाये। उसके नीचे पुन: एकांश से कङ्कण बनाये। उसके अर्धांशत्रय से पूर्ववत् ऊर्ध्व मुख कुम्भ बनाये। उसके नीचे पुन: एकांश से कङ्कण बनाये। इस प्रकार स्रुच का निर्माण करके स्रुच के छत्तीस भागों में से चौबीस भाग दीर्घ आगे दो अंशमान से वर्तुलाकार स्थूल शिरोभागयुत सुन्दर गोल स्रुव बनाये। उसके मुखप्रदेश में पङ्कमध्यगत मृग पदाकार कर्षमात्र ग्रहण-योग्य खात करे। उसके नीचे एकांश मान से पूर्ववत् कङ्कण बनाये। चार अर्धांश से कुम्भ तब एकांश से कङ्कण बनाये। एकादशांश मान का चतुरंश मान दीर्घ सूत्र वेष्टनयोग्य स्थल बनाये। तब एकांश मान से कङ्कण, तब तीन अंश से कुम्भ, पुन: एक अंश से कङ्कण बनाये। इस प्रकार स्रुव का निर्माण किया जाता है।

इसी प्रकार सोने, चाँदी या ताम्बा का भी स्रुक्-स्रुव बनाये। स्रुवा के अभाव में पलाश के दो पत्तों या पीपल के दो पत्तों से हवन करे। स्रुक्-स्रुव के समान ही पत्तों का भी संस्कार करे।

होमद्रव्याणां प्रमाणानि

अथ होमद्रव्यप्रमाणानि, तत्र शारदायाम्—

कर्षमात्रं घृतं होमे शुक्तिमात्रं पय: स्मृतम्। उक्तानि पञ्चगव्यानि तत्समानि मनीषिभि: ॥१॥
तत्समं मधुदुग्धान्नमक्षमात्रमुदाहृतम्। दधि प्रसृतिमात्रं स्याल्लाजा: स्युर्मुष्टिसंमिता: ॥२॥
पृथुकास्तत्प्रमाणा: स्यु: सक्तवोऽपि तथोदिता:। गुडं पलार्धमानं स्याच्छर्करापि तथा स्मृता ॥३॥
ग्रासार्धं चरुमानं स्यादिक्षु: पर्वावधि: स्मृत:। एकैकं पत्रपुष्पाणि तथापूपानि कल्पयेत् ॥४॥
कदलीनागरङ्गाणां फलान्येकैकशो विदु:। मातुलुङ्गं चतु: खण्डं पनसं दशधाकृतम् ॥५॥
अष्टधा नारिकेलानि खण्डितानि विदुर्बुधा:। त्रिधाकृतं बिल्वफलं कपित्थं खण्डितं द्विधा ॥६॥
उर्वारुकफलं होमे कथितं खण्डितं त्रिधा। फलान्यन्यान्यखण्डानि समिध: स्युर्दशाङ्गुला: ॥७॥
दूर्वात्रयं समुद्दिष्टं गुडूची चतुरङ्गुला। व्रीहयो मुष्टिमात्रा: स्युर्मुद्गमाषयवा अपि ॥८॥
तण्डुला: स्युस्तदर्धांशा: कोद्रवा मुष्टिसंमिता:। गोधूमा रक्तकलमा विहिता मुष्टिमानत: ॥९॥
तिलाश्चुलुकमात्रा: स्यु: सर्षपास्तत्प्रमाणका:। शुक्तिप्रमाणं लवणं मरिचान्यपि विंशति: ॥१०॥
पुरं वदरमानं स्याद्रामठं तत्समं स्मृतम्। चन्दनागुरुकर्पूरकस्तूरीकुङ्कुमानि च ॥११॥
तिन्तिणीबीजमानानि समुद्दिष्टानि देशिकै:। इति।

उत्तरतन्त्रे—'पायसं चाक्षसंमितम्' इति। कर्षलक्षणं तत्रैव—'माषो दश गुञ्जा: स्यात् षोडशमाषो निगद्यते कर्ष:' इति। तैलस्याप्येतदेव परिमाणम्। शुक्ति: कर्षद्वयम्, प्रसृतिमात्रं पलद्वयमात्रं, मुष्टि: पलं, पलार्धं कर्षद्वयं, ग्रासार्धम् अशीतिरक्तिकामितम्। कुलमूलावतारे—

गुञ्जाभिर्दशभिर्माष: शाणो माषचतुष्टयम्। द्वौ शाणौ घटक: कोलो बदरं इक्षणश्च स: ॥१॥
तौ द्वौ पाणितलं कर्ष: सुवर्णं कवलग्रह:। पिचुर्बिडालपदकं तिन्दुकोऽक्षश्च तद्द्वयम् ॥२॥
शुक्तिरष्टात्मिका ते द्वे पलं बिल्वचतुर्थिका। मुष्टिराम्रं प्रगुञ्जोऽथ द्वे पले प्रसृतिस्तथा ॥३॥ इति।

मातुलुङ्गं बीजपूरम्। उर्वारुकं कर्कटी। तदर्धांशा: शुक्तिमिता। चुलुकमात्रा: पाणितलप्रमाणा:, कर्षमात्रा इत्यर्थ:। अक्षसम्मितं कर्षद्वयमात्रम्। पुरं गुग्गुल:। बदरमानमशीतिगुञ्जामितम्। रामठं हिंगु:। नारदपञ्चरात्रे—'तृतीयं खण्डं मूलानां ह्रस्वानि स्वप्रमाणत:' इति। शैवागमेऽपि—'खण्डत्रयं स्यान्मूलानां सूक्ष्माण्येवं च होमयेत्।' एवं केवलमखण्डमिति यावत्। 'कन्दानामष्टमं भागं लतानामङ्गुलद्वयम्' इति।

होमद्रव्य-प्रमाण—शारदातिलक में कहा गया है कि होम में कर्ष मात्र = १६ ग्राम घृत एवं दूध शुक्ति मात्र = ३२ ग्राम लगता है। इन्हीं के समान पञ्चगव्य भी मनिषियों के द्वारा कहा गया है। उसी के समान मधु-दूध एवं दो कर्ष अन्न लगता है। दही एक अंजुली और मुट्ठी भर लावा की आहुति होती हैं। पृथुक और सत्तू भी उसी के समान होता है। गुड़ और

शक्कर एक छटाक या पल = ६० ग्राम होते हैं। चरु आधा कौर और ईख का एक पोर लगता है। एक-एक फूल और पूआ की आहुति कल्पित करे। केला-नारङ्गी के एक-एक फल की आहुति होती है। मातुलुङ्ग का चौथाई भाग, कटहल का दशवाँ भाग आहुति होता है। नारियल का आठवाँ भाग, बेल का तीसरा भाग एवं कपित्थ का दूसरा भाग आहुति होता है। उर्वारुक के तीसरे भाग की आहुति होती है। अन्य फलों के आहुति सम्पूर्ण की ही होती है। दश अंगुल की समिधा होती है। तीन दूर्वा और चार अंगुल लम्बा गुरुच की आहुति होती है। धान, मूंग, उड़द की मुट्ठी भर की आहुति होती है। चावल आधी मुट्ठी, कोदो मुट्ठी भर, गेहूँ, रक्त धान्य की आहुति मुट्ठी भर होती है। तिल चुल्लू भर और सरसों भी चुल्लू भर, शुक्ति प्रमाण नमक और बीस मरीच की आहुति होती है। गुग्गुल एक अंजुली और हिंग भी इतना ही एक आहुति में होता है। चन्दन, अगर, कपूर, कस्तूरी, कुङ्कुम की आहुति इमली के बीज के बराबर होती है। कुलमूलावतार में कहा गया है कि दश गुंजा अर्थात् दश रत्ती लगभग = एक ग्राम उड़द, चार शाण = सोलह ग्राम उड़द, आठ ग्राम कक्कोल, आठ ग्राम वैर, दो अंजुली भर एक कौर पिचु, विडालपदक और तिन्दु दो कर्ष, चौथाई बेल, आम मुट्ठी भर एवं प्रगुंजा दो पल की आहुति होती है।

समिधः

अथ समिधः। तत्र नारदपञ्चरात्रे—

समित्प्रादेशमात्रेण समच्छेदान्विता तथा। विशीर्णा द्विदला ह्रस्वा वक्राः स्थूलाः कृशा द्विधा ॥१॥
क्रिमिदष्टाश्च दीर्घाश्च निस्त्वचः परिवर्जिताः। विशीर्णायुःक्षयं कुर्याद् द्विदला व्याधिसम्भवा ॥२॥
ह्रस्वायां मृत्युमाप्नोति वक्रा विघ्नकरी मता। स्थूलाभिहरते लक्ष्मीं कृशायां जायते क्षयः ॥३॥
द्विधायां नेत्रदोषाः स्युः कीटदष्टार्थनाशिनी। द्वेषं प्रकुरुते दीर्घा प्राणघ्न्यो निस्त्वचः कृताः ॥४॥
सक्षीरा नाधिकान्यूनाः समिधः सर्वकामदाः। आर्द्रत्वचं समच्छेदा जर्झर्यङ्गुलवर्तुलाम् ॥५॥
ईदृशीं होमयेत्प्राज्ञः प्राप्नोति विपुलां श्रियम्। श्रौते स्मार्ते च तन्त्रोक्ते समिधः परिकीर्तिताः ॥६॥ इति।

तथा वायवीयसंहितायाम्—

ताः पालाश्यः परा वापि यज्ञिया द्वादशाङ्गुलाः। अवक्रा न स्वयं शुष्काः सत्वचो निर्व्रणाः समाः ॥१॥
दशाङ्गुला वा विहिताः कनिष्ठाङ्गुलसम्मिताः। प्रादेशमात्रा वालाभे होतव्याः सकला अपि ॥२॥ इति।

समिधा—नारदपञ्चरात्र में कहा गया है कि एक वित्ता लम्बी, बराबर एवं छिद्ररहित समिधा होती है। विशीर्ण, द्विशाखी, टेढ़ी, मोटी, पतली, जुड़ी हुई, क्रिमिदष्ट, दीर्घ एवं छालरहित समिधा वर्जित है। विशीर्ण अर्थात् सड़ी हुई समिधा आयु का क्षय करती है। द्विशाखी समिधा से व्याधि होती है। छोटी से मृत्यु होती है। टेढ़ी से विघ्न होते हैं। मोटी लक्ष्मी का नाश करती है। पतली से क्षय होता है। दो सटी हुई समिधा से नेत्रदोष होता है। कीड़ा लगी हुई समिधा धननाशिनी होती है। लम्बी से द्वेष होता है। बिना छाल वाली समिधा प्राणघातिनी होती है। दूध वाली, न ज्यादा लम्बी और न ज्यादा छोटी समिधा सर्वकामदायिनी होती है। आर्द्र त्वचा, बराबर लम्बाई एवं एक अंगुल गोल समिधा से हवन करने पर विद्वान् विपुल श्री को प्राप्त करता है। श्रौत एवं स्मार्त तन्त्रोक्त समिधा इसी प्रकार की होती है।

वायवीय संहिता में कहा गया है कि पलाश या अन्य यज्ञीय काष्ठों की समिधा बारह अंगुल लम्बी, सीधी, गीली, छाल वाली, छिद्ररहित, बराबर लम्बाई वाली समिधा प्रशस्त होती है अथवा दश अंगुल लम्बी, कनिष्ठा अंगुलि के बराबर मोटी समिधा श्रेष्ठ होती है। एक वित्ते की समिधा से भी हवन करना चाहिये।

वर्णदीक्षाप्रयोगः

अथ प्रकृते क्रियादीक्षाशक्तानां वर्णदीक्षादिविधिर्लिख्यते—तत्र पुंस्प्रकृत्यात्मकानकारादिक्षकारान्तान् मातृकावर्णान् पुंस्प्रकृत्यात्मके शिष्यदेहे यथाविधि विन्यस्य, पुनः संहारक्रमेण मूर्धादिहृदयान्तस्थं क्षकारं नाभ्यन्तस्थळकारे संहरामि, हृदादिनाभिपर्यन्तस्थळकारं हृदादिवामपादाग्रस्थे हकारे संहरामि, हृदादिवामपादाग्रपर्यन्तस्थं हकारं

हृदादिदक्षिणपादाग्रपर्यन्तस्थे सकारे संहरामि, हृदादिदक्षिणपादाग्रपर्यन्तस्थं सकारं हृदादिवामपाण्यग्नावधिस्थे षकारे संहरामि, हृदादिवामपाण्यग्रावधिस्थं षकारं हृदादिदक्षिणपाण्यग्रावधिस्थे शकारे संहरामि, एवं युक्त्या शकारं वकारे संहरामीत्यादि, मुखवृत्तस्थमाकारं शिर:स्थे अकारे संहरामि, एवं युक्त्या वर्णान् संहृत्य, पुनस्तच्चैतन्यं सकलतत्त्वग्रामसमेतं परमात्मनि संयोज्य विलीनसकलतत्त्वसमूहं विगतनिखिलकलुषं दिव्यतनुं शिष्यं विचिन्त्य, पुन: परमात्मन: सकाशादकारादिक्षकारान्तान् वर्णानुत्पाद्य वक्ष्यमाणसृष्टिन्यासक्रमेण शिष्यदेहे मातृकावर्णान् विन्यस्य, पुनस्तच्चैतन्यं तत्त्वग्रामसमेतं तस्मिन् संयोज्योक्तविधिनोपदेशं कुर्यात्। इति वर्णात्मदीक्षा।

वर्णदीक्षाप्रयोग—क्रियादीक्षा में असमर्थों के लिये वर्णदीक्षा की विधि इस प्रकार है—पुरुष प्रकृत्यात्मक अकार से क्षकार तक के मातृका वर्ण को पुरुषप्रकृत्यात्मक शिष्य के देह में यथाविधि न्यस्त करे। पुन: संहारक्रम से 'मूर्धादिहृदयान्तस्थं क्षकारं नाभ्यन्तस्थळकारे संहरामि, हृदयादिनाभिपर्यन्तस्थळकारं हृदयादिवामपादाग्रस्थे हकारे संहरामि, हृदादिवामपादाग्रपर्यन्तस्थं हकारं हृदादिदक्षिणपादाग्रपर्यन्तस्थे सकारे संहरामि, हृदादिदक्षिणपादाग्रपर्यन्तस्थं सकारं हृदादिवामपाण्यग्नावधिस्थे षकारे संहरामि, हृदादिवामपाण्यग्रावधिस्थं षकारं हृदादिदक्षिणपाण्यग्रावधिस्थे शकारे संहरामि। इसी प्रकार शकारं वकारे संहरामि, मुखवृत्तस्थमाकारं शिरस्थे अकारे संहरामि—इस प्रकार वर्णों का संहार करके पुन: उस चैतन्य सकल तत्त्वग्राम समेत को परमात्मा में जोड़कर विलीन सकल तत्त्वसमूह, विगत निखिल कलुष, दिव्य तनुरूप शिष्य का चिन्तन करे। पुन: परमात्मा में अ से क्ष तक वर्णों को उत्पन्न करके वक्ष्यमाण सृष्टि न्यास क्रम से शिष्य के देह में मातृका वर्णों का न्यास करे। पुन: तत्त्वग्रामसमेत चैतन्य उस शिष्य में संयोजित करके उपदेश करे।

कलादीक्षाप्रयोगः

अथ कलादीक्षा—तत्र पादतलतो जानुपर्यन्तं निवृत्तिकलां, जानुतो नाभिपर्यन्तं प्रतिष्ठाकलां, नाभित: कण्ठपर्यन्तं विद्याकलां, कण्ठतो ललाटपर्यन्तं शान्तिकलां, ललाटात् ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तं शान्त्यतीताकलां च शिष्यदेहे सञ्चिन्त्य, निवृत्तिकलां प्रतिष्ठाकलायां संहरामि, प्रतिष्ठाकलां विद्याकलायां संहरामि, विद्याकलां शान्तिकलायां संहरामि, शान्तिकलां शान्त्यतीताकलायां संहरामि, इति क्रमात् संहृत्य वेधयित्वा, तां परमात्मनि संहृत्य प्राग्वत्तस्य शरीरं संशोध्य समुत्पाद्य, परमात्मन: सकाशाच्छान्त्यतीताकलां तत: शान्तिं ततो विद्यां तत: प्रतिष्ठां ततो निवृत्तिं च सृष्टिक्रमेण शिष्यदेहे तत्तत्स्थाने संयोज्योपदेशादिकं कुर्यादिति। एवमष्टात्रिंशत्कलाभिर्वोक्त्युक्त्या संहारसृष्टिन्यासक्रमेण शिष्यं संस्कृत्य दीक्षां दद्यात्। इति कलादीक्षा।

कला दीक्षा—पादतल से घुटनों तक निवृत्ति कला, जानु से नाभि तक प्रतिष्ठा कला, नाभि से कण्ठ तक विद्या कला, कण्ठ से ललाट तक शान्ति कला, ललाट से ब्रह्मरन्ध्र तक शान्त्यतीता कला का न्यास शिष्य के देह में करे। निवृत्तिकलां प्रतिष्ठाकलायां संहरामि, प्रतिष्ठाकलां विद्याकलायां संहरामि, विद्याकलां शान्तिकलायां संहरामि, शान्तिकलां शान्त्यतीताकलायां संहरामि इसी क्रम से संहार करके वेध करे। उन्हें परमात्मा में संहृत करके पूर्ववत् शिष्य के शरीर का शोधन करके उत्पन्न करके परमात्मा के समीप से शान्त्यतीता कला, उससे शान्ति, उससे विद्या, उससे प्रतिष्ठा, उससे निवृत्ति कला को सृष्टिक्रम से शिष्य देह में उनके स्थानों में संयोजित करे। इसी प्रकार छत्तीस कला को उक्त युक्ति से संहार-सृष्टि न्यासक्रम से शिष्य के दिव्य देह में संयोजित करके उपदेशादि करे, दीक्षा दे।

स्पर्श-वाग्-दृग्-वेधदीक्षाप्रकारः

अथ स्पर्शदीक्षा—तत्र गुरुः स्वहस्ततले शिवरूपं स्वगुरुं ध्यायन् मूलविद्यां षडङ्गमातृकां च जपन् शिष्यस्य शिरसि स्वदक्षिणकरं निधायोपदिशेत्। इति स्पर्शदीक्षा।

अथ वाग्दीक्षा—तत्र गुरुः परचिद्रूपे शिवे चित्तं निधाय तदुद्भूतान् समस्तमन्त्रान् ध्यायंस्तन्मना: स्वयं शिष्यायोपदिशेमन्त्रान्। इति वाग्दीक्षा।

अथ दृग्दीक्षा—तत्र गुरुः स्वनेत्रे निमील्य परमात्मस्वरूपिणीं देवतां ध्यात्वा प्रसन्नचित्तो दिव्यचक्षुषा शिष्यं निरीक्ष्य मन्त्रोपदेशं कुर्यात्, इति दृग्दीक्षा। पश्चादुक्तमेतत् दीक्षात्रयं विरक्तानां शिष्याणां तत्त्वविदा गुरुणा कार्यमिति। स्त्रीणां तु वाग्दीक्षैव विहिता नान्या।

अथ वेधदीक्षा—तत्र गुरुः शिष्यस्य मूलाधारे चतुर्दलपङ्कजमध्यत्रिकोणमध्ये यथोक्तरूपां कुण्डलिनीं ध्यात्वा तत्पत्रचतुष्टयमध्यस्थवादिसान्ताक्षरचतुष्टयं तन्मध्यस्थिते कमलासने संहृत्य, तं ब्रह्माणं तदूर्ध्वगतस्वाधिष्ठानाख्यषट्पत्रकमलमध्यस्थिते विष्णौ संयोज्य वेधयित्वा, तत्पत्रषट्कमध्यस्थवादिलान्तवर्णषट्कं विष्णौ संयोज्य, तदूर्ध्वे नाभिमण्डले दशदलकमलात्मके मणिपूराख्ये विष्णुं संयोज्य, तत्पत्रदशकमध्यस्थडादिफान्तवर्णदशकसहितं विष्णुं तत्पङ्कजमध्यस्थे रुद्रे संयोज्य वेधयित्वा, तं रुद्रमनाहताख्ये हृत्पद्मे कादिठान्तद्वादशवर्णाढ्यद्वादशदलसंयुक्ते संयोज्य, तैरक्षरैः सार्धं तं रुद्रं तन्मध्यस्थितेश्वरे संयोज्य वेधयित्वा, कण्ठदेशे षोडशस्वराढ्यषोडशदलकमले विशुद्धचक्रे तमीश्वरं संयोज्य, तैः स्वरैः सार्धं ईश्वरं तन्मध्यस्थे सदाशिवे संयोज्य वेधयित्वा, तं सदाशिवं भ्रूमध्यद्विदलपङ्कजमाज्ञाचक्रं नीत्वा तत्पत्रद्वयहक्षवर्णद्वयसहितं सदाशिवं तन्मध्यवर्तिनि बिन्दौ संयोज्य वेधयित्वा, तं बिन्दुं तदूर्ध्वस्थितायां कलायां संयोज्य, तां पुनर्नादे तं नादान्ते तमुन्मन्यां तां विषुचक्रे विषुचक्रं गुरुवक्त्रे चेत्युत्तरोत्तरं संयोज्य वेधयित्वा, जीवात्मना सह तां कुण्डलिनीं परशिवे संयोज्य वेधयेत्। एवं कृते शिष्यो गुर्वाज्ञया छिन्नसंसारपाशो विसंज्ञः सद्यः क्षितितले पतति। ततो गुरुः संहृतविपरीतक्रमेण परशिवात् कुण्डलिनीमुत्पाद्य तया हृतमखिलं सृष्टिक्रमेण शिष्यदेहे तत्तच्चक्रे तां तां देवतां संयोज्य, हृदये जीवं, मूलाधारे कुण्डलिनीं संयोज्योपदेशादिकं कुर्यात्। ततः संजातदिव्यबोधो भूतभविष्यद्वर्तमानज्ञः सदाशिवो भवति, इति वेधदीक्षा। प्रायः कलौ वेधदीक्षाकरो गुरुस्तद्योग्यः शिष्यश्च दुर्लभ इत्याहुराचार्याः। प्रसङ्गादत्रापि लिखितेयमिति शिवम्।

स्पर्श दीक्षा—गुरु अपने करतल में शिवरूप स्वगुरु का ध्यान करके मूल विद्या, षडङ्ग मातृका जप कर शिष्य के शिर पर अपना दाहिना हाथ रखकर उपदेश करे।

वाग्दीक्षा—गुरु परचिद् रूप शिव में चित्त को लगाकर उससे उत्पन्न सभी मन्त्रों का ध्यान करके स्वयं तत्स्वरूप होकर शिष्य को मन्त्रोपदेश करे।

दृग्दीक्षा—गुरु अपनी आँखों को मूँद कर परमात्मस्वरूप देवता का ध्यान करके प्रसन्न चित्त होकर दिव्य दृष्टि से शिष्य का निरीक्षण करके मन्त्रोपदेश करे।

इसके बाद उक्त दीक्षात्रय से विरक्त शिष्यों को तत्त्वविद् गुरु दीक्षा प्रदान करे। स्त्रियों के लिये केवल वाग्दीक्षा ही विहित है।

वेधदीक्षा—गुरु शिष्य के मूलाधार में चर्तुदल कमल मध्यस्थ त्रिकोण में यथोक्तरूपा कुण्डलिनी का ध्यान करे। उसके चार दलों में स्थित वादि सान्त अक्षरचतुष्टय को उसमें स्थित कमलासन में विलीन करे। उसमें स्थित ब्रह्मा को उसके ऊपर स्थित स्वाधिष्ठान नामक षड्दल कमल-स्थित विष्णु से संयोजित करके वेध करे। उस कमल के छः दलों में स्थित षादि लान्त छः वर्णों को विष्णु से संयोजित करे। उसके ऊपर नाभिमण्डल में दश कलात्मक मणिपूर में विष्णु से योजित करे। उसके दश दलों में स्थित डादि फान्त वर्णदशक-सहित विष्णु को उस पंकज में स्थित रुद्र से संयोजित करके वेध करे। रुद्र को अनाहत नामक हृदयकमल में कादि ठान्त द्वादश वर्ण द्वादश दल संयुक्त में योजित करे। उसके अक्षरों को उसमें स्थित ईश्वर से जोड़कर वेध करे। कण्ठ देश में सोलह स्वरयुक्त षोडश दल कमल विशुद्धि चक्र में ईश्वर को योजित करे। उन स्वरों के साथ ईश्वर को उसमें स्थित सदाशिव के साथ जोड़कर वेध करे। उस सदाशिव को भ्रूमध्य द्विदल कमल आज्ञा चक्र में लाकर उसके पत्रद्वय में स्थित हंक्षद्वय-सहित सदाशिव को उसके मध्य स्थित बिन्दु से जोड़कर वेध करे। उस बिन्दु को उसके ऊपर स्थित कला में जोड़े। कला को नाद में, नाद को नादान्त में, नादान्त को उन्मनी में, उन्मनी को विषुचक्र में स्थित गुरुमुख

में जोड़कर वेध करे। जीवात्मा-सहित उसे कुण्डलिनी परशिव में जोड़कर वेध करे। इससे शिष्य गुरु की आज्ञा से छिन्न संसारपाश एवं विसंज्ञ होकर तुरन्त भूमि पर गिर पड़ता है। तब गुरु विपरीत क्रम से संहार करके परशिव से कुण्डलिनी को उत्पन्न करके उससे संहृत सभी को सृष्टि क्रम से शिष्य-देह में स्थित चक्रों में उन-उन देवताओं को संयोजित करके हृदय में जीव एवं मूलाधार में कुण्डलिनी को जोड़कर उपदेशादि करे। इससे शिष्य दिव्य देह का होकर त्रिकालज्ञ सदाशिव हो जाता है। यही वेधदीक्षा होती है। कलियुग में वेध दीक्षा देने वाले गुरु और उसके योग्य शिष्य दुर्लभ हैं—यह आचार्यों का मत है। प्रसङ्गवश ही यहाँ इसका उल्लेख किया गया है।

पूर्णाभिषेकप्रकारः

अथैवं दीक्षितानां सद्भक्तियुक्तानां गुरुतः शास्त्रतश्चाधिगताशेषरहस्यपरमार्थानां गुरुः शिष्याणां पूर्णाभिषेकाख्यं द्वितीयमभिषेकं कुर्यात्। तत्र प्रागुक्ते मण्डपे वेदिकायां वक्ष्यमाणं विपुलं तत्पूजाचक्रं निर्माय, प्राग्वत् पञ्चरजोभिः कर्णिकादलकेसरकोणादिकमापूर्य, तस्य मध्ये खारीतोयपूर्णकुम्भं प्रागुक्तविधिना संस्थाप्यान्येषु दलेषु कोणेषु चतुरस्रेषु च सर्वावरणदेवतापूजास्थानेषु प्रस्थद्वयजलपूर्णकलशान् संस्थाप्य, तत्र मध्यकुम्भे देवतामावाह्य प्रागुक्तविधिना षोडशोपचारैः सम्पूज्यान्येषु कलशेषु तथैवाङ्गावरणदेवताः सम्पूज्य दीक्षोक्तविधिना शिष्यजन्मनक्षत्रे प्राग्वत् पञ्चवाद्यघोषपुरःसरं स्वेष्टदेवताभक्तैर्ब्राह्मणैः सह तं सम्यगभिषिञ्चेत्। ततः शिष्योऽपि प्राग्वत् श्रीगुरुं प्रणम्य दक्षिणादिकं दत्त्वा ब्राह्मणान् भूरिदक्षिणादिभिः सन्तोषयेदिति पूर्णाभिषेकविधिः।

पूर्णाभिषेकहीनो यः साधको म्रियते यदि। पिशाचत्वमवाप्नोति नरकं च प्रपद्यते ॥१॥

इति कुलार्णववचनादावश्यकोऽयमभिषेकः ।

इति श्रीमहामहोपाध्यायभगवत्पूज्यपाद-श्रीगोविन्दाचार्यशिष्य-श्रीभगवच्छङ्कराचार्यशिष्य-श्रीविष्णुशर्माचार्यशिष्य-श्रीप्रगल्भाचार्यशिष्य-श्रीविद्यारण्ययतिविरचिते श्रीविद्यार्णवाख्ये तन्त्रे त्रयोदशः श्वासः॥१३॥

पूर्णाभिषेक-प्रकार—इस प्रकार से दीक्षित सद्भक्तियुक्त गुरु से शास्त्र से प्राप्त अशेष रहस्य परमार्थ शिष्य का गुरु पूर्णाभिषेक नामक द्वितीय अभिषेक करे। पूर्वोक्त मण्डप में वेदि पर विपुल पूजाचक्र बनाकर पूर्ववत् पाँच चूर्णों से कर्णिकादल, केसर, कोणादि को पूरित करके उसके मध्य में खारी-तोयपूर्ण कुम्भ पूर्वोक्त विधि से स्थापित करे दलों में, कोणों में एवं चतुरस्र में, सर्वावरण देवता पूजास्थानों में प्रस्थद्वय जलपूर्ण कलश स्थापित करे। मध्य कुम्भ में देवता का आवाहन करे। पूर्वोक्त विधि से षोडशोपचार पूजा करे। अन्य कलशों में अङ्गावरण देवता की पूजा करे। दीक्षोक्त विधि से शिष्य के जन्मनक्षत्र में पूर्वोक्त पञ्च वाद्यघोषपूर्वक स्वेष्ट देवता के भक्त ब्राह्मणों सहित शिष्य का अभिषेक करे। तब शिष्य भी पूर्ववत् गुरु को प्रणाम करे एवं दक्षिणादि प्रदान करे। ब्राह्मणों को प्रभूत दक्षिण देकर सन्तुष्ट करे। कुलार्णव के अनुसार यह अभिषेक आवश्यक होता है। पूर्णाभिषेक-विहीन साधक यदि मृत्यु को प्राप्त करता है तो वह पिशाचत्व को प्राप्त करके नरक में जाता है।

इस प्रकार श्रीविद्यारण्ययतिविरचित श्रीविद्यार्णव तन्त्र के कपिलदेव नारायण-कृत भाषा-भाष्य में त्रयोदश श्वास पूर्ण हुआ

अथ चतुर्दशः श्वासः

कादिमते पूर्णाभिषेकविधिः

अथ कादिमते पूर्णाभिषेकविधिः। श्रीतन्त्रराजे (२ प० ५२ श्लोक)—

उक्तलक्षणसम्पन्नं शिष्यमाचारभूषणम्। पञ्चषट्कूटविद्याभ्यां शोधितं बहुवासरैः ॥१॥
कलशैरभिषिच्यामुं श्रीचक्रे सन्निवेश्य च। आधारे हृदये मूर्ध्नि चक्रं सञ्चिन्त्य मध्यतः ॥२॥
स्वान्तादावाह्य संस्थाप्य सम्पूज्य न्याससंयुतम्। त्रिशो विद्यां जपेत्कर्णे देव्यात्मा पूर्णमानसः ॥३॥
देवतागुरुमन्त्रात्मतत्त्वैक्यं भावयन् मुदा। शतं जपेत्तदग्रस्थो निकटे त्रिदिनं वसेत् ॥४॥
न चेत्सञ्चारिणी शक्तिर्गुरुमेति न संशयः। तस्मात्तदन्तिके तस्य पूजादेशादिकृद्वसेत् ॥५॥
तादात्म्यमात्मनो लब्धुं गुरोर्मन्त्रात्मनो यतः। ततस्तदा समारभ्य तदायत्तो धनादिभिः ॥६॥
अथाभिषेकं द्विविधं समवाप्य तदाज्ञया। अनुग्रहादि कुर्वीत सिद्धये नान्यथा भवेत् ॥७॥
विधाय चक्रं तन्मध्ये योन्यां कुम्भं निधाय तम्। क्वाथोदकैः समापूर्याभिषिच्याभिवदेन्मनुम् ॥८॥
क्रमागतसमाचारनिरते भक्तिशालिनि। द्वितीयमभिषेकं तु कुर्याद्देव्यात्मसिद्धये ॥९॥
विरच्य विपुलं चक्रं प्रतियोनि च षोडश। त्रिकोणानि विधायात्र मध्ये कुम्भं तु विन्यसेत् ॥१०॥
सौवर्णं राजतं ताम्रं काचं मार्तिकमेव च। पूरितं खारितोयेन कथितेनाक्षरौषधैः ॥११॥
निक्षिप्य नवरत्नानि धान्यानि विविधानि च। हिरण्यानि सताम्राणि वासोभ्यामभिवेष्टयेत् ॥१२॥
रक्ताभ्यां चन्दनैश्चूतपनसाश्वत्थपल्लवैः। शतक्रतुलताबद्धैर्मातुलुङ्गफलान्वितैः ॥१३॥
पिधाय कलशानन्यानन्येष्वेकैकशो न्यसेत्। सार्धं सहस्रं षट्त्रिंशत्पञ्चसंख्या क्रमोदिताः ॥१४॥
मध्ये चक्रे सुतोयादि कृत्वावाह्याभिपूज्य च। कालात्मनित्यामन्त्रांश्च जपित्वा पूर्ववासरे ॥१५॥
जन्मर्क्षे प्रातरुत्थाय स्वनित्यां तत्र पूजयेत्। सहस्रं प्रजयेत्पश्चाद्धोमं कृत्वा समन्ततः ॥१६॥
शृङ्गकाहलशङ्खादिवाद्यसङ्गीतनर्तनैः। मुदितैर्योगिनीवृन्दैरेकैकं देवतात्मभिः ॥१७॥
वृत्तैः सुपूजितैः सार्धमभिसिञ्चेत्स्वयं गुरुः। स्वक्रमं तस्य कथयेत्तदा प्रभृति सोऽपि तम् ॥१८॥
अनुतिष्ठेदविच्छिन्नपर्यायं तस्य विच्युतौ। सहस्रं प्रजपेद् विद्यामभिषेकसमन्वितम् ॥१९॥
अथवा षण्णवत्यस्तु कलशास्तत्र विन्यसेत्। तेषु शक्तीः समावाह्य सम्पूज्यैवाभिषेचयेत् ॥२०॥
एकं वा कलशं जन्मदिने कृत्वाभिषेचयेत्। एवं नैमित्तिकं नित्यमविच्छिन्नं समाचरेत् ॥२१॥ इति।

कादिमत में पूर्णाभिषेक-विधि—श्रीतन्त्रराज में कहा गया है कि पूर्वकथित लक्षणों से युक्त आचारवान शिष्य का गुरु बहुत दिनों तक पञ्चकूट-षट्कूट विद्या से शोधन करे। अभिषेक के लिये श्रीचक्र में कलशों को स्थापित करे। आधार, हृदय और मूर्धा में श्रीचक्र का चिन्तन करके अपने अन्तःकरण से आवाहन-स्थापन और पूजन करे। न्यास करके देव्यात्मापूर्ण मानस होकर शिष्य के कान में तीन बार विद्या को कहे। तब शिष्य देवता, गुरु, मन्त्र और आत्मतत्त्व में ऐक्य की भावना करके गुरु के आगे बैठकर मन्त्र का एक सौ बार जप करे। साथ ही वह शिष्य तीन दिनों तक गुरु के निकट वास करे। ऐसा करने से गुरु की संचारिणी शक्ति का शिष्य में निश्चित रूप से प्रवेश हो जाता है। तदनन्तर शिष्य से प्राप्त धन-वस्त्रादि को हस्तगत कर उसपर अनुग्रह करते हुये उसकी सहमति से गुरु उसका पुनः अभिषेक करे। ऐसा न करने से शिष्य को सिद्धि प्राप्त नहीं होती।

अभिषेक के लिये गुरु श्रीचक्र बनाकर उसके मध्य त्रिकोण में कलश-स्थापन करके उसमें मन्त्राक्षर औषधियों का क्वाथ भरे। मन्त्रोच्चारण करते हुये शिष्य का अभिषेक करे। क्रमागत सम्यक् आचार में निरत एवं भक्तियुक्त शिष्य का देव्यात्म-सिद्धि के लिये दूसरा अभिषेक करे।

विस्तृत चक्र बनाकर प्रत्येक त्रिकोण में सोलह त्रिकोण बनाकर मध्य में सोना, चाँदी, ताम्बा, काँच या मिट्टी के बड़े कुम्भ में मन्त्रवर्णाक्षर औषधियों के जल से निर्मित क्वाथ भरे। उसमें नवरत्न और विविध धान्य, सोना, ताम्बा आदि डालकर लाल वस्त्रों से उसे वेष्टित करे। रक्तचन्दन, आम, कटहल, पीपल के पल्लव को कल्पवल्ली से बाँधकर उस पर मातुलुङ्ग का फल रखकर कलश पर रखे। कलश में अन्यान्य द्रव्य डालकर एक-एक का पाँच सौ या पाँच सौ छत्तीस क्रमशः न्यास करे। मध्य चक्र में मन्त्रित जल से आवाहन-पूजन करे। कालनित्या मन्त्र का जप अभिषेक के एक दिन पहले करे। जन्मनक्षत्र में उठकर प्रात:काल में दिननित्या का पूजन करे। एक हजार जप करके सम्यक् रूप से हवन करे। शृङ्ग, काहल, शङ्खादि बाजा बजवाते हुए सङ्गीत नृत्य से मुदित योगिनीवृन्द में से एक-एक का पूजन देवतात्मरूप में करे। तब गुरु स्वयं शिष्य का अभिषेक करे। तदनन्तर गुरु अपना क्रम आदि बतलाये। शिष्य अविच्छिन्न पर्याय से रहित होकर बैठे। अभिषेक-समन्वित विद्या का जप एक हजार करे अथवा छियानबें कलश स्थापित करके उसमें शक्तियों का आवाहन-पूजन करके अभिषेक करे अथवा एक ही कलश जन्मदिन में स्थापित करके अभिषेक करे। इस प्रकार नैमित्तिक नित्यकर्म अविच्छिन्न रूप में सम्पादित करे।

मातृकार्णवे—

शिष्यायोपदिशेद्विद्या नित्याः पञ्चदशात्मिकाः। त्रिकूटाश्च चतुष्कूटाः पञ्चकूटास्तथैव च ॥१॥
षट्कूटाः सप्तकूटाश्च वसुकूटा नवात्मिकाः। दशैकादशकूटाश्च रविकूटास्तथैव च ॥२॥
त्रयोदशात्मिकाश्चैव चतुर्दशभिधास्तथा। तथा पञ्चदशाख्याश्च तथा षोडशकूटकाः ॥३॥
अङ्गप्रत्यङ्गविद्याश्च तथा चावृतिदेवताः। पञ्चायतनविद्याश्च न्यासजालं तथैव च ॥४॥
शुद्धाशुद्धाश्च शबलाः सर्वाश्चोपदिशेत्क्रमात्। ता विद्याः प्रजपेच्छिष्यः क्रमप्राप्ताः क्रमेण वै ॥५॥
गुरुसेवापरो नित्यं गुर्वाज्ञापालको वसेत्। क्रमप्राप्तमहाविद्यानिचये भक्तिशालिनि ॥६॥
द्वितीयमभिषेकं तु कुर्याद्देव्यात्मसिद्धये। प्राक्प्रोक्तविधिना सम्यङ्मण्डपं कारयेद्बुधः ॥७॥
चतुर्विंशत्युत्तरैश्च शतहस्तैश्च मण्डपम्। सुदिने शुभनक्षत्रे सुमुहूर्ते शुभोदये ॥८॥
गणेशं पूजयेदादौ पञ्चवाद्यपुरःसरम्। प्राक्प्रोक्तविधिना सम्यक्कुर्यात्पुण्याहवाचनम् ॥९॥
मातृकापूजनं चैव वृद्धिश्राद्धं तथैव च। ब्राह्मणान् पूजयेत्पश्चात्स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥१०॥
सुवर्णभूषणैर्वस्त्रैः श्रीगुरुं वृणुयाद् बुधः। तदाज्ञयान्यविप्रांश्च वृणुयात् स्वर्णवस्त्रकैः ॥११॥
एकं तु पुस्तकाचार्यमृत्विजो वसुसंख्यकान्। ब्राह्मणान् नवसंख्यांश्च ह्यष्टौ च द्वारपालकान् ॥१२॥
चतुरः शान्तिपाठाय द्विजानन्यान् शुचिव्रतान्। स्वविद्योपासकान् भक्त्या स्वर्णरत्नांगुलीयकैः ॥१३॥
द्विजाज्ञया गुरुर्मध्यवेद्यां चक्रं लिखेत्सुधीः। श्रीगुरूक्तप्रकारेण समसूत्रं मनोहरम् ॥१४॥
प्रतिरेखं प्रयत्नेन पूरयेद्रक्ततण्डुलैः। सप्तसप्ततिकोणेषु योनिषु प्रतियोनि च ॥१५॥
षोडशारचयेत् सूत्रैस्त्रिभिः षोडशसंख्यया। सर्वत्र शालिपुञ्जेषु कलशान् स्थापयेद्बुधः ॥१६॥
मध्यस्थयोनिमध्ये च खारीतोयभृतं घटम्। प्रस्थमात्रग्राहिघटान् इतरेषु निधापयेत् ॥१७॥
पदेषु कामेश्यादीनां प्रतिदेवि च षोडश। अष्टायुधानां स्थानेषु प्रतिहेति च षोडश ॥१८॥
प्रतिस्थानं षोडशैव सिद्धिमुद्रापदेषु च। पार्श्वयोरेकमेकं च देव्याः पृष्ठे घटत्रयम् ॥१९॥
हेमरत्नफलैर्वासोद्वयपल्लवशोभितान्। गुरुमण्डलनिर्माणं षड्कोणाष्टाब्जमध्यतः ॥२०॥
कमलाष्टास्त्रयोर्मध्ये तिथीशानां च मण्डलम्। ग्रहमण्डलमीशाने सर्वतोभद्रमण्डलम् ॥२१॥

वारेशमण्डलं मध्ये अष्टास्राचार्यकुण्डयोः। आग्नेयपूर्वमध्ये तु कुर्यान्नक्षत्रमण्डलम् ॥२२॥
योन्यर्धचन्द्रमध्ये तु नित्यामण्डलमुत्तमम्। याम्यनैर्ऋतमध्ये तद्दिननित्याप्रपूजने ॥२३॥
मण्डलं रचयेदिति शेषः।

नैर्ऋत्ये वास्तुपूजायां मण्डलं रचयेद्बुधः। वृत्तत्रिकोणमध्ये तु धातुदैवतमण्डलम् ॥२४॥
षट्कोणवृत्तयोर्मध्ये मिथुनानां च मण्डलम्। आग्नेये कुरुकुल्लाया वाराह्या वायुगोचरे ॥२५॥
शेषिकाबलिदेवीनां मण्डलान्यन्तरान्तरा। इति।

गुरुमण्डलसर्वतोभद्रमण्डलपूजाक्रमः प्रागेवाभिहितः।

मातृकार्णव में कहा गया है कि पन्द्रह नित्या विद्या का उपदेश शिष्य को गुरु करे। अङ्ग-प्रत्यङ्गसहित त्रिकूटा, चतुष्कूटा, पञ्चकूटा, षट्कूटा, सप्तकूटा, अष्टकूटा, नवकूटा, दशकूटा, एकादशकूटा, द्वादशकूटा, त्रयोदशकूटा, चतुर्दशकूटा, पञ्चदशकूटा तथा षोडशकूटा विद्या, आवरण देवता, पञ्चायतन विद्या, न्यास जाल, शुद्ध अशुद्ध शबला सबों का उपदेश क्रमशः करे। क्रमशः प्राप्त उन समस्त विद्याओं का जप शिष्य क्रम से करे। नित्य गुरु सेवानिरत रहे एवं गुरु की आज्ञा पालन करे। क्रमप्राप्त यह महाविद्या निश्चय ही भक्तिशालिनी होती है। देव्यात्म-सिद्धि के लिये दूसरा अभिषेक करे। पूर्वोक्त विधि से सम्यक् मण्डप बनाये। चौबीस हाथ से एक सौ हाथ तक के मण्डप बनते हैं। शुभ दिन, शुभ नक्षत्र, शुभ मुहूर्त, शुभोदय में पहले गणेश-पूजन पञ्चवाद्यों को बजवाते हुए करे पूर्वोक्त विधि से सम्यक् पुण्याहवाचन कराये।

मातृका-पूजन, वृद्धिश्राद्ध, ब्राह्मण-पूजन, स्वस्ति वाचन के बाद स्वर्णाभूषण एवं वस्त्र से गुरु का वरण करे। गुरु की आज्ञा से अन्य ब्राह्मणों का वरण स्वर्ण-वस्त्रादि से करे। एक पुस्तकाचार्य एवं आठ ऋत्विज इस प्रकार कुल नव ब्राह्मणों का वरण करे। तब आठ द्वारपालक एवं चार शान्तिपाठक द्विजों का वरण करे। ये सभी द्विज शुचिव्रत एवं स्वविद्योपासक होने चाहिये। इनका वरण स्वर्ण-रत्न की अंगूठी से करे। द्विजों से आज्ञा लेकर मध्य वेदी में गुरु चक्र अङ्कित करे। श्री गुरु कथित प्रकार से मनोहर समसूत्र रेखा प्रयत्नपूर्वक लाल चावल से पूरित करे। सतहत्तर कोनों में योनि में प्रतियोनि षोडश त्रिकोण बनाये। तीन सूत्रों से सोलह संख्या में सर्वत्र शालिपुंजों में कलश-स्थापन करे। मध्यस्थ योनि के मध्य में खारी भर जल भरने लायक कुम्भ स्थापित करे। खारी में बत्तीस या चौंसठ किलो जल अँटता है। एक प्रस्थ = लगभग चार किलो पानी अँटने लायक अन्य कलशों को स्थापित करे। पदों में कामेश्वरी आदि सोलह देवियों, आठ आयुधस्थानों में प्रतिह आदि सोलह आयुधों, सिद्धि मुद्रा स्थान में प्रति स्थान सोलह, पार्श्वों में एक-एक देवी के पीछे तीन कलश सोना, रत्न, फल, दो वस्त्र एवं पल्लव से सुशोभित करके स्थापित करे। गुरु मण्डल का निर्माण षट्कोण अष्टपत्र के मध्य में करे। अष्टार और अष्टकमल के मध्य में तिथीश मण्डल स्थापित करे। वारेश मण्डल के मध्य में अष्टास्र आचार्य कुण्ड एवं आग्नेय पूर्वमध्य में नक्षत्र मण्डल बनाये। योनिकुण्ड और अर्धचन्द्र कुण्ड के मध्य में नित्यामण्डल, याम्य-नैर्ऋत्य मध्य में उस दिन की नित्या-पूजन का मण्डल बनाये। नैर्ऋत्य में वास्तु पूजामण्डल बनाये। वृत्त-त्रिकोण कुण्ड के मध्य में धातु देवता का मण्डल बनाये। षट्कोण-वृत्तकुण्ड के मध्य में मिथुन मण्डल बनाये। आग्नेय में कुरुकुल्ला, वायव्य में वाराही का मण्डल बनाये। शेष बलिदेवियों का मण्डल भी बीच-बीच में बनाये।

नवग्रहादिमण्डलपूजाविधिः

अथ नवग्रहादिपूजाविधिः। तत्र श्रीतन्त्रराजे (२८ प० ७२ श्लोक)—

ग्रहाणां मातृकाविद्याविग्रहं विग्रहं यतः। तेन तेषां तु पूजार्थं वक्ष्ये तद्धाममण्डलम् ॥१॥
सुधास्वरैर्भवेदिन्दोर्मण्डलं भास्करस्य तु। सुधाव्यञ्जनरूपं स्यादितरे तन्मया यतः ॥२॥
तेन तेषां मण्डलानि तैस्तैर्वर्णैर्वदामि ते। तेषां नवानां पूजासु तन्मयं नवमण्डलम् ॥३॥
चन्द्रार्कयोः पृथक्पूजास्वभ्यर्च्य मण्डलं तयोः। क्रमेण शृणु देवेशि सर्वश्रेयस्करात्मकम् ॥४॥
प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक्च चतुःसूत्रनिपातनात्। त्रिहस्तमात्रे जनयेन्नव कोष्ठानि तेषु वै ॥५॥

मध्ये प्राक्कोष्ठयोः कृत्वा वृत्तत्रयमतिस्फुटम् । तन्मध्ये तिर्यगूर्ध्वं च सूत्रद्वयनिपातनात् ॥६॥
विधाय नवधा मध्यमीशादि विलिखेत्क्रमात् । वाताद्यष्टस्वरान् मध्ये प्रणवं नभसा युतम् ॥७॥
वृत्तवीथ्योः स्वरोपेतं नभसा मातृकां लिखेत् । तत्रार्कमर्चयेत्तस्य नामभिर्द्वादशोदितैः ॥८॥
प्रणवाद्यैर्नमोऽन्तैश्च भानोः सर्वत्र सर्वदा । सोमस्याद्यं स्वसंयुक्तं कृत्वा तेन तथार्चयेत् ॥९॥
तन्नाम्ना तत्र विलिखेद्बिन्द्वाढ्यं च स्वराष्टकम् । षोडशस्वरयुक्तं च मातृकां च स्वयोगतः॥१०॥
विलिखेद्वृत्तयोर्मध्ये मध्यकोष्ठेऽपि तं लिखेत् । दाहवह्निस्वसहितमर्चयेत्तत्र मण्डले ॥११॥
सोममुक्तक्रमेणैव प्रोक्तकालेषु सर्वदा । निवेद्य शर्करादुग्धपायसैश्चोपचारकैः ॥१२॥
सप्तस्वन्येषु कोष्ठेषु कृत्वा वृत्तत्रयं तथा । ततद्वर्गादिवर्णञ्च स्वरैस्तां मातृकामपि ॥१३॥
विलिख्य मध्यञ्च तथा कृत्वा तेषु च तत्क्रमात् । तत्तद्वर्गाक्षराण्याख्या त्र्यक्षरैरालिखेदपि ॥१४॥
मध्ये प्रणवगर्भस्थवर्गाद्यक्षरमालिखेत् । एवं कृतेषु नवसु पूजयेच्च नव ग्रहान् ॥१५॥
अग्न्यादीशान्तमभितो लिखेन्नामान्यनुक्रमात् । त्र्यक्षराणि चतुर्थ्यन्तान्यर्च्चयेत्तैश्च तानिति ॥१६॥
भौमं बुधं तथा सौरिं गुरुं राहुञ्च शुक्रकम् । केतुमेतैस्तु सर्वत्र मन्त्रानुक्तौ च पूजनम् ॥१७॥
एवं नवग्रहाणां तु मण्डलान्युदितानि वै । तेष्वेव तेषामर्चातस्ते कुर्युस्तदनुग्रहम् ॥१८॥
भास्करेन्द्वोश्च तद्वारद्वये दर्शे च पूर्णिके । स्वोच्चयोः स्थितयोः पूजां मण्डलं शृणु पार्वति ॥१९॥
विलिख्य वृत्तयुगलं तन्मध्ये तिर्यगूर्ध्वतः । रेखाभिर्नवभिर्मध्ये त्वेकाशीतिपदं लिखेत् ॥२०॥
ईशकोष्ठादि परितः प्रवेशेनामृतार्णकान् । मायन्ताशीतिसंख्यातान् मध्ये दावगतञ्च तत् ॥२१॥
वृत्तयोरन्तरा कृत्वा मातृकां ग्रथितां च तैः । पञ्चभिश्चालिखेत्तत्र बिम्बे सोमं समर्चयेत् ॥२२॥
कर्पूरचन्दनाभ्यां तदालिखेदिन्दुबिम्बकम् । रक्तचन्दनसिन्दूरगैरिकेष्वेकतो रवेः ॥२३॥
कृत्वा बिम्बं तत्र तञ्च पूजयेत्प्रोक्तरूपतः । द्विवृत्तान्तस्तिर्यगूर्ध्वं कृत्वा रेखाः समान्तराः ॥२४॥
एकोनविंशं तन्मध्येष्वालिखेत्प्राग्वदुदीरितान् । प्राणादिकान्नमोन्तांस्तु स्वैरुपेतान् स्वरैर्युतान् ॥२५॥
वृत्तयोरन्तरा तैश्च पञ्चविंशतिवर्णकैः । स्वरैर्भान्तयुतैर्वह्निदशार्णैर्ग्रथितां लिपिम् ॥२६॥
विलिख्य विशदाकारं त्रिहस्तायामविस्तरम् । तन्मध्ये भानुमावाह्य पूजयेत् प्राग्वदीश्वरि ॥२७॥
पीठे वा सुधया क्लिप्ते भूतले वा शिखातले । सुसमेऽनावृते कृत्वा बिम्बान्युक्तानि पूजयेत् ॥२८॥
एवं सर्वत्र तन्त्रेऽस्मिन् ग्रहपूजा समीरिता । विशेषादेशरहिते तत्र तत्क्रमतोऽर्चयेत् ॥२९॥

अस्यार्थः प्रयोगे वक्ष्यते। वास्तुमण्डलपूजा प्रागेव प्रदर्शिता।

नवग्रहादि पूजा-विधि—तन्त्रराज में कहा गया है कि मातृका विद्याविग्रह में ग्रहों का जैसा विग्रह है, पूजा में वैसा ही उनके धाममण्डल का वर्णन करता हूँ। सुधास्वरस्वरूप चन्द्रमण्डल होता है एवं सूर्यमण्डल सुधाव्यञ्जनरूप है। अन्य देवताओं के मण्डल भी उनके समान ही होते हैं। इसलिये उनके मण्डलों के वर्णों का वर्णन करता हूँ। उनमें नवों की पूजा के लिये नव मण्डल निर्धारित हैं। चन्द्र-सूर्य की पृथक् पूजा उनके मण्डल में ही करे। हे देवेशि! अब उनके श्रेयष्कर क्रम को सुनो। पूर्व से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर चार सूत्रस्फालन से तीन हाथ के वर्ग में नव कोष्ठ बनाये। मध्य कोष्ठ में स्पष्ट तीन वृत्त बनाये। उसके तिर्यक् ऊर्ध्व दो सूत्रपात से नव कोष्ठ बनाये। उसके मध्य ईशानादि क्रम से आठ स्वर अ से ऋ तक लिखकर मध्य में ॐ नमः लिखे। वृत्तवीथियों में स्वरोपेत मातृकाओं को लिखे। उसमें सूर्य का अर्चन बारह नामों से करे। जैसे—ॐ भानवे नमः आदि। सं सोमाय नमः से सोम का अर्चन करे। उसके नाम के साथ बिन्दुयुक्त आठ स्वरों को जोड़कर पूजन करे। वृत्तमध्य में षोडश स्वरों से युक्त मातृकाओं को लिखे। मध्य में भी मातृकाओं को लिखे। उस मण्डल में स्वसहित अग्नि का अर्चन करे। उक्त क्रम से ही निर्धारित काल में सर्वदा चन्द्रमा को शक्कर-दूध-पायस के नैवेद्यसहित उपचारों से अर्चन करे। अन्य सात कोष्ठों में भी तीन-तीन वृत बनाये। वर्गादि में स्वरोपेत मातृका को लिखे। मध्य में उसी क्रम से मातृकाओं

को लिखकर उस वर्ग के तीन अक्षरों को लिखे। बीच में प्रणवसहित वर्ण का प्रथम अक्षर लिखे। इस प्रकार से निर्मित मण्डल में नवो ग्रहों का पूजन करे। आग्नेय से ईशान तक अनुक्रम से नामों को लिखे। चतुर्थ्यन्त तीन अक्षरों को लिखकर पूजा करे। मङ्गल, बुध, शनि, गुरु, राहु, शुक्र और केतु का पूजन मन्त्रों से करे। इस प्रकार के मण्डल में नवग्रहों के पूजन करने से पूजक पर वे कृपा करते हैं।

सूर्य एवं इन्द्र का पूजन रवि और सोमवार को अमावस्या और पूर्णिमा में करे। हे पार्वति! अब अपने उच्चस्थ ग्रहों के पूजा मण्डल का वर्णन सुनो। दो वृत्त बनाकर उसके मध्य में तिर्यक् ऊर्ध्वग नव रेखाओं से इक्यासी कोष्ठ बनाये। ईशान कोष्ठ से अमृत वर्णों को प्रवेश कराकर अस्सी तक के कोष्ठों में मध्य अन्तिम कोष्ठ में एक-एक वृत्त छोड़ करके मातृका वर्णों को ग्रथित करके पाँच-पाँच की संख्या में लिखे। उसमें चन्द्रमा का अर्चन करे। कपूर एवं चन्दन से चन्द्रबिम्ब लिखे। रक्तचन्दन, सिन्दूर, गेरु से रवि को लिखे। वहाँ बिम्ब बनाकर यथाविहित रूप से पूजन करे। दो वृत्तों के अन्तराल में तिर्यक् ऊर्ध्व समान्तर रेखाओं से उन्नीस कोष्ठ बनाये। पूर्वोक्त प्राणादि नमोन्त स्वरोपेत स्वरयुक्त पच्चीस वर्णों को वृत्त के अन्तराल में लिखे। भान्त स्वर से युक्त दश वह्नि वर्णों से ग्रथित लिपि लिखकर तीन हाथ विस्तृत मण्डल सूर्य को पूर्ववत् आवाहित करके पूजन करे। पीठ में अथवा सुधापूरित भूतल या शिलातल को पूर्णतः समतल बनाकर उसपर उक्त बिम्बों का अर्चन करे। इस तन्त्र में सर्वत्र ग्रहपूजा इसी प्रकार कही गई है। विशेष आदेश न होने पर इसी क्रम से अर्चन करे।

तिथिवारर्क्षदेवता

अथ तिथिवारर्क्षदेवताः पिङ्गलामते—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि वारतिथ्यृक्षदेवताः। रवौ सूर्यशिवौ देवि चन्द्रे सोमाम्बिके ततः ॥१॥
भौमे तु मङ्गलगुहौ शुद्ध(बुधो)विष्णुस्ततः परे। परे गुरुचतुर्वक्त्रौ भृगौ शुक्रपुरन्दरौ ॥२॥
मन्दे वारे(धने)श्वरः कालो वारेशाः परिकीर्तिताः। इति।

परे बुधवारे। परे गुरुवारे। तथा—

ब्रह्मा विधाता विष्णुश्च यमः शीतकरो गुरुः। इन्द्रश्च वसवो नागा धर्मः शिवदिवाकरौ ॥१॥
मन्मथश्च कलिश्चैव विश्वेदेवास्तिथीश्वराः। दर्शे तु पितरो देवि पूज्याः सर्वोपचारकैः ॥२॥
अश्विनौ च यमो वह्निर्ब्रह्मेन्दुश्च शिवोऽदितिः। गुरुः सर्पाश्च पितरो भगोऽर्यमदिनेश्वरौ ॥३॥
त्वष्टा वायुरथेन्द्राग्नी मित्रश्चेन्द्रस्ततः प्रिये। निर्ऋतिश्चैव तोयं च विश्वेदेवाः प्रजापतिः ॥४॥
विष्णुश्च वसवो देवि वरुणश्चाज एकपात्। अहिर्बुध्न्यश्च पूषा च प्रोक्ता नक्षत्रदेवताः ॥५॥
एताः सर्वोपचारैस्तु तद्दिनेषु समर्चयेत्। प्रणवाद्यैश्चतुर्थीहृदन्तैर्नामभिरीश्वरि ॥६॥ इति।

अत्रेन्द्राग्नी इत्येकस्यैव नक्षत्रस्य देवताद्वयम्। 'विशाखानक्षत्रमिन्द्राग्निदेवते'ति श्रुतेः। उत्तराषाढानक्षत्रस्य विश्वेदेवाः, श्रवणस्य विष्णुः। एतयोर्मध्ये प्रजापतिरिति यदुक्तं तदभिजितमस्ति, तज्ज्योतिःशास्त्रेऽवगन्तव्यम्।

तिथि-वार-नक्षत्र-देवतापूजन—पिङ्गलामत में कहा गया है कि हे देवि! सुनो, अब मैं वार-तिथि एवं नक्षत्र के देवता को कहता हूँ। रविवार के देवता सूर्य एवं शिव, सोमवार के देवता चन्द्र एवं अम्बिका, मङ्गलवार के देवता मङ्गल एवं कार्तिकेय, बुधवार के बुध एवं विष्णु, बृहस्पतिवार के बृहस्पति एवं ब्रह्मा, शुक्रवार के शुक्र और इन्द्र एवं शनिवार के देवता शनैश्चर और काल कहे गये हैं। इन्हें ही ततत् वारों के वारेश कहते हैं।

तिथियों के स्वामी—ब्रह्मा, विधाता, विष्णु, यम, चन्द्र, गुरु, इन्द्र, वसु, नाग, धर्म, शिव, सूर्य, मन्मथ, कलि और विश्वेदेव तिथियों के स्वामी हैं। अमावस्या में सभी उपचारों से पितर पूज्य हैं।

सत्ताईस नक्षत्रों के देवता—अश्विनीकुमार, यम, अग्नि, ब्रह्मा, चन्द्र, शिव, अदिति, गुरु, सर्प, पितर, भग, अर्यमा, सूर्य, त्वष्टा, वायु, इन्द्र, अग्नि, मित्र, इन्द्र, निर्ऋति, जल, विश्वेदेव, प्रजापति, विष्णु, वसु, वरुण, एकपाद,

अहिर्बुध्न्य एवं पूषा—ये सभी नक्षत्रों के देवता कहे गये हैं। इनका पूजन सभी उपचारों से उनके दिनों में करना चाहिये। प्रणव युक्त चतुर्थ्यन्त नाम और अन्त में नमः लगाकर इनका मन्त्र बनता है।

तद्दिननित्यापूजाविधिप्रयोगः

अथ तद्दिननित्यापूजाविधिः। श्रीतन्त्रराजे (२५ प० ७८ श्लोक)—

आसां तु नित्याविद्यानामङ्गानि च शृणु प्रिये। द्विरुक्तैस्तैः षडङ्गानि कुर्यादर्णैः कराङ्गयोः ॥१॥
विन्यस्य मातृकामुक्तां जपेद्विद्यास्तथैकशः। रक्ता रक्ताम्बरा रक्तभूषणस्त्रग्विलेपना: ॥२॥
पाशाङ्कुशेक्षुकोदण्डप्रसूनविशिखाः स्मरेत्। तदावृतीनां पञ्चानां शक्तीस्तत्सदृशीः स्मरेत् ॥३॥
चतुरस्रद्वयं कृत्वा द्वारद्वयविभूषितम्। अष्टपत्राम्बुजं मध्ये नवयोनौ च तां यजेत् ॥४॥
अङ्गावृतिं मध्ययोनावन्तरे स्वायुधावृतीः। पृष्ठतो गुरुपंक्तिं च कोणेष्वष्टसु च क्रमात् ॥५॥
बहिर्दलेष्वपि तथा यजेद्वर्णैर्विलोमतः। रूपिणीशक्तिसहितैर्मायासप्ताक्षरीयुतैः ॥६॥
ब्राह्म्यादिशक्तीस्तद्बाह्ये चतुरस्रद्वये यजेत्। आसां बलिप्रदानं च करोतु कुरुकुल्लया ॥७॥
सप्ताक्षर्या केवलया प्रोक्तरूपां स्मरन् धिया। इति।

अथ प्रयोगः—तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते तद्दिननित्याविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि ह्रींश्रीं-दक्षिणामूर्तये ऋषये नमः। मुखे पंक्तिच्छन्दसे नमः। हृदये कालनित्यायै देवतायै नमः। इति विन्यस्य हृदयादिषडङ्गेष्वपि विन्यस्य 'रक्तां रक्ताम्बरा'मित्यादि ध्यात्वा मानसपूजादिकं विधाय, स्वपुरतः स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिना सकेस-रमष्टदलकमलं विरच्य, तन्मध्ये नवयोनिचक्रं विधायाष्टदलाद्बहिश्चतुरस्रद्वयमन्तर्विभागेन प्राक्पश्चिमयोर्द्वारद्वययुतं कृत्वा, तन्मध्ये योनौ तद्दिननित्याविद्याया अक्षरत्रयं लिखित्वा श्रीपर्ण्यादिपीठे स्वपुरतः संस्थाप्य, तत्र तद्दिननित्याविद्यया पुष्पाञ्जलिं दत्त्वार्घ्यादिपात्राणि संस्थाप्यात्मपूजां विधाय श्रीचक्रपीठपूजां विधायावाहनादिपुष्पान्तैरुपचारैरुपचर्य्य, लयाङ्गपूजनं कृत्वा योनिमुद्रां पाशादिचतुर्मुद्राः प्रदर्श्य मध्ययोनिमध्येऽग्नीशासुरवायव्यकोणेषु देव्यग्रे तदादिचतुर्दिक्षु च प्राग्वत् षडङ्गानि सम्पूज्य, मध्ययोनेर्बहिरष्टकोणाभ्यन्तरस्थान्तरालेषु प्राग्वदायुधचतुष्टयं सम्पूज्य, देव्याः पृष्ठभागे योनिमध्ये योन्यन्तराले गुरुपंक्तित्रयस्थाने रेखात्रयं विभाव्य, तासु प्रथमरेखायां प्रकाशानन्दादिगुरुत्रयं, मध्यरेखायां श्रीज्ञानानन्दनाथादिगुरुत्रयं, तृतीयरेखायां स्वभावानन्दादिगुरुत्रयं चेति गुरुपंक्तित्रयं पूजयेत्। ततोऽष्टयोनिषु देव्यग्रमारभ्य वामावर्तेन तद्दिननित्याविद्याया मध्याक्षरं षोडशस्वरयुक्तं कृत्वा मायाबीजपूर्वकं तेषामाद्यक्षरमुच्चार्य रूपिणीशक्तिपादुकां पूजयामि, द्वितीयं रूपिणीशक्तिपादुकां पूजयामि, इत्याद्यष्टाशक्तीः सम्पूज्याष्टदलेषु वामावर्तेनावशिष्टाक्षरशक्तीः सम्पूज्य, बहिश्चतुरस्रवीथ्यां वामावर्तेन ब्राह्म्याद्यष्टशक्तीर्मायाबीजादिकाः सम्पूज्य, लोकपालार्चनादिनैवेद्यदानान्ते कुरुकुल्लाविद्यया सप्ताक्षर्या बलिदानं च विधाय सर्वं समापयेदिति तद्दिननित्यायाः पूजाविधिः।

दिननित्या-पूजनविधि—हे प्रिये! नित्या विद्या के अङ्गों का वर्णन सुनो। विद्या की दो आवृत्ति से षडङ्ग न्यास करे। वर्णों से कराङ्ग न्यास करे। मातृका न्यास करके एक-एक विद्या का जप करे। उनका ध्यान इस प्रकार है—

रक्ता रक्ताम्बरा रक्तभूषणस्त्रग्विलेपना:। पाशाङ्कुशेक्षुकोदण्डप्रसूनविशिखाः स्मरेत्।।

इस प्रकार के ध्यान की पाँच आवृत्ति उसके समान शक्ति का स्मरण करे। दो द्वारों से युक्त दो चतुरस्र बनाये और उसके अन्दर अष्टदल कमल में नवयोनि बनाकर यजन करे। मध्ययोनि में अङ्गावृत्ति एवं बाहर में आयुधों की आवृत्ति करे। देवी के पीछे मध्य योनि के बाद गुरुपंक्ति का पूजन करे। अष्टकोणों तथा उसके बाहर आठ दलों में विलोम वर्णों का यजन करे। रूपिणी शक्ति-सहित माया को सप्ताक्षरी युक्त करके पूजन करे। ब्राह्मी आदि शक्तियों का पूजन उसके बाहर चतुरस्र में करे। कुरुकुल्ला से इन सबको बलि प्रदान करे। उस समय केवल सप्ताक्षरी का अपने हृदय में स्मरण करे। नित्या विद्या का पूजन इस प्रकार किया जाता है—प्रातःकृत्य से योगपीठ न्यास तक की क्रिया करने के बाद उस दिन की नित्या विद्या से तीन

प्राणायाम करके ऋष्यादि न्यास करे। ह्रीं श्रीं दक्षिणामूर्तये ऋषये नमः शिरसि। मुखे पंक्तिछन्दसे नमः। हृदये कालनित्यादेवतायै नमः। इसी प्रकार हृदयादि षडङ्ग न्यास करे। 'रक्ता रक्ताम्बरा' से ध्यान करे। मानसिक पूजा करे। अपने आगे स्वर्णादि पट्ट पर कुङ्कुमादि से केसरसहित अष्टदल कमल बनाये। उसमें नवयोनि चक्र बनाये। अष्टदल के बाहर पूर्व-पश्चिम में दो द्वारयुक्त दो चतुरस्र बनाये। चक्र की मध्य योनि में दिननित्या विद्या के तीन अक्षर लिखे। उसे श्रीपर्णादि के पीठ पर अपने आगे स्थापित करे और वहीं पर दिननित्या विद्या से पुष्पाञ्जलि अर्पित करे। आत्मपूजा करे एवं श्रीचक्र में पीठपूजा करे। आवाहन से पुष्पोपचार तक की पूजा करे। लयाङ्ग पूजा करे। योनिमुद्रा पाशादि चार मुद्रा दिखाये। मध्ययोनि के मध्य में अग्नि, ईशान, नैर्ऋत्य, वायव्य कोणों में देवी के आगे से प्रारम्भ करके चारो दिशाओं में पूर्ववत् षडङ्ग पूजन करे। मध्य योनि और अष्टकोण के बीच में गुरुत्रय स्थान में तीन रेखा कल्पित करे। प्रथम रेखा में प्रकाशानन्द आदि गुरुत्रय, मध्य रेखा में श्री ज्ञानानन्दनाथादि गुरुत्रय, तृतीय रेखा में स्वभावानन्दादि गुरुत्रय का पूजन करे। अष्ट योनि में देवी के आगे से प्रारम्भ करके वामावर्त क्रम से दिननित्या विद्या के मध्याक्षर को सोलह स्वरों से युक्त करके मायाबीजपूर्वक आद्य अक्षर कहकर रूपिणीशक्तिपादुकां पूजयामि, द्वितीयं रूपिणीशक्तिपादुकां पूजयामि इत्यादि से आठ शक्तियों का पूजन करे। अष्टदल में वामावर्त क्रम से अवशिष्ट अक्षर शक्तियों का पूजन करे। इसके बाहर चतुरस्र की तिथि में वामावर्त क्रम से ब्राह्मी आदि आठ शक्तियों की पूजा मायाबीजादि से करे। लोकपालों का अर्चन करके नैवेद्य निवेदित करने के पश्चात् कुरुकुल्ला विद्या के साथ सप्ताक्षरी लगाकर बलि प्रदान करते हुये पूजा का समापन करे।

डाकिन्यादिदेवतापूजाप्रयोगः

अथ डाकिन्यादिषड्धातुदेवतापूजाविधिर्लिख्यते। तत्र श्रीतन्त्रराजे (१६ पा० ७२ श्लोक)—

भूमौ विधाय षट्कोणसप्तकं प्रोक्तदिक्क्रमात्। मध्ये च तत्र तां नित्यानित्यां गन्धादिभिर्यजेत् ॥१॥
अभितस्तत्षडस्रेषु तत्षट्कं तत्क्रमाद्यजेत्। बाह्येष्वपि च ताः प्राग्वत्प्रोक्तवर्णाः समर्चयेत् ॥२॥
तासां षण्णामपि तथा षट्कोणेषु सशक्तयः। षट्त्रिंशत्ताः समा देव्याः सर्वरूपायुधादिभिः ॥३॥
प्राग्वत्स्वराणां पञ्च स्युरपूर्वाः कादिमान्तकाः। परेषु यवलक्षार्णरहितैस्तैस्तथार्चयेत् ॥४॥
तेषामपि च चक्राणां शक्तीनां च विलोमतः। पूजा निग्रहसंज्ञा स्यात्सा शत्रूणां विपत्तये ॥५॥ इति।

अथ प्रयोगः—तत्र वेदिकायां गोमयोपलिप्ते पशुदृष्टिरहिते स्वासनपूजादियोगपीठन्यासान्ते नित्यानित्या-पूजोक्तविधिना प्राणायामादिमानसपूजान्तं कृत्वा, स्वपुरतः क्वचिद्बिन्दुं कृत्वा तदवष्टम्भतः परितश्चतुर्विंशाङ्गुलमानभ्रमाद्वृत्तं निष्पाद्य, तन्मध्ये प्राक्प्रत्यगायतं ब्रह्मसूत्रमास्फाल्य तद्ब्रह्मसूत्रस्यार्धमानेन तस्मिन् वृत्ते ब्रह्मसूत्रस्य पूर्वाग्रादितः पश्चिमाग्रादितश्च दक्षिण(भागे)चिह्नद्वयमुत्तरभागे चिह्नद्वयमिति सम्भूय चिह्नचतुष्टयं कृत्वा, चिह्नात् चिह्नं दक्षिणोत्तरायतं तिर्यक्सूत्रद्वयमास्फाल्य, पश्चिमतिर्यक्सूत्राग्रद्वयमारभ्य ब्रह्मसूत्रस्य पूर्वाग्रावधि सूत्रद्वयं विन्यस्य, पुनः पूर्वतिर्यक्सूत्रस्य कोटिद्वयमारभ्य ब्रह्मसूत्रस्य पश्चिमाग्रावधि सूत्रद्वयमास्फाल्य षट्कोणं जायते। ततो वह्निकोणादिवायुकोणान्तं तथे-शानादिनिर्ऋत्यन्तं ब्रह्मसूत्रद्वयमास्फाल्य समेतानि तानि त्रीण्यपि सूत्राणि प्रत्येकं त्रिधा विभज्य चिह्नानि कृत्वा, पश्चिम-वायव्येशानपूर्वाग्नेयनिर्ऋतिदिग्गतेषु षट्सु ब्रह्मसूत्रतृतीयांशस्थानेषु मध्ये च तत्तदर्धमानसूत्रप्रमाणेन वृत्तसप्तकं कृत्वा, ब्रह्मसूत्रत्रयं प्रत्येकं चतुर्विंशतिधा विभज्य, मध्यवृत्तमध्यगतबिन्दुमारभ्य परितः षट्सु वृत्तेषु दशमांशदशमांशस्थानेषु तत्तन्मध्यगतब्रह्मसूत्रचिह्नानि कृत्वा, पुनर्मध्यवृत्तस्य च मध्यादित आग्नेयकोणगतवृत्तब्रह्मसूत्रे प्राग्वद्दशमांशे चिह्नं कृत्वा, तथैवाग्नेयमध्यवृत्तयोरन्तरालादितो वायव्यवृत्तमध्यगतब्रह्मसूत्रे दशमांशे चिह्नं कृत्वा, तथैवेशाननिर्ऋतिकोण-गतवृत्तयोरप्युक्तयुक्त्या प्रतिवृत्तं चिह्नद्वयं विधाय, तथैव प्राक्प्रत्यगायतब्रह्मसूत्रस्य पश्चिमाग्रादितः पूर्वाग्रादितश्च प्राग्वद्दशमांशे चिह्नद्वयं विधाय, सप्तस्वपि वृत्तेषु चिह्ने चिह्ने प्रतिवृत्तं तिर्यग्रेखाद्वयं कृत्वा तेषु प्रागुक्तयुक्त्या षट्कोणसप्तकं निष्पाद्य, तेषु प्रतिषट्कोणं मध्ये च षट्सु त्रिकोणेषु वृत्तानि कृत्वा ब्रह्मसूत्राणि मार्जयेदिति पूजाचक्रमुद्धृत्य, तन्मध्ये नित्यानित्याविद्यया पुष्पाञ्जलिं निक्षिप्य, नित्याविद्ययार्घ्यस्थापनाद्यात्मपूजान्ते मध्यषट्कोणे

नित्यानित्यापूजोक्तविधिना पीठपूजादिपुष्पोपचारान्ते, तत्रोक्तविधिना डाकिन्यादिषट्कं सम्पूज्य धूपदीपौ दत्त्वा वक्ष्यमाणनैवेद्यषट्कं निवेद्य, तम्बूलादि सर्वं च निवेद्य निर्ऋतिकोणे धूम्रवर्णे मध्ये डाकिनीमावाह्य धूम्रवर्णां नित्यासमान-मुखभुजादियुतां ध्यात्वा, डांडामित्यादिषडङ्गमन्त्रैर्जातियुतैः षडङ्गन्यासयोगेन सकलीकृत्य तस्याः प्राणप्रतिष्ठां विदध्यात्। एवमुत्तरत्रापि राकिण्यादीनामाद्यक्षरैः षड्दीर्घजातियुतैस्तासां सकलीकरणं प्राणप्रतिष्ठां च कुर्यात्। ततः स्वाभि-मुखीमासनादिपुष्पान्तैरुपचारैरभ्यर्च्य तदावरणशक्तीश्च निर्ऋतिकोणे ह्रींआंअंशक्तिपादुकां पूजयामि। एवं वायव्यकोणे २ कंशक्तिपादुकां पूजयामि। पूर्वकोणे २ खंशक्तिपादु०। आग्नेयकोणे २ गंशक्तिपा०। ईशानकोणे २ घंशक्तिपा०। पश्चिमकोणे २ ङंशक्तपादु०। इति सम्पूज्य धूपदीपौ दत्त्वा पायसान्नं निवेद्य, ताम्बूलादिप्रणामान्तैरुपचारैः परितोष्य वायव्यषट्कोणे सिन्दूरवर्णे राकिणीमावाह्य, सिन्दूरवर्णां नित्यानित्यासमान-मुखभुजादियुतां ध्यात्वासनादिपुष्पोपचारान्ते राकिण्यादिवामाग्रदक्षिणाग्रपृष्ठवामदक्षिणसंमुखस्थेषु षट्सु कोणेषु ह्रींआंअंशक्तिपादु०। एवं २ चंशक्तिपा०। २ छंशक्तिपा०। २ जंशक्तिपा०। २ झंशक्तिपादुका०। २ ञंशक्तिपादुकां पूजयामीति सम्पूज्य, धूपदीपौ दत्त्वा गुडौदनं निवेद्य ताम्बूलादि प्राग्वत्कल्पयेत्। ततः पूर्वदिग्गतषट्कोणे नीलवर्णे लाकिनीमावाह्य नीलवर्णां प्राग्वन्मुखभुजादियुतां ध्यात्वासनादिपुष्पोपचारान्ते प्रोक्तरीत्या षट्कोणेषु ह्रींआंअंशक्तिपादु०। २ टंशक्तिपा०। २ ठंशक्तिपा०। २ डंशक्तिपा०। २ ढंशक्तिपा०। २ णंशक्तिपा०। इति सम्पूज्य धूपदीपौ दत्त्वा मुद्गौदनं निवेद्य शेषं प्राग्वत् कुर्यात्। आग्नेयदिग्गतषट्कोणे उद्यदादित्यवर्णे तादृशीं काकिनीमावाह्य प्राग्वद् ध्यात्वाऽऽसनादिपुष्पोपचारान्ते प्राग्वत् षट्कोणेषु ह्रींआंअंशक्तिपा०। २ तंशक्तिपा०। २ थंशक्तिपा०। २ दंशक्तिपा०। २ धंशक्तिपा०। २ नंशक्तिपा०। इति सम्पूज्य निवेद्य शेषं प्राग्वत् कुर्यात्। तत ईशानदिग्गतषट्कोणे हेमवर्णे शाकिनीमावाह्य स्वर्णवर्णां ध्यात्वाऽऽसनादिपुष्पोपचारान्ते २ अंशक्तिपा०। २ पंशक्तिपा०। २ फंशक्तिपा०। २ बंशक्तिपा०। २ भंशक्तिपा०। २ मंशक्तिपा०। इति सम्पूज्य तिलमिश्रान्नं निवेद्य शेषं प्राग्वत् कुर्यात्। अथ पश्चिमषट्कोणे शुभ्रवर्णे हाकिनीमावाह्य प्राग्वद्भुजादियुतां शुभ्रवर्णां ध्यात्वाऽऽस-नादिपुष्पोपचारान्ते २ अंशक्तिपा०। २ रंशक्तिपा०। २ शंशक्तिपा०। २ षंशक्तिपा०। २ संशक्तिपा०। २ हंशक्तिपा०। इति सम्पूज्य धूपदीपौ दत्त्वा शुद्धान्नं निवेद्य ताम्बूलादि प्राग्वत् कल्पयेत्। ततो नित्यां प्राग्वत्तद्विद्यया सम्पूज्य धूपदीपौ दत्त्वा स्तुतिप्रणामादिभिः परितोष्य डाकिन्याद्याः सावरणा अस्यां संयोज्य तां च स्वहृदि उद्वास्य तन्मयः सुखं विहरेदिति।

डाकिनी आदि छः धातुदेवता पूजा-विधि—गोबर से लिप्त पशु-दृष्टिरहित वेदी में अपने आसनपूजा से योगपीठ न्यास तक करके नित्यानित्या पूजा में उक्त विधि से प्राणायामादि मानस पूजा करके अपने आगे एक बिन्दु लगाकर उसको केन्द्र मानकर चौबीस अंगुल मान का वृत्त बनाये। उसमें पूर्व से पश्चिम तक ब्रह्मसूत्रपात करे। ब्रह्मसूत्र के अर्ध मान से उस वृत्त के ब्रह्मसूत्र के पूर्वाग्र से पश्चिमाग्र तक दक्षिण भाग में दो चिह्न लगाये। उत्तर भाग में भी दो चिह्न लगाये। चार चिह्न लगाकर चिह्न से चिह्न तक दक्षिणोत्तरायत तिर्यक् दो सूत्रों का स्फालन करे। पश्चिम तिर्यक् सूत्राग्रद्वय से ब्रह्मसूत्र के पूर्वाग्र तक दो सूत्रों का विन्यास करे। पुनः पूर्व तिर्यक् सूत्र का कोटिद्वय आरम्भ करके ब्रह्मसूत्र के पश्चिमाग्र तक दो सूत्र स्फालित करने से षट्कोण बन जाता है।

तब अग्नि कोण से वायु कोण तक, ईशान से नैर्ऋत्य तक दो ब्रह्मसूत्र स्फालित करके उनके सहित तीन सूत्रों को त्रिधा विभाजित करके चिह्न लगाये। पश्चिम-वायव्य-ईशान-पूर्व-अग्नि-नैर्ऋत्य छः दिशाओं में ब्रह्मसूत्र के तृतीयांश स्थानों में मध्य में उनके अर्ध मान सूत्रप्रमाण से सात वृत्त बनाये। प्रत्येक ब्रह्मसूत्रत्रय को चौबीस भागों में विभक्त करे। मध्यवृत्तगत मध्य बिन्दु से प्रारम्भ करके छः वृत्तों के बगल में दशमांश स्थानों में उनके ब्रह्मसूत्रों में चिह्न लगाये। पुनः मध्यवृत्त के मध्य से प्रारम्भ करके आग्नेय कोणगत ब्रह्मसूत्र में पूर्ववत् दशमांश में चिह्न लगाये। उसी प्रकार आग्नेय मध्यवृत्त अन्तराल से वायव्य वृत्त मध्यगत ब्रह्मसूत्र के दशमांश में चिह्न लगाये। उसी प्रकार ईशान-नैर्ऋत्य कोणगत वृत्त में युक्तियुक्त रीति से प्रतिवृत्त दो चिह्न लगाये। उसी प्रकार पूर्व-पश्चिमगत ब्रह्मसूत्र के पश्चिमाग्र से पूर्वाग्र तक पूर्ववत् दशमांश में दो चिह्न लगाये। सातो वृत्तों में चिह्न

से चिह्न प्रतिवृत्त दो तिर्यक् रेखा बनाये। उनमें पूर्वोक्त युक्ति से सात षट्कोण बनाये। उनमें प्रत्येक षट्कोण के छः त्रिकोणों में वृत्त बनाये। ब्रह्मसूत्र को मिटाने से पूजाचक्र बन जाता है। उसके मध्य में नित्यानित्या विद्या से पुष्पाञ्जलि निक्षिप्त करे। नित्याविद्या से अर्घ्य-स्थापन से आत्मपूजा तक मध्य षट्कोण में नित्यानित्या पूजोक्त विधि से पीठपूजादि से पुष्पोपचार तक करके उक्त विधि से डाकिन्यादि छः का पूजन कर धूप-दीप-नैवेद्य आदि का निवेदन करे। ताम्बूलादि प्रदान करे। धूम्रवर्ण नैर्ऋत्य कोण में मध्य में डाकिनी का आवाहन करके धूम्रवर्णा नित्या के सदृश मुख-भुजादि से युक्त रूप का ध्यान करे। डां डीं इत्यादि षडङ्ग मन्त्र में नाम लगाकर षडङ्ग न्यासयोग से सकलीकरण करके प्राणप्रतिष्ठा करे।

इसी प्रकार उत्तरोत्तर राकिण्यादि नाम अक्षरों को षड्दीर्घ जातियुत करके उनका सकलीकरण करके प्राणप्रतिष्ठा करे। तब स्वाभिमुखी आसनादि से पुष्प तक के उपचारों से पूजा करे। उनकी आवरण शक्तियों का नैर्ऋत्य कोण में ह्रीं आं अंशक्तिपादुकां पूजयामि। इसी प्रकार वायव्य कोण में ह्रीं आं कंशक्तिपादुकां पूजयामि। पूर्वकोण में ह्रीं आं खंशक्तिपादुकां पूजयामि, आग्नेय कोण में ह्रीं आं गंशक्तिपादुकां पूजायामि, ईशान कोण में ह्रीं आं घंशक्तिपादुकां पूजयामि, पश्चिमकोण में ह्रीं आं ङं शक्तिपादुकां पूजयामि से पूजन करके धूप-दीप देकर पायस निवेदित करे। ताम्बूलादि-प्रदान से प्रणाम तक विविध उपचारों से उन्हें परितुष्ट करे। पुनः वायव्य षट्कोण में सिन्दूर वर्णा राकिणी का आवाहन करे। सिन्दूरवर्णा नित्यानित्या के समान मुख-भुजादियुत उनका ध्यान करके आसनादि से पुष्पोपचार तक अर्पण करके राकिण्यादि वामाग्र दक्षिणाग्र पृष्ठ वाम दक्षिण समुखस्थ छः कोणों में ह्रीं आं अंशक्तिपादुकां पूजयामि। इसी प्रकार ह्रीं आं चं शक्तिपादुकां पूजयामि, ह्रीं आं छं शक्तिपादुकां पूजयामि, ह्रीं आं जं शक्तिपादुकां पूजयामि, ह्रीं आं झं शक्तिपादुकां पूजयामि, ह्रीं आं ञं शक्तिपादुकां पूजयामि से पूजा करे। धूप-दीप प्रदान कर गुड़-भात निवेदित करके पूर्ववत् ताम्बूलादि प्रदान करे।

तदनन्तर पूर्व दिग्गत षट्कोण में नील वर्ण की लाकिनी का आवाहन करे। पूर्ववत् मुख-भुजादि युत उनका ध्यान करे। आसनादि से पुष्पोपचार तक पूजा करे। प्रोक्त रीति से षट्कोणों में ह्रीं आं अंशक्तिपादुकां पूजयामि। ह्रीं आं टंशक्तिपादुकां पूजयामि, ह्रीं आं ठंशक्तिपादुकां पूजयामि, ह्रीं आं डंशक्तिपादुकां पूजयामि, ह्रीं आं ढंशक्तिपादुकां पूजयामि, ह्रीं आं णंशक्तिपादुकां पूजयामि से पूजकर धूप-दीप देकर मूंग का भात निवेदन करके पूर्ववत् शेष कृत्य सम्पन्न करे।

आग्नेय दिग्गत षट्कोण में उदीयमान सूर्य वर्ण की काकिनी का आवाहन करे। पूर्ववत् ध्यान के बाद आसनादि से पुष्पोपचार तक पूजा करे। पूर्ववत् षटकोणों में ह्रीं आं अंशक्तिपादुकां पूजयामि, ह्रीं आं तंशक्तिपादुकां पूजयामि, ह्रीं आं थंशक्तिपादुकां पूजयामि, ह्रीं आं दंशक्तिपादुकां पूजयामि, ह्रीं आं धंशक्तिपादुकां पूजयामि, ह्रीं आं नंशक्तिपादुकां पूजयामि से पूजा कर पूर्ववत् नैवेद्यादि समर्पित करे। ईशान दिग्गत षट्कोण में स्वर्ण वर्ण की काकिनी का आवाहन करके उनका ध्यान करे। आसनादि से पुष्प तक पूजा करे। ह्रीं आं अं शक्तिपादुकां पूजयामि, ह्रीं आं पं शक्तिपादुकां पूजयामि, ह्रीं आं फं शक्तिपादुकां पूजयामि, ह्रीं आं बं शक्तिपादुकां पूजयामि, ह्रीं आं भं शक्तिपादुकां पूजयामि, ह्रीं आं मं शक्ति पादुकां पूजयामि से पूजकर तिलमिश्रान्न निवेदित कर शेष कृत्य पूर्ववत् सम्पन्न करे। पश्चिम षट्कोण में शुभ्रवर्ण की हाकिनी का आवाहन करके पूर्ववत् भुजादियुत उसके शुभ्रवर्ण का ध्यान करे। आसन से पुष्प तक पूजा करे। ह्रीं आं अं शक्ति पादुकां पूजयामि, ह्रीं आं रं शक्ति पादुकां पूजयामि, ह्रीं आं शं शक्ति पादुकां पूजयामि, ह्रीं आं षं शक्ति पादुकां पूजयामि, ह्रीं आं सं शक्ति पादुकां पूजयामि, ह्रीं आं हं शक्ति पादुकां पूजयामि से पूजा करे। तदनन्तर धूप-दीप देकर शुद्धान्न निवेदित करे। पूर्ववत् ताम्बूलादि प्रदान करे। तब नित्या को पूर्ववत् दो विद्या से पूजन कर धूप-दीप देकर स्तुति-प्रणाम आदि से परितुष्ट करके सावरण डाकिन्यादि को भी हाकिनी के साथ जोड़कर उन्हें अपने हृदय में स्थापित करते हुये तन्मय होकर सुख से विहार करे।

पञ्चाशन्मिथुनपूजा

अथ पञ्चाशन्मिथुनपूजा। तत्र श्रीतन्त्रराजे (१६ पा० ९५ श्लोक)—

आदिक्षान्ताक्षरैः प्राग्वद्रूपिणीशक्तिसंयुतैः। बीजद्वयाद्यैः सप्ताक्षर्य्यन्तैः पञ्चदशाक्षरैः ॥१॥
पञ्चाशच्छक्तयः पूज्याः पञ्चाशत्क्षेत्रपालकैः। तेषां बीजद्वयं वर्णा रूपक्षेत्रेशसंयुताः ॥२॥
सप्ताक्षर्य्या च संयुक्ता मन्त्राः पञ्चदशाक्षराः। चतुष्षष्टिपदे मध्यचतुष्के दिनविद्यया ॥३॥

मनीषितं समालिख्य तेषु तन्मिथुनानि वै। घटिकाक्रमयोगेन हृन्मायामध्यगेऽर्चयेत् ॥४॥
दिनेषु घटिकायोगात्पञ्चाशन्मिथुनान्यपि। एवं मण्डलमासार्धात्प्राप्नोत्येवाभिवाञ्छितम् ॥५॥
नित्यशस्ताः समावाह्य तस्मिंश्चक्रे समर्चनात्। समस्तवाञ्छितप्राप्तिः सदा भवति सर्वतः ॥६॥ इति।

आदिक्षान्तेत्यादि सर्वत इत्यन्तस्य श्लोकषट्कस्यायमर्थः—तत्र प्राग्वच्छुभस्थाने समान्तरालानि नव सूत्राणि प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक्च विन्यस्य चतुष्षष्टिपदोपेतं चतुरस्रचक्रं कृत्वा, तस्मिंश्चक्रे मध्यकोष्ठचतुष्कमेकीकृत्य, तत्र तद्दिननित्याक्षराणि स्वाभिमतप्रार्थनमध्यमालिख्य तदनन्तरे बाह्याधःपंक्तिस्थमध्यद्वये दक्षिणं कोष्ठमारभ्य प्रादक्षिण्यक्रमेणामुक्तक्रमं निर्गमगत्या चक्रवामपंक्त्याधःकोष्ठावधि षष्टिकोष्ठेषु तद्दिनोदयाक्षरादीनि मातृकायाः पञ्चाशदक्षराणि विसर्गस्वरसहितानि ह्रीमितिबीजमध्यगतानि विलिख्यावशिष्टेषु पुनरप्युदयादीनि दशाक्षराणि समालिख्य, तेषु लिखितक्रमेणोदयाक्षरादिषु षष्टिघटिकासु तत्र घटिकामिथुनं षोडशभिरुपचारैरभ्यर्च्य तत्फलमवाप्नुयात्। अत्र पूजामन्त्रस्तु 'ह्रींश्रींअंरूपिणीशक्तिपादुकां पूजयामि' इत्यादिशक्तिविद्याः पञ्चाशत्, 'ह्रींश्रींअंरूपक्षेत्रेशपादुकां पूजयामि' इत्यादयः क्षेत्रेशाः पञ्चाशदित्येवं पञ्चाशदक्षरादीनि षष्टिमिथुनानि यथाक्रममेकैकशःस्थ (?) बिलम्बेन पूजयेत्। प्रतिघटिकापूजनस्य तदेककाम्यकर्मविषयत्वात्। इति पञ्चाशन्मिथुनपूजा।

पचास मिथुन पूजा—श्रीतन्त्रराज में कहा गया है कि पूर्ववत् शुभ समतल स्थान में सम अन्तराल पर नव सूत्र पूर्व-पश्चिम-दक्षिण-उत्तर स्फालित करके चौंसठ कोष्ठों का एक चतुरस्र बनाये। उस चक्र के मध्य चार कोष्ठों को एक करे। उसमें उस दिन की नित्या विद्या वर्णों को स्वाभिमत प्रार्थनामध्य में लिखे। उसके बाहर अधोपंक्ति-स्थित मध्यद्वय दक्षिण कोष्ठ से आरम्भ करके प्रदक्षिण क्रम से निर्गम गति से चक्र के वाम पंक्ति के नीचे वाले कोष्ठ तक साठ कोष्ठों में तत् दिनोदित अक्षरों को मातृका के पचास अक्षरों के विसर्ग-स्वरसहित ह्रीं से सम्पुटित करके लिखे। अवशिष्टों में पुनः उदयादि दश अक्षरों को लिखे। उन लिखित क्रमोदित अक्षरों में साठ घटिका में घटिकामिथुनों को सोलह उपचारों से अर्चित करे। इससे वाञ्छित फल भी पूर्ण रूप से प्राप्ति होती है। यहाँ पूजामन्त्र इस प्रकार है—ह्रीं श्रीं अंरूपिणीशक्तिपादुकां पूजयामि'। इस प्रकार पचास शक्ति विद्या का पूजन करे। ह्रीं श्रीं अं रूप क्षेत्रेश पादुकां पूजयामि इत्यादि से पचास क्षेत्रेशों का पूजन पचाश अक्षरों से करे। तब शेष दश कोष्ठों में पुनः एक-एक का पूजन यथाक्रम से करे। प्रत्येक घटिका-पूजन एक-एक काम्य कर्मों के लिये किया जाता है।

कामेश्वरीनित्यायजनविधिः

अथ कामेश्वर्यादिपञ्चदशनित्यानां पूजाविधिर्लिख्यते। तत्र कामेश्वरीनित्यायजनविधिः श्रीतन्त्रराजे (७ प० १ श्लोक)—

अथ षोडशनित्यासु द्वितीया या समीरिता। कामीश्वरीति तां सर्वकामदां शृणु तत्त्वतः ॥१॥
तत्त्वन्यासं ध्यानभेदांस्तच्छक्तीस्तत्प्रपूजनम्।

मन्त्रोद्धारस्तु तत्रैव (३.६)—

शुचिः स्वेन युतस्त्वाद्यो ललिता स्याद्द्वितीयकः। शून्यमग्नियुतं पश्चाद्रयो व्याप्तेन संयुतः ॥१॥
प्राणो रसाग्निसहितः शून्ययुग्मं चरान्वितम्। नभो गोत्रा पुनश्चैषा दाहेन समयोजिता ॥२॥
अम्बु स्याच्चरसंयुक्तं वनशक्तियुतञ्च हृत्। एषा कामेश्वरी नित्या कामदैकादशाक्षरी ॥३॥ इति।

ऐं सकलह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे सौः ११ इति। तथा त्रिपुरार्णवे—

(ऋषिः सम्मोहनः प्रोक्तस्त्रिष्टुप् छन्द उदाहृतम्। कामेश्वरीदेवता स्याद्ब्रह्मबीजं तु बीजकम् ॥१॥
शक्तिः कामकला प्रोक्ता धराबीजं तु कीलकम्।)

तन्त्रराजे (७.३)—

मूलविद्याक्षरैरेवं कुर्यादङ्गानि षट् क्रमात्। एकेन हृदयं शीर्षं तावताथो द्वयं द्वयात् ॥१॥

चतुर्भिर्नयनं तद्वदस्त्रमेकेन चोदितम् । दिक्श्रोत्रनासाद्वितये जिह्वाहृन्नाभिगुह्यके ॥२॥
व्यापकत्वेन सर्वाङ्गे मूर्धादिप्रपदावधि । न्यसेद्विद्याक्षराण्येषु स्थानेषु तदनन्तरम् ॥३॥
समस्तेन व्यापकं तु कुर्यादुक्तक्रमेण वै । अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि नित्यपूजासु चोदितम् ॥४॥
येन देवी सुप्रसन्ना ददातीष्टमयत्नतः । बालार्ककोटिसङ्काशां माणिक्यमुकुटोज्ज्वलाम् ॥५॥
हारग्रैवेयकाञ्चीभिरूर्मिकानूपुरादिभिः । मण्डितां रक्तवसनां रक्ताभरणशोभिताम् ॥६॥
षड्भुजां त्रीक्षणामिन्दुकलाकलितमौलिकाम् । पञ्चाष्टषोडशद्वन्द्वषट्कोणचतुरस्रगाम् ॥७॥
मन्दस्मितोल्लसद्वक्त्रां लज्जामन्थरवीक्षणाम् । पाशाङ्कुशौ च पुण्ड्रेक्षुचापं पुष्पशिलीमुखम् ॥८॥
रत्नपात्रं सुधापूर्णं वरदं बिभ्रतीं करैः । एवं ध्यात्वार्चयेद् देवीं नित्यपूजासु सिद्धये ॥९॥
प्रयोगादिषु सर्वत्र वक्ष्ये ध्यानानि तत्र वै । मदनोन्मादनौ पश्चात्तथा दीपनमोहनौ ॥१०॥
शोषणश्चेति कथिता बाणाः पञ्च पुरोदिताः । कुसुमा मेखला पश्चान्मदना मदनातुरा ॥११॥
अनङ्गपदपूर्वास्ताः पञ्चमी मदवेगिनी । ततो भुवनपाला स्याच्छशिरेखा त्वनन्तरा ॥१२॥
रेखा गगनपूर्वान्या पूज्या पत्रेषु चाष्टसु । श्रद्धा प्रीती रतिश्चैव धृतिः कान्तिर्मनोरमा ॥१३॥
मनोहराष्टमी प्रोक्ता देवी चात्र मनोरथा । मदनोन्मादिनी पश्चान्मोहिनी शङ्खिनी ततः ॥१४॥
शोषिणी च वशङ्कारी शिञ्जिनी सुभगा ततः । सस्वराः षोडश प्रोक्ताः प्रियदर्शिनिकान्तिकाः ॥१५॥
पूज्यास्ताः प्रतिपत्रं तु प्रत्येकं षोडशच्छदे । पूषा चेद्धा सुमनसा रतिः प्रीतिर्धृतिस्तथा ॥१६॥
ऋद्धिः सौम्या मरीचिश्च परतस्त्वंशुमालिनी । शशिनी चाङ्गिरा च्छाया ततः सम्पूर्णमण्डला ॥१७॥
तुष्ट्यमृताख्या कथिताः कलाः स्युः सस्वरा विधोः । षोडशस्वपि पत्रेषु पूजयेत्ता यथाक्रमम् ॥१८॥
बहिः षट्कोणकोणेषु डाकिन्याद्यास्तथार्चयेत् । तद्बहिश्चतुरस्रस्थलोकेशास्तत्समा यजेत् ॥१९॥
वटुकं गणपं दुर्गां क्षेत्रेशं चाभितो यजेत् । अग्न्याद्यस्रेषु विद्यादिसप्ताक्षर्य्यन्तरास्थितैः ॥२०॥
तन्नामभिर्बलिं तेभ्यो दद्याद्गन्धादि चोदितैः । ततस्तामङ्गविद्याभ्यां क्लृप्तार्घ्यः पूजयेच्छिवाम् ॥२१॥
प्रागुक्तैरुपचाराद्यैर्होमं कुर्यात्ततस्तथा । घृताक्तैर्मधुराक्तैर्वा प्रसूनैररुणैः शुभैः ॥२२॥
अन्नाद्याभ्यां प्रजुहुयात्ततः प्राग्वत्समापयेत् । इति।

अथ प्रयोगः—तत्र प्रातःकृत्यादियोगपीठन्यासान्ते कामेश्वरीविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि सम्मोहनाय ऋषये नमः। मुखे त्रिष्टुप्छन्दसे नमः। हृदये कामेश्वरीदेवतायै नमः। गुह्ये कंबीजाय नमः। पादयोः ईंशक्तये नमः। नाभौ लंकीलकाय नमः, इति विन्यस्य मम कर्तव्यपूर्णाभिषेकाख्यद्वितीयदीक्षाफलसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, ऐं हृदयाय नमः। सकलह्रीं शिरसे स्वाहा, नित्य शिखायै वषट्। क्लिन्ने कवचाय हुं। मदद्रवे नेत्रत्रयाय वौषट्। सौः अस्त्राय फट्, इति षडङ्गन्यासं विधाय, दक्षनेत्रे ऐं नमः। वामे सकलह्रीं नमः। दक्षश्रोत्रे नि नमः। वामे त्य नमः। दक्षनसि क्लि नमः। वामे न्ने नमः। जिह्वायां म नमः। हृदये द नमः। नाभौ द्र नमः। गुह्ये वे नमः। सौः इति सर्वाङ्गे व्यापकं विन्यस्य, ध्यानं विधाय मानसपूजान्ते स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिना पञ्चदलकमलं कृत्वा तद्बहिरष्टदलं तद्बहिः षोडशदलं तद्बहिः षट्कोणं तद्बहिश्चतुर्द्वारयुक्तं चतुरस्रमिति पूजाचक्रं निर्माय स्वपुरतश्चन्दनादिपीठे संस्थाप्य, तत्र कामेश्वरीविद्यया पुष्पाञ्जलिं विनिःक्षिप्यार्घ्यादिस्थापनाद्यात्मपूजान्ते पीठपूजां कृत्वा, तत्र कामेश्वरीविद्यया मूर्तिं परिकल्प्यावाहनादिपुष्पोपचारान्ते लयान्तं सम्पूज्य, पञ्चदलकमलकेसरेषु अग्नीशासुरवायव्यदेव्यग्रतस्तदादिचतुर्दिक्षु च षडङ्गानि सम्पूज्य, देव्याः पृष्ठभागे पञ्चदलाष्टदलयोरन्तराले प्राग्वद्दिननित्यापूजोक्तगुरुत्रयं सम्पूज्य, पञ्चदलेषु देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन ह्रींश्रींद्रां मदनबाणाय नमः, २ द्रीं उन्मादनबाणाय नमः। २ क्लीं दीपनबाणाय नमः। २ ब्लूं

मोहनबाणाय नमः। २ सः शोषणबाणाय नमः, इति सम्पूज्य, तद्बहिरष्टदलेषु देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन, २ अनङ्गकुसुमापा०। २ अनङ्गमेखलापा०। २ अनङ्गमदनापा०। अनङ्गमदनातुरापा०। २ अनङ्गमदवेगिनीपा०। २ अनङ्गभुवनपालापा०। २ अनङ्गशशिरेखापा०। २ अनङ्गगगनरेखापादुकां पूजयामि नमः। ततः षोडशदलेषु २ अं श्रद्धापादुकां पूजयामि नमः। २ आं प्रीतिपा०। २ इं रतिपा०। २ ईं धृतिपा०। २ उं कान्तिपा०। २ ऊं मनोरमापा०। २ ऋं मनोहरापा०। २ ॠं मनोरथापा०। २ लृं मदनापा०। २ ॡं उन्मादिनीपा०। २ एं मोहिनीपा०। २ ऐं (शान्ति?शङ्खिनी)पा०। २ ओं शोषिणीपा०। २ औं वशङ्करीपा०। २ अं शिञ्जिनीपा०। २ अः सुभगापा० इति सम्पूज्य, तद्बहिः षोडशदलाग्रेषु— २ अं पूषापादुकां०। २ आं इन्द्वापा०। २ इं सुमनसापा०। २ ईं रतिपा०। २ उं प्रीतिपादुकां०। २ ऊं धृतिपा०। २ ऋं ऋद्धिपा०। २ ॠं सौम्यापा०। २ लृं मरीचिपा०। २ ॡं अंशुमालिनीपा०। २ एं शशिनीपा०। २ ऐं अङ्गिरापा०। २ ओं छायापा०। २ औं सम्पूर्णमण्डलापा०। २ अं तुष्टिपा०। २ अः अमृतापा०, इति सम्पूज्य, तद्बहिः षट्-कोणेषु—दक्षिणाग्रकोणे २ ऐं डाकिनीपा०। वामाग्रे २ ऐं राकिणीपा०। पृष्ठकोणे ऐं लाकिनीपा०। पृष्ठवामे २ ऐं काकिनी०। पृष्ठदक्षिणे २ ऐं शाकिनीपा०। देव्यग्रे २ ऐं हाकिनीपा०, इति सम्पूज्य, षट्कोणाद्बहिश्चतुरस्राभ्यन्तरे आग्नेयकोणे २ ऐं वटुकपा०। नैर्ऋते २ गं गणपतिपा०। वायव्ये ऐं दुर्गापा०। ईशाने २ ऐं क्षं क्षेत्रेशपा०, इति सम्पूज्य, तद्बहिः चतुरस्रे देव्याः पृष्ठभागमारभ्य पूर्वादिदशदिक्षु २ ऐं लं इन्द्रशक्तिपा०। २ ऐं रं अग्निशक्तिपा०, इत्यादिलोकपालांस्तदायुधानि च शक्त्यन्तैस्तन्नामभिः सम्पूज्य, धूपदीपनैवेद्यान्ते कुरुकुल्लाबलिं वटुकगणपदुर्गाक्षेत्रेशबलिं च दत्त्वा जपादिकं शेषं समापयेत्। अत्र पञ्चदशनित्यास्वपि पूजादौ सर्वभूतबलिं पूजान्ते सप्ताक्षर्या कुरुकुल्लाबलिं दद्यात्, इति कामेश्वरीनित्यायजनविधिः।

कामेश्वरी नित्या-यजन—श्रीतन्त्रराज में कहा गया है कि षोडश नित्याओं में द्वितीय स्थान पर अवस्थित समस्त कामनाओं को प्रदान करने वाली कामेश्वरी नित्या के तत्त्वन्यास, ध्यान, भेद एवं उनके पूजनक्रम का अब निरूपण किया जाता है।

तन्त्रराज के श्लोक एक से तीन तक का उद्धार करने पर कामेश्वरी एकादशक्षरी विद्या इस प्रकार की होती है— ऐं सकलह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे सौः। इस विनियोग त्रिपुरार्णव में इस प्रकार कहा गया है—अस्य मन्त्रस्य ऋषिः सम्मोहनः, त्रिष्टुप् छन्दः, कामेश्वरी देवता ब्रह्मबीज बीजम्, कामकला शक्तिः, धराबीजं कीलकम्।

तन्त्रराज में कहा गया है कि प्रातःकृत्यादि से योगपीठन्यास तक की क्रिया के बाद तीन प्राणायाम करे। ऋष्यादि न्यास इस प्रकार करे—शिरसि सम्मोहनऋषये नमः। मुखे त्रिष्टुप् छन्दसे नमः। हृदये कामेश्वरीदेवतायै नमः। गुह्ये कं बीजाय नमः। पादयोः ईं शक्तये नमः। नाभौ लं कीलकाय नमः। न्यास करने के बाद 'मम कर्तव्यपूर्णाभिषेकाख्यद्वितीयदीक्षाफल- सिद्धये विनियोगः'। तब इस प्रकार षडङ्ग न्यास करे—ऐं हृदयाय नमः। सकलह्रीं शिरसे स्वाहा। नित्य शिखायै वषट्। क्लिन्ने कवचाय हुम्। मदद्रवे नेत्रत्रयाय वौषट्। सौः अस्त्राय फट्।

तदनन्तर इस प्रकार व्यापक न्यास करे—दक्षनेत्रे ऐं नमः। वामे सकलह्रीं नमः। दक्षश्रोत्रे नि नमः। वामे त्य नमः। दक्षनसि क्लि नमः। वामे न्ने नमः। जिह्वायां म नमः। हृदये द नमः। नाभौ द्र नमः। गुह्ये वे नमः। सौः से सर्वाङ्ग में व्यापक न्यास करे। तदनन्तर ध्यान करने के बाद मानस पूजा करे। तब स्वर्णपट्ट पर कुङ्कुमादि से पञ्चदल कमल बनाये। उसके बाहर अष्टदल बनाये। उसके बाहर षोडश दल, उसके बाहर षट्कोण, उसके बाहर चार द्वारों से युक्त भूपुर बनाये। इस प्रकार का पूजाचक्र बनाकर उसे अपने आगे चन्दनादि के पीठ पर स्थापित करे। तब कामेश्वरी विद्या से पुष्पाञ्जलि प्रदान करे।

अर्घ्यादि-स्थापन करके आत्मपूजा के बाद पीठपूजा करे। कामेश्वरी विद्या से मूर्ति कल्पित करे। आवाहनादि से पुष्पोपचारान्त पूजन करके लयाङ्ग पूजा करे। पञ्चदल केसर में अग्नि, ईशान, नैर्ऋत्य, वायव्य में देवी के आगे से प्रारम्भ करके चारो दिशाओं में षडङ्ग पूजन करे। देवी के पीछे पञ्चदल अष्टदल के अन्तराल में पूर्ववत् दिननित्या-पूजन के अनुसार ही गुरुत्रय का पूजन करे।

पञ्चदल में देवी के आगे से प्रादक्षिण्य क्रम से पूजा करे—ह्रीं श्रीं द्रां मदनबाणाय नमः। ह्रीं श्रीं द्रीं उन्मादनबाणाय नमः। ह्रीं श्रीं क्लीं दीपनबाणाय नमः। ह्रीं श्रीं ब्लूं मोहनबाणाय नमः। सः शोषणबाणाय नमः। उसके बाहर अष्टदल में पूजा करे। देवी के आगे से प्रादक्षिण्य क्रम से—ह्रीं श्रीं अनङ्गकुसुमापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं अनङ्गमेखलापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं अनङ्गमदनापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं अनङ्गमदनातुरापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं अनङ्गमदवेगिनीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं अनङ्गभुवनपालापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं अनङ्गशशिरेखापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्री अनङ्गगगनरेखापादुकां पूजयामि नमः। षोडश दल में उसी प्रकार—ह्रीं श्रीं अं श्रद्धापादुकां पूजयामि नमः। ह्रीं श्रीं आं प्रीतिपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं इं रतिपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं ईं धृतिपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं उं कान्तिपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं ऊं मनोरमापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं ऋं मनोहरापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं ॠं मनोरथापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं लृं मदनापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं ॡं उन्मादिनीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं एं मोहिनीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं ऐं शान्तिशङ्खिनीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं ओं शोषिणीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं औं वशङ्करीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं अं शिञ्जिनीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं अः सुभगापादुकां पूजयामि।

उसके बाद षोडश दलाग्रों में—ह्रीं श्रीं अं पूषापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं आं इद्धापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं इं सुमनसापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं ईं रतिपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं उं प्रीतिपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं ऊं धृतिपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं ऋं ऋद्धिपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं ॠं सौम्यापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं लृं मरीचिपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं ॡं अंशुमालिनीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं एं शशिनीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं ऐं अङ्गिरापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं ओं छायापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं औं सम्पूर्णमण्डलापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं अं तुष्टिपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं अः अमृतापादुकां पूजयामि।

उसके बाहर षट्कोण में दक्षिणाग्र कोण में—ह्रीं श्रीं ऐं डाकिनीपादुकां पूजयामि। वामाग्र में—ह्रीं श्रीं ऐं राकिणीपादुकां पूजयामि। पृष्ठकोण में—ह्रीं श्रीं ऐं लाकिनीपादुकां पूजयामि। पृष्ठ के वाम भाग में—ह्रीं श्रीं ऐं काकिनीपादुकां पूजयामि। पृष्ठ के दक्षिण भाग में—ह्रीं श्रीं ऐं शाकिनीपादुकां पूजयामि। देवी के आगे—ऐं हाकिनीपादुकां पूजयामि। षट्कोण के बाहर चतुरस्र के अन्दर आग्नेय कोण में—ह्रीं श्रीं ऐं वटुकपादुकां पूजयामि। नैर्ऋत्य में—ह्रीं श्रीं गं गणपति पादुकां पूजयामि। वायव्य में—ह्रीं श्रीं ऐं दुर्गापादुकां पूजयामि। ईशान में—ह्रीं श्रीं ऐं क्षं क्षेत्रेशपादुकां पूजयामि।

इसके बाद चतुरस्र में देवी के पीछे से प्रारम्भ करके पूर्वादि दश दिशाओं में ह्रीं श्रीं ऐं लं इन्द्रशक्तिपादुकां पूजयामि, ह्रीं श्रीं ऐं रं अग्निशक्तिपादुकां पूजयामि इत्यादि क्रम से लोकपालों और उनके आयुधों की शक्त्यन्त नाम से पूजा करे। धूप-दीप नैवेद्य के बाद कुरुकुल्ला, वटुक, गणपति, दुर्गा और क्षेत्रेश को बलि देकर जपादि करके शेष कृत्य का समापन करे। पञ्चदशी नित्या पूजा के पहले सर्वभूत बलि और अन्त में सप्ताक्षरी से कुरुकुल्ला को बलि प्रदान करे। इस प्रकार कामेश्वरी नित्या का पूजन पूर्ण होता है।

भगमालिनीनित्यायजनविधिः

अथ भगमालिनीनित्यायजनविधिः। तत्र श्रीतन्त्रराजे (८ प०)—

अथ षोडशनित्यासु तृतीयां भगमालिनीम्। शृणु देवि प्रवक्ष्यामि साङ्गां सावरणां क्रमात्॥१॥
तदङ्गान्यथ तद्ध्यानं तदावरणदेवताः। तत्पूजायाः क्रममिति मन्त्रोद्धारस्तथैव च॥२॥
कामेश्वर्यादिरादिः स्याद्रसश्चाथ स्थिरा रसा। धरायुक्सचरा पश्चात्स्थिरा पश्चाद्रसः स्मृतः॥३॥
स्थिराशून्येऽग्निसंयुक्ते रसः स्यात्तदनन्तरम्। स्थिरा भूसहिता गोत्रा सदाहोऽग्नी रसः स्थिरा॥४॥
नभश्च मरुता युक्तं रसा चरसमन्विता। ततो रसः स्थिरा पश्चान्मरुता सह योजिता॥५॥
अम्बु हंसश्च सचरो रसोऽथ स्यात्स्थिरायुतः। स्थिरा धरान्वितो हंसो व्याप्तेन च चरेण तु॥६॥
रसः स्थिरा ततो व्याप्तं भूयुतं शून्यमग्नियुक्। रसः स्थिरा ततः साग्निः शून्यं जवियुतो मरुत्॥७॥
रयः शून्यं चाग्नियुतं हृद्दाहः साम्बुतः परम्। रसः स्थिराम्बु च वियत्स्वयुतं प्राण एव च॥८॥
दाहोऽग्नियुग्रसस्तस्मात्स्थिरा क्ष्मा दाहसंयुता। सचरः स्याज्जवी पूर्वविद्यातार्तीयतः क्रमात्॥९॥
चतुष्टयमथार्णानां रसस्तदनु च स्थिरा। हृदम्बुयुक्क्ष्मया दाहः सचरः स्याज्जवी च हृत्॥१०॥

दाहोऽम्बुमरुता युक्तो व्योम साग्नी रसस्तथा। स्थिरा तु मरुता युक्ता शून्यं साग्नि नभश्चरौ ॥११॥
हंसो व्याप्तमरुद्युक्तः शून्यं व्याप्तमतोऽम्बु च। दाहो गोत्रा चरयुता तथा दाहस्तथा रयः ॥१२॥
हृद्धरासहितं दाहरयौ चरसमन्वितौ। रसः स्थिरा ततः प्राणो रसाग्निसहितो भवेत् ॥१३॥
शून्ययुग्मं चरयुतं ततः पूर्वमतः परम्। शून्ययुग्मं च गोत्रा स्याद्दाहयुक्ताम्बुना चरः ॥१४॥
प्राणो रसाचरयुतो गोत्रा व्याप्तमतः परम्। गोत्रा दाहमरुद्युक्ता त्वम्बु व्याप्तमतो भवेत् ॥१५॥
वातो नभश्च भूयुक्तं वाश्चरेण समन्वितम्। रसः स्थिराम्ब्वग्नियुतं वायुयुग्मं चरान्वितम् ॥१६॥
ग्रासो धरायुतः पश्चाद्रसः शक्त्या समन्वितः। ग्रासो भूसहितो देवि रसो व्याप्तं ततश्च हृत् ॥१७॥
दाहेनाम्बु च हृत्पश्चाद्रयोऽम्बुमरुदन्वितः। शून्यं च केवलं भद्रे रसश्च सचरा स्थिरा ॥१८॥
वियदम्बुयुतं दाहस्त्वग्नियुक्स्वयुतः शुचिः। भूमी रसाक्ष्मास्वयुता पञ्चैकान्तरिताः स्थिताः ॥१९॥
तदन्तरितबीजानि स्वसंयुक्तानि पञ्च वै। तानि क्रमाज्ज्या सचरो रसो भूश्च नभोयुता ॥२०॥
हंसश्चरयुतो द्विः स्यात्ततः प्राणो रसाग्नियुक्। शून्ययुग्मं चरयुतं हृद्दाहोऽम्बुमरुद्युतः ॥२१॥
व्योमाग्निसहितं पश्चाद्रसश्च मरुता स्थिरा। शून्यं साग्नि नमः कुर्याच्चिरेण सहितं प्रिये ॥२२॥
अम्बु पश्चाद्वियत्तस्मान्नभश्च मरुदन्वितम्। शून्यं व्याप्तं च हृद्युक्तं रयदाहस्ववह्निभिः ॥२३॥
हंसः सदाहोऽम्बुरसाचरस्वैः संयुतो भवेत्। हंसः स्याद् दाहवह्निस्वैर्युक्तमन्त्यमुदीरितम् ॥२४॥
पञ्चत्रिंशच्छतार्णैः स्यान्नित्याऽसौ भगमालिनी। इति।

ऐं भगभुगे भगिनि भगोदरि भगमाले भगावहे भगगुह्ये भगयोनि भगनिपातिनि सर्वभगवशङ्करि भगरूपे नित्यक्लिन्ने भगस्वरूपे सर्वाणि भगानि मे ह्यानय वरदे रेते सुरेते भगक्लिन्ने क्लिन्नद्रवे क्लेदय द्रावय अमोघे भगविच्चे क्षुभ क्षोभय सर्वसत्त्वान् भगेश्वरि ऐंब्लूंजंब्लूंभेंब्लूंमोंब्लूंहेंब्लूंहें क्लिन्ने सर्वाणि भगानि मे वशमानय स्त्रींहूब्लेंह्रीं इति।

त्रिपुरार्णवे—

ऋषिरस्यास्तु सुभगो गायत्रीच्छन्द उच्यते। देवतेयं तु बीजं तु हरब्लेमात्मकं प्रिये ॥१॥
शक्ति श्रीबीजमन्त्यं तु कीलकं परमेश्वरि। इति।

इयं भगमालिनीनित्या। तन्त्रराजे (८.३)—

अङ्गानि मन्त्रवर्णैः स्यादाद्येन हृदुदीरितम्। ततश्चतुर्भिः शीर्षं स्याच्छिखा त्रिभिरुदीरिता ॥१॥
चतुष्टयत्रयैः शेषाण्यङ्गानि षडिति क्रमात्। अरुणामरुणाकल्पां सुन्दरीं सुस्मितराननाम् ॥२॥
त्रिनेत्रां बाहुभिः षड्भिरुपेतां कमलासनाम्। कह्लारपाशपुण्ड्रेक्षुकोदण्डान् वामबाहुभिः ॥३॥
दधानां दक्षिणैः पद्ममंकुशं पुष्पसायकम्। तथाविधाभिः परितोवृतां शक्तिभिरात्मभिः ॥४॥
अक्षरोत्थाभिरन्याभिः स्मरोन्मादमदात्मभिः। पञ्चत्रिंशच्छतार्णैस्तै रूपिणीशक्तिपञ्चकम् ॥५॥
सप्ताक्षरीं च संयोज्य शक्तीस्तत्संख्यका यजेत्। मदनां मोहिनीं लोलां भञ्जनीमुद्यमां शुभाम् ॥६॥
ह्लादिनीं द्राविणीं प्रीतिं रतिं रक्तां मनोरमाम्। सर्वोन्मादां सर्वसुखां सभङ्गामभितोद्यमाम् ॥७॥
अनल्पां व्यक्तविभवां विविधक्षोभविग्रहे। एताः स्युः शक्तयः पञ्चपञ्चाशद्भिः शतं त्विति ॥८॥
ताभिर्वृतां तु तां देवीं पूजयेद्वाञ्छिताप्तये। अथ पूजाक्रमं देवि शृणु सर्वार्थदायकम् ॥९॥
येन विश्वं वशे भूयादपि स्थावरजङ्गमम्। चतुरस्रद्वयं कृत्वा कुर्याद् द्वारं तु पश्चिमे ॥१०॥
तन्मध्येऽब्जं पञ्चदलं कृत्वा तत्कर्णिकागतम्। योनिद्वयं ततो मध्ये तिर्यग्रेखाविधानतः ॥११॥
योनिः कुर्याच्च तत्संख्या योनयः परिकीर्तिताः। अग्राद्विलोमगास्तासु शक्तीः संस्थाप्य पूजयेत् ॥१२॥

मध्ये वृत्तद्वयं कृत्वा तत्र विंशतिरेखया। निष्पाद्य तावतीर्योनीर्मदनाद्याः समर्चयेत् ॥१३॥
वृत्तान्तराले त्वभितो यजेदङ्गानि षट् क्रमात्। तन्मध्ये भगमालां तामावाह्योक्तस्वरूपिणीम् ॥१४॥
संस्थापनादिभिर्युक्तामर्चयेदुपचारकैः। अर्घ्यमङ्गैश्च मूलेन संस्थाप्याभ्युक्ष्य मूलतः ॥१५॥
द्वारस्य पार्श्वयो रागद्वेषशक्ती तथार्चयेत्। शब्दस्पर्शौ तथा रूपं रसं गन्धं च पूर्ववत् ॥१६॥
तदन्तवृत्तयोर्मध्ये षडङ्गानि तथार्चयेत्। तदन्तर्भगमालायां मदनाद्यास्तथार्चयेत् ॥१७॥
मध्यस्थदेवीमभितो यजेत्तान्यायुधान्यपि। ततो देवीं षोडशभिरुपचारैरुदीरितैः ॥१८॥
पूजयेदाद्यवर्णेन विदद्यात्तद्बलिद्वयम्। जपेदष्टोत्तरशतमग्रे देव्यास्तु नित्यशः ॥१९॥
प्राग्वदग्निमुखं कृत्वा होमं कुर्याद्दशांशतः। संयोज्य बिन्दौ तां प्राग्वन्मूलेनाभ्यर्च्य तां तथा ॥२०॥
स्वात्मन्युद्वासयेदुक्तप्रकारेण महेश्वरि। देव्यात्मा वशयेद्विश्वं नरनारीनराधिपान् ॥२१॥ इति।

अथ प्रयोगः—तत्र प्राग्वदासनपूजनादियोगपीठन्यासान्तं कृत्वा मूलविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा शिरसि सुभगाय ऋषये नमः। मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः। हृदये श्रीभगमालिनीनित्यायै देवतायै नमः। गुह्ये हरब्लें बीजाय नमः। पादयोः श्रीं शक्तये नमः। नाभौ ह्रीं कीलकाय नमः, इति विन्यस्य, ममाभीष्टसिद्धये जपे विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, ॐ हृदयाय नमः। ॐ भगसुभगे शिरसे स्वाहा। ॐ भगिनी शिखायै वषट्। ॐ भगोदरि कवचाय हुं। ॐ भगमाले नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ भगावहे अस्त्राय फट्, इति मन्त्रैः करषडङ्गन्यासं विधाय प्राग्वन्मूलविद्यया व्यापकं विन्यस्य अरुणामित्यादि यथोक्तरूपां ध्यात्वा, मानसपूजां विधाय स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिभिरन्तर्बहिर्विभागेन चतुरस्रद्वयेन चतुरङ्गुलान्तरालां समचतुरस्रां वीथीं कृत्वा, तस्याः पश्चिमभागे मध्ये द्वारं विधाय, तस्य चतुरस्रस्य मध्ये पञ्चदलं पद्मं विरच्य, वृत्तद्वययुक्तायां तत्कर्णिकायां समत्रिरेखां कर्णिकामध्यवृत्तस्पष्टकोणाग्रकां यथामानां योनिं कृत्वा, तस्या एकां रेखां चतुर्विंशतिधा विभज्य तैरंशैस्त्रयोविंशतिचिह्नानि कृत्वा तस्यास्तिसृषु रेखास्वपि तथा कृत्वा, तेष्वेकांशमानमभितस्त्यक्त्वा तदन्तः प्राग्वत्समत्रिरेखां योनिं विधाय, तस्यां योन्यामेकां रेखामेकविंशतिधा विभज्य, तेषु विंशतिचिह्नानि प्रतिरेखमिति रेखात्रयेऽपि प्रत्येकं कृत्वा, तेषु बाह्याभ्यन्तरचिह्नेषु चिह्नाच्चिह्नमिति क्रमेण पञ्चचत्वारिंशद् रेखास्तिर्यग्रूपाः प्रतिपार्श्वं विलिखेदिति। एवं कृते बाह्यरेखाग्राण्याभ्यन्तररेखाग्राणि च त्रिकोणानि पञ्चत्रिंशदधिकशतसंख्यानि सम्भवन्ति। तदन्तस्त्र्यस्ररेखात्रयस्पृष्टरेखं भ्रमेण वृत्तं निष्पाद्य तदन्तरेऽपि तद्व्यासपञ्चमांशमानभ्रमेण वृत्तं विधाय, तदन्तरेऽप्येकांशमाने वृत्तान्तरं कृत्वा पूर्ववृत्तयोर्विष्कम्भषोडशांशसहितं विष्कम्भमानं त्रिगुणीकृत्य, तत्र समुदायमानं दशधा विभज्य तेष्वेकैकांशेन चिह्नानि परितस्तद्वृत्तद्वये प्रतिवृत्तं दश दश विधाय, तेषु क्रमेण बाह्याभ्यन्तरं तस्माद्बाह्यमिति गोमूत्रिकाक्रमेण तिर्यग्रूपा विंशतिरेखा विलिखेत्। एवं कृते बाह्याभ्यन्तरवृत्तस्पष्टाग्राणि च त्रिकोणान्यभितो विंशतिसंख्यकानि सम्भवन्ति। इत्थं पूजाचक्रं निर्माय, प्राग्वत् पुरतः संस्थाप्य भगमालिनीविद्यया मूर्तिं सङ्कल्प्यावाहनादिपुष्पोपचारान्ते देव्याः पृष्ठभागे वृत्ताभ्यन्तरे एव प्राग्वत् प्रकाशानन्दादिगुरुपंक्तित्रयं पूजयित्वा, पञ्चदलकर्णिकामध्यगतवृत्तद्वयान्तराले प्राग्वदग्नीशासुरवायव्यदेव्यग्रतस्तदादिचतुर्दिक्षु षडङ्गानि सम्पूज्य, द्वारस्य वामदक्षिणपार्श्वयोः ॐ ऐं रागशक्तिपा०, ॐ ऐं द्वेषशक्तिपा०, इति सम्पूज्य, पञ्चदलकर्णिकामध्यगतयोनिद्वयान्तराले पञ्चत्रिंशदधिकशतशक्तीः सम्पूज्य, तदन्तर्वृत्तद्वयान्तरालस्थविंशतित्रिकोणेषु देव्यग्रमारभ्य, वामावर्तेन ॐ ऐं मदनापादुकां पू०, एवं २ मोहिनीपा०, २ लोलापा०, २ भञ्जिनीपा०, २ उद्यमापा०, २ शुभापा०, २ ह्लादिनीपा०, २ द्राविणीपा० २ प्रीतिपा०, २ रतिपा०, २ रक्तापा०, २ मनोरमापा०, २ सर्वोन्मादापा०, २ सर्वसुखापा०, २ अभङ्गापा०, २ अभितोद्यमापा०, २ अनल्पापा०, २ व्यक्तिविभवापा०, २ विविधविग्रहापा०, २ क्षोभविग्रहापा०, इति सम्पूज्य, तदन्तरा वृत्तवीथिं रेखाभिः षोढा विभज्य, तेषु षट्सु खण्डेषु देव्यग्रखण्डमारभ्य, ॐ ऐं इक्षुकोदण्डाय नमः, एवं २ पाशाय०, २ कह्लाराय०, २ पद्माय०, २ अङ्कुशाय०, पुष्पसायकेभ्यो नमः, इति सम्पूज्य तदन्तरा वृत्तवीथिं सम्पूज्य धूपदीपादि सर्वं प्राग्वत् समापयेत्। इति भगमालिनीनित्यायजनविधिः।

भगमालिनी नित्या यजन—तन्त्रराज के श्लोक १ से २४ तक का उद्धार करने पर एक सौ पैंतीस अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार होता है—ऐं भगभुगे भगिनि भगोदरि भगमाले भगावहे भगगुह्ये भगयोनि भगनिपातिनि सर्वभगवशङ्करि भगरूपे नित्यक्लिन्ने भगस्वरूपे सर्वाणि भगानि मे ह्यानय वरदे रेते सुरेते भगक्लिन्ने क्लिन्नद्रवे क्लेदय द्रावय अमोघे भगविच्चे क्षुभ क्षोभय सर्वसत्त्वान् भगेश्वरि ऐंब्लूंजंब्लूंभेंब्लूंमोंब्लूंहेंब्लूंहें क्लिन्ने सर्वाणि भगानि मे वशमानय स्त्रींह्ब्लेंह्रीं इति।

त्रिपुरार्णव के अनुसार इसका विनियोग इस प्रकार कहा गया है—इसके ऋषि सुभग। गायत्री छन्द। देवता भगमालिनी। बीज हरब्लें। शक्ति श्रीं। ह्रीं कीलक हैं एवं अभीष्टसिद्धि के लिये विनियोग किया जाता है।

तन्त्रराज के अनुसार उसका प्रयोग इस प्रकार किया जाता है—पूर्ववत् आसन-पूजनादि से योगपीठन्यास तक की क्रिया करने के बाद मूल विद्या से साधक तीन प्राणायाम करे। तदनन्तर ऋष्यादि न्यास करे—शिरसि सुभगाय ऋषये नमः। मुखे गायत्रीछन्दसे नमः। हृदये श्रीभगमालिनीनित्यायै देवतायै नमः। गुह्ये हरब्लें बीजाय नमः। पादयोः श्रीं शक्तये नमः। नाभौ ह्रीं कीलकाय नमः। इस प्रकार न्यास करके 'ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः' कहते हुये हाथ जोड़कर अग्रलिखित मन्त्रों से षडङ्ग न्यास करे—ॐ हृदयाय नमः। ॐ भगसुभगे शिरसे स्वाहा। ॐ भगिनी शिखायै वषट्। ॐ भगोदरी कवचाय हुं। ॐ भगमाले नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ भगावहे अस्त्राय फट्। इसी प्रकार करन्यास करे।

इस प्रकार कर-षडङ्ग न्यास के बाद पूर्ववत् मूल विद्या से व्यापक न्यास करे। तदनन्तर इस प्रकार ध्यान करे—रक्तवर्णा, रक्त वस्त्रों वाली, हास्ययुक्त सुन्दर मुख वाली, तीन नेत्र वाली, छः भुजाओं वाली, कमल पर आसीन, वाम भुजाओं में कल्हार-पाश-पुण्ड्रेक्षु एवं कोदण्ड तथा दक्षिण भुजाओं में कमल, अंकुश एवं पुष्पबाण धारण करने वाली भगमालिनी नित्या चारो ओर से अपनी शक्तियों से घिरी हुई हैं। तदनन्तर मानस पूजा सम्पन्न कर स्वर्णादि पट्ट पर अन्दर-बाहर विभाग से दो चतुरस्त्र चार अंगुल के अन्तराल पर सम चतुरस्त्र वीथि बनाकर उसके पश्चिम भाग के मध्य में द्वार बनाये। चतुरस्त्र के मध्य में पञ्चदल पद्म बनाये। कर्णिका में दो वृत्त बनाये। उसमें सम त्रिरेखा वृत्तस्पृष्ट कोणाग्र यथामान त्रिकोण बनाये। प्रत्येक रेखा को चौबीस भागों में विभाजित करे। इसके लिये तेईस-तेईस चिह्न तीनों रेखाओं में लगाये। इससे प्रत्येक रेखा चौबीस भाग में विभाजित हो जायेगी। उसमें एक-एक अंशमान छोड़कर पूर्ववत् एक और त्रिकोण बनाये। इस त्रिकोण की प्रत्येक रेखा को इक्कीस भागों में विभक्त करे। उनमें से बीस चिह्न प्रतिरेखा लगाये। उनमें बाह्य-आभ्यन्तर चिह्न से चिह्नक्रम से पैंतालीस रेखा तिर्यक् रूप से प्रत्येक पार्श्व में लिखे। इसके बाद बाह्य रेखाग्र को आभ्यन्तर रेखाग्र से मिलाकर एक सौ पैंतीस त्रिकोण बनाये। उसके बाद त्रिकोण के तीनों कोनों का स्पर्श करते हुए वृत्त बनाये। उसके अन्दर भी उसके व्यास के पञ्चमांश मान घुमाकर वृत्त बनाये। उसके बाद एकांश मान से एक और वृत्त बनाये। उस वृत्त के विष्कम्भ षोडशांश सहित विष्कम्भमान को तिगुना करके उसके समुदाय मान का दश भाग करे। उसमें एकांश मन से दोनों वृत्तों में दश-दश चिह्न लगाये। इस क्रम से बाह्याभ्यन्तर उसके बाहर भी गोमूत्रिका क्रम से तिर्यक् बीस रेखा लिखे। ऐसा करने से बाह्याभ्यन्तर वृत्त स्पष्टाग्र बीस त्रिकोण बनते हैं। इस प्रकार पूजाचक्र बनाकर उसे पूर्ववत् अपने आगे स्थापित करे। भगमालिनी विद्या से मूर्ति कल्पित करे। आवाहन से पुष्पांत तक पूजन करे। देवी के पृष्ठ भाग के वृत्त के अन्दर पूर्ववत् प्रकाशानन्द आदि गुरुत्रय का पूजन करे। पञ्चदल कर्णिकागत दो वृत्तों के अन्तराल में पूर्ववत् अग्नि, ईशान, नैर्ऋत्य, वायव्य देवी के आगे चारो दिशा में षडङ्ग पूजन करे।

द्वार के वाम-दक्षिण पार्श्वों में इस प्रकार पूजा करे—ॐ ऐं रागशक्तिपादुकां पूजयामि, ॐ ऐं द्वेषशक्तिपादुकां पूजयामि। पञ्चदल कर्णिकामध्यगत दो त्रिकोणों के अन्तराल में एक सौ पैंतीस शक्तियों की पूजा करे। इसके बाद दो वृत्तों के अन्तराल में स्थित बीस त्रिकोणों में देवी के आगे से प्रारम्भ करके वामावर्त क्रम से पूजन करे—ॐ ऐं मदनापादुकां पूजयामि। ॐ ऐं मोहिनीपादुकां पूजयामि। ॐ ऐं लोलापादुकां पूजयामि। ॐ ऐं भञ्जिनीपादुकां पूजयामि। ॐ ऐं उद्यमापादुकां पूजयामि। ॐ ऐं शुभापादुकां पूजयामि। ॐ ऐं ह्लादिनीपादुकां पूजयामि। ॐ ऐं द्राविणीपादुकां पूजयामि। ॐ ऐं प्रीतिपादुकां पूजयामि। ॐ ऐं रतिपादुकां पूजयामि। ॐ ऐं रक्तापादुकां पूजयामि। ॐ ऐं मनोरमा पादुकां पूजयामि। ॐ ऐं सर्वोन्मादापादुकां पूजयामि। ॐ ऐं सर्वसुखापादुकां पूजयामि। ॐ ऐं अभङ्गापादुकां पूजयामि। ॐ ऐं अभितोद्यमापादुकां पूजयामि। ॐ ऐं

अनल्पापादुकां पूजयामि। ॐ ऐं व्यक्तिविभवापादुकां पूजयामि। ॐ ऐं विविधविग्रहापादुकां पूजयामि। ॐ ऐं क्षोभविग्रहापादुकां पूजयामि। वृत्त वीथि रेखा का सोलह भाग करके उनके छः खण्डों में देवी के आगे के खण्ड से प्रारम्भ करके इस प्रकार पूजा करे—ॐ ऐं इक्षुकोदण्डाय नमः। ॐ ऐं पाशाय नमः। ॐ ऐं कह्लराय नमः। ॐ ऐं पद्माय नमः। ॐ ऐं अङ्कुशाय नमः। ॐ ऐं पुष्पसायकेभ्यो नमः। इसके बाद वृत्त वीथि की पूजा करके धूप-दीपादि से पूर्ववत् पूजन करके पूजा का समापन करे।

नित्यक्लिन्नापूजनविधिः

अथ नित्यक्लिन्नानित्यापूजाविधिः। तत्र श्रीतन्त्रराजे (९ प० १ श्लोक)—

अथ षोडशनित्यासु चतुर्थी शृणु पार्वति। नित्यक्लिन्नाभिधानां तां तन्मन्त्रं प्रागुदीरितम् ॥१॥ इति।

तदुद्धारस्तु तत्रैव (३.३२)—

हंसस्तु दाहवह्निस्वैर्युक्तः प्रथममुच्यते। कामेश्वर्यास्तृतीयादिवर्णानामष्टकं भवेत् ॥१॥
हृदम्बु मरुता युक्तं हंसश्च मरुता युतः। एकादशाक्षरी नित्यक्लिन्ना नित्या समीरिता ॥२॥ इति।

तथा—'तदङ्गानि च तद्ध्यानं तच्छक्तीस्ताभिरर्चनम्।' इति। त्रिपुरार्णवे—

ऋषिर्ब्रह्मा समुद्दिष्टो विराट् छन्द इतीरितम्। नित्यक्लिन्ना देवतोक्ता वनिता द्राविणी परा ॥१॥
बीजमाद्यं वह्निजाया शक्तिर्नैकीलकं मतम्। इति।

तन्त्रराजे (९.३)—

आद्येन मन्त्रवर्णेन हृदयं समुदीरितम्। ततो द्वाभ्यां पुनर्द्वाभ्यां द्वाभ्यां द्वाभ्यां द्वयेन च ॥१॥
कुर्याच्छेषाणि चाङ्गानि करयोश्च न्यसेत्क्रमात्। तन्त्रे षडङ्गं यत्रोक्तं तत्र तत्र करद्वये ॥२॥
न्यसेदङ्गुष्ठमूलादिकनिष्ठाग्रान्तमूद्ध्र्वगम्। शेषं तलद्वये न्यस्य हृद्दृक्श्रोत्रनसोर्द्वयोः ॥३॥
त्वचि ध्वजे च पायौ च पादयोरर्णकान्न्यसेत्। अरुणामरुणाकल्पामरुणांशुकधारिणीम् ॥४॥
अरुणस्रग्विलेपां तां चारुस्मेरमुखाम्बुजाम्। नेत्रत्रयोल्लसद्वक्त्रां भाले घर्माम्बुमौक्तिकैः ॥५॥
विराजमानां मुकुटलसदर्धेन्दुशेखराम्। चतुर्भिर्बाहुभिः पाशमङ्कुशं पानपात्रकम् ॥६॥
अभयं बिभ्रतीं पद्ममध्यासीनां मदालसाम्। ध्यात्वैवं पूजयेन्नित्यक्लिन्नानित्यां स्वशक्तिभिः ॥७॥
क्षोभिणी मोहिनी लोला त्रिकोणादिषु शक्तयः। नित्या निरञ्जना क्लिन्ना क्लेदिनी मदनातुरा ॥८॥
मदद्रवा द्राविणी च द्रविणा चाष्टपत्रगा। मदाबिला मङ्गला च मन्मथार्ता मनस्विनी ॥९॥
मोहामोदा मानमयी माया मन्दा मनोवती। चतुरस्रगताः पूज्या मदारुणचलेक्षणाः ॥१०॥
मध्यनित्यासमाकारवर्णबाह्वायुधान्विताः। चतुरस्रद्वयं कृत्वा प्राक्प्रत्यग्द्वारसंयुतम् ॥११॥
तन्मध्येऽष्टदलं पद्मं तन्मध्ये त्र्यस्रकं तथा। अर्घ्यं षडङ्गमूलाभ्यां कृत्वा तां प्राङ्मुखोऽर्चयेत् ॥१२॥
चतुरस्रे पश्चिमादिनिर्ऋत्यन्तं भजेच्च ताम्। द्वारपार्श्वेषु कोणेषु दिक्षु ता दश पूजयेत् ॥१३॥
तदन्तरष्टपत्रेषु पश्चिमादिप्रदक्षिणम्। अर्चयेदष्टशक्तीस्तास्तदन्तर्योनिकोणगाः ॥१४॥
अग्न्यात्प्रदक्षिणं तिस्रः शक्तीश्चोक्तविधानतः। कर्णिकायोनिमध्यस्थदेशे वाय्वीशवह्निषु ॥१५॥
निर्ऋत्यां पुरतो दिक्षु यजेदङ्गानि षट् क्रमात्। ततो देवीं तु तां नित्यां नित्यक्लिन्नामुदीरितैः ॥१६॥
उपचारैरर्चयेच्च बलिं दद्याच्च पूर्ववत्। तदग्रतो जपेद्विद्यां सहस्रं यदि वा शतम् ॥१७॥
ततोऽभ्यर्च्य शिवां होमं कुर्यादुक्तक्रमेण तु। आज्यसिक्तान्धसाज्येन पुष्पैर्वा सौरभान्वितैः ॥१८॥
जुहुयात्प्राग्वदुदितसंख्यं प्राग्वत्समापयेत्। अभ्यर्च्य देवीमथ तां स्वात्मन्युद्वास्य पूर्ववत् ॥१९॥
न्यासं कृत्वा स्तोत्रयुगं जपित्वा तन्मयश्चरेत्। इति।

अथ प्रयोगः—तत्र प्राग्वदासनपूजादियोगपीठन्यासान्ते **नित्यक्लिन्नाविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि**

ब्रह्मणे ऋषये नमः। हृदये श्रीनित्याक्लिन्नानित्यायै देवतायै नमः। गुह्ये ह्रींबीजाय नमः। पादयोः स्वाहाशक्तये नमः। नाभौ न्रेकीलकाय नमः, इति विन्यस्य मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा ह्रीं हृदयाय नमः। नित्य शिरसे स्वाहा। क्लिन्ने शिखायै वषट्। मद कवचाय हुं। द्रवे नेत्रत्रयाय वौषट्। स्वाहा अस्त्राय फट्, इति करषडङ्गन्यासं कृत्वा, हृदये ह्रींनमः। दक्षनेत्रे निंनमः। वामे त्यंनमः। दक्षश्रोत्रे क्लिंनमः। वामे न्नेंनमः। दक्षिणनासायां मंनमः। वामे दंनमः। त्वचि द्रंनमः। लिङ्गे वेंनमः। गुदे स्वांनमः। पादयोः हांनमः, इति विन्यस्य प्राग्वन्मूलविद्यया व्यापकं कृत्वा, ध्यानादिमानसपूजान्ते स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिना पूर्वपश्चिमयोर्द्वारद्वययुतं चतुरस्रद्वयं कृत्वा, तन्मध्येऽष्टदलपद्मं निर्माय तत्कर्णिकायां स्वाभिमुखाग्रं त्रिकोणं कृत्वा, प्राग्वत् स्वपुरतः संस्थाप्याभ्यर्च्यार्घ्यादिस्थापनाद्यात्मपूजान्ते भुवनेश्वरीपीठमभ्यर्च्य, तत्र नित्यक्लिन्नाविद्यया तन्मूर्तिं परिकल्प्यावाहनादिपुष्पोपचारान्ते कोणान्तः प्राग्वद् देवीं परितः षडङ्गानि सम्पूज्य, तद्बहिर्देव्याः पृष्ठभागे प्राग्वत् प्रकाशानन्दादिगुरुपंक्तित्रयमभ्यर्च्य, चतुरस्रे देव्यग्रतस्तद्द्वारस्य दक्षिणे ॐह्रींश्रींमदाविलापादुकां पूजयामि नमः। उत्तरे ॐह्रींश्रींमङ्गलापा०। एवं २ मन्मथार्तापा०। २ मनस्विनीपा०। २ मोहापा०। २ आमोदापा०। २ मानमयीपा०। २ मायापा०। २ मनोवती०। इति प्रादक्षिण्येन सम्पूज्यान्तस्त्रिकोणेषु देव्यग्रकोणमारभ्य २ क्षोभिणीपा०, २ मोहिनीपाया०, २ लोलापा० इति प्रादक्षिण्येन सम्पूज्य, पुनर्मध्ये नित्यक्लिन्नां तद्विद्यया सम्पूज्य धूपदीपादिकं सर्वं कृत्वा प्राग्वत् समापयेत्, इति नित्यक्लिन्नानित्यायजनविधिः।

नित्याक्लिन्ना पूजाविधि—तन्त्रराज में भगवान् शंकर ने पार्वती से नित्यक्लिन्ना नित्या का विवेचन करते हुये कहा कि हे पार्वति! अब सोलह नित्याओं में से चौथी नित्याक्लिन्ना के विधान को सुनो। सर्वप्रथम पहले उसके मन्त्र को कहता हूँ। नित्याक्लिन्ना नित्या का ग्यारह अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार है—ह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा। त्रिपुरार्णव के अनुसार इसके ऋषि ब्रह्मा, छन्द विराट्, देवता नित्यक्लिन्ना वनिता द्राविणी परा, बीज ह्रीं, स्वाहा शक्ति एवं न्रे कीलक है।

तन्त्रराज के अनुसार पूर्ववत् आसन-पूजादि से योगपीठ न्यास तक करने के बाद नित्यक्लिन्ना विद्या से तीन प्राणायाम करे। तदनन्तर इस प्रकार न्यास करे—शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः। मुखे विराजे छन्दसे नमः। हृदये श्रीनित्यक्लिन्नानित्यायै देवतायै नमः। गुह्ये ह्रीं बीजाय नमः। पादयोः स्वाहाशक्तये नमः। नाभौ न्रे कीलकाय नमः। तदनन्तर हाथ जोड़कर मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः कहकर षडङ्ग न्यास करे—ह्रीं हृदयाय नमः। नित्य शिरसे स्वाहा। क्लिन्ने शिखायै वषट्। मद कवचाय हुं। द्रवे नेत्रत्रयाय वौषट्। स्वाहा अस्त्राय फट्। इसी प्रकार कर न्यास एवं षडङ्ग न्यास करके मन्त्रवर्ण न्यास करे—हृदये ह्रीं नमः। दक्षनेत्रे निं नमः। वामने त्रेत्यं नमः। दक्षश्रोत्रे क्लिं नमः। वामश्रोत्रेन्नें नमः। दक्षिणनासायां मं नमः। वामनासायां दं नमः। त्वचि द्रं नमः। लिङ्गे वें नमः। गुदे स्वां नमः। पादयो हां नमः। तदनन्तर मूल विद्या से व्यापक न्यास करके रक्तवर्णा, रक्तकल्पा, रक्तवस्त्रधारिणी, रक्त माला एवं कुङ्कुम धारण करने वाली, शोभन हास्ययुक्त मुखकमल वाली, मुख के ऊपर दो नेत्रों से सुशोभित, ललाट पर स्वेद बिन्दु रूपी मोतियों से सुशोभित, मुकुट के मध्य में अर्धचन्द्रमा से सुशोभित, चारो भुजाओं में पाश, अंकुश, पानपात्र एवं अभय धारण करने वाली, कमल पर आसीन एवं मद से आलस्यपूर्ण नित्यक्लिन्ना नित्या का ध्यान करके उनकी मानस पूजा सम्पन्न कर स्वर्णादि पट्ट पर कुङ्कुमादि से पूर्व-पश्चिम दो द्वारों से युक्त दो चतुरस्र बनाये। उसमें अष्टदल बनाये। उसमें स्वाभिमुख त्रिकोण बनाये। पूर्ववत् उसे अपने सामने स्थापित करके अर्चन करे। अर्घ्यादि-स्थापन करे। आत्मपूजा करके भुवनेश्वरी पीठ का अर्चन करे। मूल मन्त्र से नित्यक्लिन्ना की मूर्ति कल्पित करे। आवाहनादि से प्रारम्भ कर पुष्पोपचारान्त पूजा करे। कोणान्त देवी के चतुर्दिक षडङ्गों का पूजन करे। उसके बाहर पृष्ठ भाग में पूर्ववत् प्रकाशानन्दादि गुरुपंक्तित्रय की पूजा करे।

चतुरस्र में देवी के आगे द्वार के दक्षिण में—ॐ ह्रीं श्रीं मदाविलापादुकां पूजयामि नमः; उत्तर में—ॐ ह्रीं श्रीं मङ्गलपादुकां पूजयामि नमः, इसी प्रकार ह्रीं श्रीं मन्मथार्तापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं मनस्विनीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं मोहा-पादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं आमोदापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं मानमयीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं मायापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं मन्दापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं मनोवतीपादुकां पूजयामि से अष्टदल में पूजन करके त्रिकोण में देवी के अग्रकोण से प्रारम्भ करके

कोणों में ह्रीं श्रीं क्षोभिणीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं मोहिनीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं लोलापादुकां पूजयामि कहकर पूजन करे। मध्य में नित्यक्लिन्ना का पूजन उसकी विद्या से करे। तब धूप-दीप-नैवेद्यादि का अर्पण करके पूर्ववत् पूजा का समापन करे।

भेरुण्डानित्यापूजनविधिः

अथ भेरुण्डानित्यापूजाविधिर्लिख्यते। तत्र श्रीतन्त्रराजे (१० प०, श्लोक १)—

अथ षोडशनित्यासु भेरुण्डा पञ्चमी तु या। तद्विधानं शृणु प्राज्ञे कथयामि यथाविधि ॥१॥
मन्त्रोद्धारस्तृतीयेऽभूदङ्गान्यावृतिदेवताः । पूजाक्रमं च...........................॥२॥ इति।

मन्त्रोद्धारस्तु तृतीयपटले (३.३५)—

भुः स्वेन युक्ता प्रथमं प्राणो दाहेन तद्युतम्। रसो दाहेन तद्युक्तं प्राणो दाहवनस्वयुक् ॥१॥
कं च दाहेन तद्युक्तं प्रभा दाहेन तद्युता। ज्या च दाहेन तद्युक्ता नित्यक्लिन्नान्ततो द्वयम् ॥२॥
एषा नवाक्षरी नित्या भेरुण्डा सर्वसिद्धिदा। इति।

'ओंक्रोंभ्रोंक्रोंझ्रोंछ्रोंज्रों स्वाहा'। त्रिपुरार्णवे—

ऋषिरस्या महाविष्णुर्गायत्री छन्द उच्यते। देवतेयं वरारोहे तृतीयं बीजमुच्यते ॥१॥
वह्निजाया तु शक्तिः स्यात्कीलकं सृणिरेव च। इति।

तन्त्रराजे (१०.४)—

आद्यन्तद्वयमध्यस्थैः षड्भिः कुर्यात्षडङ्गकम्। रन्ध्राज्ञामुखकण्ठेषु हृन्नाभ्याधारपद्द्वये ॥१॥
न्यसेन्मन्त्रार्णनवकं मातृकान्यासपूर्वकम्। ततः शक्तीरावृतिस्था ध्यानं च शृणु पार्वति ॥२॥
बाह्यावृतौ तु ब्राह्मयाद्या युगशक्तीश्च पूजयेत्। तदन्तरष्टपत्रेषु विजयां विमलां शुभाम् ॥३॥
विश्वां विभूतिं विनतां विविधां विमलां क्रमात्। तदन्तरष्टकोणेषु कमलां कामिनीं तथा ॥४॥
किरातीं कीर्तिसहितां कुर्दिनीं कुलसुन्दरीम्। कल्याणीं कालकोलां च पूजयेदुक्तयोगतः ॥५॥
डाकिनीं राकिणीं तद्वल्लाकिनीं काकिनीं तथा। शाकिनीं हाकिनीं षट्सु कोणेषु क्रमतोऽर्च्चयेत् ॥६॥
इच्छाज्ञानक्रियाशक्तीस्त्रिषु कोणेषु पूजयेत्। अष्टकोणान्तरालेषु पूजयेदायुधाष्टकम् ॥७॥
चतुरस्रद्वयं कृत्वा चतुर्द्वारसमन्वितम्। तदन्तरष्टपत्राब्जं वृत्तयुग्ममथान्तरा ॥८॥
अष्टास्त्रं भूपुरद्वन्द्वात्तच्च वृत्तसमन्वितम्। तदन्तस्तादृशं कुर्यात्षट्कोणं वा तु विग्रहम् ॥९॥
तदन्तस्तादृशीं कुर्याद्योनिं तन्मध्यतो यजेत्। भेरुण्डां पञ्चमीं नित्यामुक्तशक्तिभिरावृताम् ॥१०॥
अर्घ्यं षडङ्गमूलाभ्यां संसाध्य प्राङ्मुखो यजेत्। बलिं च षोडशार्णेन दद्यादाद्यन्तयोः क्रमात् ॥११॥
अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि देव्याः सर्वार्थसाधकम्। तदावृत्तिस्थशक्तीनां क्रमेण शृणु पार्वति ॥१२॥
तप्तकाञ्चनसङ्काशदेहां नेत्रत्रयान्विताम्। चारुस्मिताञ्चितमुखीं दिव्यालङ्कारभूषिताम् ॥१३॥
ताटङ्कहारकेयूररत्नस्तवकमण्डिताम्। रशानानूपुरोर्म्यादिभूषणैरतिसुन्दरीम् ॥१४॥
पाशांकुशौ खेटखड्गौ गदावज्रधनुःशरान्। करैर्दधानामासीनां पूजायामन्यदास्थिताम् ॥१५॥
शक्तीश्च तत्समाकारतेजोहेतिभिरन्विताः। पूजयेत्तद्वदभितः स्मितसौम्यमुखां सदा ॥१६॥
एवं देवीमावृतिभिरावृतामर्चयेत्तथा। बलिर्माद्यन्तयोर्दद्यात्पूर्वोक्तविधिना युतम् ॥१७॥ इति।

अथ प्रयोगः—तत्र प्राग्वदासनपूजादियोगपीठन्यासान्ते भेरुण्डाविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि ॐ महाविष्णवे ऋषये नमः। मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः। हृदये श्रीभेरुण्डानित्यादेवतायै नमः। गुह्ये भ्रांबीजाय नमः। पादयोः स्वाहाशक्तये नमः। नाभौ क्रोंकीलकाय नमः, इति विन्यस्य मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा क्रों हृदयाय नमः। भ्रों शिरसे स्वाहा। क्रों शिखायै वषट्। झ्रों कवचाय हुं। छ्रों नेत्रत्रयाय वौषट्। ज्रों

अस्त्राय फट्, इति करषडङ्गन्यासं कृत्वा, ब्रह्मरन्ध्रे ॐ नमः। आज्ञायां क्रों नमः। मुखे भ्रों नमः। कण्ठे क्रों नमः। हृदि झ्रों नमः। नाभौ छ्रों नमः। मूलाधारे ज्रों नमः। दक्षपादे स्वां नमः। वामपादे हां नमः। इति विन्यस्य प्राग्वद्व्यापकं कृत्वा 'तप्तकाञ्चनसङ्काशदेहा'मित्यादि ध्यात्वा मानसपूजान्ते प्राग्वत् स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिना चतुर्द्वारयुक्तं चतुरस्त्रद्वयं कृत्वा, तदन्तरष्टदलं पद्मं तदन्तर्वृत्तं तदन्तरष्टास्त्रं पुनस्तदन्तर्वृत्तं तदन्तः षट्कोणं तदन्तर्वृत्तं तन्मध्ये स्वाभिमुखाग्रत्रिकोणरूपां योनिं च कृत्वा, प्राग्वत् संस्थाप्याघ्र्यादिस्थापनाद्यात्मपूजान्ते प्राग्वद् भुवनेश्वरीपीठमभ्यर्च्यावाहनादिप्राणप्रतिष्ठान्ते योनिमुद्रां प्रदर्श्यासनादिपुष्पोपचारान्ते योन्यन्तर्देव्यभितः प्राग्वत् षडङ्गानि सम्पूज्य, योनिवृत्तयोरन्तराले देव्याः पृष्ठभागे प्राग्वद्गुरुपंक्तित्रयमभ्यर्च्य, चतुरस्त्रद्वयपार्श्वयोः २ ब्राह्मीपादुकां पूजयामि नमः। २ माहेश्वरीपा०, पश्चिमद्वारपार्श्वयोः २ कौमारीपा०, २ वैष्णवीपा०, पूर्वद्वारस्योत्तरदक्षिणपार्श्वयोः २ वाराहीपा०, २ इन्द्राणीपा०, दक्षिणद्वारपार्श्वयोः २ चामुण्डापा०, २ महालक्ष्मीपा०, इति सम्पूज्य, चतुरस्त्रवायुकोणे २ कृतयुगशक्तिपा०, ईशाने २ त्रेतायुगशक्तिपा०, आग्नेये २ द्वापरयुगशक्तिपा०, निर्ऋतिकोणे २ कलियुगशक्तिपा०, इति सम्पूज्य, तदन्तरष्टदलेषु देव्यग्रदलमारभ्य प्रादक्षिण्येन २ विजयापा०, २ विमलापा०, २ शुभापा०, २ विश्वापा०, २ विभूतिपा०, २ विनतापा०, २ विविधापा०, २ विमनापा०, इति सम्पूज्य, तदंतरष्टकोणेषु देव्यग्रमारभ्य प्रादक्षिण्येन २ कमलापा०, २ कामिनीपा०, २ कीर्तिपा०, २ कुर्दिनीपा०, कुलसुन्दरीपा०, २ कल्याणीपा०, २ कालकोलापा०, इति सम्पूज्य, तदन्तः षट्कोणेषु देव्या वामाग्रकोणे २ डाकिनीपा०, दक्षिणाग्रकोणे २ राकिणीपा०, पृष्ठकोणे २ लाकिनीपा०, पृष्ठवामाग्रकोणे २ काकिनीपा०, दक्षिणपृष्ठकोणे २ शाकिनीपा०, देव्यग्रकोणे २ हाकिनीपा० इति सम्पूज्य, ततस्त्रिकोणे देव्यग्रकोणमारभ्य प्रादक्षिण्येन २ इच्छाशक्तिपा०, २ ज्ञानशक्तिपा०, २ क्रियाशक्तिपा०, इति सम्पूज्याष्टकोणषट्कोणयोरन्तराले देव्या दक्षिणाग्रादितः पृष्ठदक्षिणाग्रान्तं स्थानचतुष्टयं परिकल्प्य २ शरेभ्यो नमः, २ खड्गाय नमः, २ अंकुशाय नमः, २ पाशाय नमः इति दक्षिणाधःकरादितदूर्ध्वकरान्तस्थान्यायुधानि सम्पूज्य, देव्याः पृष्ठवामभागमारभ्य वामाग्रावधि स्थानचतुष्टयं परिकल्प्य, तेषु २ गदायै नमः, २ चर्मणे नमः, २ धनुषे नमः, २ वज्राय नमः, इति सम्पूज्य प्राग्वल्लोकपालांस्तदायुधानि च सम्पूज्य, पुनर्मध्यस्थनित्यां तद्विद्यया सम्पूज्य धूपादिसर्वं प्राग्वत्समापयेत्, इति भेरुण्डानित्यापूजाविधिः।

भेरुण्डा नित्या—तन्त्रराज में कहा गया है कि सोलह नित्याओं में पञ्चमी जो भेरुण्डा नित्या है, उसके विधान को यथाविधि कहता हूँ। मन्त्रोद्धार करने पर भेरुण्डा का नवाक्षरी मन्त्र निम्न रूप का होता है—ओं क्रों भ्रों क्रों झ्रों छ्रों ज्रों स्वाहा। भेरुण्डा का यह मन्त्र सर्वसिद्धिप्रद है।

त्रिपुरार्णव के अनुसार इसके ऋषि महाविष्णु, छन्द गायत्री, देवता भेरुण्डा, बीज भ्रों, शक्ति स्वाहा एवं कीलक सृणि है। इसका प्रयोग तन्त्रराज के अनुसार इस प्रकार किया जाता है—पूर्ववत् आसन-पूजादि से योगपीठन्यास तक की क्रिया के बाद भेरुण्डा विद्या से तीन प्राणायाम करके इस प्रकार विनियोग करे—शिरसि ॐ महाविष्णवे ऋषये नमः। मुखे गायत्रीछन्दसे नमः। हृदये श्रीभेरुण्डानित्यादेवतायै नमः। गुह्ये भ्रां बीजाय नमः। पादयोः स्वाहा शक्तये नमः। नाभौ क्रों कीलकाय नमः। ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः। इस प्रकार विनियोग सम्पन्न कर षडङ्ग न्यास करे—क्रों हृदयाय नमः। भ्रों शिरसे स्वाहा। क्रों शिखायै वषट्। झ्रों कवचाय हुं। छ्रों नेत्रत्रयाय वौषट्। ज्रों अस्त्राय फट्। इस प्रकार करन्यास एवं षडङ्ग न्यास करके मन्त्रवर्ण न्यास करे—ब्रह्मरन्ध्रे ॐ नमः। आज्ञायां क्रों नमः। मुखे भ्रों नमः। कण्ठे क्रों नमः। हृदि झ्रों नमः। नाभौ छ्रों नमः। मूलाधारे ज्रों नमः। दक्षपादे स्वां नमः। वामपादे हां नमः। तदनन्तर सम्पूर्ण मूल मन्त्र से व्यापक न्यास करके इस प्रकार ध्यान करे—

ताटङ्कहारकेयूररत्नस्तवकमण्डिताम्। रशानानूपुरोर्म्यादिभूषणैरतिसुन्दरीम्।।
पाशांकुशौ खेटखड्गौ गदावज्रधनुःशरान्। करैर्दधानामासीनां पूजायामन्यदास्थिताम्।।

मानस पूजा करके पूर्ववत् स्वर्णादि पट्ट पर कुङ्कुमादि से चार द्वारों से युक्त दो चतुरस्त्र बनाये। उसमें अष्टदल बनाये।

उसके अन्दर वृत्त और उसमें अष्टास्र बनाये। अष्टास्र में वृत्त और उस वृत्त में षट्कोण बनाये। षट्कोण में वृत्त के अन्दर त्रिकोण बनाये। पूर्ववत् स्थापन करे। अर्घ्यादि स्थापित करके आत्मपूजा करे। पूर्ववत् भुवनेश्वरी पीठ के समान अर्चन करे। आवाहनादि प्राणप्रतिष्ठा के बाद योनिमुद्रा दिखाये। आसनादि से पुष्पार्चन तक करे। योनि में देवी के चारो ओर पूर्ववत् षडङ्ग-पूजन करे। योनि वृत्त के अन्तराल में देवी के पीछे पूर्ववत् गुरुपंक्तित्रय का पूजन करे।

चतुरस्रद्वय के पार्श्वों में ह्रीं श्रीं ब्राह्मीपादुकां पूजयामि नमः। ह्रीं श्रीं माहेश्वरीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं पश्चिम द्वार के पार्श्व में ह्रीं श्रीं कौमारीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं वैष्णवीपादुकां पूजयामि। पूर्व द्वार के उत्तर-दक्षिण पार्श्वों में ह्रीं श्रीं वाराहीपादुकां पूजयामि, ह्रीं श्रीं इन्द्राणीपादुकां पूजयामि। दक्षिण द्वार के पार्श्वों में ह्रीं श्रीं चामुण्डा पादुकां पूजयामि, ह्रीं श्रीं महालक्ष्मीपादुकां पूजयामि से पूजा करके चतुरस्र के वायव्य कोण में—ह्रीं श्रीं कृतयुगशक्तिपादुकां पूजयामि। ईशान में ह्रीं श्रीं त्रेतायुगशक्तिपादुकां पूजयामि। आग्नेय में—ह्रीं श्रीं द्वापरयुगशक्तिपादुकां पूजयामि। नैर्ऋत्य में ह्रीं श्रीं कलियुगशक्तिपादुकां पूजयामि से पूजा करे।

अष्टदल में देवी के अग्रदल से प्रारम्भ करके प्रादक्षिण्य क्रम से ह्रीं श्रीं विजयापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं विमलापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं शुभा पादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं विश्वापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं विभूतिपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं विनतापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं विविधापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं विमना पादुकां पूजयामि से पूजा करे।

अष्टकोण में देवी के आगे से प्रारम्भ करके प्रादक्षिण्य क्रम से ह्रीं श्रीं कमलापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं कामिनीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं किरातीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं कीर्तिपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं कुर्दिनीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं कुलसुन्दरीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं कल्याणीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं कालकोलापादुकां पूजयामि से पूजा करे।

षट्कोण में देवी के वामाग्र कोण में—ह्रीं श्रीं डाकिनीपादुकां पूजयामि। दक्षिणाग्र कोण में—ह्रीं श्रीं लाकिनीपादुकां पूजयामि। पृष्ठ वामाग्र कोण में ह्रीं श्रीं काकिनीपादुकां पूजयामि। दक्षिण पृष्ठ कोण में ह्रीं श्रीं शाकिनीपादुकां पूजयामि। देवी के अग्रकोण में—ह्रीं श्रीं हाकिनीपादुकां पूजयामि से पूजा करे।

त्रिकोण में देवी के अग्रकोण से प्रारम्भ करके प्रादक्षिण्य क्रम से ह्रीं श्रीं इच्छाशक्तिपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं ज्ञानशक्तिपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं क्रियाशक्तिपादुकां पूजयामि से पूजा करे। षट्कोण-अष्टकोण के अन्तराल में देवी के दक्षिणाग्र से प्रारम्भ करके पृष्ठ दक्षिणाग्र तक चार स्थानों की कल्पना करके इनका पूजा करे—ह्रीं श्रीं शरेभ्यो नमः। ह्रीं श्रीं खड्गाय नमः। ह्रीं श्रीं अङ्कुशाय नमः। ह्रीं श्रीं पाशाय नमः।

दाहिने नीचे-ऊपर के हाथों में अन्य आयुधों का पूजन करे। देवी के पृष्ठ वाम भाग से आरम्भ करके वामाग्र तक चार स्थानों में ह्रीं श्रीं गदायै नमः। ह्रीं श्रीं चर्मणे नमः। ह्रीं श्रीं धनुषे नमः। ह्रीं श्रीं वज्राय नमः से पूजा करने के बाद चतुरस्र में लोकपालों और उनके आयुधों का पूजन कर मध्यस्थ नित्या का पूजन उनके मूल मन्त्र से करके धूपादि प्रदान कर पूर्ववत् पूजा का समापन करे।

वह्निवासिनीनित्यापूजनविधिः

अथ वह्निवासिनीनित्यापूजाविधिः। श्रीतन्त्रराजे (११ पृ०, १ श्लोक)—

अथ षोडशनित्यासु या षष्ठी समुदीरिता। सा विद्या वह्निवासिन्याः कथिताभून्नवाक्षरी ॥१॥
तदङ्गानि लिपिन्यासं ध्यानं शक्तिभिरर्चनम्। इति।

तथा तत्रैव (३ प० ३८ श्लोक)—

भेरुण्डाद्यमिहाद्यं स्यान्नित्यक्लिन्नाद्यनन्तरम्। ततोऽम्बु शून्यं हंसाग्नियुतम्बु मरुद्युतम् ॥१॥
हृदग्निना युतं शून्यं व्याप्तेन शुचिना च युक्। शून्यं नमः शक्तियुतं नवार्णेयमुदीरिता ॥२॥
नित्या सर्वार्थदा वह्निवासिनी विश्वघस्मरा। इति।

'ॐह्रींवह्निवासिन्यै नमः'। त्रिपुरार्णवे—

ऋषिर्वसिष्ठश्छन्दः स्याद्गायत्री देवता त्वियम्। आद्यन्तं बीजशक्ती स्यात्कीलकं मध्यमेन च ॥१॥ इति।

तन्त्रराजे (११.३)---

विद्याद्वितीयबीजेन स्वरान् दीर्घान्नियोजयेत्। मायान्तान् षड्भिरेवाङ्गान्याचरेत् स्वकराङ्गयोः ॥१॥
नवाक्षराणि विद्याया नवरन्ध्रेषु विन्यसेत्। व्यापकं तु समस्तेन कुर्याद्देव्यात्मसिद्धये ॥२॥
सर्वास्वपि च विद्यासु व्यापकं न्यासमाचरेत्। तेन तत्तन्मयो भूयात्साधकस्तेन सिद्धयः ॥३॥
तस्याचिरेण देवीनां प्रसादात्सम्भवन्ति च। मातृकायाः षडङ्गं च मातृकान्यासमेव च ॥४॥
सर्वासां प्रथमं कृत्वा पश्चात्तत्रोदितं न्यसेत्। ललितायास्तु वर्गैस्तत्प्रोक्तमष्टाभिरेव च ॥५॥
तेन तस्यास्तु लिपिशो न्यासो नैव समीरितः। तप्तकाञ्चनसङ्काशां नवयौवनसुन्दरीम् ॥६॥
चारुस्मेरमुखाम्भोजां विलसन्नयनत्रयाम्। अष्टाभिर्बाहुभिर्युक्तां माणिक्याभरणोज्ज्वलाम् ॥७॥
पद्मरागकिरीटांशुसम्भेदारुणिताम्बराम्। पीतकौशेयवसनां रक्तमञ्जीरमेखलाम् ॥८॥
रत्नमौक्तिकसंभिन्नस्तबकाभरणोज्ज्वलाम्। रक्ताब्जकम्बुपुण्ड्रेक्षुचापपूर्णेन्दुमण्डलम् ॥९॥
दधानां बाहुभिर्वामैः कह्लारं हेमशृङ्गकम्। पुष्पेषु मातुलिङ्गं च दधानां दक्षिणैः करैः ॥१०॥
स्वसमानाभिरभितः शक्तिभिः परिवारिताम्। एवं ध्यात्वार्चयेद्वह्निवासिनीं विश्वविग्रहाम् ॥११॥
ज्वालिनीविस्फुलिङ्गिन्यौ मङ्गला सुमनोहरा। कनका कितवा विश्वा विविधा चेति शक्तयः ॥१२॥
अष्टकोणेषु सम्पूज्यास्तदग्रात्तु प्रदक्षिणम्। दलेषु द्वादशस्वेता राशिशक्तीः समर्चयेत् ॥१३॥
मायासप्ताक्षरीमध्यगतैर्नामाभिरीरितैः। घस्मरा सर्वभक्षा च विश्वा च विविधोद्भवा ॥१४॥
चित्ररूपा निःसपत्ना निरातङ्का च पावनी। अचिन्त्यवैभवा रक्ता दशमी परिकीर्तिता ॥१५॥
बलिदेवीति सम्प्रोक्ता कुरुकुल्लाद्यविद्यया। यत्र नोक्ता देवता तु बलिकर्मणि तत्र ताम् ॥१६॥
सप्ताक्षर्या समोपेतां विदध्याद्बलिदेवताम्। वृत्तयोर्नवयोनिं तु कृत्वा तद्बहिरम्बुजम् ॥१७॥
द्वादशच्छदसंयुक्तं विदध्याद्वृत्तयुग्मकम्। तद्बहिश्चतुरस्त्रे द्वे द्वारद्वयसमन्विते ॥१८॥
पूर्वपश्चिमयोस्तस्मिंश्चक्रे देवीं तथार्चयेत्। इति।

अथ प्रयोगः---अत्र प्राग्वदासनादियोगपीठन्यासान्ते वह्निवासिनीविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा शिरसि वसिष्ठऋषये नमः। मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः। हृदि वह्निवासिनीनित्यादेवतायै नमः। गुह्ये (ॐ) ह्रीं बीजाय नमः। पादयोः नमः शक्तये नमः। नाभौ वह्निवासिन्यै कीलकाय नमः, इति विन्यस्य मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा षड्दीर्घयुक्तद्वितीयबीजेन षडङ्गन्यासं कृत्वा, दक्षनेत्रे ॐ नमः। वामे ह्रीं नमः। दक्षकर्णे वं नमः। वामे ह्निं नमः। दक्षनसि वां नमः। वामे सिं नमः। मुखे न्यैं नमः। लिङ्गे नं नमः। गुदे मंः नमः, इति विन्यस्य मूलेन व्यापकं विधाय, तप्तकाञ्चनसङ्काशामित्यादि ध्यात्वा मानसपूजान्ते स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिना द्वादशदलकमलं विलिख्य तत्कर्णिकायां वृत्तद्वयं विधाय, तन्मध्ये प्राग्वन्नवयोनिचक्रं कृत्वा, पद्माद्बहिर्वृत्तद्वयं विधाय तद्बहिः पूर्व-पश्चिमयोर्द्वारयुतं चतुरस्त्रद्वयं कुर्यादिति पूजाचक्रं निर्माण, प्राग्वत् संस्थाप्याभ्यर्च्यार्घ्यस्थापनाद्यात्मपूजान्ते प्राग्वद् भुवनेश्वरीपीठमभ्यर्च्य, तत्र वह्निवासिनीविद्यया मूर्तिं परिकल्प्यावाहनादिपूजोपचारान्ते बाह्याभ्यन्तरवृत्तयोरन्तराले प्राग्वत् षडङ्गानि सम्पूज्य, अष्टकोणेषु देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन २ ज्वालिनीपादुकां पूजयामि नमः। २ विस्फुलिङ्गिनीपा०। २ मङ्गलापा०। २ मनोहरापा०। २ कनकापा०। २ कितवापा०। २ विश्वापा०। २ विविधापा० इति सम्पूज्य, द्वादशदलेषु देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन २ मेषापादुकां पूजयामि नमः। २ वृषापा०। २ मिथुनापा०। २ कर्कटापा०। २ सिंहापा०। २ कन्यापा०। २ तुलापा०। २ कीटापा०। २ चापापा०। २ मकरापा०। २ कुम्भापा०। मीनापा० इति सम्पूज्य, चतुरस्त्रे देव्यग्रद्वारस्य दक्षिणभागमारभ्य प्रादक्षिण्येन २ घस्मरापा०। २ सर्वभक्षापा०। २ विश्वापा०। २ विविधोद्भवापा०। २ चित्ररूपापा०, इति पश्चिमद्वारपार्श्वद्वयवायव्योत्तरेशानेषु सम्पूज्य, पूर्वद्वारस्योत्तरदक्षिण-

पार्श्वद्वयाग्नेयदक्षिणनिर्ऋतिकोणेषु च २ निःसपत्नापादुकां पूजयामि नमः। २ निरातङ्कापा०। २ पावनीपा०। २ अचिन्त्यवैभवापा०। २ रक्तापा० इति सम्पूज्य तद्बहिः प्राग्वल्लोकपालांश्च तदायुधानि च सम्पूज्य धूपदीपादिसर्वं प्राग्वत्समापयेत्—इति वह्निवासिनीनित्यायजनविधिः।

वह्निवासिनी नित्या का पूजन—तन्त्रराज में सोलह नित्याओं में छठी वह्निवासिनी नित्या की नवाक्षरी विद्या, उसके अङ्ग-लिपिन्यास, ध्यान एवं शक्ति का अर्चन विवेचित किया गया है वह्निवासिनी नित्या का नवाक्षरी मन्त्र इस प्रकार है—ॐ ह्रीं वह्निवासिन्यै नमः।

इस मन्त्र के ऋषि वसिष्ठ, छन्द गायत्री, देवता वह्निवासिनी, शक्ति ह्रीं नमः 'वह्निवासिन्यै' कीलक है। तन्त्रराज के अनुसार इसका पूजा प्रयोग इस प्रकार है—पूर्ववत् आसनादि से योगपीठन्यास तक की क्रिया के बाद वह्निवासिनी विद्या से तीन प्राणायाम करने के बाद इस प्रकार विनियोग करे—शिरसि वसिष्ठऋषये नमः। मुखे गायत्रीछन्दसे नमः। हृदि वह्निवासिनीनित्यादेवतायै नमः। गुह्ये ह्रीं बीजाय नमः। पादयोः नमःशक्तये नमः। नाभौ वह्निवासिन्यै कीलकाय नमः, मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः। इस प्रकार विनियोग करके षडङ्ग न्यास ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः से करे।

तदनन्तर इस प्रकार मन्त्रवर्ण न्यास करे—दक्षनेत्रे ॐ नमः। वामे ह्रीं नमः। दक्षकर्णे वं नमः। वामे ह्निं नमः। दक्षनसि वां नमः। वामे सिं नमः। मुखेन्यैं नमः। लिङ्गे नं नमः। गुदे मंः नमः। तत्पश्चात् मूल से व्यापक न्यास करके। यथाविहित वह्निवासिनी का ध्यान करके मानस पूजा करे।

तदनन्तर स्वर्णादि पट्ट पर कुङ्कुमादि से द्वादशदल कमल बनाकर उसकी कर्णिका में दो वृत्त बनाये। उसमें पूर्ववत् नव योनिचक्र बनाये। द्वादश दल पद्म के बाहर दो वृत्त बनाये। उसके बाहर दो द्वारों से युक्त दो चतुरस्र बनाये। उसपर पूर्ववत् नित्या को स्थापित करे, पूजन करे। अर्घ्य स्थापित करे। आत्मपूजा करे। पूर्ववत् भुवनेश्वरी पीठ का अर्चन करे। उसमें पूर्ववत् वह्निवासिनी विद्या से मूर्ति कल्पित करके आवाहनादि कर पूजा करे। वृत्त के वाह्याभ्यान्तर अन्तराल में पूर्ववत् षडङ्ग पूजन करे।

अष्टकोण में देवी के अग्र से प्रादक्षिण्य क्रम से इस प्रकार पूजा करे—ह्रीं श्रीं ज्वालिनीपादुकां पूजयामि नमः। ह्रीं श्रीं विस्फुलिङ्गिनीपादुकां पूजयामि नमः। ह्रीं श्रीं मङ्गलापादुकां पूजयामि नमः। ह्रीं श्रीं मनोहरापादुकां पूजयामि नमः। ह्रीं श्रीं कनकापादुकां पूजयामि नमः। ह्रीं श्रीं कितवापादुकां पूजयामि नमः। ह्रीं श्रीं विश्वापादुकां पूजयामि नमः। ह्रीं श्रीं विविधापादुकां पूजयामि नमः।

द्वादश दल में देवी के आगे से प्रादक्षिण्य क्रम से—ह्रीं श्रीं मेषापादुकां पूजयामि नमः। ह्रीं श्रीं वृषापादुकां पूजयामि नमः। ह्रीं श्रीं मिथुनापादुकां पूजयामि नमः। ह्रीं श्रीं कर्कटापादुकां पूजयामि नमः। ह्रीं श्रीं सिंहापादुकां पूजयामि नमः। ह्रीं श्रीं कन्यापादुकां पूजयामि नमः। ह्रीं श्रीं तुलापादुकां पूजयामि नमः। ह्रीं श्रीं कीटापादुकां पूजयामि नमः। ह्रीं श्रीं चापापादुकां पूजयामि नमः। ह्रीं श्रीं मकरापादुकां पूजयामि नमः। ह्रीं श्रीं कुम्भापादुकां पूजयामि नमः। ह्रीं श्रीं मीनापादुकां पूजयामि नमः।

चतुरस्र में देव्यग्रद्वार के दक्षिण भाग से प्रारम्भ करके प्रादक्षिण्य क्रम से—ह्रीं श्रीं घस्मरापादुकां पूजयामि नमः। ह्रीं श्रीं सर्वभक्षापादुकां पूजयामि नमः। ह्रीं श्रीं विश्वापादुकां पूजयामि नमः। ह्रीं श्रीं विविधोद्भवापादुकां पूजयामि नमः। ह्रीं श्रीं चित्ररूपापादुकां पूजयामि नमः। पश्चिम द्वार के दोनों पार्श्वों में वायव्य-उत्तर-ईशान में पूजा करके पूर्व द्वार के उत्तर-दक्षिण पार्श्वद्वय एवं आग्नेय दक्षिण नैर्ऋत्य कोणों में ह्रीं श्रीं निःसपत्नापादुकां पूजयामि नमः। ह्रीं श्रीं निरातंकापादुकां पूजयामि नमः। ह्रीं श्रीं पावनीपादुकां पूजयामि नमः। ह्रीं श्रीं अचिन्त्यवैभवापादुकां पूजयामि नमः। ह्रीं श्रीं रक्तापादुकां पूजयामि नमः। इसके बाहर पूर्ववत् लोकपालों और उनके आयुधों का पूजन धूप-दीपादि से करके पूर्ववत् पूजा का समापन करे।

वज्रेश्वरीनित्यापूजनविधिः

अथ वज्रेश्वरीनित्यायजनविधिः। तत्र श्रीतन्त्रराजे (१२ प०)—

अथ षोडशनित्यासु सप्तमी या समीरिता। तस्या विधानं वक्ष्यामि शृणु सर्वार्थसाधकम् ॥१॥
प्रोक्तैव विद्या प्रागेव द्वादशाक्षरविग्रहा। तदङ्गानि लिपिन्यासं ध्यानं शक्तिभिरर्चनम् ॥२॥ इति।

इति। तथा (३.४१)—

द्वितीयं वह्निवासिन्या नित्यक्लिन्ना चतुर्थकम्। पञ्चमं भगमालाद्यं भेरुण्डाया द्वितीयकम् ॥१॥
नित्यक्लिन्ना द्वितीयं च तृतीयं षष्ठसप्तमौ। अष्टमं नवमं च स्यादेतदाद्यमितीरितम् ॥२॥
महावज्रेश्वरीनित्या द्वादशार्णा समीरिता। इति।

'ह्रींक्लिन्नेऐंक्रोंनित्यमदद्रवेह्रीं'। त्रिपुरार्णवे—'ऋषिर्ब्रह्मा च गीयते। गायत्री छन्द आख्यातं देवता परमेश्वरी'। परमेश्वरी वज्रेश्वरी। 'आद्यन्ते बीजशक्ती तु वाग्भवं कीलकं भवेत्' इति। तन्त्रराजे (१२.४)—

द्वयमेकैकमप्यत्र द्वयं द्वयमथ द्वयम्। मायया पुटितं कृत्वा कुर्यादङ्गानि षट् क्रमात् ॥१।
(प्रत्येकं शक्तिपुटितैर्मन्त्राणैर्दशभिर्न्यसेत्)। दृक्श्रोत्रनासावाग्वक्षोनाभिगुह्येषु च क्रमात् ॥२॥
रक्तां रक्ताम्बरां रक्तगन्धमालाविभूषणाम्। चतुर्भुजां त्रिनयनां माणिक्यमुकुटोज्ज्वलाम् ॥३॥
पाशाङ्कुशाविक्षुचापं दाडिमीसायकं तथा। दधानां बाहुभिर्नेत्रैर्दयामदसुशीतलैः ॥४॥
पश्यन्तीं साधकं त्र्यस्रषट्कोणाब्जमहीपुरे। चक्रमध्ये सुखासीनां स्मेरवक्त्रसरोरुहाम् ॥५॥
शक्तिभिः स्वस्वरूपाभिरावृतां पोतमध्यगाम्। सिंहासनेऽभितः प्रेङ्खत्पोतस्थाभिश्च शक्तिभिः ॥६॥
वृतां ताभिर्विनोदानि यातायातादिभिः सदा। कुर्वाणामरुणाम्भोधौ चिन्तयेन्मन्त्रनायिकाम् ॥७॥
इच्छाज्ञानक्रियास्तत्र त्रिकोणस्थाश्च शक्तयः। डाकिन्याद्याः षडस्रस्था पद्मद्वादशपत्रगाः ॥८॥
हृल्लेखा क्लेदिनी क्लिन्ना क्षोभिणी मदनातुरा। निरञ्जना रागवती तथैव मदनावती ॥९॥
मेखला द्राविणी वेगवती द्वादशशक्तयः। ततः षोडशपत्रस्थाः शक्तीराकर्णयाम्बिके ॥१०॥
कमलां कामिनीं कल्पां कलां कलितकौतुके। किरातां कालकदने कौशिकीं कम्बुवाहिनीम् ॥११॥
कातरां कपटां कीर्तिं कुमारीं कुङ्कुमामपि। चतुरस्रस्थाश्च शक्तीराकर्णय च ताः क्रमात् ॥१२॥
भञ्जिनी वेगिनी भोगा चपला पेशला सती। रतिः श्रद्धा भोगलोला मदोन्मत्ते मनस्विनी ॥१३॥
दिक्षु द्वारेषु पार्श्वेषु कोणादिषु च संस्थिताः। द्वादशैता महादेव्याश्चतुरस्राभितो यजेत् ॥१४॥
कृत्वार्घ्यमङ्गमूलाभ्यां प्रोक्तरूपां ततोऽर्चयेत्। शोणाब्धिं हेमपोतं च सिंहासनमतः परम् ॥१५॥
तत्र चक्रं ततो देवीं प्राग्वदावाह्य शक्तिभिः। मायासप्ताक्षरीमध्यगतैर्नामभिरर्चयेत् ॥१६॥
बलिं दद्याच्च तदनु सप्ताक्षर्या पुरोक्तया। देव्यास्तु कुरुकुल्लाया होमं कुर्याद्यथाविधि ॥१७॥
घृताक्तैररुणैः पुष्पैर्घृतैर्वा होममाचरेत्। प्राग्वत्समापयेदित्थमर्चनं ते समीरितम् ॥१८॥ इति।

अथ प्रयोगः—तत्र प्राग्वदासनपूजादियोगपीठन्यासान्ते मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः। मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः। हृदि वज्रेश्वरीनित्यादेवतायै नमः। गुह्ये ह्रींबीजाय नमः। पादयोः ह्रींशक्तये नमः। नाभौ ऐंकीलकाय नमः, इति विन्यस्य मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, ह्रींक्लिन्ने हृदयाय नमः। ऐं शिरसे स्वाहा। क्रों शिखायै वषट्। नित्य कवचाय हुं। मद नेत्रत्रयाय वौषट्। द्रवेह्रीं अस्त्राय फट्, इति करषडङ्गन्यासं विधाय, दक्षनेत्रे ह्रींक्लींह्रीं नमः। वामनेत्रे ह्रींन्नेंह्रीं नमः। दक्षकर्णे ह्रींऐंह्रीं नमः। वामकर्णे ह्रींक्रोंह्रीं नमः। दक्षनसि ह्रींनिंह्रीं नमः। वामनसि ह्रींत्यंह्रीं नमः। मुखे ह्रींमंह्रीं नमः। वक्षसि ह्रींदंह्रीं नमः। नाभौ ह्रींद्रंह्रीं नमः। लिङ्गे ह्रींवेंह्रीं नमः, इति विन्यस्य मूलेन व्यापकं विधाय, रक्तां रक्ताम्बरामित्यादि ध्यात्वा मानसपूजां विधाय, प्राग्वत्स्वर्णादिपीठे कुङ्कुमादिना स्वाभिमुखाग्रत्रिकोणरूपां योनिं विधाय तद्बहिर्द्वादशदलपद्मं तद्बहिः षोडशदलपद्मं तद्बहिश्चतुर्द्वारयुतं चतुरस्रद्वयं कुर्यात् इति पूजाचक्रं निर्माय प्राग्वत्स्वपुरतः संस्थाप्याभ्यर्च्यार्घ्यस्थापनाद्यात्मपूजान्ते भुवनेश्वरीपीठार्चने मण्डूकादिपृथिव्यन्तमभ्यर्च्य, तदनु शोणसमुद्राय नमः। कनकपोताय नमः। रत्नसिंहासनाय नमः, इति सम्पूज्य तदनु धर्मादिपीठमन्वन्तं प्राग्वत्सम्पूज्य तत्र मूलविद्यया मूर्तिं परिकल्प्यावाहनादिपुष्पान्तैरुपचारैरुपचर्य्य,

त्रिकोणमध्ये प्राग्वत् षडङ्गानि सम्पूज्य, त्रिकोणयोरन्तराले देव्याः पृष्ठे प्राग्वद्गुरुपंक्तित्रयमभ्यर्च्यान्तस्त्रिकोणे देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन ह्रींहल्लेखापादुकां पूजयामि। ह्रींक्लेदिनीपा०। ह्रींक्लिन्नापा०। ह्रींक्षोभिणीपा०। ह्रींमदनापा०। ह्रींमदनातुरापा०। ह्रींनिरञ्जनापा०। ह्रींरागवतीपा०। ह्रींमदनावतीपा०। ह्रींमेखलापा०। ह्रींद्राविणीपा०। ह्रींवेगवतीपा० इति सम्पूज्य, तद्बहिः षोडशदलेषु कमलापा०, कामिनीपा०, कल्पापा०, कलापा०, कलितापा०, कौतुकापा०, किरातापा०, कालापा०, कदनापा०, कौशिकीपा०, कम्बुवाहिनीपा०, कातरापा०, कपटापा०, कीर्तिपा०, कुमारीपा०, कुङ्कुमापा०, इति प्राग्वत्सम्पूज्य, चतुरस्रे देव्यग्रादिद्वारचतुष्टयस्य पार्श्वेषु पश्चिमद्वारस्य दक्षिण-भागादिप्रादक्षिण्येन भञ्जिनीपा०, वेगिनीपा०, भोगापा०, चपलापा, पेशलापा०, सतीपा०, रतिपा०, श्रद्धापा०, प्रीतिपा०, इति सम्पूज्य, वायव्यादिकोणचतुष्टये प्राग्वत् प्रादक्षिण्येन भोगलोलापा०, मदनापा०, उन्मत्तापा०, मनस्विनीपा०, इति निर्ऋत्यन्तं सम्पूज्य प्राग्वल्लोकपालार्चादि शेषं समापयेत्, इति वज्रेश्वरीनित्यायजनविधिः।

वज्रेश्वरी नित्या यजनविधि—तन्त्रराज में कहा गया है कि सोलह नित्याओं में सप्तमी वज्रेश्वरी के सर्वार्थसाधक विधान सुनो। इस विद्या का वर्णन पहले किया जा चुका है। इस विद्या में बारह अक्षर होते हैं। उसके अङ्गलिपि न्यास, ध्यान एवं शक्तिपूजा को कहता हूँ। वज्रेश्वरी नित्या की द्वादश अक्षरों वाली विद्या इस प्रकार है—'ह्रीं क्लिन्ने ऐं क्रों नित्यमदद्रवे ह्रीं'। त्रिपुरार्णव के अनुसार इसके ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री, देवता वज्रेश्वरी, ह्रीं बीज एवं ऐं कीलक हैं। तन्त्रराज के अनुसार इसकी पूजाविधि इस प्रकार है—पूर्ववत् आसन-पूजादि से योगपीठ न्यास तक करने के बाद मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करके इस प्रकार विनियोग करे—शिरसि ब्रह्मणे नमः। मुखे गायत्रीछन्दसे नमः। हृदि वज्रेश्वरीनित्यादेवतायै नमः। गुह्ये ह्रीं बीजाय नमः। पादयोः ह्रीं शक्तये नमः। नाभौ ऐं कीलकाय नमः। मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः।

विनियोग के पश्चात् षडङ्ग न्यास करे—ह्रीं क्लिन्ने हृदयाय नमः। ऐं शिरसे स्वाहा। क्रों शिखायै वषट्। नित्य कवचाय हुं। मद नेत्रत्रयाय वौषट्। द्रवे ह्रीं अस्त्राय फट्। इसी प्रकार करन्यास सम्पन्न करके मन्त्र वर्ण न्यास करे—दक्षनेत्रे ह्रीं क्लीं ह्रीं नमः। वामे ह्रीं न्नें ह्रीं नमः। दक्षकर्णे ह्रीं ऐं ह्रीं नमः। वामकर्णे ह्रीं क्रों ह्रीं नमः। दक्षनसि ह्रीं निं ह्रीं नमः। वामे ह्रीं त्यं ह्रीं नमः। मुखे ह्रीं मं ह्रीं नमः। वक्षसि ह्रीं दं ह्रीं नमः। लिङ्गे ह्रीं वें ह्रीं नमः। इस प्रकार न्यास करके मूलमन्त्र से व्यापक न्यास करने के पश्चात् यथाविहित ध्यान करके मानस पूजा करे।

तदनन्तर पूर्ववत् स्वर्णादि पीठ पर कुङ्कुमादि से स्वाभिमुखाग्र त्रिकोणरूपा योनि बनाये। उसके बाहर अष्टदल पद्म, उसके बाहर षोडश दल पद्म और उसके बाहर चार द्वारों से युक्त दो चतुरस्र बनाये। इस प्रकार पूजाचक्र का निर्माण करे।

उस पूजाचक्र को पूर्ववत् अपने सामने स्थापित करे। आत्मपूजा करे। भुवनेश्वरी पीठ में अर्चन मण्डूकादि से पृथ्वी तक अर्चन करने के बाद शोणसमुद्राय नमः। कनकपोताय नमः। रत्नसिंहासनाय नमः से पूजा करे। तब पूर्ववत् धर्मादि पीठों का मन्त्रों से पूजन करके मूल विद्या से मूर्ति कल्पित करे। आवाहनादि से पुष्प तक पूजन करे। त्रिकोण में पूर्ववत् षडङ्ग पूजा करे। त्रिकोण के अन्तराल में देवी के पीछे पूर्ववत् गुरुपंक्तित्रय का पूजन करे।

त्रिकोण में देव्यग्र से प्रादक्षिण्य क्रम से—ह्रीं हल्लेखापादुकां पूजयामि। ह्रीं क्लेदिनीपादुकां पूजयामि। ह्रीं ह्रीं क्लिन्नापादुकां पूजयामि से पूजन करे। तदनन्तर अष्टदल में—ह्रीं क्षोभिणीपादुकां पूजयामि। ह्रीं मदनापादुकां पूजयामि। ह्रीं मदनातुरापादुकां पूजयामि। ह्रीं निरञ्जनापादुकां पूजयामि। ह्रीं रागवतीपादुकां पूजयामि। ह्रीं मदनावतीपादुकां पूजयामि। ह्रीं मेखलापादुकां पूजयामि। ह्रीं द्राविणीपादुकां पूजयामि। ह्रीं वेगवतीपादुकां पूजयामि।

षोडश दल में—कमलापादुकां पूजयामि। कामिनीपादुकां पूजयामि। कल्पापादुकां पूजयामि। कलापादुकां पूजयामि। कलितापादुकां पूजयामि। कौतुकापादुकां पूजयामि। किरातापादुकां पूजयामि। कालापादुकां पूजयामि। कदनापादुकां पूजयामि। कौशिकीपादुकां पूजयामि। कम्बुवाहिनीपादुकां पूजयामि। कातरापादुकां पूजयामि। कपटापादुकां पूजयामि। कीर्तिपादुकां पूजयामि। कुमारीपादुकां पूजयामि। कुङ्कुमापादुकां पूजयामि।

चतुरस्त्र में देव्यग्रादि चारो द्वारों के पार्श्वों में पश्चिम द्वारस्थ दक्षिण भाग से प्रादक्षिण्य क्रम से—भञ्जिनीपादुकां पूजयामि। वेगिनीपादुकां पूजयामि। भोगापादुकां पूजयामि। चपलापादुकां पूजयामि। पेशलापादुकां पूजयामि। सतीपादुकां पूजयामि। रतिपादुकां पूजयामि। श्रद्धापादुकां पूजयामि। प्रीतिपादुकां पूजयामि। वायव्यादि चारो कोनों में पूर्ववत् प्रादक्षिण्य क्रम से भोगलोलापादुकां पूजयामि। मदनापादुकां पूजयामि। उन्मत्तापादुकां पूजयामि। मनस्विनीपादुकां पूजयामि से पूजा करे। इसके बाद पूर्ववत् लोकपालों और उनके आयुधों का पूजन करके पूजा का समापन करे।

शिवादूतीनित्यापूजनविधिः

अथ शिवादूतीनित्यायजनविधिः। तत्र श्रीतन्त्रराजे (१३ प०)—

अथ षोडशनित्यासु या प्रोक्ता त्वष्टमी तदा। तद्विधानं शृणु प्राज्ञे समीहितफलप्रदम् ॥१॥
विद्योद्धारः कृतः पूर्वमथ न्यासक्रमं तथा। तथावरणशक्तीश्च तद्ध्यानं तत्प्रपूजनम् ॥२॥ इति।

तत्रैव (३.४४)—

वज्रेश्वर्यन्त्यमाद्यं स्याद्वियदग्नियुतं ततः। अम्बु स्यान्मरुता युक्तं गोत्रा क्ष्मासंयुता ततः ॥१॥
रयो व्याप्तेन शुचिना युतं स्यात्तदनन्तरम्। अन्त्यर्णौ वह्निवासिन्या दूती नित्या समीरिता ॥२॥ इति।

'ह्लींशिवादूत्यै नमः' त्रिपुरार्णवे—'ऋषी रुद्रोऽथ गायत्री छन्दः स्याद्देवता शिवा।' शिवादूती इति। 'आद्यन्ते बीजशक्ती च मध्यं कीलकमुच्यते' इति। श्रीतन्त्रराजे (१३.५)—

कृत्वा प्राग्वत् षडङ्गानि विद्याद्येनोक्तवर्त्मना। तेनैव पुटितैरर्णैर्न्यसेच्छ्रोत्रादिपञ्चसु ॥१॥
षष्ठं मनसि विन्यस्य व्यापकं विद्यया न्यसेत्। प्राग्वदर्घ्यं समुद्दिष्टं तच्छक्तीः शृणु पार्वति ॥२॥
विह्वलाकर्षिणी लोला नित्या च वनमालिनी। विनोदा कौतुका पुण्या पुराणा चतुरस्त्रगाः ॥३॥
वागीशी वरदा विश्वा विनदा विघ्नकारिणी। वीरा विघ्नहरा विद्येत्युक्त्वा यन्त्राष्टशक्तयः ॥४॥
सुमुखी सुन्दरी सारा सुमना च सरस्वती। समया सर्वगा विद्येत्युक्तास्त्वष्टास्त्रशक्तयः ॥५॥
डाकिन्याद्याः षडस्त्रेषु सर्वास्त्वग्रात्प्रदक्षिणम्। मूलदेवीसमाकारवर्णाकार(युध)समन्विताः ॥६॥
शिवां वाणीं दूरसिद्धां त्वैविग्रहवतीमपि। नादां मनोन्मनीं षट्सु पत्रेषु परितोऽर्चयेत् ॥७॥
इच्छाज्ञानक्रियाशक्तीस्त्रिषु कोणेषु पूजयेत्। मध्ये देवीं हेतिवृतां पूजयेदष्टमीं शिवाम् ॥८॥
तस्या ध्यानं शृणु प्राज्ञे यन्मयं विश्वमीरितम्। तथापि भक्तसन्त्राणहेतोः क्लृप्तां परां तनुम् ॥९॥
निदाघकालमध्याह्नदिवाकरसमप्रभाम्। नवरत्नकिरीटां च त्रीक्षणामरुणाम्बराम् ॥१०॥
नानाभरणसम्भिन्नदेहकान्तिविराजिताम्। शुचिस्मितामष्टभुजां स्तूयमानां महर्षिभिः ॥११॥
पाशं खेटं गदां रत्नचषकं वामबाहुभिः। दक्षिणैरङ्कुशं खड्गं कुठारं कमलं तथा ॥१२॥
दधानां साधकाभीष्टदानोद्यमसमन्विताम्। ध्यात्वैवं पूजयेद्देवीं दूतीं दुर्नीतिनाशिनीम् ॥१३॥
वृत्तद्वयं बहिस्त्र्यस्त्रं तद्द्वयं षड्दलाम्बुजम्। (तथा षडस्त्रमष्टास्त्रं तद्बष्टदलाम्बुजम्) ॥१४॥
भूपुरे वह्निवासिन्याः कृत्वा तन्मध्यगां शिवाम्। आवाह्याभ्यर्च्य तच्छक्तीः प्रागुक्तविधिना स्थिताः ॥१५॥
जप्त्वा हुत्वा नमस्कृत्य स्वात्मन्युद्वासयेत्तथा। इति।

अथ प्रयोगः—तत्र प्राग्वदासनपूजादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा शिरसि रुद्राय ऋषये नमः। मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः। हृदये श्रीशिवादूतीनित्यायै नमः। गुह्ये ह्लींबीजाय नमः। पादयोः नमः शक्तये नमः। नाभौ शिवादूत्यै कीलकाय नमः, इति विन्यस्य ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः इति कृताञ्जलिरुक्त्वा ह्रांह्रीमित्यादिना करषडङ्गन्यासं विधाय, श्रोत्रयोः ह्लींशिंह्लीं नमः। सर्वाङ्गे ह्लींवांह्लीं नमः। चक्षुषोः ह्लींदूंह्लीं नमः। जिह्वायां ह्लींत्यैंह्लीं नमः। घ्राणयोः ह्लींनंह्लीं नमः। मनसि ह्लींमःह्लीं नमः, इत्यादिसमस्तविद्यया व्यापकं विधाय 'निदाघकाल' इत्यादि ध्यात्वा मानसपूजां विधाय, प्राग्वत् स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिना षड्दलपद्मं विधाय तदन्तर्वृत्तं (वृत्तद्वयं) मध्ये स्वाभिमुखाग्रं

त्रिकोणं, (तदन्तर्वृत्तद्वयं) पद्माद्बहिः षट्कोणं, तद्बहिरष्टकोणं, तद्बहिरष्टदलपद्मं, तद्बहिः पूर्वपश्चिमयोर्द्वारयुतं चतुरस्त्रं कुर्यादिति पूजाचक्रं निर्माय, प्राग्वत् पुरतः संस्थाप्याभ्यर्च्यार्घ्यस्थापनाद्यात्म पूजान्ते मूलेन मूर्तिं परिकल्प्यावाहनादिपुष्पोपचारान्ते त्रिकोणे प्राग्वत्षडङ्गानि सम्पूज्य, त्रिकोणवृत्तयोरन्तराले प्राग्वद् गुरुपंक्तित्रयं सम्पूज्य, चतुरस्त्रे देव्यग्रद्वारस्य दक्षिणभागमारभ्य प्रादक्षिण्येन ॐ विह्वलापादु०, आकर्षिणीपा०, लोलापा०, नित्यापा०, मदनापा०, मालिनीपा०, विनोदापा०, कौतुकापा०, पुण्यापा०, पुराणापा०, इति सम्पूज्य, अष्टदलेषु प्राग्वत् वागीशीपा०, वरदापा०, विश्वापा०, विनदापा०, विघ्नकारिणीपा०, वीरापा०, विघ्नहरापा०, विद्यापा०, इति सम्पूज्याष्टकोणे प्राग्वत् सुमुखीपा०, सुन्दरीपा०, सारापा०, सुमनापा०, सरस्वतीपा०, समयापा०, सर्वगापा०, सिद्धापा०, इति सम्पूज्य, षट्कोणेषु देव्यग्रकोणमारभ्य हाकिनीपा०, शाकिनीपा०, काकिनीपा०, लाकिनीपा०, राकिणीपा०, डाकिनीपा०, इति सम्पूज्य, षट्पत्रेषु शिवापा०, वाणीपा०, दूरसिद्धापा०, त्यैविग्रहवतीपा०, नादापा०, मनोन्मनीपा० इति सम्पूज्यान्तस्त्रिकोणेषु देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन इच्छाशक्तिपा०, ज्ञानशक्तिपा०, क्रियाशक्तिपा०, इति सम्पूज्य, त्रिकोणान्तर्वृत्तयोरन्तराले देव्या दक्षिणाधःकरादिवामाधःकरान्तान्यायुधस्थानानि परिकल्प्य, कमलाय नमः। कुठाराय नमः। खड्गाय नमः। अङ्कुशाय नमः। रत्नचषकाय नमः। गदायै नमः। खेटाय नमः। पाशाय नमः इति सम्पूज्य पुनर्मध्ये देवीं सम्पूज्य धूपदीपादिकं सर्वं प्राग्वत् समापयेत्—इति शिवादूतीनित्यायजनविधिः।

शिवादूती नित्या यजन—तन्त्रराज में कहा गया है कि सोलह नित्याओं में आठवीं शिवादूती नित्या का विधान सावधानी से सुनो। पहले विद्या का उद्धार करे, तदनन्तर न्यास क्रम आवरण शक्ति का ध्यान पूजन करे। तन्त्रराज के अनुसार शिवादूती का मन्त्र इस प्रकार का होता है—ह्रीं शिवादूत्यै नमः। त्रिपुरार्णव के अनुसार इसके ऋषि रुद्र, छन्द गायत्री, देवता शिवादूती, बीज ह्रीं, शक्ति नमः एवं शिवादूती कीलक हैं।

तन्त्रराज के अनुसार इसका पूजा-प्रयोग इस प्रकार होता है—पूर्ववत् आसन पूजादि से योगपीठन्यास तक करके मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करके इस प्रकार विनियोग करे—शिरसि रुद्राय ऋषये नमः। मुखे गायत्रीछन्दसे नमः हृदये शिवादूतीनित्यायै नमः। गुह्ये ह्रीं बीजाय नमः। पादयोः नमः शक्तये नमः। नाभौ शिवादूत्यै कीलकाय नमः। ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः।

तदनन्तर षडङ्ग न्यास एवं करन्यास ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः मन्त्रों से करे। तदनन्तर इस प्रकार मन्त्रवर्ण न्यास करे—कानों में ह्रीं शिं ह्रीं नमः। सर्वाङ्गे ह्रीं वां ह्रीं नमः। चक्षुषोः ह्रीं दूं ह्रीं नमः। जिह्वायां ह्रीं त्यैं ह्रीं नमः। घ्राणयोः ह्रीं नं ह्रीं नमः। मनसि ह्रीं मंः ह्रीं नमः। तत्पश्चात् समस्त विद्या से व्यापक न्यास करके यथाविहित ध्यान कर मानस पूजा करे।

तदनन्तर पूर्ववत् स्वर्णादि पट्ट पर कुङ्कुमादि से षड्दल पद्म बनाये। उसके बाहर दो वृत्त बनाकर उसके स्वाभिमुखाग्र त्रिकोण बनाये। वृत्तद्वय के बाहर षट्कोण बनाये। उसके बाहर अष्टकोण बनाये। उसके बाहर अष्टदल पद्म बनाये। उसके बाहर पूर्व-पश्चिम द्वारयुक्त चतुरस्त्र बनाकर पूजाचक्र का निर्माण करे। उसे पूर्ववत् अपने सामने स्थापित करे। अर्चन करे। अर्घ्य-स्थापन से आत्मपूजा तक की क्रिया करे। मूलमन्त्र से मूर्ति कल्पित करके आवाहनादि से पुष्पोपचार तक पूजा करे। त्रिकोण में पूर्ववत् षडङ्ग पूजा करे। त्रिकोण वृत्त के अन्तराल में पूर्ववत् गुरुपंक्तित्रय का पूजन करे। तदनन्तर चतुरस्त्र में देव्यग्र द्वार के दक्षिण भाग से आरम्भ करके प्रादक्षिण्य क्रम से इस प्रकार पूजा करे—ॐ विह्वलापादुकां पूजयामि। आकर्षिणीपादुकां पूजयामि। लोलापादुकां पूजयामि। नित्यापादुकां पूजयामि। मदनापादुकां पूजयामि। मालिनीपादुकां पूजयामि। विनोदापादुकां पूजयामि। कौतुकापादुकां पूजयामि। पुण्यापादुकां पूजयामि। पुराणापादुकां पूजयामि। अष्टदल में पूर्ववत्—वागीशीपादुकां पूजयामि। वरदापादुकां पूजयामि। विश्वापादुकां पूजयामि। विनदापादुकां पूजयामि। विघ्नकारिणीपादुकां पूजयामि। वीरापादुकां पूजयामि। विघ्नहरापादुकां पूजयामि। विद्यापादुकां पूजयामि। अष्टकोण में पूर्ववत्—सुमुखीपादुकां पूजयामि। सुन्दरीपादुकां पूजयामि। सारापादुकां पूजयामि। सुमनापादुकां पूजयामि। सरस्वतीपादुकां पूजयामि। समयापादुकां पूजयामि। सर्वगापादुकां पूजयामि। सिद्धापादुकां पूजयामि से पूजा करे।

षट्कोण में देव्यग्र कोण से आरम्भ करके इनकी पूजा करे—हाकिनीपादुकां पूजयामि। काकिनीपादुकां पूजयामि। लाकिनीपादुकां पूजयामि। राकिणीपादुकां पूजयामि। डाकिनीपादुकां पूजयामि। षट्पत्र में—शिवापादुकां पूजयामि। वाणीपादुकां पूजयामि। दूरसिद्धापादुकां पूजयामि। त्यैविग्रहवतीपादुकां पूजयामि। नादापादुकां पूजयामि। मनोन्मनीपादुकां पूजयामि—इनकी पूजा करे। त्रिकोण में देव्यग्र से आरम्भ करके प्रादक्षिण्य क्रम से इनकी पूजा करे—इच्छाशक्तिपादुकां पूजयामि। ज्ञानशक्तिपादुकां पूजयामि। क्रियाशक्तिपादुकां पूजयामि। त्रिकोण के बाहर वृत्तों के अन्तराल में देवी के दक्षिण नीचे वाले हाथ से अन्य आयुध-स्थानों की कल्पना करके पूजा करे—कमलाय नमः। कुठाराय नमः। खड्गाय नमः। अङ्कुशाय नमः। रत्नचषकाय नमः। गदायै नमः। खेटाय नमः। पाशाय नमः। इसके बाद मध्य में फिर से देवी का पूजन धूप-दीप-नैवेद्यादि से करके पूर्ववत् पूजा का समापन करे।

सप्रयोगः त्वरितानित्यापूजनविधिः

अथ त्वरितानित्यायजनविधिः। श्रीतन्त्रराजे (१४ पा०)—

अथ षोडशनित्यासु नवमी या समीरिता। प्रोक्तैव त्वरिता विद्या प्रागेव द्वादशाक्षरा ॥१॥
तद्विधानं शृणु प्राज्ञे होमयन्त्रादिभिः समम्। येन मन्त्री मन्मथाभो विक्षोभयति भूतलम् ॥२॥ इति।

तत्रैव (३.४७)—

आद्यं तु वह्निवासिन्या दूत्यादिस्तदनन्तरम्। हंसो धरास्वसंयुक्तः तेजश्चरसमन्वितम् ॥१॥
वायुः प्रभाचरयुता ग्रासः शक्तिसमन्वितः। हृदा रयेण दाहेन वह्निः स्यादष्टमं प्रिये ॥२॥
हंसः क्ष्मास्वयुतो ग्रासश्चरयुक्तो द्वितीयकम्। द्युतिर्नादयुता नित्या त्वरिता द्वादशाक्षरी ॥३॥ इति।

'ॐह्रींहुंखेचछेक्षःस्त्रीहूंक्षेह्रींफट्'। तथा त्रिपुरार्णवे—

ऋषिः सौरिर्विराट् छन्दो देवतेयं च पार्वति। कवचं स्त्री शक्तिबीजे क्षेच कीलकमीरितम् ॥१॥

इयं तु त्वरिता नित्या। तन्त्रराजे (१४.३)—

विद्याचतुर्थवर्णादिसप्तभिस्त्वक्षरैस्तथा। कुर्यादङ्गानि युग्मार्णैः षट् क्रमेण कराङ्गयोः ॥१॥
शिरोललाटकण्ठेषु हृन्नाभ्याधारकेषु च। ऊरुयुग्मे तथा जानुयुग्मे जङ्घाद्वये तथा ॥२॥
पादयुग्मे तथा वर्णान्मन्त्रजान् दश विन्यसेत्। द्वितीयोपान्त्यमध्यस्थैर्मन्त्रार्णैरितरैरपि ॥३॥
ताराद्यैः शृणु तद्ध्यानं तच्छक्तीस्तत्प्रपूजनम्। श्यामवर्णां शुभाकारां नवयौवनशोभिनीम् ॥४॥
द्विद्विक्रमादष्टनागैः कल्पिताभरणोज्ज्वलाम्। ताटङ्कमङ्गदं तद्वद्रशनानूपुरान्वितैः ॥५॥
विप्रक्षत्रियविट्शूद्रजातिभिर्भीमविग्रहैः। पल्लवांशुकसंवीतां शिखिपुच्छकृतैः शुभैः ॥६॥
वलयैर्भूषितभुजां माणिक्यमुकुटोज्ज्वलाम्। वर्हिवर्हकृतापीडां तच्छत्रां तत्पताकिनीम् ॥७॥
गुञ्जागुणलसद्वक्षःकुचकुङ्कुममण्डनाम्। त्रिनेत्रां चारुवदनां मन्दस्मितमुखाम्बुजाम् ॥८॥
पाशांकुशवराभीतिलसद्भुजचतुष्टयाम्। ध्यात्वैवं तोतुलां देवीं पूजयेच्छक्तिभिर्वृताम् ॥९॥
तदग्रस्थां च फट्कारीं शरचापकरोज्ज्वलाम्। प्रसादे फलदाने च साधकानां त्वरान्विताम् ॥१०॥
यतः सा त्वरितेत्युक्ता मया शक्तिर्नवम्यसौ। कृष्णवर्णो गदापाणिर्वर्वरोर्ध्वशिरोरुहः ॥११॥
किङ्करस्त्वग्रतस्तस्याः पूज्यः सर्वार्थसिद्धये। तद्द्वारपार्श्वयोः पूज्ये जयाविजयसंज्ञिके ॥१२॥
शक्ती तत्सदृशौ स्वर्णवेत्रवेल्लत्कराम्बुजे। हुङ्कारी खेचरी चण्डा छेदिनी क्षेपिणी ततः ॥१३॥
स्त्रीहुंकार्यौ क्षेमकरी लोकपालसमा इमाः। पूज्याः पद्माष्टपत्रेषु स्थिता मन्त्रार्णशक्तयः ॥१४॥
याभिर्नित्यार्चिताभिः स्यान्नरो नारीषु मन्मथः। शृणु पूजाविधिं तस्यास्त्वरिताया महेश्वरि ॥१५॥
प्राग्वदर्घ्यं विधायेशीमष्टसिंहांघ्रिके शुभे। आसने हेमरचिते विदध्याद् भूपुरद्वयम् ॥१६॥
पश्चिमद्वारसंयुक्तं तदन्तर्वृत्तयुग्मकम्। तदन्तरष्टपत्राब्जं विधायात्र परां शिवाम् ॥१७॥

प्राग्वदावाह्य परितः शक्तिभिर्वेष्टितां तथा। मुद्रादर्शनपूर्वं तु पूजयेत्तां यथोदिताम् ॥१८॥
अग्रपत्राग्रके वृत्तमध्ये वाच्यौ पुरोदितौ। किङ्करस्य बलिं दद्याद् देव्यग्रे प्रागुदीरितैः ॥१९॥
स्वसमानगणाकीर्णमण्डलस्थस्य भक्तितः। एवं पूजां विधायाग्रे जपेद्विद्यां सहस्रकम् ॥२०॥
शतं वा कृतहोमस्तु पूजां प्राग्वत् समापयेत्। इति।

अथ प्रयोगः—तत्र प्राग्वदासनादियोगपीठन्यासान्ते त्वरिताविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि सौरये ऋषये नमः। मुखे विराट्छन्दसे नमः। हृदि त्वरितानित्यादेवतायै नमः। गुह्ये ॐ बीजाय नमः। पादयोः हुं शक्तये नमः। नाभौ क्षे कीलकाय नमः, इति विन्यस्य, ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा ॐखेच हृदयाय नमः। चछे शिरसे स्वाहा। छेक्षः शिखायै वषट्। क्षःस्त्री कवचाय हुम्। स्त्रीहूं नेत्रत्रयाय वौषट्। हूंक्षे अस्त्राय फट्, इति करषडङ्गन्यासं कृत्वा, शिरसि ह्रींॐह्रींनमः। ललाटे ह्रींहुंह्रींनमः। कण्ठे ह्रींखेह्रींनमः। हृदि ह्रींचह्रीं नमः। नाभौ ह्रींछेह्रींनमः मूलाधारे ह्रींक्षःह्रींनमः। ऊरुद्वये ह्रींस्त्रीह्रींनमः। जानुद्वये ह्रींहूंह्रीं नमः। जङ्घाद्वये ह्रींक्षेह्रींनमः। पादद्वये ह्रींफट्ह्रींनमः, इति मायापुटितवर्णान् विन्यस्य समस्तविद्यया व्यापकं विन्यस्य ध्यानादिमानसपूजान्ते स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिना पश्चिमादिद्वारयुतं चतुरस्रद्वयं विधाय, तदन्तर्वृत्तद्वयोपेतमष्टदलपद्ममिति पूजाचक्रं विधाय, प्राग्वत्पुरतः संस्थाप्याभ्यर्च्यार्घ्यादिस्थापनाद्यात्मपूजान्ते भुवनेशीपीठमभ्यर्च्य, तत्र मूलविद्यया मूर्तिं कल्पयित्वावाहनादिपुष्पोपचारान्ते कर्णिकान्तः प्राग्वत् षडङ्गानि गुरुपंक्तित्रयं च सम्पूज्य, पश्चाद् बहिर्वृत्तत्रयान्तरालस्थवीथीद्वये देव्यग्रदलाग्रबाह्ये फट्कारीपादु०। बाह्यवीथ्यां देव्यग्र एव किङ्करपा० (द्वारपार्श्वयोः जयापा०, विजया०। अष्टपत्रेषु हुङ्कारीपा०, खेचरीपा०) चण्डा०, छेदिनीपा०, क्षेपिणीपा०, स्त्रीकारीपा०, हूङ्कारीपा०, क्षेमकरीपा०, इति सम्पूज्य प्राग्वल्लोकपालार्चादिसर्वं समापयेदिति। अत्र कुरुकुल्लाबलिदानानन्तरं किङ्करस्यापि देव्यग्रेऽन्नादिभिर्बलिं दद्यात्, इति त्वरितानित्यायजनविधिः।

त्वरिता नित्या यजनविधि—तन्त्रराज में कहा गया है कि सोलह नित्याओं में नवीं त्वरिता विद्या पूर्ववत् द्वादशाक्षरी ही है। अब यहाँ उसके विधान-होम-यन्त्रादि को कहता हूँ, जिससे साधक कामाकुल होकर भूतल को विक्षुब्ध करता है। त्वरिता की द्वादशाक्षरी विद्या इस प्रकार है—ॐ ह्रीं हुं खे च छे क्षः स्त्रीं हूं क्षे ह्रीं फट्। त्रिपुरार्णव के अनुसार इसके ऋषि सौरि, छन्द विराट् देवता त्वरिता, कवच स्त्री, शक्ति बीज एवं क्षे कीलक है।

तन्त्रराज के अनुसार इसका पूजा-प्रयोग इस प्रकार है—पूर्ववत् आसनादि से योगपीठन्यास तक करने के बाद त्वरिता विद्या से साधक तीन प्राणायाम करे। तदनन्तर इस प्रकार विनियोग करे—शिरसि सौरये ऋषये नमः। मुखे विराट् छन्दसे नमः। हृदि त्वरितानित्यादेवतायै नमः। गुह्ये ॐ बीजाय नमः। पादयोः हुं शक्तये नमः। नाभौ क्षे कीलकाय नमः। ममाभीष्टसिद्धये विनियागः। विनियोग के पश्चात् षडङ्ग न्यास करे—ॐ खेच हृदयाय नमः। चछे शिरसे स्वाहा। छेक्षः शिखायै वषट्। क्षःस्त्री कवचाय हुं। स्त्रीहूं नेत्रत्रयाय वौषट्। हूंक्षे अस्त्राय फट्। इसी प्रकार करन्यास भी करे।

तदनन्तर मन्त्रवर्ण इस प्रकार न्यास करे—शिरसि ह्रीं ॐ ह्रीं नमः। ललाटे ह्रीं हुं ह्रीं नमः। कण्ठे ह्रीं खे ह्रीं नमः। हृदि ह्रीं च ह्रीं नमः। नाभौ ह्रीं छे ह्रीं नमः। मूलाधारे ह्रीं क्षः ह्रीं नमः। उरुद्वये ह्रीं स्त्रीं ह्रीं नमः। जानुद्वये ह्रीं हूं ह्रीं नमः। जङ्घाद्वये ह्रीं क्षे ह्रीं नमः। पादद्वये ह्रीं फट् ह्रीं नमः—इस प्रकार मायापुटित वर्णों का न्यास करके समस्त विद्या से व्यापक न्यास करे। तदनन्तर यथाविहित ध्यान करते हुये मानस पूजा करे।

मानस पूजा के बाद स्वर्णादि पट्ट पर कुङ्कुमादि से पश्चिमादि द्वारयुक्त दो चतुरस्र बनाये। उसके अन्दर दो वृत्त से समन्वित अष्टदल पद्म से पूजाचक्र बनाये। उसे पूर्ववत् अपने सामने स्थापित करे, अर्चन करे आत्मपूजा करे। भुवनेश्वरी पीठ का अर्चन करे। उसमें मूल विद्या से मूर्ति कल्पित करके आवाहनादि से पुष्पोपचार तक पूजा करके। कर्णिका में पूर्ववत् षडङ्ग-पूजन एवं गुरुपंक्तित्रय का पूजन करे। इसके बाद तीन वृत्तों की दो वीथियों में देवी के अग्रदल के बाहर फट्कारी-पादुका

पूजयामि। बाहरी वीथि में देवी के आगे किङ्करपादुकां पूजयामि। द्वार के दोनों पार्श्वों में—जयापादुकां पूजयामि, विजयापादुकां पूजयामि। अष्टपत्र में—हुंकारीपादुकां पूजयामि। खेचरीपादुकां पूजयामि। चण्डापादुकां पूजयामि। छेदिनीपादुकां पूजयामि। क्षेपिणीपादुकां पूजयामि। स्त्रींकारीपादुकां पूजयामि। हूंकारीपादुकां पूजयामि। क्षेमकरीपादुकां पूजयामि इस प्रकार पूजन करे। तदनन्तर पूर्ववत् लोकपालों का पूजन करके त्वरिता-पूजा का समापन करे। इस पूजा में कुलकुल्ला के बलिदान के बाद देवी के आगे किङ्कर को भी बलि प्रदान करनी चाहिये।

सप्रयोगः कुलसुन्दरीनित्यापूजनविधिः

अथ कुलसुन्दरीपूजाविधिः। तत्र श्रीतन्त्रराजे (१५ प०)—

अथ षोडशनित्यासु दशमी या समीरिता। विद्योक्ता कुलसुन्दर्यास्तस्याः पूजाविधिं शृणु ॥१॥
तद्ध्यानमथ तन्न्यासं तच्छक्तीस्तत्समर्चनम्। इति।

तत्रैव (३.५१)—

शुचिः स्वेन युतस्त्वाद्यो रसावह्निसमन्वितः। प्राणो द्वितीयः स्वयुतो वनहृच्छक्तिभिः परः ॥१॥
दूतीरिता त्र्यक्षरी स्यान्नित्या सा कुलसुन्दरी। इति।

'ऐंक्लींसौः'। त्रिपुरार्णवे—

ऋषिस्तु दक्षिणामूर्तिरहं शिरसि विन्यसेत्। छन्दः पंक्तिस्तु विज्ञेयं मुखे विन्यस्य देवताम् ॥१॥
हृदये परमेशानीं विन्यसेत् कुलसुन्दरीम्। वाग्भवं बीजमित्युक्तं शक्तिस्तार्तीयमीरितम् ॥२॥
कामबीजं कीलकं स्यात्पुरुषार्थे नियोजितम्। इति।

तन्त्रराजे (१५.१२)—

त्रिभिस्तैरुदितैर्मूलवर्णैः कुर्यात् षडङ्गकम्। आद्यमध्यावसानेषु पूजाजपविधौ क्रमात् ॥१॥
प्रत्येकं तैस्त्रिभिर्बीजैर्दीर्घस्वरसमन्वितैः। कुर्यात् कराङ्गवक्त्राणां न्यासं प्रोक्तं यथाविधि ॥२॥
ऊर्ध्वप्राग्दक्षिणोदक्च पश्चिमापरनामभिः। शुचिनत्यन्तरस्थैस्तैस्तदात्मसु यथोक्रमम् ॥३॥
आधाररन्ध्रहृत्स्वेकं द्वितीयं लोचनत्रये। तृतीयं श्रोत्रचिबुके चतुर्थं घ्राणतालुषु ॥४॥
पञ्चमं त्वाचांसनाभीषु तथोरुपाणिपद्द्वये। मूलमध्याग्रतो न्यस्येन्नवधा मूलवर्णकैः ॥५॥
लोहितां लोहिताकारशक्तिवृन्दनिषेविताम्। लोहितांशुकभूषास्त्रग्लेपनां षण्मुखाम्बुजाम् ॥६॥
प्रतिवक्त्रं त्रिनयनां तथा चारुस्मितान्विताम्। अनर्घ्यरत्नघटितमाणिक्यमुकुटोज्ज्वलाम् ॥७॥
ताटङ्कहारकेयूररशनानूपुरोज्ज्वलाम्। रत्नस्तबकसंभिन्नलसद्वक्षःस्थलां शुभाम् ॥८॥
कारुण्यानन्दपरमामरुणाम्बुजविष्टराम्। भुजैर्द्वादशभिर्युक्तां सर्वेशीं सर्ववाङ्मयीम् ॥९॥
प्रवालाक्षस्त्रजं पद्मं कुण्डिकां रत्ननिर्मिताम्। रत्नपूर्णं तु चषकं लुङ्गीं व्याख्यानमुद्रिकाम् ॥१०॥
दधानां दक्षिणैर्वामैः पुस्तकं चारुणोत्पलम्। हैमीं च लेखनीं रत्नमालां कम्बु वरं भुजैः ॥११॥
अभितः स्तूयमानां च देवगन्धर्वकिन्नरैः। यक्षराक्षसदेवर्षिसिद्धविद्याधरादिभिः ॥१२॥
ध्यात्वैवमर्चयेन्नित्यं वाग्लक्ष्मीकान्तिसिद्धये। सितां केवलवाक्सिद्ध्यै लक्ष्म्यै हेमप्रभामपि ॥१३॥
धूमाभां वैरिविद्विष्ट्यै मृतये निग्रहाय च। नीलां च मूकीकरणे स्मरेत्तत्तदपेक्षया ॥१४॥
भाषा सरस्वती वाणी संस्कृता प्राकृतापरा। बहुरूपा चित्ररूपा रम्याप्यानन्दकौतुके ॥१५॥
एवमेकादश प्रोक्ता नवयोनिषु पूजयेत्। बहिरष्टच्छदाम्भोजे ब्राह्म्याद्यास्ताः समर्चयेत् ॥१६॥
चतुरस्त्रे लोकपालान् शक्तिरूपान् समर्चयेत्। इन्द्राग्नियमरक्षोभिर्वरुणानिलसोमकान् ॥१७॥
ईशानन्तविधीन् प्रागाद्यष्टदिक्ष्वधरोत्तरम्। शक्त्यन्तैर्नामभिः प्राग्वत्पूजयेत् सर्वसिद्धये ॥१८॥
चतुरस्त्रद्वयं कुर्यात् प्राक्प्रत्यग्द्वारसंयुतम्। तन्मध्ये वृत्तयुग्मस्थं कुर्यादष्टच्छदाम्बुजम् ॥१९॥

चतुस्त्रिपञ्चचत्वारिभागतो नवयोनिकम्। कृत्वात्र तां समावाह्य प्राग्वत्सम्यगथार्चयेत् ॥२०॥
एकादशस्वन्तशक्ती मध्ययोनेस्तु पार्श्वयोः। तथैव लोकपालान्तशक्ती द्वारद्वयेऽर्चयेत् ॥२१॥
विशेष एष सामान्यमन्यदर्चनमम्बिके। सप्ताक्षर्या बलिं दद्यात् पूजान्ते कुरुकुल्लया ॥२२॥
एवं नित्यार्चनं कुर्यान्नित्यहोमं घृतेन वै। इति।

अथ प्रयोगः—तत्र प्राग्वदासनपूजादियोगपीठन्यासान्ते मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि दक्षिणामूर्तिर्ऋषये नमः। मुखे पंक्तिच्छन्दसे नमः। हृदये कुलसुन्दरीनित्यादेवतायै नमः। गुह्ये ऐं बीजाय नमः। पादयोः सौः शक्तये नमः। नाभौ क्लीं कीलकाय नमः, इति विन्यस्य मम पुरुषार्थचतुष्टयसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा पूजारम्भे जपारम्भे आं हृदयाय नमः। ईं शिरसे स्वाहा। ऊं शिखायै वषट्। ऐं कवचाय हुं। औं नेत्रत्रयाय वौषट्। अः अस्त्राय फट्, इति कराङ्गयोर्विन्यस्य, शिरसि ऐंआं ऊर्ध्ववक्त्राय नमः। मुखे ऐंईं पूर्ववक्त्राय नमः। दक्षकर्णे ऐंऊं दक्षिणवक्त्राय नमः। वामकर्णे ऐंऐं उत्तरवक्त्राय नमः। चूडाधः ऐंऔं पश्चिमवक्त्राय नमः। चिबुके ऐंअः अपरवक्त्राय नमः, इति विन्यसेत्। पूजामध्ये त्वावरणपूजारम्भे विद्याया मध्यबीजं षड्दीर्घस्वरैर्भिन्नं कृत्वा क्लांक्लीमित्यादिना न्यसेत्। पूजान्तेऽपि विद्याया अन्त्यबीजं तथैव स्वरभिन्नं कृत्वा सांसीमित्यादिना न्यसेत्। मध्ये जपान्ते च। जपमध्यमुद्दिष्टसंख्याया अर्धजपानन्तरमिति। अथ प्रकृते प्रथमकूटस्य वक्त्रन्यासानन्तरं भूत्वा (यः) आधारे ऐं। ब्रह्मरन्ध्रे क्लीं। हृदये सौः। दक्षनेत्रे ऐं। वामनेत्रे क्लीं। ललाटनेत्रे सौः। दक्षश्रोत्रे ऐं। वामे क्लीं। चिबुके सौः। दक्षनसि ऐं। वामे क्लीं। तालुनि सौः। दक्षांसे ऐं। वामे क्लीं। नाभौ सौः। दक्षदोर्मूले ऐं। मध्ये क्लीं। अग्रे सौः। वामदोर्मूले ऐं। मध्ये क्लीं। अग्रे सौः। दक्षोरुमूले ऐं। मध्ये क्लीं। अग्रे सौः। वामोरुमूले ऐं। मध्ये क्लीं। अग्रे सौः, एवं पाणिपादद्वये इति विन्यस्य ततो मूलविद्यया व्यापकं कुर्यात्। पूजाजपमध्यान्तयोरपि मध्यबीजान्त्यबीजाभ्यां वक्त्रन्यासानन्तरं मूलबीजैर्नवविधन्यासं व्यापकस्य न्यासं च कुर्यादिति सम्प्रदायः। ततो ध्यानमानसपूजान्ते प्राग्वत्स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिनाष्टदलपद्मं कृत्वा तत्कर्णिकायां प्राग्वन्नवयोनिचक्रं विधाय, पद्माद्बहिर्वृत्तद्वयं तद्बहिः पूर्वपश्चिमद्वारद्वययुतं चतुरस्रद्वयं कुर्यादिति पूजाचक्रं निर्माय, प्राग्वत् पुरतः संस्थाप्याभ्यर्च्यार्घ्यादिस्थापनाद्यात्मपूजान्ते मण्डूकादिज्ञानात्मान्ते प्राग्वत् पीठपूजान्तं कृत्वाष्टदलकेसरेषु वामायै नमः, ज्येष्ठायै नमः, रौद्र्यै०, अम्बिकायै०, इच्छायै०, ज्ञानायै०, क्रियायै०, कुब्जिकायै०, चित्रायै०, विषघ्न्यै०, दूतर्य्यै०, आनन्दायै०, इति द्वादशशक्तीः सम्पूज्य, हसौं सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः, इति समस्तं पीठं सम्पूज्य, तत्र कुलसुन्दरीविद्यया मूर्तिं परिकल्प्यावाहनादिप्राणप्रतिष्ठान्ते प्रागुक्तषड्वक्त्रन्यासमन्त्रैर्देव्या वक्त्रषट्कं सम्पूज्यासनादिपूजोपचारान्ते, ततस्त्रिकोणस्याग्रकोणे २ भाषापा०, इति सम्पूज्याष्टयोनिषु देव्यग्रयोनिमारभ्य प्रादक्षिण्येन २ सरस्वतीपा०, २ वाणीपा०, २ संस्कृतापा०, २ प्राकृतापा०, २ परापा०, २ बहुरूपापा०, २ चित्ररूपापा०, २ रम्यापा०, इत्यष्टौ शक्तीः सम्पूज्य, अन्तर्योन्यां देव्याः पृष्ठदक्षिणकोणे आनन्दापा०, तद्वामे कौतुकापा०, इति सम्पूज्य अष्टदलेषु प्राग्वद् ब्राह्म्याद्याः सम्पूज्य, चतुरस्रे प्राग्वल्लोकपालान् इन्द्रशक्तिपा०, इत्यादि शक्तिरूपान्सम्पूज्य, तदायुधान्यपि तथैव शक्तिरूपाणि सम्पूज्य धूपादिसर्वं कृत्वा प्राग्वत्समापयेत्, इति कुलसुन्दरीनित्यासपर्याविधिः।

कुलसुन्दरी पूजाविधि—तन्त्रराज में कहा गया है कि सोलह नित्याओं में दशमी कुलसुन्दरी नित्या की पूजा का विधान, ध्यान, न्यास, शक्ति एवं उसके अर्चन-क्रम को सुनो। तन्त्रराज में कुलसुन्दरी की त्र्यक्षरी विद्या इस प्रकार कही गई है—ऐं क्लीं सौः। त्रिपुरार्णव के अनुसार इसका विनियोग इस प्रकार किया जाता है—शिरसि दक्षिणामूर्तिर्ऋषये नमः। मुखे पंक्तिछन्दसे नमः। हृदये कुलसुन्दरीदेवतायै नमः। गुह्ये ऐं बीजाय नमः। पादयोः सौः शक्तये नमः। नाभौ क्लीं कीलकाय नमः। मम पुरुषार्थचतुष्टयसिद्धये विनियोगः। विनियोग के पश्चात् पूजा या जप के आरम्भ में इस प्रकार षडङ्ग न्यास करे—आं हृदयाय नमः। ईं शिरसे स्वाहा। ऊँ शिखायै वषट्। ऐं कवचाय हुं। औं नेत्रत्रयाय वौषट्। अः अस्त्राय फट्। इसी प्रकार करन्यास भी

इसके बाद करे। मन्त्रवर्ण न्यास करे—शिरसि ऐं आं ऊर्ध्ववक्त्राय नमः। मुखे ऐं ईं पूर्ववक्त्राय नमः। दक्षकर्णे ऐं ऊं दक्षिण-वक्त्राय नमः। वामकर्णे ऐं ऐं उत्तरवक्त्राय नमः। शिखा के नीचे ऐं ओं पश्चिमवक्त्राय नमः। चिबुके ऐ अः अपरवक्त्राय नमः।

पूजा मध्य में आवरण पूजारम्भ में विद्या के मध्य बीज को षड्दीर्घ स्वरों से अलग करके क्लां क्लीं क्लूं क्लैं क्लौं क्लः से न्यास करे। पूजा के अन्त में भी विद्या के अन्तिम बीज को उसी प्रकार स्वरभिन्न करके सां सीं सूं सैं सौं सः से न्यास करे। जप के मध्य एवं अन्त में भी ऐसा ही करे।

प्रकृत में प्रथम कूट के वक्त्रन्यास के पश्चात् आधारे ऐं। ब्रह्मरन्ध्रे क्लीं। हृदये सौः। दक्षनेत्रे ऐं। वामनेत्रे क्लीं। ललाटनेत्रे सौः। दक्षश्रोत्रे ऐं। वामे क्लीं। चिबुके सौः। दक्षनसि ऐं। वामे क्लीं। तालुनि सौः। दक्षांसे ऐं। वामे क्लीं। नाभौ सौः। दक्षदोर्मले ऐं। मध्ये क्लीं। अग्रे सौः। वामदोर्मूले ऐं। मध्ये क्लीं। अग्रे सौः। दक्षोरुमूले ऐं। मध्य क्लीं, अग्रे सौः। वामोरुमूले ऐं। मध्ये क्लीं। अग्रे सौः। इस प्रकार दोनों हाथों पर न्यास करके मूल से व्यापक न्यास करे। सम्प्रदाय का मत है कि पूजा एवं जप के मध्य तथा अन्त में भी मध्य बीज और अन्त्य बीज से वक्त्रन्यास के बाद मूल बीज से नवविध न्यास और व्यापक न्यास करना चाहिये। इसके बाद इस प्रकार ध्यान करे—

लोहितां लोहिताकारशक्तिवृन्दनिषेविताम्। लोहितांशुकभूषास्रग्लेपनां षण्मुखाम्बुजाम्।।
प्रतिवक्त्रं त्रिनयनां तथा चारुस्मितान्विताम्। अनर्घ्यरत्नघटितमाणिक्यमुकुटोज्ज्वलाम्।।
ताटङ्कहारकेयूररशनानूपुरोज्ज्वलाम्। रत्नस्तबकसंभिन्नलसद्वक्षःस्थलां शुभाम्।।
कारुण्यानन्दपरमामरुणाम्बुजविष्टराम्। भुजैर्द्वादशभिर्युक्तां सर्वेशीं सर्ववाङ्मयीम्।।
प्रवालाक्षस्त्रजं पद्मं कुण्डिकां रत्ननिर्मिताम्। रत्नपूर्णं तु चषकं लुङ्गीं व्याख्यानमुद्रिकाम्।।
दधानां दक्षिणैर्वामैः पुस्तकं चारुणोत्पलम्। हैमीं च लेखनीं रत्नमालां कम्बु वरं भुजैः।।
अभितः स्तूयमानां च देवगन्धर्वकिन्नरैः। यक्षराक्षसदेवर्षिसिद्धविद्याधरादिभिः ।।

ध्यानानन्तर मानस पूजा सम्पन्न कर पूर्ववत् स्वर्णादि पट्ट पर कुङ्कुमादि से अष्टदल पद्म बनाये। इसकी कर्णिका में नव योनिचक्र बनाये। अष्टदल पद्म के बाहर दो वृत्त बनाये। उसके बाहर पूर्व पश्चिम द्वारद्वययुक्त दो चतुरस्त्र बनाकर पूजाचक्र का निर्माण करे। उसे पूर्ववत् अपने आगे स्थापित करे। अर्चनादि से आत्मपूजा तक की क्रिया के बाद मण्डूकादि से ज्ञानात्मा तक पूर्ववत् पीठपूजा करे।

अष्टदल केसर में—वामायै नमः। ज्येष्ठायै नमः। रौद्र्यै नमः। अम्बिकायै नमः। इच्छायै नमः। ज्ञानायै नमः। क्रियायै नमः। कुब्जिकायै नमः। चित्रायै नमः। विषघ्न्यै नमः। दूतर्य्यै नमः। आनन्दायै नमः। इस प्रकार बारह शक्तियों का पूजन करके ह्सौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः से समस्त पीठ का पूजन करके कुलसुन्दरी विद्या से मूर्ति कल्पित करे। आवाहनादि से लेकर प्राणप्रतिष्ठा तक करने के बाद पूर्वोक्त षड्वक्त्र न्यासमन्त्रों से वक्त्र षट्क का पूजन करे। इसके बाद त्रिकोण के अग्रकोण में ह्रीं श्रीं भाषापादुकां पूजयामि से पूजन करे। तब देवी के अग्र कोण से आरम्भ करके प्रादक्षिण्य क्रम से इनकी पूजा करे—

अष्ट योनि में—ह्रीं श्रीं सरस्वतीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं वाणीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं संस्कृतपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं प्राकृतपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं परापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं बहुरूपापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं चित्ररूपापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं रम्यापादुकां पूजयामि—इन आठ शक्तियों की पूजा करे। मध्य योनि में देवी के पीछे दक्षिण कोण में आनन्दापादुकां पूजयामि और उसके बाँएँ कौतुकापादुकां पूजयामि से पूजा करे। अष्टदल में पूर्ववत् ब्राह्मी आदि आठ की पूजा करे। चतुरस्त्र में पूर्ववत् लोक-पालों के शक्तियों की पूजा करके उनके आयुधों के शक्तियों की भी पूजा करके धूपादि समर्पित कर पूर्ववत् पूजा का समापन करे।

सप्रयोगः नित्यानित्यापूजनविधिः

अथ नित्यानित्यायजनविधिः। श्रीतन्त्रराजे (१६ प०)—

अथ षोडशनित्यासु या प्रोक्तैकादशी तु ताम्। नित्यानित्यां शृणु प्राज्ञे तदायत्तमिदं जगत् ।।१।।
विद्योद्धारः कृतः पूर्वं तद्विधानमिहोच्यते। यासौ समस्तभूतानां देहस्थितिविधायिनी ।।२।।
न्यासध्यानं ततः शक्तीस्ताभिः पूजां च साधनम्। इति।

तत्रैव (३.५३)—

हंसश्च हृत्प्राणरसादाहकुर्भिः समन्वितः। विद्यया कुलसुन्दर्या योजितः सम्प्रदायतः ॥१॥ इति।

'हसकलरडैं हसकलरडीं हसकलरडौः' इति त्रिपुरार्णवे—'नित्यानित्या तु बाला चे'ति अत्र बाला-नित्यानित्ययोरभेदात् करषडङ्गार्घ्यादिकं बालाया इव ज्ञेयम्। तन्त्रराजे (१६.४)—

दीर्घस्वरसमेताभ्यां हंसहृद्भ्यां षडङ्गकम्। भ्रूमध्ये कण्ठहृन्नाभिगुह्याधारेषु च क्रमात् ॥१॥
विद्याक्षराणि क्रमशो न्यसेद्बिन्दुयुतानि च। व्यापकं तु समस्तेन विधाय विधिना युतम् ॥२॥
ध्यायेत्तां सर्वसम्पत्तिहेतोः सर्वात्मिकां शुभाम्। उद्यद्भास्करबिम्बाभां माणिक्यमुकुटोज्ज्वलाम् ॥३॥
पद्मरागकृताकल्पामरुणांशुकधारिणीम्। चारुस्मितलसद्वक्त्रषट्सरोजविराजिताम् ॥४॥
प्रतिवक्त्रं त्रिनयनां भुजैर्द्वादशभिर्युताम्। पाशाक्षगुणपुण्ड्रेक्षुचापखेटत्रिशूलकान् ॥५॥
वरं वामैर्दधानां चाप्यंकुशं पुस्तकं तथा। पुष्पेषु मण्डलाग्रं च कपालमभयं तथा ॥६॥
दधानां दक्षिणैर्हस्तैर्ध्यायेद् देवीमनन्यधीः। अनन्ताः शक्तयो देव्यास्त्वाकर्णय वदामि ते ॥७॥
ललिताशक्तिवृन्दाश्च बीजद्वयमथो क्रमात्। पूर्णमण्डलवर्णाः स्युरन्ते शक्तीतिसंयुताः ॥८॥
सप्ताक्षर्या युता संज्ञा विद्याः स्युर्द्वादशाक्षराः। षटसप्तत्या पञ्चशतं यजेत्ताभिर्वृतां शिवाम् ॥९॥
षट्कोणकोणेष्वासीना डाकिन्याद्यास्तथार्चयेत्। रक्षोनिलेन्द्रवह्नीशवरुणेषु क्रमाच्च ताः ॥१०॥
डाकिनी राकिणी पश्चाल्लाकिनी काकिनी तथा। शाकिनी हाकिनी मूलदेवीसदृशविग्रहाः ॥११॥
हेतीस्तामभितः शक्तिरूपास्तन्मुकुटानताः। कृतन्यासार्धसङ्कल्पः पूजयेदीरितक्रमात् ॥१२॥
सतिलद्वयहोमं तु जपेद्विद्यां यथोदिताम्। षट्कोणाद्बहिरब्जं तु शतार्धैकदलान्वितम् ॥१३॥
कृत्वा तेष्वपि ताभिस्तु वृता पूज्या तु मध्यतः। द्विचतुष्षड्दलशतैर्द्वादशाष्टदलच्छदैः ॥१४॥
पद्मैरावृतषट्कोणे यजेल्लघ्वीरितार्चना। चतुरस्रद्वयं बाह्ये चतुर्द्वारसमन्वितम् ॥१५॥
विधाय तेषु शाखाश्च शक्तीनां विंशतिं यजेत्। ब्राह्म्यादिलोकपालाख्याः षोडशद्वारसंस्थिताः ॥१६॥
अनन्तब्रह्मनियतिकालरूपा विदिग्गताः। इति।

अथ प्रयोगः—तत्र प्राग्वदासनयोगपीठन्यासान्ते नित्यानित्याविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि दक्षिणा-मूर्तिऋषये नमः। मुखे पंक्तिच्छन्दसे नमः। हृदि नित्यानित्यादेवतायै नमः। गुह्ये ऐंबीजाय नमः। पादयोः ॐशक्तये नमः। नाभौ ईंकीलकाय नमः, इति विन्यस्य मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, ह्सां हृदयाय नमः। ह्सीं शिरसे स्वाहा। ह्सूं शिखायै वषट्। ह्सैं कवचाय हुं। ह्सौं नेत्रत्रयाय वौषट्। ह्सः अस्त्राय फट्, इति करषडङ्गन्यासं विधाय, भ्रूमध्ये हं नमः। कण्ठे सं नमः। हृदि कं नमः। नाभौ लं नमः। गुह्ये रं नमः। मूलाधारे डं नमः, समस्तविद्यया व्यापकं विधाय 'उद्यद्भास्करबिम्बाभा'मित्यादि ध्यात्वा मानसपूजान्ते स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिना षट्कोणं विधाय, तन्मध्ये वृत्तं कृत्वा षट्कोणाद्बहिः षोडशदलयुतानि षट्त्रिंशत्पद्मानि, द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशद्दलयुतानि अष्टादशपद्मानि वा तद्बहिर्विभागेन कृत्वा तद्बहिश्चतुरस्रद्वयं चतुर्द्वारोपेतं कुर्यादिति पूजामण्डलं निर्माय, प्राग्वत् पुरतः संस्थाप्याभ्य-र्च्यार्घ्यादिस्थापनाद्यात्मपूजान्ते कुलसुन्दरीपीठमभ्यर्च्य मूलेन मूर्तिं परिकल्प्यावाह्यासनादिपुष्पोपचारान्ते पीठमध्ये देवीपरितः प्राग्वत् षडङ्गानि सम्पूज्य, देव्याः पृष्ठभागे षट्कोणवृत्तयोरन्तराले प्राग्वद्गुरुपंक्तित्रयमभ्यर्च्य, निर्ऋतिकोणे २ डाकिनीपा०। वायव्ये २ राकिणीपा०। पूर्वकोणे २ लाकिनीपा०। आग्नेये २ काकिनीपा०। ईशाने २ शाकि-नीपा०। पश्चिमकोणे २ हाकिनीपा०, इति सम्पूज्य, बहिः षोडशदले देव्यग्रदलमारभ्य प्रादक्षिण्येन २ अशक्तिपा० इत्यादि षोडशशक्तीः पूजयेत्। एवमन्येष्वपि पञ्च(षट्)त्रिंशद्वर्णशक्तीः प्रतिपद्मं षोडशशक्तीरिति प्रागुक्तपूर्णमण्डलवर्णशक्तीः पूजयेत्। अष्टादशपद्मपक्षे तु प्रतिपद्मं द्वात्रिंशत्संख्याकाः प्रोक्तशक्तयः पूज्याः। अथ षट्कोणाद्बहिरेकपञ्चाशद्दलमितं

पद्मं विरच्य, तद्दलेषु देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येनैकपञ्चाशद्वर्णशक्तीः पूजयेत्। यथा—षट्कोणाद्बहिः षोडशदलपद्मं तद्बहिर्द्वादशदलं तद्बहिर्दशदलं तद्बहिः षड्दलं तद्बहिश्चतुर्दलं तद्बहिर्द्विदलमिति पद्मषट्कं निर्माय, तेषु षोडशदलेषु स्वरशक्तीर्द्वादशदलेषु कादिठान्तवर्णशक्तीर्दशदलेषु डादिफान्तवर्णशक्तीः, षड्दलेषु बादिलान्तवर्णशक्तीः चतुर्दलेषु वादिसान्तवर्णशक्तीर्द्विदलयोर्हक्षवर्णशक्ती इति पञ्चाशच्छक्तीः पूजयेत्। एवमुत्तममध्यमकनिष्ठपक्षेष्वेकपक्षानुसारेण वर्णशक्तीः सम्पूज्य, पूर्वद्वारमारभ्य प्रतिद्वारं द्विद्विक्रमेण इन्द्रादीशानान्तलोकपालशक्त्यष्टकं प्राग्वत् सम्पूज्य वायव्यादिनिर्ऋत्यन्तं कोणचतुष्टये २ अनन्तशक्तिपा०, २ ब्रह्मशक्तिपा०, २ नियतिशक्तिपा०, २ कालशक्तिपा०, इति सम्पूज्य, षट्कोणान्तवृत्तयोरन्तराले द्वादश स्थानानि परिकल्प्य २ अभयशक्तिपा०, २ कपालशक्तिपा०, २ खड्गशक्तिपा०, २ इषुशक्तिपा०, २ पुस्तकशक्तिपा०, २ अङ्कुशशक्तिपा०, २ पाशशक्तिपा०, २ अक्षगुणशक्तिपा०, २ इक्षुचापशक्तिपा०, २ खेटकशक्तिपा०, २ त्रिशूलशक्तिपा०, २ वरशक्तिपा०, इति सम्पूज्य, पुनर्मध्ये देवीं तद्विद्ययाभ्यर्च्य धूपादि सर्वं कृत्वा समापयेत्, इति नित्यानित्यायजनविधिः।

नित्यानित्या-यजनविधि—तन्त्रराज में कहा गया है कि सोलह नित्याओं में एकादशी नित्यानित्या के विद्या का उद्धार करने पर विद्या का स्वरूप इस प्रकार स्पष्ट होता है—हसकलरडैं हसकलरडीं हसकलरडौः। त्रिपुरार्णव के अनुसार नित्यानित्या एवं बाला में अभेद होने के कारण बाला के समान ही नित्यानित्या का भी करन्यास, षडङ्गन्यास, अर्घ्यादि-स्थापन करना चाहिये। तन्त्रराज के अनुसार इसका पूजा प्रयोग इस प्रकार है—पूर्ववत् आसनादि से आरम्भ कर योगपीठ न्यास तक करने के बाद नित्यानित्या विद्या से तीन प्राणायाम करके इस प्रकार विनियोग करे—शिरसि दक्षिणामूर्तियेऋषये नमः। मुखे पंक्तिछन्दसे नमः। हृदि नित्यानित्यादेवतायै नमः। गुह्ये ऐं बीजाय नमः। पादयोः ऊं शक्तये नमः। नाभौ ईं कीलकाय नमः। मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः। विनियोग के बाद इस प्रकार षडङ्ग न्यास करे—ह्सां हृदयाय नमः। ह्सीं शिरसे स्वाहा। ह्सूं शिखायै वषट्। ह्सैं कवचाय हुं। ह्सौं नेत्रत्रयाय वौषट्। ह्सः अस्त्राय फट्। इसी प्रकार करन्यास भी सम्पन्न करे। तदनन्तर मन्त्रवर्ण न्यास करे—भ्रूमध्ये हं नमः। कण्ठे सं नमः। हृदि कं नमः। नाभौ लं नमः। गुह्ये रं नमः। मूलाधारे डं नमः। तत्पश्चात् समस्त विद्या से व्यापक न्यास करे। तदनन्तर निम्नवत् ध्यान करे—

उद्यद्भास्करबिम्बाभां माणिक्यमुकुटोज्ज्वलाम्। पद्मरागकृताकल्पामरुणांशुकधारिणीम्।।
चारुस्मितलसइक्त्रषट्सरोजविराजिताम्। प्रतिवक्त्रं त्रिनयनां भुजैर्द्वादशभिर्युताम्।।
पाशाक्षगुणपुण्ड्रेक्षुचापखेटत्रिशूलकान्। वरं वामैर्दधानां चाप्यङ्कुशं पुस्तकं तथा।।
पुष्पेषु मण्डलाग्रञ्च कपालमभयं तथा। दधानां दक्षिणैर्हस्तैर्ध्यायेद् देवीमनन्यधीः।।

ध्यान के बाद मानस पूजा करके स्वर्णादि पट्ट पर कुङ्कुमादि से षट्कोण बनाकर उसमें वृत्त बनाये। षट्कोण के बार षोडश दल पद्म, उसके बाहर छत्तीस दल पद्म और बत्तीस दलयुक्त अट्ठारह पद्म बनाये। उसके बाहर चार द्वारों से युक्त दो चतुरस्र बनाये। इस प्रकार का पूजा मण्डल बनाकर उसे पूर्ववत् अपने आगे स्थापित करके अर्चन करे। अर्घ्यादि स्थापन से आत्मपूजा तक का कर्म सम्पन्न कर कुलसुन्दरी पीठ में अर्चन करे। मूल मन्त्र से मूर्ति कल्पित करके आवाहन आसनादि से पुष्पोपचार तक पूजा करे। पीठमध्य में देवी के सभी ओर पूर्ववत् षडङ्ग पूजन करे। देवी के पीछे षट्कोण वृत्त के अन्तराल में पूर्ववत् गुरुपंक्तित्रय का पूजन करे। षट्कोण के नैर्ऋत्य कोण में ह्रीं श्रीं डाकिनीपादुकां पूजयामि। वायव्य में ह्रीं श्रीं राकिणीपादुकां पूजयामि। पूर्व कोण में ह्रीं श्रीं लाकिनीपादुकां पूजयामि। आग्नेय में ह्रीं श्रीं काकिनीपादुकां पूजयामि। ईशान में ह्रीं श्रीं शाकिनीपादुकां पूजयामि एवं पश्चिम कोण में ह्रीं श्रीं हाकिनीपादुकां पूजयामि से पूजन करे। षोडशदल में देवी के अग्रदल से आरम्भ करके प्रादक्षिण्य क्रम से इनका पूजन करे—ह्रीं श्रीं अशक्तिपादुकां पूजयामि से ह्रीं श्रीं अः शक्तिपादुकां पूजयामि तक सोलह शक्तियों का पूजन करे। इसी प्रकार अन्य में छत्तीस शक्तियों का पूजन पूर्वोक्त षोडश शक्तियों के समान पूर्वोक्त पूर्ण मण्डल वर्ण शक्तियों का पूजन करे। अट्ठारह पद्मों में प्रति पद्म बत्तीस संख्या में उक्त शक्तियों का पूजन करे।

षट्कोण के बाहर इक्यावन दल पद्म बनाकर दलों में देवी के आगे से प्रादक्षिण्य क्रम से इक्यावन वर्णशक्तियों का पूजन करे। जैसे—षट्कोण के बाहर षोडश दल, उसके बाहर द्वादश दल, उसके बाहर दशदल, उसके बाहर षड्दल, उसके बाहर चतुर्दल, उसके बाहर द्विदल पद्म—इस प्रकार पद्मषटक बनाकर उनमें षोडश दल में स्वरशक्तियों का, द्वादश दल में क से ठ तक, दश दल में ड से फ तक, षड्दल में ब से ल तक, चार दल में व से स तक एवं द्विदल में ह-क्ष वर्णशक्ति की पूजा करे। इसी प्रकार उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ तीन पक्षों में से किसी एक पक्ष के अनुसार वर्ण शक्ति की पूजा करके पूर्वद्वार से आरम्भ करके प्रतिद्वार दो-दो के क्रम से इन्द्र से ईशान तक आठ लोकपाल-शक्तियों का पूजन करके वायव्य से नैर्ऋत्य तक चार कोनों में ह्रीं श्रीं अनन्त शक्तिपादुकां पूजयामि, ह्रीं श्रीं ब्रह्मशक्तिपादुकां पूजयामि, ह्रीं श्रीं नियतिशक्तिपादुकां पूजयामि ह्रीं श्रीं कालशक्तिपादुकां पूजयामि इस प्रकार पूजन करे।

इसके बाद षट्कोण और वृत्त के अन्तराल में बारह स्थान कल्पित करके इनका पूजन करे—ह्रीं श्रीं अभय शक्ति-पादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं कपालशक्तिपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं खड्गशक्तिपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं इषुशक्तिपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं पुस्तकशक्तिपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं अङ्कुशशक्तिपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं पाशशक्तिपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं अक्षगुण-शक्तिपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं इक्षुचापशक्तिपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं खेटकशक्तिपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं त्रिशूलशक्तिपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं वरशक्तिपादुकां पूजयामि से पूजा करे। फिर मध्य में देवी का अर्चन उसकी विद्या से करे। अन्त में धूपादि समर्पण करके पूर्ववत् पूजा का समापन करे।

सप्रयोगः नीलपताकानित्यापूजनविधिः

अथ नीलपताकार्चाविधिः। श्रीतन्त्रराजे (१७ प०)—

अथ षोडशनित्यासु द्वादशी या समीरिता। तस्या नीलपताकाया विधानं सर्वसिद्धिदम् ॥१॥
न्यासक्रमविधानं च ध्यानं शक्तीः प्रपूजनम्। इति।

तत्रैव (३.५६)—

त्वरितोपान्त्यमाद्यं स्याद् द्युतिर्दाहचरस्वयुक्। हृच्च दाहक्ष्मास्वयुतं (वज्रेशीपञ्चमं ततः ॥१॥
मरुत्स्वयुक्तो मध्याद्ये दशम्याः क्रमशः स्मृते। भूमी रसाक्ष्मास्वयुता) वज्रेशी षष्ठतः क्रमात् ॥२॥
षडक्षराणि त्वरिता तृतीयं तदनन्तरम्। द्युतिर्दाहचरस्वेन अस्या आद्यमनन्तरम् ॥३॥
उक्ता नीलपताकाख्या नित्या सप्तदशाक्षरी।

'ह्रींफ्रेंस्त्रूंओंआंक्लींऐंब्लूंनित्यमदद्रवेहुंफ्रेंह्रीं' इति। त्रिपुरार्णवे—

ऋषिः सम्मोहनश्छन्दो गायत्रं देवता मनोः। नित्या नीलपताकाख्या ह्रींबीजं ह्रींच शक्तिकम् ॥१॥
कामबीजं कीलकं स्यात् ....। इति।

श्रीतन्त्रराजे (१७.५)—

मूलविद्याक्षरैरङ्गान्याचरेत् षडिति क्रमात्। द्विचतुष्टयषट्त्र्यर्णैः क्रमेण षडितीरितैः ॥१॥
श्रोत्राक्षिनासायुगले वाचि कण्ठे हृदि क्रमात्। नाभावाधारके पादसन्धिषु त्रिषु च क्रमात् ॥२॥
मन्त्राक्षराणि क्रमशो न्यसेत्सप्तदशापि च। व्यापकं च समस्तेन विदध्याच्च यथाविधि ॥३॥
इन्द्रनीलनिभां भास्वन्मणिमौलिविराजिताम्। पञ्चवक्त्रां त्रिनयनामरुणांशुकधारिणीम् ॥४॥
दशहस्तां लसन्मुक्ताप्रायाभरणभूषिताम्। रत्नस्तबकसम्भिन्नदेहां चारुस्मिताननाम् ॥५॥
पाशं पताकां चर्मापि शार्ङ्गचापं वरं करैः। दधानां वामपार्श्वस्थैः सर्वाभरणभूषितैः ॥६॥
अङ्कुशं च ततः शक्तिं खड्गं बाणं तथाभयम्। दधानां दक्षिणैर्हस्तैरासीनां पद्मविष्टरे ॥७॥
स्वाकारवर्णवेषास्यपाण्यायुधविभूषणैः। शक्तिवृन्दैर्वृतां ध्यायेद्देवीं नित्यार्चनक्रमे ॥८॥
त्रिषट्कोणयुतं पद्ममष्टपत्रं ततो बहिः। द्व्य(अ)ष्टारं भूपुरद्वन्द्वाद्वृत्ते तत्पुरयुग्मकम् ॥९॥

चतुर्द्वारयुतं दिक्षु शाखाभिश्च समन्वितम्। कृत्व तामावृतां शक्तिगणैस्तत्रार्चयेच्छिवाम् ॥१०॥
(इच्छाज्ञानक्रियाशक्तीस्त्रिषु कोणेषु पूजयेत्। अग्रात् प्रदक्षिणेनैव यजेदावृत्तिपञ्चकम् ॥११॥
डाकिन्याद्या यजेत्षट्सु कोणेषु परितः क्रमात्। ब्राह्म्यादीरष्टपत्रेषु तत्कोणेषु बहिस्तथा ॥१२॥
प्रागुक्तास्ता यजेच्छक्तीर्नित्यानित्यादिषूदिताः। बलिद्वयं च कुर्वीत पूजां प्राग्वत्समापयेत् ॥१३॥
सर्वत्र नित्यहोमं तु कुर्यादन्नाज्यतोऽपि वा। तिलतण्डुलकैर्वापि प्रोक्तं द्रव्यानुदीरिते ॥१४॥ इति।

अथ प्रयोगः—तत्र प्राग्वद्योगपीठन्यासान्ते नीलपताकाविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि सम्मोहनाय ऋषये नमः। मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः। हृदये नीलपताकानित्यादेवतायै नमः। गुह्ये ह्रींबीजाय नमः। पादयोः ह्रींशक्तये नमः। नाभौ क्लींकीलकाय नमः इति विन्यस्य ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः इति कृताञ्जलिरुक्त्वा ह्रींफ्रें हृदयाय नमः। स्रूंॐआंक्लीं शिरसे स्वाहा। ऐंब्लूंनित्यमदशिखायै वषट्। द्रकवचाय हुं। वेनेत्रत्रयाय वौषट्। हुंअस्त्राय फट्, इति करषडङ्गन्यासं विधाय, दक्षकर्णे ह्रींनमः। वामे फ्रेंनमः। दक्षनेत्रे स्रूंनमः। वामे ॐनमः। दक्षनसि आंनमः। वामे क्लींनमः। मुखे ऐंनमः। कण्ठे ब्लूंनमः। हृदि निंनमः। नाभौ त्यंनमः। मूलधारे मंनमः। दक्षोरुमूले दंनमः। जानुनि द्रंनमः। गुल्फसन्धौ वेंनमः। वामोरुमूले हुंनमः। जानुनि फ्रेंनमः। गुल्फसन्धौ ह्रींनमः, इति विन्यस्य मूलेन व्यापकं कृत्वा ध्यानादिमानसपूजान्ते प्राग्वत् स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिना चतुर्द्वारोपेतं चतुरस्रद्वयं कृत्वा तदन्तर्वृत्तद्वयं तदन्तरष्टदलकमलं तदन्तः षट्कोणे तदन्तस्त्रिकोणमिति पूजाचक्रं निर्माय, पुरतः संस्थाप्याभ्यर्च्यार्घ्यादिस्थापनाद्यात्मपूजान्ते भुवनेश्वरी-पीठमभ्यर्च्य, तत्र नीलपताकाविद्यया मूर्तिं परिकल्प्यावाहनादिपुष्पोपचारान्ते त्रिकोणाभ्यन्तरे प्राग्वत्षडङ्गानि सम्पूज्य, त्रिकोणषट्कोणयोरन्तराले प्राग्वद्गुरुपंक्तित्रयमभ्यर्च्य, त्रिकोणषट्कोणयोरन्तराले २ अभयाय नमः। २ बाणाय नमः। २ खड्गाय नमः। २ शक्तये नमः। २ अंकुशाय नमः। २ पाशाय नमः। २ पताकायै नमः। २ चर्मणे नमः। २ शार्ङ्गचापाय नमः। २ वराय नमः—इति सम्पूज्य, त्रिकोणस्याग्रकोणादिप्रादक्षिण्येन २ इच्छाशक्तिपा०। २ ज्ञानशक्तिपा०। २ क्रियाशक्तिपा०, इति सम्पूज्य षट्कोणेषु देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन २ हाकिनीपा०, एवं शाकिनी० काकिनी० लाकिनी० राकिणी० डाकिनी० इत्यादि सम्पूज्याष्टदलेषु देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन ब्राह्मीपादु०, एवमष्टमातृकाः सम्पूज्याष्टकोणेषु देव्यग्रमारभ्य प्रादक्षिण्येन (२ सुमुखीपा०) २ सुन्दरीपा०, २ सारापा०, २ सुमनापा०, २ सरस्वतीपा०, २ समयापा०, २ सर्वगापा०, २ सिद्धापा०, इति सम्पूज्य, बहिश्चतुरस्रे देव्यग्रद्वारस्य दक्षिणभागमारभ्य प्रादक्षिण्येन २ विह्वलापा०। २ आकर्षिणीपा०। २ लोलापा०। २ नित्यापा०। २ मदनापा०। २ मालिनीपा०। २ विनोदापा०। २ कौतुकापा०। २ पुण्यापा० २ पुराणापा०, इति सम्पूज्य, बहिश्चतुरस्रस्य चतुर्द्वारपार्श्वेषु देव्यग्रद्वारस्य दक्षिणपार्श्वमारभ्य प्रतिद्वारं द्विद्विक्रमेणेन्द्रादीशानपर्यन्तं लोकपालशक्त्यष्टकं प्राग्वत् सम्पूज्याग्नेयादिकोणचतुष्टये अनन्तब्रह्मनियतिकालशक्तीः सम्पूज्य, वज्रादीन्यायुधानि प्राग्वच्छक्तिरूपाणि सम्पूज्य पुनर्मध्ये नीलपताकानित्यां तद्विद्ययाभ्यर्च्य धूपादि सर्वं प्राग्वत् कल्पयेत्। इति नीलपताकानित्यापूजाविधिः।

नीलपताका अर्चन—तन्त्रराज में सोलह नित्याओं में से बारहवीं नीलपताका नित्या के सर्वसिद्धिप्रद न्यासक्रम, ध्यान और शक्तिपूजन का वर्णन किया गया है। तन्त्रराज के अनुसार नीलपताका की सप्तदशाक्षरी विद्या इस प्रकार है—ह्रीं फ्रें स्रूं ओं आं क्लीं ऐं ब्लूं नित्यमदद्रवे हुं फ्रें ह्रीं। त्रिपुरार्णव के अनुसार इसके ऋषि सम्मोहन, छन्द गायत्री, देवता नीलपताका, ह्रीं बीज, शक्ति ह्रीं और क्लीं कीलक है। श्रीतन्त्रराज के अनुसार इसकी पूजा इस प्रकार होती है—पूर्ववत् योगपीठ न्यास के बाद नीलपताका विद्या से तीन प्राणायाम करके इसका विनियोग करना चाहिये—शिरसि सम्मोहनाय ऋषये नमः। मुख गायत्री छन्दसे नमः। हृदये नीलपताकादेवतायै नमः। गुह्ये ह्रीं बीजाय नमः। पादयोः ह्रीं शक्तये नमः। नाभौ क्लीं कीलकाय नमः। ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः।

इसका षडङ्ग न्यास इस प्रकार किया जाता है—ह्रीं फ्रें हृदयाय नमः। स्रूं ओं आं क्लीं शिरसे स्वाहा। ऐं ब्लूं

नित्यमदशिखायै वषट्। द्र कवचाय हुं। वे नेत्रत्राय वौषट्। हुं अस्त्राय फट्। इसी प्रकार करन्यास भी करे।

तदनन्तर इस प्रकार मन्त्रवर्ण न्यास करे—दक्षकर्णे ह्रीं नमः। वामे फ्रें नमः। दक्षनेत्रे स्रूं नमः। वामे ओं नमः। दक्षनसि आं नमः। वामे क्लीं नमः। मुखे ऐं नमः। कण्ठे ब्लूं नमः। हृदि निं नमः। नाभौ त्यं नमः। मूलाधारे मं नमः। दक्षोरुमूले दं नमः। जानुनि द्रं नमः। गुल्फसन्धौ वें नमः। वामोरुमूले हुं नमः। जानुनि फ्रें नमः। गुल्फसन्धौ ह्रीं नमः। इसके बाद मूल मन्त्र से व्यापक न्यास करके इस प्रकार ध्यान करे—

इन्द्रनीलनिभां भास्वन्मणिमौलिविराजिताम्। पञ्चवक्त्रां त्रिनयनामरुणांशुकधारिणीम्।।
दशहस्तां लसन्मुक्ताप्रायाभरणभूषिताम्। रत्नस्तबकसम्भिन्नदेहां चारुस्मिताननाम्।।
पाशं पताकां चर्मापि शार्ङ्गचापं वरं करैः। दधानां वामपार्श्वस्थैः सर्वाभरणभूषितैः।।
अङ्कुशं च ततः शक्तिं खड्गं बाणं तथाभयम्। दधानां दक्षिणैर्हस्तैरासीनां पद्मविष्टरे।।
स्वाकारवर्णवेषास्यपाण्यायुधविभूषणैः। शक्तिवृन्दैर्वृतां ध्यायेद्देवीं नित्यार्चनक्रमे।।

मानस पूजा करके पूर्ववत् स्वर्णादि पट्ट पर कुङ्कुमादि से चार द्वारों से युक्त दो चतुरस्र बनाये। इसके अन्दर दो वृत्त बनाये। इसके अन्दर अष्टदल कमल बनाये। इसके अन्दर षट्कोण बनाये। इसके अन्दर त्रिकोण बनाये। इस प्रकार पूजाचक्र का निर्माण करके अपने आगे स्थापित करके अर्चन करे। उसे अर्घ्य-स्थापनादि आत्मपूजा करे। भुवनेश्वरी पीठ में अर्चन करके नीलपताका विद्या से मूर्ति कल्पित करके आवाहन से पुष्पोपचार तक पूजा करे।

त्रिकोण में पूर्ववत् षडङ्ग पूजन करे। त्रिकोण षट्कोण के अन्तराल में पूर्ववत् गुरुपंक्तित्रय का पूजन करे। त्रिकोण-षट्कोण के अन्तराल में आयुध-पूजन इस प्रकार करे—ह्रीं श्रीं अभयाय नमः। ह्रीं श्रीं वाणाय नमः। ह्रीं श्रीं खड्गाय नमः। ह्रीं श्रीं शक्तये नमः। ह्रीं श्रीं अङ्कुशाय नमः। ह्रीं श्रीं पाशाय नमः। ह्रीं श्रीं पताकायै नमः। ह्रीं श्रीं चर्मणे नमः। ह्रीं श्रीं शार्ागचापाय नमः। ह्रीं श्रीं वराय नमः।

त्रिकोण के अग्रकोण से प्रादक्षिण्य क्रम से—ह्रीं श्रीं इच्छाशक्तिपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं ज्ञानशक्तिपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं क्रियाशक्तिपादुकां पूजयामि से पूजा करे। षट्कोण में देव्यग्र से प्रादक्षिण्य क्रम से इस प्रकार पूजा करे—ह्रीं श्रीं हाकिनीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं शाकिनीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं काकिनीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं लाकिनीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं राकिणीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं डाकिनीपादुकां पूजयामि। अष्टदल कमल में देव्यग्र से प्रादक्षिण्य क्रम से—ह्रीं श्रीं ब्राह्मी पादुकां पूजयामि इत्यादि कहते हुये अष्ट मातृकाओं की पूजा करे।

अष्टकोण में देव्यग्र से प्रादक्षिण्य क्रम से—ह्रीं श्रीं सुमुखीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं सुन्दरीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं सारापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं सुमनापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं सरस्वतीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं समयापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं सर्वगापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं सिद्धापादुकां पूजयामि कहकर पूजा करे।

चतुरस्र में देव्यग्र द्वार के दक्षिण भाग से प्रारम्भ करके प्रादक्षिण्य क्रम से इनकी पूजा करे—ह्रीं श्रीं विह्वलापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं आकर्षिणीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं लोलापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं नित्यापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं मदना-पादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं मालिनीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं विनोदापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं कौतुकापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं पुण्यापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं पुराणापादुकां पूजयामि। चतुरस्र के चारो द्वारों के पार्श्वों में देव्यग्र द्वार के दक्षिण पार्श्व से प्रतिद्वार दो-दो के क्रम से इन्द्र से ईशान तक आठ लोकपालों की पूजा पूर्ववत् करे। आग्नेयादि चारो कोनों में अनन्त ब्रह्म नियति कालशक्ति की पूजा करे। वज्रादि आयुध शक्तियों की पूजा करे। मध्य में नीलपताका नित्या का पूजन उसकी विद्या से करके धूपादि निवेदन करते हुये पूर्ववत् पूजा का समापन करे।

सप्रयोगः विजयानित्यापूजनविधिः

अथ विजयानित्यार्चाविधिः। श्रीतन्त्रराजे (१८ प०)—

अथ षोडशनित्यासु सम्प्रोक्ता या त्रयोदशी। तद्विधानं शृणु प्राज्ञे विद्या प्रागुदिता तव ।।१।।
तदङ्गान्यक्षरन्यासं ध्यानार्चास्यास्तु शक्तिभिः। इति।

तत्रैव (३.६१)—

रसो नभस्तथा दाहो व्याप्तं क्ष्मा वनपूर्विका। स्वेन युक्ता भवेन्नित्या विजयैकाक्षरा मता ॥१॥

'भमरयउऔं' इति। त्रिपुराणवे—'ऋषिरस्या अहिश्छन्दो गायत्री देवता स्वयम्' इति। स्वयं विजया। तन्त्रराजे (१८.३)—

विद्याया व्यञ्जनैर्दीर्घस्वरयुक्तैश्चतुष्टयम्। शेषाभ्यां च द्वयं कुर्यात्षडङ्गानि कराङ्गयोः ॥१॥
ज्ञानेन्द्रियेषु श्रोत्रादिष्वपि चित्तेषु विन्यसेत्। अक्षराणि क्रमाद्बिन्दुयुतान्यन्यत्तु पूर्ववत् ॥२॥
पञ्चवक्त्रां दशभुजां प्रतिवक्त्रं त्रिलोचनाम्। भास्वन्मुकुटविन्यस्तचन्द्ररेखाविराजिताम् ॥३॥
सर्वाभरणसंयुक्तां पीताम्बरसमुज्ज्वलाम्। उद्यद्भास्वद्बिम्बतुल्यदेहकान्तिं शुचिस्मिताम् ॥४॥
शङ्खं पाशं खेटचापौ कह्लारं वामबाहुभिः। चक्रं तथांकुशं खड्गं सायकं मातुलुङ्गकम् ॥५॥
दधानां दक्षिणैर्हस्तैः प्रयोगे भीमदर्शनाम्। (उपासनेऽतिसौम्यां च सिंहोपरि कृतासनाम्)॥६॥
व्याघ्रारूढाभिरभितः शक्तिभिः परिवारिताम्। समरे पूजनेऽन्येषु प्रयोगेषु सुखासनाम् ॥७॥
शक्तयश्चापि पूजायां सुखासनसमन्विताः। सर्वा देव्याः समाकारमुखपाण्यायुधा अपि ॥८॥
चतुरस्रद्वयं कृत्वा चतुर्द्वारोपशोभितम्। शाखाष्टकसमोपेतं तत्र प्राग्वत्समर्चयेत् ॥९॥
तदन्तर्वृत्तयुग्मान्तरष्टकोणं विधाय तत्। तदन्तश्च तथा पद्मं षोडशच्छदसंयुतम् ॥१०॥
तथैवाष्टच्छदं पद्मं विधायावाह्य तत्र ताम्। ततच्छक्त्यावृतां सम्यगुपचारैस्तथार्चयेत् ॥११॥
अन्नाज्याभ्यां नित्यहोमं कुर्याद्वा तिलतण्डुलैः। बलिद्वयं प्रकुर्वीत पूजां चापि समापयेत् ॥१२॥
ललितारहिताः पञ्चदशनित्यास्तिथीश्वराः। चन्द्रखण्डलसन्मौलियुताः सा तन्मयी सदा ॥१३॥ इति।

अत्र कामेश्वर्यादिपञ्चदशनित्यानां वृद्धिक्षयोपेतचन्द्रकलापञ्चदशकरूपपञ्चदशतिथिमयत्वाच्च तासां चन्द्रकलाधारणत्वम्, ललितायास्तु तासां कलानां कारणभूताक्षयेन्दुकलारूपत्वात् तस्यास्तद्धारणं नास्ति। तथा—

मायासप्ताक्षरीमध्यगतैर्नामभिरर्चयेत्। तदावरणगाः शक्तीस्तत्समाकारहेतिकाः ॥१४॥
अग्रात्प्रदक्षिणेनैव ताः सर्वास्तेषु पूजयेत्। तासां क्रमेण नामानि शृणु वक्ष्ये यथाविधि ॥१५॥
नित्यानित्यावदुदितमर्चनं चतुरस्रके। ब्राह्म्यादिलोकपालाश्च षोडशद्वारसंस्थिताः ॥१६॥
(अन्तःस्थिताष्टकोणेषु पूजयेदुक्तविग्रहाः। जयां च विजयां दुर्गां भद्रां भद्रकरीमपि ॥१७॥
क्षेमां क्षेमङ्करीं नित्यामष्टकोणेषु भक्तितः)। तदन्तः षोडशदलेष्वर्चयेत् षोडशाभितः ॥१८॥
शक्तीस्ता गन्धपुष्पादियुतो भक्तिसमन्वितः। विदारिकां विश्वमयीं विश्वां विश्वविभञ्जिकाम् ॥१९॥
वीरां विक्षोभिणीं विद्यां विनोदाञ्चितविग्रहाम्। वीतशोकां विषग्रीवां विपुलां विजयप्रदाम् ॥२०॥
विभवां विविधां विप्रां प्रोक्ताकारसमन्विताः। तदन्तरष्टपत्रेषु शक्तीरष्टाभितो यजेत् ॥२१॥
प्रोक्तक्रमेण गन्धाद्यैर्भक्तिनिघ्नाशयो वशी। मनोहरां मङ्गलां च मदोत्सिक्तां मनस्विनीम् ॥२२॥
मानिनीं मधुरां मायां मोहिनीमुक्तविग्रहाः। एवं पूजाजपध्यानहोमोपासनतो वशी ॥२३॥
भजते नित्यशो देवीं योऽसौ स्यात्सर्वतः सुखी। इति।

अथ प्रयोगः—तत्र प्राग्वद्योगपीठन्यासान्ते विजयाविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा शिरसि अहिऋषये नमः। मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः। हृदि विजयानित्यादेवतायै नमः, इति विन्यस्य भां हृदयाय नमः। मीं शिरसे स्वाहा। रूं शिखायै वषट्। यैं कवचाय हुं। उं नेत्रत्रयाय वौषट्। औं अस्त्राय फट्, इति करषडङ्गन्यासं विधाय, श्रोत्रयोः भंनमः। सर्वाङ्गे मंनमः। नेत्रयोः रंनमः। जिह्वायां यंनमः। नासायां उं नमः। चित्ते औंनमः, इति विन्यस्य प्राग्वद्विजयाविद्यया व्यापकं विधाय, ध्यानादिमानसपूजान्तं स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिना चतुर्द्वारयुतं चतुरस्रद्वयं विधाय, तदन्तर्वृत्तयुग्मं

तदन्तरष्टकोणं तदन्तः षोडशदलं पद्मं तदन्तरष्टदलपद्ममिति पूजाचक्रं निर्माय, पुरतः संस्थाप्याभ्यर्च्यार्घ्यादि-स्थापनाद्यात्मपूजान्ते प्राग्वद्भुवनेश्वरीपीठमभ्यर्च्य, तस्मिन् विजयाविद्यया मूर्तिं परिकल्प्यावाहनादिपुष्पोपचारान्ते प्राग्वत् षडङ्गानि गुरुपंक्तित्रयं च सम्पूज्य, चतुरस्रस्य चतुर्द्वारपार्श्वेषु देव्यग्रद्वारस्य दक्षिणपार्श्वमारभ्य तद्वामपार्श्वान्तं प्रतिद्वारं द्विद्विक्रमेणेन्द्रादीशानान्तं लोकपालशक्त्यष्टकं प्राग्वत् सम्पूज्य, वायव्यादिनिर्ऋत्यन्तकोणचतुष्टये अनन्तब्रह्मनियतिकालशक्तीः सम्पूज्याष्टकोणेषु देव्यग्रकोणमारभ्य प्रादक्षिण्येन २ जयापा०, २ विजयापा०, २ दुर्गापा०, २ भद्रापा०, २ भद्रकरीपा०, २ क्षेमापा०, २ क्षेमङ्करीपा०, २ नित्यापा०, इति सम्पूज्य, षोडशदलेषु २ विदारिकापा०, २ विश्वमयीपा०, २ विश्वापा०, २ विश्वभञ्जिकापा०, २ वीरापा०, २ विक्षोभिणीपा०, २ विद्यापा०, २ विनोदापा०, २ अञ्जितविग्रहापा०, २ वीतशोकापा०, २ विषग्रीवापा०, २ विपुलापा०, २ विजयप्रदापा०, २ विभवापा०, २ विविधापा०, २ विप्रापा० इति सम्पूज्य, अष्टदलेषु २ मनोहरापा०, २ मङ्गलापा०, २ मदोत्सिक्तापा०, २ मनस्विनीपा०, २ मानिनीपा०, २ मधुरापा०, २ मायापा०, २ मोहिनीपा०, इति सम्पूज्याष्टदलकमलकर्णिकायां २ मातुलुङ्गाय नमः। २ सायकेभ्यो नमः। २ खड्गाय नमः। २ अंकुशाय नमः। २ चक्राय नमः। २ शङ्खाय नमः। २ पाशाय नमः। २ खेटाय नमः। २ चापाय नमः। २ कह्लाराय नमः, इति सम्पूज्य, पुनर्मध्ये विजयानित्यां तद्विद्यया सम्पूज्य धूपादि सर्वं प्राग्वत् समापयेत्। इति विजयानित्यापूजाविधिः।

विजया नित्या अर्चन—तन्त्रराज में सोलह नित्याओं में त्रयोदशी विजया नित्या का विधान, अङ्ग-अक्षरन्यास, ध्यान एवं उनकी शक्तियों का अर्चन विधान वर्णित है। विजया नित्या विद्या इस प्रकार है—भमरयउऔं। त्रिपुरार्णव के अनुसार इसके ऋषि अहि, छन्द गायत्री एवं देवता विजया हैं। तन्त्रराज के अनुसार इसका पूजाप्रयोग पूर्ववत् योगपीठ न्यास तक करने के बाद विजया विद्या से तीन प्राणायाम करके इस प्रकार विनियोग करे—शिरसि अहिऋषये नमः। मुखे गायत्रीछन्दसे नमः। हृदि विजयानित्यादेवतायै नमः। ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः।

विनियोग के पश्चात् इस प्रकार षडङ्ग न्यास करे—भां हृदयाय नमः। मीं शिरसे स्वाहा। रूं शिखायै वषट्। यैं कवचाय हुं। उं नेत्रत्रयाय वौषट्। औं अस्त्राय फट्। इसी प्रकार करन्यास भी करे।

मन्त्रवर्ण न्यास—श्रोत्रयोः भं नमः। सर्वाङ्गे मं नमः। नेत्रयोः रं नमः। जिह्वायां यं नमः। नासायां उं नमः। चित्ते औं नमः। तदनन्तर पूर्ववत् विजया विद्या से व्यापक न्यास करके निम्नवत् ध्यान करे—

पञ्चवक्त्रां दशभुजां प्रतिवक्त्रं त्रिलोचनाम्। भास्वन्मुकुटविन्यस्तचन्द्ररेखाविराजिताम्।।
सर्वाभरणसंयुक्तां पीताम्बरसमुज्ज्वलाम्। उद्यद्भास्वद्बिम्बतुल्यदेहकान्तिं शुचिस्मिताम्।।
शङ्खं पाशं खेटचापौ कह्लारं वामबाहुभिः। चक्रं तथांकुशं खड्गं सायकं मातुलुङ्गकम्।।
दधानां दक्षिणैर्हस्तैः प्रयोगे भीमदर्शनाम्। (उपासनेऽतिसौम्यां च सिंहोपरि कृतासनाम्)।।
व्याघ्रारूढाभिरभितः शक्तिभिः परिवारिताम्। समरे पूजनेऽन्येषु प्रयोगेषु सुखासनाम्।।

ध्यान के पश्चात् मानस पूजा करके स्वर्णादि पट्ट पर कुङ्कुमादि से चार द्वारों से युक्त दो चतुरस्र बनाकर उसमें दो वृत्त बनाये। उसमें षोडशदल कमल बनाकर उसके अन्दर अष्टदल कमल बनाकर पूजाचक्र बनाये। उसे अपने आगे स्थापित करके अर्घ्यादि का स्थापन कर आत्म-पूजा करे। भुवनेश्वरी पीठ का अर्चन पूर्ववत् करे। उसमें विजया विद्या से मूर्ति कल्पित करे। आवाहनादि से लेकर पुष्पोपचार तक पूजन करे। पूर्ववत् षडङ्ग न्यास करके गुरुपंक्तित्रय का पूजन करे।

चतुरस्र के चारो द्वारों के पार्श्वों में देव्यग्र द्वार के दक्षिण पार्श्व से आरम्भ करके वाम पार्श्व तक प्रतिद्वार दो-दो के क्रम से इन्द्र से ईशान तक आठ लोकपाल शक्तियों का पूजन करे। वायव्य में नैर्ऋत्य तक के चार कोनों में अनन्त ब्रह्मा नियति काल शक्ति का पूजन करे।

अष्टकोण में देव्यग्र से आरम्भ करके इनका पूजन प्रादक्षिण्य क्रम से करे—ह्रीं श्रीं जयापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं

विजयापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं दुर्गापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं भद्रापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं भद्रकरीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं क्षेमापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं क्षेमंकरीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं नित्यापादुकां पूजयामि।

षोडश दल कमल में इस प्रकार पूजा करे—ह्रीं श्रीं विदारिकापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं विश्वमयीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं विश्वापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं विश्वभञ्जिकापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं वीरापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं विक्षोभिणीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं विद्यापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं विनोदापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं अञ्चितविग्रहापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं वीतशोकापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं विषग्रीवापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं विपुलापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं विजयप्रदापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं विभवापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं विविधापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं विप्रापादुकां पूजयामि।

अष्टदलों में—ह्रीं श्रीं मनोहरापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं मङ्गलापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं मदोत्सिक्तापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं मनस्विनीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं मानिनीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं मधुरापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं मायापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं मोहिनीपादुकां पूजयामि। अष्टदल कमलकर्णिका में इनकी पूजा करे—ह्रीं श्रीं मातुलुङ्गाय नमः। ह्रीं श्रीं सायकेभ्यो नमः। ह्रीं श्रीं खड्गाय नमः। ह्रीं श्रीं अङ्कुशाय नमः। ह्रीं श्रीं चक्राय नमः। ह्रीं श्रीं शङ्खाय नमः। ह्रीं श्रीं पाशाय नमः। ह्रीं श्रीं खेटाय नमः। ह्रीं श्रीं चापाय नमः। ह्रीं श्रीं कह्लाराय नमः। पुनः मध्य में विजया नित्या का पूजन उसके मूल मन्त्र से करके पूर्ववत् धूपादि समस्त उपचार समर्पित करते हुये पूजा का समापन करे।

सप्रयोगः सर्वमङ्गलासपर्याविधिः

अथ सर्वमङ्गलासपर्याविधिः। तत्र श्रीतन्त्रराजे (१९ प०)—

अथ षोडशनित्यासु या प्रोक्ता तु चतुर्दशी। एकाक्षरा तु सा प्रोक्ता विद्या सा सर्वमङ्गला ॥१॥
न्यासक्रमं ध्यानविधिं शक्तीरावरणस्थिताः। पूजाक्रमं साधनं च विनियोगादिकान् क्रमात् ॥२॥ इति।

तत्रैव (३.६३)—

हृदम्बुवनयुक्तं स्वं नित्या स्यात् सर्वमङ्गला। एकाक्षर्यानया सिद्धो जायते खेचरः क्षणात् ॥१॥

'स्वौं' इति। त्रिपुरार्णवे—'ऋषिच्छन्दो महेशानि गायत्री छन्द उच्यते। देवतेय'मिति। इयं सर्वमङ्गला। तन्त्रराजे (१९.३)—

मूलविद्याक्षरैर्दीर्घस्वरभिन्नः षडङ्गकम्। तानि तत्स्वरभिन्नानि तानि षट्सुमनोवधि ॥१॥
सुवर्णवर्णां रुचिरां मुक्तामाणिक्यभूषणाम्। माणिक्यमुकुटां नेत्रद्वयप्रेङ्खद्दयापराम् ॥२॥
द्विभुजां स्वासनां पद्मे त्वष्टषोडशतद्द्वयैः। पत्रैरुपेते सचतुर्द्वारभूसद्मयुग्मके ॥३॥
मातुलुङ्गफलं दक्षे दधानां करपङ्कजे। वामेन निजभक्तानां प्रयच्छन्तीं धनादिकम् ॥४॥
स्वसमानाभिरभितः शक्तिभिः परिवारिताम्। षट्सप्ततिभिरन्याभिरक्षरोत्थाभिरन्विताम् ॥५॥
प्रयोगेष्वन्यदा नित्यसपर्यासूक्तशक्तिकाम्। ताः शक्तीः शृणु देवेशि या नित्यावरणस्थिताः ॥६॥
भद्रां भवानीं भव्याञ्च विशालाक्षीं शुचिस्मिताम्। कुङ्कुमां कमलां कल्पां पूजयेदष्टपत्रके ॥७॥
कलां च पूरणीं नित्याममृतां जीवितां दयाम्। अशोकाममलां पूर्णां पुण्यां भाग्यामथोद्यताम् ॥८॥
विवेकां विभवां विश्वां विनतां चाष्टयुग्मके। पूजयेदभितः शक्तीः प्रादक्षिण्यक्रमेण वै ॥९॥
कामिनीं खेचरीं चार्यां पुराणां परमेश्वरीम्। गौरीं शिवाममेयां च विमलां विजयां पराम् ॥१०॥
पवित्रां पद्मिनीं विद्यां विश्वेशीं शिववल्लभाम्। अशेषरूपामानन्दामम्बुजाक्षीमनिन्दिताम् ॥११॥
वरदां वाक्प्रदां वाणीं विविधां वेदविग्रहाम्। वन्द्यां वागीश्वरीं सत्यां संयतां च सरस्वतीम् ॥१२॥
निर्मलां नादरूपां च पूजयेत् षोडशद्वये। प्राग्वद्गन्धादिभिः सर्वाः क्रमादन्वर्थसंज्ञिताः ॥१३॥
ब्राह्मयाद्या लोकपालाख्याः शक्तीर्द्वारिषु पूजयेत्। पश्चिमादिचतुर्दिक्षु चतस्रः प्रोक्तविग्रहाः ॥१४॥

अनन्तब्रह्मनियतिकालरूपा विदिग्गताः। बलिद्वयञ्च होमञ्च कुर्यात्प्राग्वत्समापनम् ॥१५॥
जपं तु नित्यशः कुर्यादग्रे तस्याः सहस्रकम्। इति।

अथ प्रयोगः—तत्र प्राग्वद्योगपीठन्यासान्ते सर्वमङ्गलाविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि चन्द्राय ऋषये नमः। मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः। हृदि सर्वमङ्गलानित्यादेवतायै नमः। इति विन्यस्य मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, स्वां हृदयाय नमः। स्वीं शिरसे स्वाहा। स्वूं शिखायै वषट्। स्वैं कवचाय हुं। स्वौं नेत्रत्रयाय वौषट्। स्वः अस्त्राय फट्, इति करषडङ्गन्यासं कृत्वा, श्रोत्रयोः स्वांनमः। सर्वाङ्गे स्वींनमः। नेत्रयोः स्वूंनमः। जिह्वायां स्वैंनमः। नासायां स्वौंनमः। मनसि स्वः नमः, इति विन्यस्य समस्तविद्यया व्यापकं विधाय, ध्यानादिमानसपूजान्ते प्राग्वत् स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिना चतुर्द्वारोपेतं चतुरस्रद्वयं कृत्वा तदन्तर्द्वात्रिंशद्दलं तदन्तः षोडशदलं तदन्तरष्टदलमिति पूजाचक्रं निर्माय, प्राग्वत् पुरतः संस्थाप्याभ्यर्च्यार्घ्याद्यात्मपूजान्ते भुवनेश्वरीपीठे सर्वमङ्गलाविद्यया मूर्तिं परिकल्प्या-वाहनादिपुष्पोपचारान्ते प्राग्वत् षडङ्गानि गुरुपंक्तित्रयं च सम्पूज्य, कर्णिकायां देव्या दक्षिणवामयोः बीजपूराय नमः। खड्गाय नमः, इति सम्पूज्याष्टदलेषु २ भद्रापा०, २ भवानीपा०, २ भव्यापा०, २ विशालाक्षीपा०, २ शुचि-स्मितापा०, २ कुङ्कुमापा०, २ कमलापा०, २ कल्यापा०, इति सम्पूज्य, षोडशपत्रेषु २ कलापा० २ पूरणीपा०, २ नित्यापा०, २ अमृतापा०, २ जीवितापा०, २ दयापा०, २ अशोकापा०, २ अमलापा०, २ पूर्णापा०, २ पुण्यापा०, २ भाग्यापा०, २ उद्यतापा०, २ विवेकापा०, २ विभवापा०, २ विश्वापा०, २ विनतापा०, इति सम्पूज्य, द्वात्रिंशद्दलेषु २ कामिनीपा०, २ खेचरीपा०, २ आर्यापा०, २ पुराणापा०, २ परमेश्वरीपा०, २ गौरीपा०, २ शिवापा०, २ अमेयापा०, २ विमलापा०, २ विजयापा०, २ परापा०, २ पवित्रापा०, २ पद्मिनीपा०, २ विद्यापा०, २ विश्वेशीपा०, २ शिववल्लभापा०, २ अशेषरूपापा०, २ आनन्दापा०, २ अम्बुजाक्षीपा०, २ अनिन्दितापा०, २ वरदापा०, २ वाक्प्रदापा०, २ वाणीपा०, २ विविधापा०, २ वेदविग्रहापा०, २ वन्द्यापा०, २ वागीश्वरीपा०, २ सत्यापा०, २ संयतापा०, २ सरस्वतीपा०, २ निर्मलापा०, २ नादरूपापा०, इति सम्पूज्य, चतुरस्रस्य चतुर्द्वारपार्श्वेषु देव्यग्रद्वारस्य दक्षिणपार्श्वमारभ्य तत्तद्द्वारपार्श्वान्तं प्रतिद्वारं द्विद्विक्रमेण ब्राह्म्याद्यष्टशक्तीः प्रादक्षिण्येन सम्पूज्य, पूर्वद्वारमारभ्य पूर्वादिक्रमेणेन्द्रादीशानान्तं लोकपालशक्त्यष्टकं प्राग्वत् सम्पूज्य, वायव्यादिनिर्ऋत्यन्तं कोणचतुष्टये अनन्तब्रह्मनियतिकालशक्तीः सम्पूज्य, पुनर्मध्ये सर्वमङ्गलाविद्यया देवीं सम्पूज्य प्राग्वत् समापयेत्। इति सर्वमङ्गलानित्यापूजाविधिः।

सर्वमङ्गला अर्चन—तन्त्रराज में षोडश नित्याओं में चतुर्दशी नित्या सर्वमङ्गला के न्यासक्रम, ध्यान एवं आवरण शक्तियों का पूजाक्रम, साधन, विनियोगादि का क्रमशः निरूपण किया गया है। सर्वमङ्गला की एकाक्षरी विद्या 'स्वौं' सिद्ध होने पर क्षण मात्र में ही खेचरत्व प्रदान करने वाली है। त्रिपुरार्णव के अनुसार इसके ऋषि चन्द्र, छन्द गायत्री एवं देवता सर्वमङ्गला हैं। तन्त्रराज में इसका प्रयोग इस प्रकार बताया गया है—पूर्ववत् योगपीठ न्यास तक की क्रियाओं को करने के बाद सर्वमङ्गला विद्या से तीन प्राणायाम करके इस प्रकार विनियोग शिरसि चन्द्राय ऋषये नमः। मुखे गायत्रीछन्दसे नमः। हृदि सर्वमङ्गलानित्यादेवतायै नमः। मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः।

तदनन्तर षडङ्ग न्यास करे—स्वां हृदयाय नमः। स्वीं शिरसे स्वाहा। स्वूं शिखायै वषट्। स्वैं कवचाय हुं। स्वौं नेत्रत्रयाय वौषट्। स्वः अस्त्राय फट्। इसी प्रकार करन्यास भी करे।

मन्त्रवर्ण न्यास—श्रोत्रयोः स्वां नमः। सर्वाङ्गे स्वीं नमः। नेत्रयोः स्वूं नमः। जिह्वायां स्वैं नमः। नासायां स्वौं नमः। मनसि स्वः नमः। तदनन्तर समस्त विद्या से व्यापक न्यास करके निम्नवत् ध्यान करे—

सुवर्णवर्णां रुचिरां मुक्तामाणिक्यभूषणाम्। माणिक्यमुकुटां नेत्रद्वयप्रेङ्खद्दयापराम्।।
द्विभुजां स्वासना पद्मे त्वष्टषोडशतद्द्वयैः। पत्रैरुपेते सचतुर्द्वारभूसद्मयुग्मके।।
मातुलुङ्गफलं दक्षे दधानां करपङ्कजे। वामेन निजभक्तानां प्रयच्छन्तीं धनादिकम्।।

तत्पश्चात् मानस पूजा सम्पन्नकर पूर्ववत् स्वर्णादि पट्ट पर कुङ्कुमादि से चार द्वारों से युक्त दो चतुरस्र बनाये। उसके अन्दर बत्तीस दल कमल, उसके अन्दर षोडश दल, उसके अन्दर अष्टदल बनाकर पूजाचक्र का निर्माण करके उसे अपने आगे स्थापन-पूजन करके आत्मा-पूजा करे। अर्घ्यादि स्थापन करके सर्वमङ्गला विद्या से मूर्ति कल्पित करके भुवनेश्वरी पीठ में आवाहनादि पुष्पोपचार तक की पूजा सम्पन्न कर पूर्ववत् षडङ्ग पूजन के बाद गुरुपंक्तित्रय का पूजन करे। कर्णिका में देवी के दाँयें-बाँयें बीजपुराय नमः एवं खड्गाय नमः से पूजा करे।

अष्टदल में देवी के सामने वाले दल से प्रारम्भ करके इनकी पूजा करे—ह्रीं श्रीं भद्रापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं भवानीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं भव्यापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं विशालाक्षीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं शुचिस्मितापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं कुङ्कुमापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं कमलापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं कल्पापादुकां पूजयामि।

षोडश दल में—ह्रीं श्रीं कलापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं पूरणीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं नित्यापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं अमृतापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं जीवितापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं दयापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं अशोकापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं अमलापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं पूर्णापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं पुण्यापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं भाग्यापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं उद्यतापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं विवेकापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं विभवापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं विश्वापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं विनतापादुकां पूजयामि।

बत्तीस दल में—ह्रीं श्रीं कामिनीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं खेचरीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं आर्यापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं पुराणापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं परमेश्वरीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं गौरीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं शिवापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं अमेयापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं विमलापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं विजयापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं परापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं पवित्रापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं पद्मिनीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं विद्यापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं विश्वेशीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं शिववल्लभापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं अशेषरूपापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं आनन्दापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं अम्बुजाक्षीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं अनिन्दितापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं वरदापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं वाक्प्रदापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं वाणीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं विविधापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं वेदविग्रहापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं वन्द्यापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं वागीश्वरीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं सत्यापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं संयतापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं सरस्वतीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं निर्मलापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं नादरूपापादुकां पूजयामि।

चतुरस्र के चारो द्वारों के पार्श्वों में देव्यग्र द्वार के दक्षिणा पार्श्व से प्रारम्भ करके उस द्वार के पार्श्व तक प्रतिद्वार दो-दो के क्रम से ब्राह्मी आदि आठ शक्तियों का प्रादक्षिण्य क्रम से पूजन करे। पूर्व द्वार से आरम्भ करके पूर्वादि क्रम से इन्द्र से ईशान तक आठ लोकपालशक्तियों का पूजन पूर्ववत् करे। वायव्य से नैर्ऋत्य तक के चारो कोनों में अनन्त ब्रह्मा नियति काल शक्ति का पूजन करे। पुनः मध्य में सर्वमङ्गला का पूजन उनकी विद्या से धूप-दीपादि से करके पूर्ववत पूजा का समापन करे।

सप्रयोगः ज्वालामालिनीनित्यापूजाविधिः

अथ ज्वालामालिनीनित्यापूजाविधिः। श्रीतन्त्रराजे (२० प०)—

अथ षोडशनित्यासु पञ्चदश्युदिता तु या। तद्विधानं शृणु प्राज्ञे ज्वालामालिन्युदाहृता ॥१॥
न्यासं ध्यानं तथा शक्तीः पूजामपि च साधनम्। इति।

तत्रैव (३.६४)—

भूः शून्ये नभसा भूश्च रसश्चाथ स्थिराम्बु च। रयोऽग्निना युतो ज्याम्बु मरुद्युक्ता रसा मरुत् ॥१॥
नभश्च मरुता युक्तं रसाशून्येऽग्निसंयुते। गोत्रा चरणे सहिता अम्बु पूर्वाक्षरं तथा ॥२॥
अम्ब्वग्नी हृत्सदाहाम्बु रसक्ष्मारयहृत्स्वयुक्। हंसश्च मरुता दाहः प्राणश्च मरुता युतः ॥३॥
दाहः साग्निः प्राणचरौ ज्या मरुत्सहिता रयः। चरेणाम्बु च गोत्रा हृत्साग्नि ज्याम्बुरसा स्वयुक् ॥४॥
रयः साग्नि ज्याम्बु रसा पुनरेतौ जवी ततः। दाहेनानेन ते द्विः स्याद्धंसो दाहमरुत्स्वयुक् ॥५॥

हंसश्च दाहवह्निस्वैर्दाहक्ष्मास्वयुतश्च सः। सप्त दाहास्ततोऽस्याः स्युरष्टमाद्यास्तु पञ्च वै ॥६॥
उपान्त्याधःस्थितं नीलपताकाया अनन्तरम्। त्वरितान्त्यं च भेरुण्डा अष्टमं नवमं तथा ॥७॥
ज्वालामाला तु नित्यासौ त्रिषष्ट्यर्णा समीरिता। इति।

'ॐ नमो भगवति ज्वालामालिनि देवदेवि सर्वभूतसंहारकारिके जातवेदसि ज्वलन्ति ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल ह्रांह्रींह्रूं रररररर ज्वालामालिनि हुंफट् स्वाहा' इति। त्रिपुरार्णवे—

ऋषिस्तु कश्यपश्छन्दो गायत्रं देवता त्वियम्। रेफास्त्रे बीजशक्ती तु कीलकं कवचं प्रिये ॥१॥ इति।

इयं ज्वालामालिनी। तन्त्रराजे (२०.३)—

एकद्वयचतुष्पञ्चचतुष्टयदशाक्षरैः। कुर्यादङ्गानि मूलार्णैरादितः षट् कराङ्गयोः ॥१॥
ज्वलज्ज्वलनसङ्काशां माणिक्यमुकुटोज्ज्वलाम्। षड्वक्त्रां द्वादशभुजां सर्वाभरणभूषिताम् ॥२॥
पाशांकुशौ खेटखड्गौ चापबाणौ गदाधरौ। शूलवह्नी वराभीती दधानां करपङ्कजैः ॥३॥
स्वसमानाभिरभितः शक्तिभिः परिवारिता। चारुस्मितलसद्वक्त्रसरोजां त्रीक्षणान्विताम् ॥४॥
ध्यात्वैवमुपचारैस्तैरर्चयेत्तां तु नित्यशः। चतुरस्रद्वयं कृत्वा चतुर्द्वारसमन्वितम् ॥५॥
सशाखमष्टपत्राब्जमन्तरष्टास्रके ततः। षट्कोणं मध्यतस्त्र्यस्रं विधायात्र शिवां यजेत् ॥६॥
इच्छाज्ञानक्रियाशक्तीरर्चयेत्त्यस्रगाः क्रमात्। डाकिन्याद्याश्च षट्कोणे त्वष्टास्रे घस्मरादिकाः ॥७॥
घस्मरा विश्वकवला लोलाक्षी लोलजिह्विका। सर्वभक्षा सहस्राक्षी निःसङ्गा संहृतिप्रिया ॥८॥
बहिरष्टच्छदेऽप्येताः पूजयेच्च प्रदक्षिणम्। अचिन्त्यामप्रमेयां च पूर्णरूपां दुरासदाम् ॥९॥
सर्वा संसिद्धिरूपां च पावनामेकरूपिणीम्। बहिर्द्वारेषु कोणेषु पूजयेत् प्रागुदीरिताः ॥१०॥
प्राग्वत्कृतार्चश्चक्रे तामुक्ते प्रोक्तक्रमाद्यजेत्। बलिहोमावसानान्तमिति सम्यक् समीरितम् ॥११॥ इति।

अथ प्रयोगः—तत्र प्राग्वद्योगपीठन्यासान्ते ज्वालामालिनीविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि कश्यपाय ऋषये नमः। मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः। हृदि ज्वालामालिनीनित्यादेवतायै नमः। गुह्ये रं बीजाय नमः। पादयोः फट्शक्तये नमः। नाभौ हुं कीलकाय नमः, इति विन्यस्य ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, ॐ हृदयाय नमः। नमः शिरसे स्वाहा। भगवति शिखायै वषट्। ज्वालामालिनि कवचाय हुं। देवदेवि नेत्रत्रयाय वौषट्। सर्वभूतसंहारकारिके अस्त्रायफट्, इति करषङ्गन्यासं कृत्वा मूलेन व्यापकं विन्यस्य ध्यात्वा, मानसपूजान्ते स्वपुरतश्चन्दनादिना पूजायन्त्रं विलिख्य, पुरतः संस्थाप्याभ्यर्च्यार्घ्यादिस्थापनाद्यात्मपूजान्ते भुवनेश्वरीपीठमभ्यर्च्य, मूलेन मूर्तिं परिकल्प्यावाहनादिपुष्पोपचारान्ते प्राग्वत् षडङ्गानि गुरुपंक्तित्रयं च सम्पूज्य, त्रिकोणषट्कोणयोरन्तराले २ अभीत्यै नमः। २ वह्नये नमः। २ शङ्खाय नमः। बाणेभ्यो नमः। २ खड्गाय नमः। अंकुशाय नमः। २ पाशाय नमः। २ खेटाय नमः। २ चापाय नमः। २ गदायै नमः। २ शूलाय नमः। २ वराय नमः, इति सम्पूज्य, त्रिकोणे २ इच्छाशक्तिपा०, २ ज्ञानशक्तिपा०, २ क्रियाशक्तिपा०, इति सम्पूज्य, षट्कोणेषु देव्या वामाग्रकोणे २ डाकिनीपा०। दक्षिणाग्रकोणे २ राकिणीपा०। पृष्ठकोणे २ लाकिनीपा०। पृष्ठवामकोणे २ काकिनीपा०। पृष्ठदक्षे २ शाकिनीपा०। अग्रकोणे २ हाकिनीपा० इति सम्पूज्य, अष्टकोणेषु २ घस्मरापा०। २ विश्वकवलापा०। २ लोलाक्षीपा०। २ लोलजिह्विकापा०। २ सर्वभक्षापा०। २ सहस्राक्षीपा०। निःसङ्गापा०। २ संहृतिप्रियापा० इति सम्पूज्य, अष्टदलेषु—२ अचिन्त्यापा०, २ अप्रमेयापा०, २ पूर्णरूपापा०, २ दुरासदापा०, २ सर्वापा०, २ संसिद्धिरूपापा०, २ पावनापा०, २ एकरूपिणीपा०, इति सम्पूज्य, चतुरस्रस्य चतुर्द्वारपार्श्वेषु देव्यग्रद्वारस्य दक्षिणपार्श्वमारभ्य तद्द्वारपार्श्वान्तं प्रतिद्वारं द्विद्विक्रमेण ब्राह्म्याद्यष्टशक्तीः सम्पूज्य, पुनर्ज्वालामालिनीविद्यया मध्ये तां सम्पूज्य धूपादिकं सर्वं प्राग्वत् कृत्वा समापयेत्। इति ज्वालामालिनीनित्यायजनविधिः।

ज्वालामालिनी नित्या यजन—तन्त्रराज में नित्याओं में पन्द्रहवीं ज्वालामालिनी नित्या का न्यास, ध्यान, शक्ति-पूजा एवं साधन का विधान वर्णित किया गया है। उसके अनुसार ज्वालामालिनी का तिरसठ अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ नमो भगवति ज्वालामालिनि देवदेवि सर्वभूतसंहारकारिके जातवेदसि ज्वलन्ति ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल ह्रां ह्रीं हूं र र र र र र र ज्वालामालिनि हूं फट् स्वाहा। त्रिपुरार्णव के अनुसार इसके ऋषि कश्यप, छन्द गायत्री, देवता ज्वाला मालिनी, रं बीज, फट् शक्ति एवं हूं कीलक हैं। तन्त्रराज के अनुसार इसका पूजन-विधान इस प्रकार है—पूर्ववत् पीठन्यास के बाद ज्वालामालिनी विद्या से तीन प्राणायाम करके निम्नवत् विनियोग करे—शिरसि कश्यपाय ऋषये नमः। मुखे गायत्रीछन्दसे नमः। हृदि ज्वालामालिनीनित्यादेवतायै नमः। गुह्ये रं बीजाय नमः। पादयोः फट् शक्तये नमः। नाभौ हुं कीलकाय नमः। ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः।

तदनन्तर षडङ्ग न्यास करे—ॐ हृदयाय नमः। नमः शिरसे स्वाहा। भगवति शिखायै वषट्। ज्वालामालिनि कवचाय हुं। देवदेवि नेत्रत्रयाय वौषट्। सर्वभूत- संहारकारिके अस्त्राय फट्। इसी प्रकार करन्यास सम्पन्न करके मूल से व्यापक न्यास करके निम्नवत् ध्यान करे—

ज्वलज्ज्वलनसङ्काशां माणिक्यमुकुटोज्ज्वलाम्। षड्वक्त्रां द्वादशभुजां सर्वाभरणभूषिताम्।।
पाशांकुशौ खेटखड्गौ चापबाणौ गदाधरौ। शूलवह्नी वराभीती दधानां करपङ्कजैः।।
स्वसमानाभिरभितः शक्तिभिः परिवारिता। चारुस्मितलसद्वक्त्रसरोजां त्रीक्षणान्विताम्।।
ध्यात्वैवमुपचारैस्तैरर्चयेत्तां तु नित्यशः। चतुरस्रद्वयं कृत्वा चतुर्द्वारसमन्विताम्।।
सशाखमष्टपत्राब्जमन्तरष्टास्रके ततः।

ध्यान के पश्चात् मानस पूजा करे। चन्दनादि से पूजायन्त्र लिखकर अपने आगे स्थापित करके अर्घ्य-स्थापनादि से आत्म-पूजा तक करके भुवनेश्वरी पीठ में अर्चन करे। मूल से मूर्ति कल्पित करके आवाहन से पुष्पोपचार तक पूजन करे। पूर्ववत् षडङ्ग पूजन और गुरुपंक्तित्रय पूजन करे। त्रिकोण षट्कोण के अन्तराल में इनकी पूजा करे—ह्रीं श्रीं अभीत्यै नमः। ह्रीं श्रीं वह्नये नमः। ह्रीं श्रीं शङ्खाय नमः। ह्रीं श्रीं बाणेभ्यः नमः। ह्रीं श्रीं खड्गाय नमः। ह्रीं श्रीं अङ्कुशाय नमः। ह्रीं श्रीं पाशाय नमः। ह्रीं श्रीं खेटाय नमः। ह्रीं श्रीं चापाय नमः। ह्रीं श्रीं गदायै नमः। ह्रीं श्रीं शूलाय नमः। ह्रीं श्रीं वराय नमः।त्रिकोण में—ह्रीं श्रीं इच्छाशक्तिपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं ज्ञानशक्तिपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं क्रियाशक्तिपादुकां पूजयामि से पूजन करे।

षट्कोण में देवी के वामाग्र कोण में—ह्रीं श्रीं डाकिनीपादुकां पूजयामि। दक्षिणाग्र कोण में ह्रीं श्रीं राकिणीपादुकां पूजयामि। पृष्ठ कोण में—ह्रीं श्रीं लाकिनीपादुकां पूजयामि। पृष्ठ वाम कोण में—ह्रीं श्रीं काकिनीपादुकां पूजयामि। पृष्ठ के दाहिने भाग में ह्रीं श्रीं शाकिनीपादुकां पूजयामि एवं अग्रकोण में ह्रीं श्रीं हाकिनीपादुकां पूजयामि से पूजन करे।

अष्टकोण में—ह्रीं श्रीं घस्मरापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं विश्वकवलापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं लोलाक्षीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं लोलजिह्विकापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं सर्वभक्षापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं सहस्राक्षीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं निःसङ्गापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं संहतिप्रियापादुकां पूजयामि कहकर पूजन करे।

अष्टदल में इनकी पूजा करे—ह्रीं श्रीं अचिन्त्यापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं अप्रमेयापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं पूर्णरूपापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं दुरासदापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं सर्वापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं संसिद्धिरूपापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं पावनापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं एकरूपिणीपादुकां पूजयामि। चतुरस्र के चारो द्वारों के पार्श्वों में देवी के समाने वाले द्वार के दक्षिण पार्श्व से प्रारम्भ करके उसके वाम पार्श्व तक के स्थानों में प्रतिद्वार दो-दो के क्रम से ब्राह्मी आदि आठ शक्तियों की पूजा करे। पुनः मध्य में ज्वालामालिनी विद्या से देवी की पूजा धूप-दीपादि से पूर्ववत् करते हुये पूजा का समापन करे।

सप्रयोगः चित्रानित्यायजनविधिः

अथ चित्रानित्यायजनविधिः। श्रीतन्त्रराजे (२१ प०)—

अथ षोडशनित्यासु या चित्रा षोडशी शिवे। प्रोक्ता तत्कल्पमधुना शृणु सर्वार्थसिद्धिदम्॥१॥
विद्या प्रागेव कथिता तदङ्गन्यासंयुतम्। ध्यानं शक्तीः पूजनञ्च साधनं तत्फलानि च॥२॥ इति।

तत्रैव (३.७२)—'वायुप्राणवनस्वैः सा चित्रा स्यादक्षरद्वया' इति। 'चकौं'। त्रिपुरार्णवे—'ऋषिर्ब्रह्मास्य मन्त्रस्य गायत्री छन्द उच्यते। विचित्रा देवते'ति। तन्त्रराजे (२१.४)—

विद्यादिवायुना कुर्याद्दीर्घस्वरयुजा क्रमात्। षडङ्गानि यथापूर्वं मातृकां विद्यया न्यसेत् ॥१॥
उद्यदादित्यबिम्बाभां स्वर्णरत्नविभूषणाम्। नवरत्नकिरीटां च चित्रपट्टांशुकोज्ज्वलाम् ॥२॥
चतुर्भुजां त्रिनयनां शुचिस्मितलसन्मुखीम्। सर्वानन्दमयीं नित्यां समस्तेप्सितदायिनीम् ॥३॥
चतुर्भिश्च भुजैः पाशमङ्कुशं वरदाभये। दधानां मङ्गलापद्मकर्णिकानवयोनिगाम् ॥४॥
तच्छक्तिभिश्च तच्चक्रे तथैवार्चनमीरितम्। नवयोनावष्टवर्गयुता ब्राह्म्यादिका यजेत् ॥५॥
इच्छाज्ञानक्रियाशक्तीरर्चयेन्मध्यकोणतः। हेतिश्च परितो देव्याः पूजयेत्तद्भुजान्तिके ॥६॥
सर्वासामपि नित्यानां नाथान्देव्यास्तु पश्चिमे। पूजयेत् तत्तदाकारांस्तत्तन्मन्त्रैर्यथाविधि ॥७॥
गुरुमण्डलपूजादि साधारणमुदीरितम्। सर्वासामपि नित्यानां यदाद्यास्पन्दगा इमाः ॥८॥ इति।

अथ प्रयोगः—तत्र योगपीठन्यासान्ते चित्राविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः। मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः। हृदि चित्रादेवतायै नमः, इति विन्यस्य, चां हृदयाय नमः। चीं शिरसे स्वाहा। चूं शिखायै वषट्। चैं कवचाय हुं। चौं नेत्राभ्यां वौषट्। चः अस्त्राय फट्, इति करषडङ्गन्यासं कृत्वा, चकौं अंनमः इत्यादि चकौं क्षंनम इत्यन्तं मातृकां विन्यस्य ध्यानमानसपूजान्ते स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिना चतुर्द्वारयुक्तं चतुरस्त्रद्वयं कृत्वा तदन्तर्द्वात्रिंशद्दलं पद्मं तदन्तरष्टदलं पद्मं तदन्तर्नवयोनिमिति पूजाचक्रं निर्माय, पुरतः संस्थाप्याभ्यर्च्यार्घ्यादिस्थापनाद्यात्मपूजान्ते भुवनेश्वरीपीठमभ्यर्च्य तस्मिंश्चित्राविद्यया मूर्तिं परिकल्प्यावाहानादिपुष्पोपचारान्तं प्राग्वत् त्रिकोणाष्टकोणयोरन्तराले गुरुपंक्तित्रयं च सम्पूज्य, त्रिकोणाष्टकोणयोरन्तरालेष्वेव दक्षिणवामयोश्चतुर्षु स्थानेषु २ अभयाय नमः, २ अंकुशाय नमः, २ पाशाय नमः, २ वराय नमः, इति सम्पूज्यान्तस्त्रिकोणे देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येनेच्छाज्ञानक्रियाशक्तीः सम्पूज्याष्टयोनिषु २ अं १६ ब्राह्मीपा०। २ कं ५ माहेश्वरीपा०। २ चं ५ कौमारीपा०। २ टं ५ वैष्णवीपा०। २ तं ५ वाराहीपा०। २ पं ५ इन्द्राणीपा०। २ यं ४ चामुण्डापा०। २ शं ५ महालक्ष्मीपा०। अष्टदलादिषु सर्वमङ्गलापूजोक्तशक्तीः सम्पूज्य तथैव सर्वं समापयेत्। इति चित्रानित्यापूजाविधिः।

चित्रा नित्या-यजन—तन्त्रराज में सोलह नित्याओं में सर्वार्थसिद्धिदायक सोलहवीं चित्रा नित्या का विवेचन किया गया है। द्व्यक्षरी चित्रा विद्या है—'चकौं'। त्रिपुरार्णव के अनुसार इसके ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री एवं देवता विचित्रा हैं।

तन्त्रराज में इसका पूजा-प्रयोग इस प्रकार बताया गया है—पूर्ववत् योगपीठ न्यास तक की सभी क्रियाओं को करने के बाद चित्रा विद्या से तीन प्राणायाम करके इस प्रकार विनियोग करे—शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः। मुखे गायत्रीछन्दसे नमः। हृदि चित्रादेवतायै नमः। ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः इस प्रकार विनियोग करने के बाद षडङ्ग न्यास करे—चां हृदयाय नमः। चीं शिरसे स्वाहा। चूं शिखायै वषट्। चैं कवचाय हुं। चौं नेत्रत्राय वौषट्। चः अस्त्राय फट्। इसी प्रकार करन्यास भी करे। तदनन्तर चकौं अं नमः से प्रारम्भ कर चकौं क्षं नमः तक मातृका न्यास करके निम्नवत् ध्यान करे—

उद्यदादित्यबिम्बाभां स्वर्णरत्नविभूषणाम्। नवरत्नकिरीटां च चित्रपट्टांशुकोज्ज्वलाम्।।
चतुर्भुजां त्रिनयनां शुचिस्मितलसन्मुखीम्। सर्वानन्दमयीं नित्यां समस्तेप्सितदायिनीम्।।
चतुर्भिश्च भुजैः पाशमङ्कुशं वरदाभये। दधानां मङ्गलापद्मकर्णिकानवयोनिगाम्।।

ध्यान के पश्चात् मानस पूजन करके स्वर्णादि पट्ट पर कुङ्कुमादि से चार द्वारों से युक्त दो चतुरस्त्र बनाये। उसके अन्दर बत्तीस दल कमल बनाकर उसमें अष्टदल कमल बनाये। उसके अन्दर नव योनिचक्र बनाकर पूजाचक्र का निर्माण करे। अपने आगे उसे स्थापित करे, अर्चन करे। आवाहन से आत्मपूजा तक की क्रिया करे। भुवनेश्वरी पीठ में अर्चन करे। उस पीठ में चित्रा विद्या से मूर्ति कल्पित करके आवाहन से पुष्पोपचार तक उसका पूजन करे। पूर्ववत् त्रिकोण-अष्टकोण के अन्तराल में

गुरुपंक्तित्रय का पूजन करे। त्रिकोण-अष्टकोण के अन्तराल में ही दक्षिण वाम चार स्थानों में आयुधों का पूजन इस प्रकार करे— ह्रीं श्रीं अभयाय नमः। ह्रीं श्रीं अङ्कुशाय नमः। ह्रीं श्रीं पाशाय नमः। ह्रीं श्रीं वराय नमः। तदनन्तर मध्य त्रिकोण में देव्यग्र से प्रादक्षिण्य क्रम से इच्छा-ज्ञान-क्रिया शक्तियों की पूजा करे।

अष्टकोण में ह्रीं श्रीं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः ब्राह्मीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं कं खं गं घं ङं माहेश्वरीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं चं छं जं झं ञं कौमारीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं टं ठं डं ढं णं वैष्णवीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं तं थं दं धं नं वाराहीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं पं फं बं भं मं इन्द्राणीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं यं रं लं वं चामुण्डापादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं शं षं सं हं क्षं महालक्ष्मीपादुकां पूजयामि। अष्टदलादि में सर्वमङ्गला के शक्तियों की पूजा करके पूर्ववत् समापन करे।

सप्रयोगः कुरुकुल्लासपर्याविधिः

अथ कुरुकुल्लासपर्याविधिः। तत्र श्रीतन्त्रराजे (२०५०)—

अथ षोडशनित्यानां या प्रोक्ता बलिदेवता। सा विद्या कुरुकुल्लायाः पञ्चविंशाक्षरो मनुः॥

तत्रैव (३.८९)—

प्राणदाहौ धरायुक्तौ पुनराद्यं रसे मरुत्। व्याप्तं मरुच्छक्तियुतं भूः स्वयुक्ता ततस्त्रयम्॥१॥
अस्यादौ तु रसायुग्मं चरेण समयोजितम्। दाहेन वह्निशक्तिभ्यां युतो हंसस्ततः परम्॥२॥
नभो द्विर्हृत्सदाहाम्बु ज्या शून्यं स्वेन संयुतम्। अम्बु पश्चाद्वियद्युक्तं मरुता तु नभः प्रिये॥३॥
शून्यं व्याप्तं भुवा हंसः पूर्वान्त्यौ स्यान्मनुत्रयम्। अस्य षष्ठादिपञ्चार्णादन्त्यौ स्यादाद्य ईरितः॥४॥
एकादशाक्षरादन्त्यौ द्वितीयः समुदीरितः। तृतीयः पञ्चविंशार्णः प्रोक्ता मन्त्रा इति क्रमात्॥५॥

'ॐकुरुकुल्ले स्वाहा' इति सप्ताक्षरी॥१॥ 'कुरुकुल्लायाः ॐ कुरुकुल्लेह्रीः स्वाहा' इति त्रयोदशाक्षरी॥२॥ 'कुरुकुल्लायाः ॐ कुरुकुल्लेह्रीः मम सर्वजनं वशमानय ह्रीं स्वाहा' इति पञ्चविंशाक्षरी॥३॥ इति। तत्रैव (२२.२)—

सैव त्रिखण्डा तत्रैव प्रोक्ता विद्या तु संख्यया। सप्तभिः प्रथमा प्रोक्ता त्रयोदशयुता परा॥१॥
तृतीया तु पञ्चविंशदक्षरा परिकीर्तिता। एवं सा त्रिभिरप्येतैर्विद्यारूपैरभीष्टदा॥२॥ इति।

त्रिपुरार्णवे—'ॐषिस्तु दक्षिणामूर्तिः पंक्तिश्छन्द उदाहृतम्। देवता कुरुकुल्ला' इति। तन्त्रराजे—(२२.४)

इक्षिवराघृतदुग्धाब्धिमध्यगे नवरत्नके। द्वीपे तां ललितां नित्यविनोदानन्दितां यजेत्॥१॥
तत्तीरे पूजयेद्देवीं पञ्चमीं तीरपालिकाम्। तत्सागरेषु परितो रत्नपोतचरीं यजेत्॥२॥
तदाज्ञया रत्नपोतं तन्नाम्नैव समर्चयेत्। बलिचक्रं च तेनैव तन्मध्ये तु समर्चयेत्॥३॥
पूर्वपश्चिमदिग्द्वारसंयुतं चतुरस्रकम्। कृत्वा तदन्तः पद्मं च साष्टपत्रं सकर्णिकम्॥४॥
कर्णिकायां चारु कृत्वा नवयोनिं समर्चयेत्। षडङ्गं बालया कृत्वा तेनार्घ्यमपि साधयेत्॥५॥
त्रिखण्डामुद्रया मूलमन्त्रेणाद्येन चावहेत्। ध्यात्वैवं परिवारैस्तां देवीं गन्धादिभिः क्रमात्॥६॥
विकीर्णकुन्तलां नग्नां रक्तामानन्दविग्रहाम्। दधानां चिन्तयेद्बाणचापपाशसृणीः करैः॥७॥
तत्समानायुधाकारवर्णा देव्यस्तु बाह्यगाः। ऋतुस्नाताः स्फुरद्योन्यः सदानन्दारुणेक्षणाः॥८॥
हृल्लेखया स्थापनादीनुपचारान् समाचरेत्। ततस्तदाज्ञयारोहेद् भ्रामिणीं द्राविणीं यजेत्॥९॥
पश्चिमद्वारमारभ्य दक्षशाखादि पूजयेत्। सूर्यं सोमं तिथिं वारं योगर्क्षकरणान्यपि॥१०॥
पक्षिणींश्च तथा मासं पूर्वद्वारस्य शाखयोः। व्योमवायव्यग्नितोयक्ष्मारूपिणीशक्तिसंयुतम्॥११॥
शब्दं स्पर्शं च रूपं च रसं गन्धं च पूर्ववत्। प्राणं बुद्धिं तथा शक्तिमष्टपत्रेषु पूजयेत्॥१२॥
बाह्यान्तरस्थकोणेषु वाग्देव्यष्टकमर्चयेत्। ततो बाणान् धनुः पाशमङ्कुशं चाभितो यजेत्॥१३॥

मध्ये त्रिकोणकोणेषु सेच्छाज्ञानक्रियात्मिकाः। शक्तीर्यष्ट्वाथ तन्मध्ये संविदासनमर्चयेत्॥१४॥
ततस्तां पञ्चविंशार्णमूलमन्त्रेण पूजयेत्। ततस्तदाज्ञया पोतपरीतं द्वीपमागतः॥१५॥
पश्चिमं पुष्परागं च सम्प्राप्यावतरेत्क्रमात्। परीयमाणे दिक्ष्वेतानर्चयेत्तत्र तत्र वै॥१६॥
इक्ष्विराघृतदुग्धाब्धीन् पश्चिमादिविलोमतः। नमोन्तैर्नामभिः पूर्वमर्चयेद्गन्धपुष्पकैः॥१७॥
नवरत्नमयं द्वीपमित्यादि प्रागुदीरितम्। एवं समर्चितं देव्या ललितायाः प्रियङ्करम्॥१८॥
एवं देवी पूजयितुः शीघ्रं बहु मनीषितम्। प्रसीदति यतस्तस्मात् पूजयेदेवमीश्वरि॥१९॥
देवीनां कुरुकुल्लां तु पोतादुपरि पूजयेत्। पञ्चविंशार्णमूलेन पूजान्ते परमेश्वरि॥२०॥
देव्या बलिः समाख्यातस्ताराशक्तेस्तु विद्यया। तां शृणु त्वं प्रिये! वच्मि ताराविद्यां दशाक्षरीम्॥२१॥
भूःस्वेन मरुता युक्तो रयो दाहश्चरान्वितः। रयो धरान्वितः पश्चाद्रययुग्मं मरुद्युतम्॥२२॥
एतत्तृतीयं षष्ठं स्याच्चतुर्थं सप्तमं प्रिये। षष्ठं तदष्टमं विद्याद् हृदम्बुमरुदन्वितम्॥२३॥
हंसश्च मरुता युक्तः प्रोक्ता विद्या दशाक्षरी।

'ॐ तारेतुतारेतुरे स्वाहा' इति।

अनयास्या बलिं दद्याद्विद्यया परमेश्वरि। ध्यानं देव्याः शृणु प्राज्ञे समस्तापन्निकृन्तनम्॥१॥
अस्यास्तोयेषु सर्वत्र बाधो न भवति स्मृतेः। श्यामवर्णां त्रिनयनां द्विभुजां वरपङ्कजे॥२॥
दधानां बहुवर्णाभिर्बहुरूपाभिरावृताम्। शक्तिभिः स्मेरवदनां रक्तमौक्तिकभूषणाम्॥३॥
रत्नपादुकयोर्न्यस्तपादाम्बुजयुगां स्मरेत्। इति।

अथ प्रयोगः—तत्र वेदिकोपरि भूमौ चन्दनादि सिन्दूरेण वा सनवयोनिकर्णिकमष्टदलकमलं कृत्वा तद्बहिः प्राक्पश्चिमद्वारद्वययुक्तं चतुरस्रद्वयमिति पूजाचक्रं निर्माय कुरुकुल्लाविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि दक्षिणामूर्तिऋषये नमः। मुखे पंक्तिच्छन्दसे नमः। हृदये श्रीकुरुकुल्लादेवतायै नमः, इति विन्यस्य करिष्यमाणबलिदाने विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा बालाबीजत्रयेण मूलविद्यावत् करषडङ्गन्यासं कृत्वा कुरुकुल्लाविद्यया व्यापकं विन्यस्य 'विकीर्णकुन्तला'मिति ध्यात्वा, मानसपूजान्ते प्रोक्षणीपात्रस्थापनाद्यात्मपूजान्ते मण्डूकादिपृथिव्यन्तं श्रीचक्रपूजावदभ्यर्च्य, तथैव पश्चिमादिविलोमेनेक्षु—इराघृतदुग्धान् सम्पूज्य इक्षुसागरतीरे द्वीपस्य नैर्ऋतकोणे २ वाराहीविद्यामुच्चार्य वाराहीदेवीपा०, इति मूलदेव्यभिमुखोपविष्टां वाराहीं सम्पूज्य, तदनुज्ञया २ ह्रींरत्नपोताय नमः, इति रत्नपोतं सम्पूज्य, तदुपरि रत्नसिंहासनादिमनोन्मनीशक्त्यन्तं श्रीचक्रपूजाक्रमेण सम्पूज्य, ततस्तन्मध्ये संविदासनाय नमः, इति देव्या भर्तृभूतं पुरुषं सम्पूज्य, तत्र पञ्चविंशाक्षर्या कुरुकुल्लाविद्यया त्रिखण्डामुद्रया च तां समावाह्य, ह्रीः इति स्थापनादिपरमीकरणान्तमुद्राः प्रदर्श्य तस्याः प्राणप्रतिष्ठां विधाय, पाशादिचतुर्मुद्राः प्रदर्श्यासनादिपुष्पोपचारान्ते 'श्रीकुरुकुल्ले परिवारपूजार्थमनुज्ञां देहि' इति प्रार्थ्य, तदनुज्ञया साधकः स्वयं रत्नपोतमारुह्य रत्नपोतस्य पूर्वपश्चिमकोट्योः ह्रींभ्रामिणीश्रीपा०, ह्रींद्राविणीपा०, इति सम्पूज्य पश्चिमद्वारस्य दक्षिणशाखामारभ्य नवशक्तीः प्रादक्षिण्येन पूजयेत्। तद्यथा—पश्चिमद्वारदक्षिणशाखायां २ ह्रीः सूर्यरूपिणीशक्तिपा०। वायव्यकोणे २ ह्रीः सोमरूपिणी०। उत्तरे २ ह्रीः तिथिरू०। ईशाने २ ह्रीः वाररू०। पूर्वद्वारस्योत्तरतः शाखायां २ ह्रीः योगरू०। दक्षशाखायां २ ह्रीः, ऋक्षरू०। आग्नेये २ ह्रीः करणरू०। दक्षिणे २ ह्रीः पक्षरू०। नैर्ऋते २ ह्रीः मासरू०, इति सम्पूज्य, ततोऽष्टदलेषु देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन व्योमरू०। शब्दरू०। वायुरू०। स्पर्शरू०। अग्निरू०। रूपरू०। तोयरू०। रसरू०। क्ष्मारू०। गन्धरू०। प्राणरू०। बुद्धिरू०। शक्तिरू०, इति सम्पूज्य, अन्तरष्टयोनिषु देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन वशिन्यादिवाग्देवताष्टकं सम्पूज्य, तदन्तर्योनेर्बहिः बाणरू०, चापरू०, पाशरू०, अंकुशरू०, इति सम्पूज्य, ततो मध्ययोन्यां देव्यग्रादि-प्रादक्षिण्येन इच्छारू०, ज्ञानरू०, क्रियारू० इति सम्पूज्य, ततो मध्ये प्राग्वत् संविदासनमभ्यर्च्य तस्मिन् पञ्चविंशाक्षर्यां

कुरुकुल्लां गन्धादिभिः सम्पूज्य धूपदीपौ दत्त्वाऽन्यत्सर्वं समाप्य 'ॐ तारेतुतारेतुरेस्वाहा' इति मन्त्रेण कुरुकुल्लापूजाङ्गत्वेन बलिं दत्त्वा समापयेत्। इति कुरुकुल्लापूजाविधिः।

कुरुकुल्ला-यजन—तन्त्रराज में सोलह नित्याओं की बलिदेवता कुरुकुल्ला की पच्चीस अक्षरों वाली विद्या का निरूपण किया गया है। वह विद्या इस प्रकार है—कुरुकुल्लायाः ॐ कुरुकुल्ले ह्रीः मम सर्वजनं वशमानय ह्रीं स्वाहा। इसके अतिरिक्त सप्ताक्षरी विद्या ॐ कुरुकुल्ले स्वाहा है। साथ ही त्रयोदशाक्षरी विद्या कुरुकुल्लायाः ॐ कुरुकुल्ले ह्रीं: स्वाहा है। इस प्रकार तन्त्रराज के अनुसार कुरुकुल्ला विद्या तीन प्रकार की है। पहली सप्ताक्षरी, दूसरी त्रयोदशारी और तीसरी पञ्चविंशाक्षरी। ये तीनों ही विद्यायें अभीष्टदायिनी हैं। त्रिपुरार्णव के अनुसार इनके ऋषि दक्षिणामूर्ति, छन्द पंक्ति एवं देवता कुरुकुल्ला हैं।

तन्त्रराज में इनका पूजन-विधान इस प्रकार बताया गया है—वेदी के ऊपर समतल भूमि में चन्दनादि सिन्दूर से अष्टदल कमल मे नवयोनि बनाये। उसके बाहर पूर्व-पश्चिम दो द्वारयुक्त चतुरस्रद्वय से पूजाचक्र बनाये। कुरुकुल्ला विद्या से तीन प्राणायाम करके विनियोग करे—शिरसि दक्षिणामूर्तिऋषये नमः। मुखे पंक्तिछन्दसे नमः। हृदये श्रीकुरुकुल्लादेवतायै नमः। करिष्यमाणबलिदाने विनियोगः।

तदनन्तर बाला बीजत्रय से मूल विद्या के सदृश कर-षडङ्ग न्यास करके कुरुकुल्ला विद्या से व्यापक न्यास करने के पश्चात् इस प्रकार ध्यान करे—

विकीर्णकुन्तलां नग्नां रक्तामानन्दविग्रहाम्। दधानां चिन्तयेद्बाणचापपाशसृणीः करैः।।
तत्समानायुधाकारवर्णा देव्यस्तु बाह्यगाः। ऋतुस्नाताः स्फुरद्योन्यः सदानन्दारुणेक्षणाः।।

ध्यान के उपरान्त मानस पूजा करे। प्रोक्षणी पात्र-स्थापन एवं आत्मपूजा के बाद मण्डूक से पृथ्वी तक श्रीचक्रपूजा के समान पीठपूजा करे। पश्चिमादि विलोम से इक्षु-जल-घृत-दुग्धसागर की पूजा करे।

इक्षु रससागर के तट पर द्वीप के नैर्ऋत्य कोण में २ वाराही विद्या कहकर वाराहीदेवीपादुकां पूजयामि से मूल देवी के सामने बैठी हुई वाराही की पूजा करे। उसकी आज्ञा लेकर २ ह्रीं रत्नपोताय नमः से रत्नपोत की पूजा करे। उस पर रत्नसिंहासनादि से मनोन्मनी शक्ति तक श्रीचक्रपूजा क्रम से पूजा करे। तब उसमें संविदासनाय नमः से देवी के पतिरूप पुरुष की पूजा करे। वहाँ पञ्चविंशाक्षरी कुरुकुल्ला विद्या एवं त्रिखण्डा मुद्रा से उसका आवाहन करे। ह्रीं से स्थापने से लेकर परमीकरण तक की मुद्रा दिखाये। प्राण प्रतिष्ठा करे। पाशादि चार मुद्रा दिखाये। आसन से पुष्पोपचार तक पूजा करे। तब आवरण पूजा की आज्ञा लेने के लिये इस प्रकार प्रार्थना करे—श्री कुरुकुल्ले परिवारपूजनार्थमनुज्ञां देहि। उसकी आज्ञा लेकर साधक स्वयं रत्नपोत पर चढ़े। रत्नपोत के पूर्व पश्चिम कोटि पर ह्रीं भ्रामिणीश्रीपादुकां पूजयामि। ह्रीं द्राविणीपादुकां पूजयामि कहकर पूजन करे। पश्चिम द्वार की दक्षिण शाखा से आरम्भ करके प्रादक्षिण्य से नव शक्तियों की पूजा करे, जैसे—पश्चिम द्वार की पश्चिम शाखा में ह्रीं श्रीं ह्रीं: सूर्यरूपिणीशक्तिपादुकां पूजयामि। वायव्य कोण में ह्रीं श्रीं ह्रीं: सोमरूपिणीपादुकां पूजयामि। उत्तर में ह्रीं श्रीं ह्रीं: तिथिरूपिणीपादुकां पूजयामि। ईशान में ह्रीं श्रीं ह्रीं: वाररूपिणीपादुकां पूजयामि। पूर्व द्वार के उत्तर शाखा में ह्रीं श्रीं ह्रीं: योगरूपिणीपादुकां पूजयामि। दक्ष शाखा में—ह्रीं श्रीं ह्रीं: नक्षत्ररूपिणीपादुकां पूजयामि। आग्नेय में ह्रीं श्रीं ह्रीं: करणरूपिणीपादुकां पूजयामि। दक्षिण में ह्रीं श्रीं ह्रीं: पक्षरूपिणीपादुकां पूजयामि। नैर्ऋत्य में ह्रीं श्रीं ह्रीं: मासरूपिणीपादुकां पूजयामि।

तदनन्तर अष्टदल में देव्यग्रादि प्रादक्षिण्य क्रम से—व्योमरूपिणीपादुकां पूजयामि। शब्दरूपिणीपादुकां पूजयामि। वायुरूपिणीपादुकां पूजयामि। स्पर्शरूपिणीपादुकां पूजयामि। अग्निरूपिणीपादुकां पूजयामि। रूपरूपिणीपादुकां पूजयामि। तोयरूपिणीपादुकां पूजयामि। रसरूपिणीपादुकां पूजयामि। क्ष्मारूपिणीपादुकां पूजयामि। गन्धरूपिणीपादुकां पूजयामि। प्राणरूपिणीपादुकां पूजयामि। बुद्धिरूपिणीपादुकां पूजयामि। शक्तिरूपिणीपादुकां पूजयामि कहकर पूजन करे। अष्टयोनि में देव्यग्रादि प्रादक्षिण्य क्रम से वशिनी आदि आठ वाग्देवताओं की पूजा करे। तदनन्तर योनि से बाहर बाणरूपिणीपादुकां पूजयामि, चापरूपिणीपादुकां पूजयामि, पाशरूपिणीपादुकां पूजयामि, अङ्कुशरूपिणीपादुकां पूजयामि कहते हुये पूजन करके देवी के आगे प्रादक्षिण्य क्रम से इच्छारूपिणीपादुकां पूजयामि। ज्ञानरूपिणीपादुकां पूजयामि। क्रियारूपिणीपादुकां पूजयामि कहकर पूजन करे।

इसके बाद मध्य में पूर्ववत् संविदासन की पूजा करके उसमें पञ्चविंशाक्षरी कुरुकुल्ला विद्या द्वारा गन्धादि से पूजनकर धूप-दीप देकर पूर्ववत् पूजा का समापन करते हुये तब 'ॐ तारेतुतारेतुरे स्वाहा' से कुरुकुल्ला पूजा के अंगरूप बलि देकर पूर्ण समापन करे।

वाराहीसपर्याविधिः सप्रयोगः

अथ वाराहीसपर्याविधिः। तन्त्रराजे (२३ प०)—

अथ षोडशनित्यानामङ्गभूता तु पञ्चमी। तद्द्विधा कथिता पूर्वं तदङ्गानि च पूजनम् ॥१॥
साधनं सिद्धमन्त्रस्य प्रयोगध्यानपूजनैः। होमैर्यन्त्रैश्च वक्ष्यामि समस्ताभीष्टसिद्धये ॥२॥ इति।

तत्रैव (३. ७३)—

शुचिः स्वेनाथ शून्यं स्यान्नभसां भूरसः स्थिरा। अम्बु पश्चाद्रयः साग्निर्मरुताम्बुरयौ तथा ॥१॥
इलायुतोऽग्निरेतानि पुनरम्बु मरुद्युतम्। दाहश्च मरुता हंसस्त्वग्निरेतत्त्रयं पुनः ॥२॥
अम्बुदाहौ मरुद्युक्तौ हंसोऽथ धरया नभः। तेजोऽग्निना युत; पञ्च वातः स्वेन समायुतः ॥३॥
तोयं चरेण तत्पूर्वं तोयमग्नियुतं ततः। शून्यं व्याप्तेन शुचिना शून्यं शक्त्या नभोयुतम् ॥४॥
दाहो धरास्वसहितस्तोयं चरसमन्वितम्। एतत्पूर्वमधः प्रोक्तचतुष्टयमतः परम् ॥५॥
ज्या स्वेन युक्ता सचरो रसश्चैतस्य पूर्वकम्। रसोऽग्निना पुनः प्रोक्तचतुष्कात्त्रयमन्ततः ॥६॥
नभो भुवा चरेणापि हंसस्त्वेतस्य पूर्वकम्। हंसोऽग्निना प्राक्त्रितयं हृदयं स्वसमायुतम् ॥७॥
रसश्चरेण तत्पूर्वमग्निना च रसो युतः। पश्चादुक्तत्रयं वातो धरया च नभः प्रिये ॥८॥
प्राणः स्वेन युतः पश्चाद्हृदयं स्वयुतं रसः। व्याप्तमेतत्त्रयं पश्चाद् हृद्दाहेनाम्बुसंयुतम् ॥९॥
गोत्रा धरायुता स्पर्शो नादयुक्तो जवी युतः। दाहेन पूर्वं पूर्वं च पूर्वं च मरुता युतम् ॥१०॥
शून्यं मरुत्स्वसहितं हृद्दाहेनाम्बुना चरः। स्पर्शो मरुत्स्वसहितो हृद्दाहेनाम्बुना युतम् ॥११॥
ज्याग्निः स्वसंयुतो हंसस्तथाम्बु मरुता सह। हृदयेन स्वेन युतं रसश्च वेन संयुतः ॥१२॥
प्राणदाहौ धरायुक्तौ पुनस्तौ वह्निना वियत्। वार्दाहयुक्तमम्बु स्याद्वियद्व्याप्तस्वसंयुतम् ॥१३॥
पूर्वद्विरुक्तवर्णौ च शुचिः स्वेन युतस्तथा। स्थिरा रसा वनस्वेन दावौ हंसो धरास्वयुक् ॥१४॥
द्युतिर्नादवती पश्चाद् हृदम्बु मरुता युतम्। हंसश्च मरुता विद्या दशोत्तरशताक्षरी ॥१५॥ इति।

'ऐं नमो भगवति वार्त्तालि वार्त्तालि वाराहि वाराहि वराहमुखि वराहमुखि अन्धे अन्धिन्यै नमः रुन्धे रुन्धिन्यै नमः जम्भे जम्भिन्यै नमः मोहे मोहिन्यै नमः स्तम्भे स्तम्भिन्यै नमः अमुकं स्तम्भय स्तम्भय सर्वदुष्टप्रदुष्टानां सर्वेषां सर्वजिह्वास्तम्भं कुरु कुरु शीघ्रवश्यं कुरु ऐं ठलौं ठठ हुंफट् स्वाहा' इति। वर्णाः ११०।
त्रिपुरार्णवे—ऋषिस्तु दक्षिणामूर्तिर्गायत्रीच्छन्द ईरितम्' इति। तन्त्रराजे (२३.३)—

अङ्गानि कृत्वा मन्त्रार्णैः सप्तभिः षड्युगेन च। दशभिः सप्तभिः सप्तसंख्यैर्जातिभिरन्वितम् ॥१॥
त्रिकोणवृत्तषट्कोणवृत्तद्वयसमन्वितम्। विधाय चक्रं तत्रैव स्वनाम्नावाह्य पूजयेत् ॥२॥
दशोत्तरशताक्षर्या वाराहीविद्यया प्रिये। सर्वमध्ये समभ्यर्च्य वामदक्षाग्रकोणतः ॥३॥
क्रोधिनीं स्तम्भिनीं चण्डोच्चण्डां च स्वस्वनामभिः। आद्यबीजान्त्यसप्राणैरुपेतामथ पूजयेत् ॥४॥
षट्सु कोणेषु स्वाग्रादि ब्राह्मयाद्या वामतोऽर्चयेत्। वृत्ते चैव महालक्ष्मीं पञ्चमीं मध्यतस्तथा ॥५॥
बलिं तु षोडशार्णेन कृत्वाभ्यर्च्योपचारकैः। इति।

अथ प्रयोगः—वेद्यां त्रिकोणषट्कोणवृत्तद्वयचतुरस्रात्मकं मण्डलं निर्माय मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि दक्षिणामूर्तये ऋषये नमः। मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः। हृदये श्रीवाराहीदेवतायै नमः, इति विन्यस्य ममाभीष्टसिद्धये

विनियोग:, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा ऐं नमो भगवति हृदयाय नम:। वार्त्तालि २ शिरसे स्वाहा। वाराहि २ शिखायै वषट्। वराहमुखि २ कवचाय हुं। अन्धे अन्धिन्यै नम: नेत्रत्रयाय वौषट्। रुन्धे रुन्धिन्यै नम: अस्त्राय फट्। इति करषडङ्गन्यासं विधाय ध्यायेत्—

ध्यायेच्च देवीं कोलास्यां तप्तकाञ्चनसन्निभाम्। आकण्ठवनितारूपां ज्वलत्पिङ्गशिरोरुहाम् ॥१॥
त्रिनेत्रामष्टहस्तां च चक्रं शङ्खमथाङ्कुशम्। पाशं च मुसलं सीरमभयं वरदं तथा ॥२॥
दधानां गरुडस्कन्धे सुखासीनां विचिन्तयेत्।

इति ध्यात्वा, मानसपूजान्तेऽर्घ्यादिस्थापनाद्यात्मपूजां विधाय, भुवनेश्वरीपीठमभ्यर्च्य मूलेन मूर्तिं परिकल्प्य, तद्विद्यया समावाह्यावाहनादिपरमीकरणान्तं तत्तन्मुद्रया विधायासनादिपुष्पोपचारान्ते त्रिकोणस्य वामकोणे २ क्रों क्रोधिन्यै नम:। दक्षकोणे २ स्तं स्तम्भिन्यै नम:। अग्रे २ क्षोंक्रों चण्डोच्चण्डायैक नम:। तत: षट्कोणकोणेषु देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन आं ब्राह्म्यै नम:। ईं माहेश्वर्यै नम:। ऊं कौमार्यै नम:। ॠं वैष्णव्यै नम:। लॄं वाराह्यै नम:। ऐं इन्द्राण्यै नम:, इति सम्पूज्य, तद्बहिर्वृत्तद्वये औं चामुण्डायै नम:। अ: महालक्ष्म्यै नम:, इति देव्यग्रे पूजयेत्। ततश्चतुरस्रे इन्द्रादींस्तद्बहिश्च वज्रादीन्सम्पूज्य पुनर्मध्ये देवीं तद्विद्यया सम्पूज्य धूपादिकं सर्वं प्राग्वत्। समापयेत्, इति वाराहीपूजाविधि:।

वाराही पूजन—तन्त्रराज में सोलह नित्याओं की अङ्गभूता पञ्चमी वाराही विद्या, जो कि पूर्व में दो प्रकार की कही गई है, उसके अङ्गपूजन, साधन, सिद्धमन्त्र का प्रयोग, ध्यान, पूजन एवं होम समस्त यन्त्र का वर्णन अभीष्ट-सिद्धि के लिये किया गया है। तन्त्रराजोक्त साङ्केतिक भाषा का उद्धार करने पर वाराही का दशोत्तर शताक्षरी (एक सौ दस वर्णों की) विद्या इस प्रकार बनती है—ऐं नमो भगवति वार्त्तालि वार्त्तालि वाराहि वाराहि वराहमुखी वराहमुखि अन्धे अन्धिन्यै नम: रुन्धे रुन्धिन्यै नम: जम्भे जम्भिन्यै नम: मोहे मोहिन्यै नम: स्तम्भे स्तम्भिन्यै नम: अमुकं स्तम्भय स्तम्भय सर्वदुष्टप्रदुष्टानां सर्वेषां सर्वजिह्वास्तम्भं कुरु कुरु शीघ्रवश्यं कुरु ऐं ठलौं ठ: ठ: हुं फट् स्वाहा। त्रिपुरार्णव के अनुसार इसके ऋषि दक्षिणामूर्ति छन्द एवं गायत्री कहे गये हैं। तन्त्रराज में इसका पूजा-प्रयोग इस प्रकार कहा गया है—वेदी पर त्रिकोण-षट्कोण दो चतुरस्र वृत्त से मण्डल बनाकर मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करके इस प्रकार विनियोग करे। शिरसि दक्षिणामूर्तिऋषये नम:। मुखे गायत्रीछन्दसे नम:। हृदये श्रीवाराहीदेवतायै नम:। ममाभीष्टसिद्धये विनियोग: षडङ्ग न्यास करे—ऐं नमो भगवति हृदयाय नम:। वार्तालि वार्तालि शिरसे स्वाहा। वाराहि वाराहि शिखायै वषट्। वराहमुखि वराहमुखि कवचाय हुं। अन्धे अन्धिन्यै नम: नेत्रत्रयाय वौषट्। रुन्धे रुन्धिन्यै नम: अस्त्राय फट्। इसी प्रकार करन्यास भी करने के पश्चात् निम्नवत् ध्यान करे—

ध्यायेच्च देवीं कोलास्यां तप्तकाञ्चनसन्निभाम्। आकण्ठवनितारूपां ज्वलत्पिङ्गशिरोरुहाम्।।
त्रिनेत्रामष्टहस्तां च चक्रं शङ्खमथाङ्कुशम्। पाशं च मुसलं सीरमभयं वरदं तथा।।
दधानां गरुडस्कन्धे सुखासीनां विचिन्तयेत्।

इस प्रकार ध्यान करके मानस पूजा, अर्घ्यादि-स्थापन एवं आत्मपूजा करे। भुवनेश्वरी पीठ का अर्चन करे। मूल मन्त्र से मूर्ति कल्पित करके वाराही विद्या से आवाहनादि से परमीकरण तक की क्रिया यथायोग्य मुद्राओं को दिखाते हुये करके आसन से पुष्पोपचार तक पूजा करने के पश्चात् त्रिकोण के वामकोण में ह्रीं श्रीं क्रों क्रोधिन्यै नम:। दक्षकोण में ह्रीं श्रीं स्तं स्तम्भिन्यै नम:। अग्रकोण में ह्रीं श्रीं क्षों क्रों चण्डोच्चण्डायै नम: कहकर से पूजा करे।

षट्कोण के कोणों में देव्यग्रादि प्रादक्षिण्य क्रम से पूजा करे—आं ब्राह्म्यै नम:। ईं माहेश्वर्यै नम:। ऊं कौमार्यै नम:। ॠं वैष्णव्यै नम:। लॄं वाराह्यै नम:। ऐं इन्द्राण्यै नम: कहकर पूजा करे। उसके बाहर वृत्तद्वय में औं चामुण्डायै नम:, अ: महालक्ष्म्यै नम: कहकर देवी के अग्रभाग में पूजा करे। तदनन्तर चतुरस्र में इन्द्रादि दश लोकपालों की और उसके बाहर वज्रादि दश आयुधों की पूजा करे। पुन: मध्य में देवी का पूजन उसकों विद्या से करके पूर्ववत् धूपादि समर्पित करते हुये पूजा का समापन करे।

वारेशानां पूजाप्रयोगः

अथ वारेशानां पूजाप्रयोगः—तत्र तद्वेदिकायां षट्कोणात्मकं मण्डलं विधाय मूलेन प्राणानायम्य, करिष्यमाणपूर्णाभिषेकाङ्गत्वेन वारेशपूजनमहं करिष्ये, इति सङ्कल्प्य तद्दिनवारेशौ षट्कोणमध्ये आवाह्यासनादिपुष्पोपचारान्तैरुपचारैरभ्यर्च्य, तदुत्तरवारेशादीन् षट्कोणेषु द्वौ द्वौ क्रमेण स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन सम्पूज्य धूपादिकं सर्वं निवेद्यान्यत्सर्वं प्राग्वत्समापयेत्।

वारेशास्तु—रविवारस्य सूर्यशिवौ। चन्द्रवारस्य सोमाम्बिके। मङ्गलवारस्य भौमकुमारौ। सौम्यवारस्य ब्रह्मबुधौ। गुरुवारस्य बृहस्पतिविष्णू। भृगुवारस्य शुक्ररमे। शनिवारस्य कुबेरसौरी। इति वारेशार्चनविधिः।

वारेश-पूजा प्रयोग—वेदी में षट्कोणात्मक मण्डल बनाकर मूल मन्त्र से प्राणायाम करके संकल्प करे—'करिष्यमाणपूर्णाभिषेकाङ्गत्वेन वारेश-पूजन महं करिष्ये'। इस प्रकार संकल्प करके उस दिन के वारेश का षट्कोण-मध्य में आवाहन करके आसन से पुष्पोपचार तक पूजन करे। उसके बाद वाले वारेशों को षट्कोणों में दो-दो के क्रम से अपने आगे से प्रारम्भ करके प्रादक्षिण्य क्रम से पूजन करके धूप-दीप-नैवेद्यादि निवेदन करते हुये पूजा का समापन करे। रविवार के सूर्य-शिव, सोमवार के चन्द्र-अम्बिका, मङ्गलावार के मङ्गल-कुमार कार्तिकेय, बुधवार के ब्रह्मा-बुध, गुरुवार के बृहस्पति-विष्णु, शुक्रवार के शुक्र-लक्ष्मी एवं शनिवार के कुबेर-शनि वारेश कहे गये हैं।

तिथीशार्चनप्रयोगः

अथ तिथीशार्चनप्रयोगः—तत्र तद्वेदिकायां चतुर्दशारमण्डलं विलिख्य मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, करिष्यमाणपूर्णाभिषेकाङ्गत्वेन तिथीशपूजनं करिष्ये, इति सङ्कल्प्य मध्ये तत्तत्तिथीशमावाह्यासनादिपुष्पोपचारान्तमभ्यर्च्य स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन तदुत्तरतिथीशादीन् चतुर्दशारेषु प्रादक्षिण्यक्रमेणाभ्यर्च्य धूपादिकं कृत्वा प्राग्वत्समापयेत्।

तिथीशास्तु—प्रतिपद्यग्निः। द्वितीयायामश्विनौ। तृतीयायामुमा। चतुर्थ्यां विघ्नराजः। पञ्चम्यां सर्पः। षष्ठ्यां षण्मुखः। सप्तम्यां रविः। अष्टम्यां मातरः। नवम्यां दुर्गा। दशम्यां दिशः। एकादश्यां धनदः। द्वादश्यां केशवः। त्रयोदश्यां यमः। चतुर्दश्यां हरः। पञ्चदश्यां चन्द्रः। अमावास्यायां पितरः। इति तिथीशपूजाक्रमः।

तिथीश-अर्चन—वेदी में चतुर्दशार मण्डल बनाकर मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करके इस प्रकार सङ्कल्प करे—'करिष्यमाणपूर्णाभिषेकाङ्गत्वेन तिथीशपूजनं करिष्ये।' इस प्रकार सङ्कल्प करके मण्डल में तिथीश का आवाहन करके आसनादि से पुष्पोपचार तक पूजा करके अपने आगे से प्रादक्षिण्य क्रम से आवाहित पूज्य तिथीश के अतिरिक्त चौदह तिथीशों का पूजन चतुर्दशार में प्रादक्षिण्य क्रम से करके धूपादि प्रदान करते हुये पूर्ववत् पूजा का समापन करे। प्रतिपदा के अग्नि, द्वितीया के अश्विनी कुमार, तृतीया की उमा, चतुर्थी के गणेश, पञ्चमी के नाग, षष्ठी के कार्तिकेय, सप्तमी के सूर्य, अष्टमी की मातृकाएँ, नवमी की दुर्गा, दशमी के दिक्पाल, एकादशी के कुबेर, द्वादशी के विष्णु, त्रयोदशी के यम, चतुर्दशी के शिव, पूर्णिमा के चन्द्र और अमावस्या के तिथीश कहे गये हैं।

नक्षत्रेशदेवतापूजाक्रमः

अथ नक्षत्रदेवतापूजाक्रमः—तत्र तद्वेद्यां सप्तविंशत्यरात्मकं पूजाचक्रं विधाय मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, अद्येहेत्यादि करिष्यमाणपूर्णाभिषेकाङ्गत्वेन नक्षत्रेशपूजां करिष्ये, इति सङ्कल्प्य तत्तत्तिथिनक्षत्रेशं मध्ये आसनादिपुष्पोपचारान्तैरुपचारैः सम्पूज्य सप्तविंशत्यृक्षेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन तदुक्तनक्षत्रेशमारभ्य सम्पूज्य धूपदीपादिकं दत्त्वा प्राग्वत् समापयेत्।

नक्षत्रेशास्तु—अश्विन्यामश्विनौ। भरण्यां यमः। कृत्तिकायामग्निः। रोहिण्यां धाता। मृगशिरसि चन्द्रः। आर्द्रायां शिवः। पुनर्वसावदितिः। पुष्ये गुरुः। अश्लेषायां सर्पः। मघायां पितरः। पूर्वायामर्यमा। उत्तरायां भगः। हस्ते

सूर्यः। चित्रायां त्वष्टा। स्वात्यां मारुतः। विशाखायामिन्द्राग्नी। अनुराधायां मित्रः। ज्येष्ठायामिन्द्रः। मूलायां निर्ऋतिः। पूर्वाषाढायां तोयम्। उत्तराषाढायां विश्वेदेवाः। अभिजिति प्रजापतिः। श्रवणे हरिः। धनिष्ठायां वसवः। शतभिषजि वरुणः। पूर्वाभाद्रपदायामजैकपात्। उत्तराभाद्रपदायामहिर्बुध्न्यः। रेवत्यां पूषा। इति नक्षत्रेशसपर्याविधिः।

नक्षत्रदेवता पूजा—वेदी में सत्ताईस कोष्ठों का पूजाचक्र बनाकर मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करके सङ्कल्प करे—'अद्य·······करिष्यमाणपूर्णाभिषेकाङ्गत्वेन नक्षेत्रशपूजां करिष्ये'। इस प्रकार सङ्कल्प करके उस तिथि नक्षत्र-देवता का मध्य में आसन से पुष्पोपचार तक पूजा करे। सत्ताईस नक्षत्रों में से तदनन्तर नक्षत्रेश के अग्रभाग से प्रारम्भ करके शेष नक्षत्रेशों की क्रमशः पूजा करते हुये धूप-दीपादि प्रदान कर पूजा का समापन करे। अश्विनी के अश्विनी कुमार, भरणी के यम, कृत्तिका के अग्नि, रोहिणी के धाता, मृगशिरा के चन्द्र, आर्द्रा के शिव, पुनर्वसु के अदिति, पुष्य के वृहस्पति, आश्लेषा के सर्प, मघा के पितर, पूर्वा के अर्यमा, उत्तरा के भग, हस्त के सूर्य, चित्रा के त्वष्टा, स्वाति के मरुत्, विशाखा के इन्द्र-अग्नि, अनुराधा के मित्र, ज्येष्ठा के इन्द्र, मूल के निर्ऋति, पूर्वाषाढ के जल, उत्तराषाढ के विश्वेदेव, अभिजित के प्रजापति, श्रवण के हरि, धनिष्ठा के वसु, शतभिषा के वरुण, पूर्वाभाद्र के अजैकपाद, उत्तराभाद्र के अहिर्बुध्न्य एवं रेवती के पूषा नक्षत्रेश कहे गये हैं।

नवग्रहपूजाविधिः

अथ नवग्रहपूजाविधिः। तत्र प्रयोगः—हस्तत्रयायामविस्तारवेदिकायां प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक्च चतुःसूत्राणि पातयित्वा समान्तरालं नवकोष्ठात्मकं चक्रं निष्पाद्य समस्तकोष्ठान्तरालेषु वृत्तत्रयं रचयित्वा, तत्तन्मध्ये सूत्रद्वयनिपातेन नव कोष्ठानि निष्पाद्य, मध्यकोष्ठे अष्टदिक्षु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन अंआंइंईंउंऊंऋंॠं इति वाताद्यष्टस्वरान् विलिख्य, मध्यकोष्ठे मों इति विलिख्य वृत्तत्रयस्यान्तरालद्वयेऽभ्यन्तरान्तराले मंमांमिंमींमुंमूंमृंमॄंमेंमैंमोंमौंमंमः इति विलिख्य, बाह्यान्तराले अंआंइत्यादि क्षःइत्यन्तं मातृकां विलिख्य तत्र भास्करं पूजयेत्।

ततः पूर्वदिग्गतनवकोष्ठात्मकमण्डले मध्यकोष्ठे सोंसोमाय नमः। ह्रीमिति विलिख्याष्टसु कोष्ठेषु पूर्वादि ऌंॡंएंऐंओंऔंअंअः इत्यष्टौ स्वरान् विलिख्याभ्यन्तरान्तराले हंहामित्यादिषोडशस्वरसंयुक्तं हकारं विलिख्य तद्बहिः बिन्दुयुतां मातृकां च विलिख्य तत्र सोमं पूजयेत्।

तत आग्नेयदिग्गतनवकोष्ठात्मकमण्डलमध्यकोष्ठे प्रणवमगर्भं ककारं विलिख्य तद्बहिरष्टसु कोष्ठेषु 'कं ५ मङ्गल' इत्यष्टाक्षराणि विलिख्य, अभ्यन्तराले षोडशस्वरयुतं ककारं विलिख्य तद्बहिरन्तराले मातृकां विलिख्य तत्र भौमं पूजयेत्।

ततो दक्षिणमण्डले मध्यकोष्ठे प्रणवगर्भं चकारं विलिख्य तद्बहिरष्टसु कोष्ठेषु 'चं ५ बुधाय' इति विलिख्य, अभ्यन्तरान्तराले चञ्चामित्यादिषोडशस्वरयुक्तं चकारं विलिख्य तद्बहिर्मातृकां च विलिख्य तत्र बुधं पूजयेत्।

ततो निर्ऋतिमण्डले मध्यकोष्ठे प्रणवगर्भं टकारं लिखित्वा तद्बहिरष्टषु कोष्ठेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन 'टं ५ सौरये' इत्यष्टवर्णान् विलिख्य तद्बहिरन्तराले षोडशस्वरयुक्तं टकारं तद्बहिरन्तराले मातृकां च विलिख्य मध्ये षोडशोपचारैः शनैश्चरं पूजयेत्।

ततो पश्चिममण्डले मध्यकोष्ठे प्रणवगर्भं तकारं विलिख्य तद्बहिरष्टसु कोष्ठेषु 'तं ५ गुरुवे' इति विलिख्य तद्बहिरन्तराले षोडशस्वरयुक्तं तकारं तद्बहिरन्तराले मातृकां च विलिख्य तत्र गुरुं षोडशोपचारैः पूजयेत्।

ततो वायव्यमण्डले मध्यकोष्ठे प्रणवगर्भं पकारं विलिख्य तद्बहिरष्टसु कोष्ठेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन 'पं ५ शुक्राय' इत्यष्टावक्षराणि विलिख्य तद्बहिरन्तराले षोडशस्वरयुक्तं पकारं विलिख्य तद्बहिरन्तराले मातृकां च विलिख्य तत्र शुक्रं षोडशोपचारैः पूजयेत्।

तत उत्तरमण्डले मध्यकोष्ठे प्रणवगर्भं यकारं विलिख्य तद्बहिरष्टसु कोष्ठेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन 'यं ५

राहवे' इत्यष्टावक्षराणि विलिख्य तद्बहिरन्तराले षोडशस्वरयुक्तं यकारं विलिख्य तद्बहिरन्तराले मातृकां च विलिख्य तत्र राहुं षोडशोपचारैः पूजयेत्।

तत ईशानमण्डले मध्यकोष्ठे प्रणवगर्भं षकारं विलिख्य तद्बहिरष्टसु कोष्ठेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन 'षं ५ केतवे' इत्यष्टावक्षराणि विलिख्य तद्बहिरन्तराले षोडशस्वरयुक्तं षकारं विलिख्य तद्बहिरन्तराले मातृकां च विलिख्य तत्र षोडशोपचारैः केतुं पूजयेत्। इति नवग्रहपूजाविधिः।

इति श्रीमहामहोपाध्यायभगवत्पूज्यपाद-श्रीगोविन्दाचार्यशिष्य-श्रीभगवच्छङ्कराचार्यशिष्य-श्रीविष्णुशर्माचार्यशिष्य-श्रीप्रगल्भाचार्यशिष्य-श्रीविद्यारण्ययतिविरचिते श्रीविद्यार्णवाख्ये तन्त्रे चतुर्दशः श्वासः॥१४॥

नवग्रह पूजाविधि—तीन हाथ वेदी पर पूर्व लम्बी-चौड़ी पश्चिम-दक्षिण-उत्तर चार सूत्रपात करके समान अन्तराल का नवकोष्ठात्मक चक्र बनाये। सभी कोष्ठों में तीन-तीन वृत्त बनाये। मध्य वृत्तों के केसरों में दो-दो सूत्रपात से नव नव कोष्ठ बनावे।

मध्य—सबके बीच वाले कोष्ठ के नव कोष्ठों में से मध्य कोष्ठ में मों लिखे। आठों दिशाओं में अपने आगे से प्रादक्षिप्य अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लिखे। उसके बाहर वाले वृत्त के अन्तराल में मं मां मिं मीं मुं मूं मृं मॄं में मैं मों मौं मः लिखे। उसके बाहर वाले भाग में अं से क्षः तक की मातृकाओं के लिखकर उसमें सूर्य का पूजन करे।

पूर्वकोष्ठ—तदनन्तर नवकोष्ठात्मक मण्डल के पूर्व दिग्गत कोष्ठ के मध्य में सों सोमाय ह्रीं लिखे। शेष आठ कोष्ठों में पूर्वादि क्रम से ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः इन आठ स्वरों को लिखे। उसके बाहर के वृत्त अन्तराल में अं से अः तक सोलह स्वरों से युक्त ह अर्थात् हं हां से हः तक लिखे। इसके बाहर वाले वृत्त अन्तराल में अं से क्षं तक की मातृकाओं को लिखकर उसमें चन्द्रमा की पूजा करे।

आग्नेय कोष्ठ—तदनन्तर आग्नेयगत नव कोष्ठात्मक मण्डल के मध्य कोष्ठ में प्रणवगर्भ 'क' लिखे। उसके बाहर आठ कोष्ठों में कं खं गं घं ङं मङ्गल—इन आठ अक्षरों को लिखे। उसके बाहर वृत्तान्तराल में कं कां किं कीं कुं कूं कें कैं कों कौं कं लिखे। उसके बाहर वाले अन्तराल में अं से क्षं तक की मातृकाओं को लिखकर उसमें मङ्गल की पूजा करे।

दक्षिण मण्डल के मध्य कोष्ठ में प्रणवगर्भ चकार लिखे। उसके बाहर आठ कोष्ठों में चं छं जं झं ञं बुधाय— इन आठ अक्षरों को लिखे। उसके बाहर वृत्तान्तराल में चं चां चिं चीं चुं चूं चें चैं चों चौं चं चः लिखे। उसके बाहर के अन्तराल में अं से क्षं तक की मातृकाओं को लिखकर उसमें बुध की पूजा करे।

नैर्ऋत्य मण्डल के मध्य में प्रणवगर्भ टकार लिखे। उसके बाहर आठ कोष्ठों में टं ठं डं ढं णं सौरये—इन आठ अक्षरों को लिखे। उसके बाहर के वृत्तान्तराल में टं टां टिं टीं टुं टूं टें टैं टों टौं टं टः लिखे। उसके बाहर के अन्तराल में अं से क्षं तक मातृकावर्णों को लिखकर उसके मध्य में षोडशोपचार से शनि का पूजन करे।

पश्चिम मण्डल के मध्य कोष्ठ में प्रणवगर्भ तकार लिखे। उसके बाहर आठ दलों में तं थं दं धं नं गुरवे—इन आठ अक्षरों को लिखे। उसके बाहर वृत्तान्तराल में तं तां तिं ती तुं तूं तें तैं तों तौं तं तः—इन सोलह अक्षरों को लिखे। उसके बाहर के अन्तराल में अं से क्षं तक की मातृकाओं को लिखकर उसके मध्य में षोडशोपचार से गुरु का पूजन करे।

वायव्य मण्डल के मध्य कोष्ठ में प्रणवगर्भ पकार लिखे। उसके बाहर आठ कोष्ठों में पं फं बं भं मं शुक्राय—इन आठ अक्षरों को लिखे। उसके बाहर अन्तराल में पं पां पिं पीं पुं पूं पें पैं पों पौं पं पः—इन सोलह अक्षरों को लिखे। उसके बाद वाले अन्तराल को अं से क्षं तक इक्यावन मातृकाओं को लिखकर उसमें षोडशोपचार से शुक्र का पूजन करे।

उत्तर मण्डल के मध्य कोष्ठ में प्रणवगर्भ यकार लिखे। उसके बाहर कि आठ कोष्ठों में यं रं लं वं शं राहवे—इन आठ अक्षरों को लिखे। उसके बाहर अन्तराल में यं यां यिं यीं युं यूं यें यैं यों यौं यं यः इन सोलह अक्षरों को लिखे। उसके बाहर अन्तराल में अं से क्षं तक इक्यावन मातृकाओं को सस्वर लिखकर मध्य में षोडशोपचार से राहु का पूजन करे।

ईशान मण्डल के मध्य कोष्ठ में प्रणवगर्भ षकार लिखे। उसके बाहर आठ कोष्ठों में षं सं हं ळं क्षं केतवे—इन आठ अक्षरों को लिखे। उसके बाहर अन्तराल में षं षां षिं षीं षुं षूं षें षैं षों षौं षं षः—इन सोलह वर्णों को लिखे। उसके बाहर के अन्तराल में अं से क्षं तक की मातृकाओं के लिखकर मध्य में षोडशोपचार से केतु का पूजन करे। इस प्रकार से नवग्रहपूजन का विधान पूर्ण होता है।

इस प्रकार श्रीविद्यारण्ययतिविरचित श्रीविद्यार्णव तन्त्र के कपिलदेव नारायण-कृत भाषा-भाष्य में चतुर्दश श्वास पूर्ण हुआ

●

अथ पञ्चदशः श्वासः

प्रातःकृत्योत्तरं सन्ध्याकथनम्

अथ दैशिकवरः प्रातः प्रबोधकाले 'त्रिपुरात्मानमात्मानं भावयन् मूर्ध्नि रन्ध्रगम्। ज्योतीरूपं च नाथाङ्घ्रिमुक्तिष्ठेन्न्यस्तविग्रहः।' इति। (तन्त्रराजे—५.१७) न्यस्तविग्रहो वक्ष्यमाणन्यासैः करशुद्धिषडङ्गचतुरासनवाग्देवताष्टकाख्यैः कृतन्यासशरीरः। 'नमस्ते नाथ भगवन्' इत्यादिश्लोकैः स्तुत्वा ह्रींश्रींहसक्षमलवयरूं अमुकानन्दनाथ ह्रींश्रींसहक्षमलवयरीं अमुकदेव्यम्बापादुकां पूजयामीति गुरुमन्त्रं यथाशक्ति जपित्वा कुण्डलिन्या मूलादिमूर्धान्तं गमनानुसन्धानपुरःसरं त्रिपुरात्मानमात्मानं भावयित्वा त्रिपुरार्णवोक्तं स्तोत्रं पठेत्—

प्रातर्नमामि जगतां जनन्याश्चरणाम्बुजम्। श्रीमत्त्रिपुरसुन्दर्या जनन्या जगतां सदा ॥१॥
प्रसन्नायाः स्वभक्तानां नमिताया हरादिभिः। प्रातस्त्रिपुरसुन्दर्या नमामि चरणाम्बुजम् ॥२॥
हरिर्हरो विरिञ्चिश्च सृष्ट्यादीन् कुरुते यया। (प्रातस्त्रिपुरसुन्दर्या नमामि पदपङ्कजम्) ॥३॥
यत्पाद्यमम्बु शिरसि भाति गङ्गा महेशितुः। प्रातः पाशाङ्कुशशरपाशहस्तां नमाम्यहम् ॥४॥
उद्यदादित्यसङ्काशां श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीम्। प्रातर्नमामि पादाब्जं ययेदं भासते जगत् ॥५॥
तस्यास्त्रिपुरसुन्दर्या यत्प्रासादान्निवर्तते। यः श्लोकपञ्चकमिदं प्रातर्नित्यं पठेन्नरः ॥६॥
तस्मै दद्यादात्मपदं श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी।

इति स्तुत्वोद्वास्य

नानावर्णायुधाकारवाहनाभरणाः स्त्रियः। सर्वगाः सर्वदाः सर्वसिद्धिदा बलिदानतः॥

(तं ५.१८) स्युरिति विभ्राणात् (?) स्वपुरतः साधारेऽन्नव्यञ्जनपुष्पाम्बुपूर्णे 'ॐह्रींसर्वविघ्नकृद्भ्यः सर्वभूतेभ्यो हूं स्वाहा' इति षोडशाक्षरमन्त्रेण करतलयोस्त्रिरास्फालनपूर्वं प्रसारिततर्जनीद्वयाभ्यामुभयकरमुष्टिभ्यामूर्ध्वाधःस्थितिरूपाभ्यां दैवतेभ्यो निवेदितबलिद्रव्यदर्शनरूपया मुद्रया बलिर्देयः। ततश्चावश्यकं कृत्वा 'क्लीं कामदेवाय सर्वजनप्रियाय नमः' इति मन्त्रेण दन्तधावनं कृत्वा मूलदिननित्याभ्यां मुखप्रक्षालनं स्नानं तिलकं च कृत्वा वैदिकसन्ध्यां निर्वर्त्य तान्त्रिकसन्ध्यां कुर्यात्। ततस्त्रिराचम्य प्राणायामं कुर्यात्।

आधारे हृदये रन्ध्रे विद्याखण्डत्रयं स्मरेत्। लोहितं तत्प्रभावेधाल्लोहितं च निजं वपुः॥
(तं ५.३२) भावयन्,

वामेन नासारन्ध्रेण पूरयेदमृतात्मना। स्मरन्नम्बु मरुत्पश्चाद्दक्षिणेनापसारयेत्॥
एवं सुसाधिते पश्चाद् द्वात्रिंशन्मात्रयाहरेत्। धारयेत्तच्चतुष्षष्ट्या रेचयेत्ततुरीयतः॥

(तं २७.६८) एवं क्रमेण त्रीन् षट् द्वादश षोडश विंशतिं वा प्राणायामान् कृत्वा अंआंसौः इति करशुद्धिं विधाय। ऐंक्लींसौः हृदयाय नमः अंगुष्ठयोः। ३ शिरसे स्वाहा तर्जन्योः। ३ शिखायै वषट् मध्यमयोः। ३ कवचाय हुं अनामिकयोः। ३ नेत्रत्रयाय वौषट् कनिष्ठिकयोः। ३ अस्त्राय फट् करतलकरपृष्ठयोः। ३ हृदयाय नमो हृदये। ३ शिरसे स्वाहा शिरसि। ३ शिखायै वषट् शिखायाम्। ३ कवचाय हुं कवचे। ३ नेत्रत्रयाय वौषट् नेत्रत्रये। ३ अस्त्राय फडिति प्रसारिततलाभ्यां पाणिभ्यां तालत्रयपूर्वकं सशब्दं तर्जनीज्येष्ठायोगाद् दिग्विदिक्षूपर्यधो मध्ये विघ्नहृदस्त्रं न्यसेदिति षडङ्गं कृत्वा सन्ध्यावन्दनं कुर्यात्। तदुक्तं तन्त्रराजे—

नाथैस्तत्त्वैश्च नित्याभिः कालनित्या तु विद्यया। आधारे हृदये शीर्षे वह्नौ सूर्ये निशाकरे ॥१॥
ध्यायंस्त्रिसन्ध्यं प्रजपेत्सवर्गं व्यञ्जनस्वरम्। न्यसेच्च मातृकास्थाने तदा तद्देहशुद्धये ॥२॥ इति।

विशेषस्तु त्रिपुरार्णवे—

सन्ध्या चतुर्विधा ज्ञेया बाला कौमारयौवना। प्रौढा च निष्कला चेति सन्ध्या देवि प्रकीर्तिता ॥१॥
प्रातःकाले महादेवी विद्या वागीश्वरी मता। कामेश्वरी च मध्याह्ने सायाह्ने पुरभैरवी ॥२॥
मध्यरात्रे महादेवी ज्ञेया त्रिपुरसुन्दरी। इति।

ततः स्वपुरतो धेनुमुद्रया जलममृतीकृत्य मूलेनाष्टवारमभिमन्त्र्य तेन जलेन कुशैरकारादिक्षकारान्तैः सबिन्दुमातृकाक्षरैः प्रत्यक्षरं स्वशिरः प्रोक्ष्य मूलविद्यया त्रिः प्रोक्ष्य सूर्यमण्डले देवीं यथोक्तरूपां ध्यात्वा, दक्षहस्तेन जलमादाय लंवंरंयंहं इति मन्त्रैः सप्तवारमभिमन्त्र्य मूलेन च त्रिवारमभिमन्त्र्य, तज्जलबिन्दुभिरंगुष्ठानामिकाभ्यां मूलविद्यया स्वशिरः प्रोक्ष्यावशिष्टजलं वामहस्ते निधाय तेजोरूपं तज्जलमिडयाकृष्य स्वदेहान्तःस्थितं सकलकलुषं प्रक्षाल्य, तज्जलं कृष्णवर्णं पिङ्गलया निर्गतं मत्वा तज्जलं पुनर्दक्षिणहस्ते कृत्वा स्ववामभागे ज्वलद्वज्रशिलां ध्यात्वा 'ॐ श्लीं पशुहुंफट्' इति पाशुपतास्त्रेण तस्यां शिलायामास्फाल्य, हस्तौ प्रक्षाल्य मूलविद्यया जलमादाय प्रवहन्नाड्या सहस्रदलकमलगतपरमामृतेनैकीभूतं विभाव्य, राजदन्तविवरान्नेत्रमार्गेण निर्गमय्य तज्जलं वामकरे निधाय, तेन जलेन 'अमृतमालिनि स्वाहा' इति मन्त्रेण स्वशिरस्त्रिः प्रोक्ष्य ह्लींश्रीं प्रथमकूटं आत्मतत्त्वं शोधयामि स्वाहा। २ द्वितीयकूटं विद्यातत्त्वं शोधयामि स्वाहा। २ तृतीयकूटं शिवतत्त्वं शोधयामि स्वाहा। समस्तविद्यामुच्चार्य सर्वतत्त्वं शोधयामि स्वाहा। एवमाचम्याञ्जलिना जलं गृहीत्वोत्थाय २ प्रथमकूटं वागीश्वर्यै विद्महे द्वितीयकूटं कामेश्वर्यै धीमहि तृतीयकूटं तन्नः शक्तिः प्रचोदयात् इति त्रिरर्घ्यं दत्त्वा 'ह्रांह्रींसः सूर्य एष तेऽर्घः स्वाहा' इति सूर्यायार्घ्यत्रयं दत्त्वा मूलविद्यया देवीं त्रिः सन्तर्प्य 'ह्रांह्रींसः सूर्यं तर्पयामि नमः' इति त्रिः सन्तर्प्य, मूलाधारे प्रथमकूटं तडित्कोटिसमप्रभं मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं सञ्चिन्त्य तत्तेजः सुषुम्नावर्त्मना ब्रह्मरन्ध्रं नीत्वा वहन्नासाध्वनाकाशस्थवह्निमण्डले समावाह्य तत्तेजस उद्भूतां वागीश्वरीं ध्यायेत्—

पीतां पीताम्बरां पीतस्रग्विभूषानुलेपनाम्। तडित्कोटिसमाभासां बालामक्षस्रगुज्ज्वलाम् ॥१॥
पुस्तकाब्जकराम्भोजां वह्निपीठनिषेदुषीम्। वाग्भवां वाग्भवोद्भूतां त्रीक्षणां सस्मितां स्मरेत् ॥२॥

इत्याकाशस्थवह्निमण्डलान्तर्ध्यात्वा 'प्रयमकूटं त्रिपुरावागीश्वरीपादुकां पूजयामि' इति गन्धादिभिः सम्पूज्य वाग्भवगायत्रीमुच्चार्य त्रिपुरावागीश्वर्यै अर्घ्यं कल्पयामि स्वाहा, इति त्रिरर्घ्याञ्जलिमुत्क्षिप्य पुनः 'प्रथमकूटं त्रिपुरावागीश्वरीपादुकां तर्पयामी'ति त्रिः सन्तर्प्य, श्रीगुरुं प्रणम्य पूर्ववत्करषडङ्गन्यासं विधाय मातृकान्यासस्थानेषु प्रणवत्रितारमूलविद्यातद्दिननित्याविद्या हंसः २ अं नमः इत्यादिमातृकां विन्यस्य पूर्वोक्तगायत्रीं यथाशक्ति जपित्वा वाग्भवगायत्रीं जपेत्। ऐं त्रिपुरादेव्यै विद्महे वागीश्वर्यै धीमहि तन्नः शक्तिः प्रचोदयात्, इति जपित्वा मूलविद्यां प्रातरित्थं जपेत्। यथा—

प्रातर्मूलाधारगते कमले वह्निमण्डले। वाग्बीजरूपां नित्यां तां विद्युत्पटलभास्वराम् ॥१॥
पुष्पबाणेक्षुकोदण्डपाशाङ्कुशलसत्कराम्। स्वेच्छागृहीतवपुषं युगनित्याक्षरात्मिकाम् ॥२॥
घटिकावरणोपेतां परितः प्राञ्जलीनथ। ज्ञानमुद्रावरकरान् वाग्भवोपास्तितत्परान् ॥३॥
नवनाथान् स्मरेन्मूलपङ्कजे योनिमण्डले। इति।

इत्थं सन्ध्याचतुष्टये ह्लींश्रींमूलं तद्दिननित्याविद्या हंसः अंआंइंईंउंऊंॠंॠंह्लींश्रींप्रकाशानन्दरूपिणीश्रीमहा-त्रिपुरसुन्दरीपा०। प्राग्वत् हंसः इत्यन्तमुच्चार्य ऌंॡंएंऐंओंऔंअंअः ह्लींश्रीं विमर्शानन्दरूपि०। पुनर्हंस इत्यन्तमुच्चार्य

कंखंगंघंङंह्लींश्रीं आनन्दानन्दरू०। पुनस्तथैवोच्चार्य चंछंजंझंञंह्लींश्रीं ज्ञानानन्दरू०। पुनस्तथैवोच्चार्य टंठंडंढंणंह्लींश्रीं सत्यानन्दरू०। पुनस्तथैव तंथंदंधंनंह्लींश्रीं पूर्णानन्दरू०। पुनस्तथैव पंफंबंभंमंह्लींश्रीं स्वभावानन्दरू०। पुनस्तथैवोच्चार्य यंरंलंवंशंह्लींश्रीं प्रतिभानन्दरू०। पुनरपि तथैव षंसंहंक्षंह्लींश्रीं सुभगानन्दरू०। इति नवनाथात्मकत्वेन मूलविद्यां जपेत्। ततस्तद्दिननित्याविद्यां यथाशक्ति जपेत्, इति कालनित्याजपः।

ततो मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं मूलविद्यामुद्यत्सूर्यसहस्रसमप्रभां ध्यायन् मूलविद्यामष्टोत्तरशतं जप्त्वा बहिराकाशस्थ-वह्निमण्डले पूर्वोक्तरूपां वाग्भवेश्वरीं ध्यायन् प्रातर्वाग्भवकूटमष्टोत्तरशतं जपेत्। ततः प्राणायामादिपूर्वकं कृतं जपं देव्यै निवेद्य प्रणम्य स्तुत्वा सूर्यमण्डलाद्वह्निमण्डलाच्च मूलदेवीं वाग्भवेश्वरीं च हृदये मूलाधारे च विसृज्य श्रीगुरुं प्रणमेत्। इति प्रातःसन्ध्याविधिः।

अथ कर्मकालेषु गुरुध्यानमुक्तं रुद्रयामले। दीक्षाकाले यथारूपं स्वस्यानुग्रहकर्मणि ॥
दृष्टं तत्तेन भावेन ध्यायन्नाह्निकमाचरेत्। इति।

गुरोरिति शेषः। एतद्गुरुध्यानं प्रातःस्मरणातिरिक्तस्थलेषु ज्ञेयम्—

प्रातःसन्ध्येयमीशानि सर्वकर्मसु सर्वदा। कर्तव्या मन्त्रिणा नित्यं मन्त्रसिद्धिसमृद्धये ॥१॥
प्रातःसन्ध्यां परित्यज्य देवतापूजनं चरेत्। अशुद्धः स दुराचारः सर्वकर्मबहिष्कृतः ॥२॥
प्रातःसन्ध्यां परित्यज्य देवपूजादिकं चरेत्। होमान् कृत्वा महेशानि नारकी जायते नरः ॥३॥
प्रातःसन्ध्यां परित्यज्य होमं वा तर्पणं शिवे। कुर्वन्नकारणं विप्रस्त्यजञ् श्वा च भवेद्ध्रुवम् ॥४॥
पिशाचो जायते देवी अपि वेदाङ्गपारगः। सन्ध्यानामपि सर्वासां प्रातःसन्ध्या गरीयसी ॥५॥
तस्मात्तां न त्यजेद्विप्रस्त्यजन्नरकमाप्नुयात्।

इति त्रिपुरार्णववचनादियमवश्यं कर्तव्येति शिववचनम्। अथ घटिकापारायणत्वेन षष्टिजपं कुर्यात्। स च पञ्चभिर्दिवसैर्मातृकायाः षडावृत्तिरूपः। तथा तन्त्रराजे (२५.१२)—

आरभ्य भानोरुदयमेकशो घटिकाक्रमात्। एकैकं मातृकावर्णाः पञ्चाशत्परिवृत्तितः ॥१॥ इति।

सूर्योदयकालेऽकारः उदेति। ततो द्वितीयघटिकादिपञ्चाशद्घटिकापर्यन्तासु घटिकासु आकारादिक्षकारान्ता वर्णा विसर्गस्वररहिताः स्वस्वघटिकोदयकाले समुद्यन्ति। तत एकपञ्चाशत्तमघटिकामारभ्य शिष्टदशघटिकासु अकारादिलृकारान्ता दश वर्णाः स्वघटिकोदयकाले समुद्यन्ति। इत्थं द्वितीयदिवसे सूर्योदयकाले एकार उदेति, ततः स्वघटिकोदयकाले ऐकाराद्या एकोनचत्वारिंशद्वर्णाश्चाकाराद्याः विंशतिवर्णाश्च समुद्यन्ति। तृतीयदिवसे सूर्योदये चकार उदेति, ततः स्वस्वघटिकोदयकाले छकारादिक्षकारान्ता (अकारादिणकारान्ताश्च) एकोनषष्टिवर्णाः समुद्यन्ति। चतुर्थदिवसे सूर्योदयकाले तकार उदेति, ततः (स्व)स्वघटिकोदयकाले थकारादिक्षकारान्ता अकारादिमकारान्ताश्च एकोनषष्टिवर्णाः समुद्यन्ति। पञ्चमदिवसे सूर्योदयकाले यकार उदेति, ततः स्वस्वघटिकोदयकाले यादिक्षकारान्ता-(अकारादिक्षकारान्ता)श्चैकोनषष्टिवर्णा समुद्यन्ति। एवं पञ्चभिर्दिवसैर्मातृकायाः षडावृत्तिर्भवति। एवं क्रमेणैभिर्वर्णैर्घटिका-पारायणाख्यः षष्टिजपः कार्यः।

तत्प्रकारः प्रदर्श्यते—तत्राकारादिक्षान्ताः पञ्चाशद्वर्णा विसर्गरहिता दश दश भूत्वा पञ्च वर्गा अत एव तन्नामानो भवन्ति, तैः षष्टिजपः कार्यः। तत्प्रकारस्तु—२ मूलं तद्दिननित्याविद्या हंसः अं नमः। (एवं क्षान्तान् पञ्च वर्गान् जप्त्वा पुनरकारादिलृकारान्तं प्रथमं वर्गमावर्तयेत्। एवं षष्टिजपः। द्वितीयदिने) २ मूलं तद्दिननित्याविद्या हंसः एं०। एवं क्षान्तांश्चतुरो वर्गानावर्त्य पुनराद्यद्वितीयवर्गावावर्तयेत्। एवं षष्टिजपः। तृतीयदिने २ मूलं तद्दिननित्याविद्या हंसः चं०। एवं क्षान्तांस्त्रीन् वर्गान् (जप्त्वा पुनरकारादिणकारान्तान् त्रीन् वर्गा)नावर्तयेत्। एवं ६०। (चतुर्थदिने २

मूलं तद्दिननित्याविद्या हंसः तं०। एवं क्षान्तौ द्वौ वर्गौ जप्त्वा पुनः अकारादिमकारान्तान् चतुरो वर्गानावर्तयेत्। एवं ६०) पञ्चमदिने २ मूलं तद्दिननित्याविद्या हंसः यं०। एवं क्षान्तं वर्ग जपित्वा पुनरकारादिक्षकारान्तान् पञ्चाशद्वर्णानावर्तयेत्। एवं षष्टिजपः। एवं षडावृत्तयः। ततः षष्ठे षष्ठे दिने पुनरकारादित आरभ्योक्तरीत्या घटिकापारायणजपमनवरतं कुर्यात्।

अत्राधुना वर्तमानसमये साधकैर्ज्योतिःशास्त्रोक्तप्रकारेणाहर्गणेन कलियुगस्य गतदिनानि ज्ञात्वा स्वक्रमारम्भदिनपर्यन्तं गणयित्वा पञ्चभिराहत्योर्वरितदिनेनोदयाक्षरं ज्ञात्वा यस्मिन् दिने अकार उदयाक्षरं भवति तस्मिन् दिने आरभ्य घटिकापारायणं प्रोक्तक्रमेण कार्यमिति घटिकापारायणजपः प्रातरेव कार्यः।

प्रातःकृत्य के बाद सन्ध्या का वर्णन––उत्तम साधक प्रातः प्रबोधकाल में अपनी आत्मा में त्रिपुरात्मा की भावना करके ज्योतिस्वरूप नाथपाद को अपने मूर्धा में स्थापित करते हुये अपने-आपको नाथस्वरूप ही समझे तदनन्तर करशुद्धि, षडङ्ग, चतुरासन, वाग्देवता अष्टक न्यास करके 'नमस्ते नाथ भगवन्' इत्यादि श्लोकों से स्तुति करते हुये 'ह्रीं श्रीं हसक्षमलवयरूं अमुकानन्दनाथ ह्रीं श्रीं सहक्षमलवयरीं अमुकदेव्यम्बापादुकां पूजयामि' कहकर गुरुमन्त्र का यथाशक्ति जप करे। मूलाधार से मूर्धा तक कुण्डलिनी का गमनानुसन्धान करते हुये अपने को त्रिपुरात्मा होने की भावना करके त्रिपुरार्णवोक्त निम्न स्तोत्र का पाठ करे—

प्रातर्नमामि जगतां जनन्याश्चरणाम्बुजम्। श्रीमत्त्रिपुरसुन्दर्या जनन्या जगतां सदा।।
प्रसन्नायाः स्वभक्तानां नमिताया हरादिभिः। प्रातस्त्रिपुरसुन्दर्या नमामि चरणाम्बुजम्।।
हरिर्हरो विरिञ्चिश्च सृष्ट्यादीन् कुरुते यया। (प्रातस्त्रिपुरसुन्दर्या नमामि पदपङ्कजम्)।।
यत्पाद्यमम्बु शिरसि भाति गङ्गा महेशितुः। प्रातः पाशाङ्कुशशरपाशहस्तां नमाम्यहम्।।
उद्यदादित्यसङ्काशां श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीम्। प्रातर्नमामि पादाब्जं ययेदं भासते जगत्।।
तस्यास्त्रिपुरसुन्दर्या यत्प्रासादान्निवर्तते। यः श्लोकपञ्चकमिदं प्रातर्नित्यं पठेन्नरः।।
तस्मै दद्यादात्मपदं श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी।

इस प्रकार की स्तुति करके उद्वासन करे। मन्त्र है—
नानावर्णायुधाकारवाहनाभरणाः स्त्रियः। सर्वगाः सर्वदाः सर्वसिद्धिदा बलिदानतः।।

तदनन्तर अपने आगे आधार पर अन्न-व्यञ्जन-पुष्प-जलपूर्ण पात्र 'ॐ ह्रीं सर्वविघ्नकृद्भ्यः सर्वभूतेभ्यो हूं स्वाहा' इस षोडशाक्षर मन्त्र से करतल के तीन स्फालन से दोनों तर्जनियों को सीधी करके बन्धी मुट्ठी को नीचे-ऊपर करके स्थिति रूप देवताओं को निवेदित बलि द्रव्य दर्शन रूप मुद्रा से बलि प्रदान करे। उसके बाद आवश्यक क्रिया करके 'क्लीं कामदेवाय सर्वजनप्रियाय नमः' मन्त्र से दतुवन करे। मूल दिन नित्या से मुख धोये। स्नान-तिलक करे। तब वैदिक सन्ध्या के बाद तान्त्रिक सन्ध्या करे। उसके लिये तीन आचमन करके प्राणायाम करे। मूलाधार, हृदय, आज्ञा चक्र में श्रीविद्या के तीन कूटों का स्मरण करे। उसकी लाल प्रभा से अपने शरीर को लाल होने की भावना करे। वाम नासा से अमृत वायु से पूरक करे। जलरूप वायु के दक्षिण नासा से रेचक करे। तब बत्तीस मात्रा से पूरक करे। एक सौ अट्ठाईस मात्रा से कुम्भक करे और चौंसठ मात्रा से रेचक करे। इस क्रम से तीन, छः, बारह, सोलह या बीस प्राणायाम करे। तत्पश्चात् अं आं सौः से करशुद्धि करे। तब न्यास करे—ऐं क्लीं सौं हृदयाय नमः अंगुष्ठयोः। ऐं क्लीं सौं स्वाहा तर्जन्योः। ऐं क्लीं सौः शिखायै वषट् मध्यमयोः। ऐं क्लीं सौः कवचाय हुं अनामिकयोः। ऐं क्लीं सौः नेत्रत्रयाय वौषट् कनिष्ठिकयोः। ऐं क्लीं सौ अस्त्राय फट् करतलपृष्ठयोः। ऐं क्लीं सौः हृदयाय नमो हृदये। ऐं क्लीं सौः शिरसे। स्वाहा शिरसि ऐं क्लीं सौः शिखायै वषट् शिखायाम्। ऐं क्लीं सौः कवचाय हुं कवचे। ऐं क्लीं सौः नेत्रत्रयाय वौषट् नेत्रत्रयै। ऐं क्लीं सौः अस्त्राय फट् कहकर हाथों के प्रसारित तलों से तीन ताली बजाकर तर्जनी मध्यमा योग से दिशाओं-विदिशाओं में, ऊपर-नीचे करके मध्य में विघ्नहारी अस्त्र का न्यास-षडङ्ग न्यास करने के बाद सन्ध्यावन्दन करे। जैसा कि तन्त्रराज में कहा भी गया है—

नाथ, तत्त्व, नित्या, कालनित्या विद्या से आधार, हृदय, शिर में अग्नि-सूर्य-चन्द्र का ध्यान करके तीनों सन्ध्याओं

को करे। सवर्ग व्यञ्जन-स्वर का जप करे। मातृकास्थानों में इनका न्यास करे। ऐसा करने से देहशुद्धि होती है। त्रिपुरार्णव में कहा गया है कि सन्ध्या चार प्रकार की होती है—बाला, कौमारयौवना, प्रौढ़ा और निष्कला। यह प्रात:काल में महादेवी विद्या वागीश्वरी रूपा होती है। मध्याह्न में कामेश्वरी रूपा होती है। सायंकाल त्रिपुरभैरवी स्वरूपा होती है एवं आधी रात की सन्ध्या को महादेवी महात्रिपुरसुन्दरी कहते हैं।

इसके बाद अपने आगे धेनुमुद्रा से जल का अमृतीकरण करके उस जल को मूल मन्त्र के आठ जप से अभिमन्त्रित करे। उस अभिमन्त्रित जल से कुश के द्वारा अं से क्षं तक की मातृकाओं में से प्रत्येक मातृका से अपने शिर का प्रोक्षण करके मूल विद्या से तीन बार प्रोक्षण कर सूर्यमण्डल में देवी का ध्यान यथोक्त रूप से करके दाहिने हाथ में जल लेकर लं वं रं यं हं से सात बार अभिमन्त्रित करे। मूल मन्त्र से तीन बार अभिमन्त्रित करे। उस जलबिन्दु से अंगुष्ठ-अनामिका मिलाकर मूल विद्या से अपने शिर का प्रोक्षण करे। बचे हुए जल को बाँयें हाथ में लेकर तेजोरूप उस जल को इडा से आकर्षित कर अपने देह में स्थित सभी कलुषों को प्रक्षालित करे। तब उस जल को काले रङ्ग का मानकर पिङ्गला नाड़ी से बाहर निकाले। उस जल को फिर दाहिने हाथ में लेकर अपने बाँएँ भाग में ज्वलित वज्रशिला का ध्यान करके 'ॐ श्लीं पशु हुं फट्' इस पाशुपतास्त्र मन्त्र द्वारा उस शिला पर पटक दे। हाथ धोकर मूल विद्या से जल लेकर प्रवहमान नाड़ी से आकर्षित करके सहस्रदल कमलगत परमामृत से मिलाकर राजदन्त विवर से नेत्र मार्ग से बाहर निकालकर उस जल को बाँएँ हाथ में रखकर उस जल से 'अमृतमालिनी स्वाहा' के द्वारा अपने शिर का प्रोक्षण तीन बार करे ह्रीं श्रीं प्रथमकूटं आत्मतत्त्वं शोधयामि स्वाहा—ह्रीं श्रीं द्वितीयकूटं विद्यातत्त्वं शोधयामि स्वाहा, ह्रीं श्रीं तृतीयकूटं शिवतत्त्वं शोधयामि स्वाहा। समस्त विद्या का उच्चारण करके सर्वतत्त्वं शोधियामि स्वाहा कहकर चार बार आचमन करके अञ्जलि में जल ग्रहण करके यह मन्त्र पढ़े 'ह्रीं श्रीं प्रथमकूटं वागीश्वर्यै विद्महे द्वितीयकूटं कामेश्वर्यै धीमहि तृतीयकूटं तन्नः शक्तिः प्रचोदयात्' इस मन्त्र से तीन अर्घ्य प्रदान करे। 'ह्रां ह्रीं सः सूर्य एष ते अर्घः स्वाहा' से सूर्य को तीन अर्घ्य देकर मूल विद्या से देवी का तर्पण तीन बार करे। 'ह्रां ह्रीं सः सूर्यः तर्पयामि नमः' से तीन बार तर्पण करे। मूलाधार में प्रथम कूट का ध्यान करोड़ों बिजली की प्रभा के रूप में करे। मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक का चिन्तन करे। उस तेज को सुषुम्ना मार्ग से ब्रह्मरन्ध्र में लाकर प्रवहमान नासामार्ग से आकाशस्थ अग्निमण्डल में आवाहन करे। उस तेज से उत्पन्न वागीश्वरी का ध्यान इस प्रकार करे—

पीतां पीताम्बरां पीतस्रग्विभूषानुलेपनाम्। तडित्कोटिसमाभासां बालामक्षस्रगुज्ज्वलाम्।।
पुस्तकाब्जकराम्भोजां वह्निपीठनिषेदुषीम्। वाग्भवां वाग्भवोद्भूतां त्रीक्षणां सस्मितां स्मरेत्।।

इस प्रकार आकाशस्थ अग्निमण्डल में वागीश्वरी का ध्यान करके 'प्रथमकूटं त्रिपुरावागीश्वरीपादुकां पूजयामि' मन्त्र से वागीश्वरी का पूजन गन्धादि से करे। वाग्भव गायत्री का उच्चारण करके 'त्रिपुरावागीश्वर्यै अर्घ्यं कल्पयामि स्वाहा' से तीन अंजलि अर्घ्य प्रदान करे। फिर प्रथमकूटं त्रिपुरावागीश्वरीपादुकां तर्पयामि कहकर तीन बार तर्पण करे। श्री गुरु को प्रणाम करके। पूर्ववत् करन्यास और षडङ्ग न्यास करने के बाद। मातृकान्यास स्थानों में ॐ ऐं ह्रीं श्रीं, मूल विद्या, उस दिन की नित्या विद्या, हंसः ह्रीं श्रीं अं नमः इत्यादि मातृकाओं का न्यास करके पूर्वोक्त गायत्री का यथाशक्ति जप करके वाग्भव गायत्री का जप करे। 'ऐं त्रिपुरादेव्यै विद्महे वागीश्वर्यै धीमहि तन्नः शक्तिः प्रचोदयात्' का जप करके मूल विद्या का जप करे।

इस प्रकार चारो सन्ध्याओं में ह्रीं श्रीं, मूल विद्या, उस दिन की नित्या विद्या, हंसः, अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ह्रीं श्रीं प्रकाशानन्दरूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि। पूर्ववत् हंसः तक कहकर ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः ह्रीं श्रीं विमर्शानन्दरूपिणीपादुकां पूजयामि, फिर हंसः कं खं गं घं ङं ह्रीं श्रीं आनन्दानन्दरूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि। फिर उसी प्रकार कहकर चं छं जं झं ञं ह्रीं श्रीं ज्ञानोनन्दरूपिणी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि। फिर उसी प्रकार कहकर टं ठं डं ढं णं ह्रीं श्रीं सत्यानन्दरूपिणी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि। फिर उसी प्रकार कहकर तं थं दं धं नं ह्रीं श्रीं पूर्णानन्दरूपिणी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि। फिर उसी प्रकार कहकर पं फं बं भं मं ह्रीं श्रीं स्वभावानन्दरूपिणी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि। फिर उसी प्रकार कहकर यं रं लं वं शं ह्रीं श्रीं प्रतिभानन्दरूपिणी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि फिर उसी प्रकार

कहकर षं सं हं क्षं ह्रीं श्रीं सुभगानन्दरूपिणी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि। तदनन्तर नव-नाथात्मक रूप में मूल विद्या का जप करे। उस दिन की नित्या विद्या का यथाशक्ति जप करे। यही कालनित्या जप होता है।

तदनन्तर मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक मूल विद्या का ध्यान हजारो उदीयमान सूर्यप्रभा के समान करे। मूलविद्या का एक सौ आठ बार जप करे। बाहर आकाशस्थित वह्निमण्डल में पूर्वोक्त स्वरूप वाली वाग्भवेश्वरी का ध्यान करते हुये प्रात:काल में वाग्भवकूट का एक सौ आठ जप करे। तब प्राणायामादि के बाद जप का निवेदन देवी को करे। प्रणाम करके स्तुति करे। सूर्य मण्डल और वह्निमण्डल से मूल देवी और वाग्भवेश्वरी को हृदय में एवं मूलाधार में विसर्जित कर गुरु को प्रणाम करे। यही प्रात:सन्ध्या की विधि है। प्रात:स्मरण के अतिरिक्त समय में गुरु के ध्यान का स्वरूप रुद्रयामल में इस प्रकार बताया गया है—दीक्षा के समय एवं अपने ऊपर अनुग्रह करते समय गुरु जिस रूप में अवस्थित होता है, उसी रूप का ध्यान करते हुये आह्निक कर्म करना चाहिये।

त्रिपुरार्णव में कहा गया है इस प्रात:सन्ध्या को मन्त्रसिद्धि एवं अपनी समृद्धि के लिये हर समय करना चाहिये। इस प्रात: सन्ध्या को बिना किये यदि कोई देवता का पूजन करता है तो अशुद्ध एवं दुराचारी होने के कारण समस्त कर्मों से बहिष्कृत करने लायक होता है, इसी प्रकार प्रात:सन्ध्या किये बिना जो देव पूजा एवं होम करता है, वह नारकी होता है। इसी प्रकार प्रात:सन्ध्या से रहित व्यक्ति यदि होम या तर्पण करता है तो अकार्य करने वाला वह ब्राह्मण कुत्ता होने के कारण त्याज्य होता है, वेद-वेदाङ्ग में निष्णात होने पर भी वह पिशाच योनि को प्राप्त होता है। समस्त सन्ध्याओं में प्रात:सन्ध्या सर्वश्रेष्ठ है; अत: ब्राह्मण को उसका त्याग नहीं करना चाहिये, प्रात:सन्ध्या का त्याग करने वाला ब्राह्मण नरक को प्राप्त करता हैं; इसलिये प्रात:सन्ध्या अवश्य करनी चाहिये। ऐसा भगवान् शिव को आदेश है।

तदनन्तर घटिका-पारायण के रूप में साठ जप करे। यह पारायण पाँच दिनों में मातृकाओं की छ: आवृत्तिस्वरूप होता है। तन्त्रराज में कहा भी है कि सूर्योदय के पश्चात् एक-एक घटी के क्रम से एक-एक मातृकावर्णों की पचास-पचास आवृत्ति करनी चाहिये।

सूर्योदय काल में अकार का उदय होता है। उससे द्वितीय घटिका से पचास घटिका तक आकार से क्षकार तक के वर्ण विसर्ग-स्वररहित अपनी-अपनी घटिका में उदित होते हैं। तब इक्यावन घटिका से शेष दश घटिका में अकार से लृकार तक के दश वर्ण अपनी-अपनी घटिका उदय काल में उदित होते हैं।

इसी प्रकार दूसरे दिन के सूर्योदय काल में एकार उदित होता है। अपने घटिकोदय काल में ऐकारादि उनचालीस वर्ण एवं आकारादि बीस वर्ण उदित होते हैं। तीसरे दिन सूर्योदय के समय चकार उदित होता है। तब अपने-अपने घटिकोदय काल में छ से लेकर क्ष तक के वर्ण उदित होते है। साथ ही अकार से णकार तक के उनसठ वर्ण उदित होते हैं। चौथे दिन सूर्योदय काल में तकार उदित होता है। तब अपने-अपने घटिकोदय काल में थकार से क्षकार तक के वर्ण और अकार से मकार तक के उनसठ वर्ण उदित होते हैं। पाँचवें दिन सूर्योदय काल में यकार उदित होता है। तब अपने-अपने घटिकोदय काल में य से क्ष तक के एवं अकार से क्षकार तक के उनसठ वर्णों का उदय होता है। इस प्रकार पाँच दिनों में मातृकाओं की छ: आवृत्ति होती है। इस क्रम से वर्णो का घटिका-पारायण नामक साठ जप होता है। उसकी प्रक्रिया इस प्रकार होती है—

अकार से क्षकारान्त पचास विसर्गरहित वर्ण दस-दस के विभाग से पाँच वर्गों में विभाजित होते हैं, उनसे साठ जप करना चाहिये, जैसे कि पहले दिन ह्रीं श्रीं, मूल, उस दिन की नित्या विद्या एवं हंस: अं नम:। इस प्रकार क्षान्त पाँच वर्गों का जप करके पुन: अकार से लृकार तक के प्रथम वर्ग का आर्वतन करना चाहिये। इस प्रकार साठ जप होता है। दूसरे दिन मूल दिन, नित्या विद्या, हंस: एं नम:। इस प्रकार क्षान्त चारो वर्गो का आवर्तन करे। फिर आद्य द्वितीय वर्ग का आर्वतन करे। इस प्रकार साठ जप होता है। तृतीय दिन ह्री श्रीं, मूल, दिन की नित्या विद्या, हंस: च। इस प्रकार क्षान्त तीन वर्गों का जप करके पुन: अकार से णकार तक तीन वर्गों का आर्वतन करे। इस प्रकार साठ जप होते है। चौथे दिन ह्रीं श्रीं, मूल, दिन नित्या विद्या, हंस: तं नम:। पुन: क्षकार तक के दो वर्गों का जप करके अकार से मकार तक के चार वर्गों का आर्वतन करे।

इससे साठ जप होता है। पाँचवें दिन ह्रीं श्रीं मूल दिन नित्या विद्या हंसः यं नमः। इस प्रकार क्षान्त वर्ग के जप के बाद पुनः अकार से क्षकार तक पचास वर्णों का आर्वतन करे। इससे साठ जप होता है। इस प्रकार छः आवृत्ति होती है। तब छठे दिन पुनः अकारादि से आरम्भ करके उक्त रीति से घटिका पारायण जप अनवरत करे। वर्तमान समय में साधकों द्वारा ज्योतिषशास्त्रोक्त प्रकार से अहर्गण से कलियुग के गत दिनों को ज्ञात करके स्वक्रमारम्भ दिन तक गणना करके पाँच से भाग देने पर दिनोदय अक्षर ज्ञात करके जिस दिन अकार उदित हो, उस दिन से आरम्भ करके घटिकापारायण उक्त क्रम से प्रातःकाल में ही करना चाहिये।

मध्यन्दिनसन्ध्या

अथ मध्यन्दिनसन्ध्या—तत्र प्राणायामादिसूर्यतर्पणपर्यन्तं प्रातःसन्ध्यावदेव विधाय बीजसन्ध्यां कुर्यात्। तद्यथा—तत्र मध्याह्नेऽनाहतचक्रे मूलविद्यायाः कामराजकूटं रक्तवर्णं ध्यायेत्। तत्तेजः सुषुम्नामार्गेण वहन्नासापुटाध्वना निःसार्य सूर्यमण्डले समावाह्य तदुद्भूतां कामेश्वरीं ध्यायेत्। यथा—

रक्तां सुरक्ताम्बरभूषणाढ्यां पाशाङ्कुशाभीतिवरान् दधानाम्।
शुचिस्मितामुद्भटयौवनाढ्यां कामेश्वरीं संस्मरत त्रिनेत्राम् ॥१॥

इति ध्यात्वा, २ कामराजकूटं श्रीत्रिपुराकामेश्वरीपा० इति त्रिः सम्पूज्य, पुनः कामराजकूटगायत्रीमुच्चार्य श्रीत्रिपुराकामेश्वर्यै अर्घ्यं कल्पयामि स्वाहा इति त्रिरर्घ्याञ्जलिमुत्क्षिप्य, पुनः कामराजकूटमुच्चार्य श्रीत्रिपुराकामेश्वरीपादुकां तर्पयामि इति त्रिः सन्तर्प्य, प्राणायामादिपुरःसरं पूर्ववन्मातृकां विन्यस्य, प्राग्वत् तुरीयविद्यागायत्रीं जपित्वा कामकूटगायत्रीं जपेत्। सा यथा—क्लीं त्रिपुरादेव्यै विद्महे कामेश्वर्यै धीमहि तन्नः क्लिन्ना प्रचोदयात्। इति यथाशक्ति जपित्वा षट्त्रिंशत्तत्त्वात्मकत्वेन मूलविद्यां जपेत्। तद्यथा—

मध्याह्ने हृदयाम्भोजकर्णिके सूर्यमण्डले। कामराजात्मिकां देवीमर्ककोटिसमप्रभाम् ॥१॥
प्रसूनबाणपुण्ड्रेक्षुचापपाशाङ्कुशान्विताम्। परितश्चात्ममुख्याभिः षट्त्रिंशत्तत्त्वशक्तिभिः ॥२॥
रक्तमाल्याम्बरालेपभूषाभिः परिवारिताम्। युगनित्याक्षरमयीं घटिकावरणां स्मरेत् ॥३॥
पुष्पबाणेक्षुकोदण्डधराः शोणवपुर्धराः। हृत्पङ्कजे च ताः कामराजोपास्तिपरायणाः ॥४॥

इति देवीं ध्यात्वा, २ मूलविद्या तद्दिननित्याविद्या हंसः अं १६ शिवतत्त्वरूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादु०। २ मूलं दिननित्याविद्या हंसः कंशक्तितत्त्व०। २ मूलं दिननित्याविद्या हंसः खंसदाशिवतत्त्वरू०। एवं गंईश्वरतत्त्वरू०। घंशुद्धविद्यातत्त्वरू०। ङंमायातत्त्वरू०। चङ्कलातत्त्वरू०। छंविद्यातत्त्वरू०। जंरागतत्त्वरू०। झंकालतत्त्वरू०। ञंनियतितत्त्वरू०। टंपुरुषतत्त्वरू०। ठंप्रकृतितत्त्वरू०। डंअहङ्कारतत्त्वरू०। ढंबुद्धितत्त्वरू०। णंमनस्तत्त्वरू०। तंश्रोत्रतत्त्वरू०। थंत्वक्तत्त्वरू०। दंचक्षुस्तत्त्वरू०। धंजिह्वातत्त्वरू०। नंघ्राणतत्त्वरू०। पंवाक्तत्त्वरू०। फंपाणितत्त्वरू०। बंपादतत्त्वरू०। भंपायुतत्त्वरू०। मंउपस्थतत्त्वरू०। यंशब्दतत्त्वरू०। रंस्पर्शतत्त्वरू०। लंरूपतत्त्व०। वंरसतत्त्व०। शङ्गन्धतत्त्व०। षंआकाशतत्त्व०। संवायुतत्त्व०। हंतेजस्तत्त्व०। ळं जलतत्त्व०। २ मूलं दिननित्याविद्या हंसः क्षंपृथिवीतत्त्वरू०। इति षट्त्रिंशतत्त्वयोगेन मूलविद्यां जपित्वा, ततः कालनित्याविद्यामष्टोत्तरशतं जपित्वा, हृदयकमलमध्ये कामराजकूटं बालार्ककोटिप्रभं हृदयादिमूलाधारान्तं व्याप्तरश्मिकदम्बकं च ध्यायन्, कामराजकूटमष्टोत्तरशतवारं जपित्वा प्राणायामादिपूर्वकं जपं समर्प्य प्रणम्य मूलदेवीं कामेश्वरीं हृदये विसृजेत्। इति मध्याह्नसन्ध्याविधिः।

मध्यन्दिन सन्ध्या—प्राणायामादि से सूर्यतर्पण-पर्यन्त प्रातःसन्ध्या के समान करके बीजसन्ध्या करे। जैसे मध्याह्न में अनाहत चक्र में मूल विद्या के लाल वर्ण कामराजकूट का ध्यान करे। उसके तेज को सुषुम्ना मार्ग से प्रवहमान नासापुट से निकालकर सूर्यमण्डल में आवाहित करके उसमे उद्भूत कामेश्वरी का इस प्रकार ध्यान करे—

रक्तां सुरक्ताम्बरभूषणाढ्यां पाशाङ्कुशाभीतिवरान् दधानाम्। शुचिस्मितामुद्भटयौवनाढ्यां कामेश्वरीं संस्मरत त्रिनेत्राम्॥

इस प्रकार ध्यान करके 'कामराजकूटं श्रीत्रिपुराकामेश्वरीपादुकां पूजयामि' से तीन बार पूजन करने के पश्चात् कामराज कूट गायत्री को कहकर 'श्रीत्रिपुराकामेश्वर्यै अर्घ्यं कल्पयामि स्वाहा' से तीन अर्घ्याञ्जलि दान करे। फिर कामराज कूट कहकर श्रीत्रिपुराकामेश्वरीपादुकां तर्पयामि से तीन बार तर्पण करे। तब प्राणायामादि करके पूर्ववत् मातृका न्यास करके पूर्ववत् तुरीया गायत्री का जप करके कामकूट गायत्री का जप करे। जैसे—क्लीं त्रिपुरादेव्यै विद्महे कामेश्वर्यै धीमहि तन्न: क्लिन्ना प्रचोदयात्। इसका यथाशक्ति जप करके छत्तीस तत्त्वात्मक मूल विद्या का जप करे। जैसे—

मध्याह्ने हृदयाम्भोजकर्णिके सूर्यमण्डले। कामराजात्मिकां देवीमर्ककोटिसमप्रभाम्।।
प्रसूनबाणपुण्ड्रेक्षुचापपाशाङ्कुशान्विताम्। परितश्चात्ममुख्याभि: षट्त्रिंशत्तत्त्वशक्तिभि:।।
रक्तमाल्याम्बरालेपभूषाभि: परिवारिताम्। युगनित्याक्षरमयीं घटिकावरणां स्मरेत्।।
पुष्पबाणेक्षुकोदण्डधरा: शोणवपुर्धरा:। हृत्पङ्कजे च ता: कामराजोपास्तिपरायणा:।।

इस प्रकार देवी का ध्यान करने के बाद ह्रीं श्रीं मूल विद्या दिननित्या विद्या हंस: अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अ: शिवतत्त्वरूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं मूल दिननित्याविद्या हंस: कं शक्तितत्त्वरूपिणी-श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं मूल दिननित्या विद्या हंस: खं सदाशिवतत्त्वरूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि। इसी प्रकार गं ईश्वरतत्त्वरूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि। घं शुद्धविद्यातत्त्वरूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि। ङं मायातत्त्वरूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि। चं कलातत्त्वरूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि। छं विद्यातत्त्वरूपिणी-श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि। जं रागतत्त्वरूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि। झं कालतत्त्वरूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि। ञं नियतितत्त्वरूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि। टं पुरुष तत्त्वरूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि। ठं प्रकृतितत्त्वरूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि। डं अहङ्कारतत्त्वरूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि। ढं बुद्धितत्त्वरूपिणी-श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि। णं मनस्ततत्त्वरूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि। तं श्रोत्रतत्त्वरूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि। थं त्वक्तत्त्वरूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि। दं चक्षुतत्त्वरूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि। धं जिह्वा-तत्त्वरूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि। नं घ्राणतत्त्वरूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि। पं वाक्तत्त्वरूपिणीश्रीमहात्रिपुर-सुन्दरीपादुकां पूजयामि। फं पाणितत्त्वरूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि। बं पादतत्त्वरूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि। भं पायुतत्त्वरूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि। मं उपस्थतत्त्वरूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि। यं शब्दतत्त्वरूपिणी-श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि। रं स्पर्शतत्त्वरूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि। लं रूपतत्त्वरूपिर्णाश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि। वं रसतत्त्वरूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि। शं गन्धतत्त्वरूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि। षं आकाश-तत्त्वरूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि। सं वायुतत्त्वरूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि। हं तेजतत्त्वरूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी-पादुकां पूजयामि। ळं जलतत्त्वरूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं मूल दिननित्या विद्या हंस: क्षं पृथिवीतत्त्व-रूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि। इस प्रकार छत्तीस तत्त्वयोग से मूल विद्या का जप करके काल नित्या विद्या का एक सौ आठ जप करके हृदय कमल में कामराज कूट का ध्यान कोटि बाल सूर्यप्रभा के समान हृदय से मूलाधार तक व्याप्त रश्मिकदम्बक रूप से करे। कामराज कूट का एक सौ आठ बार जप करे। तदनन्तर प्राणायाम करके जप का समर्पण करे, प्रणाम करे एवं मूल देवी कामेश्वरी का हृदय में विसर्जन करे।

सायंसन्ध्या

अथ सायंसन्ध्याविधि:—तत्र प्राणायामादिसूर्यतर्पणान्तं प्राग्वद्विधाय बीजसन्ध्यां कुर्यात्। सायमाज्ञाचक्रे हक्षाख्ये चन्द्रमण्डले मूलविद्यायास्तृतीयकूटमुच्चार्य त्रिपुरामृतेश्वरीपा० इति गन्धादिभिस्त्रि: सम्पूज्य, वक्ष्यमाणतार्तीय-कूटगायत्रीमुच्चार्य श्रीत्रिपुरामृतेश्वर्यै अर्घ्यं कल्पयामि स्वाहा इति त्रिरर्घ्यं दत्त्वा, पुनस्तार्तीयकूटमुच्चार्य श्रीत्रिपुरामृतेश्वरीं तर्पयामि इति त्रि: सन्तर्प्य, प्राणायामादिपूर्विकां तुरीयविद्यागायत्रीं प्राग्वज्जप्त्वा शक्तिकूटगायत्रीं जपेत्। यथा—२ सौ: त्रिपुरादेव्यै विद्महे शक्तिकामेश्वर्यै धीमहि तन्नोऽमृता प्रचोदयात्। इति शक्तिगायत्रीमष्टविंशतिवारं जपित्वा सायाह्ने षोडशनित्यात्मकत्वेन मूलविद्यां जपेत्; तद्यथा—

सायमाज्ञासरोजस्थचन्द्रे चन्द्रसमद्युतिम् । शक्तिबीजात्मिकां चापबाणपाशाङ्कुशान्विताम् ॥१॥
युगनित्याक्षरां देवीं घटिकावरणां पराम् । चिन्तयित्वा भगवतीं नित्याभिः परिवारिताम् ॥२॥
पुस्तकं चाक्षसूत्रं च दधानाः स्मेरवक्त्रकाः । नित्याः षोडश चाज्ञायां सायंकाले तु संस्मरेत् ॥३॥

इति देवीं ध्यात्वा, (१) २ मूलं दिननित्याविद्या हंसः कामेश्वरीविद्यामुच्चार्य अं कामेश्वरीनित्यारूपिणी-श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि नमः। (२) २ मूलं दिननित्याविद्या हंसः भगमालिनीविद्यामुच्चार्य आं भगमालिनीनित्यारूपिणीश्रीमहा०। (३) २ मूलं दिननित्याविद्या हंसः नित्यक्लिन्नाविद्यामुच्चार्य ईं नित्यक्लिन्ना-नित्यारूपिणीश्री०। (४) २ मूलं दिननित्याविद्या हंसः भेरुण्डाविद्यामुच्चार्य ईं भेरुण्डानित्यारूपिणी०। (५) २ मूलं दिननित्याविद्या हंसः वह्निवासिनीविद्यामुच्चार्य उं वह्निवासिनीनित्यारू०। (६) २ मूलं दिननित्याविद्या हंसः वज्रेश्वरीविद्यामुच्चार्य ऊं वज्रेश्वरीनित्यारू०। (७) २ मूलं दिननित्याविद्या हंसः शिवादूतीविद्यामुच्चार्य ऋं शिवादूतीनित्यारू०! (८) २ मूलं दिननित्याविद्या हंसः त्वरिताविद्यामुच्चार्य ॠं त्वरितानित्यारू०। (९) २ मूलं दिननित्याविद्या हंसः कुलसुन्दरीविद्यामुच्चार्य ऌं कुलसुन्दरीनित्यारू०। (१०) २ मूलं दिननित्याविद्या हंसः नित्यानित्याविद्यामुच्चार्य ॡं नित्यानित्यारू०। (११) २ मूलं दिननित्याविद्या हंसः नीलपताकाविद्यामुच्चार्य एं नीलपताकानित्यारू०। (१२) २ मूलं दिननित्याविद्या हंसः विजयाविद्यामुच्चार्य ऐं विजयानित्यारू०। (१३) २ मूलं दिननित्याविद्या हंसः सर्वमङ्गलाविद्यामुच्चार्य ओं सर्वमङ्गलानित्यारू०। (१४) २ मूलं दिननित्याविद्या हंसः ज्वालामालिनीविद्यामुच्चार्य औं ज्वालामालिनीनित्यारू०। (१५) २ मूलं दिननित्याविद्या हंसः विचित्रानित्याविद्यामुच्चार्य अं विचित्रानित्यारू०। (१६) २ मूलं दिननित्याविद्या हंसः पञ्चदशीविद्यामुच्चार्य अः श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीनित्यारूपिणीश्री०, इति षोडशनित्यात्मकत्वेन जपित्वा प्राग्वत् कालनित्याविद्यां च जपित्वा, भ्रूमध्यादिब्रह्मरन्ध्रान्तं तृतीयकूटं शरच्चन्द्रकोटिनिभं ध्यायन्नष्टोत्तरशतं तार्तीयकूटं जपेत्। ततः प्राणायामपूर्वकं जपं समर्प्य स्तुत्वा देवीं प्रणम्य सूर्यमण्डलस्थमूलदेवीममृतेश्वरीं हृदि भ्रूमध्ये च विसृजेत्। इति सायंसन्ध्याविधिः।

सायंसन्ध्या विधि—प्राणायामादि से सूर्यतर्पण तक की क्रिया पूर्ववत् करके बीजसन्ध्या करे। सायंकाल में आज्ञाचक्र के ह क्ष नामक चन्द्रमण्डल में मूल विद्या के तृतीय कूट का उच्चारण कर त्रिपुरा अमृतेश्वरीपादुकां पूजयामि से गन्धादि से तीन बार पूजा करने के बाद वक्ष्यमाण तार्तीय कूट गायत्री बोलकर त्रिपुरामृतेश्वर्यै अर्घ्यं कल्पयामि स्वाहा से तीन अर्घ्य प्रदान करे। फिर तार्तीय कूट कहकर श्री त्रिपुरामृतेश्वरीं तर्पयामि से तीन बार तर्पण करे। प्राणायामादि करके तुरीया विद्या गायत्री का पूर्ववत् जप करके 'ह्रीं श्रीं सौः त्रिपुरादेव्यै विद्महे शक्तिकामेश्वर्यै धीमहि तन्नो अमृता प्रचोदयात्'। इस शक्ति गायत्री का अट्ठाईस बार जप कर सायाह्न में षोडश नित्यात्मक मूल विद्या का जप करे। एतदर्थ सर्वप्रथम—

सायमाज्ञासरोजस्थचन्द्रे चन्द्रसमद्युतिम्। शक्तिबीजात्मिकां चापबाणपाशाङ्कुशान्विताम्।।
युगनित्याक्षरां देवीं घटिकावरणां पराम्। चिन्तयित्वा भगवतीं नित्याभिः परिवारिताम्।।
पुस्तकं चाक्षसूत्रं च दधानाः स्मेरवक्त्रकाः। नित्याः षोडश चाज्ञायां सायंकाले तु संस्मरेत्।।

इस प्रकार देवी का ध्यान करके—१. ह्रीं श्रीं मूल विद्या दिन नित्या विद्या हंसः कामेश्वरी विद्या अं कामेश्वरीनित्या-रूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि नमः। २. ह्रीं श्रीं मूल दिननित्या विद्या हंसः भगमालिनी विद्या आं भगमालिनीनित्या-रूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि नमः। ३. ह्रीं श्रीं मूल दिन नित्या विद्या हंसः नित्यक्लिन्ना विद्या हं नित्य क्लिन्ना नित्यारूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि नमः। ४. ह्रीं श्रीं मूल दिन नित्या विद्या हंसः भेरुण्डा विद्या ईं भेरुण्डानित्या रूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि नमः। ५. ह्रीं श्रीं मूल दिननित्या विद्या हंसः वह्निवासिनी विद्या उं वह्निवासिनी नित्यारूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि नमः। ६. ह्रीं श्रीं मूल दिन नित्या विद्या हंसः वज्रेश्वरी विद्या ऊं वज्रेश्वरी नित्या रूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि नमः। ७. ह्रीं श्रीं मूल दिन नित्या विद्या हंसः शिवादूती विद्या ऋं शिवादूती नित्या

रूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि नमः। ८. ह्रीं श्रीं मूल दिन नित्या विद्या हंसः त्वरिता विद्या ॠं त्वरिता नित्या रूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि नमः। ९. ह्रीं श्रीं मूल दिन नित्या विद्या हंसः कुल सुन्दरी विद्या ऌं कुलसुन्दरी नित्या रूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि नमः। १०. ह्रीं श्रीं मूल दिन नित्या विद्या हंसः नित्य नित्या विद्या ॡं नित्या नित्या रूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि नमः। ११. ह्रीं श्रीं मूल दिन नित्या विद्या हंसः नीलपताका विद्या एं नीलपताकानित्या रूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि नमः। १२. ह्रीं श्रीं मूल दिन नित्या विद्या हंसः विजयाविद्या ऐं विजयानित्या रूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि नमः। १३. ह्रीं श्रीं मूल दिन नित्या विद्या हंसः सर्वमङ्गला विद्या ओं सर्वमङ्गला नित्या रूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि नमः। १४. ह्रीं श्रीं मूल दिन नित्याविद्या हंसः ज्वालामालिनी विद्या औं ज्वालामालिनीनित्या रूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि नमः। १५. ह्रीं श्रीं दिननित्याविद्या हंसः विचित्रानित्याविद्या अं विचित्रा नित्या रूपिणीश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि नमः। १६. ह्रीं श्रीं दिन नित्याविद्या हंसः पञ्चदशी विद्या अः श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीनित्यारूपिणी-श्रीपादुकां पूजयामि नमः। इस प्रकार षोडश नित्याओं के जप के बाद पूर्ववत् कालनित्या विद्या का जप करे। भ्रूमध्य से ब्रह्मरन्ध्र तक तृतीय कूट का ध्यान करोड़ शरद चन्द्रप्रभा के समान करके तृतीय कूट का एक सौ आठ बार जप करे। तब प्राणायामपूर्वक जप समर्पित करके देवी की स्तुति करे, प्रणाम करके सूर्यमण्डलस्थ मूलदेवी अमृतेश्वरी का विसर्जन हृदय और भ्रूमध्य में करे।

अर्धरात्रसन्ध्या

ततोऽर्धरात्रे तुरीयसन्ध्यामुपासीत। सायं यथार्कमण्डले देवीध्यानं विना प्राणायामाद्याचमनपर्यन्तं पूर्ववद्विधाय, सहस्रारकमले तुरीयकूटं मूलविद्यात्रयोदशाक्षररूपं पद्मरागसमप्रभं ध्यात्वा वहन्नासापुटेन तारकमण्डलाद्बहिः परमाकाशे समावाह्य तदुद्भूतां भगवतीं यथोक्तरूपां ध्यायन् तुरीयकूटमुच्चार्य श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकायै अर्घ्यं कल्पयामि स्वाहेति त्रिरर्घ्यं दत्वा, पुनस्तुरीयकूटमुच्चार्य श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां सन्तर्पयामीति त्रिः सन्तर्प्य, प्राणायामादिपूर्वकं प्रागुक्तां तुरीयगायत्रीं यथाशक्ति जपित्वा कालनित्याविद्यामष्टोत्तरशतवारं जपित्वा प्राणायामादिपूर्वकं जपं समर्प्य देवीं स्तुत्वा परमाकाशात् सहस्रदलकमलकर्णिकायामुद्वास्य कामकलारूपमात्मानं ध्यायेत्। इति तुरीयसन्ध्याविधिः।

एतत्सन्ध्याचतुष्टयोपासनमेतद्विद्योपासकानामावश्यकम्। तत्राप्यशक्तौ ध्यानरूपमेवार्धरात्रसन्ध्योपासनं कार्यमिति। अकृते द्वितीयदिने प्रायश्चित्तार्थमष्टोत्तरशतं मूलविद्यां जपित्वा पुनः कर्म कर्तुमधिकारी भवति, इति शिवशासनम्। 'स्नानसन्ध्यार्चनालोपे जपेदष्टोत्तरं शत'मिति तन्त्रराजवचनात्। जपेन्मूलविद्यामिति शेषः, अत्र—

सन्ध्यालोपो न कर्तव्यः शम्भोराज्ञैवमेव हि। दीक्षितः सन्ध्यया हीनो न दीक्षाफलमश्नुते ॥१॥

इति वचनात् सन्ध्यचतुष्टयं साधकैरवश्यं कर्तव्यमिति। अत्र प्रमादात्सन्ध्यालोपो यदि भवति तदा त्वन्यसन्ध्यासमये प्रोक्तप्रायश्चित्तपूर्वकं पूर्वसन्ध्याक्रियां विधाय तत्कालसन्ध्यां कुर्यात्। उक्तं च त्रिपुरार्णवे—

संध्याहीनोऽन्यसंध्यायां पूर्वसंध्याक्रियामथ। विधायोत्तरसंध्यायाः क्रियां कुर्यात्समाहितः ॥१॥ इति।

आधी रात में तुरीय सन्ध्या—आधी रात में तुरीय सन्ध्या की उपासना करे। शाम में जैसे सूर्यमण्डल में देवी के ध्यान के बिना प्राणायाम से आचमन तक पूर्ववत् करके सहस्रार कमल में मूल विद्या के तेरह अक्षर रूप एवं पद्मराग की प्रभा के समान तुरीय कूट का ध्यान करके प्रवहमान नासापुट से तारामण्डल के बाहार परम आकाश में उसका आवाहन करके उसमें से उद्भूत भगवती का यथोक्त रूप में ध्यान करते हुये तुरीय कूट कहकर श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकायै अर्घ्यं कल्पयामि स्वाहा से तीन अर्घ्य प्रदान करे।

पुनः तुरीय कूट कहकर श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां तर्पयामि से तीन बार तर्पण करे। प्राणायाम करके पूर्वोक्त तुरीया गायत्री का यथाशक्ति जप करे। कालनित्या विद्या का एक सौ आठ बार जप करके प्राणायामादि के बाद जप-समर्पण कर देवी की स्तुति करके परमाकाश से सहस्रदल कमल की कर्णिका में उद्वासन करते हुये अपने को कामकलारूप माने।

इस प्रकार की चार सन्ध्याओं का करना श्रीविद्योपासकों के लिये आवश्यक है। इसे करने में असमर्थ होने पर ध्यान

रूप में आधी रात की सन्ध्या की उपासना करे। नहीं करने पर दूसरे दिन प्रायश्चित्त रूप में मूल विद्या का एक सौ आठ जप करने पर ही पुनः कर्म करने का अधिकारी होता है। यही शिवशासन है। तन्त्रराज में भी कहा है कि स्नान, सन्ध्या एवं अर्चन का लोप होने पर एक सौ आठ बार मूल विद्या का जप करना चाहिये। साथ ही यह भी कहा गया है कि शम्भु की यह आज्ञा है कि सन्ध्या का कभी भी त्याग नहीं करना चाहिये। दीक्षित व्यक्ति यदि सन्ध्या से रहित होता है तो वह दीक्षा के फल से वञ्चित होता है।

इन वचनों के अनुसार चारो सन्ध्याओं को करना साधक के लिये आवश्यक है। प्रमादवश यदि सन्ध्या का लोप होता है तब अन्य सन्ध्या के समय प्रायश्चित्तपूर्वक पूर्व सन्ध्या को करके उस समय की सन्ध्या को करना चाहिये। त्रिपुरार्णव में भी इसी की पुष्टि की गई है।

नित्यतर्पणविधिः

सन्ध्यावन्दनानन्तरं पित्रादितर्पणं कुर्यात्। तत्र प्राणायामत्रयमृष्यादिन्यासपूर्वकं स्वपुरतो जले पूर्ववत्तीर्थमावाह्य वमिति धेनुमुद्रयामृतीकृत्य मूलेनाष्टवारमभिमन्त्र्य, तत्र श्रीचक्रं विभाव्य तन्मध्ये वक्ष्यमाणप्रकारेण पीठपूजापुरःसरं देवीमावाह्य, षोडशोपचारैर्जले देवीं सम्पूज्य वक्ष्यमाणविधिनाङ्गावरणदेवताः सम्पूज्य, २ मूलविद्यामुच्चार्य श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां तर्पयामीत्यष्टोत्तरशतं तदर्धमष्टाविंशतिवारं वा यथाशक्ति तत्तीर्थजलैः परदेवतामुखकमले परमामृतबुद्ध्या सन्तर्प्यावरणदेवता यथाक्रमं पूजोक्तमन्त्रैः पूजयामीति स्थाने तर्पयामीत्यन्तैरेकैकाञ्जलिना तर्पयेत्। तदशक्तौ वटुकादिचतुष्टय-षडङ्गयुवती-गुरुपंक्तित्रय-सप्तदशनित्याभिः सहितां चतुरस्रवृत्तोपेतत्रिकोणमण्डलमध्यस्थां सायुधत्रिकोणावरणशक्तियुतां मूलदेवीं तर्पयेत्। तत्राप्यशक्तौ संस्कृते जले देवीं ध्यात्वा सम्पूज्य देवीमेव तर्पयेत्, नित्यतर्पणविधिः। अथ—

रक्तगन्धाम्बरः स्रग्वी रक्तभूषाविभूषितः। प्रसन्नचेताः कर्पूरवासितास्योऽङ्गरागवान्॥
पद्मासनः प्राग्वदनः प्राणानायम्य संयतः।

(तं ५.१९) इति। एतादृशो दैशिकवरः प्राग्वत् षोडशार्णमनुना विघ्नशान्तये सर्वभूतबलिं दत्त्वा मूर्ध्नि नाथान् गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यताम्बूलार्चनास्तोत्रस्वात्मनिरूप(वेद)नमिति नवोपचारैरभ्यर्च्य, स्वनाथं तन्मयीभूतमात्मानं तदात्मकं ध्यात्वा, पश्चात् तदाज्ञया न्यासत्रयं शिष्यदेहे विधाय ध्यानमानसपूजान्ते मध्यस्थकलशाधारे दशकलात्मकं वह्निमण्डलं ध्यात्वा, तत्तत्कलास्थानेषु प्राक्प्रोक्तप्रकारेण शैवाष्टत्रिंशत्कला महाषोढोक्तमूर्त्यष्टत्रिंशत्कलाश्च भावयित्वा सर्वासामैक्यं भावयन्, कलशपात्रं शक्त्यष्टगन्धैः संलिप्य पट्टवस्त्रयुगेनाच्छाद्य, तदुपरि फलं पञ्चपल्लवादिकं निःक्षिप्य पुष्पमालाभिः संवेष्ट्य, तदुपरि श्रीचक्रं भावयित्वाभ्यर्च्यात्माष्टाक्षरमन्त्रेणात्मपूजां विधाय पीठपूजामारभेत्।

नित्यतर्पण—सन्ध्यावन्दन के बाद पितरों का तर्पण करे। एतदर्थ तीन प्राणायाम ऋष्यादि न्यास करके अपने आगे जल में पूर्ववत् तीर्थावाहन करके वं से धेनुमुद्रा द्वारा अमृतीकरण करे। मूल मन्त्र के आठ जप से अभिमन्त्रित करे। उसमें श्रीचक्र की भावना करके उसमें यथाविहित पीठपूजा करते हुये देवी का आवाहन करे। जल में देवी का षोडशोपचार पूजन कर अङ्गावरण देवताओं का सनिधि पूजन करके ह्रीं श्रीं मूल विद्या श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां तर्पयामि से एक सौ आठ बार या चौवन बार या अट्ठाईस बार यथाशक्ति उस तीर्थजल से परदेवता के मुख में परमामृत मानकर तर्पण करे। आवरण देवताओं का पूजन यथाक्रम करके पूजोक्त मन्त्र में पूजयामि के बदले तर्पयामि जोड़कर एक-एक अञ्जलि जल से तर्पण करे। उसमें अशक्त होने पर वटुकादि चतुष्टय, षडङ्ग युवती, गुरुपंक्तित्रय, सत्रह नित्याओं के साथ चतुरस्र वृत्तोपेत त्रिकोण मण्डल के मध्य में सायुध त्रिकोणावरण शक्तियुक्त मूल देवी का तर्पण करे। इसे करने में भी असमर्थ होने पर जल में देवी का ध्यान करके पूजा कर देवी को ही तर्पित करे।

तदनन्तर साधक लाल वस्त्र धारण करके, लाल माला पहन कर, लाल भूषा से विभूषित, प्रसन्नचित, कर्पूरवासित मुख, अङ्गरागयुक्त पद्मासन पर पूर्वमुख बैठकर संयत मन से प्राणायाम करे।

तदनन्तर वह साधक पूर्ववत् षोडशाक्षर मन्त्र से विघ्न की शान्ति के लिये सर्वभूत बलि प्रदान करके मूर्धा में नाथों का पूजन गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, अर्चन, स्तोत्र, स्वात्मनिरूपण—इन नव उपचारों से करे। अपनी आत्मा का गुरु की आत्मा से तादात्म्य होने का ध्यान करे। गुरु की आज्ञा से शिष्य के देह में न्यासत्रय करके ध्यान एवं मानस पूजा के बाद मध्यस्थ कलश आधार में दशकलात्मक वह्निमण्डल का ध्यान करे। उसकी कलास्थानों में पूर्वोक्त प्रकार से अड़तीस शैवी कला एवं महाषोढ़ोक्त अड़तीस कला की भावना करके सभी में ऐक्य की भावना करे। कलशपात्र को शक्ति अष्टगन्ध से संलिप्त करे। दो वस्त्रों से आच्छादित करे। उसके ऊपर पञ्चपल्लव फल आदि रखे। फूल-माला लपेटे। उसके ऊपर श्रीचक्र की भावना करते हुये पूजन करे। अष्टाक्षर मन्त्र से आत्मापूजा करके पीठपूजा प्रारम्भ करे।

पीठपूजा

तत्र तावत् पश्चिममिक्षुरससमुद्रं प्राप्य, तदन्तरे पश्चिमकोणे तीरपालिकां पञ्चमीमुक्तप्रकारेण षोडशोपचारैराराध्य, तदाज्ञया सागरे उत्तरपश्चिमकोणे रत्नपोतं प्राप्य ह्रीः रत्नपोताय नमः, इत्यादि कुरुकुल्लापूजां विधाय, तदाज्ञया रत्नद्वीपं परितो विलोमेन परीयमाणे पश्चिमे ह्रींश्रीं इक्षुरससागराय नमः। दक्षिणे इरासागराय०। पूर्वे घृतसागराय०। उत्तरे दुग्धसागराय नमः। इति सम्पूज्य,रत्नद्वीपस्य पश्चिमे पुष्पं दत्त्वा पुष्पदण्डमासाद्य तदाज्ञयावतरेत्। ततः 'कोटियोजनविस्तीर्णसमायामं महाद्भुतम्। नवरत्नमयं द्वीपं तन्मानाद्रिभिरावृतम्। सहस्रादित्यसङ्काशम्' इति ध्यात्वा ह्रींश्रींअं ५१ नवखण्डविराजिताय नवरत्नमयद्वीपाय नमः। तत्रैव कल्पवृक्षोद्यानाय नमः। तत्रैव देव्यवेक्षणान् षड्तून् ध्यात्वा वसन्तादिषड्तुभ्यो नमः। षश्चिमे देव्यभिमुखान् इन्द्रियाश्वान् ध्यात्वा २ इन्द्रियाश्वेभ्यो नमः। पूर्वे देव्यभिमुखानिन्द्रियार्थगजान् ध्यात्वा २ इन्द्रियार्थगजेभ्यो नमः। ततः पश्चिमादिमध्यान्तं विलोमेन नवरत्नानि पूजयेत्। २ पुष्परत्नाय नमः। नैर्ऋते २ नीलरत्नाय नमः। दक्षिणे २ वैदूर्यरत्नाय नमः। आग्नेये २ विद्रुमरत्नाय नमः। पूर्वे २ मौक्तिकरत्नाय नमः। ईशाने २ मरकतरत्नाय नमः। उत्तरे २ वज्ररत्नाय नमः। वायव्ये २ गोमेदरत्नाय नमः। मध्ये ह्रींश्रींपद्मरागरत्नाय नमः। ततस्तेनैव क्रमेण देव्यवेक्षिणीनवचक्रेश्वरीशक्तिपादुकां पूजयामि नमः। एवं २ कालमुद्रामातृकारत्नदेशगुरुतत्त्वग्रहमूर्तिस्वरूपिणीशक्तिपादुकां पूजयामि। ततः करुणातोयपरिधये नमः। ततस्तन्मध्ये रत्नद्वीपस्य तृतीयाशं कोट्यादित्यसमत्विषं माणिक्यमण्डपं ध्यात्वा, मण्डपाद्बहिः पश्चिमादिविलोमेन २ कालचक्रेश्वरीपा०। २ मुद्राचक्रेश्वरीपा०। २ मातृकाचक्रेश्वरीपा०। २ रत्नचक्रेश्वरीपा०। निर्ऋत्यादिकोणेषु विलोमेन देव्यवेक्षिणीः शक्तीर्ध्यात्वा, २ देशस्वरूपिणीशक्तिपा०। २ कालस्वरूपिणीशक्तिपा०। २ आकारस्वरूपिणीशक्तिपा०। २ शक्ति(ब्द)-स्वरूपिणीशक्तिपा०। ततो मण्डपान्तर्देव्यवेक्षिणीः पार्श्वयोः पंक्त्युपविष्टाः संगीतयोगिनीर्ध्यात्वा २ संगीतयोगिनीशक्तिपा०। ततः सिंहासनपरिसरे देव्यवेक्षिणीः शक्तीर्ध्यात्वा, २ समस्तगुप्तप्रकटसिद्धयोगिनीचक्रश्रीपा०। इति पीठपूजा।

पीठपूजा—स्थापित कलश के पश्चिम में ईखरस का सागर है। उसके बाद पश्चिम कोण में तीरपालिका पञ्चमी का उक्त प्रकार से षोड़शोपचार पूजन करके उसकी आज्ञा से सागर के उत्तर-पश्चिम कोण में रत्नपोत को जानकर ह्रीः रत्नपोताय नमः से कुरुकुल्ला का पूजन करे। पुनः उसकी आज्ञा लेकर रत्नद्वीप के चारो ओर विलोम क्रम से पश्चिम में ह्रीं श्रीं इक्षुरससागराय नमः, दक्षिण में इरासागराय नमः, पूर्व में घृतसागराय नमः एवं उत्तर में दुग्धसागराय नमः से पूजन करके रत्नद्वीप के पश्चिम में फूल देकर पुष्पदण्ड लेकर उसकी आज्ञा से द्वीप पर उतरे।

तदनन्तर करोड़ योजन विस्तृत, अत्यन्त अद्भुत, नवरत्नों से आवृत्त, हजारों सूर्य-सदृश नवरत्नमय द्वीप का ध्यान करते हुये ह्रीं श्रीं अं ५१ नवखण्डविराजिताय नवरत्नमयद्वीपाय नमः, कल्पवृक्षोद्यानाय नमः। वहीं पर देवी के दृष्टिगत छः ऋतुओं का ध्यान करते हुये वसन्तादि षड्तुभ्यो नमः। पश्चिम में देवी के सामने इन्द्रिय अश्वों का ध्यान करके ह्रीं श्रीं इन्द्रियाश्वेभ्यो नमः। पूर्व में देवी के सामने मुख करने वाले इन्द्रियार्थ गजों का ध्यान करके ह्रीं श्रीं इन्द्रियार्थगजेभ्यो नमः। पश्चिम के आदि-मध्य-अन्त में विलोम क्रम से इस प्रकार नवरत्नों की पूजा करे—ह्रीं श्रीं पुष्परत्नाय नमः, नैर्ऋत्य में ह्रीं श्रीं नीलरत्नाय नमः, दक्षिण में ह्रीं श्रीं वैदूर्यरत्नाय नमः, आग्नेय में ह्रीं श्रीं विद्रुमरत्नाय नमः, पूर्व में ह्रीं श्रीं मौक्तिकरत्नाय नमः, ईशान में ह्रीं श्रीं

मरकतरत्नाय नमः, उत्तर में ह्रीं श्रीं वज्ररत्नाय नमः, वायव्य में ह्रीं श्रीं गोमेदरत्नाय नमः, मध्य में ह्रीं श्रीं पद्मरागरत्नाय नमः। तदनन्तर उसी क्रम से देव्यवेक्षिणीनवचक्रेश्वरीशक्तिपादुकां पूजयामि नमः। ह्रीं श्रीकालमुद्रामातृकारत्नदेशगुरुतत्त्वग्रहमूर्तिस्वरूपिणी-शक्तिपादुकां पूजयामि। तदनन्तर करुणातोयपरिधये नमः। उसके बीच में रत्नद्वीप के तृतीय अंशस्वरूप कोटि आदित्य के समान प्रभा वाले माणिक्यमण्डप का ध्यान करे। मण्डप के बाहर पश्चिमादि विलोम क्रम से ह्रीं श्रीं कालचक्रेश्वरीपादुकां पूजयामि कहकर पूजन करे। ह्रीं श्रीं मुद्राचक्रेश्वरीपादुकां पूजयामि कहकर पूजन करे। ह्रीं श्रीं मातृकाचक्रेश्वरीपादुकां पूजयामि कहकर पूजन करे। ह्रीं श्रीं रत्नचक्रेश्वरीपादुकां पूजयामि कहकर पूजन करे। नैर्ऋत्य आदि कोणों में विलोम क्रम से देव्यवेक्षिणी शक्तियों का ध्यान करके इनकी पूजा करे—ह्रीं श्रीं देशस्वरूपिणीशक्तिपादुकां पूजयामि कहकर पूजन करे। ह्रीं श्रीं कालस्वरूपिणीशक्तिपादुकां पूजयामि कहकर पूजन करे। ह्रीं श्रीं आकारस्वरूपिणीशक्तिपादुकां पूजयामि। ह्रीं श्रीं शक्ति(ब्द)स्वरूपिणी पादुकां पूजयामि कहकर पूजन करे। तब मण्डप के अन्त में देव्यवेक्षिणी पार्श्वों में पंक्ति में बैठी संगीत योगिनियों का ध्यान करके पूजा करे—ह्रीं श्रीं सङ्गीतयोगिनीशक्तिपादुकां पूजयामि। तब सिंहासनपरिसर में देव्यवेक्षिणी शक्ति का ध्यान करके ह्रीं श्रीं समस्तप्रकट-गुप्तसिद्धयोगिनीचक्रश्रीपादुकां पूजयामि कहकर पूजन करे।

अर्घ्यस्थापनम्

अथार्घ्यस्थापनम्—तत्र त्रिलोहकाचमृत्पात्रेभ्योऽन्यतमं पात्रं स्वपुरत साधारं संस्थाप्याम्बुभिरापूर्याघारपात्रा-म्बुष्वग्निसूर्यसोमात्मकत्वं सञ्चिन्त्य विद्याखण्डत्रयात्मकमष्टात्रिंशत्कलात्मकत्वं ज्ञात्वाम्बुनि रोचनाचन्द्रकाश्मीरलघु-कस्तूरिकाः क्रमेण पृथिव्यादिभूतात्मिका मत्वा क्षिप्त्वा, तार्तीयेन धेनुमुद्रां योनिमुद्रां च प्रदर्श्य तत्र श्रीचक्रं ध्यात्वा-र्घ्यस्य समीरनिर्ऋतिईशानवह्निकोणेषु मध्ये पश्चिमाद्यनुलोमेन चतुर्दिक्षु षडङ्गमन्त्रैर्दशदशवारमभ्यर्च्य षोडशविद्यानित्या-भिश्चैकैकवारं तार्तीयेन दशवारं दिननित्यया च त्रिवारं जपित्वाभ्यर्च्य तेनार्घ्यवारिणा विद्यया स्वात्मपूजोपकरणान्यशेषं प्रोक्षयेदित्यर्घ्यं विधाय न्यासान् कुर्यात्। तत उक्तरीत्या प्राणानायम्य अंआंसौः इति विद्यया वामदक्षिणकरपृष्ठयोरन्यो-न्यमार्जनात् करशुद्धिं कृत्वा, पादयोः २ ह्रींक्लींसौः देव्यात्मासनाय नमः। जङ्घयोः २ हैंह्क्लींह्सौः चक्रासनाय नमः। जान्वोः २ हसैंह्सक्लींह्सौः सर्वमन्त्रासनाय नमः। लिङ्गे २ ह्रींक्लींब्लें साध्यसिद्धासनाय नमः, इति चतुरासनन्यासं कृत्वा कुलसुन्दरीविद्यया द्विरावृत्त्या करषडङ्गन्यासं कृत्वा प्राग्वद्वशिन्यादि-अष्टवाग्देवतान्यासं कुर्यात्। ततो मूलाद्यषडङ्गेन(द्येन) मूर्धादिहृदन्तं मूलापरेण हृदादिप्रपदान्तं मूलान्तेन प्रपदादिहृदन्तमञ्जलिना व्यापकं कुर्यात्। इति न्यासाः।

ततः कलशोपरि स्वतन्त्रोक्तश्रीयन्त्रं विभाव्य वैन्दवे ह्रींश्रींसौः इति शक्त्युत्थापनमुद्रया मूर्तिं परिकल्प्य ह्सैंह्सकलरींह्स्त्रौः(स्त्रौः) नमः इति पुष्पगर्भा त्रिखण्डां मुद्रां बद्ध्वा तस्यां मूलहृन्मूर्धसु(मूल) वह्निसूर्यसोमात्म-कत्वानुसन्धानरूपया त्रिपुरामुद्रया तत्तेजस्त्रयरूपिणीं देवतां वहन्नासापुटेन स्वान्तादानीय कल्पितमूर्तावावाह्य सावरणां ध्यायेत्—

लोहितां ललितां बाणचापपाशसृणीः करैः। दधानां कामराजाङ्के यन्त्रितां मुदितां स्मरेत् ॥१॥
हारग्रैवेयरत्नादिमुद्रिकानूपुरान्विताम्। नवरत्नमयैश्चित्रैः स्तवकैश्चोपशोभिताम् ॥२॥
वलयैरङ्गदै रत्नमयैरप्यङ्गुलीयकैः। विराजमानां तां दिव्यां दिव्यांशुकविधारिणीम् ॥३॥
शुचिस्मितां शक्तिवृन्दगीताकर्णननन्दिताम्। सहजासवसम्भोगैः सञ्जातानन्दविग्रहाम् ॥४॥
दयामदात् प्रागपाङ्गपरिपालितसाधकाम्। परितो भूषणैश्चित्रैः कार्ष्णचामरकादिभिः ॥५॥
विराजमानान् द्विरदानश्वानपि तथाविधान्। शक्तिभिर्दर्शितानग्रे पश्यन्तीममितोत्सवाम् ॥६॥
स्वसमानामितोदारनित्याभिः सेवितां पराम्। मध्यप्रधानदेव्यास्तु समुल्लासात्मकत्वतः ॥७॥
नवावरणशक्तीनां ध्यानं देव्या समं भवेत्। कामाङ्कयन्त्रादन्यत्र भूषावर्णायुधादिकम् ॥८॥
तत्समं परमेशानि चक्रस्थानामशेषतः। (तं० ४.६५) इति।

ततः स्थापनी-सन्निरोधिनी-अवगुण्ठनी-सन्निधापनीति मुद्राचतुष्कं तार्तीयेन प्रदर्श्य सर्वसंक्षोभिन्यादि-मुद्रानवकं हेतिमुद्राचतुष्कं च प्रदर्श्य देवीमुपचारैः समर्चयेत्। तार्तीयदिननित्याभ्यां 'पाद्यार्घ्याचमनस्नानवसना-भरणानि च। गन्धं पुष्पं धूपदीपौ नैवेद्याचमनं पुनः। ताम्बूलमर्चना स्तोत्रं तर्पणं च नमस्क्रियाम्'। (तं ५.३) इति षोडशोपचारैः श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकायै पाद्यं परिकल्पयामीति क्रमेण कुर्यात्। क्षौद्रदुग्धनारिकेलाम्बुफलादिभिः कुर्यात्। विशेषस्तु अर्घं स्वाहा, आचमनीयं स्वधा, इत्यादि। पुष्पाणि वौषडिति। ततोऽनुज्ञां लब्ध्वा परिवारार्चनं कुर्यात्। तत्र देवीपृष्ठभागे त्रिकोणाद्बहिरन्तराले देवीवामभागादिदक्षभागान्तं पंक्त्युपविष्टांस्त्रीन् देव्यवेक्षिणीदेवीरूपान् दिव्यसिद्धमानवाख्यान् नवनाथान् पूजयेत्। यथा—ह्रींश्रीं प्रकाशानन्दशक्तिपादुकां पूजयामीत्यादिक्रमेण पूजयेत्। ततो देवीमूर्तौ तन्मयीस्तद्रूपाः पञ्चदशतिथिनित्याः पूजयेत्। ह्रींश्रीं कामेश्वरीनित्याविद्यामुच्चार्य कामेश्वरीनित्यापादुकां पूजयामीत्यादिक्रमेण तिथिनित्याः पूजयेत्।

अर्घ्य-स्थापन—त्रिलोह, काच और मिट्टी के पात्र में से किसी एक पात्र को अपने समीप आधार पर स्थापित कर उसमें जल भरे। आधारपात्र के जल में अग्नि-सूर्य-सोम की भावना करे। विद्या खण्डत्रयात्मक और अड़तीस कलात्मक मानकर उस जल में रोचन, कपूर, कुङ्कुम, लघुकस्तूरी को क्रम से पृथिव्यादि भूत मानकर प्रक्षिप्त करे। तार्तीय से धेनुमुद्रा और योनिमुद्रा दिखाकर वहाँ श्रीचक्र का ध्यान करके अर्घ्य का वायु-नैर्ऋत्य-ईशान-अग्निकोणों में, अनुलोम क्रम से पश्चिमादि चारो दिशाओं में षडङ्ग मन्त्र से दश-दश बार पूजन कर षोडश नित्या विद्या से एक-एक बार और तार्तीय से दश बार, दिननित्या से तीन बार जप कर अर्चन करके उस अर्घ्य जल विद्या से अपना, पूजोपकरणों तथा अन्य सामंग्रियों का प्रोक्षण करके अर्घ्य स्थापित करके न्यास करे। तदनन्तर उक्त रीति से प्राणायाम करके अं आं सौः विद्या से वाम-दक्षिण करपृष्ठों को परस्पर मार्जन करके करशुद्धि करे। पैरों में ह्रीं श्रीं ह्रीं क्लीं सौः देव्यात्मासनाय नमः, जङ्घों में ह्रीं श्रीं हैं ह्क्लीं ह्सौः चक्रासनाय नमः, घुटनों में ह्रीं श्रीं ह्सैं ह्स्क्लीं ह्सौः सर्वमन्त्रासनाय नमः, लिङ्ग में ह्रीं श्रीं ह्रीं क्लीं ब्लें साध्य-सिद्धासनाय नमः—इस प्रकार चतुरासन न्यास के बाद कुलसुन्दरी विद्या की दो आवृत्ति से कर एवं षडङ्ग न्यास करके पूर्ववत् वशिन्यादि अष्ट वाग्देवता का न्यास करे। तदनन्तर मूल आदि षडङ्ग से मूर्धा से हृदय तक एवं मूल से हृदय से पैरों तक तथा मूलान्त से पैरों से हृदय तक अञ्जलि से व्यापक न्यास करे।

तत्पश्चात् कलश पर स्वतन्त्रोक्त श्रीयन्त्र कल्पित करके बिन्दु में ह्रीं श्रीं सौः से शक्ति उत्थापन मुद्रा द्वारा मूर्ति कल्पित करे। ह्स्त्रैं ह्सकलरीं ह्स्त्रौः नमः से पुष्पगर्भितत्रिखण्डा मुद्रा बाँधकर उसके मूल, हृदय एवं मूर्धा में वह्नि, सूर्य एवं सोम के अनुसन्धानरूप में त्रिपुरा मुद्रा से तेजत्रयरूपिणी देवता को प्रवहमान नासापुट से अपने हृदय से बाहर लाकर कल्पित मूर्ति में आवाहित कर आवरणसहित उसका इस प्रकार ध्यान करे—

लोहितां ललितां बाणचापपाशसृणीः करैः। दधानां कामराजाङ्के यन्त्रितां मुदितां स्मरेत्।।
हारग्रैवेयरत्नादिमुद्रिकानूपुरान्विताम्। नवरत्नमयैश्चित्रैः स्तवकैश्चोपशोभिताम्।।
वलयैरङ्गदै रत्नमयैरप्यङ्गुलीयकैः। विराजमानां तां दिव्यां दिव्यांशुकविधारिणीम्।।
शुचिस्मितां शक्तिवृन्दगीताकर्णनन्दिताम्। सहजासवसम्भोगैः सञ्जातानन्दविग्रहाम्।।
दयामदात् प्रागपाङ्गपरिपालितसाधकाम्। परितो भूषणैश्चित्रैः कार्ष्णचामरकादिभिः।।
विराजमानान् द्विरदानश्वानपि तथाविधान्। शक्तिभिर्दर्शितानग्रे पश्यन्तीममितोत्सवाम्।।
स्वसमानामितोदारनित्याभिः सेवितां पराम्। मध्यप्रधानदेव्यास्तु समुल्लासात्मकत्वतः।।
नवावरणशक्तीनां ध्यानं देव्या समं भवेत्। कामाङ्कयन्त्रादन्यत्र भूषावर्णायुधादिकम्।।
तत्समं परमेशानि चक्रस्थानामशेषतः।

ध्यान के बाद स्थापनी, सन्निरोधिनी, अवगुण्ठनी एवं सन्निधापिनी—इन चार मुद्राओं को तार्तीय से दिखाकर सर्वसंक्षोभिनी आदि नव मुद्रा एवं हेति आदि चार मुद्राओं को दिखाते हुये उपचारों से देवी का अर्चन करे। तार्तीय एवं दिननित्या

विद्या से पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नान, वसन, आभरण, गन्ध, पुष्प, धूपदीप, नैवेद्य, आचमन, ताम्बूल, अर्चन, स्तोत्र, तर्पण, नमस्कार––इन षोडशोपचारों से श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकायै पाद्यं परिकल्पयामि कहते हुये क्रम से पूजन करे। मधु, दूध, नारियल जल, फल आदि से पूजन करे। तब आज्ञा लेकर परिवार का अर्चन करे।

परिवारार्चन के क्रम में देवी के पृष्ठभाग में त्रिकोण के बाहर अन्तराल में देवी के बाँयें भाग से दाहिने भाग तक पंक्ति में बैठी स्त्रियों, दिव्य-सिद्ध मानवों नामक नव नाथों का ह्रीं श्रीं प्रकाशानन्दशक्तिपादुकां पूजयामि के क्रम से पूजन करे। तब देवी की मूर्ति तन्मयी तद्रूपा पन्द्रह तिथिनित्याओं की पूजा करे। ह्रीं श्रीं कामेश्वरीनित्याविद्या कामेश्वरीनित्यापादुकां पूजयामि—इस क्रम से तिथिनित्याओं की पूजा करे।

आवरणपूजा

अथावरणपूजा—तत्र चतुरस्रे पश्चिमद्वारशाखायाम् २ अणिमासिद्धिपा०। २ लघिमासिद्धिपा०। २ महिमासिद्धिपा०। २ ईशित्वसिद्धिपा०। २ वशित्वसिद्धिपा०। २ प्राकाम्यासिद्धिपा०। २ भुक्तिसिद्धिपा०। २ इच्छासिद्धिपा०। २ रससिद्धिपा०। २ सर्वकामासिद्धिपा०। २ ब्राह्मीपा०। २ माहेश्वरीपा०। २ कौमारीपा०। २ वैष्णवीपा०। २ वाराहीपा०। २ इन्द्राणीपा०। २ चामुण्डापा०। २ महालक्ष्मीपा०। (२ द्रां सर्वसंक्षोभिणीमुद्रापा०। २ द्रीं सर्वविद्राविणीमुद्रापा०। २ क्लीं सर्वाकर्षिणीमु०। २ ब्लूं सर्ववशङ्करणीमु०। २ सः सर्वोन्मादिनीमु०। २ क्रों सर्वमहांकुशामु०। २ हस्रैं हसकलरीं हसरौः त्रिखण्डामु०। २ हसखफ्रें खेचरीमुद्रापा०। २ ह्सौं बीजमुद्रापा०। २ ऐं महायोनिमुद्रापा०)। इति सम्पूज्य अणिमासिद्ध्यग्रे—२ मूलं त्रिपुराचक्रेश्वरीनित्यापा० इति सम्पूज्य, एताः प्रकटयोगिन्यः त्रैलोक्यमोहने चक्रे पूजां गृह्णन्तु, इति तस्या वामहस्ते पूजां निवेद्य द्रामिति सर्वसंक्षोभिणीमुद्रां प्रदर्शयेत्। इति प्रथमावरणम्॥१॥

ततः षोडशदले देव्यग्रदलमारभ्य वामावर्तेन—२ अंकामाकर्षिणीनित्याकलापा०। २ आंबुद्ध्याकर्षिणीनित्यापा०। २ इं अहङ्काराकर्षिणीनित्याकलापा०। २ ईं शब्दाकर्षिणीनित्याकलापा०। ३ उं स्पर्शाकर्षिणीनित्याकलापा०। २ ऊंरूपाकर्षिणीनित्याकलापा०। २ ॠंरसाकर्षिणीनित्याकलापा०। २ ॠंगन्धाकर्षिणीनित्याकलापा०। २ लृंचित्ताकर्षिणीनित्याकलापा०। २ लॄंधैर्याकर्षिणीनित्याकलापा०। २ एंस्मृत्याकर्षिणीनित्याकलापा०। २ ऐंनामाकर्षिणीनित्याकलापा०। २ ओंबीजाकर्षिणीनित्याकलापा०। २ औंआत्माकर्षिणीनित्याकलापा०। २ अंअमृताकर्षिणीनित्याकलापा०। २ अःशरीराकर्षिणीनित्याकलापा०। इति सम्पूज्य, २ मूलं त्रिपुरेश्वरीचक्रेश्वरीनित्यापा० इति कामाकर्षिण्यग्रे सम्पूज्य, एता गुप्तयोगिन्यः सर्वाशापरिपूरके चक्रे पूजां गृह्णन्तु, इति तस्या वामहस्ते निवेद्य द्रीमिति सर्वविद्राविणीमुद्रां प्रदर्शयेत्। इति द्वितीयावरणपूजा॥२॥

ततोऽष्टदले प्रागादिदिक्षु—२ अनङ्गकुसुमापा०। २ अनङ्गमेखलापा०। २ अनङ्गमदनापा०। २ अनङ्गमदनातुरापा०। २ अनङ्गरेखापा०। २ अनङ्गवेगिनीपा०। २ अनङाङ्कुशापा०। २ अनङ्गमालिनीपा०। इति सम्पूज्य, अनङ्गकुसुमाग्रे—२ मूलं त्रिपुरसुन्दरीचक्रेश्वरीनित्यापा० इति चक्रेश्वरीं सम्पूज्य, एता गुप्ततरयोगिन्यः सर्वसंक्षोभणे चक्रे पूजां गृह्णन्तु, इति तस्या वामहस्ते निवेद्य क्लीमिति सर्वाकर्षिणीमुद्रां प्रदर्शयेत्। इति तृतीयावरणपूजा॥३॥

ततश्चतुर्दशारे देव्यग्रादिवामावर्तेनः—२ सर्वसंक्षोभिणीशक्तिपा०। २ सर्वविद्राविणीशक्तिपा०। २ सर्वाकर्षिणीशक्तिपा०। २ सर्वाह्लादिनीशक्तिपा०। २ सर्वसम्मोहिनीशक्तिपा०। २ सर्वस्तम्भिनीशक्तिपा०। २ सर्वजृम्भिनीशक्तिपा०। २ सर्ववशङ्करीशक्तिपा०। २ सर्वरञ्जिनीशक्तिपा०। २ सर्वोन्मादिनीशक्तिपा०। २ सर्वार्थसाधिनीशक्तिपा०। २ सर्वसम्पत्प्रपूरणीशक्तिपा०। २ सर्वमन्त्रमयीशक्तिपा०। २ सर्वद्वन्द्वक्षयङ्करीशक्तिपा०। इति सम्पूज्य, सर्वसंक्षोभिण्यग्रे २ मूलं त्रिपुरवासिनीचक्रेश्वरीनित्यापा०, इति चक्रेश्वरीं सम्पूज्य, एताः सम्प्रदाययोगिन्यः सर्वसौभाग्यदे चक्रे पूजां गृह्णन्तु, इति तस्या वामहस्ते निवेद्य ब्लूमिति सर्ववशङ्करणीमुद्रां प्रदर्शयेत्। इति चतुर्थावरणपूजा॥४॥

ततो बहिर्दशारे देव्यग्रादिवामावर्तेन—२ सर्वसिद्धिप्रदादेवीपा०। २ सर्वसम्पत्प्रदादेवीपा०। २ सर्वप्रियङ्करीदेवीपा०। २ सर्वमङ्गलकारिणीदेवीपा०। २ सर्वकामप्रदादेवीपा०। २ सर्वदु:खविमोचिनीदेवीपा०। २ सर्वमृत्युप्रशमनीदेवीपा०। २ सर्वविघ्ननिवारिणीदेवीपा०। २ सर्वाङ्गसुन्दरीदेवीपा०। २ सर्वसौभाग्यदायिनीदेवीपा०, इति सम्पूज्य, सर्वसिद्धिप्रदादेव्यग्रे २ मूलं त्रिपुराश्रीचक्रेश्वरीनित्यापा० इति चक्रेश्वरीं सम्पूज्य, एता: कुलकौलयोगिन्य: सर्वार्थसाधके चक्रे पूजां गृह्णन्तु, इति तस्या वामहस्ते निवेद्य स: इति सर्वोन्मादिनीमुद्रां प्रदर्शयेत्। इति पञ्चमावरणपूजा॥५॥

ततोऽन्तर्दशारे देव्यग्रादिवामावर्तेन—२ सर्वज्ञाशक्तिपा०। २ सर्वशक्तिशक्तिपा०। २ सर्वैश्वर्यप्रदाशक्तिपा०। २ सर्वज्ञानमयीशक्तिपा०। २ सर्वव्याधिविनाशिनीशक्तिपा०। २ सर्वाधारस्वरूपाशक्तिपा०। २ सर्वपापहराशक्तिपा०। २ सर्वानन्दमयीशक्तिपा०। २ सर्वरक्षास्वरूपिणीशक्तिपा०। २ सर्वेप्सितफलप्रदाशक्तिपा०। इति सम्पूज्य, सर्वज्ञाशक्त्यग्रे २ मूलं त्रिपुरमालिनीचक्रेश्वरीनित्यापा० इति चक्रेश्वरीं सम्पूज्य, एता निगर्भयोगिन्य: सर्वरक्षाकरे चक्रे पूजां गृह्णन्तु, इति तस्या वामहस्ते निवेद्य क्रों इति महांकुशामुद्रां प्रदर्शयेत्। इति षष्ठावरणपूजा॥६॥

ततोऽष्टारे देव्यग्रादिवामावर्तेन—२ अं १६ ब्लूंवशिनीवाग्देवतापादुकां पूजयामि नम:। २ कलह्रीं कामेश्वरीवाग्देवतापा०। २ न्ब्लूं मोदिनीवाग्देवतापा०। २ य्लूं विमलावाग्देवतापा०। २ ज्म्रीं अरुणावाग्देवतापा०। २ हसलवयूंजयिनीवाग्देवतापा०। २ झमरयूंसर्वेश्वरीवाग्देवतापा०। २ क्ष्म्रींकौलिनीवाग्देवतापा०। इति सम्पूज्य, वशिन्यग्रे २ मूलं त्रिपुरसिद्धाचक्रेश्वरीनित्यापा०। इति चक्रेश्वरीं सम्पूज्य, २ एता रहस्ययोगिन्य: सर्वरोगहरे चक्रे पूजां गृह्णन्तु, इति तस्या वामहस्ते निवेद्य २ हसखफ्रें इति सर्वखेचरीमुद्रां प्रदर्शयेत्। इति सप्तमावरणपूजा॥७॥

ततोऽन्तराले देवीभुजान्तिके समीरराक्षसाग्नीशकोणेषु ह्रींश्रींयांरांलांवांसांद्रांद्रींक्लींब्लूंस: सर्वजम्भनेभ्य: कामेश्वरकामेश्वरीबाणेभ्यो नम:। ह्रींश्रींथंधं सर्वमोहनकामेश्वरीधनुर्भ्यां नम:। ह्रींश्रींह्रींआं सर्ववशङ्करकामेश्वरकामेश्वरीपाशाभ्यां नम:। ह्रींश्रींक्रोंक्रों सर्वस्तम्भनकामेश्वरकामेश्वर्यङ्कुशाभ्यां नम:। ततस्त्रिकोणे देव्यग्रादिवामावर्तेन २ वाग्भवकूटं वाकामपीठे कामेश्वरीदेवीपा०। २ कामराजकूटं पूर्णगिरिपीठे वज्रेश्वरीदेवीपा०। शक्तिकूटं जालन्धरपीठे भगमालिनीदेवीपा०। इति सम्पूज्य, कामेश्वर्यग्रे २ मूलं त्रिपुराम्बाचक्रेश्वरीनित्यापा०। इति चक्रेश्वरीं सम्पूज्य, २ मूलं एता: परापररहस्ययोगिन्य: सर्वसिद्धिप्रदे चक्रे पूजां गृह्णन्तु इति, तस्या वामहस्ते निवेद्य ह्सौं इति बीजमुद्रां प्रदर्शयेत्। इत्यष्टमावरणपूजा॥८॥

ततो बिन्दुस्थाने—२ मूलं उड्यानपीठे श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीदेवीपा० इति सम्पूज्य, २ महात्रिपुरसुन्दरीचक्रेश्वरीनित्यापा० इति चक्रेश्वरीं सम्पूज्य, २ एषा अतिरहस्ययोगिनी सर्वानन्दमये चक्रे पूजां गृह्णातु, इति तस्या वामहस्ते निवेद्य ऐमिति सर्वमहायोनिमुद्रां प्रदर्शयेत्। इति नवमावरणपूजा॥९॥

तत: पुनरपि प्रसन्नपूजात्वेन षोडशोपचारै: पुनराराध्य संक्षोभण्यादिमुद्रा: प्रदर्श्य देवतागुरुस्वात्मनामैक्यसिद्धिकरणभावनायोगपूर्वकं मूलं दशधा जपेत्। तद्भावना तु—मूलखण्डत्रयमपि तुर्यस्वरावसानं कृत्वा तत्स्वरस्य च बिन्दुत्रयं मत्वा, तदूर्ध्वे बिन्दुना देव्या वदनं भावयन् तदध:स्थबन्दुद्वयेन देव्या: कुचयुगं भावयन् तच्छेषार्धमात्रया शेषाङ्गानि देव्या भावयन् देवताया मन्त्रात्मकत्वं गुरोरपि मन्त्रात्मकत्वं भावयन्नात्मनश्च सर्वात्मकत्वम्। एतेन त्रयाणां मन्त्रात्मकत्वत्रितयात्मकत्वभावना फलितसर्वैक्यभावनारूपा। तत: स्वात्मानं देवतारूपं स्मरन् स्वात्मनि ता: पञ्चदशनित्यास्तत्तद्विद्याभिरभ्यर्च्य पञ्चभूतमन्त्रैरात्मानमभ्यर्चयेत्।

यथा—२ अआएकचटतपयषप्राणशक्तिपादुकां पूजयामि। इईऐखछठथफरक्षअग्निशक्तिपा०। २ उऊओगजडदबलळभूमिशक्तिपा०। २ ऋॠऔघझढधभवसअम्बुशक्तिपा०। २ ऌॡअंङञणनमशहस्वशक्तिपा०। २ ततो 'ॐह्रींहंस:सोऽहं स्वाहा' इत्यात्माष्टाक्षरमन्त्रेणात्मानमभ्यर्च्यात्मनि प्रपञ्चेन यागभावनां कृत्वा, स्वतन्त्रोक्तमाद्योपान्तं

योनिमुद्राबन्धनं कृत्वा मन्त्रवीर्ययोजनं च कृत्वा, पूर्वोक्तभावनापूर्वं स्वतन्त्रोक्तं मन्त्रार्थचिन्तनं कुर्वन् स्वतन्त्रोक्तमालया सहस्रं शतं वा तद्दिनजपसंख्यं वा मूलमन्त्रं जपेत्। ततः किञ्चित्कालं शक्त्युत्थापनमुद्रां बद्ध्वा मूलेन पुष्पाञ्जलिं कृत्वाभ्यर्च्य नित्यहोमं कुर्यात्।

आवरण-पूजन—चतुरस्र के पश्चिम द्वारशाखा में—

ह्रीं श्रीं अणिमासिद्धिपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं लघिमासिद्धिपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं महिमासिद्धिपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं ईशित्वसिद्धिपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं वशित्वसिद्धिपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं प्राकाम्यसिद्धिपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं भुक्तिसिद्धिपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं इच्छासिद्धिपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं रससिद्धिपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं सर्वकामासिद्धिपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं ब्राह्मीपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं माहेश्वरीपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं कौमारीपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं वैष्णवीपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं वाराहीपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं इन्द्राणिपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं चमुण्डापादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं महालक्ष्मीपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं द्रां सर्वसंक्षोभिणीमुद्रापादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं द्रीं सर्वविद्राविणी मुद्रापादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं सर्वाकर्षिणीमुद्रापादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं ब्लूं सर्ववशङ्करणी मुद्रापादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं सः सर्वोन्मादिनीमुद्रापादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं क्रों सर्वमहाङ्कुशामुद्रापादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं ह्स्त्रैं हसकलरीं हसरौः त्रिखण्डा मुद्रापादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं हसखफ्रें खेचरी मुद्रापादुकां पूजयामि।
ह्सौं बीजमुद्रापादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं ऐं महायोनिमुद्रापादुकां पूजयामि।

इस प्रकार की पूजा के बाद अणिमासिद्धि के आगे ह्रीं श्रीं मूल त्रिपुराचक्रेश्वरीनित्या पादुकां पूजयामि से पूजा करके 'एताः प्रकटयोगिन्यः त्रैलोक्यमोहनचक्रे पूजां गृह्णन्तु' ऐसा कहते हुये देवी के बाँयें हाथ में पूजा निवेदित करके 'द्रां' से सर्वसंक्षोभिणी मुद्रा दिखाये। यह प्रथमावरण हुआ।

द्वितीय आवरण—षोडश दल में देवी के आगे से प्रारम्भ करके वामावर्त क्रम से पूजा करे—

१. ह्रीं श्रीं अं कामाकर्षिणीनित्याकलापादुकां पूजयामि।
२. ह्रीं श्रीं आं बुद्ध्याकर्षिणीनित्याकलापादुकां पूजयामि।
३. ह्रीं श्रीं इं अहङ्काराकर्षिणीनित्याकलापादुकां पूजयामि।
४. ह्रीं श्रीं ईं शब्दाकर्षिणीनित्याकलापादुकां पूजयामि।
५. ह्रीं श्रीं उं स्पर्शाकर्षिणीनित्याकलापादुकां पूजयामि।
६. ह्रीं श्रीं ऊं रूपाकर्षिणीनित्याकलापादुकां पूजयामि।
७. ह्रीं श्रीं ऋं रसाकर्षिणीनित्याकलापादुकां पूजयामि।
८. ह्रीं श्रीं ॠं गन्धाकर्षिणीनित्याकलापादुकां पूजयामि।
९. ह्रीं श्रीं ऌं चित्ताकर्षिणीनित्याकलापादुकां पूजयामि।
१०. ह्रीं श्रीं ॡं धैर्याकर्षिणीनित्याकलापादुकां पूजयामि।
११. ह्रीं श्रीं एं स्मृत्याकर्षिणीनित्याकलापादुकां पूजयामि।
१२. ह्रीं श्रीं ऐं नामाकर्षिणीनित्याकलापादुकां पूजयामि।
१३. ह्रीं श्रीं ओं बीजाकर्षिणीनित्याकलापादुकां पूजयामि।
१४. ह्रीं श्रीं औं आत्माकर्षिणीनित्याकलापादुकां पूजयामि।
१५. ह्रीं श्रीं अं अमृताकर्षिणीनित्याकलापादुकां पूजयामि।
१६. ह्रीं श्रीं अः शरीराकर्षिणीनित्याकलापादुकां पूजयामि।

इस प्रकार पूजा के बाद ह्रीं श्रीं मूल त्रिपुरेश्वरीचक्रेश्वरीनित्यापादुकां पूजयामि से कामाकर्षिणी के अग्रभाग में पूजा करे। तदनन्तर 'एताः गुप्त योगिन्यः सर्वाशापरिपूरके चक्रे पूजां गृह्णन्तु' कहते हुये पूजा को देवी के वाम हस्त में निवेदित करके द्रीं से सर्वविद्राविणी मुद्रा दिखाये। द्वितीयावरण पूजन सम्पूर्ण।

तृतीय आवरण—अष्टदल में पूर्वादि दिशाओं में इनका पूजन करे—
ह्रीं श्रीं अनङ्गकुसुमापादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं अनङ्गमेखलापादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं अनङ्गमदनापादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं अनङ्गमदनातुरापादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं अनङ्गरेखापादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं अनङ्गवेगिनीपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं अनङ्गाङ्कुशापादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं अनङ्गमालिनीपादुकां पूजयामि।

इस प्रकार की पूजा के बाद अनङ्गकुसुमा के आगे ह्रीं श्रीं मूल त्रिपुरसुन्दरीचक्रेश्वरीनित्यापादुकां पूजयामि से पूजन करने के बाद 'एताः गुप्ततरयोगिन्यः सर्वसंक्षोभणे चक्रे पूजां गृह्णन्तु' कहकर देवी के बाँयें हाथ में पूजा का समर्पण करते हुये 'क्लीं' कहकर सर्वाकर्षिणी मुद्रा दिखाये। तृतीयावरण सम्पूर्ण।

चतुर्थ आवरण—चतुर्दशार में देवी के आगे से वामावर्त क्रम से इनका पूजन करे—
ह्रीं श्रीं सर्वसंक्षोभिणीशक्तिपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं सर्वविद्राविणीशक्तिपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं सर्वाकर्षिणीशक्तिपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं सर्वाह्लादिनीशक्तिपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं सर्वसम्मोहिनीशक्तिपादुकां पूजयामि।

ह्रीं श्रीं सर्वस्तम्भिनीशक्तिपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं सर्वजृम्भिणीशक्तिपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं सर्ववशंकरीशक्तिपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं सर्वरञ्जिनीशक्तिपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं सर्वोन्मादिनीशक्तिपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं सर्वार्थसाधिनीशक्तिपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं सर्वसम्पत्प्रपूरणीशक्तिपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं सर्वमन्त्रमयीशक्तिपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं सर्वद्वन्द्वक्षयङ्करीशक्तिपादुकां पूजयामि।

तदनन्तर सर्वसंक्षोभिणी के आगे ह्रीं श्रीं मूल त्रिपुरवासिनीचक्रेश्वरीनित्यापादुकां पूजयामि से पूजा करके 'एताः सम्प्रदायोगिन्यः सर्वसौभाग्यदे चक्रे पूजां गृह्णन्तु' कहकर देवी के वाम हस्त में पूजा निवेदित करके ब्लूं कहते हुये सर्ववशङ्करणी मुद्रा दिखाये। इस प्रकार चतुर्थ आवरण की पूजा पूर्ण होती है।

पञ्चम आवरण—बहिर्दशार में देवी के आगे वामावर्त क्रम से इनकी पूजा करे—
ह्रीं श्रीं सर्वसिद्धिप्रदादेवीपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं सर्वसम्पत्प्रदादेवीपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं सर्वप्रियङ्करीदेवीपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं सर्वमङ्गलकारिणीदेवीपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं सर्वकामप्रदादेवीपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं सर्वदुःखविमोचिनीदेवीपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं सर्वमृत्युप्रशमनीदेवीपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं सर्वविघ्ननिवारिणीदेवीपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं सर्वाङ्गसुन्दरीदेवीपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं सर्वसौभाग्यदायिनीदेवीपादुकां पूजयामि।

इस प्रकार पूजन करके सर्वसिद्धिप्रदा देवी के अग्रभाग में 'ह्रीं श्रीं मूल त्रिपुराश्रीचक्रेश्वरीनित्यापादुकां पूजयामि' कहते हुये पूजन कर 'एताः कुल कौलयोगिन्यः सर्वार्थसाधके चक्रे पूजां गृह्णन्तु' कहते हुये देवी के वाम हस्त में पूजा समर्पित करके सः से सर्वोन्मादिनी मुद्रा दिखाये।

छठा आवरण—अन्तर्दशार में देवी के आगे से वामावर्त क्रम से इनकी पूजा करे—
ह्रीं श्रीं सर्वज्ञाशक्तिपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं सर्वशक्तिशक्तिपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं सर्वैश्वर्यप्रदाशक्तिपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं सर्वज्ञानमयीशक्तिपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं सर्वव्याधिविनाशिनीशक्तिपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं सर्वाधारस्वरूपाशक्तिपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं सर्वपापहराशक्तिपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं सर्वानन्दमयीशक्तिपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं सर्वरक्षास्वरूपिणीशक्तिपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं सर्वेप्सितफलप्रदाशक्तिपादुकां पूजयामि।

इसके बाद सर्वज्ञा शक्ति के आगे 'ह्रीं श्रीं मूल त्रिपुरमालिनीचक्रेश्वरीनित्यापादुकां पूजयामि' कहकर पूजा करने के बाद 'एताः निगर्भयोगिन्यः सर्वरक्षाकरे चक्रे पूजां गृह्णन्तु' कहकर देवी के वामहस्त में पूजा समर्पित करके क्रों से महाङ्कुशा मुद्रा दिखाये। छठा आवरण पूर्ण।

सातवाँ आवरण—अष्टार में देवी के आगे से वामावर्त क्रम से इनकी पूजा करे—

ह्रीं श्रीं अं १६ ब्लूं वशिनीवाग्देवतापादुकां पूजयामि नमः।
ह्रीं श्रीं कलह्रीं कामेश्वरी वाग्देवतापादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं ब्लूं मोदिनीवाग्देवतापादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं य्लूं विमलावाग्देवतापादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं ज्म्रीं अरुणावाग्देवतापादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं हसलवयूं जयिनीवाग्देवतापादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं झमरयूं सर्वेश्वरीवाग्देवतापादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं क्ष्म्रीं कौलिनीवाग्देवतापादुकां पूजयामि।

इस प्रकार पूजन करके वशिनी के आगे 'ह्रीं श्रीं मूल त्रिपुरसिद्धाचक्रेश्वरीनित्यापादुकां पूजयामि' से पूजन कर 'ह्रीं श्रीं एताः रहस्ययोगिन्यः सर्वरोगहरे चक्रे पूजां गृह्णन्तु' कहते हुये देवी के वाम हस्त में पूजा समर्पित करके ह्रीं श्रीं हस्ख्फ्रें कहकर सर्वखेचरी मुद्रा दिखाये। सातवाँ आवरण पूर्ण।

अष्टम आवरण—त्रिकोण अष्टार के अन्तराल में देवी की भुजा के समीप वायु-नैर्ऋत्य-अग्नि-ईशान कोणों में इनकी पूजा करे—

ह्रीं श्रीं यां रां लां वां सां द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः सर्वजम्भनेभ्यः कामेश्वरकामेश्वरीबाणेभ्यो नमः।
ह्रीं श्रीं थं धं सर्वमोहनकामेश्वरकामेश्वरी धनुर्भ्यां नमः।
ह्रीं श्रीं ह्रीं आं सर्ववशंकरकामेश्वरकामेश्वरीपाशाभ्यां नमः।
ह्रीं श्रीं क्रों क्रों सर्वस्तम्भन कामेश्वरकामेश्वरी अंकुशाभ्यां नमः।

तदनन्तर त्रिकोण में देवी के आगे से वामावर्त क्रम से इनकी पूजा करे—

ह्रीं श्रीं वाग्भवकूटं कामपीठे कामेश्वरीदेवीपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं कामराजकूटं पूर्णगिरिपीठे वज्रेश्वरीदेवीपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं शक्तिकूटं जालन्धरपीठे भगमालिनीदेवीपादुकां पूजयामि।

कामेश्वरी के आगे ह्रीं श्रीं मूल त्रिपुराम्बाचक्रेश्वरीनित्यापादुकां पूजयामि।

ह्रीं श्रीं मूलं एताः परापररहस्ययोगिन्यः सर्वसिद्धिप्रदे चक्रे पूजां गृह्णन्तु कहते हये देवी के वाम हस्त में पूजा निवेदित कर हसौः से बीजमुद्रा दिखाये।

नवाँ आवरण—बिन्दु में ह्रीं श्रीं मूल उड्यानपीठे श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीदेवीपादुकां पूजयामि नमः से पूजन करके ह्रीं श्रीं महात्रिपुरसुन्दरीचक्रेश्वरीनित्यापादुकां पूजयामि नमः से चक्रेश्वरी की पूजा करके ह्रीं श्रीं एषा अतिरहस्ययोगिनी सर्वानन्दमये चक्रे पूजां गृह्णन्तु कहकर देवी के वाम हस्त में पूजा की निवेदित कर ऐं से सर्वमहायोनि मुद्रा दिखाये। नवम आवरण पूजन सम्पूर्ण।

तब फिर से प्रसन्न पूजारूप में षोडशोचार से पूजा करके संक्षोभिणी आदि मुद्रा दिखाकर देवता, गुरु एवं अपने में ऐक्य भावना करते हुये मूल विद्या का दश जप करे। ऐक्य-सम्पादन की प्रक्रिया यह है कि तीनों मूल खण्ड का चतुर्थ स्वर में अवसान करके उस स्वर को बिन्दुत्रय मानकर उसके ऊपरी बिन्दु में देवी मुख कल्पना करते हुये नीचे के दो बिन्दुओं को देवी के स्तनद्वय माने। उसके शेष अर्द्धमात्रा से देवी के शेष अङ्गों की कल्पना करते हुये देवता एवं गुरु का मन्त्रात्मकत्व

मानते हुये सर्वात्मकत्व की भावना कर इन तीनों मन्त्रात्मकत्वों में त्रितयात्मकत्व की भावना अपने में सर्वैक्यभावनारूपा है। तब अपने को देवता रूप में स्मरण करके आत्मा में पञ्चदश नित्याओं का उनकी विद्याओं से पूजन करे एवं पञ्चभूत मन्त्रों से स्वयं का अर्चन करे। जैसे—

ह्रीं श्रीं अ आ ए क च ट त प य ष प्राणशक्तिपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं इ ई ऐ ख छ ठ थ फ र क्ष अग्निशक्तिपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं उ ऊ ओ ग ज ड द ब ल ळ भूमिशक्तिपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं ऋ ॠ औ घ झ ढ ध भ व स अम्बुशक्तिपादुकां पूजयामि।
ह्रीं श्रीं ऌ ॡ अं ङ ञ ण न म श ह खशक्तिपादुकां पूजयामि।

तब ओं ह्रीं हंसः सोऽहं स्वाहा—इस आत्म अष्टाक्षर मन्त्र से आत्मा का अर्चन करके स्वयं में प्रपञ्च से यागभावना करे। तदनन्तर स्वतन्त्रोक्त आद्योपान्त योनिमुद्रा बाँधकर मन्त्र-वीर्ययोजन करके पूर्वोक्त भावनापूर्वक अपने तन्त्र में उक्त मन्त्रार्थ-चिन्तन करते हुये अपने तन्त्र में उक्त माला से हजार, सौ या उस दिन की जपसंख्या में मूल मन्त्र का जप करे। तब कुछ समय तक शक्ति उत्थापन मुद्रा बाँधकर मूल मन्त्र से पुष्पाञ्जलि देकर पूजन करके नित्य हवन करे।

नित्यहोमविधानम्

तत आचार्यकुण्डे तत्राघ्यम्बुना तार्तीयदिननित्याभ्यां कुशैः रेखाश्चतस्रः प्रागग्रा उद्गग्राश्च संलिखेत्। तन्मध्यकोष्ठे ताभ्यां वह्निमाधाय 'क्रव्यादेभ्यो नमः' इत्यङ्गारशकलं दक्षिणदिश्यपास्य, ताभ्यां प्रादक्षिण्येन भ्रामयित्वाम्बुना परिषिच्य, ताभ्यां चतुर्दिक्षु प्रागग्रैरुदगग्रैश्च कुशैः परिस्तीर्य, वह्निं प्रज्वाल्य ज्वालिनीमुद्रां प्रदर्श्य देवीरूपं विभाय ह्रींश्रींअग्नये नमः इत्यभ्यर्च्य, ह्रींश्रींहिरण्यायै नमः, इत्यादिभिस्तदा जिह्वामन्त्रैरभ्यर्च्य, 'हिरण्या कनका रक्ता' इति दक्षिणवक्त्रस्थजिह्वानां 'सुप्रभातिरक्ता बहुरूपा' इति तद्वामवक्त्रस्थजिह्वानां च स्मरणपूर्वकं प्रत्येकं तासु क्रमेण नवनव घृताहुतीर्हुत्वा, तार्तीयदिननित्याभ्यां हुत्वा बहुरूपाजिह्वास्मरणपूर्वकं तस्यां मृगीहंसीसूकरीष्वन्यतमया मुद्रया-न्नपायसतिलतण्डुलद्रव्येष्वन्यतमद्रव्येण पूजाक्रमेणैव हुत्वा तद्दिननित्ययात्माष्टाक्षरेण भूतमन्त्रैश्च जुहुयात्। ततो मूलेन सहस्राहुतीर्हुत्वा हुतसंख्यं मूलं जपेत्। तत ऋत्विजः स्वस्वकुण्डेषु आचार्यकुण्डादग्निं गृहीत्वा संस्कृतेष्वष्टस्वग्निं प्रज्वाल्य प्रागुक्तमन्त्रैर्जुयुर्हुतसंख्याकजपं च कुर्युः। शान्तिपाठका द्वारपालकाश्च नित्याकवचं पठेयुः। मण्डपपूजा तु प्रागेवोक्ता। ततो गुरुर्मध्यत्रिकोणस्थषोडशकलशेषु सर्वमध्यस्थकलशे ललितां, पञ्चदशकलशेषु पञ्चदश नित्याः (पूजयेत्)। एवं षोडशीकृतस्थानस्थितषोडशकलशेषु पूजाक्रमो बोद्धव्यः। तानि स्थानानि चतुरस्ररेखात्रयान्तरालगतवीथीद्वये सिद्धिदशकस्थानेषु ब्राह्मयाद्यष्टकस्थानेषु षोडशदलेषु आयुधाष्टकपूजास्थानेषु चतुर्दशद्विदशाष्टारचक्रचतुष्टयगतद्वि-चत्वारिंशत्त्रिकोणेषु पञ्चनवतिसंख्येषु श्रीचक्रगताष्टारदेवतापूजास्थानत्रिकोणेषु प्रतित्रिकोणं रेखात्रयेऽपि प्रतिरेखं समान्तरालानि त्रीणि त्रीणि चिह्नानि कृत्वा तेषु चिह्नाच्चिह्नमिति क्रमेण नवतिर्यग्रेखाभिः षोडशीकृतत्रिकोणेषु षण्ण-वतित्रिकोणगर्भगतेषु पञ्चत्रिंशदधिकसार्धसहस्रसंख्याकेषु त्रिकोणेषु स्थापिततावत्संख्याककलशेषु जलपूर्णेषु वस्त्र-युग्मवेष्टितेषु पञ्चरत्नपञ्चपल्लवसप्तमृत्तिकाचन्दनपुष्पयुतेषु देवता आवाह्य सर्वोपचारैः सम्पूज्य मध्यमकुम्भं स्पृशन् वक्ष्यमाणषट्त्रिंशदुत्तरसप्तशताधिकविंशतिसहस्रसंख्याकाः कालनित्याविद्याः पूजयेत्। तास्तु श्रीतन्त्रराजे—(२५.१)

अथ षोडशनित्यानां षट्त्रिंशत्तत्त्वविग्रहैः। वर्णैस्तज्जनितैर्मन्त्रैर्यन्त्रैः कालात्मतां क्रमात् ॥१॥
कथयामि प्रयोगांश्च नानाभीष्टाप्तिकारकान्। यज्ज्ञानोपास्तिभेदाभ्यां मन्त्राः सिद्ध्यन्ति वर्णिनः ॥२॥
स्वराः षोडश नित्याः स्युः कादिक्षान्ताः स्वरान्विताः। ते तु तत्त्वानि षट्त्रिंशद्वर्गा नाथा नवात्मकाः ॥३॥ इति।

अत्र षोडशस्वरात्मकत्वेन अकारस्त्वेकं व्यञ्जनं ककारादिपञ्चत्रिंशद्व्यञ्जनानि सम्भूय षट्त्रिंशद्व्यञ्जनानि षट्त्रिंशत्तत्त्वरूपाणीत्यर्थः।

नित्य होमविधि—आचार्यकुण्ड में अर्घ्य जल से तार्तीय दिन नित्याविद्या से कुश के द्वारा चार-चार रेखा पूर्वाग्र और उत्तराग्र खींचे। उसके मध्य कोष्ठ में अग्नि रखे। 'क्रव्यादेभ्यो नम:' से दक्षिण दिशा से अङ्गार लेकर उसे प्रादक्षिण्य से जल से सेचन करे। तब चारो दिशाओं में प्रागग्र पश्चिमाग्र कुशों का परिस्तरण करके अग्नि प्रज्वलित कर ज्वालिनी मुद्रा दिखाये। तदनन्तर देवी रूप की भावना करते हुये ह्रीं श्रीं अग्नये नम: से अर्चन करे। ह्रीं श्रीं हिरण्यायै नम: इत्यादि जिह्वा मन्त्रों से पूजन कर 'हिरण्या कनका रक्ता' से दक्षिण मुख-स्थित जिह्वा का, सुप्रभातिरक्ता बहुरूपा से वाम वक्त्र की जिह्वा का स्मरण करते हुये प्रत्येक को नव घृताहुति प्रदान करे। तार्तीय एवं दिननित्या से हवन करके बहुरूपा जिह्वा का स्मरण करते हुये मृगी, हंसी या सूकरी में से एक मुद्रा में अन्न पायस तिल तण्डुल में से किसी एक से पूजाक्रम से हवन करे। उस दिन की नित्या एवं आत्माष्टाक्षर से तथा भूतमन्त्रों से हवन करे। मूल मन्त्र से एक हजार आहुति दे एवं एक हजार मूल मन्त्र का जप करे। ऋत्विज अपने-अपने कुण्डों में आचार्य कुण्ड से अग्नि लेकर संस्कृत अग्नि प्रज्वलित करके पूर्वोक्त मन्त्र से हवन करे। हुत संख्या के बराबर जप करे। शान्तिपाठ करने वाले एवं द्वारपाल नित्याकवच का पाठ करें। मण्डप पूजा का वर्णन पहले ही हो चुका है। तदनन्तर गुरु मध्य त्रिकोणस्थ षोडश कलशों में से सबके मध्य में स्थित कलश में ललिता का और शेष पन्द्रह कलशों में पन्द्रह नित्याओं का पूजन करे। इस प्रकार षोडशीकृत स्थानस्थित षोडश कलशों में पूजा करनी चाहिये।

उन स्थानों में चतुरस्र रेखाद्वय के अन्तराल में स्थित वीथि द्वय में, सिद्धिदशक स्थानों में, ब्राह्मी आदि आठ मातृ स्थानों में, षोडश दलों में, अष्टक आयुध पूजास्थानों में, चतुर्दशार, दो दशार-अष्टार-चक्रचतुष्टयगत बयालीस त्रिकोणों में पञ्चानबे संख्या में, श्रीचक्रगत अष्टार देवता पूजास्थान त्रिकोणों में प्रति त्रिकोण तीन रेखाओं में प्रति रेखा के मध्य तीन-तीन चिह्न करे। उनमें चिह्न से चिह्न क्रम से नव तिर्यक् रेखाओं से सोलह त्रिकोणों में छियानबे त्रिकोण गर्भगत एक हजार पैंतीस त्रिकोणों में स्थापित उतने ही कलशों में जल भरे, दो वस्त्र लपेटे, पञ्चरत्न-पञ्चपल्लव डाले, सप्तमृत्तिका-चन्दन-पुष्प डाले। उनमें देवता का आवाहन करके सर्वोपचारों से उन देवताओं का पूजन करे। तदनन्तर मध्य कुम्भ का स्पर्श करके बीज हजार सात सौ छत्तीस कालनित्या विद्या का पूजन करे। जैसा कि गया तन्त्रराज में कहा तदनन्तर है—सोलह नित्याओं के छत्तीस तत्त्वविग्रहों में जो वर्ण हैं, उनसे उत्पन्न मन्त्र-यन्त्रों में कालात्मकता क्रम से प्रयोगों को कहता हूँ। वे नाना अभीष्ट प्राप्त कराने वाले हैं। उनकी उपासना ज्ञान के भेद से मन्त्र वर्ण सिद्ध होते हैं। कादि क्षान्त स्वरान्वित स्वर षोडश नित्या हैं। छत्तीस तत्त्वरूप वे वर्ण नव नाथात्मक हैं।

अक्षराणां वर्णविभाग:

अथैकपञ्चाशदक्षराणां तु वर्गविभागमाह—

अष्टावष्टौ स्वरे वर्ग: परत: पञ्च पञ्च च। मातृणां तु स्वरैरेको वर्ग: पूर्ववदुत्तरम्॥४॥ इति।

अत्र स्वराणां तु अष्टावष्टौ क्रमेण वर्गद्वयं ककारादिपञ्चत्रिंशद्वर्णा; पञ्चपञ्चविभागेन सप्त वर्गा:, (एते नव वर्गा नवनाथानामित्यर्थ:। ब्राह्म्याद्यष्टमातृणां वर्गास्तु—षोडशस्वराणामेको वर्ग:, उत्तरं पूर्ववत्। कादीनां सप्त वर्गा:)। एतेऽष्टौ वर्गा अष्टमातृणामित्यर्थ:।

अक्षरों का वर्गविभाग—इक्यावन अक्षरों का वर्गविभाजन इस प्रकार किया जाता है—आठ-आठ स्वरवर्गों के बाद पाँच-पाँच मातृका के स्वरों का एक वर्ग होता है। आशय यह है कि स्वरों के आठ-आठ क्रम से दो वर्ग हैं। ककारादि पैंतीस वर्णों के पाँच-पाँच विभाग से सात वर्ग होते हैं। ये नव वर्ग ही नव नाथ हैं। ब्राह्मी आदि मातृकाओं के वर्ग में सोलह स्वरों का एक ही वर्ग होता है, कादि सात वर्गों में एक स्वरवर्ग मिलाने से—ये आठ वर्ग अष्टमातृकाओं के होते हैं।

पूर्णमण्डलवर्णक्रम:

पूर्णमण्डलवर्णक्रममाह—

नित्यानां तत्त्वसंयोगे वर्ण संख्या समीरिता। षट्सप्तत्या पञ्चशतं तावदब्दैस्तु पूर्णता॥५॥ इति।

नित्यानां षोडशस्वराणां तत्त्वसंयोगात् षट्त्रिंशद्व्यञ्जनसंयोगात् (५७६)। अत्र व्यञ्जनात्मकस्याकारस्य षोडशस्वरसंयोगेन अआइई उऊऋॠ ऌॡएऐ ओऔअंअः, इति षोडश जाताः। एवं ककारस्य षोडशस्वरसंयोगेन ककाकिकी-कुकूकृकॄ-क्लृक्लॄकेकै-कोकौकंकः। एवमन्येषामक्षराणां खकारादीनां क्षकारान्तानां षोडशस्वरयोगः कर्तव्यः। तेन षट्सप्तत्युत्तरपञ्चशतवर्णाः (५७६) पूर्णमण्डलाख्या भवन्ति। तथा—

पूर्णकालसमावृत्तिर्युगपर्यायनामभाक् । त्रिसहस्रसमावृत्त्या प्रोक्ता कृतयुगावधिः ॥६॥
तस्य तुर्यांशतुर्यांशहान्या त्रेतादिसम्भवः । मायाधराग्निवातस्वैः कृताद्यर्णाः समीरिताः ॥७॥
तान् दिनाक्षरसंयुक्तान् मध्ययोनौ समालिखेत् । दिनार्णेषु स्वरा न्यासे बिन्दुरूपा अनुक्रमात् ॥८॥
वामोर्ध्वदक्षपार्श्वेषु पञ्च पञ्च समीरिताः । तत्तद्युगार्णास्तत्स्थाने स्वरूपेण व्यवस्थिताः ॥९॥
व्यञ्जनेषु तु सर्वत्र सुश्लिष्टाः स्वेन संयुताः । सर्वत्र यन्त्रविन्यासप्रतिष्ठार्चाद्यनुग्रहे ॥१०॥
निग्रहे वास्तुविन्यासे गर्भन्यासेष्टसिद्धिकृत् । आरभ्य भानोरुदयमेकशो घटिकाक्रमात् ॥११॥
एकैकं मातृकावर्णपञ्चाशत्परिवृत्तितः । दिवसैः पञ्चभिस्तस्याः षडावृत्तिरुदीरिता ॥१२॥
एवं युगादिमारभ्य कालोऽर्णात्मा प्रवर्तते । योनौ त्रिकोणमालिख्य तस्मिन् योनिं समालिखेत् ॥१३॥
तेषु पर्यायनित्यार्णवर्णानालिख्य बाह्यतः । युगार्णं घटिकार्णेन मध्ये विन्यस्य तत्र वै ॥१४॥
नित्याः षोडश देवेशि पूजयेन्नित्यमर्चकः । उत्तमा नित्यनित्यं हि मध्यमा पर्वपर्वणि ॥१५॥
अधमा मासमात्रेण मासादूर्ध्वमयोग्यता । पूर्णमण्डलवर्णाः स्युः प्रथमे त्वादितः क्रमात् ॥१६॥
षट्त्रिंशत्तत्त्ववर्णास्तद्द्वितीया मरुता क्रमात् । तृतीया सर्वतो वह्निरेवं विद्यास्तु त्र्यक्षराः ॥१७॥
त्रैपुराः सर्वसिद्धीनामाकराः कथिताः क्रमात् । एताः पुस्तकमारोप्य पीठे संस्थाप्य पूजयेत् ॥१८॥
यत्र तत्र गदालक्ष्मीग्रहदुर्भिक्षशत्रवः । भूतापमृत्युकृत्याद्या न भवन्ति पुरादिके ॥१९॥
अभीप्सितानि सिद्ध्यन्ति तस्य योऽर्चति नित्यशः । सषट्त्रिंशत्सप्तशतं सहस्राणि च विंशतिः ॥२०॥
तासां संख्या समाख्याता तदावृत्तिस्तदाप्तिकृत् । स्तम्भनाद्येषु तद्वर्णास्तद्रूपा हेतिवाहनैः ॥२१॥
एतैर्ग्रथितजापेन मन्त्राः सिद्ध्यन्ति वर्णिनः । नाथावृत्तिर्मन्त्रराशौ द्विसहस्रं शतत्रयम् ॥२२॥
चत्वारि चेति विज्ञेयास्तत्त्वावृत्तिरुदीरिता । पूर्णमण्डलसंख्यैव नित्यावृत्तिः सहस्रतः ॥२३॥
द्विशतं षण्णवत्यग्रा निःशेषं समुदीरिता । इति।

एतदग्रे प्रपञ्चयिष्यामः। प्रकृते प्रख्यातघटस्य सषट्त्रिंशत्सप्तशतोत्तरविंशतिसहस्रसंख्याककालनित्याविद्याभिरभिमन्त्रणमुक्तं, ताः कालनित्याविद्या त्रिपुरार्णवादिग्रन्थेषु प्रोक्तास्तास्तु श्रीतन्त्रराजेऽपि सूचिताः। तन्त्रराजोक्ता अत्र उद्ध्रियन्ते। यथा—अकारादिक्षकारान्ताः षट्त्रिंशत्तत्त्ववर्णाः षोडशनित्यात्मभिः षोडशस्वरैः प्रत्येकं संयोजिताः षट्सप्तत्युत्तरपञ्चशतसंख्याकाः पूर्णमण्डलाख्या भवन्ति। कालनित्याविद्यानां प्रागुक्तसंख्यानामेकैको वर्णः षट्त्रिंशद्विद्यानामादिवर्ण इति सर्वे वर्णा वाग्भवाख्या भवन्ति। प्रागुक्तषट्त्रिंशत्तत्त्ववर्णास्तु सर्वासां विद्यानामाकारेण कृतसन्धिकाः पुनः पुनः क्रमेण कामराजाद्या द्वितीयवर्णा भवन्ति। ईकारस्तु सर्वासां विद्यानां शक्तिकूटाख्यस्तृतीयवर्णो भवति।

पूर्णमण्डल वर्णक्रम—पूर्ण मण्डल वर्णक्रम के सन्दर्भ में कहा गया है कि नित्याओं के तत्त्वसंयोग से वर्ण-संख्या होती है। इस प्रकार पाँच सौ छिहत्तर वर्ष पूर्ण होते हैं। आशय यह है कि नित्याओं के सोलह स्वरों के तत्त्वसंयोग में छत्तीस व्यञ्जनों के संयोग से ५७६ संख्या होती हैं। यहाँ पर व्यञ्जनात्मक अकार का सोलह स्वर संयोग से अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ऋ ॠ ए ऐ ओ औ अं अः सोलह होते हैं। इसी प्रकार ककार के साथ सोलह स्वरों के संयोग से क का कि की कु कू कृ कॄ क्लृ क्लॄ के कै को कौ कं कः—ये सोलह होते है। इसी प्रकार ख से लेकर क्ष तक के अक्षरों में भी सोलह स्वरों को जोड़ना चाहिये। इससे ५७६ वर्णों का पूर्ण मण्डल बनता है; जैसा कि कहा भी गया है—

पूर्णकालसमावृत्ति एक युग का पर्याय है। तीन हजार समावृत्ति कृतयुग की अवधि होती है। उसके चतुर्थांश कम हो-होकर क्रमशः त्रेतादि युग होते हैं। माया-धरा-अग्नि-वात और स्व कृतादि के वर्ण कहे गये हैं। उनमें दिनाक्षर जोड़कर मध्य योनि में लिखें। दिनार्णों में स्वरों के न्यास में बिन्दुरूप अनुक्रम से होता है। बाँयें, ऊपर, दाँयें एवं पार्श्व में पाँच-पाँच वर्ण होते हैं। तत्तत् युगार्ण उन-उन स्थानों में स्वरूप में व्यवस्थित होते हैं। व्यञ्जनों में सर्वत्र वे सुश्लिष्ट और संयुक्त रहते हैं। यन्त्रविन्यास, प्रतिष्ठा, अनुग्रह में सर्वत्र इसी प्रकार का होता है। निग्रह में, वास्तुविन्यास में, गर्भन्यास में अष्ट सिद्धियाँ मिलती हैं। सूर्योदय से एक-एक घटी के क्रम से आरम्भ कर एक-एक मातृका वर्ण की पचास परिवृत्ति होती है। पाँच दिनों तक उसकी आवृत्ति करने से छः आवृत्ति होती है। इस प्रकार युगादि का प्रारम्भ होकर युग-कल्पादि प्रवृत्त होते हैं। योनि में त्रिकोण बनाकर उसमें योनि बनाये। उनमें पर्यायेण नित्या वर्णों को बाहर से लिखे। युगार्ण को घटिकार्ण के मध्य में विन्यस्त करे। सोलह नित्याओं का पूजन साधक नित्य करे। नित्यनित्य पूजन उत्तम होता है। पर्व-पर्व पर पूजन मध्यम होता है। महीने में एक बार पूजन अधम होता है। एक महीने से अधिक दिनों पर पूजन नहीं करना चाहिये। पूर्णमण्डल वर्ण प्रथम भूमिक्रम से होता है। छत्तीस तत्त्व वर्ण दूसरा वायुक्रम से होता है। तीसरा सर्वतः अग्निरूप त्र्यक्षरा विद्या है। त्रैपुर सर्वसिद्धियों के आकर कहे गये हैं। इनका पुस्तक में आरोप करके पीठ पर स्थापित करके पूजा करे। जहाँ कहीं प्रतिदिन नित्य इसका अर्चन किया जाता है, वहाँ रोग, दरिद्रता, ग्रहदुर्भिक्ष, शत्रु, भूत, अपमृत्यु, कृत्या आदि नहीं होते हैं एवं पूजक के समस्त अभीप्सित सिद्ध होते हैं। उनकी संख्या बीस हजार सात सौ छिहत्तर है। इतनी आवृत्ति से अभीष्ट-सिद्ध होता है। स्तम्भन आदि में वर्ण, रूप, अस्त्र और वाहन से ग्रथित कर जप करने से मन्त्र सिद्ध होते हैं। दो हजार तीन सौ चार नाथावृत्ति कही गई है। पूर्ण मण्डलसंख्या में नित्या वृत्ति एक हजार है।

प्रख्यात घट का बीस हजार सात सौ छिहत्तर कालनित्या विद्या से अभिमन्त्रण कहा गया है। उन कालनित्या विद्याओं का वर्णन त्रिपुरार्णव आदि ग्रन्थों में किया गया है। तन्त्रराज में भी इसका वर्णन करते हुये कहा गया है कि अ से क्ष तक छत्तीस तत्त्ववर्ण सोलह नित्या सोलह स्वरों के योग से पाँच सौ छिहत्तर संख्या का पूर्णमण्डल होता है। कालनित्या विद्या के एक-एक वर्ण छत्तीस तत्त्वों का आदि वर्ण है। इस प्रकार सभी वर्णों का नाम वाग्भव है। पूर्वोक्त छत्तीस तत्त्व वर्णों में समस्त विद्या के आकार से सन्धि करने पर पुनः पुनः क्रम से कामराज आदि दूसरे वर्ण होते हैं। ईकार सभी विद्याओं में शक्तिकूट नामक तृतीय वर्ण होता है।

उद्धारपूर्वं कालनित्याविद्यापारायणजपक्रमः

अथैता विद्याः क्रमेण पारायणजपपरिपाट्यैव प्रदर्श्यन्ते। तत्र साधको मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा अद्येहेत्यादि० करिष्यमाणपूर्णाभिषेकाख्ये कर्मणि षट्त्रिंशदुत्तरसप्तशताधिकविंशतिसहस्रसंख्याककालनित्याविद्याभिः पूर्णकलशाभिमन्त्रणं करिष्ये इति सङ्कल्प्य, मस्तकदक्षबाहुमूलादिषट्त्रिंशत्स्थानेषु प्रतिस्थानं षोडशदलपद्मं विभाव्य, तेष्वकारादिक्षकारान्तान् षट्त्रिंशत्तत्त्ववर्णान् प्रत्येकं षोडशस्वरसंयुक्तान् विभाव्य, मध्ये तत्प्रथमाक्षरं विन्यस्य, पूर्वादिदलेषु तत्तदक्षरविकृतषोडशवर्णांस्तदादिकान् विन्यसेदिति। एवं पूर्णमण्डलवर्णान् विन्यस्य पुनः सहितनित्याविद्यया सहितमूलविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि दक्षिणामूर्तये ऋषये नमः। मुखे पंक्तिच्छन्दसे नमः। हृदये कालनित्याविद्यारूपिण्यै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै देवतायै नमः, इति ऋष्यादिकं विन्यस्य पूर्णकलशाभिमन्त्रणे विनियोगः, इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, तत्तद्दिननित्याविद्याक्षरैस्त्रिभिर्द्विरावृत्त्या यथाविधि करषडङ्गन्यासं वाग्देवताष्टकन्यासं च विधाय, 'रक्तां रक्ताम्बरां रक्तस्रग्विभूषानुलेपनाम्। पाशांकुशेक्षुकोदण्डप्रसूनविशिखां स्मरेत्' इति कालनित्यां हृदये ध्यात्वा वक्ष्यमाणविधिना हृदये श्रीचक्रं कालचक्रमध्यगतं विभाव्य, तत्र देवीं सावरणां कालनित्याविद्याभिश्च परि[illegible]तां ध्यात्वा मानसैरुपचारैः सम्पूज्य कालनित्याजपमारभेत्।

यहाँ पर विद्याक्रम से पारायण जप परिपाटी का वर्णन किया जाता है। साधक मूल से प्राणायाम करके करिष्यमाण पूर्णाभिषेक नामक कर्म में २०७७६ कालनित्या विद्याओं से पूर्ण कलश का अभिमन्त्रण करता हूँ—इस प्रकार सङ्कल्प करके

मस्तक से दक्ष बाहुमूल तक छत्तीस स्थानों में प्रतिस्थान षोडश दल पद्म की भावना करे। उसमें अकार से क्षकार तक छत्तीस तत्त्ववर्णों में से प्रत्येक को सोलह स्वरों से संयुक्त होने की भावना करे। मध्य में प्रथमाक्षर का न्यास करे। पूर्वादि दलों में स्वयुक्त सोलह वर्णों का न्यास करे। इस प्रकार पूर्ण मण्डल के वर्णों का न्यास करके फिर नित्या विद्या और मूल विद्यासहित तीन प्राणायाम करके इस प्रकार न्यास करे—शिरसि दक्षिणामूर्ति ऋषये नमः, मुखे पंक्तिछन्दसे नमः, हृदये कालनित्याविद्यारूपिण्यै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै देवतायै नमः। इस प्रकार ऋष्यादि न्यास करके 'पूर्णकलशाभिमन्त्रणे विनियोगः' कहकर उस दिन की नित्या विद्या के तीन अक्षरों की दो आवृत्ति से यथाविधि कर-षडङ्ग न्यास करके पूर्वोक्त चतुरासन न्यास एवं वाग्देवता अष्टक न्यास करके इस प्रकार ध्यान करे—

रक्तां रक्ताम्बरां रक्तस्रग्विभूषानुलेपनाम्। पाशांकुशेक्षुकोदण्डप्रसूनविशिखां स्मरेत्।।

इस प्रकार कालनित्या का हृदय में ध्यान करके वक्ष्यमाण विधि से कालचक्र-मध्यगत श्रीचक्र की हृदय में भावना करे। वहाँ देवी का आवरण देवताओं और कालनित्या विद्या से परिवृत्त ध्यान करे। मानसोपचारों से पूजा करके कालनित्या का जप प्रारम्भ करे।

अङ्गविद्याजपकथनम्

तत्रादावङ्गविद्यास्त्रिपुराणवोक्ताः प्रोच्यन्ते। तत्र—ॐ मूलं दि० अह्सौः हंसः। मू० दि० आह्सौः हंसः। मू० दि० इह्सौः हंसः। मू० दि० ईह्सौः हंसः। मू० दि० उह्सौः हंसः। मू० दि० ऊह्सौः हंसः। मू० दि० ऋह्सौः हंसः। मू० दि० ॠह्सौः हंसः। मू० दि० ऌह्सौः हंसः। मू० दि० ॡह्सौः हंसः। मू० दि० एह्सौः हंसः। मू० दि० ऐह्सौः हंसः। मू० दि० ओह्सौः हंसः, मू० दि० औह्सौः हंसः। मू० दि० अंह्सौः हंसः। मू० दि० अःह्सौः हंसः। एवं कादिक्षान्तम्। एवमेकपञ्चाशद्विद्याभिः सह मूलविद्यां जपित्वा, केवलमूलविद्यां त्रिर्जपित्वा 'ऐं वदवद वाग्वादिनि ऐंक्लीं क्लिन्ने क्लेदिनि क्लेदय क्लेदय महाक्षोभं कुरुकुरु क्लीं सौः मोक्षं कुरुकुरु सौः ह्सौः' इति दीपिनीविद्यामेकवारं जपित्वा, प्रागुक्तश्रीगुरुपादुकामेकवारं जपित्वा पुनश्चत्वारिंशद्विद्याभिः सह मूलविद्यां जपेत्। यथा—मूलं आक्षाहसाईहंसः। मूलं ईळाहसाईहंसः। मूलं ऊहाहसाई हंसः। मूलं ऊहाहसाईहंसः। मूलं ॠसाहसाई हंसः। मूल ॡषाहसाईहंसः। मूलं ऐशाहसाईहंसः। मूलं औवाहसाईहंसः। मूलं अःलाहसाईहंसः, इत्यष्टधा जपित्वा, पुनः मूलं आक्षाईहंसः। मूलं अक्षाईहंसः। मूलं ईळाईहंसः। (मूलं इलाईहंसः) मूलं ऊहाईहंसः। मूलं उहाईहंसः। मूलं ॠषाईहंसः। भूलं ऋषाईहंसः। मूलं ॡसाईहंसः। मूलं ऌसाईहंसः। मूलं ऐशाईहंसः। मूलं एशाईहंसः। मूलं औवाईहंसः। मूलं ओवाईहंसः। मूलं अःलाईहंसः। मूलं अंलाईहंसः, इति षोडशधा जपित्वा, पुनः मूलं अकाईहंसः। एवं इबाईहंसः। उटाईहंसः। ऋताईहंसः। ऌपाईहंसः। एयाईहंसः। ओशाईहंसः। अंळाईहंसः, इत्यष्टधा जपित्वा पुनः—मूलं आक्षाईहंसः। ईळाईहंसः। ऊहाईहंसः। ॠसाईहंसः। ॡषाईहंसः। ऐशाईहंसः। औवाईहंसः। अःलाईहंसः, इत्यष्टधा जपित्वा पश्चात् कालनित्याविद्याभिः सह मूलविद्यां जपेत्। अयमङ्गविद्याजपो वर्गद्वयस्यादौ प्रत्यहं कार्यः।

अंगविद्या-जप—त्रिपुरार्णव के अनुसार अङ्गविद्या के जप का स्वरूप मूल में विधिवत् स्पष्टतः कथित है। उक्त विधि से आठ बार जप करके कालनित्या विद्या के साथ मूल विद्या का जप करे। इस अङ्गविद्या का जप वर्गद्वय के पहले प्रतिदिन करना चाहिये।

कालनित्याजपः

अथ कालनित्याजपः— २ मू० अआईहंसः। २ मू० अकाईहंसः। २ मू० अखाईहंसः। २ मू० अगाईहंसः। २ मू० अघाईहंसः। २ मू० अङाईहंसः। २ मू० अचाईहंसः। २ मू० अछाईहंसः। २ मू० अजाईहंसः। २ मू० अझाईहंसः। २ मू० अञाईहंसः। २ मू० अटाईहंसः। २ मू० अठाईहंसः। २ मू० अडाईहंसः। २ मू० अढाईहंसः। २ मू० अणाईहंसः। २ मू० अताईहंसः। २ मू० अथाईहंसः। २ मू० अदाईहंसः। २ मू० अधाईहंसः। २ मू०

अनाईहंसः। २ मू० अपाईहंसः। २ मू० अफाईहंसः। २ मू० अबाईहंसः। २ मू० अभाईहंसः। २ मू० अमाईहंसः। २ मू० अयाईहंसः। २ मू० अराईहंसः। २ मू० अलाईहंसः। २ मू० अवाईहंसः। २ मू० अशाईहंसः। २ मू० अषाईहंसः। २ मू० असाईहंसः। २ मू० अहाईहंसः। २ मू० अळाईहंसः। २ मू० अक्षाईहंसः। इति जपित्वा, पुनः २ मू० आआईहंसः। २ मू० आकाईहंसः। एवं बीजद्वयमूलविद्या सर्वत्र योज्या। आखाई। आगाई। आघाई। आङाई। आचाई। आछाई। आजाई। आझाई। आञाई। आटाई। आठाई। आडाई। आढाई। आणाई। आताई। आथाई। आदाई। आधाई। आनाई। आपाई। आफाई। आबाई। आभाई। आमाई। आयाई। आराई। आलाई। आवाई। आशाई। आषाई। आसाई। आहाई। आळाई। आक्षाई, इति जपित्वा, पुनः—२ मूलं इआई। इकाई। इखाई। इगाई। इघाई। इङाई। इचाई। इछाई। इजाई। इझाई। इञाई। इटाई। इठाई। इडाई। इढाई। इणाई। इताई। इथाई। इदाई। इधाई। इनाई। इपाई। इफाई। इबाई। इभाई। इमाई। इयाई। इराई। इलाई। इवाई। इशाई। इषाई। ईसाई। इहाई। इळाई। इक्षाई, इति जपित्वा, पुनः—२ मूलं ईआई। ईकाई। ईखाई। ईगाई। ईघाई। ईङाई। ईचाई। ईछाई। ईजाई। ईझाई। ईञाई। ईटाई। ईठाई। ईडाई। ईढाई। ईणाई। ईताई। ईथाई। ईदाई। ईधाई। ईनाई। ईपाई। ईफाई। ईबाई। ईभाई। ईमाई। ईयाई। ईराई। ईलाई। ईवाई। ईशाई। ईषाई। ईसाई। ईहाई। ईळाई। ईक्षाई, इति जपित्वा, पुनः—२ मूलं उआई। उकाई। उखाई। उगाई। उघाई। उङाई। उचाई। उछाई। उजाई। उझाई। उञाई। उटाई। उठाई। उडाई। उढाई। उणाई। उताई। उथाई। उदाई। उधाई। उनाई। उपाई। उफाई। उबाई। उभाई। उमाई। उयाई। उराई। उलाई। उवाई। उशाई। उषाई। उसाई। उहाई। उळाई। उक्षई, इति जपित्वा, पुनः—२ मूलं ऊआई। ऊकाई। ऊखाई। ऊगाई। ऊघाई। ऊङाई। ऊचाई। ऊछाई। ऊजाई। ऊझाई। ऊञाई। ऊटाई। ऊठाई। ऊडाई। ऊढाई। ऊणाई। ऊताई। ऊथाई। ऊदाई। ऊधाई। ऊनाई। ऊपाई। ऊफाई। ऊबाई। ऊभाई। ऊमाई। ऊयाई। ऊराई। ऊलाई। ऊवाई। ऊशाई। ऊषाई। ऊसाई। ऊहाई। ऊळाई। ऊक्षाई, इति पठित्वा, पुनः—२ मूलं ऋआईहंसः। ऋकाई। ऋखाई। ऋगाई। ऋघाई। ऋङाई। ऋचाई। ऋछाई। ऋजाई। ऋझाई। ऋञाई। ऋटाई। ऋठाई। ऋडाई। ऋढाई। ऋणाई। ऋताई। ऋथाई। ऋदाई। ऋधाई। ऋनाई। ऋपाई। ऋफाई। ऋबाई। ऋभाई। ऋमाई। ऋयाई। ऋराई। ऋलाई। ऋवाई। ऋशाई। ऋषाई। ऋसाई। ऋहाई। ऋळाई। ऋक्षाई, इति पठित्वा, पुनः—२ मूलं ॠआई। ॠकाई। ॠखाई। ॠगाई। ॠघाई। ॠङाई। ॠचाई। ॠछाई। ॠजाई। ॠझाई। ॠञाई। ॠटाई। ॠठाई। ॠडाई। ॠढाई। ॠणाई। ॠताई। ॠथाई। ॠदाई। ॠधाई। ॠनाई। ॠपाई। ॠफाई। ॠबाई। ॠभाई ॠमाई। ॠयाई। ॠराई। ॠलाई। ॠवाई। ॠशाई। ॠषाई। ॠसाई। ॠहाई। ॠळाई। ॠक्षाई, इति जपित्वा, पुनः—ऌआई, ऌकाई। ऌखाई। ऌगाई। ऌघाई। ऌङाई। ऌचाई। ऌछाई। ऌजाई। ऌझाई। ऌञाई। ऌटाई। ऌठाई। ऌडाई। ऌढाई। ऌणाई। ऌताई। ऌथाई। ऌदाई। ऌधाई। ऌनाई। ऌपाई। ऌफाई। ऌबाई। ऌभाई। ऌमाई। ऌयाई। ऌराई। ऌलाई। ऌवाई। ऌशाई। ऌषाई। ऌसाई। ऌहाई। ऌळाई। ऌक्षाई, इति पठित्वा, पुनः—ॡआई। ॡकाई। ॡखाई। ॡगाई। ॡघाई। ॡङाई। ॡचाई। ॡछाई। ॡजाई। ॡझाई। ॡञाई। ॡटाई। ॡठाई। ॡडाई। ॡढाई। ॡणाई। ॡताई। ॡथाई। ॡदाई। ॡधाई। ॡनाई। ॡपाई। ॡफाई। ॡबाई। ॡभाई। ॡमाई। ॡयाई। ॡराई। ॡलाई। ॡवाई। ॡशाई। ॡषाई। ॡसाई। ॡहाई। ॡळाई। ॡक्षाई इति जपित्वा, पुनः—एआई। एकाई। एखाई। एगाई। एघाई। एङाई। एचाई। एछाई। एजाई। एझाई। एञाई। एटाई। एठाई। एडाई। एढाई। एणाई। एताई। एथाई। एदाई। एधाई। एनाई। एपाई। एफाई। एबाई। एभाई। एमाई। एयाई। एराई। एलाई। एवाई। एशाई। एषाई। एसाई। एहाई। एळाई। एक्षाई, इति जपित्वा, पुनः—ऐआई। ऐकाई। ऐखाई। ऐगाई। ऐघाई। ऐङाई। ऐचाई। ऐछाई। ऐजाई। ऐझाई। ऐञाई। ऐटाई। ऐठाई। ऐडाई। ऐढाई। ऐणाई। ऐताई। ऐथाई। ऐदाई। ऐधाई। ऐनाई। ऐपाई। ऐफाई। ऐबाई। ऐभाई। ऐमाई। ऐयाई। ऐराई। ऐलाई। ऐवाई। ऐशाई। ऐषाई। ऐसाई। ऐहाई। ऐळाई। ऐक्षाई, इति जपित्वा, पुनः—ओआई। ओकाई। ओखाई। ओगाई। ओघाई। ओङाई। ओचाई। ओछाई। ओजाई। ओझाई। ओञाई। ओटाई।

ओठाई। ओडाई। ओढाई। ओणाई। ओताई। ओथाई। ओदाई। ओधाई। ओनाई। ओपाई। ओफाई। ओबाई। ओभाई। ओमाई। ओयाई। ओराई। ओलाई। ओवाई। ओशाई। ओषाई। ओसाई। ओहाई। ओळाई। ओक्षाई, इति जपित्वा, पुनः—औआई। औकाई। औखाई। औगाई। औघाई। औङाई। औचाई। औछाई। औजाई। औझाई। औञाई। औटाई। औठाई। औडाई। औढाई। औणाई। औताई। औथाई। औदाई। औधाई। औनाई। औपाई। औफाई। ओबाई। औभाई। औमाई। औयाई। औराई। औलाई। औवाई। औशाई। औषाई। औसाई। औहाई। औळाई। औक्षाई, इति जपित्वा, पुनः—अंआई। अंकाई। अंखाई। अंगाई। अंघाई। अंङाई। अंचाई। अंछाई। अंजाई। अंझाई। अंञाई। अंटाई। अंठाई। अंडाई। अंढाई। अंणाई। अंताई। अंथाई। अंदाई। अंधाई। अंनाई। अंपाई। अंफाई। अंबाई। अंभाई। अंमाई। अंयाई। अंराई। अंलाई। अंवाई। अंशाई। अंषाई। अंसाई। अंहाई। अंळाई। अंक्षाई, इति जपित्वा, पुनः—अःआई। अःकाई। अःखाई। अःगाई। अःघाई। अःङाई। अःचाई। अःछाई। अःजाई। अःझाई। अःञाई। अःटाई। अःठाई। अःडाई। अःढाई। अःणाई। अःताई। अःथाई। अःदाई। अःधाई। अःनाई। अःपाई। अःफाई। अःबाई। अःभाई। अःमाई। अःयाई। अःराई। अःलाई। अःवाई। अःशाई। अःषाई। अःसाई। अःहाई। अःळाई। अःक्षाई हंसः, इत्यन्तं जपेत्। एवं षट्सप्तत्युत्तरपञ्चशतसंख्याको (५७६) जपो भवति। मूलविद्याया अत्र पारायणे प्रथमं, तद्दिनयुगाक्षरात् षोडशस्वरभिन्नादुत्पन्नषट्सप्तत्युत्तरपञ्चशतविद्याभिः सह (५७६) मूलविद्यां जपित्वा पश्चात्तद्दिनाक्षरजनितविद्याभिस्तावत्संख्याभिः सह प्रोक्तक्रमेण मूलविद्यां जपेत्। युगाक्षरदिनाक्षरे तु तत्तद्दिनविद्यायाः प्रथमाक्षरं द्वितीयाक्षरं वा बोद्धव्यम्।

काल नित्या जप—मूल में स्पष्टतः कथित रीति से कालनित्या का जप करना चाहिये। इस प्रकार ५७६ जप होता है। पहले मूल विद्या का पारायण करे। तब उस दिन के युगाक्षर से षोडश स्वरों से युक्त ५७६ विद्या के साथ मूल विद्या का जप करे। तत्पश्चात् दिनाक्षरजनित विद्या की संख्या के बराबर उक्त संख्या में मूल विद्या का जप करे। युगाक्षर-दिनाक्षर में उस दिन की विद्या के प्रथमाक्षर या द्वितीयाक्षर का ग्रहण किया जाता है।

युगाक्षरोत्थविद्याजपविशेषः

युगाक्षरोत्थविद्याजपे विशेषस्तु—यस्मिन् युगे यत्स्वरयुतं युगाक्षरं भवति तत्स्वरमारभ्य प्रतिस्वरं षट्त्रिंशत्क्रमेण तद्विसर्गान्तिमविद्यापर्यन्तं जपित्वा पुनस्तदक्षरस्य प्रथमस्वरमारभ्य आरब्धस्वरस्य पूर्वस्वरान्तिमविद्यावधि जपेत्। तदा मूलविद्यायाः षट्सप्तत्युत्तरपञ्चशतसंख्याको जपो भवति। अत्र युग.....षट्त्रिंशद्दिनात्मको जपो भवति (?)। प्रागुक्तपूर्णमण्डलवर्णेषु षट्सप्तत्युत्तरपञ्चशतसं-ख्याकेष्वेकैकस्याक्षरस्यैकैकयुगं प्रति युगाक्षरत्वं भवति। तत्सर्वं गुरुतः शास्त्रतश्च सम्यग्विज्ञाय पारायणजपः कार्यः। एवं द्विपञ्चाशदुत्तरैकादशशत(११५२)संख्याको जपो भवति। मूलविद्याया अङ्गविद्याजपस्त्वेकैकवर्गादावेकनवतिसंख्याकः, तेन वर्गद्वयादौ जपाद् द्व्यशीत्युत्तरशत(१८२)संख्याको भवति। केवलमूलविद्याजपोऽपि वारचतुष्टयं त्रिस्त्रिरावृत्त्या द्वादशधा भवति, सम्भूय षट्चत्वारिंशताधिकसहस्रसंख्याको (१०४६) जपो भवति। मूलविद्यायाः एवमुक्तसंख्याकं जपमुक्तविधिना कृत्वा, पुनः केवलां मूलविद्यां त्रिर्जपित्वा, प्रागुक्तदीपिनीविद्यां गुरुपादुकाविद्यां च सकृत् सकृज्जपित्वा, 'डरलकसहैं हसकलडीं सहकलरडौः नमः' इत्युत्तीर्णविद्यां सकृज्जपित्वा मम सकलमनोरथान् साधय साधय तुभ्यं नमः इति प्रार्थनीविद्यां सकृत् कृताञ्जलिर्जपेत्। इति वर्गद्वयस्याप्यन्ते बोद्धव्यम्। एवमङ्गविद्याजपमूलमन्त्रजपादिकं पारायणे प्रशस्तम्। कुम्भाभिमन्त्रणादौ तु केवलकालनित्या एवावर्तनीयाः 'दिनतो वारतः पक्षादि'त्यादिना तत्रैवोक्तत्वात्, बहुदिनसाध्येऽप्यत्रापि प्राशस्त्यम्। दिनत्रयदिनचतुष्टयसाध्ये तु केवला एवेति तु सम्प्रदायः। ततो वर्गान्ते इदं स्तोत्रं पठित्वा द्वितीयवर्गारम्भो विधेयः।

युगाक्षरोत्थ विद्याजप में विशेष—जिस युग में जिस स्वर से युक्त युगाक्षर होता है, उस स्वर से आरम्भ करके प्रतिस्वर छत्तीस क्रम से उसके विसर्गान्त विद्या तक जप करे। पुनः उस अक्षर के प्रथमस्वर से आरम्भ करके आरब्ध स्वर

का पूर्व स्वर की अन्तिम विद्या तक जप करे। तब मूल विद्या का ५७६ जप होता है। यहाँ पर युग छत्तीस दिनों का होता है। इतने दिनों तक जप होता है। पूर्वोक्त पूर्ण मण्डल वर्णों में ५७६ संख्या में एक-एक अक्षर के एक-एक युग होते हैं। इस प्रकार प्रति युगाक्षरत्व होता है।

इन सबों का ज्ञान गुरु से या शास्त्र से प्राप्त करके पारायण जप करना चाहिये। इस प्रकार ११५२ जप होता है। मूल विद्या का में अङ्ग विद्या जप एक-एक वर्ग से ९१ जप होता है। उनके दो वर्ग के पहले जप से १८२ संख्या होती है। केवल मूल विद्या के चार बार जप तीन-तीन आवृत्ति में बारह बार होता है। इस प्रकार १०४६ जप होता है। मूल विद्या में यह उक्त संख्याक जप उक्त विधि से करके पुनः केवल मूल विद्या का तीन बार जप करे। पूर्वोक्त दीपिनी विद्या एवं गुरुपादुका विद्या का भी जप करके डरलकसहैं हसकलडीं सहकलरडौः नमः—इस उत्तीर्ण विद्या का एक बार जप करे। तब कहे—'मम सकलमनोरथान् साधय साधय तुभ्यं नमः। इस प्रार्थनी विद्या का एक बार हाथ जोड़कर जप करे। तब वर्ग के अन्त में निम्न स्तोत्र पढ़कर द्वितीय वर्ग का प्रारम्भ करे।

त्रिपुरभैरवीस्तुतिः

यथा त्रिपुरार्णवे—

क्षमाम्ब्वग्नीरणखार्केन्दुयष्टृप्राययुगस्वरैः । मातृभैरवगां वन्दे देवीं त्रिपुरभैरवीम् ॥१॥
कादिवर्गाष्टकाकारसमस्ताष्टकविग्रहाम् । अष्टशक्त्यावृतां वन्दे देवीं त्रिपुरभैरवीम् ॥२॥
स्वरषोडशकानां तु षट्त्रिंशद्भिः परापरैः । षट्त्रिंशत्तत्त्वगां वन्दे देवीं त्रिपुरभैरवीम् ॥३॥
षट्त्रिंशत्तत्त्वसंस्थाप्यशिवचन्द्रकलास्वपि । कादितत्त्वान्तरां वन्दे देवीं त्रिपुरभैरवीम् ॥४॥
आईमायाद्वयोपाधिविचित्रेन्दुकलावतीम् । सर्वात्मिकां परां वन्दे देवीं त्रिपुरभैरवीम् ॥५॥
षडध्वपिण्डयोनिस्थां मण्डलत्रयकुण्डलीम् । लिङ्गत्रयातिगां वन्दे देवीं त्रिपुरभैरवीम् ॥६॥
स्वयम्भूहृदयां बाणभ्रूकामान्तःस्थितेतराम् । प्राच्यां प्रत्यक्चितिं वन्दे देवीं त्रिपुरभैरवीम् ॥७॥
अक्षरान्तर्गताशेषनामरूपां क्रियां पराम् । शक्तिं विश्वेश्वरीं वन्दे देवीं त्रिपुरभैरवीम् ॥८॥
वर्गान्ते पठितव्यं स्यात् स्तोत्रमेतत्समाहितैः ।

इति स्तुत्वा, प्राग्वत् प्राणायामत्रयं कृत्वा 'गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्। सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादात् त्वयि स्थिता।' इति देव्यै जपं समर्प्य, द्वितीयवर्गजपस्यारम्भो विधेयः। यथा—मू० दि० कआईहंसः। एवं एर्वत्र। ककाई। कखाई। कगाई। कघाई। कङाई। कचाई। कछाई। कजाई। कझाई। कञाई। कटाई। कठाई। कडाई। कढाई। कणाई। कताई। कथाई। कदाई। कधाई। कनाई। कपाई। कफाई। कबाई। कभाई। कमाई। कयाई। कराई। कलाई। कवाई। कशाई। कषाई। कसाई। कहाई। कळाई। कक्षाई। इति जपित्वा, पुनः—काआईहंसः इत्यादि काक्षाईहंसः इत्यन्तं जपित्वा, एवं किआईहंसः इत्यादि किक्षाईहंसः इत्यन्तं जपित्वा, कीआईहंसः इत्यादि कीक्षाई इत्यन्तं जपित्वा, कुआईहंसः इत्यादि कुक्षाई। इत्यन्तं जपित्वा, पुनः—कुआईहंसः इत्यादि कूक्षाई इत्यन्तं जपित्वा, कृआईहंसः इत्यादि कृक्षाई इत्यन्तं जपित्वा, कृआईहंसः इत्यादि कृक्षाई इत्यन्तं जपित्वा, क्लृआईहंसः इत्यारभ्य क्लृक्षाई इत्यन्तं जपित्वा, पुनः क्लॄआईहंसः इत्यारभ्य क्लॄक्षाई इत्यन्तं जपित्वा, एवं कैआईहंसः इत्यारभ्य केक्षाईहंस इत्यन्तं जपित्वा, केआईहंस इत्यारभ्य कैक्षाईहंस इत्यन्तं जपित्वा, कोआईहंस इत्यारभ्य कोक्षाई इत्यन्तं जपित्वा, पुनः कौआईहंस इत्यादि कौक्षाई इत्यन्तं जपित्वा, पुनः कंआईहंस इत्यादि कंक्षाई इत्यन्तं जपित्वा, पुनः कःआईहंस इत्यादि कःक्षाई इत्यन्तं जपेत्। पुनः प्राग्वत्। खआई इत्यादि खःक्षाई इत्यन्तं ५७६। गआई इत्यादि गःक्षाई इत्यन्तं ५७६। घआई इत्यादि घःक्षाई इत्यन्तं ५७६। ङआई इत्यादि ङःक्षाई इत्यन्तं ५७६। चआई इत्यादि चःक्षाई इत्यन्तं ५७६। छआई इत्यादि छःक्षाई इत्यन्तं ५७६। जआई इत्यादि जःक्षाई

इत्यन्तं ५७६। झआई इत्यादि झःक्षाई इत्यन्तं ५७६। ञआई इत्यादि ञःक्षाई इत्यन्तं ५७६। टआई इत्यादि टःक्षाई इत्यन्तं ५७६। ठआई इत्यादि ठःक्षाई इत्यन्तं ५७६। डआई इत्यादि डःक्षाई इत्यन्तं ५७६। ढआई इत्यादि ढःक्षाई इत्यन्तं ५७६। णआई इत्यादि णःक्षाई इत्यन्तं ५७६। तआई इत्यादि तःक्षाई इत्यन्तं ५७६। थआई इत्यादि थःक्षाई इत्यन्तं ५७६। दआई इत्यादि दःक्षाई इत्यन्तं ५७६। धआई इत्यादि धःक्षाई इत्यन्तं ५७६। नआई इत्यादि नःक्षाई इत्यन्तं ५७६। पआई इत्यादि पःक्षाई इत्यन्तं ५७६। फआई इत्यादि फःक्षाई इत्यन्तं ५७६। बआई इत्यादि बःक्षाई इत्यन्तं ५७६। भआई इत्यादि भःक्षाई इत्यन्तं ५७६। मआई इत्यादि मःक्षाई इत्यन्तं ५७६। यआई इत्यादि यक्षाई इत्यन्तं ५७६। रआई इत्यादि रःक्षाई इत्यन्तं ५७६। लआई इत्यादि लःक्षाई इत्यन्तं ५७६। वआई इत्यादि वःक्षाई इत्यन्तं ५७६। शआई इत्यादि शःक्षाई इत्यन्तं ५७६। षआई इत्यादि षःक्षाई इत्यन्तं ५७६। सआई इत्यादि सःक्षाई इत्यन्तं ५७६। हआई इत्यादि हःक्षाई इत्यन्तं ५७६। ळआई इत्यादि ळःक्षाई इत्यन्तं ५७६। क्षआई इत्यादि क्षःक्षाई इत्यन्तं ५७६। अत्र पारायणे पर्यायभेदः पञ्चधा भवति। तन्त्रराजे—(२५.९६)

दिनतो वारतः पक्षान्मासात्षट्त्रिंशता दिनैः। जपन्तो वारमेकं तु विद्या नित्यात्मिकास्तु ताः ॥१॥
आयुरारोग्यमैश्वर्यं विजयं वाञ्छितं क्रमात्। लभन्ते ललिता याभिः संप्रदायवती भवेत् ॥२॥
एकस्मिन् दिवसे त्वेकवारावृत्तौ विधिस्त्वयम्। मध्याह्ने तु समारभ्य मध्यरात्रौ समापयेत् ॥३॥
वारेषु चैकदा जापे प्रथमे रविवारके। वशिन्याः प्रथमं वर्गं कामेश्वर्या द्वितीयकम् ॥४॥
जप्त्वा वर्गद्वयं मन्त्री सोमवारादिषट्स्वपि। दिनेषु मोदिनीवर्गादिकैकं प्रजपेत्सुधीः ॥५॥
पक्षेऽपि चैकदा जापे प्रथमादितिथिष्वथ। पंक्तिद्वयस्था विद्यास्तु प्रजपेत्प्रतिवासरम् ॥६॥
पञ्चमीदशमीपञ्चदशीषु तिथिषु क्रमात्। पूर्णासु प्रजपेद्विद्याश्चतुष्पंक्तिभवाः सुधीः ॥७॥
मासे प्रतिदिने विद्वानेवं पूर्णा भवन्ति ताः। नैताभिः सदृशी कापि विद्या लोकेषु विद्यते ॥८॥
तस्मादाभिरुपायैस्तैः साधयेत्सर्वमीप्सितम्। यद्यन्निजोप्सितं तत्तद्दुःकरं सुकरं भवेत् ॥९॥
जपतर्पणहोमार्चासेकैः संसाधयेत् स्थिरः। पञ्चाशद्वारमावर्त्य विद्या भक्तिसमन्वितः ॥१०॥
मुच्यते निगडैः कृच्छ्रैर्वैरिरोधैः सुदारुणैः। शतवारं समावर्त्य विद्याविभववैभवाः ॥११॥
लभन्ते तनयान् वन्ध्या अपि सर्वगुणान्वितान्। अध्यर्धशतवारं तु विद्या आवर्त्य भक्तितः ॥१२॥
गुणरूपादिसम्पन्नां भार्यां विदन्त्ययत्नतः। तावदावर्त्य कन्या वा पतिं सर्वगुणान्वितम् ॥१३॥
लभन्ते पुत्रपौत्राद्यैरेधन्ते सम्पदान्विताः। द्विशतं ताः समावर्त्य दारिद्र्यान्मुच्यते ध्रुवम् ॥१४॥
त्रिशतैर्भूमिशस्याढ्यश्चतुर्भिश्च शतैर्धनी। पञ्चभिश्च शतैर्भूपो भवेत्षड्भिः शतैर्नृपः ॥१५॥
सप्तभिस्तु शतैस्तस्य न मुञ्चत्यन्वयं रमा। अष्टभिस्तु शतैस्तासां नृपाः सर्वेऽथ किङ्कराः ॥१६॥
एवं नवभिस्तु शतैरेवं कन्दर्पो वनिताजने। नवशतं जप्त्वा सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥१७॥
समस्तभजनं तासामुक्तं सर्वार्थसिद्धिदम्। इति।

एतेषां श्लोकानां विषमपदव्याख्या—दिनत इति सार्धद्वयश्लोकः स्पष्टः। एकवारावृत्तौ षट्त्रिंशदुत्तर-सप्तशताधिकविंशतिसहस्रसंख्याभिः कालनित्याविद्याभिः समूलविद्यायास्तावत्संख्याजपे प्रोक्तविधिना प्रत्यहं क्रियमाणे इत्यर्थः। वारेषु रविवारादिशनिवारान्तेषु सप्तसु वशिन्यादीनां वर्गाः प्राक्प्रोक्ताः, 'वर्गः पंक्तिर्योनिः' इति पर्यायः। सेकोऽभिषेकः। स्थिरो निश्चलभक्तिमान्। पञ्चाशदित्यादिभिः श्लोकैः प्रपञ्चितः काम्यजपः केवलकालनित्याविद्यानामेव, अयं क्रमो गुरुतः शास्त्रतश्च बोद्धव्यः। कालचक्ररचनाप्रकारस्त्वग्रे वक्ष्यते। प्रकृते कुम्भाभिमन्त्रणोत्तरं सर्वत्र षोड-शीकृतकलशेषु प्रतिषोडशकं मध्ये ललितां पञ्चदशसु पञ्चदश नित्याश्चावाह्य षोडशोपचारैराराध्य पुनर्मध्यप्रधान-

कुम्भसमीपमागत्य प्रसन्नपूजां विधायारात्रिकां निवेद्य प्रागुक्तगुरुस्तुतिं 'नमस्ते नाथ भगवन्' इत्यादि पठित्वा द्वादशश्लोकान् पठेत्।

स्तुति का अर्थ लिखना है।

इस प्रकार स्तुति करने के बाद पूर्ववत् तीन प्राणायाम करके निम्न श्लोक का पाठ करते हुये जप देवी को समर्पित करे—

गुह्यातिगुह्यगोप्त्रीत्वं गृहाणास्म त्कृतं जपम्। सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादात् त्वयि स्थिता।।

इस प्रकार जप-समर्पण कर द्वितीय वर्ग जप का आरम्भ करे, जप का स्वरूप मूल में स्पष्टत: उल्लिखित है। जप करने के बाद पुन: उक्त का आईं हंस: से का क्षाईं हंस: तक जप करे। इसी प्रकार कि आई हंस: इत्यादि से कि आई हंस: तक जप करे। इसके बद की आई हंस: से लेकर की क्षाई हंस: तक जप करे। तब कु आई हंस: से कुक्षाई हंस: तक जप करे। तब कू आई हंस से कू क्षाई हंस: तक जप करे। कृ आई हंस: से कृ क्षाई हंस: तक जप करे। कॄ आई हंस: से कॄ क्षाई हंस: तक जपे। इसी प्रकार क्लृ आई हंस: से क्लृ क्षाई हंस: तक, क्लॄ आई हंस: से क्लॄ क्षाई हंस: तक, के आई हंस: से के क्षाई हंस: तक, कै आई हंस: से कै क्षाई हंस: तक, को आई हंस: से को क्षाई हंस: तक, कौ आई हंस: से कौ क्षाई हंस: तक, कं आई हंस: से कं क्षाई हंस: तक, क: आई हंस: से क: क्षाई हंस: तक, फिर पूर्ववत् ख आई हंस: से ख क्षाई हंस: से लेकर क्ष: क्षाई हंस तक जप किया जाता है।

पारायण में पर्यायभेद पाँच प्रकार का होता है, जैसा कि तन्त्रराज में कहा भी गया है—दिन, वार, पक्ष, मास से छत्तीस दिनों में एक बार भी नित्या विद्या के जप से आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, विजय की प्राप्ति वाञ्छित क्रम से होती है। एक दिन में इसकी एक आवृत्ति करनी चाहिये। मध्याह्न से प्रारम्भ करके मध्यरात्रि में समापन करे। वारों में एक जप प्रथम रविवार को करे। वशिनी प्रथम वर्ग एवं कामेश्वरी द्वितीय वर्ग होता है। साधक दो वर्गों का जप करके सोमवारादि में छ: दिनों छ: वर्गों का जप करे। पक्ष के एक बार जप में प्रथमा तिथि से पंक्तिद्वयस्था विद्या का जप प्रतिदिन करे। पञ्चमी दशमी पञ्चदशी तिथियों में क्रमश: पूर्णा में चतुष्पंक्तिभवा विद्या का जप करे। मास में प्रतिदिन जप करने से विद्वान् पूर्ण होता है। इसके समान लोक में दूसरी कोई विद्या नहीं है। इसलिये सभी अभीप्सित की प्राप्ति के लिये समस्त उपायों से इसका साधन करना चाहिये। जो-जो इच्छायें होती हैं, वे दुष्कर होती हुई भी आसान हो जाती हैं। जप तर्पण हवन अर्चा अभिषेक से स्थिर होकर इसका साधन करे। पचास बार के आवर्तन से विद्या भक्ति समन्वित होती है। बन्धन मुक्त हो जाता है। कष्टदायक वैरियों के विरोध का अन्त हो जाता है। सौ आवृत्ति से विद्या-विभव एवं वैभव की प्राप्ति होती है। वन्ध्या को गुणवान पुत्र प्राप्त होता है। जब १५० आवृत्ति भक्तिपूर्वक होती है। गुणवती रूपवती पत्नी प्राप्त होती है। इतने ही आर्वतन से कन्या की सर्वगुणसम्पन्न पति मिलता है।

पुत्र पौत्रादि होते है सम्पदावित होता हैं। दो सौ बार के पारायण से दरिद्रता से मुक्ति मिलती है। तीन सौ आवर्तन से सत्य श्याम भूमि मिलती है और चार सौ आवर्तन से धनी होता है पाँच सौ पारायण से राजा होता है। छ: सौ आवर्तन से नृपति होता है। सात सौ आवर्तन करने से लक्ष्मी उसके घर को कभी नहीं छोड़ती। आठ सौ आवर्तन से सभी राजा उसके किङ्कर हो जाते हैं। नव सौ आवर्तन से स्त्रियों के लिये कामदेव हो जाता है। नव सौ जप से सभी कामनाएँ पूरी होती है। उसके समस्त भजन सर्वार्थ-सिद्धिप्रद हैं।

कुम्भ अभिमन्त्रण के बाद सर्वत्र षोडशीकृत कलशों में प्रति सोलह के मध्य में पन्द्रह-पन्द्रह नित्याओं का आवाहन करके षोडशोपचार पूजन-मध्य स्थित प्रधान कुम्भ के समीप आकर प्रसन्न पूजा करके आरती करके पूर्वोक्त गुरुस्तुति का पाठ करके द्वादश श्लोकी स्तुति का पाठ करना चाहिये।

द्वादशश्लोकीस्तुति:

गणेशग्रहनक्षत्रयोगिनीराशिरूपिणीम् । देवीं मन्त्रमयीं नौमि मातृकां पीठरूपिणीम् ।।१।।

प्रणमामि महादेवी मातृकां परमेश्वरीम्। कालहल्लोहलोल्लोलकलनाशमकारिणीम् ॥२॥
यदक्षरैकमात्रेऽपि संसिद्धे स्पर्धते नरः। रविताक्ष्येन्दुकन्दर्पशङ्करानलविष्णुभिः ॥३॥
यदक्षरशशिज्योत्स्नामण्डितं भुवनत्रयम्। वन्दे सर्वेश्वरीं देवीं महाश्रीसिद्धमातृकाम् ॥४॥
यदक्षरमहासूत्रप्रोतमेतज्जगत्त्रयम्। ब्रह्माण्डादिकटाहान्तं तां वन्दे सिद्धिमातृकाम् ॥५॥
यदेकादशमाधारबीजकोणत्रयोद्भवम्। ब्रह्माण्डादिकटाहान्तं जगदद्यापि दृश्यते ॥६॥
अकचादिटतोन्नद्धपयशाक्षरवर्गिणीम्। ज्येष्ठाङ्गबाहुहृत्पृष्ठकटिपादनिवासिनीम् ॥७॥
तामीकाराक्षरोद्धारसाराधारां परापराम्। प्रणामामि महादेवीं परमानन्दरूपिणीम् ॥८॥
अद्यापि यस्या जानन्ति न मनागपि देवताः। केयं कस्मात्क्व केनेति स्वरूपारूपभावनाम् ॥९॥
वन्दे तामहमक्षय्यक्षकाराक्षररूपिणीम्। देवीं कुलकलोल्लोलप्रोल्लसन्तीं परौलिजाम् ॥१०॥
वर्गानुक्रमयोगेन यस्यां मात्रष्टकं स्थितम्। वन्दे तामष्टवर्गोत्थमहासिद्ध्यष्टकेश्वरीम् ॥११॥
कामपूर्णजकाराख्यश्रीपीठान्तर्निवासिनीम्। चतुराज्ञाकोशभूतां नौमि श्रीत्रिपुरामहम् ॥१२॥
इति द्वादशभिः श्लोकैः स्तवनं सर्वसिद्धिकृत्। देव्यास्त्वखण्डरूपायाः स्तवनं तव तद्यतः ॥१३॥

इति स्तुत्वा नित्याकवचं पठेत्—

मूलोक्त द्वादश श्लोकी का यथावत् पाठ कर नित्याओं की स्तुति करके नित्याकवच का पाठ करना चाहिये।

नित्याकवचम्

तन्त्रराजे (२८ प० ५२ श्लोक)—

समस्तापद्विमुक्त्यर्थं सर्वसम्पदवाप्तये। भूतप्रेतपिशाचादिपीडाशान्त्यै सुखाप्तये ॥१॥
समस्तरोगनाशाय समरे विजयाय च। चौरसिंहद्वीपिगजगवयादिभयानके ॥२॥
अरण्ये शैलगहने मार्गे दुर्भिक्षके तथा। सलिलाग्निमरुत्पीडास्वब्धौ पोतादिसंकटे ॥३॥
प्रजप्य नित्याकवचं सकृत्सर्वं तरत्यसौ। सुखी जीवति निर्द्वन्द्वो निःसपत्नो जितेन्द्रियः ॥४॥
शृणु तत्कवचं देवि वक्ष्ये तव नवात्मकम्। येनाहमपि युद्धेषु देवासुरजयी सदा ॥५॥
सर्वतः सर्वदात्मानं ललिता पातु सर्वदा। कामेशी पुरतः पातु भगमाला त्वनन्तरम् ॥६॥
दिशं पातु तथा दक्षपार्श्वं मे पातु सर्वदा। नित्यक्लिन्ना तु भेरुण्डा दिशं पातु सदा मम ॥७॥
तथैवं पश्चिमं भागं रक्षेत्सा वह्निवासिनी। महावज्रेश्वरी रक्षेदनन्तरदिशं सदा ॥८॥
वामपार्श्वं सदा पातु दूती मे त्वरिता ततः। पालयेतु दिशं वात्यां रक्षेन्मां कुलसुन्दरी ॥९॥
नित्या मामूर्ध्वतः पातु साधो मे पातु सर्वदा। नित्या नीलपताकाख्या विजया सर्वतश्च माम् ॥१०॥
करोतु मे मङ्गलानि सर्वदा सर्वमङ्गला। देहेन्द्रियमनःप्राणान् ज्वालामालिनिविग्रहा ॥११॥
पालयेदनिशं चित्रा चित्तं मे पातु सर्वदा। कामात्क्रोधात्तथा लोभान्मोहान्मानान्मदादपि ॥१२॥
पापान्मत्सरतः शोकात्संशयात्सर्वतः सदा। स्तैमित्याच्च समुद्योगादशुभेषु तु कर्मसु ॥१३॥
असत्यात्क्रूरचिन्तातो हिंसातश्चोरतस्तथा। रक्षन्तु मां सर्वदा ताः कुर्वन्त्विच्छां शुभेषु च ॥१४॥
नित्याः षोडश मां पान्तु गजारूढाः स्वशक्तिभिः। तथा हयसमारूढाः पान्तु मां सर्वतः सदा ॥१५॥
सिंहारूढास्तथा पान्तु मां तरक्षुगता अपि। रथारूढाश्च मां पान्तु सर्वतः सर्वदा रणे ॥१६॥
ताक्ष्यारूढाश्च मां पान्तु तथा व्योमगतास्तु ताः। भूगताः सर्वदा पान्तु मां सर्वत्र च सर्वदा ॥१७॥
भूतप्रेतपिशाचापस्मारकृत्यादिकान् गदान्। द्रावयन्तु स्वशक्तीनां भीषणैरायुधैर्मम ॥१८॥
गजाश्वदीपिपञ्चास्यताक्ष्यारूढाखिलायुधाः। असंख्याः शक्तयो देव्यः पान्तु मां सर्वतः सदा ॥१९॥
सायं प्रातर्जपन्नित्याकवचं सर्वरत्नकम्। कदाचिन्नाशुभं पश्येन्न शृणोति च तत्समः ॥२०॥

इति नित्याकवचं पठित्वा, सम्यक् प्रार्थ्य वटुकयोगिनीक्षेत्रपालगणपतिभ्यः सर्वभूतेभ्यः कुरुकुल्लायै वाराह्यै च तन्मण्डलेषु तत्तन्मन्त्रैरन्नव्यञ्जनादिभिर्बलीनुत्सृज्य तत्रैव गुरुः सशिष्यर्त्विक्सामयिको महोत्सवैः सह तां रात्रिं नयेत्। इति अधिवासनविधिः।

मूलोक्त नित्या कवच पढ़कर सम्यक् प्रार्थना करके वटुक, योगिनी, क्षेत्रपाल, गणपति, सर्वभूत, कुरुकुल्ला, वाराही को उनके मण्डलों में उनके मन्त्रों से अन्न-व्यञ्जनादि से बलि प्रदान करके वहीं पर सशिष्य गुरु सामयिकों के साथ महोत्सव करते हुये रात्रि व्यतीत करना चाहिये।

अधिवासनदिनकृत्यम्

अत्रानुक्रमणिका तु—प्रथमदिने प्रोक्तमण्डपाद्बहिः क्वचिद्गोमयोपलिप्तशुभस्थाने स्वासनोपर्युपविश्य, गणेशपूजा-मातृकापूजा-वृद्धिश्राद्ध-पुण्याहवाचन-आचार्यर्त्विग्वरणान्तकर्म प्रागुक्तविधिना विधाय मण्डपे भूतापसारणं विधाय, मध्ये श्रीचक्रं विपुलं सुन्दरं विरच्य, पञ्चवाद्यघोषपुरःसरमृत्विक्सामयिकैः सार्धं मध्ये वेदिकापरितो गुरुमण्डलादिप्रोक्तमण्डलानि तत्तद्वेदिकासु विधाय मण्डपप्रतिष्ठां विधाय, प्रथमतो वास्तुमण्डले बलिपूजां विधाय, गुरुमण्डलसर्वतोभद्रादिमण्डलेषु देवताः संस्थाप्य पूजयित्वा, श्रीचक्रे प्रोक्तस्थानेषु प्रोक्तकलशान् संस्थाप्य, कलशालङ्करणान्यपि विधाय कुण्डेष्वग्निस्थापनान्तं कर्म समापयेत्। इति प्रथमदिनकृत्यम्।

द्वितीयदिने प्रातरुत्थानादियोगपीठन्यासान्तं विधाय नित्यकर्म निर्वर्त्य, पुनरपि तन्मण्डलदेवताः सम्पूज्य श्रीचक्रमस्थमध्यकलशे देवीं सपरिवारां समावाह्य, षोडशोपचारैराराध्यान्यकलशेष्वपि ललितादिषोडशनित्याः समावाह्य सम्पूज्य नित्यहोमजपनीराजनान्तं कर्म प्रहरद्वयमध्ये समाप्य, प्रहरद्वयोत्तरमारभ्य मध्यरात्रावधि षट्त्रिंशदुत्तर-सप्तशताधिकविंशतिसहस्रा(२०७३६)कालनित्याभिर्मूलविद्यारहिताभिः कुम्भाभिमन्त्रणं विधाय प्रोक्तविधिना-धिवसेत्। इति द्वितीयदिनकृत्यम्।

तृतीयदिने प्राग्वन्नित्यकर्म निर्वर्त्य शिष्यस्य जन्मनक्षत्रे कुम्भे देवीं साङ्गावरणां सम्पूज्य मूलविद्यामष्टोत्तरसहस्रं शतं वा जपित्वा, कुण्डेषु नित्यहोमोक्तविधिना हुत्वा पूजाशेषं समाप्य, शृङ्गककाहलादिनानावादित्रघोषपुरःसरं ब्राह्मणाशीर्वादैः सह गुरुः प्राङ्निमन्त्रितैर्देवतात्मभिः शक्तिसाधकैः सार्धं स्वयं प्रधानकुम्भं समुत्थाप्य प्रागुक्तविधि-नाभिषिञ्चेत्। ततः शक्तयः सामयिकाश्च कलशानुत्थाप्याभिषेकं कुर्युः। शिष्याय सालंकृताय दिननित्यापर्यायनित्यो-दयाक्षरादिकं स्वक्रमं कथयेत्। शिष्योऽपि तु तदारभ्याविच्छिन्नपर्यायं यथा भवति तथा गुरूक्तक्रमभजनं कुर्यात्। पर्याये गुर्वाज्ञामते विच्छिन्ने शिष्यः साभिषेकं मूलमष्टोत्तरसहस्रं जपेत् प्रायश्चित्तार्थमिति विच्छिन्नदिनानां प्रत्येकं सन्ध्यात्रयं षष्टिजपं घटिकाजपं शतावृत्तिजपं च प्रायश्चित्तं कृत्वा तद्दिनादिक्रमभजनं च कुर्यादिति। ततो गुरवे 'सर्वस्वं वा तदर्धं वा' इति प्रागुक्तरीत्या द्रव्यादिकं दत्त्वा ऋत्विक्सामयिकेभ्यो दीनानाथेभ्यश्च दक्षिणादानैः सन्तोषं सम्भाव्य, चतुर्थदिने स्वगृहे श्रीगुरुसमायिकैः सार्धं महापूजां विधाय ब्राह्मणान् दीनान्धकृपणान् भोजयित्वा दक्षिणादिभिश्च सन्तोषयेदिति पूर्णाभिषेकविधिः।

अधिवासन दिन-कृत्य—प्रथम दिन उक्त मण्डप के बाहर गोबर-लिप्त शुभ स्थान में अपने आसन पर बैठे। गणेश पूजा, मातृका पूजा, वृद्धि-श्राद्ध, पुण्याहवाचन, आचार्य आदि का वरण इत्यादि कर्म पूर्वोक्त विधि से करे। मण्डप में भूतापसारण करे। मध्य में विपुल सुन्दर श्रीचक्र बनाये। पाँच प्रकार के बाजे बजवाये। ऋत्विक् सामयिकों के बीच में वेदि के चारो ओर गुरुमण्डलादि उक्त मण्डल बनाकर मण्डप की प्रतिष्ठा करे। पहले वास्तुमण्डल में बलिपूजा करे। गुरुमण्डल, सर्वतोभद्रादि मण्डलों में देवता को स्थापित करके पूजा करे। श्रीचक्र में विहित स्थानों में विहित कलशों को स्थापित करके कलशों को अलंकृत करने के बाद कुण्ड में अग्नि-स्थापन करके कर्म समाप्त करे।

द्वितीय दिन प्रातः उठकर योगपीठ न्यास करके नित्य कर्म करके फिर से उन मण्डलदेवताओं का पूजन करे। श्रीचक्र

के मध्य में स्थित कलश में सपरिवार देवी का आवाहन करे। षोडशोपचार से पूजन करे। अन्य कलशों में भी ललितादि षोडश नित्याओं का आवाहन करे, पूजन करे। नित्य होम जप नीराजन तक के कर्मों को दो प्रहर में समाप्त करे। दोपहर से आरम्भ करके मध्य रात्रि तक २०७३६ मूल विद्या से रहित कालनित्या से कुम्भ को अभिमन्त्रित करके उक्त विधि से अधिवासन करे।

तृतीय दिन पूर्ववत् नित्यकर्म करके शिष्य के जन्मनक्षत्र में कुम्भ में साङ्ग सावरण देवी का पूजन करे। मूल विद्या का एक हजार आठ या एक सौ आठ जप करे। कुण्डों में नित्य होमोक्त विधि से हवन करके शेष पूजा समाप्त कर शृङ्गी, काहलादि नाना वाद्यों को बजवाये। ब्राह्मणों के आशीर्वाद के साथ गुरु पूर्व निमन्त्रित देवताओं एवं शक्तिसाधकों के साथ स्वयं प्रधान कुम्भ उठाकर पूर्वोक्त विधि से शिष्य का अभिषेक करे। तब शक्तियाँ और सामयिकगण कलश को उठाकर अभिषेक करें। तदनन्तर अलंकृत शिष्य से दिननित्या पर्याय नित्योदय अक्षरादि को स्व क्रम से कथन करे। शिष्य भी आरम्भ करके अविच्छिन्न रूप से गुरुक्त क्रम का पालन करे। पर्याय में गुरु आज्ञा मत में विछिन्न शिष्य साभिषेक मूल का एक हजार आठ जप करे। प्रायश्चित्त के लिये विच्छिन्न दिनों में प्रत्येक तीनों सन्ध्याओं में साठ जप, घटिका जप, सौ आवृत्ति जप से प्रायश्चित्त करके उस दिन के क्रम का पालन करे। तब गुरु को अपना सर्वस्व अथवा आधा द्रव्यादि देकर ऋत्विजों, सामयिकों, दीनों, अनाथों को दक्षिणादान से सन्तुष्ट करे। चौथे दिन अपने घर में श्री गुरु और सामयिकों के साथ महापूजा करके ब्राह्मणों, दीनों, अन्धों एवं कृपणों को भोजन कराकर दक्षिणादि से सन्तुष्ट करे। यही पूर्णाभिषेक विधि होती है।

कादिमते पूर्णाभिषेकविधिः

अथ पूर्णाभिषेके प्रागुक्तषोडशत्रिकोणकरणादिविस्ताराशक्तौ विपुलं श्रीचक्रमुन्द्धृत्य तत्र प्रागुक्तषण्णवतित्रिकोणेषु मध्यत्रिकोणे बृहत्कुम्भमन्येषु कलशान् प्राग्वत् संस्थाप्यावरणपूजां विधायाभिषिञ्चेत्। अथवा मध्यत्रिकोणस्थबिदुस्थानं एव खारितोयपूरितं कुम्भं संस्थाप्य सम्पूज्याभिषिञ्चेत्। अत्र षण्णवतिकलशस्थापनपक्षे त्वावरणशक्तीनां प्रतिकलशमेकैकदेवतापूजनं कुम्भे मूलदेव्याः पूजनमिति। अत्रोत्तरः पक्षस्त्वशक्तविषयः। इति पूर्णाभिषेकविधिः।

पूर्णाभिषेक में पूर्वोक्त षोडश त्रिकोणादि करने में अशक्त होने पर विपुल श्रीचक्र बनाकर पूर्वोक्त छिआनबे कोनों में से मध्य त्रिकोण में बृहत् कुम्भ स्थापित करे। अन्य कलशों को पूर्ववत् स्थापित करके आवरण पूजा करके अभिषेक करे। अथवा मध्य त्रिकोण के बिन्दु स्थान में खारि तोयपूरित कुम्भ स्थापित करके पूजा करे और अभिषेक करे। यहाँ पर छिआनबे कलश-स्थापन के पक्ष में आवरण शक्तियों को प्रति कलश में एक-एक देवता का पूजन होता है और कुम्भ में मूल देवता का पूजन करे। यह पक्ष अशक्तों के लिये है।

खारीलक्षणम्

खारीलक्षणं तु भविष्यपुराणे—

पलद्वयं तु प्रसृतं द्विगुणं कुडवं मतम्। चतुर्भिः कुडवैः प्रस्थः प्रस्थाश्चत्वार आढकः ॥१॥
आढकैस्तैश्चतुर्भिश्च द्रोणस्तु कथितो बुधैः। कुम्भो द्रोणद्वयं शूर्पः खारी द्रोणास्तु षोडश ॥२॥ इति।

खारी का लक्षण—भविष्यपुराण के अनुसार खारी का लक्षण इस प्रकार है—दो पल का एक प्रसृत, दो प्रसृत का एक कुड़व, चार कुडव का एक प्रस्थ, चार प्रस्थ का एक आढक, चार आढक का एक द्रोण, दो द्रोण का एक कुम्भ एवं सोलह द्रोण का एक खारी होता है।

कालचक्ररचनाप्रकारः

अथ कालचक्ररचनाप्रकारः—तत्र प्रथमतः क्वचिद्बिन्दुं कृत्वा तं परितः षडंगुलमानेन वृत्तं कृत्वा तद्बहिरप्येकैकाङ्गुल(अन्तराल)मानतः षोडश वृत्तानीति प्रथमकृतवृत्तेन सह सप्तदश वृत्तानि निष्पादितानि, षट्त्रिंशद्रेखाभिर्विभज्य षोडशषोडशकोष्ठयुक्ताः षट्त्रिंशद्वीथीर्निष्पाद्य, तासु स्वाग्रवीथ्यां सर्वबाह्यस्थकोष्ठमारभ्य प्रवेशगत्या षोडश स्वरान् विलिख्य, ततः प्रादक्षिण्यक्रमप्राप्तद्वितीयवीथ्यां तथैव बाह्यकोष्ठमारभ्य 'ककाकिकी' इत्यादि

षोडशस्वरयुक्तं ककारं विलिख्य, तृतीयवीथ्यां 'खखाखिखी' इत्यादि षोडशस्वरयुक्तं खकारं विलिख्य, चतुर्थवीथ्यां 'गगागिगी' इत्यादि षोडश विलिख्य, पञ्चमवीथ्यां 'घघाघिघी' इत्यादि षोडश विलिख्य, षष्ठवीथ्यां 'ङङाङिङी' इत्यादि षोडशकं विलिख्य, सप्तमवीथ्यां 'चचाचिची' इत्यादि षोडश विलिख्य, अष्टमवीथ्यां 'छछाछिछी' इत्यादि षोडश विलिख्य, नवमवीथ्यां 'जजाजिजी' इत्यादि षोडश विलिख्य, दशमवीथ्यां 'झझाझिझी' इत्यादि षोडश विलिख्य, एकादशवीथ्यां 'ञञाञिञी' इत्यादि षोडश विलिख्य, द्वादशवीथ्यां 'टटाटिटी' इत्यादि षोडश विलिख्य, त्रयोदशवीथ्यां 'ठठाठिठी' इत्यादि षोडश विलिख्य, चतुर्दशवीथ्यां 'डडाडिडी' इत्यादि षोडश विलिख्य, पञ्चदशवीथ्यां 'ढढाढिढी' इत्यादि षोडश विलिख्य, षोडशवीथ्यां 'णणाणिणी' इत्यादि षोडश विलिख्य, सप्तदशवीथ्यां 'ततातिती' इत्यादि षोडश विलिख्य, अष्टादशवीथ्यां 'थथाथिथी' इत्यादि षोडश विलिख्य, एकोनविंशवीथ्यां 'ददादिदी' इत्यादि षोडश विलिख्य, विंशवीथ्यां 'धधाधिधी' इत्यादि षोडश विलिख्य, एकविंशवीथ्यां 'ननानिनी' इत्यादि षोडश विलिख्य, द्वाविंशवीथ्यां 'पपापिपी' इत्यादि षोडश विलिख्य, त्रयोविंशवीथ्यां 'फफाफिफी' इत्यादि षोडश विलिख्य, चतुर्विंशवीथ्यां बवर्गं, २५ वीथ्यां भवर्गं, २६ वीथ्यां मवर्गं, २७ वीथ्यां यवर्गं, २८ वीथ्यां रवर्गं, २९ वीत्यां लवर्गं, ३० वीथ्यां ववर्गं, ३१ वीथ्यां शवर्गं, ३२ षवर्गं, ३३ सवर्गं, ३४ हवर्गं, ३५ वीथ्यां ळवर्गं, ३६ वीथ्या क्षवर्गं, विलिखेत्। एषां षट्त्रिंशद्वीथिषु षट्सप्तत्युत्तरपञ्चशतसंख्याकान् पूर्णमण्डलवर्णानालिख्य, कर्णिकायां 'आईहंसः' इति वर्णचतुष्टयं विलिख्य, सर्वबाह्यवृत्ताद्बहिर्वृत्तत्रयं निष्पाद्य सकेसरमष्टदलकमलं विरच्य तद्बहिश्चतुरस्रं च कुर्यात्। अत्र वर्णविन्यासेन मध्यस्थदेवताभिमुखाः सर्वे वर्णा यथा भविन्त तथा लेख्याः।

इति कालचक्ररचनाप्रकारः

कालचक्र रचना-प्रकार—सर्वप्रथम एक बिन्दु बनाये। उसके चारो ओर छः अंगुल मान से वृत्त बनाये। उसके बाहर एक-एक अंगुल के मान का सोलह वृत्त बनाये। इस प्रकार प्रथम को मिलाकर कुल सत्रह वृत्त बनाये। इनको छत्तीस रेखाओं से विभाजित करके सोलह सोलह कोष्ठयुक्त छत्तीस वीथि बनाये। उनमें अपने आगे की वीथि के सबसे बाहरी कोष्ठ से प्रारम्भ करके प्रवेश गति से सोलह स्वरों को लिखे। तब प्रादक्षिण्य क्रम से प्राप्त द्वितीय वीथि में उसी प्रकार बाहरी कोष्ठ से प्रारम्भ करके क का कि की इत्यादि सोलह स्वरयुक्त ककार लिखे। तृतीय वीथि में ख खा खि खी इत्यादि षोडश स्वरयुक्त खकार लिखे। चौथी वीथि में ग गा गि गी इत्यादि सोलह लिखे। पञ्चम वीथि में घ घा घि घी इत्यादि सोलह लिखे। छठी वीथि में ङ ङा ङि ङी इत्यादि सोलह को लिखे। सप्तम वीथि में च चा चि ची इत्यादि सोलह लिखे। अष्टम वीथि में छ छा छि छी इत्यादि सोलह लिखे। नवम वीथि में ज जा जि जी इत्यादि सोलह लिखे। दशम वीथि में झ झा झि झी इत्यादि सोलह लिखे। एकादश वीथि ञ ञा ञि ञी इत्यादि सोलह लिखे। द्वादश वीथि में ट टा टि टी इत्यादि सोलह लिखे। त्रयोदश वीथि में ठ ठा ठि ठी इत्यादि सोलह लिखे। चतुर्दश वीथि में ड डा डि डी इत्यादि सोलह लिखे। पञ्चदश वीथि में ढ ढा ढि ढी इत्यादि सोलह लिखे। षोडश वीथि में ण णा णि णी इत्यादि सोलह लिखे। सप्तदश वीथि में त ता ति ती इत्यादि सोलह लिखे। अट्ठारहवीं वीथि में थ था थि थी इत्यादि सोलह लिखे। उन्नीसवीं वीथि में द दा दि दी इत्यादि सोलह लिखे। बीसवीं वीथि में ध धा धि धी इत्यादि सोलह लिखे। इक्कीसवीं वीथि में न ना नि नी इत्यादि सोलह लिखे। बाईसवीं वीथि में प पा पि पी इत्यादि सोलह लिखे। तेईसवीं वीथि में फ फा फि फी इत्यादि सोलह लिखे। चौबीसवीं वीथि में बवर्ग, पच्चीसवीं वीथि में भवर्ग, छब्बीसवीं में मवर्ग, २७वीं में य वर्ग, २८वीं में रवर्ग लिखे। २९वी में लवर्ग, ३०वीं में ववर्ग, ३१ वीथि में शवर्ग, ३२ षवर्ग, ३३ सवर्ग, ३४ हवर्ग, ३५ ळवर्ग ३६ में क्षवर्ग लिखे। इन छत्तीस वीथियों में ५७६ पूर्ण मण्डल के वर्णों को लिखे। कर्णिका में आईहंसः—ये चार वर्ण लिखे। सबके बाहर तीन वृत्त बनाये। केसर सहित अष्टदल कमल बनाये। उसके बाहर चतुरस्र बनाये। यहाँ वर्णविन्यास से मध्यस्थ देवता के अभिमुख सभी वर्णों को यथासम्भव लिखे।

यन्त्रभेदकथनम्

एतच्चक्रस्य षट्सप्तत्युत्तरपञ्चशतभेदाः सन्ति। तथा तन्त्रराजे (प० २५ श्लोक २९)—

अथ यन्त्राणि वक्ष्यन्ते प्रोक्तसंख्यान्यनुक्रमात् । वृत्तं षट्त्रिंशदस्रं च तद्वदष्टादशास्रकम् ॥१॥
द्वादशास्रं नवास्रं वा स्वरेऽष्टास्रं षडस्रकम् । चतुरस्रमथ त्र्यस्रमिति भेदा नव क्रमात् ॥२॥
एतानि वर्णविन्यासभेदात् प्रत्येकमष्टधा । तेन द्वासप्ततिर्भेदास्तेषु नित्यार्णभेदतः ॥३॥
प्रत्येकमष्टधेत्येवमुक्तसंख्याः समीरिताः । एतेष्वाद्यस्य वृत्तस्य विन्यासेनान्यदुन्नयेत् ॥४॥
षडङ्गुलपरिभ्रान्त्या वृत्तमेकं तु वर्तयेत् । एवं पुनःपुनः कुर्यादेकैकाङ्गुलतो बहिः ॥५॥
यदा सप्तदशाभूवंस्तदा तद्विभजेदरैः । षट्त्रिंशद्भिस्ततस्तेषु न्यसेद्वर्णास्तथादितः ॥६॥
अनुलोमविलोमौ च बाह्याभ्यन्तरसंपुटौ । बाह्यान्तरपरावृत्ती तथा व्याकीर्णमित्यपि ॥७॥ इति।

अनुलोमः, विलोमः, बाह्यसम्पुटः, आभ्यन्तरसम्पुटः, बाह्यपरावृत्तिः, आभ्यन्तरपरावृत्तिः, बाह्यव्याकीर्णः, आभ्यन्तरव्याकीर्णः, एवमष्टौ भेदा वर्णविन्यासेन। यन्त्राणां पूर्वोक्तानां तु—

कर्णिकायां मरुद्वह्नी नाम्ना संलिख्य सर्वतः । योजयेद्बाह्यकोष्ठस्थैः प्रागुक्तविधिना क्रमात् ॥८॥
अन्येषामरविन्यासः षट्त्रिंशत्सदमुदीरितः । अष्टास्रे षोडशाराः स्युः षट्त्रिंशद्वृत्तमन्यवत् ॥९॥
एतत् पटे समालिख्य बहिरष्टच्छदाम्बुजम् । कृत्वा दलेषु क्रमशो वाग्देव्यष्टकमालिखेत् ॥१०॥
प्रोक्तरूपां ततस्तस्य प्रतिष्ठां सम्यगीरिताम् । विधात पूजयेन्नित्यं पुस्तपूजोक्तसिद्धये ॥११॥
उभयं यः प्रकुरुते तस्य वंशे स्थिरा रमा । न कदाचिच्छ्रियो हानिर्भविष्यति च तत्कुले ॥१२॥
वर्णौषधिक्वाथजलैरापूर्य कलशं महत् । तत्र देवीं समावाह्य सम्पूज्य विधिवन्निशि ॥१३॥
नित्यानां तत्त्वविद्याश्च जपित्वान्येद्युरासने । सम्पूज्य शिष्यं संस्थाप्य भक्त्या तमभिषेचयेत् ॥१४॥ इति।

अत्र तत्त्वनित्याः षट्सप्तत्युत्तरपञ्चशतसंख्याकाः 'तत्त्वावृत्तिरुदीरिता पूर्णमण्डलसंख्यैव' इति तत्रैवोक्तत्वात्।

एवं जन्मानुजन्मादिपौर्णमासीषु साधकः । कुर्यात्कर्षसुवर्णस्य मुद्रिका गौश्च दक्षिणा ॥१५॥
एवं निरन्तरं वर्षं योऽभिषिक्तः स साधकः । पार्थिवस्तस्य वन्द्यो वा भविष्यति न संशयः ॥१६॥
वर्षद्वयाभिषेकेण तद्गेहे स्यात् स्थिरा रमा । वर्षत्रयाभिषेकेण सिद्ध्या विद्याधरो भवेत् ॥१७॥
चतुर्वर्षाभिषेकेण खेचरीमेलनं भवेत् । पञ्चवर्षाभिषेकेण पञ्चत्वं नाधिगच्छति ॥१८॥
षड्वर्षमभिषेकेण लोकपालसमो भवेत् । सप्तवर्षाभिषेकेण दिवाकरसमो भवेत् ॥१९॥
अष्टवर्षाभिषेकेण चन्द्रमःसदृशो भवेत् । नववर्षाभिषेकेण देवीसारूप्यमाप्नुयात् ॥२०॥
जयाय विद्याः षट्त्रिंशदेकपञ्चाशदेव वा । आवृत्तीर्जपहोमार्चातर्पणैः साधु साधयेत् ॥२१॥
तेन जित्वा रिपून् सर्वानेधते तपनो यथा । तथोत्पातेषु सर्वेषु तथा रोगाद्युपद्रवे ॥२२॥
तथा वांछितसिद्ध्यर्थं तथा कृत्यानिवारणे । तथा कृत्यासमुत्पत्तावियं सर्वार्थसिद्धिदा ॥२३॥
एतच्चक्रारमास्थाय ग्रहर्क्षादि प्रवर्तते । एतच्चक्रारविन्यासरूपा भूमिश्च दृश्यते ॥२४॥
तस्मादेतन्मयं सर्वमेतस्य भजनेन च । सर्वे मनोरथाः सिद्धा भजनैः सम्प्रदायतः ॥२५॥
कालप्राप्तक्रमं पूर्वमावर्त्यान्यक्रमं भजेत् । जपतर्पणहोमार्चास्नपनेष्वप्ययं क्रमः ॥२६॥
अमुं ज्ञात्वा विधातव्यमन्यथानर्थमावहेत् । कृत्योत्पत्तौ शत्रुभङ्गे निग्रहे प्रतिलोमकम् ॥२७॥
कालेन प्राप्तमन्यत्र सर्वत्र समुदीरितम् । वशीकरणरक्षासु सम्पुटद्वितयं क्रमात् ॥२८॥
राजशत्रुजये प्रोक्ते परावृत्तक्रमेण वै । गोभूहिरण्यवाहादिलाभेषु च समीरितः ॥२९॥
उच्चाटनेषु व्याकीर्णं तेषु शान्त्यै क्रमं यजेत् । एतद्विधाननिष्णातं प्रणमन्ति सुरासुराः ॥३०॥
तस्मिन्नरिकृताः पीडाः कृत्याद्या नैव संमुखाः । प्रत्युतैव परावृत्ताः कर्तारं नाशयन्ति वै ॥३१॥
यत्रासौ निवसत्येष तत्क्षेत्रं तत्तपोवनम् । श्मशाने पर्वते शून्ये विपिने क्षुद्रपीडने ॥३२॥

प्रतिष्ठिते यन्त्रराजे तत् स्याज्जनपदं महत्। सर्वव्याकीर्णचक्रेण स्थापितेनामरावती ॥३३॥
उच्चाटिता पुनर्देवि मयापि च न रक्ष्यते। शिलायां ताम्रपट्टे वा राजते हेमनिर्मिते ॥३४॥
विलिख्य भूमौ निखनेद् ग्रामराष्ट्रपुरादिषु। कृत्वा देवालयं तत्र चक्रं संस्थाप्य तस्य वै ॥३५॥
कर्णिकामध्यगे वेरं कुर्यात्सान्निध्यसिद्धये। ग्रामादिरक्षणे तत्र मध्ये चाष्टसु दिक्ष्वपि ॥३६॥
खात्वावटं पुनस्तेषु पाषाणैर्घट्टयेद्दृढम्। समावाह्याभिपूज्यान्तः स्थापयेन्मूलविद्यया ॥३७॥
पाषाणेन तदाच्छाद्य पीठं कृत्वोपरि स्थिरम्। नित्यशः पूजयेद्गन्धपुष्पधूपादिभिः समम् ॥३८॥
त्रिसन्ध्यमेवं कुर्वीत नान्यथा सिद्धिदायकम्। तत्कालोक्तानि कुण्डानि नव होमेषु सर्वतः ॥३९॥
होतॄणां दक्षिणावस्त्रभूभूषादासगोधनैः। यद्यन्निजेप्सितं तत्तद् दुष्करं सुकरं भवेत् ॥४०॥ इति।

कालचक्र यन्त्र के भेद—इस चक्र के ५७६ भेद होते हैं; जैसा कि तन्त्रराज में कहा भी गया है—उक्त संख्या के अनुक्रम से अब यन्त्रों का वर्णन करता हूँ। यन्त्रों के क्रमशः वृत्त, छत्तीस कोण, अष्टदशार, द्वादशार, नवास्र, अष्टास्र, षडस्र, चतुरस्र, त्र्यस्र—ये नव भेद होते हैं। वर्णविन्यास के भेद से प्रत्येक यन्त्र आठ प्रकार का होता है। इस प्रकार नित्या वर्णभेद से ये बहत्तर होते हैं। इनमें आद्य वृत्त के विन्यास से अन्य का उन्नयन करे। छः अंगुल त्रिज्या का एक वृत्त बनाये। इसके बाहर एक-एक अंगुल के अन्तराल पर सोलह वृत्त और बनाने पर कुल सत्रह वृत्त होते हैं। इसका छत्तीस विभाग करे। उन सबमें प्रारम्भ से वर्णों का न्यास करे। वर्णों का न्यास अनुलोम-विलोम, वाह्य सम्पुट-अन्तः सम्पुट, वाह्य परावृत्ति-आभ्यन्तर परावृत्ति, वाह्य व्याकीर्ण-आभ्यन्तर व्याकीर्ण—इस प्रकार आठ प्रकार से करे।

पूर्वोक्त यन्त्रों के कर्णिका में चारो ओर वायु एवं वह्नि का नाम लिखे। इन्हें वाह्य कोष्ठस्थ वर्णों से पूर्वोक्त विधि से योजित करे। अन्य में छत्तीस अक्षर का विन्यास करे। अष्टार में षोडशार होते हैं एवं छत्तीस दूसरे वृत्त होते हैं। इन्हें कपड़े पर लिखकर बाहर अष्टदल कमल बनाये। दलों में क्रमशः आठ वाग्देवताओं को लिखे। यथाविधि उनकी सम्यक् प्रतिष्ठा करे। इस प्रकार का यन्त्र बनाकर उसकी सिद्धि के लिये नित्य पूजा करे। जो व्यक्ति दोनों प्रकार से उसकी पूजा करता हूँ, उसके वंश में लक्ष्मी स्थिर रहती है, उसके कुल में कभी भी श्री की हानि नहीं होती। वर्णौषधि से क्वथित जल से बड़े कलश को भरे। उसमें देवी का आवाहन करके रात में विधिवत् पूजन करे। नित्याओं एवं तत्त्वविद्याओं का जप करे। दूसरे दिन आसन पर पूजन करके शिष्य को सामने बैठाकर उसका अभिषेक करे। तत्त्व नित्याएँ ५७६ होती हैं। तत्त्वावृत्ति पूर्ण मण्डल संख्या में होती है।

वहीं पर कहा है कि इस प्रकार जन्मानुजन्मादि पूर्णिमा में साधक पूजन करे। एक कर्ष की अंगूठी और गाय दक्षिणा में देवे। इस प्रकार जिस साधक का अभिषेक पूरे एक वर्ष तक होता है, संसार में उसकी प्रशंसा होती है। दो वर्ष के अभिषेक से उसके घर में लक्ष्मी स्थिर रहती है। तीन वर्ष के अभिषेक से उसे विद्याधर सिद्ध होता है। चार वर्ष के अभिषेक से वह आकाशगामी होता है। पाँच वर्ष तक अभिषिक्त साधक की मृत्यु नहीं होती। छः वर्षों तक अभिषिक्त साधक लोकपाल के समान होता है। सात वर्षों तक अभिषेक होने पर साधक सूर्य के समान होता हैं। आठ वर्षों तक अभिषेक से वह चन्द्रमा के समान हो जाता है एवं नव वर्षों तक के अभिषेक से साधक देवी का सारूप्य प्राप्त करता है।

जप के लिये विद्या से छत्तीस या इक्यावन आवृत्ति जप-होम-अर्चन तर्पण-साधक करे। इससे वह सभी शत्रुओं को जीतकर सूर्य के समान प्रतापी होता है। इसी प्रकार उत्पातों में, सभी रोगों के उपद्रवों में, वांछित सिद्धि के लिये, कृत्यादि निवारण के लिये तथा कृत्या-समुत्पत्ति के लिये यह चक्र सर्वार्थसिद्धिप्रद है। इस चक्र में ग्रह-नक्षत्रों का वास होता है।

इस चक्रार में विन्यास से भूमि रूप दिखायी पड़ता है। इसलिये इसका भजन तन्मयता से करे। सम्प्रदाय के अनुसार भजन करने से साधक के सभी मनोरथ सिद्ध होते हैं। कालप्राप्त क्रम का पूर्व आवर्तन करके अन्य क्रम मे भजन करे। जप-तर्पण-होम-अर्चन स्तवन—यह क्रम है। क्रम को जानकर साधना करे; अन्यथा अनर्थ होता है। कृत्या उत्पत्ति, शत्रु भङ्ग, निग्रह में प्रतिलोम न्यास करे। वशीकरण एवं रक्षा में सम्पुटित क्रम से करना चाहिये। राजशत्रु के जय के लिये परावृत्त क्रम से करे।

गाय-भूमि-सोना-वाहनलाभ के लिये भी इसी क्रम का आश्रयण करे। उच्चाटन में व्याकिर्ण करे। उसकी शान्ति के लिये क्रम से पूजन करे। इस विधान में निष्णात साधक को देवता एवं दैत्य दोनों प्रणाम करते हैं। उसे शत्रुपीड़ा और कृत्यादि का भय नहीं होता। बल्कि उलटे वे सभी कर्ता का ही नाश कर देते हैं। जहाँ ऐसा सिद्ध रहता है, वह तपोवन हो जाता है। श्मशान, पर्वत, शून्य जङ्गल क्षुद्र पीड़ा में यन्त्रराज की प्रतिष्ठा करने से वह स्थान महान् जनपद हो जाता है। सर्वव्याकीर्ण चक्र के स्थापन से अमरावती भी उच्चाटित की रक्षा शिव भी नहीं कर सकते। पत्थर, ताम्रपट्ट, चाँदी पट्ट, सोने के पट्ट या भूमि पर यन्त्र बनाये। ग्राम, राष्ट्र या नगर में देवालय बनाकर इस चक्र का स्थापन करे। सान्निध्य सिद्धि के लिये कर्णिका में वेर बनाये। ग्रामादि की रक्षा के लिये बीच में तथा आठो दिशाओं में गड्ढा खोदकर गाड़े और ऊपर पत्थर रखकर उसे मजबूत बनाये। आवाहन करके पूजन करे और मूल विद्या से उसे स्थापित करे। उसे पत्थर से ढककर स्थिर पीठ बना दे। गन्ध-पुष्प-धूपादि से उसकी नित्य पूजा करे। तीनों सन्ध्याओं में इसी प्रकार पूजन करे; अन्यथा सिद्धि नहीं मिलती। हवन के लिये नवकुण्ड बनाये। होताओं को दक्षिणा में वस्त्र, भूमि, आभूषण, दास, गाय एवं धन प्रदान करे।

दिननित्याविद्यापरिज्ञानम्

अत्र युगनित्यासु पूर्णमण्डलसंख्याकास्तत्त्वनित्या अपि तथैव। एतत्परिज्ञातं तु तद्दिननित्याविद्यायाः प्रथमाक्षरं युगाक्षरं भवति। द्वितीयाक्षरं तत्त्वाक्षरं भवति। तद्दिननित्याविद्याया अपि परिज्ञानं तु ज्योतिःशास्त्रोक्तनीत्या गतकल्पाद्यहर्गणं विधाय पूर्णमण्डलसंख्यया भागे कृते उर्वरिताक्षरं तद्दिननित्याविद्यायाः प्रथमाक्षरं (षट्त्रिंशताभागे द्वितीयाक्षरं) भवति। एवं वाग्भवं कामराजमित्यक्षरद्वयं जातम्। शक्तिकूटस्थाने ईकारः सर्वासु विद्यास्वन्ते योजनीयः। एवं तद्दिननित्याविद्यायाः परिज्ञाने जाते तद्दिननित्याविद्यायाः प्रथमाक्षरं यत्स्वरयुक्तं भवति, तत्स्वरादितः पुनस्तत्स्वरपर्यन्तं प्राग्वदक्षरत्वेन संयोजिताः ५७६ संख्याका युगनित्याविद्या जायन्ते। एवं तद्दिननित्याविद्याया द्वितीयाक्षरं यद्भवति तद्गृहीत्वा प्राग्वदक्षरत्वेन योजिताः ५७६ संख्याकास्तत्त्वनित्याविद्या जायन्ते। तत्त्वनित्या दिननित्या इति पर्यायः। अत्र ५७६ वर्णा वाग्भवाख्याः ३६ वर्णाः कामराजाख्या बोद्धव्याः।

यहाँ पर युगनित्याओं की संख्या पूर्ण मण्डल के बराबर है। तत्त्वनित्या भी उतनी ही है। यह जानकर उस दिन की नित्याविद्या का प्रथम अक्षर युगाक्षर होता है। द्वितीयाक्षर तत्त्वाक्षर होता है। उस दिन की नित्याविद्या का ज्ञान भी ज्योतिष शास्त्रोक्त विधि से गत कल्प के आद्य अहर्गण से पूर्ण मण्डल संख्या में भाग देने से लब्ध अक्षर उस दिन की नित्या विद्या का प्रथमाक्षर होता है। पूर्ण मण्डल संख्या ५७६ में ३६ से भाग देने पर द्वितीयाक्षर होता है। इस प्रकार वाग्भव एवं कामराज—ये दो अक्षर होते हैं। शक्तिकूट स्थान में ईकार सभी विद्याओं के अन्त में योजनीय है। इस प्रकार दिननित्या ज्ञात होने पर दिननित्या विद्या का प्रथमाक्षर जिस स्वर से युक्त होता है, उसी स्वर के आदि से पुनः उस स्वर तक पूर्ववत् अक्षरत्व से योजित ५७६ संख्या की युगनित्या विद्या होती है। इस प्रकार से उस दिन की नित्या विद्या का जो द्वितीयाक्षर होता है, उसे ग्रहण करके पूर्ववत् अक्षरत्व से जोड़ने पर ५७६ संख्या में तत्त्वविद्या होती है। तत्त्वनित्या ही दिननित्या होती है। यहाँ ५७६ वर्णों का नाम वाग्भव हैं एवं ३६ वर्णों को कामराज जानना चाहिये।

पर्यायनित्याक्रमः

पर्यायनित्याक्रमस्तु—यस्मिन्दिने आचार्यचरणानां दीक्षा जाता तद्दिनमारभ्याहर्गणस्य पूर्णमण्डलसंख्यया भागे कृते प्रथमाक्षरं लभ्यते। तथैवाहर्गणस्य षट्त्रिंशता भागे कृते द्वितीयाक्षरं लभ्यते, तृतीयबीजमीकारः। एवमक्षरत्रयात्मिका पर्यायनित्याविद्या भवति। एतस्या अपि प्राग्वत्प्रथमाक्षरं युगाक्षरं भवति, तद्द्वितीयाक्षरं तत्त्वाक्षरं भवति। एतेन युगनित्यादिननित्ये लभ्येते। अत्र कालनित्याविद्यास्तु २०७३६। युगनित्यास्तु ५७६। तत्त्वनित्यास्तु ५७६। तद्दिननित्याविद्यास्तु ५७६। पर्यायनित्याविद्यास्तु ५७६। कालनित्यानां जपे तु नाथावृत्तिः। प्रतिदिनं संख्या ज्ञातव्या। नित्यावृत्तिस्तु प्रतिदिनं १२९६ संख्या। एवं चेन्नाथावृत्तेर्नव दिनानि। नित्यावृत्तेः १३ दिनानीति बोध्यम्।

इति कादिमते पूर्णाभिषेकप्रयोगः।

पर्याय नित्या का क्रम यह है कि जिस दिन आचार्यचरण से दीक्षा प्राप्त होती है, उसी दिन से आरम्भ करके अहर्गण में पूर्ण मण्डल संख्या ५७६ से भाग देने पर प्रथमाक्षर प्राप्त होता है। उसी प्रकार ३६ से भाग देने पर द्वितीयाक्षर प्राप्त होता है। इस प्रकार तीन अक्षरों की पर्याय नित्या विद्या होती है। इसका भी पूर्ववत् प्रथमाक्षर युगाक्षर होता है। उसका द्वितीयाक्षर तत्त्वाक्षर होता है। इससे युगनित्या दिननित्या प्राप्त होती है। यहाँ काल नित्याविद्या २०७३६ है। युगनित्या ५७६ है। तत्त्वनित्या ५७६ है। दिननित्या ५७६ है एवं पर्यायनित्या भी ५७६ है। कालनित्या जप में नाथावृत्ति होती है। प्रतिदिन नित्यावृत्ति १२९६ होती है। इस प्रकार नाथावृत्ति नव दिन में पूर्ण होती है। नित्यावृत्ति १३ दिनों की होती है। यही कादिमत से पूर्णाभिषेक की विधि होती है।

नैमित्तिकपूजा

अथ नैमित्तिकपूजा—तत्र दीक्षितः प्राप्तपूर्णाभिषेकः कृतपुरश्चरणो नित्यार्चनानिरतो नैमित्तिकार्चनं कुर्यात्। पुरश्चरणविधिस्त्वग्रे वक्ष्यते। श्रीतन्त्रराजे (६ प० २ श्लोक)—

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं सापेक्षं पूर्वपूर्वतः। अन्यथा भजनं चेच्छन् करोत्यापत्परम्पराम् ॥१॥
नित्यार्चनरतैः सिद्धैः कार्यं नैमित्तिकार्चनम्। तद्विधानमतो वक्ष्ये चैत्राद्यं फाल्गुनावधि ॥२॥ इति।

विशेषदिवसेषु क्रियमाणा महापूजा विशेषपूजेत्युच्यते। चैत्रादिफाल्गुनावधि वक्ष्यमाणा या पूजा सा तु नैमित्तिकपूजा। केचित्तु विशेषपूजाया नैमित्तिकेऽन्तर्भाव इति वदन्ति। इमां नैमित्तिकपूजां रात्रावेव कुर्यात्। तदुक्तं कुलार्णवे—

नित्यार्चनं दिवा कुर्याद्रात्रौ नैमित्तिकार्चनम्। उभयोः काम्यकर्माणि चेति शास्त्रस्य निर्णयः ॥१॥ इति।

विशेषदिवसास्तु तन्त्रराजादिग्रन्थेषूक्तानि दिनानि। तानि तु गुरुपरमगुरुपरमेष्ठिगुरूणां जन्मवारतिथि-नक्षत्राणि स्वजन्मवारतिथिनक्षत्राणि विद्याप्राप्तिदिनं गुरोः क्षयदिनम् अष्टमीचतुर्दशीपूर्णिमामावस्यारविसंक्रमण-युगादिदिनानि पुष्यनक्षत्र-रविवार-पीठोपपीठगमनदेशिकागमनवीरमहायोगिदर्शन-तीर्थगमन-व्रतदीक्षाद्युत्सवदिनानि, विशेषक्षेत्रगमन-देवतादर्शनाक्षरत्रयसम्पातदिनानि च। अक्षरत्रयसम्पातदिनमित्येकस्याक्षरस्य दिनाक्षरत्वेनोदयाक्षरत्वेन युगाक्षरत्वेन च दर्शनं यस्मिन् दिने तद्दिनं विशेषपर्व। एतेषु दिनेषु नित्यपूजानन्तरं यथाबलं यथाश्रद्धं यथाकालं यथा-देशं यथाविभवविस्तरं वित्तशाठ्यरहितो यथोक्तद्रव्यैर्यथागुरूपदेशं शक्तिसामयिकैः सार्द्धं विशेषपूजां कृत्वा यथाशास्त्रं गुरुं सामयिकांश्च तोषयेत्। अत्र गुरुपर्वदिनेषु गुरुपंक्तिपूजोक्तमानवौघगुरुसंख्याकान् साधकान् तत्तन्नाम्ना सर्वोपचारैः समभ्यर्च्य यथाशक्तिदक्षिणादानादिभिः परितोषयेत्। तेषु पर्वसु गुरुमण्डलपूजापि विधेया।

नैमित्तिक पूजा—दीक्षित, पूर्णाभिषिक्त, कृत पुरश्चरण, नित्य अर्चनरत साधक को नैमित्तिकार्चन करना चाहिये। तन्त्रराज में कहा गया है कि नित्य, नैमित्तिक एवं काम्य कर्म परस्पर एक-दूसरे के सापेक्ष होते हैं। इनका पालन न करने से आपत्तियों का सामना करना पड़ता है। नित्यार्चन में संलग्न सिद्ध को नैमित्तिकार्चन करना चाहिये। नैमित्तिक पूजा चैत्र से फाल्गुन तक की जाती है। विशेष दिनों में क्रियमाण महापूजा को विशेष पूजा कहते हैं। कुछ लोग विशेष पूजा को ही नैमित्तिक पूजा कहते हैं। यह नैमित्तिक पूजा रात में ही करनी चाहिये, जैसा कि कुलार्णव में कहा भी गया है—नित्यार्चन दिन में करे और नैमित्तिकार्चन रात में करे। दोनों ही को शास्त्रों में काम्य कर्म कहा गया है।

तन्त्रराजादि ग्रन्थों में विशेष दिन उक्त हैं। उनमें गुरु, परमगुरु, परमेष्ठि गुरु के जन्म-वार-तिथि-नक्षत्र, अपना जन्म-वार-तिथि-नक्षत्र, विद्याप्राप्ति का दिन, गुरु का निधन दिन, अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावस्या, सूर्यसंक्रान्ति, युगादि दिवस, पुष्य नक्षत्र, रविवार, पीठोपपीठ गमन, देशिक आगमन, वीर महायोगी दर्शन, तीर्थ गमन, व्रत-दीक्षा उत्सव के दिन, विशेष क्षेत्रगमन, देवतादर्शन एवं अक्षरत्रय सम्पात दिन का परिगणन किया गया है। अक्षरत्रय सम्पात दिन एक अक्षर का दिनाक्षर रूप में उदय, युगाक्षर का दर्शन जिस दिन हो वे दिन विशेष पर्व माने जाते हैं। इन दिनों में नित्य पूजा के बाद यथाबल,

यथाश्रद्धा, यथाकाल, यथादेश, यथाविभव विस्तर, वित्तशाठ्यरहित यथोक्त द्रव्य, यथा गुरूपदेश शक्ति सामयिकों के साथ विशेष पूजा यथाशास्त्र करे। गुरु एवं सामयिकों को सन्तुष्ट करे। यहाँ गुरुपर्व दिनों में गुरुपंक्ति पूजोक्त मानवौघ गुरुओं को उनके नाम ग्रहणपूर्वक सभी उपचारों से अर्चन करके यथाशक्ति दक्षिणा-दानादि से सन्तुष्ट करे। उन पर्वों में गुरुमण्डल का भी पूजन करे।

दमनारोपणविधिः

श्रीतन्त्रराजे (६ प० ४ श्लोक)—

चैत्रे दमनकैः कुर्यात् समूलैर्वाथ गुच्छकैः। पूर्वपक्षचतुर्दश्यां निशि संस्थाप्य विद्यया ॥३॥
परेद्युर्नित्यपूजान्ते कुर्यादेतैस्तु पूजनम्। अस्मिन् मासे च पूर्णायां वसन्तोत्सवपूजनम् ॥४॥
कुर्यात्तत्कालसम्भूतैः प्रसूनैश्चन्द्रचन्दनैः। सौगन्धिकैः सकाश्मीरैः पूजां पूर्ववदुज्ज्वलाम् ॥५॥ इति।

तत्र विधिस्तु—चैत्रे मासि पूर्णायां दमनैः सम्पूजयेत्। तद्यथा—चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां साधकः कृतनित्यक्रियः साधकैः सार्धं दमनसमीपं गत्वा मूलमन्त्रेण दमनमामन्त्र्य कालीमते तु पूर्वोक्तचतुष्कल्पलताविद्याभिर्दमनमभिमन्त्रय 'ॐ शिवप्रसादसम्भूत अत्र सन्निहितो भव। शिवकार्ये समुच्छिद्य नेतव्योऽसि शिवाज्ञया' इति दमनमामन्त्र्य, तत्र कामदेवं रतिं च वक्ष्यमाणतन्मन्त्र(त्तत्र)प्रकारेण दमनकमूले ध्यात्वा सम्पूज्य गृहमागच्छेत्। ततश्चतुर्दश्यां कृतनित्यक्रियः साधकः साधकैः सार्धं पुनर्दमनसमीपं गत्वास्त्रमन्त्रेण दमनं समूलमुत्पाट्य शस्त्रेण गुच्छान् क्षिप्त्वा गृहमानीय, 'अघोरे ऐंओंघोरे ह्लीं घोरतरे श्रीं सर्वतः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते रुद्ररूपेभ्यः ह्लींश्रीं' इति मन्त्रेण दमनमभ्युक्ष्य पूजास्थाने क्वचित्पात्रे दमनं नवधा विभज्य मध्येऽष्टसु दिक्षु च संस्थाप्य, हृन्मन्त्रेण दमनमभ्युक्ष्य पूजास्थाने चन्दनागुरु-कर्पूरकुङ्कुमादिपङ्कैः संलिप्य, हंनमः संनमः क्षंनमः मंनमः लंनमः वंनमः रंनमः यंनमः ॐनमः, इति नवधा विभक्तं दमनं मध्यादिप्रादक्षिण्येन सम्पूज्यास्त्रेण संरक्ष्य, करद्वयेन त्रिशूलमुद्रां बद्ध्वा कवचमन्त्रेण दमनोपरि भ्रामयेत्। ततो नूतनवस्त्रेणाच्छाद्य रहसि दमनं स्थापयेदित्यधिवासनं चतुर्दश्यां रात्रौ कुर्यात्। ततः पौर्णमास्यां प्रातः-स्नानादिनित्यपूजादिकं निर्वर्त्य सामयिकैः सार्धं स्वस्तिवाचनपुरःसरं दमनं पूजास्थानमानीय, पूर्वेद्युरधिवासनाकरणे चतुर्दश्यां सायन्तने प्रोक्तविधिना दमनमामन्त्र्य पूर्णिमायां दमनमानीय, यद्वा पूर्णिमायामेव दमनमामन्त्र्यानीय चोक्तविधिना सद्योधिवासनं वा विधाय, पुरतः सिन्दूरेण चतुरस्रवृत्तद्वयवेष्टितं नवयोनिचक्रं विधाय, तस्य नवयोनिषु स्वर्णादिरचितान्नव कलशान् यवपुञ्जोपरि दीक्षाप्रकरणवक्ष्यमाणविधिना मध्ययोनावेकं वा कुम्भं संस्थाप्य, स्वासनपूजादिपीठपूजान्तं विधाय, विस्तरतः संक्षेपतो वा कृत्वा पञ्चायतनी चेत् गणेशादीन् दमनैः सम्पूज्य, स्वदक्षिणभागे सर्वतोभद्रमण्डलं प्रागुक्तं कृत्वा, तदशक्तावष्टदलकमलं वा सिन्दूरादिना कृत्वा, तन्मध्येऽशोकतरुं पञ्चवर्णरजोभिरारचय्य तस्याधस्त्रि-कोणमण्डले कामदेवं तरुणमरुणवर्णं रक्तवस्त्राभरणमाल्यानुलेपनं वामदक्षिणयोः रतिप्रीतिभ्यां शोभितं पुष्पबाणेक्षुधनुर्धरं वसन्तसहितं ध्यात्वा '४क्लीं कामाय नमः' इति मन्त्रेण गन्धादिपञ्चोपचारैः कामदेवं सम्पूज्य तद्वामभागे रतिं गौरवर्णां सर्वालङ्कारभूषितां रक्तवस्त्रपरीधानां पद्मकरां ध्यात्वा '४ श्रींश्रींक्रों रत्यै नमः' इति मन्त्रेण रतिं पञ्चोपचारैः सम्पूज्य, कामस्य दक्षिणभागे प्रीतिं श्यामवर्णां (सर्वा)भरणभूषितां रक्तवस्त्रपरीधानां ताम्बूलकरां ध्यात्वा '४ श्रींश्रींश्रींक्षौं प्रीत्यै नमः' इति प्रीतिं पञ्चोपचारैः सम्पूज्य, ततः कामदेवस्याग्रे कदम्बवनमध्ये वसन्तं गौरवर्णं वामह-स्तेन सुधाकुम्भं दक्षिणहस्तेन नानापुष्पसमुच्चयं दधानं रक्तवस्त्राभरणभूषितं रक्तमाल्यानुलेपनं ध्यात्वा 'वं वसन्ताय नमः' इति मन्त्रेण पञ्चोपचारैर्वसन्तं सम्पूज्य, पुनर्मध्ये कामदेवं पुष्पाञ्जलिना सम्पूज्याष्टदलकेसरेषु अग्नीशा-सुरवायव्यचतुर्दिक्षु च 'क्लां हृदयाय नमः' इत्यादि षडङ्गानि सम्पूज्य, अष्टदलेषु अग्रादिप्रादक्षिण्येन ॐ कामाय नमः। ॐ भस्मशरीराय नमः। ॐ अनङ्गाय नमः। ॐ मन्मथाय नमः। ॐ वसन्तसखाय नमः। ॐ स्मराय नमः। ॐ इक्षुधनुर्धराय नमः। ॐ पुष्पबाणाय नमः। इत्यष्टौ कामान् सम्पूज्य, बहिश्चतुरस्रे लोकपालांस्तदायुधानि च

पूजयेत्। पुनः कामदेवं तन्मन्त्रेण सम्पूज्य धूपदीपादिकं दत्वा प्रणम्य, 'ॐ कामदेवाय विद्महे पुष्पबाणाय धीमहि तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात्' इति कामगायत्रीं यथाशक्ति जपित्वा समर्प्य 'नमोऽस्तु पुष्पबाणाय जगदानन्दकारिणे। मन्मथाय जगज्जेत्रे रतिप्रीतिप्रियाय च' इति कामदेवं प्रणम्य, मूलविद्यया ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासान् विधाय, मध्यकुम्भे प्राग्वद् देवीमावाह्य षोडशोपचारैः सम्पूज्य, प्राग्वत् तिथिनित्यादिलोकपालान्तान् उक्तक्रमेण दमनैः सम्पूज्य, 'आवाहितासि देवेशि सद्यःकाले मया शिवे। कर्तव्यं तु यथाकालं पूर्वं सर्वं त्वदाज्ञया' इति विज्ञाप्य देवीं गन्धपुष्पादिभिः पुनः सम्पूज्य, प्राग्वद्धूपादिनैवेद्यानि समर्प्य, नैमित्तिकहोमं नित्यहोमोक्तविधिना कृत्वा राजोपचारान् महदारार्तिकं कुमारीसुवासिनीवटुकादिपूजां विधाय, सर्वान् भोजनवस्त्रालङ्कारदक्षिणाताम्बूलादिभिः परितोष्य, स्वगुरुमपि तथा परितोष्य तदभावे तत्कुलीनमन्यं वा परितोष्य, मूलविद्यां नित्यजपात् त्रिगुणां जपित्वा, देव्यै जपं समर्प्य स्तुत्वा प्रणम्य 'षोडशार्णे जगन्मातर्वाञ्छितार्थफलप्रदे। कामान् पूरय भो देवि कामं कामेश्वरीश्वरि' इति देवीं प्रार्थ्य, पुनः कामदेवं तन्मन्त्रेण दमनैः सम्पूज्य रतिप्रीतिवसन्तांश्च दमनैः सम्पूज्य, धूपदीपादिकं निवेद्य कामदेवं वसन्तं विसृज्य, पुष्पाञ्जलिमादाय 'समस्तचक्रचक्रेशि सर्वविद्याशरीरिणि। देवि मातर्ममैवं तु भवत्विष्टं त्वदाज्ञया' इति पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा विसृज्य, श्रीपात्रोद्वासनादि सर्वं समाप्य शक्तिसामयिकानन्यान् ब्राह्मणानपि भूरिदक्षिणाभोजनादिभिः परितोषयेत्। इति दमनारोपणविधिः।

इयं दमनपूजा यदि चैत्रपूर्णिमायां न सम्पद्यते तदा पक्षद्वयेऽष्टमीनवमीचतुर्दश्यन्यतमतिथौ कार्या। चैत्रे मासि चेन्न भवेत् तदा वैशाखे ज्यैष्ठे वा मासि प्रोक्ततिथिष्वन्यतमतिथौ कुर्यात्। अथ चैत्रे मासि पूर्णायामेव तत्कालसम्भवैः सचन्दनकर्पूरकुङ्कुमकह्लारैर्वसन्तोत्सवपूजां कुर्यात्। अत्रापि नैमित्तिकपूजायां पूजाद्रव्याणि निशि पूर्वेद्युः क्वचित्पात्रे निधाय मूलविद्ययाभ्युक्ष्य मूलमन्त्रदिननित्याभ्यां गन्धाद्युपचारैरभ्यर्च्याधिवासनं विधाय, परेद्युर्नित्यकर्मान्ते: तैः सविशेषपूजनं कृत्वा स्वगुरुपूजनं च कुर्यादित्यधिवासनं पूजनं च बोद्धव्यम्। तथा—

वैशाखे मासि पूर्णायां पूजयेद्धिमपुष्करैः। अपि वा चन्द्रकस्तूरीचन्दनैः शिशिरोदकैः ॥६॥ इति।

एतस्यार्थः—वैशाखपूर्णायां हिमजलैः कर्पूरकस्तूरीचन्दनोन्मिश्रैः शीतलोदकैर्वा प्राग्वदधिवासनपूर्वकं विशेषपूजां कुर्यादित्यर्थः। तथा—

ज्यैष्ठे मासि च पूर्णायां कदलीपनसाम्रजैः। फलैस्तु पूजयेद्देवीं पूर्ववत् सर्वसिद्धये ॥७॥ इति।

तत्र ज्यैष्ठे मासि पूर्णायां विशेषपूजां विधाय कदलीपनसाम्रफलैर्महानैवेद्यैर्देवीं परितोष्य गुर्वादिपूजनं कुर्यात् इति। तथा—

आषाढे मासि पूर्णायां चन्दनैः कुङ्कुमान्वितैः। एलाकक्कोलजातीभिरुपेतैः पूजयेच्छिवाम् ॥८॥ इति।

स्पष्ट एवैतस्यार्थः।

दमनक-पूजा—श्रीतन्त्रराज में कहा गया है कि चैत्र में समूल या गुच्छक रूप में दमनक-पूजा करे। पूर्व पक्ष की चतुर्दशी की रात में विद्या से दमनक को स्थापित करके दूसरे दिन नित्य पूजा के बाद इनका पूजन करे। इस माह में पूर्णिमा में वसन्तोत्सव पूजा करे। तत्काल-सम्भूत पुष्प, चन्दन, सुगन्ध, कुङ्कुम पूर्ववत् उज्ज्वल पूजा करे। यहाँ पर विधि यह है कि चैत्र मास की पूर्णिमा में दमन की पूजा करे। जैसे—चैत्र शुक्ल त्रयोदशी में साधक नित्य क्रिया करके दमन के समीप जाय। मूल मन्त्र से दमन को आमन्त्रित करे। कालीमत से पूर्वोक्त चतुष्कला विद्या से दमन को अभिमन्त्रित करे। 'ॐ शिवप्रसादसम्भूत अत्र सन्निहितो भव। शिवकार्ये समुच्छिद्य नेतव्योऽसि शिवाज्ञया' इस मन्त्र से दमन (अशोक) को आमन्त्रित करे। वहाँ कामदेव एवं रति का उनके वक्ष्यमाण मन्त्र और विधि से दमन के मूल में ध्यान करके पूजा करके घर आ जाय। तब चतुर्दशी में नित्य कृत्य करके साधक साधकों के साथ पुनः दमन के समीप जाकर अस्त्रमन्त्र 'फट्' से दमन को जड़सहित उखाड़े। शस्त्र से

उसके गुच्छों को काटे। घर लाकर—अघोरे ऐं ओं घोरे ह्रीं घोरतरे श्रीं सर्वत: सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते रुद्ररूपेभ्य: ह्रीं श्रीं मन्त्र से दमन का अभ्युक्षण करे। पूजास्थल में किसी पात्र में दमन का नव भाग करे। उसे मध्य में और आठों दिशाओं में स्थापित करे। हृन्मन्त्र से दमन पर जल का छींटा दे। पूजा स्थान में चन्दन अगर कपूर कुङ्कुम आदि का लेप लगाये। हं नम:, सं नम:, क्षं नम:, मं नम:, लं नम:, वं नम:, रं नम:, यं नम:, ॐ नम: से नवधा विभक्त दमन का पूजन मध्य से प्रारम्भ करके प्रादक्षिणक्रम से करके अस्त्रमन्त्र से संरक्षण करे। दोनों हाथों से त्रिशूल मुद्रा बाँधकर कवच मन्त्र से दमन पर घुमाये। तब नये वस्त्र से उसे ढक कर एकान्त में स्थापित करे अधिवासन चतुर्दशी की रात में करे।

तब पूर्णिमा में प्रात:स्नानादि नित्य पूजादि करके सामयिकों के साथ स्वस्तिवाचन करते हुये दमन को पूजास्थान में ले आये। अधिवासन दिवस के पहले चतुर्दशी की शाम में यथाविधि दमन को आमन्त्रित करके पूर्णिमा में दमन को ले आये या पूर्णिमा में ही दमन को आमन्त्रित करके ले आये अथवा प्रोक्त विधि से सद्य: अधिवासन करके उसके आगे सिन्दूर से चतुरस्त्र वृत्तद्वय वेष्टित नवयोनि चक्र बनाये। उन नवों योनियों में स्वर्णादि से रचित नव कलशों को यव की ढेरी पर दीक्षाप्रकरण में वक्ष्यमाण विधि से मध्य योनि में एक कुम्भ स्थापित करे। अपने आसन से प्रारम्भ कर पीठ पूजा तक करे। पूजा विस्तार से या संक्षेप में करके पञ्चायतन पूजा में गणेशादि का पूजन दमन से करे। अपने दाहिने भाग में पूर्वोक्त सर्वतोभद्र मण्डल बनाये। उसमें अशक्त होने पर सिन्दूर से अष्टदल कमल बनाये। उसमें अशोक तरु का अर्चन पाँच रङ्ग के चूर्णों से करे। उसके नीचे वाले त्रिकोण मण्डल में तरुण अरुण वर्ण, रक्त वस्त्राभरण, माला, अनुलेपन लगाये, वाम, दक्षिण में रति एवं प्रीति से शोभित, पुष्पबाण ईख एवं धनुर्धर कामदेव का वसन्त के सहित ध्यान करके 'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं कामाय नम:' मन्त्र से गन्धादि पञ्चोपचार से कामदेव का पूजन करे। कामदेव के वाम भाग में गौरवर्ण, सर्वालङ्कार-भूषित, रक्त वस्त्र धारण की हुई एवं कमल ली हुई रति का पूजन 'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं श्रीं श्रीं क्रीं रत्यै नम:' मन्त्र से पञ्चोपचार से करे। कामदेव के दक्षिण भाग में श्यामवर्णा, सर्वाभरणभूषिता, रक्त वस्त्रधारिणी ताम्बूलकरा प्रीति का ध्यान करके 'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं श्रीं श्रीं श्रीं क्षौं प्रीत्यै नम:' से पञ्चोपचार पूजन करे। तब कामदेव के आगे कदम्बवन में गौरवर्ण, बाएँ हाथ में सुधाकलश एवं दाएँ हाथ में नाना पुष्प का गुलदस्ता धारण किये, लाल वस्त्राभूषण से भूषित, रक्त माला, अनुलेपन युक्त वसन्त का ध्यान करके 'वं वसन्ताय नम:' से पञ्चोपचार पूजन करे। फिर मध्य में कामदेव को पुष्पाञ्जलि से पूजन करे।

अष्टदल के केसरों में एवं अग्नि ईशान नैर्ऋत्य वायव्य और चारो दिशाओं में क्लां हृदयाय नम: इत्यादि से षडङ्ग पूजन करे। अष्ट दलों में आगे से प्रारम्भ करके प्रदक्षिण क्रम से—ॐ कामाय नम:, ॐ भस्मशरीराय नम:, ॐ अनङ्गाय नम:, ॐ मन्मथाय नम:, ॐ वसन्तसखाय नम:, ॐ स्मराय नम:, ॐ इक्षुधनुर्धराय नम:, ॐ पुष्पबाणाय नम: से आठ कामों का पूजन करे। बाहर चतुरस्त्र में लोकपालों और उनके आयुधों का पूजन करे। पुन: कामदेव का पूजन उसके मन्त्र से करके धूप-दीपादि देकर प्रणाम करे—ॐ कामदेवाय विद्महे पुष्पबाणाय धीमहि तन्नो अनङ्ग: प्रचोदयात्—इस कामगायत्री का जप यथाशक्ति करके जप समर्पण करते हुये इस प्रकार प्रार्थना करे—

नमोऽस्तु पुष्पबाणाय जगदानन्दकारिणे। मन्मथाय जगज्जेत्रे रतिप्रीतिप्रियाय च।।

इस प्रकार प्रणाम करके मूल विद्या से ऋष्यादि कर षडङ्ग न्यास करे। मध्य कुम्भ में पूर्ववत् देवी का आवाहन करके उसका पूजन षोडशोपचार से करे। पूर्ववत् तिथि नित्यादि लोकपालों तक की पूजा उक्त क्रम से दमन से करके निम्न श्लोक पढ़े—

आवाहितासि देवेशि सद्य: काले मया शिवे। कर्तव्यं तु यथाकालं पूर्णं सर्वं त्वदाज्ञया।।

यह कहकर देवी का पूजन गन्ध-पुष्पादि से करे। पूर्ववत् धूप-दीप-नैवेद्यादि समर्पित करे। नैमित्तिक होम नित्य होमोक्त विधि से करे। राजोपचार, महान् आरती, कुमारी-सुवासिनी-वटुकादि पूजन करे। सबों को भोजन वस्त्र अलङ्कार दक्षिणा ताम्बूलादि से सन्तुष्ट करे। अपने गुरु को भी उसी प्रकार सन्तुष्ट करे। गुरु के न होने पर उनके कुल के किसी को तुष्ट करे। मूल विद्या नित्य जप से तिगुना अधिक जप करे। देवी को जप निवेदित करे। स्तुति प्रणाम करे। षोडशार्णे जगन्मातर्वाञ्छितार्थफल

प्रदे। कामान् पूरय भो देवि कामं कामेश्वरीश्वरि—इस प्रकार देवी की प्रार्थना करके पुनः कामदेव को उसके मन्त्र से दमन से पूजा करे। रति-प्रीति एवं वसन्त का पूजन भी दमन से करे। धूप-दीपादि देकर कामदेव एवं वसन्त का विसर्जन करके पुष्पाञ्जलि लेकर कहे—

समस्तचक्रचक्रेशी सर्वविद्याशरीरिणि। देवि मातर्ममैवं तु भवत्विष्टं त्वदाज्ञया।।

इस प्रकार पुष्पाञ्जलि प्रदान करे। विसर्जन करे। श्रीपात्रादि का उद्वासन करे। शक्ति-सामयिक एवं अन्य ब्राह्मणों को प्रभूत दक्षिणा भोजन आदि से सन्तुष्ट करे।

यह दमन पूजा यदि चैत्र पूर्णिमा में न हो सके तो दोनों पक्ष की अष्टमी नवमी चतुर्दशी में से किन्हीं तिथियों में करे। चैत्र मास में यदि न हो सके तो वैशाख या ज्येष्ठ मास में उक्त तिथियों में करे। चैत्र पूर्णिमा में तत्काल उत्पन्न चन्दन कपूर कुङ्कुम कल्हार से वसन्तोत्सव पूजा करे। यहाँ भी नैमित्तिक पूजा में पूजा द्रव्य को रात के पहले दिन किसी पात्र में रखकर मूल विद्या से अभ्युक्षित करे। मूल मन्त्र एवं दिन नित्या से गन्धादि से अर्चन करके अधिवासन करे। दूसरे दिन नित्य कृत्य के बाद विशेष पूजन करे। अपने गुरुजन से जानकर अधिवासन पूजन करे। जैसा कि कहा भी है—

वैशाख मास की पूर्णिमा में हिमजल से पूजन करे या कपूर कस्तूरी चन्दन या शिशिर जल से करे। साथ ही यह भी कहा गया है कि ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा में केला, कटहल, आम फलों से देवी का पूजन करे। इससे सभी सिद्धियाँ मिलती हैं। आषाढ़ मास की पूर्णिमा में देवी का पूजन चन्दन-कुङ्कुम-एला-कक्कोल एवं जाति से करे।

पवित्रारोपणविधिः

तथा—
श्रावणे मासि पूर्णायां पवित्रैः पूजयेच्छिवाम्। तद्विधानमिदं भद्रे श्रृणु सौभाग्यदायकम्।।९।।
सौवर्णै राजतैर्वापि सूत्रैः पट्टसमुद्भवैः। कार्पाससम्भवै रक्तैर्नवधा गुणितैः शुभैः।।१०।।
कुर्यात्पवित्रं शक्तीनां सर्वासां षोडशाङ्गुलैः। नवाङ्गुलैर्वा तत्संख्यसरग्रन्थ्यादिसंयुतम्।।११।।
अथवाऽऽवृतिशक्तीनां तत्तत्संख्याङ्गुलादिकम्। कृत्वाधिवासपूर्वं तु पूजयेत्तीर्यथाक्रमात्।।१२।।
होमे त्वेकसरग्रन्थि तन्मानं स्यात्पवित्रकम्। अष्टोत्तरशतैः सूत्रैः कुर्याच्छक्त्यवतारकम्।।१३।।
पूजाविष्टरमानेन वितानादवलम्बयेत्। वाराहीकुरुकुल्लादिशक्तीनां मूलशक्तिवत्।।१४।।
स्वमानेनात्मनः कुर्यात्पवित्रं तूक्तसंख्यया। क्रमागमज्ञशिष्याणामात्मवत् समुदीरितम्।।१५।।
अन्येषां योगिशक्तीनामेकग्रन्थिसरान्नव। परिधानप्रमाणेन मण्डपस्यैकसूत्रतः।।१६।।
सरग्रन्थ्यङ्गुलैर्युक्तं षण्णवत्या तु संख्यया। कृत्वा पवित्रत्रितयं तानि देव्यै समर्पयेत्।।१७।।
उक्तमानत्रयेऽप्येवं ग्राह्यं भवति सर्वतः। न कुर्यान्मानसाङ्कर्यं यदि कुर्याद्विनश्यति।।१८।। इति।

अस्यार्थः—तत्र श्रावणे मासि पूर्णायां पवित्रारोपणं कर्म कुर्यात्। अत्र श्रावणे मासीत्युपलक्षणम्। मिथुन-संक्रमणमारभ्य तुलासंक्रमणपर्यन्तं पवित्रोत्सवस्य कालः। तिथयस्तु पक्षद्वयेऽपि चतुर्थ्यष्टमी नवमी चतुर्दशी पूर्णिमा चेति। अत्रोत्तरोत्तरं गौणः कालः। पवित्राणि तु सुवर्णरूप्यताम्रपट्टसूत्रत्रसरीपद्मसूत्रदर्भमुञ्जशाणसूत्रवल्कलकार्पाससूत्रेष्वन्यतमेन सूत्रेण कुर्यात्। कार्पाससूत्रं सुवासिनीभिः कर्तितं त्रिगुणं त्रिगुणीकृत्य नवसूत्रस्यैकसरत्वेन कल्पितैरुक्तसंख्यैः सूत्रैः पवित्राणि कुर्यात्। तत्र षोडशाङ्गुलदैर्घ्याणि षोडशसूत्रैः षोडशग्रन्थियुक्तानि नवाङ्गुलदैर्घ्याणि नवरसग्रन्थियुक्तानि वा कुर्यात्। यस्मिन्नावरणे यावत्यः शक्तयस्तत्संख्याङ्गुलसरग्रन्थियुक्तानि वा पवित्राणि कुर्यात्। तत्रावरणशक्तिसंख्याङ्गुलादिपक्षे मूलदेव्याः षोडशाङ्गुलायामादि, पञ्चदशनित्यानां पञ्चदशाङ्गुलादिकं वाराहीकुरुकुल्लयोश्च मूलदेव्या इव पवित्राणि कुर्यात्। आयुधानामष्टाङ्गुलदैर्घ्यसरग्रन्थियुक्तानि गुरुपंक्तित्रयस्य तत्तदोघोक्तगुरुसंख्याङ्गुलादिकं नवाङ्गुलादिकं वा पवित्राणि कुर्यात्। इत्थं श्रीचक्रे पूज्यदेवतावृन्दसमसंख्यातानि पवित्राणि उक्तपक्षेष्वेकपक्षानुसारीणि

कृत्वाष्टोत्तरशतसरग्रन्थियुक्तमेकं वितानात् पूजाविष्टरमानदैर्घ्यं बृहत्पवित्रमात्मनः क्रमागमज्ञशिष्याणां च स्कन्धादिना-भिपर्यन्तदैर्घ्यमङ्गीकृतपक्षानुसारिसरग्रन्थि(युक्त)मन्येषां सामान्ययोगिशक्तीनामेकग्रन्थिनवसरयुक्तानि, मण्डपस्यैकसूत्रेण वेष्टनप्रमाणं ग्रन्थिरहितं पवित्रं कुर्यात्। अत्रावरणशक्तिसमसंख्याङ्गुलादिपक्षे आत्मनः क्रमागमज्ञशिष्याणां च मूलदेवीवत् पवित्रेषु ग्रन्थयो मालामन्त्रेण कवचमन्त्रेण वा कार्याः। ग्रन्थिषु सूत्रवेष्टनसंख्या यथेष्टमेवेति। इत्थं पवित्राणि विधाय पवित्रारोपणदिनात् पूर्वदिने साधकः कृत्यनित्यक्रियो रात्रौ सामयिकैः सार्धं पवित्राणि पूजास्थानमानीय, पवित्रस्थाने तु सिन्दूरादिना चतुरस्रवृत्तवेष्टितं नवयोनिचक्रं कृत्वा, क्वचित्पात्रे तस्मिन् मण्डले पवित्राणि गोरोचनाकुङ्कुमरक्त-चन्दनकस्तूरीकर्पूरपङ्कैर्लिप्तानि लाक्षागैरिकाद्यैर्ग्रन्थिस्थानेषु विचित्रितानि संस्थाप्य कार्पाससूत्ररचितपवित्राणि च, एतेषां नवसूत्रेषु ॐकाराय नमः। ॐचन्द्रमसे नमः। ॐवह्नये नमः। ॐनागाय नमः। ॐब्रह्मणे नमः। ॐरवये नमः। ॐगुरवे नमः। ॐसदाशिवाय नमः। ॐसर्वदेवेभ्यो नमः। इति प्रतिसूत्रमेकां देवतां सम्पूज्य, शिरोमन्त्रेणाभिमन्त्र्य हृन्मन्त्रेणाभ्युक्ष्यास्त्रमन्त्रेणावरुध्य पवित्रेषु मूलविद्याया षडङ्गैः सम्पूज्य षोडशनित्याश्च पूजयित्वा, तेषु सुगन्धकुङ्कुमानि निःक्षिप्य पञ्चरत्नानि सर्वौषधींश्च निःक्षिपेत्। रत्नानि तु हीरकमुक्ताफलनीलपद्मरागमरकताख्यानि। सर्षपकुष्ठहरिद्रा-दारुलोध्रमुस्तोशीरप्रियङ्गुमुराजटामांसीशिलीराख्याः सर्वौषधयः। ततो नववस्त्रयुगेनाच्छादयेदित्यधिवासनं निधाय, परेद्युः साधकः कृतनित्यक्रियः समयिभिः सार्धं पूजास्थानं प्रविश्य, पूजामण्डपं वितानादिभिरलंकृत्य, पूजाविष्टरादूर्ध्वं वितानात् पूजाविष्टरपर्यन्तं शक्त्यवताराख्यं महापवित्रमालम्बयित्वा, आसनपूजादिन्यासजातं विधाय प्राग्वत् कुम्भस्थापनं विधायार्घ्यस्थापनाद्यात्मपूजान्ते पीठपूजां विधाय, पञ्चायतनी चेत्, पञ्चायतनदेवताः सम्पूज्य, पवित्रैः सम्भाव्य, तस्मिन् कुम्भे देवीमावाह्य सर्वोपचारैरभ्यर्च्य, नित्यपूजाक्रमेणैव रश्मिवृन्दं पवित्रैः सम्भाव्य, तदङ्गहवनं नैमित्तिकं च कृत्वा, गुरुं सन्तोष्य तस्मै पवित्रं समर्प्य, पूर्णाहुतिं कृत्वा अग्नये पवित्रार्पणं विधाय, गुर्वनुज्ञया स्वयमपि पवित्रधारणं कृत्वा, दमनपूजावच्छक्तिसामयिमान् पवित्रदानादिभिर्भोजनताम्बूलदक्षिणादानादिभिश्च परितोष्य, जपं नैमित्तिकत्वेन विधाय देवीं विसृज्य ब्राह्मणादीन् भोजनभूरिदक्षिणादिभिश्च परितोषयेत्। एतावत्कर्तुमशक्तश्चेत् षण्णवत्यङ्गुलायामसरग्रन्थियुक्तानि पवित्राणि त्रीणि कृत्वा प्राग्वत् कुम्भस्थापनादिपूर्वकं तानि देव्यै समर्प्य शेषं समापयेत्। इति पवित्रारोपणविधिः।

पवित्रारोपण-विधि—श्रावण मास की पूर्णिमा में देवी की पूजा पवित्र से करे। हे भद्रे! इसके सौभाग्यदायक विधान को सुनो। सोना या चाँदी के धागे से निर्मित वस्त्र या कपाससूत्र के लाल वस्त्र से नव गुणित पवित्र बनाये। सभी शक्तियों के लिये इसे सोलह अंगुल या नव अंगुल का बनाये। उसमें उसी की संख्या में गाँठ लगाये अथवा आवरण शक्तियों की संख्या के अंगुलमान से पवित्र बनाये। पहले अधिवासन करे। तब यथाक्रम से पूजा करे। पवित्र में जितने गाँठ हों उतनी संख्या में हवन करे। एक सौ आठ सूत्रों से शक्ति का अवतरण करे। वितान से आच्छादित करे। वाराही कुरुकुल्ला आदि शक्तियों के लिये मूल शक्ति के समान अपने मान से उक्त संख्या में पवित्र बनाये। क्रम को जानने वाले शिष्यों को आत्मवत् कहा गया है। अन्य योगी-शक्तियों के लिये एक-एक ग्रन्थि लगाये। परिधान-प्रमाण से मण्डप के सूत्रवत् सर ग्रन्थि छिआनबे लगाये। तीन पवित्र बनाकर देवी को समर्पित करे। उक्त तीनों में एक सर्वत्र ग्राह्य है। मान में साङ्कर्य न करे। यदि साङ्कर्य करता है तो उसका नाश हो जाता हैं।

आशय यह है कि श्रावण मास की पूर्णिमा में पवित्रारोपण कार्य करे। यहाँ श्रावण मास उपलक्षणमात्र है। मिथुन संक्रान्ति से तुलासंक्रान्ति तक पवित्रारोपण काल होता है। दोनों पक्षों की चतुर्थी अष्टमी नवमी चतुर्दशी पूर्णिमा तिथियाँ ग्राह्य हैं। इसमें उत्तरोत्तर गौण होता है। सोना, चाँदी, ताम्बा, पट्टसूत्र, त्रसरी, पद्मसूत्र, कुश, मुञ्जशाणसूत्र, वल्कल रुई, धागा या अन्य धागे से पवित्र बनाये। सुवासिनी के द्वारा निर्मित कपाससूत्र को तिगुना-तिगुना करके नवसूत्रों को मिलाकर उक्त संख्या के सूत्रों से पवित्र बनाये। सोलह अंगुल लम्बे सोलह सूत्रों से सोलह ग्रन्थियुक्त नव अंगुल दीर्घ नव सरग्रन्थियुक्त पवित्र बनाये। जिस आवरण में जितनी शक्तियाँ होती हैं, उसी संख्या के अंगुलमान से गाँठ देकर पवित्रों को बनाये। आवरण शक्तिसंख्या

में अंगुलमान के पक्ष में मूल देवी का मान सोलह अंगुल है। पन्द्रह नित्याओं का पन्द्रह अंगुल, वाराही-कुरुकुल्ला का पवित्र मूल देवी के बराबर बनाये। आयुधों के लिये आठ अंगुल लम्बे सूत्र में आठ-आठ गाँठयुक्त पवित्र बनाये। गुरुपंक्तित्रय के लिये मानवौघ आदि गुरुओं की संख्या के बराबर अंगुलमान का या नव अंगुलमान का पवित्र बनाये। इस प्रकार श्रीचक्र में पूज्य देवताओं की संख्या में पवित्र बनाये। उक्त पक्ष में एक पक्षानुसारिणी एक सौ आठ सर ग्रन्थि युक्त एक वितान पूजा विष्टरमान के बराबर बृहत् पवित्र अपने और क्रमागम शिष्य के कन्धे से नाभि तक लम्बा गाँठयुक्त बनाये। अन्यों में सामान्य योगि शक्ति एक गाँठ नव सर युक्त पवित्र बनाये। मण्डप का एक सूत्र से वेष्टन प्रमाण में गाँठरहित पवित्र बनाये। आवरण शक्तियों की संख्या के बराबर अंगुल पक्ष में अपने और क्रमागमज्ञ शिष्यों के मूल देवी के सामन पवित्रों में गाँठ मालामन्त्र से या कवचमन्त्र से लगाये। गाँठों में सूत्र वेष्टन संख्या इच्छानुसार रखे। इस प्रकार पवित्रो को बनाकर पवित्रारोपण दिन के पहले साधक नित्यकृत्य करके रात में सामयिकों को पूजास्थान में लाकर पवित्र स्थान में सिन्दूरादि से चतुरस्र वृत्त वेष्टित नवयोनि चक्र बनाये। उस मण्डल में किसी पात्र में पवित्रों को गोरोचन कुङ्कुम लाल चन्दन कस्तूरी कपूर से लिप्त करके लाह गेरु आदि से ग्रन्थि स्थानों में विचित्रता से स्थापित करके कपास के धागे से निर्मित पवित्र के नव सूत्रों में ॐकाराय नमः, ॐ चन्द्रमसे नमः, ॐ वह्नये नमः, ॐ नागाय नमः, ॐ ब्रह्मणे नमः, ॐ रवये नमः, ॐ गुरवे नमः, ॐ सदाशिवाय नमः, ॐ सर्वदेवेभ्यो नमः से प्रत्येक सूत्र में एक-एक देवता का पूजन करे। शिरोमन्त्र से अभिमन्त्रित करे। हृन्मन्त्र से अभ्युक्षण करे। अस्त्र मन्त्र से अवरुद्ध करे। पवित्रों में मूल विद्या से षडङ्ग पूजन करे। सोलह नित्याओं की पूजा करे। उन पर सुगन्ध कुङ्कुमादि निक्षेप करे। पञ्चरत्न सर्वौषधि का निक्षेप करे। रत्नों में हीरा, मोती, नीलम, पद्मराग, मरकत आदि आते हैं। सर्वौषधि में सरसों, कूठ, हल्दी, दारु, लोध्र, मुस्ता, खश, प्रियङ्गु, मुरा, जटामासी एवं शिलाजित होते हैं। तदनन्तर नये दो वस्त्रों से ढक दे। इस प्रकार अधिवासन करके दूसरे दिन साधक नित्य कृत्य के बाद सामयिकों के साथ पूजास्थान में प्रवेश करे। पूजा मण्डप को चाँदनी आदि से अलंकृत करे। पूजा आसन के ऊपर चाँदनी से पूजा आसन तक शक्ति अवतार नामक महापवित्र का आलम्बन करके आसन-पूजादि न्यास करके पूर्ववत् कुम्भ स्थापित करे। अर्घ्य-स्थापन से आत्मपूजा, पीठपूजा तक कर्म करे। पञ्चायतन देवता का पूजन करे। पवित्रों से भावित करे। उस कुम्भ में देवी का आवाहन करे। सर्वोपचार से पूजन करे। नित्य पूजाक्रम से रश्मिवृन्द को पवित्रों से भावित करके तदङ्गभूत हवन एवं नैमित्तिक कर्म करे। गुरु को सन्तुष्ट करके उसे पवित्र समर्पित करे। पूर्णाहूति देकर अग्नि के लिये पवित्रार्पण करे। गुरु की आज्ञा से स्वयं भी पवित्र धारण करके दमन पूजा के समान शक्तिसामयिकों को पवित्रदान, भोजन, ताम्बूल एवं दक्षिणादि से सन्तुष्ट करे। तदनन्तर नैमित्तिक जप करके देवी का विसर्जन करे। ब्राह्मणों को भोजन एवं प्रभूत दक्षिणादि से सन्तुष्ट करे। यदि इतना न कर सके तो छिआनबे अंगुल वामसर ग्रन्थियुक्त तीन पवित्री बनाकर पूर्ववत् कुम्भ स्थापित करके उन्हें देवी को समर्पित करके शेष कार्य समाप्त करे।

कालीमते तु दक्षिणामूर्तिसंहितायाम्—

आषाढ उत्तमो मासः श्रावणो मध्यमः प्रिये। हीनो भाद्रपदो मासः पक्षौ सितसितेतरौ ॥१॥
प्रथमं शुक्लपक्षस्तु तदलाभे सितेतरः। चतुर्दश्यष्टमीपूर्णमासीतिथिषु वै यजेत् ॥२॥ इति।

तन्त्रराजे (६ प० २० श्लोक)—

अथ भाद्रपदे मासि पूर्णायां केतकोद्भवैः। प्रसूनैरर्चयैद् देवीं पूर्वोक्तविधिना युतम् ॥१। इति।

अस्यार्थः—भाद्रपदपूर्णायां केतकपुष्पैः साधिवासं विशेषपूजां कुर्यादित्यर्थः। तथा—

आश्वयुज्यां विशेषस्तु दर्शान्तप्रतिपत्तिथिम्। आरभ्य पूजयेद् देवीं गन्धपुष्पोपहारकैः ॥२॥
होमे शतादितद्वृद्ध्या पूर्णायां षट्शताधिकम्। सहस्रं जुहुयान्नित्यं जपं चैव समाचरेत् ॥३॥
कन्यकायां समावाह्य देवीं सम्पूज्य भक्तितः। हुत्वा भूषणवस्त्रादिदक्षिणां च समुद्वसेत् ॥४॥
एवमेकादितद्वृद्ध्या पूर्णान्तं पूजयेत् प्रिये। तेन विद्वान् भवेत्सिद्धो नृपतिं कुरुतेऽर्चकम् ॥५॥ इति।

अत्राश्वयुजे मासि शुक्लप्रतिपदमारभ्य पूर्णिमापर्यन्तं पञ्चदशतिथिषु प्रत्यहं नित्यपूजानन्तरं नैमित्तिकत्वेन

चक्रक्रमं सम्पूज्य, प्रतिपत्तिथिमारभ्यैकादिवृद्ध्या प्रतिपदि द्विशतं, द्वितीयायां त्रिशतं, तृतीयायां चतुःशतमित्यादिजपहोमौ विधाय पूर्णिमायां षोडशशतानि जपित्वा षोडशशतानि होमं कुर्यात्। प्रतिपदादितिथिष्वेकादितद्वृद्ध्या पूर्णायां षोडश कन्या यथा भवन्ति तथा कन्यापूजनं च कुर्यात्। ततः प्रत्यहं प्रातः कन्यकानिमन्त्रणं कृत्वा पूजाजपहोमान्ते तां सुस्नातां समलंकृतां पूजास्थाने मृद्वासने समुपवेश्य, तस्यां प्रागुक्तविधानाद्देवीमावाह्य सम्पूज्य, वस्त्रालङ्करणभोजनताम्बूलदक्षिणादानादिभिः परितोष्य प्रणम्य विसृजेत्। एवं बहुकन्यापूजनेऽपि प्रत्येकं पूजनं कुर्यात्। अस्मिन्नेव मासि प्रतिपत्तिथिमारभ्य नवम्यन्तासु नवसु रात्रिषु विशेषपूजां कृत्वा, एकादिवृद्ध्या जपादिकं च विधाय कुमारीपूजनं चैकादिवृद्ध्या कुर्यात्। तत्र नवरात्रे पूजने विशेषः। प्रतिपद्येकवर्षा, द्वितीयाया द्विवर्षा, एवं नवम्यां नववर्षा कन्या पूज्या। तत्रापि तिथौ कुमारीः पूर्वदिनपूजिताश्च नवम्यां एकवर्षादिनववर्षान्तां नव कुमार्य्यो यथा भवन्ति तथा पूजयेत्। तासां नामानि तु—प्रतिपदि शुद्धा। द्वितीयायां बाला। तृतीयायां ललिता। चतुर्थ्यां मालिनी। पञ्चम्यां वसुन्धरा। षष्ठ्यां सरस्वती। सप्तम्यां रमा। अष्टम्यां गौरी। नवम्यां दुर्गा। मन्त्रास्तु—ऐंह्रींश्रीं शुद्धायै नमः। ३ बालायै नमः। ३ ललितायै नमः, इत्यादि नाममन्त्रैः पूजयेत्। अत्र—

एकवर्षा तु या कन्या पूजार्थं तां विवर्जयेत्। गन्धपुष्पफलादीनां प्रीतिस्तस्या न विद्यते ॥१॥
द्विवर्षकन्यामारभ्य दशवर्षान्तकन्यकाः। पूजयेदुक्तमार्गेण तस्मात् साधकसत्तमः ॥२॥

इति स्कन्दपुराणवचनाद् द्विवर्षकन्यामारभ्य दशवर्षान्तकन्यकाः पूजयेत्। अथवा नवयौवनसम्पन्ना यथोक्तलक्षणाः सुवासिनीर्वा नवरात्रिषु पूजयेत्। इति। तासां नामानि तु—हृल्लेखा, गगना, रक्ता, महोच्छुष्मा, करालिका, इच्छा, ज्ञाना, क्रिया, दुर्गा चेति। अत्रापि मन्त्रास्त्रितारान्ते हृल्लेखायै नम इत्यादयः।

कालीमत में दक्षिणामूर्ति संहिता के अनुसार पवित्रारोपण हेतु आषाढ़ मास उत्तम, श्रावण मास मध्यम एवं भाद्रमाह अधम होता है। इसी प्रकार पक्षों में शुक्ल पक्ष उत्तम एवं कृष्ण पक्ष अधम होता है। साथ ही वितियों में चतुर्दशी, अष्टमी एवं पूर्णिमा तिथियाँ पूजा के लिये श्रेष्ठ होती हैं।

तन्त्रराज के अनुसार भादो महीना की पूर्णिमा तिथि में केतकी के फूलों से अधिवास करके विशेष पूजा करे। साथ ही यह भी कहा गया है कि आश्विन में दर्श अमावस्या के बाद प्रतिपदा तिथि से आरम्भ करके देवी का पूजन गन्ध-पुष्प उपहारों से करे। हवन में प्रतिदिन एक सौ आहुति की वृद्धि करते हुए पूर्णिमा को एक हजार छः सौ करे। एक हजार नित्य जप भी करके कन्याओं को बुलाकर भक्ति से देवी का पूजन करे। हवन के बाद भूषण-वस्त्रादि दक्षिणा देकर उनका उद्वासन करे। इस प्रकार शुरु से एक-एक कुमारी को बढ़ाकर पूर्णिमा तक पूजन करे। इससे विद्वान् सिद्ध होता है और उसकी पूजा राजा भी करते हैं।

आशय यह है कि आश्विन मास में शुक्ल प्रतिपदा से आरम्भ करके पूर्णिमा तक पन्द्रह तिथियों में प्रतिदिन नित्य पूजा के बाद नैमित्तिक रूप से चक्रपूजा करे। प्रतिपदा एक-एक तिथि से प्रारम्भ करके सौ की वृद्धि से प्रतिपदा में २००, द्वितीया में ३००, चतुर्थी में ४०० इत्यादि जप-हवन करते हुये पूर्णिमा में सोलह सौ जप करके सोलह सौ हवन करे। प्रतिपदादि तिथि से एक-एक वृद्धिक्रम से पूर्णिमा में सोलह कन्याओं का पूजन करे। प्रतिदिन प्रातः कन्याओं को निमन्त्रित करके पूजा-हवन के बाद उन्हें स्नान कराकर समलंकृत करके पूजास्थान में आसन पर बैठाये। उनमें पूर्वोक्त विधान से देवी का आवाहन करके पूजन करे। वस्त्रालंकार-भोजन-ताम्बूल दक्षिणा देकर सन्तुष्ट करके उनका विसर्जन करे। इस प्रकार बहुत कन्या पूजन में भी प्रत्येक का पूजन करे। इसी मास में प्रतिपदा से आरम्भ करके नवमी तक नव रातों में विशेष पूजा करे। एकादि वृद्धि से जपादि करे एवं कुमारी-पूजन भी एकादि वृद्धि क्रम से करे। नवरात्र पूजन में प्रतिपदा में एकवर्षा, द्वितीया में द्विवर्षा इसी प्रकार क्रमशः नवमी में नववर्षा कन्या का पूजन करे। उनमें भी तिथियों में पूजित कुमारी के साथ नवमी में एक वर्ष से नव वर्ष तक की कुमारी का पूजन करे। उनके नाम इस प्रकार हैं—प्रतिपदा में शुद्धा, द्वितीया में बाला, तृतीया

में ललिता, चतुर्थी में मालिनी, पञ्चमी में वसुन्धरा, षष्ठी में सरस्वती, सप्तमी में रमा, अष्टमी में गौरी एवं नवमी में दुर्गा। इनके पूजन मन्त्र इस प्रकार हैं—ऐं ह्रीं श्रीं शुद्धायै नमः, ऐं ह्रीं श्रीं बालायै नमः, ऐं ह्रीं श्रीं ललितायै नमः, ऐं ह्रीं श्रीं ललितायै नमः, ऐं ह्रीं श्रीं मालिन्यै नमः, ऐं ह्रीं श्रीं वसुन्धरायै नमः, ऐं ह्रीं श्रीं सरस्वत्यै नमः, ऐं ह्रीं श्रीं रमायै नमः, ऐं ह्रीं श्रीं गौर्यै नमः एवं ऐं ह्रीं श्रीं दुर्गायै नमः।

यहाँ पर स्कन्दपुराण में कहा गया है कि एकवर्षा कन्या की पूजा न करे; क्योंकि उसे गन्ध-पुष्प-फलादि में प्रीति नहीं होती। अतः द्विवर्षा कन्या से प्रारम्भ करके दश वर्ष तक की कन्या का पूजन उक्त मार्ग से साधकसत्तम करे। अथवा नवयौवन-सम्पन्ना यथोक्त लक्षण वाली सुवासिनी का पूजन नव रातों में करे। उनके नाम इस प्रकार हैं—हल्लेखा, गगना, रक्ता, महोच्छुष्मा, करालिका, इच्छा, ज्ञाना, क्रिया एवं दुर्गा। यहाँ भी मन्त्र 'ऐं ह्रीं श्रीं हल्लेखायै नमः' इत्यादि होते हैं।

पूज्यापूज्यकुमारीलक्षणम्

अथ पूज्यापूज्यकुमारीणां लक्षणानि। तत्र प्रथमं पूज्यानां लक्षणानि श्रीकुलार्णवे—

अरोगिणीं सुपुष्टाङ्गीं सुरूपां व्रणवर्जिताम्। एकवंशसमुद्भूतां कन्यां सम्यक् प्रपूजयेत् ॥१॥ इति।

अथापूज्यकुमारीलक्षणानि तत्रैव—

हीनाधिकाङ्गीं दुष्टां च विशीलकुलसम्भवाम्। ग्रन्थिस्फुटितशीर्णाङ्गीं रक्तपूयव्रणाङ्किताम् ॥२॥
जात्यन्धां केकरां काणीं कुरूपां तनुलोमशाम्। सन्त्यजेद्रोगिणीं कन्यां दासीगर्भसमुद्भवाम् ॥३॥ इति।

अथ फलविशेषे पूज्यकुमारीविशेषः। तत्र स्कान्दे—

ब्राह्मणीं सर्वकार्येषु जयार्थे नृपवंशजाम्। लाभार्थे वैश्यवंशोत्थां सुतार्थे शूद्रवंशजाम् ॥१॥
दारुणे चान्त्यजातीयां पूजयेद्विधिना नरः। इति।

पूज्य कुमारी के लक्षण—श्री कुलार्णव के अनुसार पूज्य कुमारी के लक्षण इस प्रकार हैं—अरोगिनी, सुपुष्टाङ्गी, सुरूपा, व्रणवर्जिता एवं एक वंशसमुद्भवा कन्या का सम्यक् पूजन करना चाहिये।

अपूज्य कुमारी के लक्षण—कुलार्णव के अनुसार हीनाङ्गी, अधिकाङ्गी, दुष्टा, आचारविहीन कुलसम्भवा, ग्रन्थि स्फुटित शीर्णाङ्गी, रक्त-पूयव्रणाङ्किता, जन्मान्धा, केकरा, एकाक्षी, कुरूपा, रोयें वाली, रोगिणी एवं दासी के गर्भ से उत्पन्न कन्या अपूज्य होती है।

स्कन्दपुराण के अनुसार सभी कार्यों के लिये ब्राह्मणी कन्या, जप के लिय राजकुमारी, लाभ के लिये वैश्यकन्या एवं पुत्र के लिये शूद्रकन्या पूज्य होती है। साथ ही दारुण दुःख में अन्त्यज कन्या का पूजन करना चाहिये।

पूज्यापूज्यसुवासिनीलक्षणम्

अथ पूज्यसुवासिनीलक्षणानि श्रीकुलार्णवे—

सुरूपा तरुणी शान्तानुकूला मुदिता शुचिः। शङ्काहीना भक्तियुक्ता गूढशास्त्रोपयोगिनी ॥१॥
अलोलुपा सुशीला च स्मितास्या प्रियवादिनी। गुरुदैवतसद्भक्ता सुचित्ता कौलिकप्रिया ॥२॥
विमत्सरा विशेषज्ञा देवताराधनोत्सुका। मन्त्रतन्त्रसमायुक्ता समयाचारपालिका ॥३॥
मनोहरा सदाचारा शक्तिरेषा सुलक्षणा। इति।

अथापूज्यसुवासिनीलक्षणानि तत्रैव—

दुष्टोग्रा कर्कशा स्तब्धा कुत्सिता कुलदूषिता। दुराचारा पराधीना भावहीना दुरालसा ॥१॥
निद्रासक्तातिदुर्मेधा हीनाङ्गी व्याधिपीडिता। दुर्गन्धा दुःखिता मूर्खा वृद्धोन्मत्ता रहस्यभित् ॥२॥
कुतर्का कुत्सितालापा निर्लज्जा कलहप्रिया। विरूपोन्मार्गगा क्रुद्धा पङ्ग्वन्धा विकृतानना ॥३॥
ईदृशीं मन्त्रयुक्तां च शक्तिं यागे विवर्जयेत्। इति।

इयं नवरात्रपूजा चैत्रादिफाल्गुनान्तेषु द्वादशमासेषु चैत्राषाढाश्विनपौषमासचतुष्टये चैत्राश्विनमासयोर्वान्यतमे वा शुक्लपक्षेषु यथाविभवविस्तरं कार्या। तत्रापि नवरात्रकरणाशक्तौ तृतीयादिनवम्यन्तं सप्तरात्रं, पञ्चम्यादिपञ्चरात्रं सप्तम्यादित्रिरात्रं वोक्ततिथिषु कुमारीपूजनादिभिर्नवरात्रोत्सवं कुर्यात्। एवमन्येऽपि नैमित्तिकपूजाविशेषा बहवः सन्ति। ते तु गुरुतः शास्त्रतश्च ज्ञातव्याः। श्रीतन्त्रराजे (६ प० २५ श्लोक)—

कार्तिके मासि पूर्णायां कुङ्कुमेन समर्चयेत्। रात्रौ प्रदीपकैर्होमं कुर्याद् घृतसमेधितैः ॥१॥
देव्यग्रे स्थापयेद्दीपान् विद्यया षोडश क्रमात्। शक्तीनामेकमेकं तु स्थापयेत्तदग्रतः ॥२॥
अथवा भोजने मध्ये त्वेकं तमभितो नव। कृत्वा निवेदयेन्मूलविद्यया सप्रसूनकम् ॥३॥ इति।

अयमर्थः—तत्र कार्तिकपूर्णायां कुङ्कुमेन देवीं सम्पूज्य रात्रौ कुण्डस्थण्डिलादौ अग्निस्थापनं कृत्वा, पिष्टमयैर्घृतपूरितैः कर्पूरवर्तिदीपितैः प्रदीपैर्नित्यहोमक्रमेणैव हुत्वा साङ्गायै सावरणायै देव्यै दीपदानं च कुर्यात्। तत्र सुसमे भूतले सिन्दूरादिना विपुलं श्रीचक्रं विरच्य, तत्र देवीमावाह्य सम्पूज्य मध्ये बिन्दुचक्रे षोडश दीपान् शर्करा-दुग्धमिश्रयवगोधूमादिपिष्टरचितान् कर्पूरगर्भवर्तिकान् घृतपूरितान् प्रज्वलितान् मूलविद्यया मूलदेव्यग्रे स्थापयित्वोत्सृज्य नित्यादिश्रीचक्रपूज्यसमस्तदेवताभ्यस्तत्तत्पूजास्थाने तत्तदग्रे तत्तन्मन्त्रेण एकमेकं स्थापयित्वोत्सृजेत्। एतावत्करणाशक्तौ एकस्मिन् स्वर्णादिपात्रे नवयोनिचक्रमष्टदलं कमलं वा कुङ्कुमादिना निर्माय, तस्मिन् यथोक्तरूपान् नव दीपान् मध्येऽष्टसु योनिषु दलेषु वा संस्थाप्य देवीमभ्यर्च्योत्सृज्य समर्पयेदित्यर्थः। तथा—

मार्गशीर्षे च पूर्णायां नारिकेलाम्बु चन्द्रयुक्। निवेद्याभ्यर्चयेन्माषपिष्टापूपैर्यथाविधि ॥४॥ इति।

मार्गशीर्षपूर्णिमायां कर्पूरयुक्तनारिकेलजलैरर्घ्यस्थापनं विधाय सुगन्धपुष्पादिभिः सम्पूज्य माषपिष्ट-निर्मितापूपैर्नैवेद्यं च कुर्यात्। तथा—

पुष्ये मासि च पूर्णायां शर्कराभिर्गुडेन वा। पूजयेदिष्टसंसिद्ध्यै गव्यं दुग्धं निवेदयेत् ॥५॥ इति।

पौषपूर्णिमायां शर्कराभिस्तदभावे तु गुडेन सम्पूज्य गोसम्बन्धि दुग्धं काङ्क्षितावाप्तये निवेदयेत्। तथा—

माघे मासि च पूर्णायां तिलैः शुक्लैस्तथेतरैः। पूजयेद्दुग्धनैवेद्यैः सितापूपादिभिः सदा ॥६॥ इति।

तत्र माघे मासि पूर्णिमायां शुक्लैः कृष्णैर्वा तिलैर्देवीं सावरणां सम्पूज्य शर्करादुग्धापूपादिनैवेद्यं निवेदयेत्। तथा—

फाल्गुने मासि पूर्णायां पङ्कजैः स्वर्णराजतैः। चूतसौगन्धिमधुकैः पूजयेदीप्सिताप्तये ॥७॥ इति।

तत्र फाल्गुने मासि पूर्णायां पङ्कजैः सुवर्णरजतपुष्पैश्च देवीं सम्पूजयेत्। तथा—

विषुवायनदर्शासु युगादिषु समर्चनम्। कुर्याद्विशेषिकं पुण्येष्वागमोक्तेषु तेष्वपि ॥८॥

इति नैमित्तिकपूजा।

पूज्य सुवासिनी के लक्षण—श्री कुलार्णव के अनुसार सुन्दर रूप वाली, युवती, शान्ता, अनुकूला, प्रसन्नवदना, पवित्र, शङ्काहीना, भक्तियुक्ता, गूढ़शास्त्रोपयोगिनी, अलोलुपा, सुशीला, सस्मितवदना, प्रियवादिनी, गुरु, देवता में भक्ति वाली, सुन्दर चित्तवाली, कौलिकप्रिया, ईर्ष्यारहिता, विशेषज्ञा, देवता की आराधना में उत्सुक, मन्त्र-तन्त्र समायुक्ता, समयाचारपालिका, मनोहरा एवं सदाचार—ये शक्तियाँ सुलक्षण मानी जाती हैं।

अपूज्य सुवासिनी के लक्षण—दुष्टा, उग्रा, कर्कशा, स्तब्धा, कुत्सिता, कुलदूषिता, दुराचारा, पराधीना, भाव-हीना, दुरालसा, निद्रासक्ता, अतिदुर्मेधा, हीनाङ्गी, व्याधिपीड़िता, दुर्गन्धा, दुःखिता, मूर्खा, वृद्धा, उन्मत्ता, गुप्त बातों को प्रकट करने वाली, कुतर्का, कुत्सितालापा, निर्लज्जा, कलहप्रिया, विरूपा, उन्मार्गगा, क्रुद्धा, पङ्ग्वन्धा, विकृतानना एवं मन्त्रयुक्ता शक्ति का पूजा में ग्रहण नहीं करना चाहिये।

यह नवरात्र पूजा चैत्रादि से फाल्गुन तक बारह महीनों में से चैत्र-आषाढ़-आश्विन-पौष—इन चार महीनों में अथवा चैत्र या आश्विन महीनों में शुक्लपक्ष में यथा विभव विस्तारपूर्वक करना चाहिये। नवरात्र करने में यदि अशक्त हो तो तृतीया से नवमी तक सात रातों में, पञ्चमी से नवमी तक पाँच रातों में अथवा सप्तमी से नवमी तक तीन रातों में उक्त तिथियों में कुमारी-पूजनादि से नवरात्रोत्सव करना चाहिये। इसी प्रकार अन्य भी अनेक प्रकार के नैमित्तिक पूजा होते हैं। उन्हें गुरु से और शास्त्र से जानना चाहिये।

श्रीतन्त्रराज में कहा गया है कि कार्तिक मास की पूर्णिमा में कुङ्कुम से अर्चन करे। रात में घृत लगे कपूर से हवन करे। देवी को आगे सोलह दीपकों को क्रमशः स्थापित करे। प्रत्येक शक्ति के आगे एक-एक दीपक स्थापित करे अथवा पात्र के मध्य में एक और उसके चारो ओर नव दीपों को स्थापित करे। तदनन्तर हाथों में फूल लेकर मूल विद्या से उसे देवी को निवेदित करे।

आशय यह है कि कार्तिक पूर्णिमा में देवी का पूजन कुङ्कुम से करे। रात में कुण्ड-स्थण्डिल आदि में अग्नि स्थापित करे। पिष्टमय घृतपूरित कर्पूर की बत्ती से प्रकाशित प्रदीप से नित्य हवन क्रम से हवन करके साङ्ग सावरण देवी को दीपदान करे। समतल भूमि पर सिन्दूरादि से विपुल श्रीचक्र बनाये। उसमें देवी का आवाहन करे। पूजन करे। मध्य बिन्दु चक्र में सोलह दीप शक्कर-दूधमिश्रित यव-गेहूँ के पिष्ट से निर्मित कर्पूरगर्भित वत्ती घृतपूरित करके जलाये। मूल विद्या से मूल देवी के आगे स्थापित करके उत्सर्जित करे। नित्यादि श्रीचक्र पूजित सभी देवता के उनके पूजा स्थानों में उनके आगे उनके मन्त्र से एक-एक दीपक स्थापित करके उत्सर्जित करे। ऐसा न कर सकने पर एक सोने के पात्र में नवयोनि चक्र अष्टदल कमल कुङ्कुमादि से बनाकर उसमें यथोक्त रूप से नव मध्य योनि या आठ दलों में दीपों को स्थापित करके देवी का अर्चन करके उसे समर्पण करे। यह भी कहा गया है कि अगहन की पूर्णिमा में नारियल जल में कपूर मिलाकर अर्घ्य-स्थापन करके सुगन्ध-पुष्पादि से पूजन कर उड़दपिष्ट से निर्मित पूओं का नैवेद्य अर्पण करे। पौष महीने की पूर्णिमा में शक्कर या गुड़ से पूजा इष्टसिद्धि के लिये करे। साथ ही गाय का दूध निवेदित करे। माघ महीने की पूर्णिमा में सफेद अथवा काले तिल से आवरणसहित देवी की पूजा करके शर्करा, दुग्ध, पूआ आदि का भोग निवेदित करे।

फाल्गुन मास की पूर्णिमा सोने या चाँदी के पुष्प, कमल या कल्हारपुष्प या मधूकपुष्प से ईप्सित सिद्धि के लिये पूजा करे। विषुव अयन दर्श में युगादि में अर्चन करे। आगमोक्त पुण्य काल में विशेष पूजन करे।

कालीमते पूर्णाभिषेके शक्तिन्यासः

अथ कालीमते पूर्णाभिषेकविधौ तु प्राग्वत् कुण्डमण्डपवेदिकादिकं च कुर्यात्। अत्र विशेषस्तु—सप्तविंशतिहस्तपरिमितं मण्डपं विधायाष्टदिक्षु कुण्डानि मध्ये नवहस्तपरिमितां वेदीं विधाय, वेद्यां श्रीचक्रं निर्माय कलशस्थापनादिकं सर्वं प्राग्वत् विधाय, गुरुः प्रातःकृत्यादिपीठन्यासान्तं कर्म विधाय महाशक्तिन्यासं कुर्यात्।

तत्र प्रथमं जगच्छून्याकारं निरालम्बं ध्यात्वा 'हूं पृथिव्यै नमः' इति स्वासनाधः पृथिवीं सम्पूज्य स्वासनं वामहस्तेन स्पृशन् भुवनेश्वरीबीजं सप्तवारं जपित्वा, ४ ॐ जयायै नमः। ४ ॐ विजयायै नमः। ४ ॐ जयन्त्यै नमः। ४ ॐ अजितायै नमः। ४ ॐ अपराजितायै नमः। ४ ॐ सङ्गमायै नमः। ४ ॐ रम्भायै नमः, इति स्वासने सप्तशक्तीः सम्पूजयेत्। मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, ॐ अस्य महाशक्तिन्यासस्य परशिव ऋषिः, अतिजगती छन्दः, श्रीपराशक्तिर्देवता, ऐं बीजं, श्रीं शक्तिः, सौः कीलकं, श्रीविद्याङ्गत्वेन महाशक्तिन्यासे विनियोगः। ऋष्यादिकं विन्यस्य द्विरावृत्त्या तारत्रयस्य करषडङ्गन्यासं विधाय न्यासं कुर्यात्। तत्र योनौ ॐऐंह्रींश्रीं नमः। नाभौ ४ ह्लांह्लींह्लूं नमः। कराग्रयोः क्लांक्लींक्लूं नमः। हृदये ४ ह्लांह्लींह्लूं नमः। ललाटे ४ सांसींसूं नमः। कर्णयोः ४ हांहींहूं नमः। भुजमूले ४ द्रांद्रींद्रूं नमः। बिन्दु(चिबु)काग्रे ४ सौःश्रींक्षौं नमः। ब्रह्मरन्ध्रे ४ ऐंआंसौः अंनमः, इति विन्यस्य, अकारादिक्षकारान्तानां सर्वेषां वर्णानां मूलभूतमकारं दुग्धस्य सर्पिर्वत्सूक्ष्मरूपेण स्थितं विभावयन् तन्मयानन्यवर्णान्

वक्ष्यमाणेषु स्थानेषु विन्यसेत्। तत्र तालुके ४ ऐंईंसौः आं नमः। नासाग्रे ४। ३ इं नमः। पश्चिमलिङ्गे सीवन्यां मूलाधारगतज्योतिर्लिङ्गे वा ४। ३ ईं नमः। गुदे ४। ३ उं नमः। पृष्ठे ४। ३ ऊं नमः। कटिसन्धौ ४। ३ ऋं नमः। वृषणान्ते ओं ३। ३ ॠं नमः। पृष्ठमध्ये ओं ३। ३ ऌं नमः। लम्बिकास्थाने ४। ३ ॡं नमः। सर्वाङ्गे ओं ३। ३ एं नमः। पुनर्बिन्दुपरिगतत्रिरेखायां योनौ न्यासभावनया सर्वाङ्गे 'ॐ ३। ३ ऐं नमः' इति विन्यस्य,

योनिरित्युच्यते शक्तिरेषा ब्रह्माण्डभेदिनी। लेपं विलीनयेद्देहे रेफो बिन्दुरिति स्मृतः ॥१॥
द्वासप्ततिसहस्रेषु नाडीभेदेषु पञ्जरम्। व्याप्यमाना महाशक्तिः कामिनीनामृतुक्रमे ॥२॥
नाडीचक्रागतं रक्तं योनिमार्गे निपातितम्। पुष्पीभूते भगे पुष्पं मासपक्षादिषु क्रमात् ॥३॥
ऐंकारोऽपि स्वयं योनिर्नात्र कार्या विचारणा। न्यस्तं वाप्यत्र देवेशि त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥४॥

इत्यन्तं श्लोकसमुदायस्यार्थं चिन्तयन् महाकामकलायां ब्रह्मरन्ध्रस्थायां लयं भावयित्वा ब्रह्मरन्ध्रे ॐ ३। ३ ॐ नमः। नादमध्ये ॐ ३। ३ ॐ नमः। नादान्ते ॐ ३। ३ अं नमः। कण्ठे ॐ ३। ३ अः नमः। हृदि ॐ ३। ३ कं नमः। एवं मस्तके खं नमः। जङ्घयोः गं नमः। स्तनयोः घं नमः। नासिकान्ते ङं नमः। आज्ञायां चं नमः। वामकुक्षौ छं नमः। दक्षिणकुक्षौ जं नमः। ऊरुमूलयोः झं नमः। दन्तपंक्त्योः ञं नमः। जिह्वाग्रे टं नमः। मुखे ठं नमः। कक्षयोः डं नमः। अस्थिसन्धिषु ढं नमः। चित्ते णं नमः। नाभौ तं नमः। ललाटे थं नमः। कर्णरन्ध्रयोः दं नमः। कपोलयोः धं नमः। नयनयोः नं नमः। श्वेतसहस्रदलकमले पं नमः। हृत्पद्मे फं नमः। स्कन्धयोः बं नमः। भ्रूमध्ये भं नमः। हनुमूले मं नमः। तालुमूले यं नमः। लिङ्गगुदयोर्मध्ये रं नमः। जिह्वायां लं नमः। सर्वाङ्गे वं नमः। वामादिदक्षिणशिरःपर्यन्तमापादतलवेष्टनत्वेन शं नमः। तालुमूले षं नमः। सर्वाङ्गे सं नमः। ब्रह्मरन्ध्रे हं नमः। हस्तपादयोः सर्वाङ्गुलीषु क्षं नमः। प्रागुक्तमूलाधारस्थितकुण्डलिन्यां ॐ ३। ३ इति विन्यस्य ॐ ३। ३ समस्तमातृकामुच्चरन् तां कुण्डलिनीं सुषुम्नावर्त्मना षट्चक्रभेदक्रमेण ब्रह्मरन्ध्रं नीत्वा तत्रस्थाकुलसहस्रदलकमलकर्णिका-मध्यस्थितपरमात्मनि शिवे विलीनां सम्भाव्य 'ॐ ३। ३ रक्षरक्ष शूलिनि त्रैलोक्यानददायिनि त्रिपुरे देवि रक्ष मां त्रिपुरेश्वरि रक्षरक्ष महोदेवि अस्मदीयमिदं वपुः ऐंह्रींश्रीं हसफ्रें ह्सौः २ हसफ्रें श्रींह्रींऐंश्री समयिनि मदिरानन्दसुन्दरि समस्तसुरासुरवन्दिते भुजङ्गभूपालमौलिमालालंकृतचरणकमले विकटदन्तच्छटाटोपनिवारिणि मदीयं शरीरं रक्षरक्ष परमेश्वरि हुंफट् स्वाहा ॐभूःस्वाहा ॐभुवःस्वाहा ॐस्वः स्वाहा ॐभूर्भुवःस्वःस्वाहा नरान्त्रमालाभरणभूषिते महाकौलिनि महाब्रह्मवादिनि महाधनोन्मादनकारिणि महाभोगप्रदे अस्मदीयं शरीरं वज्रमयं कुरुकुरु दुर्जनान् हनहन दुष्टमहीपालान् भक्षय भक्षय परचक्रं भञ्जय भञ्जय जयङ्करि गगनगामिनि त्रैलोक्यस्वामिनि यमलवरयूं भमलवरयूं वमलवरयूं शमलवरयूं श्रीभैरवि प्रसादय स्वाहा।

कुलाङ्गनाकुलं सर्वं मदीयं त्रिपुरेश्वरि। देवी रक्षतु दिव्याङ्गी दिव्यात्मा भोगदायिनी ॥१॥
रक्षरक्ष महादेवी शरीरं परमेश्वरि। मदीयं मदिरानन्दे आपादतलमस्तकम् ॥२॥

इत्यात्मरक्षां कृत्वा,

त्रिपुराख्या महादेवी भुक्तिमुक्तिफलप्रदा। न गुरोः सदृशं वस्तु न देवः शङ्करोपमः ॥३॥
न च कौलात्परो योगो न विद्या त्रैपुरीसमा। न च शान्तेः परं ज्ञानं न च क्षान्तेः परं सुखम् ॥४॥
न च शक्तिसमो न्यासो न विद्या त्रैपुरीसमा। दर्शनेषु समस्तेषु पाखण्डेषु विशेषतः ॥५॥
दिव्यरूपा महादेवी सर्वत्र परमेश्वरि।

इति मन्त्रविद्ययोर्महिमानं स्मृत्वा 'पीठोपपीठशिरःस्था गगनगिरिभुवनगिरिभुवनगोकुलनिवासिनी जयति कुलशक्तिमहीतलपातालनिवासिनी कुलकौलविभेदिनी सकलजनमनआनन्दकारिणी करोतु मम चिन्तितं कार्यं भैरवीशतमेकं पुनातु परमेश्वरी मदनमण्डलालम्बिनी सप्तकोटिसहस्राणां मन्त्राणां परमेश्वरी' इति मन्त्रं सकृज्जपित्वा,

'ऐंनमो भगवति त्रिकोणे त्रिधावर्ते महालिङ्गालंकृते त्रैलोक्योत्पत्तिस्थितिप्रलयकारिणि सहलह्रीं कन्दर्पानन्ददायिनि सहह्रीं ब्रह्मदण्डरेखे सहह्रौं चित्स्वरूपेण पाशाङ्कुशालंकृते वदवद वागवादिनि श्रीं मूष्टमहीपालराज्यप्रदे ऐं वं वरदाशिवहस्ते समस्तजनानन्दकारिणि क्लीं क्लीं कामराजबीजाश्रये द्रांद्रींक्लींब्लूंसः क्षोभय क्षोभय क्षोभिणि हसौःहसःह्सौः मथमथ अभयप्रदायिनि चतुर्भुजे त्रिनेत्रे प्रेतासनोच्चारिणि महाकपालमालालंकृते चन्द्रशेखरे त्रिपुरे भुक्तिमुक्तिफलप्रदे ॐऐंॐ नमः सिद्धं अं ५१ क्षमित्यादिविलोमेनाकारान्तं ५१ ध्वंसिमःन ओंऐंॐ सर्वबीजमातः श्रीसमयिनि मम मनोरथं देहिदेहि स्वाहा' एवं जपित्वा, 'ऐंईंसौःश्रीमन्त्रराजाय नमः' इति त्रैपुरमन्त्रस्य पूजां विधाय त्रिपुरादिमहानाम्ना त्रयोदशविद्याः पूजयेत्। (१) ॐऐंसहौ सहलह्रीं सहह्रौः ऐं सहह्रीं सहहूं कामत्रिपुरायै नमः। (२) ॐऐंह्रींक्लींहसौः त्रिपुरभैरव्यै नमः। (३) ॐ ३ ऐंह्रींसः वाक्त्रिपुरायै नमः। (४) ॐ ऐंह्रींश्रींसौः महालक्ष्म्यै त्रिपुरायै नमः। (५) ॐऐंप्रेंक्लीं मोहिन्यै त्रिपुरायै नमः। (६) ॐऐंक्लींब्लूंस्त्रीं भ्रामरीत्रिपुरायै नमः। (७) ॐ ३ ऐंह्रींश्रीप्रेंहसौः त्रैलोक्यस्वामिन्यै त्रिपुरायै नमः। (८) ॐऐंडांडींडूंडैंडौंडः हंस्यै त्रिपुरायै नमः। (९) ऐंऐंऐंसौः कौलिकायै त्रिपुरायै नमः। (१०) ऐंऐंसौः षण्डिकायै त्रिपुरायै नमः। (११) ऐंऐंसौः तालुमध्यमायै त्रिपुरायै नमः। (१२) ऐंऐंसौः कपालांकुरवासिन्यै त्रिपुरायै नमः। (१३) ठःठःठः। यथाशक्ति जपित्वा; रक्तपुष्पैः शिरसि 'ऐंईंसौः आत्मदेहाय नमः' इति गन्धाक्षतैश्च सप्तधा सम्पूज्य धूपदीपौ निवेद्य तस्मिन्नेव त्रैपुरे देहे 'ऐंईंसौः' इति वनिताक्षोभकरीं महाकामकलां ध्यायेत्।

कालीमत में पूर्णाभिषेक विधि में पूर्ववत् कुण्डमण्डप वेदी बनाये। यहाँ पर विशेष यह है कि सत्ताईस हाथ का मण्डप बनाकर आठो दिशाओं में कुण्ड बनाये। मध्य में नव हाथ लम्बी-चौड़ी वेदी बनाये। वेदी पर श्रीचक्र बनाये। पूर्ववत् कलश स्थापनादि करे। गुरु प्रातःकृत्यादि से पीठन्यास तक के कर्म करके महाशक्ति न्यास करे।

पहले जगत् शून्याकार निरालम्ब का ध्यान करके 'हूं पृथिव्यै नमः' से अपने आसन के नीचे भूमिपूजा करे। अपने आसन को बाँएँ हाथ से पकड़कर भुवनेश्वरी बीज को सात बार जपे। ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ॐ जयायै नमः। ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ॐ विजायायै नमः। ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ॐ जयन्त्यै नमः। ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ॐ अजितायै नमः। ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ॐ अपराजितायै नमः। ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ॐ सङ्गमायै नमः। ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ॐ रम्भायै नमः से अपने आसन में सात शक्तियों की पूजा करके मूल से तीन प्राणायाम इस प्रकार विनियोग करे—ॐ अस्य महाशक्ति न्यासस्य परशिव ऋषिः, अतिजगति छन्दः, श्रीपराशक्तिः देवता, ऐं बीजं, श्रीं शक्तिं, सौः कीलकं श्रीविद्याङ्गत्वेन महाशक्तिन्यासे विनियोगः। ऋष्यादि न्यास करने के बाद ऐं ह्रीं श्रीं हाथ के अग्रभाग में ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं की दो आवृत्ति से कर-षडङ्ग न्यास करके इस प्रकार न्यास योनि में करे—ऐं ह्रीं श्रीं नमः। नाभि में ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्रां ह्रीं हूं नमः। हाथ के अग्रभाग में ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लां क्लीं क्लूं नमः। ॐ हृदय में ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्लां ह्लीं ह्लूं नमः। ललाट में ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सां सीं सूं नमः। कानों में ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हां हीं हूं नमः। बाहुमूल में ॐ ऐं ह्रीं श्रीं द्रां द्रीं द्रूं नमः। चिबुकाग्र में ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सौः श्रीं क्षौं नमः। ब्रह्मरन्ध्र में ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ऐं आं सौः अं नमः। इस प्रकार न्यास करके अ से क्ष तक के सभी वर्णों में मूलभूत अकार का दूध में मक्खन के समान सूक्ष्म रूप से स्थित होने की भावना करते हुये उसी प्रकार अन्य वर्णों का भी तत्तत् स्थानों में न्यास करे। जैसे आं नमः, नासाग्र में ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ऐं ईं सौः इं नमः आदि।

ब्रह्माण्डभेदिनी यह शक्ति योनि कहलाती है। यही देह के लेप में रेफरूप में विलीन होकर बिन्दु कही जाती होती है। एक हजार बहत्तर नाड़ियों में पञ्जर रूप में व्याप्त रहने वाली यह महाशक्ति कामिनियों के ऋतुकाल में सारे शरीर में व्याप्त रहती है। नाड़ीचक्र से आगत रक्त को यही योनिमार्ग से बाहर निकालती है। ऋतुकाल में भग में मास-पक्ष के क्रम से पुष्प होती है। ऐंकार स्वयं योनिरूप है, इसमें कुछ विचारणीय नहीं है। यहाँ न्यास करने से चराचरसहित तीनों लोक न्यस्त हो जाता है इस प्रकार चिन्तन करते हुये महाकामकला के ब्रह्मरन्ध्र में लयीभूत होने की कामना करते हुये। ब्रह्मरन्ध्र में ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ऐं ईं सौः आदि। ऊं नमः पूर्वोक्त मूलाधारस्थित कुण्डलिनी में ॐ ३। ३ से न्यास करके ॐ ३। ३ सभी मातृकाओं का उच्चारण करके उस कुण्डलिनी को सुषुम्ना मार्ग से षट् चक्रभेदन क्रम से ब्रह्मरन्ध्र में ले आये। वहाँ स्थित अकुल सहस्रदल

कमलकर्णिका में स्थित परमात्मा शिव के साथ उसके विलीन होने की भावना करके ॐ ३। ३ रक्ष रक्ष शूलिनी त्रैलोक्यानन्ददायिनि त्रिपुरे देवि रक्ष मां त्रिपुरेश्वरि रक्ष रक्ष महादेवि अस्मदीयमिदं वपुः ऐं ह्रीं श्रीं हसफें ह्सौः ह्रीं श्रीं हसफ्रें श्रीं ह्रीं ऐं श्रीसमयिनि मदिरानन्दसुन्दरि समस्तसुरासुरवन्दिते भुजङ्गभूपालमौलिमालालंकृतचरणकमले विकटदन्तच्छटाटोपनिवारिणि मदीयं शरीरं रक्ष रक्ष परमेश्वरि हुं फट् स्वाहा। ॐ भूः स्वाहा ॐ भुवः स्वाहा ॐ स्वः स्वाहा ॐ भूर्भुवःस्वः स्वाहा नरान्त्रमालाभरणभूषिते महाब्रह्मवादिनि महाघनोन्मादनकारिणि महाभोगप्रदे अस्मदीयं शरीरं वज्रमयं कुरु कुरु दुर्जनान् हन हन दुष्ट-महीपालान् भक्षय भक्षय परचक्रं भञ्जय भञ्जय जयङ्करि गगनगामिनि त्रैलोक्यस्वामिनि यमलवरयूं भमलवरयूं शमलवरयूं श्रीभैरवि प्रसादय स्वाहा कहकर हे त्रिपुरेश्वरि! कुलाङ्गना कुलसर्वस्वभूता दिव्य अङ्गों वाली, दिव्यात्मा, भोगदामिनी देवी मेरी रक्षा करे। हे महादेवि परमेश्वरि! मदिरानन्द में निमग्न तुम पैर से लेकर मस्तक तक मेरे शरीर की रक्षा करो—इस प्रकार आत्मरक्षा करके त्रिपुरा महादेवी भुक्ति और मुक्ति देने वाली है। गुरु के सदृश कोई अन्य वस्तु, शंकर के सदृश कोई अन्य देवता, कौल के अतिरिक्त अन्य कोई योग, त्रैपुर के सदृश कोई विद्या, शान्ति के सदृश कोई ज्ञान, शान्ति के सदृश कोई सुख शक्ति के समान कोई न्यास नहीं है। समस्त दर्शनों में और विशेषकर पाखण्डों में दिव्यरूपा महादेवी परमेश्वरी सब जगह विद्यमान है।

इस प्रकार मन्त्र विद्या की महिमा का स्मरण करके 'पीठोपपीठशिरःस्था गगनगिरिभुवनगिरिभुवनगोकुलनिवासिनी जयति कुलशक्तिमहीतलपातालनिवासिनी कुलकौलविभेदिनी सकलजनमन आनन्दकारिणी करोतु मम चिन्तितं कार्यं भैरवीशतमेकं पुनातु परमेश्वरी मदनमण्डलालम्बिनी सप्तकोतिसहस्राणां मन्त्राणां मे परमेश्वरी' इस मन्त्र का जप करे। तब इस मन्त्र का जप करे—'ऐंनमो भगवति त्रिकोणे त्रिधावर्ते महालिङ्गालंकृते त्रैलोक्योत्पत्तिस्थितिप्रलयकारिणि सहलह्रीं कन्दर्पानन्ददायिनि सहह्रीं ब्रह्मदण्डरेखे सहह्रौं चित्स्वरूपेण पाशाङ्कुशालंकृते वदवद वागवादिनि श्रीं मृष्टमहीपालराज्यप्रदे ऐं वं वरदाशिवहस्ते समस्तजनानन्दकारिणि क्लीं क्लीं कामराजबीजाश्रये द्रांद्रींक्लींब्लूंसः क्षोभय क्षोभय क्षोभिणि हसौःहसःह्सौः मथमथ अभयप्रदायिनि चतुर्भुजे त्रिनेत्रे प्रेतासनोच्चारिणि महाकपालमालालंकृते चन्द्रशेखरे त्रिपुरे भुक्तिमुक्तिफलप्रदे ॐऐंॐ नमः सिद्धं अं ५१ क्षमित्यादिविलोमेनाकारान्तं ५१ द्धंसिमःन ओंऐंॐ सर्वबीजमातः श्रीसमयिनि मम मनोरथं देहिदेहि स्वाहा' तदनन्तर ऐं ईं सौः श्रीमन्त्रराजाय नमः—इस त्रैपुर मन्त्र से पूजा करे। त्रिपुरादि महानामों से तेरह विद्याओं का इस प्रकार पूजन करे—(१) ॐऐंसहौ सहलह्रीं सहह्रौः ऐं सहह्रीं सहहूं कामत्रिपुरायै नमः। (२) ॐऐंह्रींक्लींहसौः त्रिपुरभैरव्यै नमः। (३) ॐ ३ ऐंह्रींसः वाक्त्रिपुरायै नमः। (४) ॐ ऐंह्रींश्रींसौः महालक्ष्म्यै त्रिपुरायै नमः। (५) ॐऐंप्रेंक्लीं मोहिन्यै त्रिपुरायै नमः। (६) ॐऐंक्लींब्लूंस्त्रीं भ्रामरीत्रिपुरायै नमः। (७) ॐ ३ ऐंह्रींश्रींप्रेंहसौः त्रैलोक्यस्वामिन्यै त्रिपुरायै नमः। (८) ॐऐंडांडींडूंडैंडौंडः हंस्यै त्रिपुरायै नमः। (९) ऐंऐंऐंसौः कौलिकायै त्रिपुरायै नमः। (१०) ऐंऐंसौः षण्डिकायै त्रिपुरायै नमः। (११) ऐंऐंसौः तालुमध्यमायै त्रिपुरायै नमः। (१२) ऐंऐंसौः कपालांकुरवासिन्यै त्रिपुरायै नमः। (१३) ठःठःठः। यथाशक्ति जप करके लाल फूल से शिर में 'ऐं ईं सौः आत्मदेहाय नमः' के द्वारा गन्धाक्षत से सात बार पूजा करे। धूप-दीप निवेदन करके उसी के समान त्रिपुरा के देह में ऐं ईं सौः इस वनिता क्षोभकटी महाकामकला का ध्यान करे।

न्यासानुसन्धानशतश्लोकी

ततः श्लोकशतकं न्यासानुसन्धानेन पठेत्। तत्र—

शक्तिरुद्रमयं देहं मदीयं त्रिपुरे कुरु। देहि मे देवदेवेशि (वरं नि)त्यमभीप्सितम् ॥१॥
मस्तकं मङ्गलादेवी ललाटं कुलसुन्दरी। नेत्रयुग्मं महाकाली कर्णौ रक्षतु कुण्डली ॥२॥
कपाली कर्णगर्भं तु कपोलौ कमलावती। दन्तान् रक्षतु चामुण्डा चिबुके मेरुवासिनी ॥३॥
भ्रूमध्यं कण्ठदेशं च रक्षेन्मे भुवनेश्वरी। जिह्वां सरस्वती रक्षेत्तालुकं तालुवासिनी ॥४॥
स्थातु मे कपिला स्कन्धे स्कन्धां (वामां)से कुलमालिनी।
कुक्षौ विनायकी स्थातु जयानन्दा स्तनद्वये ॥५॥
कण्ठकूपे महालक्ष्मीर्हृदये चण्डभैरवी। ब्रह्माणी नाभिदेशे तु स्थातु ज्वालावती गुदे ॥६॥
लिङ्गे लिङ्गप्रभा चैव मुण्डिनी मेदमण्डले। नाडीचक्रे महायोगा उद्धटा दक्षिणे करे ॥७॥

वामहस्ते महामाया विद्या हस्ताङ्गुलीषु च। वैष्णवी वामपादे च स्थातु चक्रायुधान्विता ॥८॥
तथा दक्षिणपादान्ते एकपादा सुरेश्वरी। पादाङ्गुलीषु कौवेरी रोमकूपे महोद्धटा ॥९॥
मण्डली नस्यमूले तु वाराही मेदमण्डले। जालन्धरी जलस्थाने कामाक्षी काममध्यगा ॥१०॥
उद्धटा नाभिलिङ्गान्ते नासाग्रे पूर्णपीठगा। पृष्ठवंशे जयादेवी अस्थिसन्धिषु चर्चिका ॥११॥
चर्मधारी त्वचायां तु स्थातु नित्यं महायशा:। रक्तमध्ये मनोऽन्ते च स्थातु मे हिंसिनी शुभा ॥१२॥
माहेश्वरी च कौमारी द्वे चैते स्थातु जङ्घयो:। वामदक्षिणयोश्चैव वीराली कटिसन्धिषु ॥१३॥
देवी रक्षतु मे गात्रं मस्तकं कुलकामिनी। पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च ॥१४॥
पञ्चभूतेषु भूतेशी सदा रक्षतु मे कुलम्। राज्यं ददातु मे चैन्द्री प्रजां चैव प्रजावती ॥१५॥
माया ददातु मे नित्यं धनं धान्यं यशस्तथा। रणे राजकुले चैव शत्रुमध्ये महावने ॥१६॥
रक्तनेत्रा महादेवी करोतु मम चिन्तितम्। समया समयं रक्षेद्विद्यां विद्या कुलागमे ॥१७॥
साधकानां जगन्नाथा भुक्तिमुक्तिफलप्रदा। प्राणा करोतु मे सिद्धिं त्रैलोक्यविजया सुखम् ॥१८॥
घण्टाली या महाविद्या सा मे यच्छतु मङ्गलम्। सप्तकोटिसहस्राणां मन्त्राणां नायिका तु या ॥१९॥
सा मे सुरेश्वरी देवी सदा सिद्धिं प्रयच्छतु। उल्कामुखा मुखे स्थातु मार्जारी देहसन्धिषु ॥२०॥
भद्रकाली तु या विद्या सा मे यातु शिवामये। त्रिकोणं च त्रिधावतं त्रैपुरं चक्रमुत्तमम् ॥२१॥
मस्तके स्थातु मे नित्यं तस्यान्ते बहुरूपिणी। पूर्वोक्ता त्रैपुरी शक्ति: स्थातु मे मन्मथोत्थिता ॥२२॥
क्षोभवती जगत्सर्वं मदिरानन्दविह्वला। निवासं कुरु मे देहे साम्प्रतं दिव्ययोगिनी ॥२३॥
एह्येहि त्वं महादेवि सिद्धयोगिनि मे कुले। शत्रूणां घातनार्थाय जेतॄणां भोगदायिनी ॥२४॥
महायोगिनि देहेऽस्मिन् सर्वदा निलयं कुरु। माहेन्द्री च शिखां स्थातु योनिमध्ये गणेश्वरी ॥२५॥
प्रेताशी नाम विख्याता करोतु कुशलं मम। डाकिनी पूर्वभागे च मम सौख्यं प्रयच्छतु ॥२६॥
शाकिनी पश्चिमाङ्गेषु दक्षिणे चापि राकिणी। वामभागे महामाया करोतु कुशलं मम ॥२७॥
सास्मदीयं शिर: पातु सदा तिष्ठतु भैरवी। या विशाला विशालाक्षी निर्मला मलवर्जिता ॥२८॥
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम। या कालकल्पिता कालो कालरात्री तु कथ्यते ॥२९॥
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम। या निशाचरराजन्यपूजिता च निशाचरी ॥३०॥
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम। या चोर्ध्वकेशिका नाम मुक्तकेशी महाभया ॥३१॥
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम। या वीरेति समाख्याता वीराणां जयदायिनी ॥३२॥
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम। या मालिनी समाख्याता नासाग्रे विद्रुमाजिनी ॥३३॥
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम। या कङ्कालकरालाङ्गी चण्डकङ्कालकुण्डला ॥३४॥
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम। प्रचण्डा च विरूपाक्षी विरूपा विश्वरूपिणी ॥३५॥
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम। खटवाङ्गी कथ्यते या च रौद्री रुद्रेण पूजिता ॥३६॥
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम। कलियोगिनी प्रसिद्धा च या लोके श्रूयते कलौ ॥३७॥
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम। प्रेताक्षी कथ्यते या च फेत्कारोत्कटवर्जिता ॥३८॥
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम। धूम्राक्षी या समाख्याता शास्त्रेऽस्मिन् योगिनीमते ॥३९॥
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम। घोररूपा महादेवी कथ्यते या कुलागमे ॥४०॥
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम। विश्वरूपा विशेषेण करोति च जगत्त्रयम् ॥४१॥
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम। भयङ्करी समादिष्टा या चोक्ता वै कुलागमे ॥४२॥

सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम। कपालमालिका प्रोक्ता या देवी मुण्डधारिणी ॥४३॥
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम। भीषणा भैरवी नाम या देवी भीमविक्रमा ॥४४॥
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम। न्यग्रोधवासिनी या च कथ्यते च सुरार्चिता ॥४५॥
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम। भैरवी भीषणी या च भैरवाष्टकवन्दिता ॥४६॥
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम। प्रोच्यते दीर्घलम्बोष्ठी महामाया महाबला ॥४७॥
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम। खट्वाङ्गी या महाशक्तिः संसारार्णवतारिणी ॥४८॥
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम। या समस्तेषु मन्त्रेषु प्रोच्यते मन्त्रवादिनी ॥४९॥
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम। कालघ्नी कथ्यते या च युगान्ते परमेश्वरी ॥५०॥
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम। ग्राहिणीति समाख्याता सुरासुरमहोरगैः ॥५१॥
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम। चक्रिणी गद्यते या च एकपादा त्रिलोचना ॥५२॥
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम। या विश्वबाहुका देवी विश्वनाथप्रिया सदा ॥५३॥
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम। दर्शनेषु समस्तेषु विदिता परमेश्वरी ॥५४॥
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम। कण्टकोच्छेदनार्थाय शास्त्रे या कण्टकी स्मृता ॥५५॥
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम। कीलकी कथ्यते या च सप्तहस्ता महाबला ॥५६॥
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम। संग्रामे या महादेवी महामारीति कथ्यते ॥५७॥
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम। यमदूतीति विख्याता या सुरासुरपूजिता ॥५८॥
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम। करालिनीति या देवी महाविद्या महाबला ॥५९॥
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम। ललिताम्बा महाराज्ञी सर्वचक्रैकनायिका ॥६०॥
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम। नासाग्रे कौलिकी स्थातु मदनस्था तथा मुखे ॥६१॥
व्योमजङ्घे कपोले च गालके चापहारिणी। सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम ॥६२॥
द्राविणी क्षोभिणी चैव स्तम्भिनी मोहिनी तथा। रौद्रकर्मा महाघण्टा चमरी त्वरिता मतिः ॥६३॥
रौद्री च कुलमाता च काकदृष्टिरधोमुखी। कपालकुण्डली दीर्घा कपाली कुलगामिनी ॥६४॥
दैवी रक्षतु मे गात्रं मस्तकं कुलमालिनी। भूमिरापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च ॥६५॥
पञ्चभूतेषु भूतेशी सदा रक्षतु मे कुलम्। राज्यं ददातु मे चैन्द्री प्रजां चैव प्रजावती ॥६६॥
माया ददातु मे नित्यं धनं धान्यं यशस्तथा। रणे राजकुले चैव शत्रुमध्ये महावने ॥६७॥
रक्तनेत्रा महादेवी करोतु मम चिन्तितम्। समया समये रक्षेद्विद्यां विद्या कुलागमे ॥६८॥
साधकानां जगन्नाथा भुक्तिमुक्तिफलप्रदा। द्विजटी त्रिजटी प्रोक्ता कन्दली ललिताखिला ॥६९॥
गायत्री चाम्बिका तारा पार्वती कमलप्रभा। मादिनी मदनोन्मादा मन्दारी मदनातुरा ॥७०॥
भीषणा भीषणी नाम प्रेतसिद्धा विभीषणा। क्षुधा तृष्णा तथा निद्रा कान्तिर्बुद्धिस्तथा द्युतिः ॥७१॥
सन्ध्या धृती रतिः क्षान्तिर्ह्यनिशं परिपठ्यते। सुरनाथेति विख्याता नगरेतरदेवता ॥७२॥
ग्रामदेवी ह्यधिष्ठात्री पीठे पीठेश्वरीं विदुः। कावेरी नर्मदा चैव गङ्गेति यमुनोच्यते ॥७३॥
गोदावरी महापुण्या प्रोच्यते चाप्यरुन्धती। त्रैलोक्येऽपि महादेवी स्त्रीनाम्नी या प्रकाशिता ॥७४॥
सा देवी रूपलक्षे तु स्थातु श्रीर्हृदये मम। सुवर्णरेखिणी प्रोक्ता विद्या या प्रोच्यते किल ॥७५॥
निर्मूलिनी भुजङ्गानां सा करोतु सुखं मम। कुरुकुल्लेति विख्याता पक्षिराजमुखोद्भवा ॥७६॥
या विद्या सा महारूपा जिह्वाग्रे स्थातु मे सदा। ॐकारिणीति विख्याता देहे स्थातु सदा मम ॥७७॥

विद्यापहारिणी नाम कलिरूपविदारिणी । भेरुण्डा स्थातु मे कण्ठे तोरला स्थातु मस्तके ॥७८॥
तथा शवलरेखापि मूले स्थातु सदा मम । जाङ्गली विषनाशाय वाचां सिद्धिं करोतु मे ॥७९॥
सर्वसिद्धिकरी विद्या भुक्तिमुक्तिफलप्रदा । अहं ब्रह्मा अहं विष्णुरहं देवो महेश्वरः ॥८०॥
सर्वभूतनिवासोऽहं लोके श्रीशक्तिचिन्तकः । शक्तिन्यासेन पूतेन शरीरेण सुरासुराः ॥८१॥
प्रधानादेशमात्रेण आशां(ज्ञां) कुर्वन्तु मे सदा । यत्किञ्चिद्योगिनीरूपं त्रैलोक्ये चास्ति शङ्कर ॥८२॥
तत्सर्वं तिष्ठते देहे शक्तिन्यासे उपासिते । कामिनी कुरुते चापि या न्यासं भक्तिनिर्मितम् ॥८३॥
तां देवीं दिव्यरूपस्थां संसारे त्रिपुरां विदुः । नमोऽस्तु ते जगन्मातर्नमोऽस्तु भुवनेश्वरि ॥८४॥
नमो भोगप्रदे देवि (नमस्तुभ्यं) महेश्वरि । प्रकटा गोपिताः सर्वा निर्वाणा भैरवी शिवा ॥८५॥
सम्भ्रमा विजया हंसा शुभा सानलदेवता । यक्षिणी चूडकन्या च तथा चाकाशगामिनी ॥८६॥
भूचरी चरिता कुम्भी सर्वागमनिवासिनी । चतुःषष्ट्याश्रया देवी योगिन्यो येन चिन्तिताः ॥८७॥
आधारे लीयमानास्तु स योगी योगविद्भवेत् । ललाटे मण्डला स्थातु विरजा स्थातु मस्तके ॥८८॥
एकाक्षी दक्षिणस्कन्धे वामे चैव त्रिलोचना । जयन्ती स्थातु मे कुक्षौ कट्यां कन्दर्पकुण्डली ॥८९॥
मालिनी लिङ्गसन्धौ च हृदि स्थातु समाधिनी । अम्बिका पृष्ठवंशे च पार्श्वयोः स्थातु मेदिनी ॥९०॥
दिग्गजाङ्गी कराग्रे च नागेन्द्री नखसन्धिषु । व्याघ्री चक्री च जङ्घायां स्थातु पादतले मही ॥९१॥
अमृता शङ्खिनी रन्ध्रे लोचने च विलासिनी । कालिन्दी मूलजिह्वां च रक्तं रक्षतु रक्तिनी ॥९२॥
लाङ्गली जङ्गली रक्षेदस्थिनी चास्थिसन्धिषु । मज्जिनी देहमज्जां तु शुक्रं शुक्रेश्वरी तथा ॥९३॥
त्वचं रक्षतु वेताली मम रोगप्रणाशिनी । रुद्धटा कुरुते शान्तिं सदैव मम विग्रहे ॥९४॥
पादा पादतले स्थातु पथि रक्षतु पन्थिनी । चोराग्निराजसर्पेभ्यो भयाद्रक्षतु भैरवी ॥९५॥
दुष्टानां दृष्टिबन्धं तु सदा करोतु बन्धिनी । चापेटी नाम या विद्या सा मे करोतु मङ्गलम् ॥९६॥
मर्कटी घण्टकर्णी च हनुमन्ती च रावणी । घुर्घुरा कीर्तिविख्याता वन्दे विद्याचतुष्टयम् ॥९७॥
चेटका ज्ञानदा विद्या कौमारी चरणावली । विघ्नराजैस्तता नाम तुष्टा सन्तानरूपिणी ॥९८॥
मूलाधारस्थिता हंसी पातकी दलनोद्धता । दशैता मन्त्रविद्यास्तु तिष्ठन्तु मम मस्तके ॥९९॥
शुभा मे चाग्रतः स्थातु लोहिता स्थातु दक्षिणे । वामाङ्गं रतिकाले च पश्चिमे स्थातु शृङ्खला ॥१००॥
शिखायां शङ्खिनी रक्षेद्वस्त्रे वस्त्रवती शुभा । कवचे कवचाङ्गी च नेत्रे नेत्रकृतोत्सवा ॥१०१॥
तिष्ठन्ति योगिनीरूपास्त्रैलोक्ये सचराचरे । योगिन्यो यास्तु ताः सर्वा देहं कुर्वन्तु मे वपुः ॥१०२॥
पुत्राणां च तदा देयं भक्तानां तु विशेषतः । शक्तिन्यासमिदं देयं न देयं यस्य कस्यचित् ॥१०३॥
मनुष्याणां महीलोके चिन्तितार्थफलप्रदम् । यः करोति महान्यासं षोढान्यासादिकं विभो ॥१०४॥
स जीवन् शक्तिरूपो वै त्रैलोक्योन्मूलनक्षमः । शक्तिन्यासे कृते जीवेद्यः कश्चिच्छेदको भवेत् ॥१०५॥
कर्मणा मनसा वाचा तस्य घातो भविष्यति ।

इति शक्तिन्यासः।

तदनन्तर मूलोक्त सौ श्लोकों का न्यासपूर्वक पाठ करे।

यह न्यास स्तोत्र भक्त एवं पुत्र को देना चाहिये। यह शक्ति जिस किसी को देय नहीं है। संसार में मनुष्य को चिन्तित अर्थ-प्रदायक है। जो इस महान्यास को षोढान्यास के साथ करता है, वह शक्ति रूप में जीवित रहकर त्रैलोक्य का नाश करने में समर्थ होता है। शक्ति न्यास के बाद जो जीवित रहता है, उसका यदि कोई मन-वचन से घातक होना चाहता है तो उसी का घात हो जाता है।

अन्तर्यागकरणम्

एवं महाशक्तिन्यासं स्वयं कृत्वा शिष्यस्य कारयित्वान्तर्यागं कुर्यात्। तद्यथा—मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा सामान्यार्घ्योदकेन स्वपुरतश्चतुरस्रं कृत्वा 'ॐह्रींहंसः सोऽहं स्वाहा' इत्यात्ममनुना साधारं सकलशोदकमात्मपात्रं संस्थाप्य स्वदेहं शिष्यदेहं च श्रीचक्ररूपं विचिन्त्य 'अंकं ३६ शिवशक्तिसदाशिवेश्वरशुद्धविद्यारागकालनियति-विद्यापुरुषप्रकृत्यहङ्कारश्रोत्रत्वङ्नेत्रजिह्वाघ्राणमनोबुद्धिवाक्पाणिपादपायूपस्थशब्दस्पर्शरूपरसगन्धाकाशवाय्व-ग्निसलिलभूमिजीवसर्वात्मने षट्त्रिंशत्तत्त्वात्मकाय श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीयोगपीठाय नमः' इति पीठसमष्टिविद्यया हृदि पुष्पाञ्जलिं प्रक्षिप्य गन्धमाल्यादिभिर्भूषयित्वा देवीं सम्मुखीं हृदि ध्यात्वावाहनादिमुद्राः प्रदर्श्यासनाद्युपचारान् समर्प्य ध्यानपूर्वकं हृदि साङ्गामित्यादिना त्रिः सम्पूज्य सन्तर्प्य मूलेन गन्धादिताम्बूलान्तानुपचारान् समर्प्य तत्त्वचतुष्टयशोधनं कुर्यात्। यथा—ऐंअं १६ अःभूमिजीवसर्वात्मने अंआंऐं 'इदं विष्णुर्विचक्रमे०' (१.२२.१७) इदन्तापात्रसम्भूतम-हन्तापरमामृतम्। पराहन्तामये वह्नौ जुहोमि शिवरूपतः। मूलं० आत्मतत्त्वात्मने स्थूलदेहं शोधयामि स्वाहा' इत्यात्म-पात्रान्तरेण किञ्चित् स्वीकृत्य क्लींकंखं इत्यादि २५ शिवशक्तिसदाशिवेश्वरशुद्धविद्यारागकालनियतिविद्यापुरुष-प्रकृत्यहङ्कारश्रोत्रत्वङ्नेत्रजिह्वाघ्राणमनोबुद्धिवाक्पाण्यात्मने कं २५ क्लीं 'सुरावन्तं बर्हिषदं सुवीरं यज्ञं हिन्वन्ति महिषा नमोभिः। दधानाः सोमं दिवि देवतासु मादेमेन्द्रं यजमानाः स्वर्काः'। अन्तर्निरन्तरनिरिन्धनमेधमाने मोहान्धकारपरिपन्थिनि संविदग्नौ। कस्मिंश्चिदद्भुतमरीचिविकासभूमौ विश्वं जुहोमि वसुधादिशिवावसानम्। मूलं० विद्यातत्त्वात्मने सूक्ष्मदेहं शोधयामि स्वाहा, इति। पूर्ववत् किञ्चित् स्वीकृत्य, सौःयंरं १० पादपायूपस्थशब्दस्पर्शरूपरसगन्धाकाश-वाय्वग्निसलिलात्मने यं १० 'वाममद्यसवितर्वाममु श्वो दिवे दिवे वाममस्मभ्यं सावीः। वामस्य हि क्षयस्य देव भूरे रया धिया वामभाजः स्याम' (य० ८।६)। तृप्यन्तु मातरः सर्वाः भैरवाः सविनायकाः। क्षेत्रपालाश्च योगिन्यो मम देहे व्यवस्थिताः। मूलं शिवतत्त्वात्मने कारणदेहं शोधयामि स्वाहा, इति पूर्ववत् किञ्चित् स्वीकृत्य, ऐंक्लींसौःअं ५१ भूमिजीवसर्वात्मशिवशक्तिसदाशिवेश्वरशुद्धविद्यारागकालनियतिविद्यापुरुषप्रकृत्यहङ्कारश्रोत्रत्वङ्नेत्रजिह्वामनोबुद्धिवाक्पा-णिपादपायूपस्थशब्दस्पर्शाकाशवाय्वग्निसलिलात्मने अं ५१ ऐंक्लींसौः धर्माधर्महविर्दीप्ते आत्माग्नौ मनसा स्रुचा। सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम्'। मूलं० सर्वतत्त्वात्मने स्थूलसूक्ष्मकारणमहाकारणदेहं शोधयामि स्वाहा, इति पूर्ववत् किञ्चित् स्वीकृत्य, पुनराधारे (कुण्डे) अनादिवासनेन्धनज्वालिते आत्मचतुष्काकारचतुरस्रे कुण्डलिन्यधिष्ठितं चिदग्निं ध्यात्वा, मूलं० 'हंसः चिदग्निमडलाय नमः' इति मनसा सम्पूज्य, मनसैव 'पुण्यं जुहोमि स्वाहा'। एवं पापं० कृत्यं० अकृत्यं० सङ्कल्पं० विकल्पं० धर्मं० अधर्मं० चेति हुत्वा, आत्मपात्रं हस्ते संगृह्य मूलं० हंसः 'इतः पूर्वं प्राणबुद्धिमनोऽहङ्कारदेहधर्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत्स्मृतं यदुक्तं यत्कृतं तत्सर्वं गुरुदेवतायै समर्पितमस्तु स्वाहा' इति सर्वं समर्प्य पात्रमाधारे संस्थाप्य, आधारादिब्रह्मरन्ध्रगां बिसतन्तुतनीयसीं विद्युत्कोटिप्रभामशेषजगदुत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणीं कुण्डलिनीं देवीरूपां ध्यात्वा, यथाशक्ति मूलमक्षमालया सञ्जप्य निवेद्य, 'मायान्ततत्त्वे सदहं शिवोऽहं शक्त्यन्ततत्त्वे चिदहं शिवोऽहम्। शिवान्ततत्त्वे सुखदः शिवोऽहमतः परं पूर्णमनुत्तरोऽहम्। दैशिकवागुपदेशविनश्यद्देहमरुन्मयशून्यविकल्पः। अद्वयबोध-विमर्शसुखः सन्नद्य शिवोस्मि शिवोस्मि शिवोऽस्मि' इत्यनुसन्धाय प्रणम्य, शिष्यस्यापि बालाबीजत्रयस्थाने कूटत्रयं संयोज्य संशोध्य तथैव षोडशार्णायाः खण्डत्रयं विधाय संशोध्य श्रीपर्ण्यादिपीठे संस्थाप्य प्रधानकलशं स्वयमुत्थाप्य ऋत्विक्सामयिकैरन्यान् कलशानुत्थाप्य तत्तन्मन्त्रोच्चारणपूर्वकं गुरुरभिषिञ्चेत्। अन्येऽप्यभिषेकं कुर्युः। ततो वस्त्रमाल्या-द्यलंकृतं श्रीचक्रे समुपवेश्य पराप्रासादश्रीषोडशार्णविद्याभेदषट्शाम्भ-वक्रमचरणविद्या-आम्नाय-समया-पञ्चसिंहासन-षड्दर्शन-पञ्चपञ्चिकागण-पञ्चायतनविद्याः श्रीविद्यावृन्द-भेदादिदशमहाविद्याः शैववैष्णवगाणपत्यसौरशाक्तविद्या गुरुपादुकाविद्याः षोडशनित्याविद्या महाषोढोक्तविद्याद्यूर्ध्वाम्नायक्रमं सम्पूर्णमुपदिशेत्। स्वक्रममपि चोपदिशेत्। शिष्योऽपि

गोभूहिरण्यवस्त्रगजाश्वमहिषीदासीदासगृहाद्यैः श्रीगुरुं तोषयित्वा भूरिदक्षिणादानादिभिर्ऋत्विक्सामयिकान् सन्तोष्य रात्रौ महापूजां विधायापरेऽहनि दीनान्धकृपणैः सह ब्राह्मणान् भोजयित्वा दक्षिणादानैस्तोषयित्वा श्रीगुरोराज्ञयानुग्रहादिकं तदा प्रभृति कुर्यात्। इति कालीमतरीत्या पूर्णाभिषेकविधिः।

इति श्रीमहामहोपाध्यायभगवत्पूज्यपाद-श्रीगोविन्दाचार्यशिष्य-श्रीभगवच्छङ्कराचार्यशिष्य-श्रीविष्णुशर्माचार्यशिष्य-श्रीप्रगल्भाचार्यशिष्य-श्रीविद्यारण्ययतिविरचिते श्रीविद्यार्णवाख्ये तन्त्रे पञ्चदशः श्वासः॥१५॥

●

इस प्रकार से शक्तिन्यास स्वयं करे और शिष्यों से भी कराकर अर्न्तयाग करे। मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करके सामान्य अर्घ्योदक से अपने आगे चतुरस्र बनाये। 'ॐ ह्रीं हंसः सोऽहं स्वाहा' मन्त्र से आधार पर कलशजल से आत्मपात्र स्थापित करे। अपने देह को और शिष्य के देह का श्रीचक्ररूप चिन्तन करके 'अंकं ३६ शिवशक्तिसदाशिवेश्वरशुद्धविद्यारागकालनियति-विद्यापुरुषप्रकृत्यहङ्कारश्रोत्रत्वङ्नेत्रजिह्वाघ्राणमनोबुद्धिवाक्पाणिपादपायूपस्थशब्दस्पर्शरूपरसगन्धाकाशवाय्वग्निसलिलभूमिजीवसर्वात्मने षट्त्रिंशत्तत्त्वात्मकाय श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीयोगपीठाय नमः' इस पीठसमष्टि विद्या से हृदय पर पुष्पाञ्जलि देकर गन्ध-मालादि से भूषित करके सम्मुखस्थित देवी का हृदय में ध्यान करके आवाहनादि मुद्रा दिखाये। आसनादि उपचारों को समर्पित करे। ध्यानपूर्वक हृदय में साङ्गा इत्यादि से तीन बार पूजन करे। तर्पण करे। मूल मन्त्र से गन्ध से ताम्बूल तक के उपचारों को समर्पित करके तत्त्वचतुष्टय का शोधन करे। जैसे—

ऐं अं १६ अः भूमिजीवसर्वात्मने अं आं ऐं इदं विष्णुर्विचक्रमे०' कहकर इदन्तापात्रसम्भूतमहन्तापरमामृतम्। पराहन्तामये वह्नौ जुहामि शिवरूपतः। मूल आत्मतत्त्वात्मने स्थूलदेहं शोधयामि स्वाहा'। इस आत्म पात्रान्तर से किञ्चित् स्वीकृत करके क्लीं कं खं इत्यादि २५ शिवशक्ति सदा शिवेश्वर शुद्ध विद्या राग काल नियति विद्या पुरुष प्रकृति अहङ्कार श्रोत्र त्वक् नेत्र जिह्वा घ्राण मनोबुद्धि वाक् पाण्यात्मने कं २५ क्लीं सुरावन्तं बर्हिषदं सुवीरं यज्ञं हिन्वन्ति महिषा नमोभिः। दधानाः सोमं दिवि देवतासु मादेमेन्द्रं यजमानाः स्वर्काः। अन्तर् निरन्तर निरिन्धनमेधमाने मोहान्धकारपरिपन्थिनि संविदग्नौ। कस्मिंश्चिदद्भुतमरीचि विकासभूमौ विश्वं जुहोमि वसुधादिशिवावसानम्। मूल० विद्यातत्त्वात्मने सूक्ष्मदेह शोधयामि स्वाहा। पूर्ववत् कुछ जल पीकर सौः यं रं १० पाद पायूपस्थ शब्दस्पर्श रूप रस गन्धाकाश वाय्वग्निसलिलात्मने यं १० वाममद्यसवितर्वाममु श्वो दिवे दिवे वाममस्मभ्यं सावीः। वामस्य हि क्षयस्य देव भूरे रया धिया वामभागः स्यामः। तृप्यन्तु मातरः सर्वाः भैरवाः सविनायकाः। क्षेत्रपालाश्च योगिन्यो मम देहे व्यवस्थिताः। शिवतत्त्वात्मने कारणदेहं शोधयामि स्वाहा। पूर्ववत् कुछ जल पीकर ऐं क्लीं सौः से ५१ भूमि जीव सर्वाभशिव शक्ति सदा शिवेश्वर शुद्ध विद्या राग काल नियति विद्या पुरुष प्रकृति अहङ्कार श्रोत्र त्वक् नेत्र जिह्वा मनोबुद्धि वाक् पाणि पाद पायूस्थ शब्द स्पर्श काश वाय्वाग्नि सलिलात्मने अं ५१ ऐं क्लीं सौः धर्माधर्महविर्दीप्ते आत्माग्नौ मनसा स्रुचा। सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम्। मूलं सर्व तत्त्वात्मने स्थूल सूक्ष्म कारण महाकारणदेहं शोधयामि स्वाहा। पूर्ववत् कुछ जल पीकर पुनः आधार कुण्ड में अनादि वासनारूपी ईन्धन से प्रज्वलित आत्मचतुष्काकार चतुरस्र में कुण्डलिनी पर अधिष्ठित चिदग्नि का ध्यान करके मूलं 'हंसः चिदग्निमण्डलाय नमः' इस प्रकार मन में पूजन करके मन में ही 'पुण्यं जुहोमि स्वाहा। इसी प्रकार पाप जुहोमि स्वाहा, कृत्यं जुहोमि स्वाहा, अकृत्यं जुहोमि स्वाहा, सकल्पं जुहोमि स्वाहा, विकल्पं जुहोमि स्वाहा, धर्मं जुहोमि स्वाहा, अधर्मं जुहोमि स्वाहा हवन करके आत्मपात्र को हाथ में लेकर मूलं हंसः इतः पूर्वं प्राणबुद्धि-मनोऽहङ्कारदेहधर्माधिकारतो जाग्रत् स्वप्न सुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत्स्मृतं यदुक्तं यत्कृतं तत्सर्वं गुरुदेवतायै समर्पितमस्तु स्वाहा—इस प्रकार सबका समर्पण करके पात्र को आधार पर स्थापित करे। आधार से ब्रह्मरन्ध्र तक जाने वाली बिसतन्तु-स्वरूपा, करोड़ों विद्युत् के समान प्रभा वाली एवं समस्त जगत् की उत्पत्ति-स्थिति एवं संहार करने वाली कुण्डलिनी का देवीरूप में ध्यान करे। यथाशक्ति मूलमन्त्र का अक्षमाला से जप कर उसे निवेदित करे। 'मायान्ततत्त्वे सदहं शिवोऽहं शक्त्यन्ततत्त्वे चिदहं शिवोऽहम्। शिवान्ततत्त्वे सुखदः शिवोऽहमतः परं पूर्णमनुत्तरोऽहम्। दैशिक-वागुपदेशविनश्यद्देहमरुन्मयशून्यविकल्पः। अद्वयबोध-विमर्शसुखः सन्नद्य शिवोस्मि शिवोस्मि शिवोऽस्मि'।

इस प्रकार अनुसन्धान करके प्रणाम करे। शिष्य का भी बालात्रय के स्थान में कूटत्रय का योग करके संशोधित करके उसी प्रकार षोडशाक्षर का खण्डत्रय करके संशोधित कर श्रीपर्ण्यादि पीठ में स्थापित प्रधान कलश को स्वयं उठाकर एवं ऋत्विक् तथा सामयिक अन्य कलश को उठाकर मन्त्रोच्चारणपूर्वक गुरु अभिषेक करे। दूसरे भी उसका अभिषेक करें। तब वस्त्रालङ्कार से अलंकृत शिष्य को श्रीचक्र में बैठाये। पराप्रासाद श्री षोडशाक्षर विद्या भेद षट् शाम्भव क्रम चरण विद्या आम्नाय समया पञ्च सिंहासन षड् दर्शन पञ्च पञ्चिका गण पञ्चायतन विद्या श्रीविद्यावृन्द भेदादि दश महाविद्या शैव वैष्णव गाणपत्य सौर शाक्त विद्या गुरुपादुका विद्या षोडश नित्या विद्या महाषोढोक्त विद्या एवं सम्पूर्ण ऊर्ध्वाम्नाय क्रम का उपदेश करे एवं अपने क्रम का भी उपदेश करे। शिष्य भी गुरु को गाय, भूमि, सोना, वस्त्र, हाथी, घोड़ा, दासी-दास, गृहादि देकर सन्तुष्ट करे। प्रभूत दक्षिणा दानादि से ऋत्विकों एवं सामयिकों को सन्तुष्ट करके रात में महापूजा करे। दूसरे दिन गरीब, अन्धों एवं कंजूसों के साथ ब्राह्मणों को भोजन कराकर दक्षिणा देकर सन्तुष्ट करके श्री गुरु की आज्ञा से अनुग्रहादि क्रिया करे।

इस प्रकार श्रीविद्यारण्ययतिविरचित श्रीविद्यार्णव तन्त्र के कपिलदेव
नारायण-कृत भाषा-भाष्य में पञ्चदश श्वास पूर्ण हुआ

अथ षोडशः श्वासः

कालीमते पुरश्चरणविधौ पुरश्चरणशब्दनिरुक्तिः

अथ कालीमतरीत्या पुरश्चरणविधिः। तत्र—

पुरश्चरणसम्पन्नो मन्त्रो हि फलदायकः। किं होमैः किं जपैश्चैव किं मन्त्रन्यासविस्तरैः ॥१॥
रहस्यानां हि मन्त्राणां यदि न स्यात्पुरस्क्रिया। पुरस्क्रिया हि मन्त्राणां प्रधानं बीजमुच्यते ॥२॥
वीर्यहीनो यथा देही सर्व(र्ग)कर्मसु न क्षमः। पुरश्चरणहीनोऽपि तथा मन्त्रः प्रकीर्तितः ॥३॥

इति वैशंपायनेन पुरश्चरणस्यावश्यकत्वाभिधानात्, तस्य तु—'निर्ऋतिर्विधिहीनानां फलं हन्ति तु कर्मणाम्' इति विधिहीनानुष्ठाने निन्दाश्रवणात्, तदनुष्ठानविधिर्विविच्य लिख्यते। अत्र पुरश्चरणशब्दनिरुक्तिर्वायवीयसंहितायाम्—

साधनं मूलमन्त्रस्य पुरश्चरणमुच्यते। पुरतश्चरणीयत्वाद् विनियोगाख्यकर्मणाम् ॥१॥
पुरतो विनियोगस्य चरणाद्वा तथोदितम्। इति।

कालीमत रीति से पुरश्चरण विधि—वैशम्पायनसंहिता में पुरश्चरण का आवश्यकत्व बताते हुये कहा गया है कि पुरश्चरण से सम्पन्न मन्त्र ही फलदायक होता है। यदि पुरश्चरण नहीं किया जाय तो हवन, जप एवं विस्तृत न्यास भी किसी काम के नहीं होते। पुरश्चरण को ही मन्त्रों का प्रधान बीज कहते हैं। जैसे वीर्यहीन देही सभी कामों को नहीं कर सकता, वैसे ही पुरश्चरणहीन मन्त्र भी किसी काम के नहीं होते।

पुरश्चरण शब्द की निरुक्ति वायवीय संहिता के अनुसार इस प्रकार है—मूलमन्त्र के साधन को पुरश्चरण कहते हैं। विनियोग आदि कर्मों के चारो ओर प्रवृत्त रहने से एवं सामने भी विनियोग के कहे जाने से मन्त्र पुरश्चरणयुक्त होता है।

विनियोगलक्षणम्

विनियोगलक्षणमुक्तं मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—

धर्मार्थकाममोक्षाणां शास्त्रमार्गेण योजनम्। सिद्धमन्त्रस्य सम्प्रोक्तो विनियोगो विचक्षणैः ॥१॥
पुरश्चरणपूर्वोऽसौ विनियोगो विनिश्चितः। फलाय मन्त्रसेवाया राजसेवा यथा तथा ॥२॥
चरणात् पूर्वमेवासौ पुरश्चरणमुच्यते। इति।

एतेन विनियोगाख्यकर्मसामर्थ्यजनकक्रिया, ऐहिकामुष्मिकमन्त्रात्मबुद्धिहेतुक्रिया वा पुरश्चरणमित्युक्तम्। अत्र केचित्—'प्राप्यैनां जपविधिरादरेण कार्यो विद्वद्भिः सहुतविधिर्निजेष्टसिद्ध्यै' (प० ६ प० १२३ श्लोक) **इति दीक्षाप्रकरणेऽभिधाय मध्ये मध्येऽपि तत्प्रकरणे पूजाजपहोमानेवं विधाय 'मन्त्रैस्तद्देवताभिष्टुतिभिरपि जपध्यान-होमार्चनादिभि'रित्युपसंहारे प्रपञ्चसारकारैः श्रीशङ्कराचार्यचरणैरभिधानात्। शारदातिलककृतापि सर्वत्र पूजाजपहोमानेवं विधाय प्रयोगाभिधानात्।**

विनियोग का लक्षण—मन्त्रतन्त्रप्रकाश के अनुसार धर्म-अर्थ-काम एवं मोक्ष के लिये सिद्ध मन्त्र का शास्त्र मार्ग से योजन करने को विद्वान् विनियोग कहते हैं। पुरश्चरण के पहले यह विनियोग किया जाता है। फल के लिये जैसे राजसेवा की जाती है वैसे ही यह मन्त्रसेवा होती है। चरण से पूर्व होने के कारण ही यह पुरश्चरण कहलाता है। इस प्रकार कर्मसामर्थ्य-जनक क्रिया या ऐहिक-आमुष्मिक मन्त्रात्म बुद्धि के लिये की गई क्रिया को पुरश्चरण कहते हैं।

पुरश्चरणेऽङ्गसंख्याविकल्पः

नाजपात्सिद्ध्यते मन्त्रो नाहुताच्च फलप्रदः। अनर्चितो हरेत्कामांस्तस्मात् त्रितयमाचरेत् ॥१॥

इति ब्रह्मप्रकाशतन्त्रवचनाच्चाङ्गत्रयात्मकं पुरश्चरणं वदन्ति। अन्ये तु—

संसारे दुःखभूयिष्ठे यदीच्छेच्छ्रेय आत्मनः। पञ्चाङ्गोपासनेनैव पुरश्चारी सुखं व्रजेत् ॥१॥ इति।
पञ्चाङ्गानि महादेवि जपो होमश्च तर्पणम्। स्वाभिषेकश्च विप्राणामाराधनमपीश्वरि ॥२॥
पूर्वपूर्वदशांशेन पुरश्चरणमुच्यते। इति।

कुलमूलावतारवचनात् पञ्चाङ्गं वदन्ति। वैष्णवतन्त्रे—

जपो होमस्तर्पणं च सेको ब्राह्मणभोजनम्। पञ्चाङ्गोपासनं लोके पुरश्चरणमुच्यते ॥१॥ इति।

अपरे तु—'मूलमन्त्रदशांशं स्यादङ्गमन्त्रजपादिकम्' इति कपिलवचनात् 'जपोऽङ्गानां दशांशेन कर्तव्यः सिद्धिमिच्छता' इति वायवीयसंहितावचनात् षडङ्गं वदन्ति। इतरे तु—

जपो होमस्तर्पणं च स्वाभिषेकोऽघमर्षणम्। सूर्यार्घ्यं जलपानं च प्रणामं देवपूजनम् ॥१॥
ब्राह्मणानां भोजनं च पूर्वपूर्वदशांशतः। दशांशो(ङ्गो)पासनं भक्त्या पुरश्चरणमुच्यते ॥२॥

इति तन्त्रान्तरवचनाद्दशाङ्गं वदन्ति। क्वचिज्जपसमसंख्यो होमः, होमसममपि तर्पणम्। क्वचित्सर्वाणि समान्येव। शतांशेनापि क्वचित् 'होमयेज्जपसंख्यया' इति प्रयोगान्तरेषु, 'तर्पयेत्तावदेतेषां मनूनां हुतसंख्यया' इति नर्तकगोपालविषये, 'यावत्संख्यं मनुं जप्त्वा तावद्धोमादिकं चरेत्' इति ग्रहणकालीनपुरश्चरणादौ न (?तु) क्वचिदुक्तेस्तत्र जपसंख्याया अल्पीयस्त्वात्, 'अष्टलक्षं जपेन्मन्त्रं तत्सहस्रं तिलैः शुभैः' इति महिषमर्दिनीविषये, तत्र जपस्य भूयस्त्वात् 'यद्वा जपचतुर्थांशं स्वाहान्तं मन्त्रमुच्चरेत्' इति वैशंपायनसंहितावचनात् 'वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं तत्सहस्रं घृतप्लुतैः। पायसान्नैः प्रजुहुयात्' इति शारदातिलकवचनात्, 'क्षेत्रान्तरे जपस्याष्टभागेन सिद्ध्यति' इति दक्षिणामूर्ति-कल्पवचनात्, 'जुहुयात्तद्दशांशेन सघृतैस्तिलतण्डुलैः' इति सारसंग्रहवचनाच्च होमस्यानियतत्वात्, 'तर्पयेत्तद्दशांशेन सघृतेन पयोन्धसा। कुर्याद्दशांशतो होमं ततः सिद्धो भवेन्मनुः' इति सनत्कुमारवचनात्, 'तर्पयेत्तावदन्येषां मनूनां हुतसंख्यया। तर्पणं विहितं नित्यम्' इति शैवागमवचनाच्च तर्पणस्याप्यनियतत्वाच्च तत्तत्कल्पोक्तमेव पुरश्चरणं युक्तमित्यस्मत्सिद्धान्तः।

ब्रह्मप्रकाश तन्त्र में भी यह कहा गया है कि जप के बिना मन्त्र सिद्ध नहीं होते और हवन के बिना वे फलप्रद नहीं होते। अर्चन न करने से वे मन्त्र कामनाओं का हरण करते हैं; इसलिये जप, हवन एवं अर्चन—इन तीनों का आचरण करना चाहिये। इस प्रकार पुरश्चरण के तीन अंग होते हैं—जप, हवन एवं अर्चन। कुलमूलावतार में कहा गया है कि दुःखपूर्ण संसार में यदि स्वयं के श्रेय की इच्छा हो तो पञ्चाङ्ग उपासना से पुरश्चरण करने वाली ही सुख प्राप्त कर सकता है। पञ्चाङ्ग में जप, होम, तर्पण, स्वाभिषेक एवं विप्रों का आराधन आता है। इन सबके दशांश अनुष्ठान से पुरश्चरण होता है। वैष्णव तन्त्र में कहा गया है कि जप, होम, तर्पण, अभिषेक एवं ब्राह्मणभोजन—इस पञ्चाङ्ग उपासना को ही लोक में पुरश्चरण कहते हैं। अङ्गमन्त्र के जपादि मूल मन्त्र के दशांश होते हैं—इस कपिल वचन के अनुसार और जप का दशांश अङ्ग मन्त्र का जप करने से सिद्धि मिलती है—इस वायवीय संहिता के वचनानुसार भक्तिपूर्वक षडङ्ग पुरश्चरण भी कहा गया है।

तन्त्रान्तरों में कहा गया है कि जप, होम, तर्पण, अपना अभिषेक, अघमर्षण, सूर्यार्घ्य, जलपान, प्रणाम, देवपूजन, ब्राह्मणों को भोजन इन सबों की भक्तिपूर्वक क्रमशः उपासना को पुरश्चरण कहते हैं। कुछ जप के बराबर हवन कहते हैं और हवन संख्या के बराबर तर्पण। कुछ सबों को बराबर करने के लिये कहते हैं। कुछ जप के शतांश हवन कहते हैं। कुछ जप के बराबर ही हवन कहते हैं। नर्तक गोपाल विषय में कहा गया है कि जितना हवन करे, उतना ही तर्पण करे। ग्रहणकालीन पुरश्चरण में कुछ ने कहा है कि जप से कम हवन करना चाहिये। महिषमर्दिनी के विषय में कहा है कि आठ लाख जप एवं हवन करना चाहिये; क्योंकि उसमें जप की अधिकता रहती है। वैशम्पायन संहिता में कहा गया है कि जितना जप करे उसका चतुर्थांश हवन करे। शारदातिलक के अनुसार वर्णलक्ष जप करे, उतने ही हजार हवन घृतप्लुत पायसान्न से करे। दक्षिणामूर्ति

कल्प के अनुसार क्षेत्रान्तर में जप के अष्टमांश हवन से मन्त्र सिद्ध होते हैं। सारसंग्रह के अनुसार जप का दशांश तिल-तण्डुल से हवन करे। के अनुसार सनत्कुमार दशांश घी और दूध से तर्पण करे। साथ ही दशांश हवन करने से मन्त्र सिद्ध होते हैं। शैवागम के अनुसार मन्त्र हवनसंख्या के बराबर नित्य तर्पण करे। इस प्रकार तत्तत् शास्त्रों के अनुसार ही पुरश्चरण करना युक्तियुक्त होता है।

पुरश्चरणे श्रीविद्याजपसंख्या

प्रकृते श्रीविद्याजपसंख्या च दक्षिणामूर्तिसंहितायाम्—

जप्ते लक्षैकमात्रे तु देव्यौ तौ (योषितो)विघ्नकारिकाः। तासामपि यदा नासौ क्षोभं याति मनागपि ॥१॥
तदा लक्षत्रयं जप्यान्नियमेन शुचिर्बुधः । इति।

वामकेश्वरे—

जप्ते लक्षैकमात्रे तु क्षुभ्यन्ते भूतलेऽङ्गनाः । यदि न क्षुभ्यतीत्थं हि साधकस्य मनो मनाक् ॥१॥
संक्षुभ्यन्ते ततः सर्वाः पाताले नागकन्यकाः । तासामपि यदा नासौ क्षोभं याति मनागपि ॥२॥
ततः स्वर्गनिवासिन्यो विद्रवन्ति सुराङ्गनाः । एवं लक्षत्रयं जप्त्वा व्रतस्थः साधकोत्तमः ॥३॥
संक्षोभयति देवेशि त्रैलोक्यं सचराचरम् । इति।

जगत्क्षोभकृतफलस्यान्तरायरूपत्वात्। ज्ञानार्णवे श्रीविद्यायाः पुरश्चरणमुक्तम् (प० १७)—

यत्र वा कुत्रचिद्धागे लिङ्गं स्यात्पश्चिमामुखम् । स्वयम्भूर्बाणलिङ्गं वा वृषशून्यं जलस्थितम् ॥१॥
पश्चिमायतनं वापि इतरं चापि सुव्रते । शक्तिक्षेत्रेषु गङ्गायां नद्यां पर्वतमस्तके ॥२॥
पवित्रे सुस्थले देवी जपेद्विद्यां प्रसन्नधीः । तत्र स्थित्वा जपेल्लक्षं साक्षाद्देवीस्वरूपवान् ॥३॥
ततो भवति विद्येयं त्रैलोक्यवशकारिणी । एवं जपं यथाशक्ति कृत्वादौ साधकोत्तमः ॥४॥
किंशुकैर्हवनं कुर्याद् दशांशेन वरानने । कुसुम्भकुसुमैर्वापि मधुरत्रयमिश्रितैः ॥५॥
विधिनोक्तप्रकारेण विघ्नौघं नाशयेत्क्षणात् । सर्वकामप्रदं राज्यभुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥६॥ इति।

इतरं पर्वतलिङ्गम्। एवं लक्षजपः श्रीविद्यायाः पुरश्चरणम्। दशांशहोमस्य तद्धर्मस्य कामप्रदत्वादिति फलस्य चाप्यभिधानात्, अन्तस्तद् धर्मोपदेशादिति न्यायात् तत्त्वनिर्णयात्, प्रयोगादौ विधानानुक्तानां प्रयोगानां कथं सिद्धिरित्याकांक्षायां 'पुरश्चरणपूर्वोऽसौ विनियोगो विनिर्मितः' इति वचनात् तदभिधानस्यैव योग्यत्वाच्च। तथा श्रीक्रमसंहितायामपि लोपामुद्राविद्यामुद्धृत्योक्तं 'लक्षमेवंविधं जप्त्वा सर्वपापहरो भवेत्' इति लक्षजपमात्रमेवोक्तमिति। वामकेश्वरतन्त्रेऽप्येवमेवोक्तमिति वदन्ति। वस्तुतस्तु विचार्यमाणदक्षिणामूर्तिसंहितैकवाक्यतया ज्ञानार्णवे श्रीचक्रसाधन-प्रकरणोक्तत्रिलक्षजप एव पुरश्चरणमिति भाति।

पुरश्चरण में श्रीविद्या की जपसंख्या—दक्षिणामूर्ति संहिता में कहा गया है कि एक लाख मात्र जप करने से देवियाँ विघ्न उत्पन्न करने वाली होती हैं। उससे भी साधक के मन में क्षोभ उत्पन्न न हो, इसके लिये तीन लाख जप पवित्र बुद्धिमान साधक को करना चाहिये। वामकेश्वर तन्त्र में कहा गया है कि एक लाख जप करने पर भूतल में अङ्गनाएँ क्षुब्ध होती हैं। इस पर भी यदि साधक का मन तनिक भी क्षुब्ध नहीं हो तो पाताल की सभी नागकन्याएँ क्षुब्ध होती हैं। फिर भी यदि साधक में कुछ क्षोभ नहीं होता तब स्वर्गवासिनी सुराङ्गनाएँ क्षुब्ध होती हैं। इस प्रकार व्रतस्थ साधक तीन लाख जप करके चराचर-सहित तीनों लोकों को क्षुब्ध करता है।

ज्ञानार्णव में श्रीविद्या का पुरश्चरण इस प्रकार कहा गया है—जहाँ कहीं पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थापित हो, स्वयम्भू या बाणलिङ्ग हो या वृषरहित हो या जल में स्थित हो, पश्चिमायतन हो, शक्तिक्षेत्रों में, गङ्गा में, नदियों में, पर्वत पर या पवित्र स्थल में लिङ्ग स्थित हो तो वहाँ पर प्रसन्न मन से स्थित होकर श्रीविद्या का एक लाख जप करने से साधक साक्षात् देवीस्वरूप

हो जाता है। तदनन्तर यह विद्या तीनों लोकों को वश में करने वाली हो जाती है। इस प्रकार साधक यथाशक्ति पहले जप करे। तदनन्तर जप के दशांश हवन पलास के फूलों से अथवा मधुरत्रय-मिश्रित कुसुम्भ के फूलों से करे। इस प्रकार सनिधि हवन करने पर वह समस्त विघ्नों तत्क्षण ही विनाश कर देता है। यह हवन सर्वकामप्रद, राज्यप्रद एवं भोग-मोक्ष फलप्रद होता है।

इस प्रकार श्रीविद्या के पुरश्चरण का कर्तव्य बताया गया है। लोपामुद्रा विद्या को उद्धृत करते हुये श्रीक्रमसंहिता में भी कहा गया है कि एक लाख जप करने पर यह विद्या समस्त पापों का हरण करने वाली होती है। वामकेश्वर तन्त्र में भी इसी की पुष्टि की गई है। दक्षिणामूर्ति संहिता के कथन को प्रमाण मानते हुये ज्ञानार्णव में श्रीचक्रसाधन प्रकरण में श्रीविद्या के पुरश्चरण हेतु तीन लाख जप का विधान किया गया है।

त्रिलक्षजपपूर्वं श्रीचक्रसाधनम्

यथा ज्ञानार्णवे (प० १४)—

शृणु सर्वाङ्गिसुभगे श्रीचक्रविधिमुत्तमम्। यस्य विज्ञानमात्रेण कर्ता हर्ता सदा शिवः ॥१॥
अनेन विधिना यत्र श्रीचक्रं क्रमसंयुतम्। पूज्यते तत्र सकलं वशीकुर्यान्न संशयः ॥२॥
नगरं वशमायाति देशं मण्डलमद्रिजे। योषितः सकला वश्या ज्वलत्कामाग्निपीडिताः ॥३॥
विद्याविमूढहृदयाः साधके न्यस्तमानसाः। तद्दर्शनेन देवेशि जायन्ते सर्वयोषितः ॥४॥
अक्षमालां समाश्रित्य मातृकावर्णरूपिणीम्। अथ मुक्ताफलमयीं वाङ्मोक्षफलदायिनीम् ॥५॥
सर्वसिद्धिप्रदां नित्यं सर्वराजवशङ्करीम्। यथा मुक्ताफलमयीं तथा स्फटिकनिर्मिताम् ॥६॥
रुद्राक्षमालिका मोक्षे भवेत्सर्वसमृद्धिदा। प्रवालमाला वश्ये तु सर्वकार्यार्थसाधिका ॥७॥
माणिक्यमाला फलदा साम्राज्यफलदायिनी। पुत्रजीवकमाला तु वश्यदा भोगदा भवेत् ॥८॥
अक्षमालां प्रपूज्याथ चन्दनेन प्रपूजिताम्। समाश्रित्य जपेद्विद्यां लक्षमात्रं यदा शुचिः ॥९॥
योषितो भ्रामयन्त्येनं मनस्तस्य सुनिश्चलम्। तदा द्वितीयलक्षं तु प्रजपेत् साधकोत्तमः ॥१०॥
पातालतलनागेन्द्रकन्यकाः क्षोभयन्ति तम्। तासां कटाक्षजालैस्तु न मोहं याति साधकः ॥११॥
तदा लक्षत्रयं कुर्यात्साधकः स्थिरमानसः। तृतीयलक्षे सम्प्राप्ते द्रावयन्ति सुराङ्गनाः ॥१२॥
अभिमानेन सौन्दर्यसौभाग्यमदकारिणः। साधकं द्रावयन्त्येव ततश्चासौ मनः स्थिरः ॥१३॥
तदा लक्षत्रयं साधुः सर्वपापनिकृन्तनम्। एवं लक्षत्रयं जप्त्वा व्रतस्थः स्वस्थमानसः ॥१४॥
संक्षोभयति भूर्लोकस्वर्लोकतलवासिनः। पुरुषा योषितो वश्याश्चराचरमपि प्रिये ॥१५॥

इति त्रिलक्षजपमुक्त्वा श्रीचक्रसाधनस्योक्तत्वात्, श्रीचक्रसाधनस्य काम्यप्रयोगत्वात्, काम्यप्रयोगस्य विद्यासिद्धेरपेक्षितत्वाद्विद्यासिद्धेः पुरश्चरणमूलकत्वात्, पुरश्चरणमनुक्त्वा काम्यप्रयोगकथनानौचित्यादक्षमाला-भेदनिरूपणादक्षमालायाः पुरश्चरणप्रकरण एव वक्तव्यत्वाद्विघ्नबाहुल्यकथनादेवंविधानां विघ्नानां सिद्धिप्रतिबन्धकतया पुरश्चरणकाल एव निषिद्धत्वात्, काम्यजपेषु तूक्तविघ्नानामेव फलत्वेनाभिधानात् 'व्रतस्थः स्थिरमानसः' इति नियममनःस्थैर्ययोः पुरश्चरणकाल एवात्यन्तमावश्यकत्वेन तत्कथनस्यौचित्यात्। दक्षिणामूर्तिसंहितायामपि—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि श्रीविद्यामन्त्रसाधनम्। शमीदूर्वाङ्कुराश्वत्थपल्लवैरर्कसम्भवैः ॥१॥
श्रीचक्रं पूजयेद् देवि मासमात्रं समाहितः। सहस्रजन्मजं पापं हन्ति मासेन देशिकः ॥२॥

इत्यारभ्य प्रायश्चित्तपूर्वकं ज्ञानार्णवोक्तप्रकारेणैव स्थानाक्षमालोपांश्वादिजपलक्षणं प्रागुक्तप्रकारेण विघ्न-त्रयकथनपूर्वकं च लक्षत्रयजपमुक्त्वा 'तद्दशांशेन होमः स्यात् कुसुमैर्ब्रह्मवृक्षजैः। कुसुम्भपुष्पैर्जुहुयान्मधुरत्रयलोलितैः' इति तद् दशांशहोमकथनादेव लक्षत्रयजप एष पुरश्चरणमिति तत्त्वम्। यत्तु ज्ञानार्णवे—'यत्र वा कुत्रचिद्भागे लिङ्गं

सत्पश्चिमामुखम्' इत्यारभ्य जपस्थानपूर्वकं 'तत्र स्थित्वा जपेल्लक्षं साक्षाद्देवीस्वरूपवान्' इत्युक्तं, स तु लक्षशब्दः पूर्वोक्तलक्षत्रयस्मारको दक्षिणामूर्तिसंहितैकवाक्यत्वात्। अत एव श्रीचक्रसाधनप्रकरणात्, तत्रानुक्तस्थानहोमावेवात्रोक्तौ, अन्यथा त्वक्षमालादीनामप्यत्रैव वक्तुमुचितत्वात्। नवलक्षजपस्यापि पुरश्चरणं केचिद्वदन्ति। 'मार्गेऽस्मिन्नवलक्षम-क्षयफलाप्राप्त्यै ततो लक्षयेत्' इति क्वचित्फलाधिक्यार्थम्।

ज्ञानार्णव में कहा गया है कि हे सर्वाङ्गसुभगे! उत्तम श्रीचक्र की विधि सुनो, जिसके जानने मात्र से ही सदाशिव कर्ता, हर्ता हो जाते हैं। इन विधान से जहाँ पर क्रमसंयुत श्रीचक्र की पूजा होती है, वहाँ पर सभी पूजक के वश में हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं है। हे पार्वति! नगर, देश, मण्डल उसके वश में आ जाते हैं। सभी स्त्रियाँ कामाग्नि से पीडित होकर उसके वश में हो जाती हैं। उसको देखते ही समस्त स्त्रियाँ विद्या विमूढ़ हृदय होकर साधक के वशीभूत हो जाती हैं। अक्षमाला का आश्रयण कर मातृका वर्णरूपिणी अथवा मुक्ताफलमयी माला वाक् एवं मोक्ष फलदायिनी होती है। इसका नित्य जप सर्वसिद्धिप्रदा एवं सर्वराजवशंकरी होती है। मुक्ताफलमयी माला के समान ही स्फटिकनिर्मित माला भी होती है। रुद्राक्ष की माला सर्वसमृद्धिप्रदा एवं मोक्षदायिनी होती है। वशीकरण एवं समस्त कार्यों के साधन में मूँगे की माला श्रेष्ठ होती है। माणिक्य की माला समस्त फल देने वाली एवं साम्राज्यदायिनी होती है। पुत्रजीवक की माला वश्यदा और भोगदा होती है। अक्षमाला की चन्दन से पूजा करके उससे पवित्र होकर विद्या का एक लाख जप यदि साधक जप करता है तो उसके इर्द-गिर्द स्त्रियाँ मँडराने लगती हैं। तब भी यदि उसका मन निश्चल रहता है तो दो लाख जप करे। तब पातालतल की नागेन्द्र कन्याएँ क्षुब्ध होती हैं और उनके कटाक्षजाल से भी साधक मोहित नहीं होता तब तीन लाख का जप स्थिर मन से साधक करे। तीन लाख जप पूरा होने पर सुराङ्गनाएँ स्खलित होती हैं। वे अपने सौभाग्य सौन्दर्य एवं मदकारी अभिमान से साधक का मन द्रवित करती हैं। साधक को तब भी अपना मन स्थिर रखना चाहिये। तब तीन लाख जप पूरा होने पर साधक के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार तीन लाख जप के बाद व्रती साधक स्वस्थ मानस होकर भूर्लोक स्वलोक के वासियों को संक्षोभित करता है। इससे समस्त पुरुष एवं नारी तथा चराचर भी साधक के वश में हो जाते हैं।

इस प्रकार श्रीचक्र-साधन में तीन लाख जप का विधान किया गया है; यतः श्रीचक्र-साधक काम्य प्रयोग होता है और काम्य प्रयोग में विद्या की सिद्धि अपेक्षित होने के कारण पुरश्चरण आवश्यक होता है। पुरश्चरण से ही सिद्धि में प्रतिबन्धक विघ्नों का नाश होता है। काम्य जपों में विघ्नों का बाहुल्य होने के कारण ही पुरश्चरण के समय साधक को नियमपूर्वक रहना एवं मन को स्थिर रखना बताया गया है। हे देवि! श्रीविद्या मन्त्र की साधना में श्रीचक्र का पूजन शमी, दूर्वांकुर पीपलपल्लव और अकवन के फूल से करना चाहिये। श्रीचक्र का पूजन समाहित चित्त होकर एक मास तक करने से साधक के हजार जन्मों के पापों का नाश महीना भर में ही हो जाता है।

इससे लेकर प्रायश्चित्तपूर्वक ज्ञानार्णवोक्त प्रकार से ही स्थान, अक्षमाला, उपांशु आदि जपलक्षण और पूर्वोक्त प्रकार से विघ्नत्रयकथनपूर्वक तीन लाख जप का विधान करते हुये उसका दशांश हवन ब्रह्मवृक्ष (पलाश) के फूल से या कुसुम्भफूल से मधुरत्रय के साथ करने से तीन लाख जप से ही पुरश्चरण पूर्ण होता है, यह स्पष्ट किया गया कुछ लोग श्रीविद्या के पुरश्चरण के लिये नव लाख जप करने के लिये भी कहते हैं।

नवलक्षावधि सफलं पुरश्चरणप्रकारः

तथा च वामकेश्वरे प्रत्येकलक्षफलस्मरणम्, तथा (प०५)—

लक्षमेकं जपेद् देवि महापापैः प्रमुच्यते। लक्षद्वयेन पापानि सप्तजन्मकृतानि च ॥१॥
नाशयेत् त्रिपुरा देवी साधकस्य न संशयः। जप्त्वा विद्यां चतुर्लक्षं यन्त्रितो मन्त्रविग्रहः ॥२॥
पातकं नाशयेदाशु यदि जन्मसहस्रकम्। जप्त्वा विद्यां चतुर्लक्षं महावागीश्वरो भवेत् ॥३॥
पञ्चलक्षाद् दरिद्रोऽपि साक्षाद्वैश्रवणो भवेत्। जप्त्वा षड्लक्षमेतस्या महाविद्याधरेश्वरः ॥४॥
जप्त्वैवं सप्त लक्षाणि खेचरीमेलनं भवेत्। अष्टलक्षप्रमाणं च जप्त्वा विद्यां महेश्वरि ॥५॥

अणिमाद्यष्टसिद्धीशो जायते देवपूजितः। नवलक्षप्रमाणं च जप्त्वा त्रिपुरसुन्दरीम् ॥६॥
विधिवत् जायते मन्त्री हरमूर्तिरिवापरः। कर्ता हर्ता स्वयं गौरि लोके चाप्रहतः प्रभुः ॥७॥
प्रसन्नो मुदितो धीरः स्वच्छन्दगतिरीश्वरः। इति।

अन्यत्रापि—'अथवा नवलक्षं तु जपेद् विद्यामनन्यधीः' इति। 'जपेल्लक्षं मन्त्रं' इत्यपि कुत्रचित्। तदसामर्थ्यपरं, पक्षत्रयमध्ये गुरुसंप्रदायः। दक्षिणामूर्तिसंहितायामपि—

अथवा नवलक्षं तु जपेद्विद्यां समाहितः। तद् दशांशेन होमं तु पूर्वोक्तविधिनाचरेत् ॥१॥
साधयेत् स्वर्गभूलोकपातालतलवासिनः। इति।

ज्ञानार्णवे तु नवलक्षजपो नोक्तः किंत्वेकलक्षमारभ्यैकलक्षस्येदं फलमित्यादि नवलक्षपर्यन्तस्य पृथक् पृथक्फलमुक्तं, न तु द्वितीयलक्षस्य तृतीयलक्षस्येति। तस्मात्तत्र संभूय पञ्चचत्वारिंशल्लक्षजपो जायते, तेन तत्र पुरश्चरणत्वशङ्कापि नास्ति, स तु काम्यजप एवेति निश्चितम्। अन्यच्च—'सिद्धमन्त्रतया नात्र युगसंख्यापरिश्रमः' इति।

तन्त्र वामकेश्वर जप में प्रत्येक लक्ष के फलों का कथन करते हुये कहा गया है कि एक लाख जप से साधक महापापों से छूट जाता है। दो लाख जप से साधक के सात जन्मों के पापों का नाश त्रिपुरा देवी करती है, इसमें कोई संशय नहीं है। तीन लाख जप से साधक यन्त्रस्वरूप मन्त्रविग्रह हो जाता है और इससे उसके हजार जन्मों के पापों का भी नाश हो जाता है। चार लाख विद्या जप से जापक महावागीश्वर होता है। पाँच लाख जप से दरिद्र भी साक्षात् कुबेर हो जाता है। छः लाख जप से साधक महाविद्याधरेश्वर हो जाता है। सात लाख जप से उसका खेचरीमेलन होता है। आठ लाख विद्या साधक को जप से अणिमादि आठों सिद्धियाँ मिलती हैं और देवपूजित हो जाता है। नव लाख त्रिपुर सुन्दरी का जप करने से साधक दूसरे शिवमूर्ति-सदृश हो जाता है। वह स्वयं कर्ता-हर्ता होकर लोक में अप्रतिहत गति वाला होता है। साथ ही वह साधक प्रसन्न, मुदित, धीर एवं स्वछन्द गतियुक्त होकर ईश्वर हो जाता है।

अन्यत्र भी—अथवा अनन्य बुद्धि से नव लाख जप करे—ऐसा कहा गया है। इस प्रकार तीनों पक्ष ही गुरु-सम्प्रदाय के अनुसार मान्य हैं। दक्षिणामूर्ति संहिता में भी कहा गया है कि अथवा समाहित चित्त होकर विद्या का नव लाख जप करे। उसका दशांश हवन पूर्वोक्त विधि से करे। इससे साधक स्वर्गलोक, भूलोक एवं पाताल लोक के वासियों को अपने वश में कर लेता है।

ज्ञानार्णव में यद्यपि नव लाख जप कथित नहीं है; फिर भी एक लाख से आरम्भ करे नव लाख तक के जप का फल पृथक्-पृथक् बताया गया है। द्वितीय-तृतीय लाख के फलों का कथन नहीं किया गया है। इससे वहाँ पैंतालीस लाख जप करना स्पष्ट होता है, उससे वहाँ पुरश्चरणत्व की शंका भी नहीं है। वह तो काम्य जप में ही किया जाता है।

जपसंख्यानिर्णय

अथ जपनिर्णयः—

यस्मिंश्च निगदेनैव मन्त्रसंख्या विधीयते। तत्र तु सर्वमन्त्राणां संख्यावृत्तिर्युगक्रमात् ॥१॥
कल्पोक्तैव कृते संख्या त्रेतायां द्विगुणा भवेत्। द्वापरे त्रिगुणा प्रोक्ता कलौ संख्या चतुर्गुणा ॥२॥ इति।

रुद्रयामले—'प्रजपेदुक्तसंख्यायाश्चतुर्गुणजपं कलौ' इति। अत्र केचित् प्रपञ्चयागशारदातिलकाद्युक्तजपस्यापि चतुर्गुणादिना कलौ पुरश्चरणमिति वदन्ति, तत्र नारदपञ्चरात्रादिदर्शनात् प्रपञ्चसाराद्युक्तजपश्चतुर्गुण एव। तथा नारद-पञ्चरात्रे—

मार्गशीर्षस्य मासस्य त्रीण्यहान्येकमेव वा। उपोष्य शुक्लद्वादश्यामारभ्याष्टाक्षरं जपेत् ॥१॥
अष्टलक्षमविच्छिन्नं पुरश्चरणकृद् द्विजः। शुक्लाचारः शुचिः स्नातो वाग्यतो विजितेन्द्रियः ॥२॥
मन्त्रसिद्धिरदृष्टार्था लक्षद्वयजपाद्भवेत्। ततो हि द्विगुणाभ्यासादैहिक्यामुष्मिकी च सा ॥३॥

एवमेषात्मशुद्धिः स्यादेतावान् प्रथमे युगे। त्रेतायां द्विगुणः प्रोक्तो द्वापरे त्रिगुणस्तथा ॥४॥
कलौ चतुर्गुणः प्रोक्तो द्वात्रिंशल्लक्षलक्षणा। इति।

अदृष्टार्था मन्त्रसायुज्यकरी। ऐहिकी इहलोकसुखदा। आमुष्मिकी स्वर्गादिलोकदा। आत्मशुद्धिस्तत्त्वज्ञान-साधनभूतशुद्धिरिति। एवं द्वात्रिंशल्लक्षजपमत एव 'द्वात्रिंशल्लक्षमानेन स तु मन्त्रं जपेत्पुनः' इत्याचार्यचरणैरप्युक्तम्। ज्ञानार्णवे बालाप्रकरणे 'वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं हुनेत्प्रिये' इति बालायामभिधाय 'न्यासपूजादिकं सर्वमस्याः पूर्ववदाचरेत्' इति भैरव्या मन्त्रे प्रदिष्टम्, लक्षत्रयजपं चतुर्गुणीकृत्य 'दीक्षां प्राप्य जपेन्मन्त्रं तत्त्वलक्षं जितेन्द्रियः' इति भैरव्यामभिधाय, बालायां तावद् 'एषा बालेति विख्याता त्रैलोक्यवशकारिणी। जपपूजादिकं सर्वमस्याः पूर्ववदाचरेत्'। इति शारदातिलककृतापि प्रदिष्टम्। तत्त्वार्धलक्षं द्वादशलक्षं 'अतो द्वादशमन्त्राणि वदन्त्येके विपश्चितः' इति प्रयोगसारवचनादिति। प्रपञ्चसारे भैरवीप्रकरणे तु (९.९)—'दीक्षां प्राप्य विशिष्टलक्षणयुजः सत्संप्रदायाद् गुरोर्लब्ध्वा मन्त्रममुं जपेत् सुनियतं तत्त्वार्धलक्षं वशी' इति द्वादशलक्षमुक्तम्। तथा—'लक्षत्रयं जपेन्मन्त्रम्' इति दक्षिणामूर्तिसंहितायामुक्तस्य त्रिपुटामन्त्रस्य 'जपेच्च मन्त्रमादित्यलक्षम्' इति 'भानुलक्षं जपेदेनम्' इति प्रपञ्च-सारशारदातिलकयोश्चतुर्गुणजप एवाभिहितः। तेन 'एकत्र निर्णीतः' इति न्यायेन सर्वत्र चतुर्गुण एवाभिहित इति निर्णीतम्। न च तदर्द्धसंख्यकं वापि विरोधाभावादिति प्रपञ्चसारे अर्धजपाभिधानविरोध इति वाच्यम्। उक्तनारदवचनेनैव ह्यैहिकसिद्धिपरत्वादामुष्मिकपरत्वाद्वापि विरोधाभावात् इति।

जपनिर्णय—जिसमें सामान्यतया कथनमात्र से ही मन्त्रसंख्या निश्चित है, वैसे सभी मन्त्रों में वर्णसंख्या की आवृत्ति युगक्रम से होती है। कृतयुग की संख्या से दुगुना जप त्रेता में होता है। इस प्रकार द्वापर में तीन गुना और कलियुग में चार गुणा जपसंख्या निश्चित की गई है।

रुद्रयामल में कहा गया है कि कलियुग में सतयुग का चौगुना जप करना चाहिये। नारद पञ्चरात्र में भी कहा गया है कि अगहन के महीने में तीन दिनों में से एक में उपवास करे। शुक्ल पक्ष की द्वादशी से प्रारम्भ करके अष्टाक्षर मन्त्र का जप करे। अविच्छिन्न रूप में आठ लाख जप से पुरश्चरण करने वाला ब्राह्मण पवित्र आचरण वाला, स्नान किया हुआ, वाक्संयमी एवं जितेन्द्रिय होकर वास करे। दो लाख जप करने से मन्त्रसिद्धि होकर अदृष्ट अर्थ को देने वाले होते हैं। उसके दुगुना जप से ऐहिक एवं आमुष्मिक फल प्राप्त होते हैं। ऐसा करने से कृतयुग में आत्मशुद्धि होती है। त्रेता में दुगुना जप कहा गया है एवं द्वापर में तिगुना और कलियुग में चौगुना जप कहा गया है, इस प्रकार कुल बत्तीस लाख जप होता है।

जपस्थानवचनम्

'समुद्रगानां सरितां च तीरे जपेद्विविक्ते निज एव गेहे। विष्णोर्गृहे वा पुरुषो मनस्वी' समुद्रगा साक्षादेव, अन्यथा सर्वासामपि परम्परया तथात्वाद् विशेषणवैयर्थ्यादिति। मनस्वी श्रद्धावान्। सनत्कुमारः—

नद्यां समुद्रगामिन्यां तीरे गोष्ठेऽथवा मुने। अश्वत्थबिल्वमूले वा सिन्धुतीरे जलाशये ॥१॥
पश्चिमाभिमुखे देवगृहे वा शैलमस्तके। इति।

देवः शिवः। 'प्रत्यङ्मुखे शिवस्थाने वृषभेण विवर्जिते' इति कुम्भसम्भववचनाच्च। नारदपञ्चरात्रे—

गिरिगोष्ठप्रविष्यन्दनद्यरण्याश्रमह्रदाः। देशाः पुण्या जपस्यैते यत्र वा जायते रुचिः ॥१॥ इति।

प्रविष्यन्दः प्रस्रवणम्। नदी पुण्यनदीतीरम्। अरण्यं पुण्यारण्यं पुष्करार्बुदादि। 'पावनं वनम्' इति शारदातिलके। त्रैलोक्यसंमोहनतन्त्रे—

बिल्वच्छायां समाश्रित्य मूलेऽश्वत्थस्य वा प्रिये। गुरोर्वा सन्निधौ गोष्ठे वृषशून्ये शिवालये ॥१॥
नदीतीरेऽद्रिशृङ्गे वा तुलसीकाननेऽपि वा। अभीष्टदेवसांनिध्ये जपेन्मन्त्रं समाहितः ॥२॥ इति।

नदीतीरे पुण्यनदीतीरे, अन्यनदीतीरस्य निषिद्धत्वात्। कपिलपञ्चरात्रे—

तीर्थक्षेत्रवनारामदेवालयनदीह्रदाः । हरेर्विविक्त इत्येते देशाः स्मुर्मन्त्रसिद्धिदाः ॥१॥ इति।

वायवीसंहितायाम्—

सूर्यस्याग्नेर्गुरोरिन्दोर्दीपस्य ज्वलितस्य वा । विप्राणां च गवां चैव संनिधौ शस्यते जपः ॥१॥
अथवा निवसेत्तत्र यत्र चित्तं प्रसीदति । गृहे जपः समः प्रोक्तो गोष्ठे दशगुणस्तु सः ॥२॥
आरामे च तथारण्ये सहस्रगुण उच्यते । अयुतं पर्वते पुण्ये नद्यां लक्षगुणस्तु सः ॥३॥
कोटिर्देवालये प्राहुरनन्तं मम संनिधौ । इति।

मम शिवस्य। तथा शङ्खः—'अनन्तं विष्णुसंनिधौ' इति। यामले—

म्लेच्छदुष्टमृगव्याधशङ्कातङ्कविवर्जिते । एकान्ते पावने निन्दारहिते भक्तिसंयुक्ते ॥१॥
सुदेशे धार्मिके राष्ट्रे सुभिक्षे निरुपद्रवे । रम्ये भक्तजनस्थाने निवसेन्न पराश्रये ॥२॥
राजानः सचिवा राजपुरुषाः प्रभवो जनाः । चरन्ति येन मार्गेण न वसेत्तत्र तत्त्ववित् ॥३॥
जीर्णदेवालयोद्यानगृहवृक्षतलेषु च । नदीकूलाद्रिकूलेषु भूछिद्रादिषु नो वसेत् ॥४॥
पुण्यक्षेत्रादिकं गत्वा कुर्याद्भूमिपरिग्रहम् । ब्रूयादमुकमन्त्रस्य पुरश्चरणसिद्धये ॥५॥
मयेयं गृह्यते भूमिर्मन्त्रो मे सिद्ध्यतामिति । भूमेः परिग्रहं कृत्वा परिमाणं च सर्वतः ॥६॥
नदीपर्वततीर्थादौ परिमाणेन खण्डितम् । ग्रामे क्रोशमितं स्थानं नगरे तद्द्वयं स्मृतम् ॥७॥
क्षीरवृक्षमयान् कीलान् अस्त्रमन्त्राभिमन्त्रितान् । निखनेद् दशदिग्भागे तेष्वस्त्रं च प्रपूजयेत् ॥८॥
क्षेत्रेशकीलितो मन्त्रो न विघ्नैः परिभूयते । क्षेत्रपालादिकांस्तत्र पूजयेद्विधिवित्तमः ॥९॥
दिक्पतिभ्यो बलिं दत्त्वा ततः क्षेत्रं समाश्रयेत् । कर्मचक्रमविज्ञाय यः कुर्याज्जपयज्ञकम् ॥१०॥
तज्जपस्य फलं नास्ति सर्वानर्थाय कल्पते । इति ।

मनस्वी पुरुष समुद्रगामिनी नदी के तट पर जप करे या अपने ही घर में एकान्त में जप करे अथवा विष्णु के मन्दिर में जप करे। सनत्कुमार भी कहते हैं कि समुद्रगामिनी नदी के तट पर, गोशाला में या अश्वत्थ या बिल्व के जड़ के पास या सागरतट पर या जलाशय के तट पर पश्चिम तरफ के मुख वाले शिवमन्दिर में या पर्वतशिखर पर जप करना चाहिये। अगस्त्य ने भी कहा है कि पश्चिमाभिमुख शिवमन्दिर जो नन्दी से रहित हो, उसमें जप करना चाहिये।

नारदपञ्चरात्र में भी कहा गया है कि पर्वत पर, गोशाला में, प्रवहमान नदी में, जंगल में या सरोवर के किनारे पुण्यप्रद स्थान में जहाँ अच्छा लगे, वहाँ जप करना चाहिये। त्रैलोक्यमोहन तन्त्र में कहा गया है कि बिल्व की छाया में या पीपल वृक्ष की जड़ के निकट या गुरु के समीप या गोशाला में या नन्दी-रहित शिवाला में, नदी-तट पर या पर्वतशिखर पर या तुलसीवन में या अभीष्ट देवता के सान्निध्य में समाहित चित्त होकर मन्त्रजप करना चाहिये। कपिलपञ्चराज में भी कहा गया है कि तीर्थक्षेत्र, वन, बगीचा, देवालय, नदी, सरोवर, भगवान् का स्थान या निर्जन प्रदेश में जप करने से मन्त्र सिद्धिप्रद होते हैं।

वायवीय संहिता में भी कहा गया है कि सूर्य, अग्नि, गुरु, चन्द्र या ज्वलित दीपक या विप्र या गाय के निकट जप करना उत्तम होता है अथवा वहाँ जप करना चाहिये जहाँ चित्त प्रसन्न हो। घर में जप सामान्य फल वाला होता है। गोशाला में जप का फल दशगुना होता है। बाग और जङ्गल में दस हजार गुना, दश हजार गुना फल पर्वत पर एवं नदीतट पर लाख गुना अधिक फल होता है। देवालय में जप करने से करोड़ गुना फल होता है और शिव के समीप जप करने का फल अनन्त होता है। शङ्ख के अनुसार विष्णु की सन्निधि में जप करने से अनन्त फल प्राप्त होता है।

रुद्रयामल में कहा गया है कि म्लेच्छ-दुष्ट-मृग-व्याध की शङ्का एवं आतंक से रहित, एकान्त, पावन, निन्दा-रहित, भक्तिसंयुत, धार्मिक सुन्दर राष्ट्र, सुभिक्ष, निरुपद्रव, रम्य, भक्तजन स्थान में निवास करे। दूसरे के आश्रय में न रहे। राजा, सचिव, राजपुरुष एवं सम्पन्न लोग जिस मार्ग से जाते हों, वहाँ पर शास्त्रज्ञ व्यक्ति निवास न करे। जीर्ण देवालय, उद्यान, गृह,

वृक्ष के नीचे; नदी के किनारे, पहाड़ की तलहटी और जहाँ भूमि में छिद्र हो वहाँ भी वास न करे। पुण्यक्षेत्रादि में जाकर भूमि का चयन करके कहे कि अमुक मन्त्र के पुरश्चरण-सिद्धि के लिये मैं इसे ग्रहण करता हूँ। भूमि मेरे मन्त्र को सिद्ध करे। भूमि ग्रहण करके दिग्बन्धन करे। नदी, पर्वत, तीर्थादि में परिमाण से खण्डित, ग्राम से कोश भर दूर एवं नगर में दो कोश दूर स्थान बनाये। दुधैले वृक्ष के कीलों को अस्त्र मन्त्र से अभिमन्त्रित करके दिशाओं में गाड़ दे और उनका पूजन अस्त्र मन्त्र से करे। क्षेत्रेश कीलित मन्त्रों में विघ्न नहीं होते। वहाँ पर क्षेत्रपालादि का विधिवत् पूजन करे। दिक्पालों को बलि प्रदान करे। तब उस क्षेत्र में वास करे। कूर्मचक्र को न जानकर जो जप या यज्ञ करता है उसे उसका फल नहीं मिलता और वह जप या यज्ञ समस्त अनर्थों को निमन्त्रित करने वाला होता है।

कूर्मचक्ररचनापरिज्ञानम्

तन्त्रान्तरे—

कूर्मचक्रं परिज्ञाय यो जपादिविधौ स्थितः। प्राप्नोति सकलान्युक्तान्यन्यथा नाशमेति च ॥१॥
तस्मात्कूर्मविभागं तु विज्ञायाखिलमाचरेत्। स चतुर्धा स्थितो लोके तत्प्रकारस्तथोच्यते ॥२॥
प्रथमस्तु परः कूर्मस्ततो देशगतस्तथा। ग्रामगो गृहगश्चेति चतुर्धा स व्यवस्थितः ॥३॥
देशं ग्रामं गृहं वास्तुं नवधा विभजेत्ततः। प्रागादिपश्चिमान्तं तु कादिमान्तानि विन्यसेत् ॥४॥
अक्षराण्यथ यादीनि तथाष्टौ पदयोर्लिखेत्। ईशे द्वयमथो मध्ये स्वरान् प्रागादि विन्यसेत् ॥५॥
ईशान्तांस्तु द्विशः पश्चान्नामाद्यर्णं यतो भवेत्। तन्मुखं पार्श्वयोः पाणी कुक्षिः पादौ ततस्ततः ॥६॥
पुच्छमेकमथो मध्यं पृष्ठमेकं षडङ्गवत्। मुखे सर्वार्थसिद्धिः स्यात्करयोः सर्वसिद्धयः ॥७॥
कुक्षौ तु नित्यनैष्फल्यं पादयोर्नैव सिद्धयः। पुच्छे मृत्युस्तु नियतं पृष्ठे सर्वार्थसिद्धयः ॥८॥
तस्मात्तत्साधु विज्ञाय कुर्यात्सर्वं जपादिकम्। इति।

अथ कादिमतरीत्या श्रीविद्यामधिकृत्य कुलमूलावतारे—

ब्रह्मनाडीगतानादिक्षान्तवर्णान् विभाव्य च। अर्णं बिन्दुयुतं कृत्वा स्वेष्टमन्त्रं जपेत्सुधीः ॥१॥
अकारादिषु संयोज्य तथा कादिषु च क्रमात्। क्षार्णं मेरुमथो तत्र कल्पयेज्जगदीश्वरि ॥२॥
तदा लिपिर्भवेदक्षमालार्धशतसंख्यया। अनया सर्वमन्त्राणां जपः सर्वार्थसाधकः ॥३॥
क्षकारं मेरुसंस्थाने लकारादिविलोमतः। एकैकान्तरितं मन्त्रं जपेदेवं फलप्रदम् ॥४॥ इति।

अत्राष्टोत्तरसहस्रं वाष्टोत्तरशतं वा यदा जपः कार्यः स्यात्तदा 'वर्गाष्टकविभेदेन भवेदष्टोत्तरं शतम्' इति। अत्र वर्गाष्टकजपस्तूद्दिष्टशतादिसंख्यावसान एव कर्तव्यः। एष कृतयुगजपः। कलावेतच्चतुर्गुणजपादिकं कार्यमिति।

तन्त्रान्तर में कहा गया है कि कूर्मचक्र को जानकर जो विधिवत् जप करता है, उसे पूर्वोक्त सभी फल प्राप्त होते हैं; अन्यथा उसका नाश होता है। इससे कूर्मविभाग को जानकर ही सभी आचारों को करना चाहिये। संसार में कूर्मचक्र की स्थिति के चार प्रकार हैं। पहला पर कूर्मचक्र है, दूसरा देशगत है, तीसरा ग्रामगत और चौथा गृहगत कूर्मचक्र होता है, देश ग्राम, गृह और वास्तु को नव भाग में बाँटे। उसके मध्य भाग में स्वरों को लिखे। पूर्व से उत्तर तक क से म तक के पाँच वर्ग के अक्षरों को लिखे एवं य से लेकर ह तक के आठ अक्षरों को पैरों में लिखे। नगर या ग्राम के नाम का पहला अक्षर जहाँ हो वह मुख होता है और उसके दोनों ओर के कोष्ठकों को भुजा समझे एवं उसके नीचे दोनों कोष्ठों को कुक्षि समझे। उसके निचले दोनों कोष्ठों को पैर और शेष भाग को पूँछ समझना चाहिये। मध्य में एक कोष्ठक को पीठ समझे। यह षडङ्गवत् होता है। मुख में बैठकर जप से सर्वार्थ सिद्ध होते हैं। हाथों पर बैठने से सभी सिद्धियाँ मिलती हैं। कुक्षि में बैठकर जप करना निष्फल होता है। पैरों में बैठकर जप से सिद्धि नहीं मिलती। पूँछ में बैठकर जप से मृत्यु होती है एवं पीठ पर बैठकर जप करने से सर्वार्थ सिद्ध होते हैं; इसलिये साधक को यह सब भली प्रकार जानकर ही जपादि कर्म करना चाहिये।

कुलमूलावतार के अनुसार कादिमतरीति में श्रीविद्या में अधिकार—साधक को ब्रह्मनाड़ी में स्थित अ से क्ष तक के वर्णों की भावना करके अनुस्वारयुक्त सभी वर्णों की माला से अपने इष्ट मन्त्र का जप करना चाहिये। अं से क्षं तक को पचास वर्णों में से प्रत्येक के साथ इष्ट मन्त्र जोड़कर जप करे एवं 'क्षं' को मेरु माने। इस प्रकार यह लिपिमाला पचास मनकों की होती है। इस माला से जप करने पर सभी मन्त्र सर्वार्थ-साधक होते हैं। क्षकार को मेरुस्थान में रखकर लं से अं तक विलोमक्रम से एक-एक अक्षर छोड़कर मन्त्रजप से उक्त फल प्राप्त होता है।

यहाँ एक हजार आठ या एक सौ आठ मन्त्र जप करना इष्ट हो तो वर्गाष्टकभेद से अक्षमाला में एक सौ आठ मनके हो जाते हैं। यह विधान कृतयुग के लिये है। कलियुग में इसका चौगुना जप किया जाता है।

विद्यासाधनादि

श्रीतन्त्रराजे (५ प० ६८ श्लो०)—

विद्यायाः साधनं सिद्धिं तद्व्रतं वर्ज्यमेव च। तदाभिमुख्यचिह्नानि विघ्नानि प्राक्तनाद्यतः ॥१॥
शृणु क्रमेण देवेशि सर्वदा प्रीतिकारकम्। येन मर्त्योऽपि सिद्ध्येत जीवन्मुक्तो भवन्मयः ॥२॥
स्नातः सुगन्धसलिलैः प्राक्पूजाप्रोक्तरूपवान्। गुरुं वित्तेन संतोष्य रक्तागारे क्रमं भजेत् ॥३॥
सन्ध्यात्रयेऽपि जपवान् सहस्रं मौनसंयुतः। मोचागुडसितापेतं पयः पायसमर्पयेत् ॥४॥
नीराजनं च कर्पूरैः कुर्यात्सन्ध्यासु तास्वपि। होमं दशांशतः कुर्यात्तर्पणं चेन्दुमज्जलैः ॥५॥
स्वनित्यादूर्ध्वतो जाप्यं त्रिसहस्रं दिनं प्रति। कुर्यात्तेन भवेत्पूर्णं लक्षं पूर्णान्तमीश्वरि ॥६॥
एवं लक्षत्रयं प्रोक्तं प्रथमे तु कृते युगे। त्रेतायां द्विगुणं तद्वद्द्वापरे त्रिगुणं स्मृतम् ॥७॥
कलौ चतुर्गुणं प्रोक्तमक्षराणां च संख्यया। तार्तीयसप्तसंख्या सा तेन स्यादेकविंशतिः ॥८॥ इति।

तार्तीयकूटस्य स्वरव्यञ्जनबिन्दून् पृथक्कृत्य सप्ताक्षराणि भवन्ति, तेषां सप्तानां वर्णानां प्रतिवर्णं त्रिलक्षमिति संभूयैकविंशतिलक्षजपः पुरश्चरणं कृतयुगे। कलावेतच्चतुर्गुणं जप इति पुरश्चरणमुक्तम्। पुरश्चरणं तु जपहोम-तर्पण(स्वाभिषेक)ब्राह्मणभोजनात्मकं पञ्चाङ्गरूपं भवति। अत्रैतदङ्गपञ्चकं पूर्ववत् दशांशतः कार्यमिति (तन्त्रराजे तु होमसंख्यासमसंख्यं तर्पणमिति) विशेषः। तथा तत्रैव—

तेनान्येषु युगेषु स्यात् संख्यावृद्धिरुदीरिता। वनिताक्षोभतो भोगान्न विघ्नं यदि जायते ॥९॥
तासु संख्यासु पूर्णासु संप्रार्थ्य स्वं श्रयेत्क्रमम्।

विद्या के साधन-सिद्धि-व्रत आदि—तन्त्रराज में कहा गया है कि विद्या का साधन, उसकी सिद्धि, उसके व्रत, विद्या-साधना में वर्जित, उसके अभिमुख होने के चिह्न एवं उसमें होने वाले विघ्नों को प्रारम्भ से अन्त तक का विषय साधक के लिये पूर्ण रूप से प्रीतिकारक है; इसको जानकर मनुष्य भी सिद्धि प्राप्त करके जीवन्मुक्त होकर मुझ शिव के समान हो जाता है। सुगन्धित जल से स्नान करके पूर्वोक्त पूजन को करके, गुरु को धन से सन्तुष्ट करके रक्तागार में क्रम से भजन करे। मौन रहकर तीनों सन्ध्याओं में एक-एक हजार जप करे। केला, गुड़, चीनी, दूध, पायस का अर्पण करे। सन्ध्याओं में कपूर की आरती करे। दशांश हवन करे। कर्पूरवासित जल से तर्पण करे। स्वनित्या से ऊपर तीन हजार जप प्रतिदिन करे। इस प्रकार प्रतिपदा से पूर्णिमा तक के तीस दिनों में एक लाख जप हो जाता है। इस प्रकार कृतयुग में तीन लाख जप करना निश्चित होता है। त्रेता में इसका दुगुना छः लाख, द्वापर में इसका तिगुना नव लाख और कलियुग में इसका चौगुना बारह लाख जप करना चाहिये। तृतीय कूट के स्वर, व्यञ्जन एवं बिन्दु को अलग-अलग करने से सात अक्षर होते हैं। उन सात वर्णों से प्रति वर्ण तीन लाख जप करने से इक्कीस लाख जप से कृतयुग में पुरश्चरण होता है। कलियुग में इसके चौगुना अर्थात् २१ × ४ = ८४ लाख जप से पुरश्चरण होता है। पुरश्चरण में जप, होम, तर्पण, स्वाभिषेक एवं ब्राह्मणभोजन—ये पाँच अङ्ग होते हैं। यहाँ पर अङ्गपञ्चक पूर्ववत् दशांशतः करना चाहिये। विशेष रूप से तन्त्रराज में यह कहा गया है कि हवनसंख्या के बराबर तर्पण भी

करना चाहिये। वहीं पर यह भी कहा गया है कि इससे अन्य युगों में संख्यावृद्धि का कथन किया गया है। वनिताभोग एवं क्षोभ से यदि को विघ्न नहीं होता है तब पूरी संख्या में जप की प्रार्थना करके अपने क्रम का आश्रय ग्रहण करना चाहिये।

विद्याव्रतदिनवर्ज्यानि

वर्ज्यानि शृणु देवेशि तद् दिनेषु सदैव हि ॥१०॥
नास्तिकैः सह संलापो मैथुनं परिनिन्दितम्। चिन्ताशोकौ तथालापं देशान्तरपरिभ्रमम् ॥११॥
तद्वासरेषु वर्ज्यानि प्रोक्तान्यन्यानि शाङ्करि। शृणु सर्वत्र सर्वेषां सर्वदा नाशकानि च ॥१२॥
परक्षेत्रगृहस्त्रीषु वाञ्छा तन्निन्दनानि च। स्त्रीषु रोषं प्रहारं च दुष्टास्वपि न योजयेत् ॥१३॥
सिद्धिचिह्नानि चोक्तानि वासनाकथने मया। आनुकूल्यस्य चिह्नानि शृणु साधयतस्तदा ॥१४॥

साधयतः पुरश्चरणे निविष्टस्य। तदा पुरश्चरणकाले।

विद्या-व्रत में वर्ज्य विषय—उन दिनों में पूर्ण रूप से वर्जित कर्म इस प्रकार हैं—नास्तिक के साथ बातचीत, मैथुन, परनिन्दा, चिन्ता, शोकालाप और देशान्तर परिभ्रमण। हे शांकरि! पुरश्चरण काल में वर्ज्य अन्य भी हैं, जैसे—स्त्री पर गुस्सा करना, उसे मारना-पीटना। उस समय दुष्टा भी प्रहार के योग्य नहीं होती। वासना-कथन के समय मैंने सिद्धि के चिह्नों को कहा है। अब साधना के समय होने वाले अनुकूल चिह्नों को सुनो।

विद्यासिद्धिचिह्नानि

स्वप्ने पोतेषु वनितावृन्दैः संमेलनं निशि। गजाद्रिसौधशृङ्गेषु विहारो राजदर्शनम् ॥१५॥
गजानामङ्गनानां च दर्शनं नृत्यगीतयोः। उत्सवं ससुरामांदर्शनं स्पर्शनं तथा ॥१६॥
निन्द्यानि शृणु देवेशि विघ्नानर्थकराणि च। कृष्णवर्णैर्भटैः स्वप्ने प्रहारस्तैललेपनम् ॥१७॥
मैथुनं परनारीभिरिन्द्रियच्यवनं तथा। राष्ट्रक्षोभो वह्निवायुजलभी बन्धुनाशनम् ॥१८॥
गुरावुपेक्षासंपत्तिर्वस्तूनां व्याधिबाधनम्। अन्यमन्त्रार्चने श्रद्धा विघ्नो नित्यार्चनेऽनिशम् ॥१९॥
नराणां बहुभिः पुण्यैः कृतैर्बहुषु जन्मसु। श्रद्धास्थैर्यं संप्रदायसिद्धिनित्यार्चने भवेत् ॥२०॥

विद्या-सिद्धि के चिह्न—स्वप्न में जहाज में वनितावृन्द का सम्मेलन रात में देखना, हाथी, पहाड़, चार मञ्जिला मकान, पर्वतशिखर पर विहार, राजा का दर्शन, हाथियों-सुन्दरियों का दर्शन, नृत्य-गीत-उत्सव, मदिरासहित मांसदर्शन तथा उनका स्पर्श—ये शुभ चिह्न हैं। विघ्न एवं अनर्थ के सूचक चिह्न इस प्रकार हैं—स्वप्न में काले भट का प्रहार, तैललेपन, मैथुन, परनारी से मैथुन, वीर्यपात, राष्ट्र, क्षोभ, अग्नि-वायु से बन्धु का विनाश, गुरु के द्वारा उपेक्षा, सम्पत्तिं एवं वस्तुओं में व्याधिबाधन, दूसरे मन्त्र से अर्चन में श्रद्धा—ये भी नित्यार्चन में विघ्नस्वरूप हैं। बहुत जन्मों में बहुत पुण्य करने वाले मनुष्यों में ही श्रद्धा, स्थिरता, सम्प्रदायसिद्धि एवं नित्यार्चन की प्रवृत्ति होती है।

कूर्मस्थितितत्प्रयोगः

अथ कूर्मचक्रम्। तत्रैव (५प० ८८ श्लो०)—

कूर्मस्थितिमविज्ञाय यो जपादिविधिस्थितः। स नाप्नोति फलान्युक्तान्यन्यथा नाशकानि च ॥२१॥
तस्मात् कूर्मविभागं तु विज्ञायाखिलमाचरेत्। व चतुर्धा स्थितो लोके तत्प्रकारं शृणु प्रिये ॥२२॥
प्रथमस्तु परः कूर्मस्ततो देशगतस्तथा। ग्रामगो गृहगश्चेति चतुर्धा तद्व्यवस्थितिः ॥२३॥
देशं ग्रामं गृहं वास्तुं नवधा विभजेत्ततः। प्रागादिपश्चिमान्तं तु कादिमान्तानि विन्यसेत् ॥२४॥
अक्षराणि समान्येव चत्वारि परयोर्न्यसेत्। ईशे द्वयमथो मध्ये स्वरान् प्रागादि विन्यसेत् ॥२५॥
ईशान्तासु द्विशः पश्चान्नामाद्यर्णं यतो भवेत्। तन्मुखं पार्श्वयोः पाणी कुक्षिः पादौ ततस्ततः ॥२६॥
पुच्छमेकमतो मध्यं पृष्ठमेकं षडङ्गवान्। मुखे सर्वार्थसिद्धिः स्यात्करयोरल्पसिद्धिकृत् ॥२७॥

कुक्षौ तु नित्यनैष्फल्यं पादयोः सर्वहानिकृत् । पुच्छे मृतिस्तु नियता पृष्ठे सर्वार्थदायकम् ॥२८॥
तस्मात्तत्साधु विज्ञाय कुर्यात्सर्वं समाहितम् । व्यञ्जनं देशकूर्मे स्याद् गृहकूर्मे स्वरास्तथा ॥२९॥
ग्रामादिकूर्मे द्वितयं परकूर्मे न तु द्वयम् । नित्यं पूर्वमुखो यस्मात्तेन तत्सिद्धिरीरिता ॥३०॥
एवं कूर्मविभागोऽयमीरितस्ते चतुर्विधः । मन्त्राणां येन सिद्धिः स्यात्सर्वेषां सर्वतस्तदा ॥३१॥
संवर्द्ध्यायामविस्तारं हृत्वाष्टाभिस्तु शेषतः । विज्ञाय वर्गं तेष्वेकं नामाद्यं नाम्नि कल्पयेत् ॥३२॥
तत्तत्स्थानेषु नियतमनर्थशून्यता तथा । वास्तुष्वज्ञातरूपेण प्रसिद्धं नामतो भवेत् ॥३३॥ इति।

अत्र व्यञ्जनयुक्तेऽपि देशनामनि व्यञ्जनस्य प्राधान्यं देशकूर्मे ज्ञेयम्, तथैव ग्रामकूर्मे स्वरस्य ज्ञेयमिति। केवलस्वरयुक्ते तु सर्वत्र स्वरस्यारि(बहिः)कोष्ठं मुखं ज्ञेयम्। देवीयामले—

कुरुक्षेत्रे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे । महाकाले च काश्यां च दीपस्थानं च चिन्तयेत् ॥१॥ इति।

तत्र प्रयोगस्तु—समुद्रतीरनदीपर्वतशृङ्ग-समुद्रगामिनीनदीतीर-विष्णुगृहविविक्तनिजगृहगोष्ठाश्वत्थबिल्व-मूलजलाशयपश्चिमाभिमुखवृषशून्यशिवालयगुरुसंनिधितुलसीवनस्वेष्टदेवतासंनिधिपुण्य-क्षेत्रतीर्थवनोपवननदी-ह्रदस्वाभिमतस्थानम्लेच्छदुष्टमृगव्यालशङ्कावर्जितैकान्तनिन्दारहितधार्मिकस्वेष्टदेवताभक्तजनाश्रयसुभिक्षनिरुपद्रव-(राजतत्सचिवादिगमनागमनरहितस्थानान्येषामन्यतमं स्थानं ग्रामे क्रोशमात्रं, नगरे कोशद्वयमात्रं, नदीपर्वततीर्थादौ परिमाणरहितं 'अमुकस्येह मन्त्रस्य पुरश्चरणसिद्धये। मयेयं गृह्यते भूमिर्मन्त्रो मे सिद्ध्यता'मिति मन्त्रेण भूमिपरिग्रहं विधाय क्षीरवृक्षभवान् वितस्तिमितान् दश कीलान् कृत्वास्त्रमन्त्रेण पृथगष्टधाभिमन्त्र्य पूर्वाद्यष्टसु दिक्षु इन्द्रेशानयोर्मध्ये निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये च निखनेत्। तेष्वस्त्रं च संपूज्य तेषु स्थानेष्विन्द्रादिदशदिक्पालेभ्यो माषभक्तबलिं दद्यात्। ततः क्षेत्रपालं गणेशं वास्तुपुरुषं संपूज्य प्राक्प्रत्यगायता दक्षिणोत्तरायताश्चतस्रतस्रो रेखा विलिख्य नव कोष्ठानि कृत्वा, तेषु पूर्वादिक्रमेण कचटतपयशाख्यान् सप्तवर्गान् सप्तकोष्ठेषु विलिख्येशानकोष्ठे लक्षौ विलिख्य, मध्यकोष्ठं तथैव नवधा विभज्य, पूर्वादिक्रमेण द्विशो द्विशः षोडशस्वरानष्टकोष्ठेषु विलिखेदिति कूर्मचक्रं निर्माय, तत्र मध्यन-वके मध्ये पूर्वादिक्रमेणाष्टसु दिक्षु चामृतवृषभशैलराजवासुक्यार्थकृच्छक्तिपद्मयोनिमहाशंखच्छायाच्छत्रगणान् नवक्षेत्रपालान् प्रणवादिचतुर्थीनमोऽन्ततत्तन्नाम्ना संपूज्य ग्रामनामाद्यक्षरयुक्तकोष्ठदिशि कूर्ममुखे तदलाभे मध्ये कूर्मपृष्ठे वा मुखा-दधःकोष्ठद्वयान्यतमे कूर्महस्ते वा गृहं जपार्थं शीतवातातपनिवारणक्षमं कुर्यात्।

कूर्मचक्र की स्थिति और उसका प्रयोग—कूर्मचक्र जाने बिना जो जपादि-विधि में प्रवृत्त होता है, उसे उक्त फल प्राप्त नहीं होते; उलटे उसका नाश हो जाता है। इसलिये कूर्मविभाग को जानकर ही सभी आचार करना चाहिये। कूर्म चक्र की स्थिति लोक में चार प्रकार की होती है—पहला परकूर्म, दूसरा देशगत, तीसरा ग्रामगत और चौथा गृहगत। देश-ग्राम-गृहवास्तु को नव भाग में विभाजित करे। पूर्व से पश्चिम तक उसमें कवर्ग से पवर्ग तक का विन्यास करे। सामान्य के समान चार अक्षरों का न्यास करे। ईशान-वायव्य में यवर्ग-शवर्ग का न्यास करे। बीच में स्वरों का न्यास करे। ईशानादि दिशाओं में नाम का पहला अक्षर जहाँ हो, वहाँ कूर्म का मुख होता है। पार्श्वों में हाथ, कुक्षी एवं पैर होते हैं। शेष भाग पूँछ होता है। मध्य में पीठ होता है। इस प्रकार कूर्मचक्र छः अङ्गों से युक्त होता है। मुख में बैठकर जप करने से सर्वार्थ सिद्ध होते हैं। हाथ में जप करने से अल्प सिद्धि मिलती हैं। कुक्षि में किया गया जप निष्फल होता है। पैरों में जप करने से सभी प्रकार की हानियाँ होती है। पूँछ में जप करने से मृत्यु होती है और पीठ में किया गया जप सर्वार्थदायक होता है। इसलिये साधक इन सबों को जानकर सभी कर्म समाहित चित्त होकर करे। व्यञ्जन देशकूर्म हैं। स्वर गृहकूर्म हैं। ग्रामादि कूर्म दोनों हैं एवं परकूर्म में दोनों ही नहीं हैं। नित्य पूर्वमुख रहकर साधना करने से सिद्धि मिलती है। आयाम विस्तार संवर्द्धित करके आठ से भाग देने पर शेष को जानकर उनमें से एक वर्ग में नाम के पहले अक्षर की कल्पना करे। यहाँ पर व्यञ्जनयुक्त होने पर भी देश नाम से व्यञ्जन का प्राधान्य देशकूर्म में एवं ग्रामकूर्म में स्वरों की प्रधानता जाननी चाहिये है। केवल स्वरयुक्त होने पर स्वर के बाहर का कोष्ठ मुख होता है।

देवीयामल में कहा गया है कि कुरुक्षेत्र, प्रयाग, गङ्गासागर सङ्गम, महाकाल उज्जैन एवं काशी में दीपस्थान का चिन्तन नहीं करना चाहिये।

कूर्मचक्र का प्रयोग इस प्रकार किया जाता है—समुद्रतट, नदी, पर्वतशिखर, समुद्रगामिनी नदी का तट, विष्णुमन्दिर, अपना घर, गोशाला, पीपल एवं बेल के वृक्ष का मूल, जलाशय, पश्चिममुख वृषशून्य शिवाला, गुरुसन्निधि, तुलसीवन, स्वेष्ट देवता-सन्निधि, पुण्य क्षेत्र, तीर्थ, वन उपवन, नदी, झील, स्वाभिमत स्थान, म्लेच्छ, दुष्ट, मृग, सर्प, शङ्का से वर्जित, एकान्त, निन्दारहित, धार्मिक, स्वेष्ट देवता, भक्तजनाश्रय, सुभिक्ष, निरुपद्रव, राजा-मन्त्री आदि के गमनागमन से रहित स्थान में से कोई स्थान या गाँव से कोश भर से नगर दो कोश दूर नदी, पर्वत, तीर्थ में परिमाणरहित स्थान में 'अमुकस्येह मन्त्रस्य पुरश्चरणसिद्धये। मयेयं गृह्यते भूमिर्मन्त्रो मे सिद्ध्यताम्' इस मन्त्र से भूमि का परिग्रहण करे। क्षीरवृक्षों के वित्ता भर के दश कील बनाकर अस्त्रमन्त्र से अलग-अलग अभिमन्त्रित करके पूर्वादि आठों दिशाओं में एवं पूर्व-ईशान मध्य में तथा पश्चिम-नैर्ऋत्य मध्य में गाड़ दे। उनका पूजन अस्त्रमन्त्र से करे। उन्हीं स्थानों में इन्द्रादि दश दिक्पालों को उड़द-भात की बलि प्रदान करे। तब क्षेत्रपाल, गणेश, वास्तुपुरुष का पूजन करे। पूर्व से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर की ओर चार-चार रेखाएँ खींचकर नव कोष्ठ बनाये। उनमें पूर्वादि क्रम से कचटतपयश—इन सात वर्गों को सात कोष्ठों में लिखे। ईशान कोष्ठ में ळ-क्ष लिखे। पुनः मध्य कोष्ठ को उसी प्रकार नव भागों में विभाजित करे। पूर्वादि क्रम से दो स्वरों को लिखकर कूर्मचक्र बनाये। तब मध्य स्थित नव कोष्ठों में पूर्वादि क्रम से आठों दिशाओं में अमृत वृषभ शैलराज वासुक्यार्थ कृच्छाक्ति पद्मयोनि महाशङ्ख छाया छत्रगण नव क्षेत्रपाल का प्रणवादि-नमोऽन्त उनके चतुर्थ्यन्त नामों से पूजन करे। ग्राम के पहला अक्षरयुक्त कोष्ठ दिशा में कूर्ममुख में अथवा उसके न होने पर कूर्मपृष्ठ मध्य में या मुख के निचले दो कोष्ठों में या कूर्महस्त में शीत-वात-धूप निवारणयोग्य गृह जप के लिये निर्मित करे।

साध्यसाधकनाम्नोररित्वज्ञानपूर्वं वैरिस्थानत्यागः

कालिकोद्भवे—

स्थानसाधकयोर्नाम्नोररित्वं यत्र विद्यते। तदक्षशास्त्रतो ज्ञात्वा तत्र सम्यक् परित्यजेत्॥१॥ इति।

अक्षशास्त्रे—

अरित्वमद्वयस्योक्तं गकारेण परस्परम्। ऋद्वयस्य ठकारेण ठकारस्यापि तेन च॥२॥
लृद्वयस्य पकारेण पकारस्यापि लृद्वयम्। ओद्वयस्य षकारेण षकारस्यौयुगेन च॥२॥
जकारस्य टकारेण झकारस्य खकारतः। डकारस्य तकारेण फकारस्य धकारतः॥३॥
भकारस्य तु रेफेण यकारस्य सकारतः। अरित्वमेषां वर्णानामन्येषां मित्रभावना॥४॥
कूर्मचक्रे रिपुस्थानं साधको यत्नतस्त्यजेत्। यथा गर्गस्य वैरी स्यादट्टहासं महत्पुरम्॥५॥
गयामरेश्वरस्यैवमाकाराद्येषु योजयेत्। ऋजुभट्टस्य ठक्काख्यं लृतकस्यारिः पद्मकम्॥६॥
ओड्डियाणं षण्मुखस्य रौद्रं षड्गुणकस्य च। जयन्ती टङ्कधारस्य खंधारं ॠॠ(झंझ)णस्य च॥७॥
डाकदेवस्य ताराख्यं धर्माख्यं फण्डिभट्टतः। भद्रस्य रम्यकं चैव यज्ञदत्तस्य सोमकः॥८॥
एवं क्रमेण संशोध्य वैरिस्थानं त्यजेद्बुधः। इति।

कालिकोद्भव में कहा भी गया है कि साधक और स्थान में अरित्व जहाँ हो, वहाँ अक्षशास्त्र से ज्ञात करके उसका सम्यक् रूप से त्याग कर देना चाहिये। अक्षशास्त्र में कहा गया है कि दो गकार में परस्पर शत्रुता रहती है, दोनों 'ऋ' की ठकार से और ठकार से इन दोनों की शत्रुता रहती है। दोनों लृ का पकार से और पकार को दोनों लृ से अरित्व रहता है। ओ-औ का षकार से और षकार का ओ औ से अरित्व रहता है। जकार का टकार से, झकार का खकार से, डकार का तकार से, फकार का धकार से, भकार का रकार से यकार का सकार से एवं शत्रुत्व रहता है। अन्य वर्णों में परस्पर मित्रता रहती है। कूर्मचक्र में रिपु स्थान को साधक यत्नपूर्वक त्याग दे। जैसे गर्ग का वैरी अट्टहास महानगर है। गया और अमरेश्वर के

समान आकाराधो में जोड़ दें। ऋजुभट्ट का ठकार एवं लृतक का शत्रु पद्मक है। उड्डियाण षण्मुख का रौद्र षड्गुण से वैर है। जयन्ती टंकधार का एवं खंधार ऋ ॠ का वैरी है। डाकदेव का तारा से एवं धर्म का फण्डिभट्ट से वैर है। भद्र का रम्यक से और यज्ञदत्त का सोमक से वैर है। इस क्रम से शोधित करके वैरी स्थान का साधक को त्याग कर देना चाहिये।

अक्षमालानिर्वचनम्

अथ माला—सा तु द्विविधा मातृकाक्षरमयी रुद्राक्षादिमणिमयी चेति। तत्र प्रथमामाहोत्तरतन्त्रे—

अकारादिक्षकारान्तैर्बिन्दुमन्मातृकाक्षरैः । अनुलोमविलोमस्थैः क्लृप्तया वर्णमालया ॥१॥
प्रत्येकवर्णयुङ्मन्त्रा जप्ताः स्युः सर्वसिद्धिदाः । वैरिमन्त्रा अपि नृणां सुसिद्धाद्यास्तु किं पुनः ॥२॥ इति।

शारदातिलके—

आदिक्षान्तार्णयोगित्वादक्षमालेति कीर्तिता । तद्वर्णसंख्यमणिभिर्जपमालां प्रकल्पयेत् ॥१॥ इति।

ज्ञानार्णवे—

अकारः प्रथमो देवि क्षकारोऽन्त्यस्ततः परम् । अक्षमालेति विख्याता मातृकावर्णरूपिणी ॥१॥ इति।

अत्र वर्गाष्टकजपस्तु उद्दिष्टसंख्यावसाने कार्यः। तदुक्तं मातृकार्णवे—

आरभ्याकारमादौ मनसि परिजपेन्मातृकां सावसानां
धृत्वा तच्चावसानं पुनरपि च पठेदान्तमेवावरोहे ।
लान्तानष्टौ च वर्णांस्तदनु परिजपेद्भूय एवावसाने
क्षान्तं संहारयुक्तं पशुपतिगदिता यामले मालिकेयम् ॥१॥ इति ।

धृत्वा मेरुस्थाने। अवसानं क्षकारम्। लान्तान् कचटतपयशलाख्यान्। तदनूद्दिष्टसंख्यासमाप्त्यनन्तरम्। अवसाने उद्दिष्टशताद्यवसाने। एवोऽवधारणे।

माला—माला दो प्रकार की होती है, एक मातृकाक्षरमयी और दूसरी रुद्राक्षादिमणिमयी। इनमें से प्रथम माला का वर्णन उत्तरतन्त्र के अनुसार इस प्रकार है—अकार से क्षकार तक के अक्षरों में अनुस्वार देकर मातृकाक्षरों से माला बनती है। इसे अनुलोम-विलोम करने से वर्णमाला होती है। प्रत्येक वर्ण के साथ मन्त्र जोड़कर जप करने से सभी सिद्धियाँ मिलती हैं। इस माला से वैरी मन्त्र भी सिद्ध होते हैं, फिर सुसिद्धों के बारे में तो कहना ही क्या है। शारदातिलक में कहा भी गया है कि अकार से क्षकार तक के वर्णों के योग से अक्षमाला बनती है। वर्णों की संख्या के बराबर जपमाला प्रकल्पित करनी चाहिये। ज्ञानार्णव में कहा गया है कि अकार पहला है और क्षकार अन्तिम है। मातृकावर्णरूपी यही अक्षमाला कही जाती है। वर्गाष्टक जप उद्दिष्ट संख्या के अन्त में करना चाहिये; जैसा कि मातृकार्णव में कहा भी है—अकार से प्रारम्भ करके मातृका की समाप्ति तक जप करे। फिर अन्त से प्रारम्भ आद्य तक जप करे। लकारान्त आठ वर्णों का जप अन्त में पुनः करे। संहारयुक्त क्षान्त मालिका को यामल में पशुपति ने कहा है।

मालामणिफलकथनम्

द्वितीया तूत्तरतन्त्रे—

अथ वक्ष्येऽक्षमालाया विधानं मन्त्रिकाम्यया । पञ्चविंशतिभिः प्रोक्ता मणिभिर्भुक्तिदायिनी ॥१॥
त्रिंशद्भिर्धनदा सप्तविंशत्याक्षैस्तु सर्वदा । अभिचारकरी पञ्चदशभिः परिकल्पिता ॥२॥
चतुष्पञ्चाशदक्षैः सा काम्यकर्मसु सिद्धिदा । अष्टोत्तरशतैः क्लृप्ता सर्वाभीष्टप्रदा मता ॥३॥
मणयः शङ्खसंभूता प्रोक्ता लक्ष्मीप्रदा मताः । मुक्तिप्रदाः स्फटिकजाः पद्माक्षाः पुष्टिवर्धनाः ॥४॥
भुक्तिमुक्तिप्रदाः प्रोक्ता रुद्राक्षाः सर्वसिद्धिदाः। पुत्रजीवभवाः पुत्रपशुधान्यसमृद्धिदाः ॥५॥
विद्रुमोत्थास्तु मणयो धनसौभाग्यवश्यदाः । मौक्तिका मुक्तिदाः प्रोक्ताः सर्वसंपत्समृद्धिदाः ॥६॥
पापापहाः कुशमयाः कामदाः स्वर्णरुप्यजाः। इति।

तथा शारदातिलके (२३ प० ११८ श्लो०)—

रुद्राक्षमालिका सूते जपे जापिमनोरथान्। पद्माक्षैर्विहिता माला शत्रूणां नाशिनी मता ॥१॥
कुशग्रन्थिमयी माला सद्यः पापप्रणाशिनी। पुत्रजीवफलैः क्लृप्ता कुरुते पुत्रसंपदम् ॥२॥
निर्मिता रूप्यमणिभिर्जपमालेप्सितप्रदा। हिरण्मयैर्विरचिता माला कामान् प्रयच्छति ॥३॥
प्रवालैर्विहिता माला प्रयच्छेत्पुष्कलं धनम्। सौभाग्यं स्फाटिकी माला मौक्तिकैर्विहिता श्रियम् ॥४॥
निर्मिता शङ्खमणिभिः कुरुते कीर्तिमव्ययाम्। सर्वैरेतैर्विरचिता माला सा मुक्तये नृणाम् ॥५॥ इति।

सर्वैरिति, एकेन पञ्चभिः पञ्चभिरिति केचित्।

उत्तरतन्त्र में दूसरे प्रकार की माला का वर्णन इस प्रकार किया गया है—अक्षमाला का विधान साधक की कामना के अनुसार इस प्रकार है—पच्चीस मणियों की माला भोगदायिनी होती है। तीस मणियों की माला धनदा होती है। सत्ताईस मणियों की माला सर्वदा धनदा होती है। पन्द्रह मणियों की माला अभिचार में प्रयुक्त होती है। चौवन मणियों की माला काम्य कर्मों में सिद्धिदा होती है। एक सौ आठ मणियों की माला से सभी अभीष्ट प्राप्त होते हैं। शङ्ख के मणियों की माला लक्ष्मीप्रदा होती है। स्फटिक की माला से मोक्ष मिलता है। कमलगट्टे की माला पुष्टिवर्द्धक होती है। रुद्राक्ष की माला भुक्ति- मुक्तिप्रदा एवं सर्वसिद्धिदा होती है। पुत्रजीवक की माला से पुत्र-पशु-धान्य की समृद्धि होती है। मूँगे की माला से धन- सौभाग्य प्राप्ति के साथ-साथ वश्य कर्म में सिद्धि प्राप्त होती है। मोती की माला मुक्ति देने वाली एवं सर्वसम्पत् प्रदायिनी होती है। कुश की माला से पापों का नाश होता है एवं सोने-चाँदी की माला से कामनाएँ पूरी होती हैं। शारदातिलक में भी कहा गया है कि रुद्राक्षमाला से साधक के मनोरथ सिद्ध होते हैं। कमलगट्टे की माला शत्रुनाशिनी होती है। कुश-ग्रन्थि की माला पापविनाशिनी होती है। पुत्रजीवक की माला से पुत्र की प्राप्ति होती है। चाँदी से निर्मित माला अभीष्ट-प्रदायिनी है। सोने से निर्मित माला से कामनाएँ पूरी होती हैं। मूँगे की माला से बहुत धन मिलता है। स्फटिक की माला से सौभाग्य में वृद्धि होती है। मोती की माला से श्री की प्राप्ति होती है। शङ्ख की माला से अक्षय कीर्ति मिलती है। इन सबों से संयुक्त रूप से विरचित माला से मुक्ति मिलती है।

मिश्रमणिनिषेधः

मिश्रणे तु निषेधमाह उत्तरतन्त्रे—

इन्द्राक्षैर्यदि जप्येत रुद्राक्षैः स्फाटिकैस्तथा। नान्यन्मध्ये प्रयोक्तव्यं पुत्रजीवादिकं च यत् ॥१॥
यदन्यत्तु प्रयुञ्जीत मालायां जपकर्मणि। तस्य कामं च मोक्षं च न ददाति प्रियङ्करी ॥२॥
जन्मान्तरे जायतेऽसौ वेदवेदाङ्गपारगः। मिश्रीभावं ततो याति चण्डालैः पापकर्मभिः॥३॥ इति।

मिश्र मणिमाला का निषेध—उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि इन्द्राक्ष, रुद्राक्ष अथवा स्फटिक की माला में से किसी एक से ही जप करना चाहिये दूसरे के मध्य में पुत्रजीवादि का प्रयोग नहीं करना चाहिये, जप में जो अन्य माला का प्रयोग करता है, उसे काम और मोक्ष नहीं मिलते। यह जन्मान्तर में वह वेद-वेदाङ्ग में पारङ्गत होता है; लेकिन मिश्रित माला से जपरूप पापकर्म करने के कारण वह चाण्डाल होता है।

वश्योच्चाटनादौ मालाप्रकारः

ब्रह्मयामले—

खड्गशृङ्गस्य या माला पितृणां मोक्षदायिनी। निशादारुकृता वश्ये लाक्षया ज्वरकर्मणि ॥१॥
अर्कस्योच्चाटने कार्या श्रीफलैर्ज्ञानसाधने। गजदन्तस्य मणिभिः कुर्यात् सर्वार्थदायिनी ॥२॥
राजती सर्ववश्येषु मोहने ताम्रजा स्मृता। मारणे चायसी प्रोक्ता.............................।

ब्रह्मयामल में कहा गया है कि खड्गशृङ्ग की माला पितरों को मोक्षदायिनी होती है। हल्दी और दारु की माला

वशीकरण में एवं ज्वरनाश के लिये लाह की माला से जप किया जाता है। अकवन की माला से उच्चाटन होता है। श्रीफल की माला ज्ञानसाधन के लिये प्रयुक्त होती है। हाथीदन्त की माला सर्वार्थदायिनी होती है। चाँदी की माला सर्व वशीकरण में और ताम्बे की माला मोहन कर्म में प्रयुक्त होती है। लौहमणियों की माला से मारण होता है।

मालायाः सात्त्विकादिभेदाः

..........................श्रीफलैर्बिल्वकाष्ठजैः ॥३॥

सा पुनस्त्रिविधा प्रोक्ता सात्त्विकी राजसी तथा । तामसी चेति तास्वाद्या शतैरष्टोत्तरैः शुभैः ॥४॥

मणिभिः शङ्खसंभूतैः श्वेतपद्मसमुद्भवैः । मणिभिः सात्त्विकी पुत्रजीवै रजतसंभवैः ॥५॥

श्वेतचन्दनसंभूतैरन्यैः श्वेततरूद्भवैः । कुशग्रन्थिभवैः क्लृप्ता राजसी चतुरुत्तरैः ॥६॥

पञ्चाशद्धी रक्तपद्मबीजैश्च रक्तचन्दनैः । सौवर्णै रक्ततरुजैः पीतसारसमुद्भवैः ॥७॥

पद्मकाष्ठसभुद्भूतै रजनीकाष्ठसंभवैः । देवदारुसमुद्भूतैः कृष्णाकाष्ठसमुद्भवैः ॥८॥

मणिभिस्तामसी चाष्टाविंशद्भिर्मणिभिः कृता । सा शमीनिम्बबिम्बाक्षैरिन्द्रभद्रसमुद्भवैः ॥९॥

कपिशार्दूलऋक्षाणां जन्तूनामस्थिसम्भवैः । नराश्वरासभेभानां स्नायुभिर्ग्रथितैरपि ॥१०॥

तत्तत्कार्यविभेदेन सा सा कार्या विपश्चिता । इति।

कुशग्रन्थिमाला तु ब्राह्मणानामेव। 'कुशग्रन्थ्या जपेद्विप्रः सुवर्णमणिभिर्नृपः। पुत्रजीवैर्जपेद्वैश्यः पद्माक्षैः सर्व एव च'। इति नारदवचनात्। गोपालस्य जपे तु पद्माक्षमालातीव प्रशस्ता गौतमेन तन्मात्रविधानात्। यथा— 'समाहितमना भूत्वा पद्मबीजाख्यमालया, जपेत्' इति। नारदपञ्चरात्रेऽपि—'जपस्य गणानां प्राहुः पद्माक्षैर्भक्तिवर्द्धनैः' इति। वैष्णवानामपि रुद्राक्षमालातीव प्रशस्ता। 'यस्तु भागवतो भूत्वे'त्युपक्रम्य—'रुद्राक्षैश्चोत्तमाम्' इति वराहवचनात्।

श्रीफल विल्ब काष्ठ की मणियों से निर्मित माला सात्त्विकी, राजसी एवं तामसी तीन प्रकार की होती है। एक सौ आठ मणियों की माला शुभ होती है। शङ्खमणियों की माला एवं श्वेत पद्माक्ष की माला सात्त्विक होती है। पुत्रजीवक, चान्दी, श्वेत चन्दन और अन्य श्वेत वृक्षसम्भूत और कुशग्रन्थि की माला राजसी होती है। लाल कमलगट्टे, रक्त चन्दन, सोना, लाल वृक्ष, पीतसार, पद्मकाष्ठ, रजनीकाष्ठ, देवदास, कृष्णकाष्ठ की मणियों से बनीं माला को तामसी कहते हैं।

शमी, नीम, विम्बाक्ष, इन्द्रभद्र, बन्दर-शेर-ऋक्ष आदि की हड्डी से निर्मित अट्ठाईस मणियों की माला मनुष्य एवं घोड़ा, गदहा की स्नायुग्रन्थि से ग्रथित माला कार्यभेद से प्रयुक्त होती है।

कुशग्रन्थि की माला केवल ब्राह्मणों के लिये होती है। जैसा कि नारद ने कहा भी है—कुशग्रन्थि से ब्राह्मण को, सुवर्णमणियों से राजा को, पुत्रजीवक से वैश्य को एवं पद्माक्ष से सभी को जप करना चाहिये। गोपालमन्त्र के जप में पद्माक्ष की माला अतिप्रशस्त होती है—ऐसा गौतम ने कहा है। नारदपञ्चरात्र में भी इसी का समर्थन किया गया है। वैष्णवों के लिये भी रुद्राक्षमाला प्रशस्त होती है—ऐसा वराह का कथन है।

देवताभेदेन मालासंस्कारकालः

अथ जपमालासंस्कारकालः। तत्र योगिनीतन्त्रे—

द्वादश्यां वैष्णवी माला कर्तव्या साधकोत्तमैः । मन्त्रज्ञैर्विष्णुमन्त्रेण दिव्यभागे प्रयत्नतः ॥१॥ इति।

दिव्यभागे पूर्वाह्णे। 'शक्तीनामपि कर्तव्या भुक्त्वा रात्रौ यथाविधि'। भोजनं तु दिवस एव।

अष्टम्यां च नवम्यां च त्रयोदश्यां तथैव च । चतुर्दश्यां तथा कुर्याच्छिवस्यापि सुरेश्वरि ॥१॥

चतुर्थ्यां गणनाथस्य मध्याह्ने भास्करस्य तु । पूर्वाह्णे देवि कर्तव्या सप्तम्यां जगदीश्वरि ॥२॥ इति।

जपमाला-संस्कार का समय—योगिनीतन्त्र में कहा गया है कि उत्तम साधकों द्वारा द्वादशी में मन्त्रज्ञ विष्णुमन्त्र से पूर्वाह्ण में प्रयत्नपूर्वक वैष्णवी माला बनानी चाहिये। शक्ति की माला दिन में भोजन करके रात्रि में यथाविधि बनानी चाहिये।

अष्टमी, नवमी, त्रयोदशी और चतुर्दशी में शिव की माला बनानी चाहिये। चतुर्थी में गणेश की माला बनानी चाहिये। मध्याह्न में सूर्य की माला एवं सप्तमी के पूर्वाह्न में देवी की माला बनानी चाहिये।

सूत्रनिर्णय:

अथ सूत्राणि तत्रैव—

पट्टसूत्रकृता माला देव्या: प्रीतिकरी सदा। कार्पासैर्वैष्णवी माला पद्मसूत्रैरथापि वा ॥१॥
ऊर्णाभिर्वाल्कलैर्वापि शैवी माला प्रकीर्तिता। कार्पाससूत्रैरन्येषां विदध्याज्जपमालिकाम् ॥२॥ इति।

कार्पाससूत्रे विशेषस्तत्रैव। 'ततो द्विजेन्द्रपुण्यस्त्रीनिर्मितं ग्रन्थिवर्जितम्। त्रिगुणं त्रिगुणीकृत्य सूत्रं प्रक्षाल्य यत्नत:'।

माला में धागा—रेशमी धागे से बनी माला देवी को सदा प्रियकरी होती है। कपास के धागे से अथवा कमलसूत्र से वैष्णवी माला बनानी चाहिये। ऊन से या वल्कल से शैवी माला तथा कपास-सूत्र धागे से अन्य देवताओं की माला बनानी चाहिये।

मालाग्रथनविधानम्

कालोत्तरे—

स्कन्द उवाच

देवदेव महादेव सृष्टिस्थितिलयेश्वर रुद्राक्षैर्जपमाला तु कथं कार्या महेश्वर ॥१॥
संस्कारश्च कथं तात कर्तव्य: कीदृशं फलम्।

ईश्वर उवाच

शृणु षण्मुख वक्ष्यामि रुद्राक्षै: क्रियते यथा। जपमाला विधानेन येन सा जपसिद्धिदा ॥३॥
एकवक्त्रैर्द्विवक्त्रैश्च चतुर्वक्त्रैश्च पञ्चभि:। षड्वक्त्रैर्वाथ कर्तव्या मिथो मिश्रैस्तु वर्जयेत् ॥४॥
मुखे मुखं तु कर्तव्यं मुखे मूलं तु वर्जयेत्। रुद्राक्षस्योत्तमं प्रोक्तं मुखं पृष्ठं तु निम्नगम् ॥५॥
धात्रीफलप्रमाणेन श्रेष्ठमेतदुदाहृतम्। बदरार्धप्रमाणेन चणकान्मध्यमाधमे ॥६॥
ऊर्ध्ववक्त्रं तु मेर्वाख्यं कर्तव्यं तन्न लङ्घयेत्। नवेन तन्तुना चैतद् ग्रथनीयमसंस्पृशत् ॥७॥ इति।

असंस्पृशत् त्वन्योन्यस्य। उत्तरतन्त्रे—

एको मेरुस्तत्र देय: सर्वेभ्य: स्थूलसंभव:। आद्यं स्थूलं ततस्तस्मान्न्यूनं न्यूनतरं तथा ॥१॥
विन्यसेत्क्रमतस्तस्मात्सर्पाकारा च सा यत:। ब्रह्मग्रन्थियुतं कुर्यात्प्रतिबीजं यथाविधि ॥२॥
अथवा ग्रन्थिरहितं दृढरज्जुसमन्वितम्। त्रिरावृत्त्याथ मध्येन चार्धवृत्त्यान्तदेशत: ॥३॥
ग्रन्थि: प्रदक्षिणावर्त: स ब्रह्मग्रन्थिसंज्ञित:। इति।

तथा कालोत्तरे—एकभक्तं विधायाथ (दौ) साधको ग्रथयेत् स्वयम्।' एकभक्तं तु पूर्वदिने न तु तद् दिने, अन्यथा पूर्वाह्णे क्रियमाणाया: प्रतिष्ठाया: पूर्वं भोजनासंभवादयुक्तत्वाच्च।

कालोत्तर में स्कन्द ने भगवान् से प्रार्थना किया कि हे देवदेव महादेव! सृष्टि-स्थिति एवं लय के ईश्वर! रुद्राक्ष की जपमाला कैसे इसका संस्कार करना चाहिये और इस माला का फल क्या है? इसे मुझे बताने की कृपा करे।

ईश्वर ने कहा—हे षण्मुख! सुनो; रुद्राक्षमाला कैसे बनती है, इसे पहले कहता हूँ। रुद्राक्ष की जो माला विधान से बनायी जाती है, उससे जप सिद्धिप्रद होता है। एक मुखी, दो मुखी, चार मुखी, पाँच मुखी या छ: मुखी रुद्राक्ष से माला बनाये। इनका आपस में मिश्रण न करे। मुख से मुख जोड़कर माला बनाये, मुख से मूल को न जोड़े। रुद्राक्ष का मुख उत्तम होता

है एवं उसका पृष्ठ अधम होता है। आँवले के फल के बराबर रुद्राक्ष को श्रेष्ठ कहा गया है। बेर के आधे भाग के बराबर को मध्यम और चने के बराबर रुद्राक्ष को अधम कहा गया है। मेरु को ऊर्ध्वमुख रखे। उसका लङ्घन न करे। नये धागे में माला-मणियों को इस प्रकार गूँथे, जिससे कि वे आपस में एक-दूसरे को स्पर्श न करें। उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि माला के ऊपर सबों से स्थूल एक मेरु लगाये। पहला स्थूल, फिर उससे कम-कम स्थूल क्रम से मणियों को गूँथकर सर्पाकार माला बनाये। प्रत्येक मणि के बाद ब्रह्मगाँठ लगाये अथवा ग्रन्थिरहित दृढ़ धागे से बनाये। तीन आवृत्ति मध्य से और आधी आवृत्ति अन्त देश में लगाये। प्रदक्षिणावर्त ग्रन्थि को ब्रह्मग्रन्थि कहते हैं। कालोत्तर में कहा गया है कि एक समय खाकर साधक माला को स्वयं गूँथे।

मालासंस्कारः

कृतनित्यक्रियः शुद्धः उक्तेष्वक्षेषु मन्त्रवित्। यथाकामं यथालाभमक्षानानीय यत्नतः ॥१॥

वक्त्रसांकर्याकरणे यत्न उक्तः।

अन्योन्यसमरूपाणि नातिस्थूलकृशानि च। कीटादिभिरदष्टानि न जीर्णानि नवानि च ॥२॥
गव्यैस्तु पञ्चभिस्तानि प्रक्षाल्य च पृथक् पृथक्।

आदौ पूर्वदिने। अक्षान् रुद्राक्षान्। यथाकामं वक्त्रभेदे फलभेदश्रवणात्। शक्तिव्यतिरिक्तमेकभक्तं ज्ञेयम्।

मालासंस्कार—नित्य कृत्य करने के बाद शुद्ध होकर मन्त्रवेत्ता अपनी कामना एवं प्राप्ति के अनुसार उन अक्षों में से अक्षों को यत्नपूर्वक ले आवे। वे सभी मणियाँ बराबर-बराबर हों। न अति स्थूल हों और न ही अति कृश हों। कीटादि के छेद से रहित हों। जीर्ण न हों, बल्कि नयी हों। उनका प्रक्षालन पञ्चगव्य से पृथक्-पृथक् करे।

पञ्चगव्यनिर्णयः

पञ्चगव्यं तु नृसिंहपुराणे—

दुग्धं काञ्चनवर्णायाः श्वेतायाश्चैव गोमयम्। गोमूत्रं ताम्रवर्णाया नीलायाश्च भवेद् दधि ॥१॥
घृतं वै कृष्णवर्णाया इत्येतत्पञ्चगव्यकम्। गवां वर्णास्तु सुलभाः सन्ति देशेषु यत्र च ॥२॥
तत्र वर्णविभागेन पञ्चगव्यानि चाहरेत्। वर्णलाभे न दोषोऽस्ति मात्राहीनं तु वर्जयेत् ॥३॥
गोशकृद् द्विगुणं मूत्रं सर्पिर्दद्याच्चतुर्गुणम्। क्षीरमष्टगुणं प्रोक्तं पञ्चगव्ये तथा दधि ॥४॥
गायत्र्यादाय गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम्। आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राब्णेत्यृचा दधि ॥५॥
तेजोऽसि शुक्रमित्याज्यं देवस्य त्वा कुशोदकम्। सद्योजातेति मन्त्रेण क्षालयेत्पञ्चगव्यकैः ॥६॥

प्रक्षाल्येत्युक्तं कथं तदिति विवृणोति स्वयम्। सद्य इति, पञ्चगव्यैर्जलैश्च। 'क्षालयेत् पञ्चगव्येन सद्योजातेन सज्जलैः' इति तत्त्वसारवचनात्।

चन्दनागुरुगन्धाद्यैर्वामदेवेन घर्षयेत्। धूपयेत्तामघोरेण कृष्णागुरुसुगुग्गुलैः ॥१॥
तत्पुरुषाख्यमन्त्रेण लेपयेच्चन्दनादिभिः।

आदिपदेन कर्पूरकस्तूरीकुङ्कमादीनि गृह्यन्ते। 'मन्त्रयेत् पञ्चमेनैव प्रत्येकं तु शतं शतम्। मेरुं च पञ्चमेनैव तथाघोरेण मन्त्रयेत्' इति। शैवागमे—

अश्वत्थपत्रनवकैः(कं) पद्माकरेण कल्पयेत्। सूत्रं मणींश्च गन्धाद्भिः क्षालितांस्तत्र निक्षिपेत् ॥१॥
तारं शक्तिं मातृकां च सूत्रे रुद्राक्षके पृथक्। विन्यस्य पूजयेदाज्यैर्जुहुयाच्चैव शक्तितः ॥२॥
मणिमेकैकमादाय सूत्रे तत्र तु योजयेत्। गोपुच्छसदृशी कार्या एकाग्रा वा समेरुका ॥३॥
मुद्राष्टकं दर्शयित्वा प्रत्येकं पूजयेत्क्रमात्। ग्रथितं पञ्चभिर्मन्त्रैः पूर्ववच्च सदा शिवे ॥४॥ इति।

मन्त्रैः सद्योजातादिभिः पञ्चभिः। होमोऽप्येभिरेव मन्त्रैः। पूजाहोमयोरेकमन्त्रस्यावश्यकत्वात्। एकाग्रेति

समरूपा। मुद्राष्टकं त्वावाहनादि, अनन्तरं पूजाविधानात्। अन्यमणिष्वप्ययं संस्कार इति यत् वदन्ति तदज्ञानविजृम्भितम्। 'रुद्राक्षाणामयं प्रोक्तः संस्कारः श्रुतिचोदितः। इतरेषु तु तन्त्रोक्तः कर्तव्यो गुरुसाधकैः' इति कालोत्तरवचनादेव।

पञ्चगव्य-निर्णय—नृसिंहपुराण में कहा गया है कि स्वर्णवर्णा गाय का दूध, श्वेत वर्णा गाय का गोबर, ताम्बे के रङ्ग वाली गाय का मूत्र, नीली गाय का दही और काली गाय के घी को मिलाकर पञ्चगव्य बनाना चाहिये।

जिस देश में इन वर्णों की गायें मिलती हों, वहीं पर वर्णविभाग से पञ्चगव्य बनाया जा सकता है। वर्ण के न होने में भी कोई दोष नहीं है, किन्तु मात्रा में न्यूनता वर्जित है। गोबर का दुगुना गोमूत्र, गोघृत चौगुना, दूध आठ गुना और दही भी गोबर से आठ गुना अधिक होना चाहिये। गायत्री मन्त्र से गोमूत्र, गन्धद्वारां से गोबर, आप्यायस्व से दूध, दधिक्राब्णे से दही एवं तेजोऽसि शुक्रम् से गोघृत मिलकर देवस्य त्वा से कुशोदक मिलाये। सद्योजात मन्त्र से पञ्चगव्य से प्रक्षालित करे। तत्त्वसार के अनुसार चन्दन, अगरु, गन्धादि को वामदेव से घर्षित करे। अघोर मन्त्र से काला अगर एवं गुग्गुल से धूपित करे। तत्पुरुष मन्त्र से चन्दनादि का लेप लगाये।

शैवागम में कहा गया है कि पीपल के नव पत्तों को कमलाकार में रखे। धागे और मणियों को क्षालित करके गन्धादि अर्पित करे। तार, शक्ति एवं मातृका का धागे और रुद्राक्ष में अलग-अलग न्यास करे। पूजा करे। गोघृत से यथाशक्ति हवन करे। एक-एक मणि को लेकर धागे में पिरोये। गोपुच्छ के समान बनाकर एक से मेरु बनाये। आवाहनादि अष्ट मुद्राओं को दिखाये। क्रम से प्रत्येक की पूजा करे। पूर्ववत् पाँच मन्त्रों से माला को ग्रथित करे।

रुद्राक्षमाहात्म्यं तदुत्पत्तिस्तन्मुखभेदास्तत्फलानि च

अथ रुद्राक्षमाहात्म्यं तदुत्पत्तिस्तन्मुखभेदास्तत्फलानि च। तत्र स्कन्दपुराणे—

त्रिपुरो नाम दैत्यस्तु पुरासीदतिदुर्जयः। जितास्तेन सुराः सर्वे ब्रह्मविष्णवीन्द्रदेवताः ॥१॥
त्रिपुरस्य वधार्थाय देवानां पालनाय च। लोकानां भयनाशाय क्रतुधर्मप्रवृत्तये ॥२॥
सर्वदेवमयं दिव्यं ज्वलितं घोररूमकम्। चिन्तितं यन्मया पुत्र अघोरास्त्रमनुत्तमम् ॥३॥
निष्ठायास्तस्य भार्यायास्तावद्यावददृश्यत। दिव्यवर्षसहस्राणि चक्षुरुन्मीलितं तया ॥४॥
पुटाभ्यामाकुलाक्षिभ्यां पतिता जलबिन्दवः। ते चास्रुबिन्दवो जाता महारुद्राक्षवृक्षकाः ॥५॥
स्थावरत्वमनुप्राप्ता मर्त्यानुग्रहकारणात्। फलन्ति सर्वकालं हि अविच्छिन्नफलप्रदाः ॥६॥ इति।

रुद्राक्ष-माहात्म्य, उसकी उत्पत्ति, उसके मुखभेद और उनके फल—स्कन्द पुराण में कहा गया है कि प्राचीन काल में त्रिपुरा नामक दैत्य अति दुर्जय था। उसने ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्रादि सभी देवताओं को जीत लिया था। त्रिपुरा के वध एवं देवों की रक्षा के लिये, लोकों के भय के नाश के लिये, ऋतुधर्म की प्रवृत्ति के लिये सर्वदेवमय दिव्य ज्वलित घोररूप अघोरास्त्र का मैंने चिन्तन किया। दिव्य एक हजार वर्ष तक आँखें बन्द रहीं आँखें खुलने पर जलबिन्दु गिरे। उन अश्रुबिन्दुओं से रुद्राक्ष वृक्ष उत्पन्न हुए। मानवों पर अनुग्रह करने के लिये उन्होंने स्थावरत्व प्राप्त किया। वे सभी समय अविच्छिन्न रूप से फल प्रदान करते हैं।

वासिष्ठे लैङ्गे—

ब्रह्मेन्द्रमुख्यसकलामररक्षणार्थे शम्भोः पुरासुरविमर्दनकृत्यकाले।
तत् त्रैपुरेक्षणनिरोधभवाद्धि वारि रुद्राक्षवृक्षनिकराणि तदा बभूवुः ॥१॥
रुद्राक्षान् कण्ठदेशे दशनपरिमितान् मस्तके विंशती द्वे
षट् षट् कर्णप्रदेशे करयुगलगतान् द्वादश द्वादशैव।
बाह्वोरिन्दोः कलाभिः पृथगिति गदितं चैकमेकं शिखायां
वक्षस्यष्टाधिकं यः कलयति च शतं स स्वयं नीलकण्ठः ॥२॥

रुद्राक्षबीजमिति ये भुवि धारयन्ति हस्ते च मूर्धनि तथोरसि भूमि(रि) भागे ।
ते संवसन्ति सदृशाः यम(शत)पत्रनेत्रपद्मासनेन्द्रसुरकिन्नरपत्तनेषु ॥३॥
शिरो माला च षट्त्रिंशद् द्वादश कण्ठमालिका । कूर्परे षोडश प्रोक्ता द्वादश मणिबन्धयोः ॥४॥
अष्टोत्तरशतैर्युक्तमुपवीतं विधीयते । तदर्धमुरसो माला शिखायामेकमुच्यते ॥५॥
कर्णयोश्चापि षट्संख्या धारणक्रम ईरितः । संख्याहीनं न कर्तव्यमधिकं नैव दुष्यति ॥६॥
संख्याभेदे प्रवक्ष्यामि जपमाला तु या भवेत् । मोक्षार्थे पञ्चविंशत्या सप्तविंशतिः पौष्टिके ॥७॥
त्रिंशच्च धनसंपत्त्यै पञ्चदशाभिचारके । ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चेति चतुर्विधः ॥८॥
श्वेतो रक्तः सुवर्णाभः कृष्णवर्णः क्रमादमी । एतेषु ब्राह्मणः श्रेष्ठो जपमालाकृते भृशम् ॥९॥
अलाभे तु द्विजातीनामपि वा स्वस्वजातयः। अतिस्थूलोऽतिसूक्ष्मश्च स्फुटितो भङ्गुरो लघुः ॥१०॥
छिन्नः पुराधृतो जीर्णो रुद्राक्षो न वरः स्मृतः । मणौ यदुन्नतं स्थानं मुखं पृष्ठं तु निम्नकम् ॥११॥
घटयेदेकदिग् वत्स मणीन् सद्दन्तपङ्क्तिवत् । अन्योन्यघर्षणादेव जपहानिर्भवेद् ध्रुवम् ॥१२॥
दृढेन रज्जुना तेन वर्तनत्रयरूपतः । अन्योन्यमध्यदेशे तु कर्तव्या ग्रन्थयः शुभाः॥१३॥

वसिष्ठ और लिङ्ग पुराण में कहा गया है कि ब्रह्मा इन्द्रादि प्रमुख देवताओं की रक्षा के लिये शिव ने त्रिपुरा को मार डाला। तब त्रिपुरेश-निरोध से उत्पन्न जल रुद्राक्ष वृक्ष का समूह हो गया। रुद्राक्ष को कण्ठ में बत्तीस, मस्तक पर बीस, छः छः कानों पर, बारह-बारह हाथों पर, बाहुओं पर, सोलह-सोलह, एक शिखा में एवं एक सौ आठ वक्ष में धारण करने से धारक स्वयं नीलकण्ठ हो जाता है। पृथ्वी में जो लोग हाथों में, मूर्धा में और वक्ष पर, प्रभूत मात्रा में रुद्राक्ष धारण करते हैं, वे यम, ब्रह्मा, इन्द्र, देवता, किन्नर के नगरों में वास करते हैं। छत्तीस रुद्राक्षों की माला शिर पर, बारह की माला कण्ठ में, सोलह की माला बाहों पर, बारह मणिबन्ध में, एक से आठ रुद्राक्ष का जनेऊ, चौवन की माला हृदय में, एक शिखा में एवं कानों में छः-छः रुद्राक्षों को धारण करना चाहिये। उक्त संख्या से कम मात्रा में धारण नहीं करना चाहिये; अधिक धारणा से कोई दोष नहीं होता है। संख्याभेद से रुद्राक्ष की जपमाला इस प्रकार होती है—मोक्ष के लिये पच्चीस, पुष्टि के लिये सत्ताईस, धन-सम्पत्ति के लिये तीस एवं अभिचार के लिये पन्द्रह रुद्राक्ष की माला बनानी चाहिये। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र— ये चार प्रकार के रुद्राक्ष होते हैं। इनके रङ्ग क्रमशः श्वेत, लाल, स्वर्णाभ और काले होते हैं। इनमें माला बनाने के लिये ब्राह्मण श्रेष्ठ होता है। न मिलने पर द्विजातियों को अपनी-अपनी जाति के रुद्राक्ष से माला बनानी चाहिये। अतिस्थूल, अतिसूक्ष्म, टूटा हुआ, भंगुर, छोटा, छिन्न, पहले धारण किया हुआ और जीर्ण रुद्राक्ष को उत्तम नहीं माना जाता। रुद्राक्ष के उन्नत स्थान को मुख और धँसे हुए स्थान को पृष्ठ कहते हैं। दन्तपंक्ति के समान सटा-सटाकर माला बनानी चाहिये। परस्पर घर्षणयुक्त माला से जप में हानि होती है। मजबूत धागे से दो रुद्राक्ष के मध्य में तीन फेरे से गाँठ लगाना शुभ होता है।

चतुर्दशान्तं वक्त्राणि रुद्राक्षाणां क्रमाद्भवेत् । धारणस्य फलं तेषां वक्ष्यते विधिवत्क्रमात् ॥१४॥
एकवक्त्रः शिवः साक्षाद् ब्रह्महत्यां व्यपोहति । द्विवक्त्रं देवदेव्यौ तु गोवधं नाशयेद् ध्रुवम् ॥१५॥
त्रिवक्त्रमनलः साक्षात् स्त्रीहत्यां हरति क्षणात् । चतुर्वक्त्रः स्वयं ब्रह्मा गुरुहत्यां व्यपोहति ॥१६॥
पञ्चवक्त्रः शिवः साक्षात्सर्वपापैः प्रमुच्यते । षड्वक्त्रः कार्तिकेयस्तु धारयेद् दक्षिणे करे ॥१७॥
ब्रह्महत्यादिभिर्पापैर्मुच्यते नात्र संशयः । सप्तवक्त्रो महानागो ह्यनन्तो नाम नामतः ॥१८॥
गोवधस्वर्णचौर्याभ्यां मुच्यते सर्वदा नरः । अष्टवक्त्रो महासेन साक्षाद् देवो गणाधिपः ॥१९॥
विघ्नास्तस्य प्रणश्यन्ति सोऽन्ते याति परां गतिम् । नववक्त्रो भैरवः स्याद्धारयेद्वामहस्तके ॥२०॥
भुक्तिदो मुक्तिदः प्रोक्तो मम तुल्यो बली भवेत् । दशवक्त्रो भवेद्वत्स साक्षाद् देवो जनार्दनः ॥२१॥
पिशाचग्रहवेतालब्रह्मराक्षसपन्नगैः । संभवानि च दोषाणि क्षिप्रं नश्यन्ति धारणात् ॥२२॥
वक्त्रैकादशरुद्राक्षं रुद्रा एकादश स्मृताः । शिखायां धारयेन्नित्यं तस्य पुण्यफलं शृणु ॥२३॥

अश्वमेधसहस्रस्य वाजिपेयशतस्य च। गवां शतसहस्रस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम् ॥२४॥
तत्फलं समवाप्नोति वक्त्रैकादशधारणात्। वक्त्रद्वादशरुद्राक्षं भास्करद्वादशात्मकम् ॥२५॥
बहुस्वर्णाश्वगोमेधफलं प्राप्नोति धारणात्। वक्त्रत्रयोदशं वत्स रुद्राक्षं यदि धारयेत् ॥२६॥
पूज्यते सततं देवैः प्राप्यते पुण्यमुत्तमम्। चतुर्दशसुवक्त्रं वै रुद्राक्षं यदि धारयेत् ॥२७॥
मूर्ध्नि स्थिते तु वै नित्यं तस्मिन् यो म्रियते नरः। पवित्रमयवक्त्रस्तु शशिखण्डशिराः स्वयम् ॥२८॥
वन्द्यते सततं देवैः सत्यं च शृणु षण्मुख। बहुलं प्राप्यते पुण्यं भाग्यवान् जायते नरः ॥२९॥
स्नाने दाने जपे होमे वैश्वदेवे सुरार्चने। प्रायश्चित्ते तथा श्राद्धे दीक्षाकाले विशेषतः ॥३०॥
रुद्राक्षधारी भूत्वा च यत्किञ्चित्कर्म वैदिकम्। यो विप्रः सततं कुर्यात्तत्कर्म सफलं भवेत् ॥३१॥ इति।

पद्मपुराणे—

कण्ठे शिरसि हस्ते च कर्णयोरुपवीतके। रुद्राक्षधारणादेव रुद्रो भवति मानवः ॥१॥ इति।

रुद्राक्ष क्रमशः चौदह मुख तक के होते हैं; उनके धारण का फल क्रमशः इस प्रकार है—एक मुखी रुद्राक्ष साक्षात् शिव स्वरूप होता है, यह ब्रह्महत्या का नाश करता है। दो मुखी रुद्राक्ष शिव-गौरी स्वरूप होता है, यह गोवध के पाप को नष्ट करता है। तीन मुखी रुद्राक्ष साक्षात् अग्नि स्वरूप होता है, यह स्त्रीहत्या के पाप का नाश करता है। चार मुखी रुद्राक्ष स्वयं ब्रह्मा स्वरूप होता है जो गुरुहत्या के पापों से मुक्त करता है। पाँच मुखी रुद्राक्ष साक्षात् शिव स्वरूप होता है। जो सभी पापों से मुक्त करता है। छः मुखी कार्तिकेय स्वरूप होता है जिसे दाहिने हाथ में धारण करना चाहिये। इससे ब्रह्महत्यादि पापों का नाश होता है। सात मुखीरुद्राक्ष महानाग अनन्त नाम का होता है, जो गोवध सोना की चोरी के पापों को नष्ट करता है। आठ मुखी साक्षात् महासेन देव गणाधिप स्वरूप होता है, जिससे सभी विघ्नों का नाश होता है और अन्त में परम गति मिलती है। नवमुखी भैरव स्वरुप होता है जिसे बाँएँ हाथ में धारण करना चाहिये। यह भुक्ति-मुक्ति प्रदायक होता है। इसको धारणकर्त्ता मुझ शिव के समान बलवान होता है। दशमुखी रुद्राक्ष साक्षात् जर्नादन-सदृश होता है। इसके धारण करने से पिशाच, ग्रह, वेताल, ब्रह्मराक्षस और सर्पो के दोषों का नाश होता है। ग्यारह मुखी रुद्राक्ष ग्यारह रुद्र स्वरूप होता है। इसे शिखा में धारण करने का फल इस प्रकार है—एक हजार अश्वमेध, एक सौ वाजपेय यज्ञ एवं एक लाख गाय के विधिवत् दान से जो पुण्य फल मिलता है, वे सभी फल ग्यारह मुखी रुद्राक्ष के धारण से मिलते हैं। बारहमुखी रुद्राक्ष बारह सूर्य के समान होता है, इसके धारण करने बहुत सोना, अश्व एवं गोमेध के फल प्राप्त होते हैं। तेरह मुखी रुद्राक्ष को धारण करने से धारक सदैव देवताओं से पूजित होता है और उत्तम पुण्य प्राप्त करता है। चौदहमुखी रुद्राक्ष को शिर पर धारण किये हुये जो मनुष्य मरता है, वह पवित्रमय मुख वाला स्वयं चन्द्रशेखर होता है। देवता सदैव उसकी वन्दना करते हैं। इसके धारण करने से बहुत पुण्य प्राप्त करके मनुष्य भाग्यवान होते हैं। स्नान, दान, जप, होम, वैश्वदेव, देवार्चन, प्रायश्चित्त, श्राद्ध हैं दीक्षाकाल में रुद्राक्ष धारण कंरके जो विप्र वैदिक कर्म करता है, उसके सभी कर्म सफल होते हैं। पद्मपुराण में कहा गया है कि कण्ठ, शिर, हाथ, कान में और यज्ञोपवीत के समान जो रुद्राक्ष धारण करते हैं, वे मनुष्य साक्षात् रुद्रस्वरूप होते हैं।

शैवपुराणे—

रुद्राक्षान् धारयेद्विप्रः संध्यादिषु च कर्मसु। तत्सर्वं सफलं प्रोक्तं लक्षकोटिगुणं ध्रुवम् ॥१॥
लिङ्गदर्शनवत् पुण्यं भवेद्रुद्राक्षदर्शनात्। ततः कोटिशतं पुण्यं लभते धारणान्नरः ॥२॥
शिरसा धारणात्कोटिः कर्णयोर्दश कोटयः। गले बद्ध्वा कोटिशतं मूर्ध्नि कोटिसहस्रकम् ॥३॥
अयुतं चोपवीते च लक्षकोटिर्भुजद्वये। अप्रमेयफलं हस्ते सुरुद्राक्षधरो भवेत् ॥४॥ इति।

लैङ्गे वासिष्ठे—

खादन्मांसं पिबन्मद्यं संगच्छन्नन्त्यजातिभिः। सद्यो भवति पूतात्मा रुद्राक्षे शिरसि स्थिते॥१॥ इति।

स्कन्दपुराणे—

रुद्राक्षं कण्ठमाश्रित्य शुनोऽपि म्रियते यदि। सोऽपि रुद्रत्वमाप्नोति किं पुनर्मानुषादयः ॥१॥
उच्छिष्टो वा विकर्मस्थो युक्तो वा सर्वपातकैः। मुच्यते सर्वपापेभ्यो नरो रुद्राक्षधारणात् ॥२॥
रुद्राक्षमालिकां कण्ठे धारयन् भक्तिवर्जितः। पापकर्मापि यो नित्यं रुद्रलोके महीयते ॥३॥ इति।

शैवपुराणे—'अरुद्राक्षधरो भूत्वा यत्किञ्चित्कर्म वैदिकम्। कुर्याद्विप्रस्तु यो मोहान्न स प्राप्नोति तत्फलम्' इति। वासिष्ठे लैङ्गे—

रुद्राक्षधारणे लज्जा येषामस्ति महामुने। संकीर्णा सा भवेद् ब्रह्मंस्तेषां वंशपरंपरा ॥१॥ इति।

शिवपुराण में कहा गया है कि जो विप्र सन्ध्यादि कर्म में रुद्राक्ष धारण करता है, उसके सभी कर्म सफल होते हैं। उसे लाख-करोड़ गुणा अधिक फल मिलता है। शिवलिङ्ग दर्शन के समान ही रुद्राक्ष दर्शन का भी फल होता है। उससे सौ करोड़ अधिक पुण्य उसके धारण करने से होता है। शिर पर धारण करने से एक करोड़, कानों में धारण करने से दश करोड़, गले में धारण करने से सौ करोड़, मूर्धा में हजार करोड़, उपवीत में दस करोड़ और लाख करोड़ दोनों भुजाओं में धारण करने से रुद्राक्षधारी को पुण्यफल मिलता है। लिङ्गपुराण में कहा गया है कि जो मांस खाये, मद्य पीये, अन्त्यज स्त्रियों से मैथुन करे; वह शिर पर रुद्राक्ष को धारण करने मात्र से तुरन्त ही पूतात्मा हो जाता है। स्कन्दपुराण में कहा गया है कि कण्ठ में रुद्राक्ष धारण किए हुए कुत्ता भी यदि मर जाता है तो वह रुद्रत्व प्राप्त करता है; फिर मनुष्यों के बारे में क्या कहा जाय। उच्छिष्ट अथवा दुष्कर्म से युक्त या सभी पापों से युक्त मनुष्य भी रुद्राक्ष धारण करने से सभी पापों से मुक्त हो जाता है। कण्ठ में रुद्राक्ष माला धारण करके भक्तिरहित नित्य पाप करने वाला मनुष्य भी रुद्रलोक में जाता है। शैव पुराण में कहा गया है कि रुद्राक्ष धारण किए बिना जो विप्र वैदिक कर्म करता है, उसे उसका फल नहीं मिलता। लिङ्गपुराण में कहा गया है कि हे महामुनि रुद्राक्ष धारण करने में जो ब्राह्मण लज्जा का अनुभव करता है, उसकी वंशपरम्परा सङ्कीर्ण होती हैं।

अथान्येषामक्षविशेषाणां तु योगिनीतन्त्रे—

उक्तेष्वक्षेषूक्तसूत्रैर्ग्रथितां साधकोत्तमः। मालां विधाय वै पात्रे क्वचिद्गन्धादिचर्चिताम् ॥१॥
भूतशुद्ध्यादिकां पूजां समाप्य तत्र पूजयेत्। गणेशसूर्यविष्ण्वीशदुर्गाश्चावाह्य पूजयेत् ॥२॥
पञ्चगव्ये तु तां क्षिप्त्वा हौंमन्त्रेण च मन्त्रवित्। तस्मादुत्तोल्य तां मालां स्वर्णपात्रे निधाय च ॥३॥
पयोदधिघृतक्षौद्रशर्कराद्यैरनुक्रमात्। तोयधूपान्तिकैः कृत्वा पञ्चामृतविधिं बुधः ॥४॥
क्रमात्तत्रैव संस्थाप्य स्नापयेच्छीतलैर्जलैः। ततश्चन्दनसौगन्धिकस्तूरीकुङ्कुमादिभिः ॥५॥
तां संलिप्य ह्सौंबीजमष्टोत्तरशतं जपेत्। तस्यां नवग्रहांश्चापि दिक्पालांश्च प्रपूजयेत् ॥६॥
ततः संपूज्य च गुरुं गृह्णीयान्मालिकां शुभाम्। इति।

योगिनीतन्त्र में कहा गया है कि रुद्राक्ष को पूर्वकथित धागे में गूँथकर माला बनाकर पात्र में रखकर गन्धादि से अर्चन करे। भूतशुद्धि आदि करके पूजा-समाप्ति के बाद गणेश, सूर्य, विष्णु, शिव और दुर्गा का आवाहन करके पूजा करे। उस माला को 'हौं' मन्त्र से पञ्चगव्य में डुबो दे। पुनः उसमें से निकालकर उस माला को स्वर्णपात्र में रखे। दूध, दही, घी, मधु, शक्कर से क्रमश स्नान कराये। धूप देकर पञ्चामृत से स्नान कराये। क्रम से उसे स्थापित करे और शीतल जल से धोये। तब उसमें चन्दन, गन्ध, कस्तूरी, कुङ्कुमादि का लेप लगाकर ह्सौं बीजमन्त्र का एक सौ आठ बार जप करे। तदनन्तर वहीं पर नवग्रह और दिक्पालों की पूजा करे। तदनन्तर गुरु की पूजा करके माला को ग्रहण करे।

भैरवीतन्त्रे—

आदौ गणपतिं देवं सूर्यं विष्णुमुमापतिम्। दुर्गां च पूजयेद् विद्वान् मालायां सुसमाहितः ॥१॥
पञ्चगव्ये क्षिपेन्मालां प्रासादेनाभिमन्त्रिताम्। ततस्तूत्तोल्य तां मालां स्थापयेद्धेमपात्रके ॥२॥

अत्र प्रासादेन वक्ष्यमाणप्रासादमन्त्रेण।

पञ्चामृतेन संस्नाप्य शीतलेन जलेन च। चन्दनेन सुगन्धेन कस्तूरीकुङ्कुमादिभिः॥३॥
अभिषेकं ततः कृत्वा मन्त्रेनानेन मन्त्रवित्। प्राणं जीवसमारूढमौकारस्वरभूषितम्॥४॥
बिन्दुनादसमायुक्तं मन्त्रराजं प्रविन्यसेत्। नव ग्रहान् पूजयित्वा ततो दिक्पालपूजनम्॥५॥
तिलेन घृतयुक्तेन शक्तितो होमयेत्ततः। स्वर्णं तु दक्षिणां दद्याद्विप्रांस्तु परितोषयेत्॥६॥ इति।

अनेन प्रासादेन। प्रविन्यसेदष्टोत्तरशतं जपेदित्यर्थः। प्राणो हकारः, जीवः सकारः, हसौं इति। दक्षिणा आचार्याय। स्वर्णपात्राभावेऽश्वत्थपत्रं ग्राह्यमुक्तयोगिनीतन्त्रवचनात्। प्रकारान्तरं तु कुब्जिकातन्त्रे—

शिल्पिनं पूजयेदादौ वस्त्रगन्धानुलेपनैः। संहृष्टः कारयेन्मालां विशुद्धां स्वर्णरूप्यिणीम्॥१॥
यथायोग्यं वेधवतीं मालां कुर्याद्विचक्षणः। वर्णमानेन सा कार्या पञ्चगव्ये त्र्यहं क्षिपेत्॥२॥

वर्णमानेन मातृकावर्णमानेन तत्संख्ययेत्यर्थः। एतेन शतसंख्यैरक्षैर्माला कार्येति प्राप्येति।

सूत्रं चापि चतुर्थेऽह्नि क्षालयेदस्त्रमन्त्रकैः। समानवर्णसूत्रेण मापयेद् हृदयागुना॥३॥
सुवर्णादिगुणैर्वापि ग्रन्थयेत् साधकोत्तमः। ब्रह्मग्रन्थिं ततो दद्यान्नागपाशमथापि वा॥४॥
कवचेनाथ बध्नीयान्मालां ध्यानपरायणः। सर्वशेषे ततो मेरुं सूत्रद्वयसमन्वितम्॥५॥
ग्रन्थयेत्तारयोगेन बध्नीयात् साधकोत्तमः। एवं निष्पाद्य देवेशि प्रतिष्ठां च समाचरेत्॥६॥
स्थण्डिले मण्डलं कृत्वा यथाभागविधिक्रमात्। पूजयित्वा यथान्यायमिष्टदेवमनुक्रमात्॥७॥

मण्डलं स्वेष्टदेवतापूजाचक्रम्।

न्यासपूर्वं जपेन्मन्त्रमष्टोत्तरसहस्रकम्। जुहुयाच्च दशांशेन यस्य देवस्य यत्प्रियम्॥८॥

यत्प्रियमित्यनेन पुरश्चरणाङ्गहोमे यद् द्रव्यं यस्य देवस्योक्तं तेन होमयेदित्युक्तम्।

ततो मण्डलमध्ये तु तां मालां स्थापयेद्बुधः। अस्त्रमन्त्रं ततो न्यस्य मूलमन्त्रं ततो न्यसेत्॥९॥
अङ्गानि तानि विन्यस्य देववत् परिचिन्तयेत्। अभेदरूपमासाद्य मालां कुर्यात्तदात्मिकाम्॥१०॥
ततो बलिं यथान्यायं दद्यात्तैः साधकोत्तमः। एवं प्रतिष्ठामापाद्य मालायामिष्टदेवताम्॥११॥
आचार्यं पूजयेन्मन्त्री शिल्पिनं च यथाविधि। नान्यमन्त्रं जपेत्तत्र यदीच्छेत्सिद्धिमात्मनः॥१२॥ इति।

अस्त्रादिर्जप्तव्यमन्त्रस्य ग्राह्यः। बलिं मालायास्तैर्होमद्रव्यैः। तथा उत्तरतन्त्रे—

दृढसूत्रं नियुञ्जीत जपे तु प्रीतितो यथा। जीर्णे सूत्रे पुनः सूत्रं ग्रन्थयित्वा शतं जपेत्॥१॥ इति।

शैवागमे—

यदा संत्रुट्यते माला ग्रन्थयित्वा तु पूर्ववत्। प्रतिष्ठितायां तस्यां तु मन्त्रं जप्यादनन्यधीः॥१॥ इति।

(तथा—'तर्जन्या न स्पृशेत्सूत्रं कम्पयेन्नैव धूनयेत्। न स्पृशेद्वामहस्तेन करभ्रष्टं न कारयेत्। अक्षाणां चालनेऽङ्गुष्ठेनान्यमक्षं न संस्पृशेत्। जपकाले सदा विद्वान् मेरुं नैव विलङ्घयेत्। परिवर्तनकाले तु शब्दं नैव च कारयेत्। कलहश्च भवेच्छब्दे चलन्त्यां च चलेन्मतिः॥ चलिते चैव विद्वेषः स्फुटिते व्याधिसंभवः। हस्तच्युते महाविघ्नः सूत्रच्छेदे विनश्यति॥') इति, केचित्तु कराङ्गुलिभिरेव जपः कार्यः इति वदन्ति, तत्र प्रमाणं चिन्त्यम्, वस्तुतस्तु पुरश्चरणेऽपि ज्ञेयम्। जपमालाभावे करेणैव जपगणना कार्या। उक्तं च नारदपञ्चरात्रे— 'अथाङ्गुलिभिरेवापि जपकर्म समारभेत्।' प्रपञ्चसारेऽपि (२०.४०)—

पद्मासनः प्राग्वदनोऽप्रलापी तन्मानसस्तर्जनिवर्जिताभिः।
अक्षस्रजा वाङ्गुलिभिर्जपेत्तं नातिद्रुतं नातिविलम्बितं च॥१॥ इति।

भैरवीतन्त्र में कहा गया है कि माला में सर्वप्रथम विद्वान् साधक गणेश, सूर्य, उमापति, विष्णु, दुर्गा का पूजन समाहित चित्त होकर करे। तब माला को पञ्चगव्य में डुबो दे। प्रासाद मन्त्र से उसे अभिमन्त्रित करे। वहाँ से निकालकर माला को सोने के पात्र में स्थापित करे। पञ्चामृत से और शीतल जल से स्नान कराकर चन्दन, सुगन्ध, कस्तूरी, कुङ्कुम मिलाकर उसका अभिषेक करे। तब उसे मन्त्र से अभिन्त्रित करे। तदनन्तर उसमें 'ह्सौं' इस मन्त्रराज का न्यास करे अर्थात् एक सौ आठ जप करे नवग्रह पूजा करके दश दिक्पालों की पूजा करे। तिल और घी से यथाशक्ति हवन करे। दक्षिणा में सोना देकर विप्रों को परितुष्ट करे। कुब्जिकातन्त्र में कहा गया है कि पहले शिल्पियों की वस्त्र गन्ध अनुलेप से पूजा करे। तदनन्तर हर्षित होकर विशुद्ध स्वर्णरूपिणी माला बनाये। यथायोग्य विद्वान् वेधवती माला बनाये। यह कार्य वर्णमान से करे। तब तीन दिनों तक पञ्चगव्य में उसे डुबोये रखे। वर्णमान का अर्थ मातृका वर्णसंख्या से है। चौथे दिन धागे को अस्त्रमन्त्र से क्षालित करे। समान वर्ण के धागे से उसे गूँथे। अथवा सोने के तार से माला को गूँथे। दो मणि के बीच में ब्रह्मगाँठ या नागपाश लगाये। ध्यानपरायण होकर कवच से माला बाँधे। सबके बाद दोनों सूत्रों को मिलाकर मेरु को गूँथे। तारयोग से गाँठ लगाये तब बाँधे। इस प्रकार माला को निष्पादित करके उसकी प्रतिष्ठा करे। यथाभाग विधि क्रम से स्थण्डिल पर मण्डल बनाये। यथान्याय अनुक्रम से इष्टदेवता की पूजा करे। न्यासपूर्वक एक हजार आठ मन्त्र का जप करे। दशांश से हवन देवता के प्रिय पदार्थ से करे। इसके बाद मण्डल के बीच में माला को स्थापित करे। अस्त्र मन्त्र का न्यास करके मूल मन्त्र का न्यास करे। तब अङ्ग न्यास करके उसका चिन्तन देववत् करे। माला और इष्ट में अभेद मानकर माला को देवस्वरूप माने। तब साधकोत्तम यथान्याय बलि प्रदान करे। इस प्रकार माला में इष्ट देवता की प्रतिष्ठा, आचार्य और शिल्पियों का पूजन यथाविधि करे। यदि सिद्धि की कामना हो तब अन्य मन्त्र का जप न करे।

उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि जपमाला में मनपसन्द दृढ़ सूत्र लगाये। धागे के टूटने पर फिर से नये धागे से गूँथकर उससे एक सौ जप करे। शैवागम में कहा गया है कि जब माला टूट जाय तब पूर्ववत् उसे पुनः गूँथे। उसकी प्रतिष्ठा में अनन्य बुद्धि से मन्त्रजप करे। जप के विषय में कहा गया है कि तर्जनी से न तो सूत्र का स्पर्श करे, न उसे कँपाये और न ही उसे हिलाये-डुलाये। बाँयें हाथ से उसका स्पर्श भी न करे और न ही हाथ से नीचे गिरने दे। अक्षों को चलाने के क्रम में अंगूठे से अन्य अक्षों का स्पर्श न करे। जपकाल में मेरु का लंघन भी न करे। माला बदलते समय आवाज नहीं करना चाहिये, क्योंकि इससे कलह होता है एवं माला को चलाने से मन चञ्चल होता है। साथ ही माला को हिलाने-डुलाने से द्वेष एवं तोड़ने से रोग होता है। हाथ से माला यदि गिर जाय तो अत्यन्त कष्टप्रद विघ्न एवं माला का सूत्र टूट जाय तो विनाश होता है। कुछ लोग कराङ्गुलि माला से जप करना भी बतलाते हैं। जपमाला के अभाव में अंगुलियों से ही जप-गणना करनी चाहिये। नारदपञ्चरात्र में कहा है कि अंगुलियों से ही जपकर्म का आरम्भ करना चाहये। प्रपञ्चसार में भी कहा है कि पद्मासन में बैठकर मौन होकर तन्मयतापूर्वक तर्जनी-रहित अक्षमाला या अङ्गुलिमाला से जप करे। जप न तो अति शीघ्रता से और न ही अत्यन्त धीमे करे।

करमालानिर्णयस्तत्फलञ्च

मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—'जपस्य गणानां कुर्यादथवाङ्गुलिपर्वभिः' इति। तत्प्रकारमाह श्रीभैरवीतन्त्रे—

अनामामध्यमारभ्य कनिष्ठानुक्रमेण तु। मध्यमामूलपर्यन्ता करमाला प्रकीर्तिता ॥१॥ इति।

गौतमोऽप्याह—'कनिष्ठानामिकाङ्गष्ठमध्यमाभिर्जपेत् सदा' इति। तदनामामध्यमूल—कनिष्ठामूल-मध्याग्रानामाग्रमध्यमाग्रमध्यमूलपर्यन्तमिति नवसु पर्वसु गणनायां कृतायां नववारं जपो भवति। एवं द्वादशवारं पुनः पुनरावर्तयित्वाष्टोत्तरशतजपो भवति। द्वादशोत्तरशतावृत्त्याष्टोत्तरसहस्रजपो भवति। इत्थमयुतादिष्वप्यूहनीयम्। वस्तुतस्तु तन्त्रान्तरदर्शनात् तर्जनीसहिताङ्गुलिभिरेव जपः कार्यः। यदुक्तं कुलमूलावतारे—

अथ वक्ष्ये महेशानि जपस्य गणनाफलम्। अङ्गुलीजपसंख्याजं फलमेकगुणं स्मृतम् ॥१॥
रेखयाष्टगुणं विद्यात् पुत्रजीवैर्दशाधिकम्। शतं स्याच्छेषमणिभिः प्रवालैस्तु सहस्रकम् ॥२॥

स्फाटिकैर्दशसाहस्रं मौक्तिकैर्लक्षमुच्यते। पद्माक्षैर्दशलक्षं तु सौवर्णैः कोटिरुच्यते॥३॥
कुशग्रन्थ्या च रुद्राक्षैरनन्तगुणितं भवेत्। श्वेतपद्माक्षमालाभिर्जपे स्यादमितं फलम्॥४॥
अङ्गुलीभिर्जपं कुर्वन् साङ्गुष्ठाङ्गुलिभिर्जपेत्। अङ्गुष्ठेन विना जप्तं विफलं भवति प्रिये॥५॥
पर्वभिर्वाङ्गुलीनां तु जपेदनुदिनं प्रिये। मध्यमानामिकामध्यपर्वद्वयमिह प्रिये॥६॥
मेरुप्रकल्पनं कुर्वन् प्रदक्षिणमनुक्रमात्। अनामामूलपर्वादिकनिष्ठानुक्रमेण तु॥७॥
तर्जन्यग्रादितो देवि मध्यमूलावसानकम्। गण्येच्च क्रमेणैवं किञ्चित्सङ्कोचयेत्तलम्॥८॥
अङ्गुलीर्न वियुञ्जीत जपकाले महेश्वरि। अङ्गुलीनां वियोगे तु च्छिद्रेषु स्रवते जपः॥९॥
उल्लङ्घ्य गणनां देवि न मन्त्रं प्रजपेत्क्वचित्। यतस्तज्जपमीशानि बलाद् गृह्णन्ति राक्षसाः॥१०॥
अथवा मध्यमामध्यमूलपर्वद्वयं प्रिये। मेरुं कृत्वा जपेद् देवि तर्जनीमूलकावधि॥११॥
अनामामध्यपर्वादिप्रादक्षिण्यक्रमेण वै। इति।

अत्राङ्गुलीजपो रेखाजपः पर्वजपश्चेति त्रिविधः करमालाजपः, तत्र कनिष्ठाद्यङ्गुष्ठपर्यन्तं पुनः पुनर्गणनाङ्गुलिजपः, कनिष्ठाद्यङ्गुलिगतरेखाभिर्जपो रेखाजपः, पर्वजपश्चेति स तु) प्रोक्तलक्षण एवेति। मातृकार्णवे—

स्वेष्टमन्त्रस्य ये वर्णाः स्वरव्यञ्जनभेदतः। पृथक्कृतास्तैः कुर्वीत वर्णमालां विशेषतः॥१॥
मेरुं च प्रणवं कुर्याज्जपेत्तन्मालया बुधः। शीघ्रं सिद्धिर्भवत्येव सत्यं सत्यं न संशय॥२॥
अंशाधिक्यं तु विज्ञाय प्रस्तारक्रमभेदतः। तद्भूतवर्णदशके व्यञ्जनानां सुरेश्वरि॥३॥
तत्तद्भूतस्वरैर्युक्तं कृत्वा योज्य स्वरत्रयम्। तत्तद्भूतप्रधानार्णं मेरुं कृत्वा विचक्षणः॥४॥
तन्मन्त्रं प्रजपेत्तत्र मालया सिद्ध्यति ध्रुवम्। मन्त्राणौषधिचूर्णस्य गुटिकाकृतमालया॥५॥
जपेत् सर्वार्थसिद्धिः स्यान्नात्र कार्या विचारणा। इति।

मन्त्रतन्त्रप्रकाश में कहा गया है कि अंगुलिपर्वों से भी जप की गणना करनी चाहिये। अंगुलिमाला से जप की विधि भैरवीतन्त्र में इस प्रकार कही गई है—अनामिका के मध्य पर्व से प्रारम्भ करके कनिष्ठानु क्रम से मध्यमा मूल तक करमाला होती है। गौतम ने भी कहा है कि कनिष्ठा अनामिका, अंगुष्ठ एवं मध्यमा से सदा जप करे। इस प्रकार अनामा मध्य मूल कनिष्ठा मूल मध्य अग्र अनामाग्र मध्यमा अग्रमध्य मूल तक नव पर्वों में नव बार जप होता है। इस प्रकार बार-बार बारह बार करने से एक सौ आठ जप होता है। इसी तरह एक सौ बारह आवृत्ति करने से १००८ जप होता है। तन्त्रान्तरों के अनुसार तो तर्जनीसहित अंगुलिमाला से ही जप होता है। जैसा कि कुलमूलावतार में कहा भी है—हे महेशानि! जपगणना के फल को कहता हूँ। अंगुलि जप का फल एकगुना होता है। रेखा से अष्टगुना होता है। पुत्रजीवक से दशगुना होता है। शेषमणियों से सौगुना होता है। मूँगा से हजार गुना होता है। स्फटिक माला से जप का फल दश हजार गुना है। पद्माक्ष से लाख गुना और सौवर्ण माला से जप करने पर करोड़ गुना फल होता है। कुशग्रन्थि और रुद्राक्ष माला से जप का फल अनन्त गुना होता है। श्वेत पद्माक्ष माला से जपफल भी अमित होता है। अंगुलि से जप में अंगूठे-सहित अंगुलि से जप करे। अंगुठे के बिना जप विफल होता है। अंगुलिपर्वों से जप प्रतिदिन करे। मध्यमा एवं अनामिका के दो पर्व को मेरु माने। मेरु की कल्पना प्रदक्षिण अनुक्रम से करे। अनामिका मूल पर्व से प्रारम्भ करके कनिष्ठा क्रम से तर्जनी के अग्र से मध्यमा के मूल तक गणना करे। क्रम में करतल को कुछ सङ्कुचित करे। जप के समय अंगुलियों को सटाये रखे। अंगुलियों को अलग-अलग रहने से छिद्रों से जप स्रवित होता है। गणना का उल्लङ्घन करके कभी जप न करे। क्योंकि उस जप को राक्षस बलपूर्वक ग्रहण कर लेते हैं अथवा मध्यमा के मध्य मूल दो पर्वों को मेरु बनाकर तर्जनी मूल तक जप करे। अथवा अनामा मध्य पर्वादि प्रादक्षिण्य क्रम से भी जप किया जाता है। यहाँ अंगुली जप, रेखा जप एवं पर्वजप के रूप में करमाला के तीन प्रकार कहे गये हैं। कनिष्ठादि अंगुष्ठ, पर्यन्त पुनः पुनः गणना अंगुलिजप होता है। कनिष्ठा आदि की अंगुलिगत रेखा से जप को रेखाजप कहा जाता है और वही पर्वजप भी कहलाता है।

मातृकार्णव में कहा गया है कि अपने इष्ट मन्त्र के जो वर्ण होते हैं, उन्हें स्वर-व्यञ्जनभेद से अलग-अलग करने पर विशेष वर्णमाला बनती है। इसमें प्रणव को मेरु बनाये। बुद्धिमान उस माला से जप करे। इससे शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है, इसमें संशय नहीं है। अंशाधिक्य जानकर प्रस्तार क्रमभेद से वह वर्णदशक व्यञ्जनों से होता है। ऐसा करके स्वरयुक्त करे और तीन स्वरों को जोड़े। ऐसा करने के बाद प्रधान वर्ण को मेरु बनाये। उस माला से जप करने पर मन्त्र निश्चित रूप से सिद्ध होते हैं। मन्त्र वर्णों की औषधि चूर्ण की गुटिका से माला बनाकर जप करने से सर्वार्थसिद्धि होती है इसमें कुछ भी विचारणीय नहीं है।

पुरश्चरणकालविहितानि

अथ पुरश्चरणकाले विहितानि, तत्र नारदः—

मनःसंहरणं शौचं मौनं मन्त्रार्थचिन्तनम्। अव्यग्रत्वमनिर्वेदो जपसंपत्तिहेतवः ॥१॥ इति।

त्रैलोक्यसंमोहनतन्त्रे—

लोभमात्सर्यरहितः कामक्रोधविवर्जितः। सर्वथा लभते सिद्धिमन्यथा निष्फलं भवेत् ॥१॥ इति।

कुम्भसम्भवः—

नित्यं नैमित्तिकं यद्यत् कुर्वन् वर्णाश्रमोदितम्। तदेव कर्म कुर्वीत तन्मनास्तत्परायणः ॥१॥
दान्तस्त्रिषवणस्नायी मौनी संमार्जितान्तरः। यजेत वैष्णवं कर्म स्थिरधीर्नियतेन्द्रियः ॥२॥ इति।

गौतमः—

स्वकर्मणि रतिर्यस्य तस्य सिद्धिरदूरतः। दूरतोऽपि न सिद्धिः स्यादितरस्य द्विजोत्तम ॥१॥
क्रूरस्यापि न सिद्धिः स्यादिति सत्यं न संशयः।

इतरस्य स्वधर्मानिरतस्य, दूरतो चिरकालेनापि। मन्त्रार्णवे—

भूशय्या ब्रह्मचारित्वं मौनं चाप्यनसूयता। नित्यं त्रिषवणस्नानं क्षुद्रकर्मविवर्जनम् ॥१॥
नित्यपूजा नित्यदानं देवतास्तुतिकीर्तनम्। नैमित्तिकार्चनं चैव विश्वासो गुरुदेवयोः ॥२॥
जपनिष्ठा द्वादशैते धर्माः स्युर्मन्त्रसिद्धिदाः। इति।

(ब्रह्मचारित्वमष्टविधमैथुननिवृत्तिः) तदुक्तं गोरक्षेण—

स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्। संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च ॥१॥
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः। विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्टलक्षणम् ॥२॥ इति।

अभिलाषपूर्वकस्मरणकीर्तनप्रेक्षणानि निषिद्धानि। केलिः परिहासादिबाह्यचेष्टा। गुह्यभाषणं संभोगार्थं रहोमन्त्रणम्। संकल्पो मानसं कर्म। अध्यवसायः संभोगनिश्चयः। त्रिषवणं स्नानं शक्तपरम्। 'स्नानं त्रिषवणं प्रोक्तमशक्त्या द्विः सकृच्चरेत्' इति वैशंपायनवचनात्। क्षुद्रं कर्म तु—'दम्भद्वेषौ तथोत्साद उच्चाटो भ्रममारणे। व्याधिश्च' इति स्मृत्यन्तरमिति नारायणीयोक्तम्।

पुरश्चरण काल में विहित—नारद ने कहा है कि मन का नियन्त्रण, शौच, मौन, मन्त्रार्थ-चिन्तन, अव्यग्रत्व एवं अनिर्वेद—ये सभी जपरूप सम्पत्ति के हेतु कहे गये हैं। त्रैलोक्यसम्मोहन तन्त्र में कहा गया है कि पुरश्चरणकाल में लोभ-मात्सर्यरहित एवं काम-क्रोधविवर्जित रहने से साधक को सभी सिद्धियाँ मिलती हैं; अन्यथा उसका जप निष्फल होता है। अगस्त्य ने कहा है कि वर्णाश्रमानुसार जो भी नित्य-नैमित्तिक कर्म कहे गये हैं, उन कर्मों को तन-मन से तत्पर होकर करना चाहिये। दान्त तीनों कालों में स्नान करने वाला मौनी, सम्मार्जित अन्त:करण से वैष्णव कर्म का यजन करे। उस समय साधक की बुद्धि स्थिर एवं अपनी इन्द्रियों पर उसका नियन्त्रण होना चाहिये। गौतम ने कहा है कि अपने कर्मों में जिसे स्नेह होता है, उससे सिद्धि दूर नहीं रहती। अपने धर्म से रहित होने पर सिद्धि नहीं मिलती। क्रूर को भी सिद्धि नहीं मिलती, यह सत्य

है। इसमें कोई संशय नहीं है। मन्त्रार्णव में कहा गया है कि भूमि पर शयन, ब्रह्मचर्य-धारण,मौनावलम्बन, ईर्ष्याराहित्य, नित्य त्रिषण स्नान, शुद्र कर्मों से विरक्ति, नित्य पूजा, नित्यदान, देवता की स्तुति एवं कीर्तन, नैमित्तिक पूजा, गुरु तथा देवता में विश्वास एवं जप में निष्ठा—ये बारह मन्त्रसिद्धि प्रदान करने वाले होते हैं। जैसाकि गोरक्षसंहिता में भी कहा गया है कि स्मरण, कीर्तन, परिहास, प्रेक्षण, गुह्य भाषण, सङ्कल्प, सम्भोग का निश्चय एवं क्रियानिष्पत्ति—ये मैथुन के आठ अङ्ग कहे गये हैं। क्रमशः इसके विपरीत आठ लक्षण ब्रह्मचर्य के कहे गये हैं। क्षुद्र कर्म हैं—दम्भ, द्वेष, उत्सादन, उच्चाटन, भ्रम, मारण एवं व्याधि।

नित्यनैमित्तिकजपकथनम्

नित्यपूजा नित्यं तर्पणपूर्वकमेव जपविधानात्, नैमित्तिकार्चनमयनादौ विशेषपूजा। तदुक्तं मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—

अष्टोत्तरसहस्रं तु कृत्वा तर्पणमादरात्। जपेत्प्रतिदिनं यत्तु नित्य एष जपः स्मृतः ॥१॥
अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। द्वादश्यां पूर्णिमायां तु तेषु नैमित्तिको जपः ॥२॥
नित्यात् त्रिगुणितः सोऽथ पूजा चैव हरेस्तथा। इति।

कपिलपञ्चरात्रे—'मन्त्रश्च देवतातारातिथिवारेषु जप्यताम्' इति। तथा च गौतमः—

ततो गुरोः पादपद्मं पुष्पाञ्जलिभिरर्चयेत्। तस्मादाशीः सदा ग्राह्या ततः सन्तोषमाचरेत् ॥१॥
सन्तुष्टे तु गुरौ देवः सन्तुष्टो नान्यथा भवेत्। इति।

जप का विधान नित्य पूजा एवं नित्य तर्पणपूर्वक ही कहा गया है। नैमित्तिक आदि विशेष पूजा कहे गये हैं; जैसा कि मन्त्रतन्त्रप्रकाश में कहा भी है—एक हजार आठ तर्पण आदरसहित करने के बाद प्रतिदिन जो जप किया जाता है, उसे नित्य जप कहते हैं। अयन, विषुव, चन्द्र-सूर्यग्रहण में, द्वादशी-पूर्णिमा में नैमित्तिक जप करना चाहिये। नित्य जप से तिगुना अधिक नैमित्तिक जप करना चाहिये। कपिलपञ्चरात्र में कहा गया है कि देवता, तारा, तिथि, वारों में मन्त्र का जप करना चाहिये। गौतम ने कहा भी है गुरु के चरणकमल का पुष्पाञ्जलि से अर्चन करे। सदा उनका आशीर्वाद ग्रहण करे। उनके सन्तोषजनक आचरण करे। गुरु के सन्तुष्ट होने पर देवता सन्तुष्ट होते हैं। ऐसा न होने पर कुछ नहीं होता।

गुरुसन्तोषफलम्

तथा श्रीभगवद्वाक्यम्—

सन्तुष्टो हि गुरुर्यस्य तस्य तुष्टं जगत्त्रयम्। नास्त्यसाध्यं जगत्यत्र सुप्रसन्ने गुरौ मुने ॥१॥
हृदि न्यसेद् गुरोर्वाक्यं न कदाचिद्विलङ्घयेत्। इति।

कुम्भसम्भवः—

स्नायाच्च पञ्चगव्येन केवलामलकेन वा। श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तमन्त्रैः स्नायादनन्तरम् ॥१॥
अनुतिष्ठेदनुष्ठेयं शुचिर्व्रततमोऽनिशम्। इति।

प्रपञ्चसारे (१०.४१)—'अथ तु हविष्यप्राशी नक्ताशी वा जपेन्मनुं चैवम्' इति। वाशब्दः समुच्चये।

भगवान् ने कहा है कि जिसका गुरु सन्तुष्ट रहता है, उससे तीनों लोक सन्तुष्ट होते हैं। गुरु के प्रसन्न होने पर तीनों लोकों में कुछ भी असाध्य नहीं रहता। गुरुवाक्य को हृदय में धारण करना चाहिये, उसका उल्लङ्घन कभी नहीं करना चाहिये।

कुम्भसम्भव ने भी कहा है कि पहले पञ्चगव्य से या केवल आँवला से स्नान करे। तब श्रुति-स्मृति-पुराणोक्त मन्त्रों से स्नान करे। अनुष्ठेय को कभी न छोड़े एवं रात-दिन पवित्र होकर व्रतपरायण रहे। प्रपञ्चसार में कहा गया है कि केवल रात में हविष्यान्न खाकर मन्त्र का जप करे।

भैक्षादिनियमः

फेत्कारिणीतन्त्रे—

भैक्षादिनियमाहारः सकृद्रात्रौ विधीयते। कन्दमूलफलैर्वापि कुर्यादशनमन्वहम् ॥१॥ इति।

त्रैलोक्यसंमोहनतन्त्रे—

गुरुगोविप्रबालेषु दीनान्धकृपणेषु च। भवेच्छुद्धमतिर्मन्त्री न च द्रोहं समाचरेत्॥१॥
पश्चाद्गोभ्यः समभ्यर्च्य ग्रासं दद्यात् सुशोभनम्। इति।

गौतमः—

गोषु भक्तिः सदा कार्या गोषु शुश्रूषणं तथा। नित्यं गोषु प्रसन्नासु गोपालोऽपि प्रसीदति॥१॥ इति।

भिक्षा आदि का नियम—फेत्कारिणीतन्त्र में कहा गया है कि भिक्षा मांग कर नियमपूर्वक रात में भोजन करे अथवा कन्द-मूल-फल का भोजन करे। त्रैलोक्यमोहन तन्त्र में कहा गया है कि गुरु, गाय, विप्र, बालक, दीन, अन्धों एवं कृपणों के प्रति अपनी बुद्धि को दयापूर्ण रखे, उससे कभी द्रोह न करे। पूजा के बाद गाय का अर्चन करके उसे गोग्रास प्रदान करे।

गौतम ने भी कहा है कि सदैव गाय में भक्ति करनी चाहिये। गायों की सेवा करनी चाहिये। गायों के नित्य प्रसन्न रहने पर गोपाल भी प्रसन्न होते हैं।

निषिद्धकथनम्

अथ निषिद्धानि त्रैलोक्यसंमोहनतन्त्रे—

नाप्रियं कस्यचिद् ब्रूयान्नानृतं वा कदाचन। न च्छायामाक्रमेद्विद्वान् विभीतककरञ्जयोः॥१॥
न कुर्यात्कस्यचित्किञ्चिन्न गृह्णीयाज्जपान्तरे। तैलाभ्यङ्गं न कुर्वीत मधु मांसं च वर्जयेत्॥२॥
स्त्रीषु संभाषणं नैव कुर्याद् देवि विमोहितः। न नग्नो न सुगन्धाढ्यो गीतवाद्ये विवर्जयेत्॥३॥ इति।

न गृह्णीयादिति सति संभवे, असंभवे तु तद् दिनभैक्षमात्रं ग्राह्यमिति भक्षमानयुक्तेः। विमोहितः कामपरवशः। प्रयोगसारे—'विभीतकार्ककारञ्जस्नुहीच्छायां न संश्रयेत्' इति। कुम्भसंभवः—

वाङ्मनः कर्मभिर्नित्यं निःस्पृहो वनितादिषु। स्त्रीशूद्रपतितव्रात्यनास्तिकोच्छिष्टभाषणम्॥१॥
असत्याश्लीलयोर्नित्यं भाषणं परिवर्जयेत्। सभ्यैरपि न भाषेत जपहोमार्चनादिषु॥२॥
वर्जयेद् गीतवाद्यादिश्रवणं नृत्यदर्शनम्। ताम्बूलं गन्धलेपं च पुष्पधारणमेव च॥३॥
मैथुनं तत्कथालापं तद्गोष्ठीं च विवर्जयेत्। असद्भाषणमत्यर्थं वर्जयेदन्यपूजनम्॥४॥
कौटिल्यं क्षौरमभ्भङ्गमनिवेदितभोजनम्। असङ्कल्पितकृत्यं च वर्जयेन्मर्दनादिकम्॥५॥
त्यजेदुष्णोदकस्नानं सुगन्धामलकादिकम्।

जप में निषिद्ध कार्य—त्रैलोक्यमोहन तन्त्र के अनुसार निषिद्ध कार्य ये हैं—किसी को अप्रिय न कहे, कभी झूठ न बोले, विद्वान कभी लिसोड़ा और करञ्ज की छाया को न लाँघे, जप के बाद किसी से कुछ ग्रहण न करे, तेल मालिश न करे, मधु-मांस का भक्षण न करे, मोहित होकर स्त्रियों से सम्भाषण न करे, न नङ्गे रहे और न ही सुगन्ध लगाये। गीत-वाद्य से दूर रहे। प्रयोगसार में भी कहा गया है कि लिसोड़ा, अकवन, करञ्ज एवं स्नुही की छाया का आश्रयण न करे। कुम्भसम्भव ने भी कहा है कि स्त्रियों से मन-वचन-कर्म से निःस्पृह रहे। स्त्री-शूद्र-पतित-व्रात्य-नास्तिक से उच्छिष्ट भाषण न करे। झूठों से भी बातचीत न करे। जप-हवन-अर्चन के समय बातचीत न करे। गीत-वाद्यादि का श्रवण एवं नृत्यदर्शन न करे। ताम्बूल न खाये। गन्धलेप न करे। पुष्प धारण न करे। मैथुन, उसका कथालाप एवं उसकी गोष्ठी न करे। असद्भाषण एवं अन्यपूजन न करे। कुटिलता, बाल कटाना, तेल लगाना, निवेदित भोजन एवं असङ्कल्पित कृत्य न करे। देह न दबवाये। गर्म जल से स्नान न करे। सुगन्ध एवं आमलक आदि का त्याग करे।

जपमन्तरा भाषणे प्रायश्चित्तम्

सभ्यैरित्यत्र प्रायश्चित्तमाह नारदः—

सकृदुच्चारिते शब्दे प्रणवं समुदीरयेत्। प्रोक्ते पामरशब्देऽपि प्राणायामं सकृच्चरेत्॥१॥

बहुप्रलापे चाचम्य न्यस्याङ्गानि ततो जपेत्। क्षुते चैव तथास्पृश्यस्थानानां स्पर्शने तथा ॥२॥ इति।

योगियाज्ञवल्क्यः—

यदि वाग्यमलोपः स्याज्जपादिषु कथञ्चन। व्याहरेद्वैष्णवं मन्त्रं स्मरेद्वा विष्णुमव्ययम् ॥१॥ इति।

इनके करने पर प्रायश्चित्त के विषय में नारद ने कहा है कि एक बार बोलने पर में ॐ का उच्चारण करे। पामर शब्द बोलने पर तुरन्त प्राणायाम करे। बहुत प्रलाप करने पर आचमन करके न्यास करके जप करे। किसी का स्पर्श हो जाने पर या न छूने योग्य स्थान से छू जाने पर भी इसी प्रकार से प्रायश्चित्त करे। महर्षि याज्ञवल्क्य ने भी कहा है कि जपादि में प्रमाद-वश कभी लोप हो जाने पर वैष्णव मन्त्र का जप करे अथवा अविनाशी विष्णु का स्मरण करे।

पुरश्चरणकर्तुर्नियमः

वायवीयसंहितायाम्—

पतितानामन्त्यजानां दर्शने भाषिते श्रुते। क्षुतेऽधोवायुगमने जृम्भणे जपमुत्सृजेत् ॥१॥
अप आचम्य चैतेषां प्राणायामं षडङ्गकम्। कृत्वा सम्यग्जपेच्छेषं यद्वा सूर्यादिदर्शनम् ॥२॥
मार्जारं कुक्कुटं क्रौञ्चं श्वानं गृध्रं खरं कपिम्। दृष्ट्वाचम्य चरेत्कर्म स्पृष्ट्वा स्नानं विधीयते ॥३॥
एवमादींश्च नियमान् पुरश्चरणकृच्चरेत्। इति।

तथा श्रीशिववचनम्—

क्रोधं क्षुतं मदं त्रीणि निष्ठीवनविजृम्भणे। दर्शनं च श्वनीचानां वर्जयेज्जपकर्मणि ॥१॥
आचान्तः संभवे तेषां स्मरेद्वा मां त्वया सह। ज्योतींषि च प्रपश्येद्वा कुर्यादा प्राणसंयमम् ॥२॥ इति।

मां महेश्वरम्। त्वया सह पार्वत्या सह। लिङ्गपुराणे—

सूर्योऽग्निश्चन्द्रमाश्चैव ग्रहनक्षत्रतारकाः। एते ज्योतींषि चोक्तानि विद्वद्भिर्ब्राह्मणस्तथा ॥१॥ इति।

तथा—

क्रोधो मदः क्षुधा तन्द्रा निष्ठीवनविजृम्भणे। श्वनीचदर्शनं निद्रा प्रलापोऽमी जपद्विषः ॥२॥ इति।

तथा विष्णुधर्मोत्तरे—

उपविष्टो जपेत्स्नातः क्षुतप्रस्खलितादिषु। पूजायां नाम कृष्णस्य सप्तवारं प्रकीर्तयेत् ॥१॥ इति।

फेत्कारिणीतन्त्रे—

जपकाले यदा पश्येदशुचिं मन्त्रवित्तमः। प्राणायामं ततः कृत्वा ततः शेषं समापयेत् ॥१॥
यदा चैवं भवेन्मन्त्री स्वयमप्यशुचिः पुनः। स्नात्वाचम्य यथान्यायं कृत्वा न्यासान् पुनर्जपेत् ॥२॥ इति।

न्यासमधिकारसंपादकम्। एतेन मूत्रोत्सर्जनादावशुचिसंभवे च स्नानमन्यथा प्राणायामषडङ्गन्यासान् कृत्वा शेषं समापयेदिति प्रतीयते। वैशम्पायनः—

अस्नातस्य फलं नास्ति तथातर्पयतः पितॄन्। नाप्यतर्पयतो देवान् नासत्यमभिजल्पतः ॥१॥
नैकवासा जपेन्मन्त्रं बहुवासाकुलोऽपि वा। इति।

योगिनीतन्त्रे—

अनास्थाजपमत्यन्तमश्रद्धा जपकर्मणि। आलस्यं भावनाशक्तिः सिद्धिनाशाय निश्चितम् ॥१॥
त्यजेद् दुष्टप्रवादं च परीवादं च वर्जयेत्। त्येजद् दुर्जनसंस्पर्शं साशङ्कादिभवं त्यजेत् ॥२॥ इति।

वायवीयसंहितायां—

उष्णीषी कञ्चुकी नग्नो मुक्तकेशो गलावृतः। अपवित्रकरोऽशुद्धः प्रलपन्न जपेत् क्वचित् ॥१॥

असंवृतौ करौ कृत्वा शिरसि प्रावृतोऽपि वा। चिन्ताव्याकुलचित्तो वा क्रुद्धो भ्रान्तः क्षुधान्वितः॥२॥
अनासनः शयानो वा गच्छन्नुत्थित एव वा। रथ्यायामशिवस्थाने जपेन्न तिमिरालये॥३॥
उपानद् गूढपादो वा यानशय्यागतस्तथा। प्रसार्य न जपेत्पादावुत्कटासन एव वा॥४॥ इति।

कपिलपञ्चरात्रे—
विक्षेपादथवालस्याज्जपहोमार्चनान्तरे। उत्तिष्ठति तदा न्यासं षडङ्गं विन्यसेत् पुनः॥१॥ इति।

अपवित्रकरः पवित्रं कुशः। 'अस्त्री कुशं कुशो दर्भपवित्रम्' इति हि कोशः। 'विना दर्भेण यत्कर्म विना सूत्रेण वा पुनः। राक्षसं तद्भवेत्सर्वं नेहामुत्रफलप्रदम्' इति कूर्मपुराणवचनेन तस्यावश्यकत्वाभिधानात्। सूत्रं यज्ञोपवीतम्। विष्णुरपि—'स्नातः सुप्रक्षालितपाणिपादः शुचिर्बद्धशिखो दर्भपाणिराचान्तः प्राङ्मुख उदङ्मुखो वोपविश्य मौनी ध्यानी देवताः पूजयेत्' इति। तत्र वामे बहुकुशाः, दक्षिणे पारिभाषिकं पवित्रम्।

पुरश्चरण करने वालों के लिये नियम—वायवीय संहिता में कहा गया है कि पतितों, अन्त्यजों का दर्शन, उनसे बातचीत, श्रवण, छींक, अधोवायु के निकलने और जम्भाई आने पर जप छोड़ दे। आचमन करके प्राणायाम और षडङ्ग न्यास करके सम्यक् रूप से शेष जप तब तक करे, जब तक सूर्योदय न हो। बिलाव, मुर्गा, क्रौंच, कुत्ता, गिद्ध, गदहा और बन्दर को देखकर आचमन करके स्नान करे। पुरश्चरण काल में इस प्रकार के आचार का पालन करे। भगवान् शिव ने भी कहा है कि क्रोध, छींक, मद, थूकने एवं जम्भाई की अवस्था में, कुत्तों एवं नीचों का दर्शन जप के समय न करे। ऐसा होने पर आचमन करे और उमा शिव का स्मरण करें; साथ ही तारा को देखने पर प्राणायाम करे।

लिङ्गपुराण में कहा है कि विद्वानों और ब्राह्मणों ने सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा, ग्रह-नक्षत्र, तारा—इनको तारा कहा है। साथ ही क्रोध, मद, क्षुधा, तन्द्रा, थूक, जम्भाई, कुत्ता एवं नीच का दर्शन, निद्रा एवं प्रलाप को जप का शत्रु कहा है।

विष्णुधर्मोत्तर में कहा गया है कि स्नान करके बैठकर जप करे। छींक आने एवं पूजा में स्खलन होने पर सात बार कृष्ण कृष्ण कहे। फेत्कारिणीतन्त्र में कहा गया है कि मन्त्रज्ञ को चाहिये कि जपकाल में यदि अपवित्र को देख ले तब तीन प्राणायाम करके शेष जप का समापन करे। जब मन्त्री स्वयं अपवित्र हो जाय तब पुनः स्नान करके यथोचित न्यास करके फिर से जप करे। आशय यह है कि मूत्रोत्सर्जन आदि से अपवित्र होने पर स्नान करे; अन्यथा प्राणायाम षडङ्ग न्यास करके शेष का सम्पादन करे। वैशम्पायन ने भी कहा है कि स्नान के बिना फल नहीं मिलता। स्नान के बाद पितरों का तर्पण करे। देवताओं के तर्पण किये बिना, बार-बार गलत उच्चारण करते हुये एवं एक ही वस्त्र धारण कर जप न करे। साथ ही बहुत वस्त्र पहन कर एवं व्याकुल होकर भी जप नहीं करना चाहिये।

योगिनीतन्त्र में कहा गया है कि जप में अनास्था, अत्यन्त अश्रद्धा, आलस्य, भावना में अशक्ति निश्चित ही सिद्धि के नाश के कारण होते हैं। जपकाल में दुष्ट प्रवाद और परिवाद छोड़ दे। दुर्जन का स्पर्श न होने दे। आशङ्का का त्याग करे। वायवीय संहिता में कहा गया है कि पगड़ी धारण कर, वस्त्र पहन कर नग्न होकर, केश खोलकर, गला ढककर, कुमारहित हाथ से एवं प्रलाप करते हुये। कभी भी जप न करे। हाथ खोलकर, शिर को ढककर चिन्ता व्याकुल चित्त, क्रुद्ध, भ्रान्त, भूखा। बिना आसन के, सोकर, खड़े होकर, चलते हुए, शिव स्थान से अन्यत्र, रथ पर बैठकर एवं अन्धकार में जप न करे। पैर में जूता आदि पहनकर यान, शय्या में तथा पैरों को पसार कर या उत्कटासन में जप न करे।

कपिलपञ्चरात्र में कहा गया है कि पादविक्षेप अथवा आलस्य जपकाल में न करे। आसन से उठने पर पुनः षडङ्ग न्यास करके तब जप करे।

कूर्मपुराण में कहा गया है कि बिना कुश के या बिना सूत्र के जो कर्म किये जाते हैं, उनको राक्षस ग्रहण कर लेते हैं और वे फलप्रद नहीं होते। विष्णु ने भी कहा है—स्नान करके हाथ-पैर धोकर शिखा बाँधकर कुशयुक्त हाथ से पूर्व मुख या उत्तर मुख बैठकर मौनावलम्बन कर ध्यानमग्न होकर देवता का पूजन करे।

कुशपवित्रसुवर्णधारणनियम:

तथा सन्ध्योपक्रमे कात्यायन:—

सव्ये पाणौ कुशान् कृत्वा कुर्यादाचमनक्रियाम् । ह्रस्वाः प्रचरणीयाः स्युः कुशा दीर्घाश्च बर्हिषः ॥१॥
दर्भाः पवित्रमित्युक्तमतः सन्ध्यादिकर्मसु । सव्यः सोपग्रहः कार्यो दक्षिणः सपवित्रकः ॥२॥ इति।

सव्ये वामे। ननु कीदृशा धार्या दक्षिणे धार्या नवेत्यत आह—ह्रस्वाः पार्वणपञ्चयज्ञादिप्रचारार्थाः, दीर्घा बर्हिःसंज्ञकाः प्रस्तारपरिस्तरणार्थाः। प्रचारादन्येषु सन्ध्यादिषु दर्भा बहव एव धार्या विशेषरहिताः कर्मसु शुद्धिसाधनं न त्वेकः। 'कुशोपग्रहः' इति 'कुशहस्तः समाहितः' इति 'अशून्यं तु करं कुर्यात् सुवर्णरजतैः कुशैः' इति पारस्करगोभिलादिभिरप्युक्तम्। अतो विशेषाभावात् सन्ध्यादिषु सव्यः सकुशमुष्टिः, दक्षिणस्तु 'अनन्तर्गर्भिणं साग्रं कौशं द्विदलमेव च। प्रादेशमात्रं विज्ञेयं पवित्रं यत्रकुत्रचित्' इत्युक्तलक्षणपवित्रयुक्तः। अन्तर्गर्भभिन्नं, गर्भगर्भि द्वितीयमन्तर्गर्भि तृतीयं च विहाय चतुर्थं ग्राह्यम्। लघुहारीतः—

जपे होमे तथा दाने स्वाध्याये पितृतर्पणे । अशून्यं तु करं कुर्यात् सुवर्णरजतैः कुशैः ॥१॥ इति।

सुवर्णधारणं तु दक्षिणेऽनामिकायाम् । 'अनामिकायां तद्धार्यं दक्षिणस्य करस्य च' इति हेमधारणप्रकरणे देवीपुराणवचनात्। रजतं तु तर्जन्यां धार्यम्। 'यत्रोपदिश्यते कर्म कर्तुरङ्गं न तूच्यते। दक्षिणस्तत्र विज्ञेयः कर्मणामपरः करः' इति कात्यायनवचनात् तर्जनीमूलस्य पितृतीर्थत्वेन दैवतरजतधारणं तत्रैव न्याय्यमित्येतन्मूलमहाजनाचारेण निर्णीतप्रामाण्यात् 'तर्जन्यां रजतं धार्यम्' इति स्मृतिसमुच्चयलिखितवचनाच्च। 'सव्यापसव्यवलितं ब्रह्मग्रन्थिसमन्वितम्। लङ्घयेत् पर्वमात्रं तु द्वितीयं नैव लङ्घयेत्' (इति वचनादनामामध्यपर्वणि सग्रन्थि पवित्रं धार्यम्। 'कर्मकाले प्रकुर्वीत सपवित्रामनामिकाम्। लङ्घयेदेकपर्वास्या द्वितीयं नैव लङ्घयेत्') इति शङ्खवचनाच्च। सुवर्णरजतैरिति बहुवचनं बहुधारणस्य कर्माङ्गत्वं व्यनक्ति। तच्च दधित्ववत्सुवर्णत्वरजतत्वजात्योर्द्व्यणुकादारभ्य वृतेरेकधारणेऽप्युपपद्यते इति। वामनपुराणे—

उदकेन विना पूजा विना दर्भेण या क्रिया । आज्येन च विना होमः फलं दास्यन्ति नैव ते ॥१॥ इति।

कुश की पवित्री एवं सुवर्ण धारण का नियम—सन्ध्या-वर्णनक्रम में कात्यायन ने कहा है कि बाँयें में कुश लेकर आचमन करे। छोटे कुश को प्रचरणीया और बड़े को बर्हिष कहते हैं। दभ्र को पवित्र कहते हैं। अत: सन्ध्या कर्म में बाँयें हाथ में कुशसहित कार्य करे एवं दाँयें में पवित्र रखे। लघुहारीत में भी कहा है कि जप, होम, दान, स्वाध्याय, पितृतर्पण में दाँयें हाथ की अनामिका में सुवर्ण, तर्जनी में चाँदी एवं मध्य पर्व में पवित्र धारण करना चाहिये। वामनपुराण में कहा गया है कि जल के बिना पूजा, दर्भ के बिना क्रिया और गोघृत के बिना हवन करने से कोई फल नहीं मिलता।

दर्भभेदादिकथनम्

स्मृत्यर्थसारे—

कुशाः काशा यवा दूर्वा उशीराश्च समं शरैः । गोधूमा व्रीहयो मुञ्जा दश दर्भाः सवल्वजाः ॥१॥
नभोमासस्य दर्शे तु शुचिर्दर्भान् समाहरेत् । अयातयामास्ते दर्भा विनियोज्याः पुनः पुनः ॥२॥
विरिञ्चिना सहोत्पन्न परमेष्ठिनिसर्गज । नुद पापानि सर्वाणि भव स्वस्तिकरो मम ॥३॥
इति मन्त्रं समुच्चार्य ततः पूर्वोत्तरामुखः । हुंफट्कारेण मन्त्रेण सकृच्छित्वा समुद्धरेत् ॥४॥
अच्छिन्नाश्चाप्यशुष्काग्राः पित्र्ये तु हरिताः शुभाः । अमूला देवकार्येषु प्रयोज्याश्च जपादिषु ॥५॥
सप्तपत्राः कुशाः शस्ता दैवे पित्र्ये च कर्मणि । अनन्तर्गर्भिणौ साग्रौ प्रादेशे तु पवित्रके ॥६॥
चतुर्भिर्दर्भपिञ्जूलैर्ब्राह्मणस्य पवित्रकम् । एकैकपर्णमुत्सृज्य वर्णे वर्णे यथाक्रमम् ॥७॥
सर्वेषां भवति द्वाभ्यां पवित्रं ग्रथितं तथा । त्रिभिस्तु शान्तिके कार्यं पौष्टिके पञ्चभिस्तथा ॥८॥

चतुर्भिश्चाभिचारे स्याद्विनिष्कारौश्चैककेन च। सपवित्रः सदर्भो वा कर्माङ्गाचमनं चरेत् ॥९॥
नोच्छिष्टं तद्भवेत्तस्य भुक्तोच्छिष्टं तु वर्जयेत्। यैः कृतः पिण्डनिर्वापः श्राद्धं वा पितृतर्पणम् ॥१०॥
विण्मूत्रादिषु ये दर्भास्तेषां त्यागो विधीयते। नीवीमध्यस्थितास्त्याज्या यज्ञभूमौ स्थितास्तथा ॥११॥
वामहस्ते स्थिते दर्भे न पिबेद् दक्षिणेन तु। वस्त्रादितोयग्रहणे न दोषः पिबतो भवेत् ॥१२॥
न ब्रह्मग्रन्थिनाचामेन्त्र दूर्वाभिः कदाचन। स्नाने होमे जपे दाने स्वाध्याये पितृतर्पणे ॥१३॥
सपवित्रौ सदर्भौ वा करौ कुर्वीत नान्यथा। कुशाभावे तु काशाः स्युः काशाः कुशसमाः स्मृता ॥१४॥
काशाभावे ग्रहीतव्या अन्ये दर्भा यथोचिताः। नार्द्रो लुनीयाद्रात्रौ वा लुनीयाद्वा न सन्ध्ययोः ॥१५॥
दर्भाभावे स्वर्णरौप्यताम्रैरपि क्रियाश्चरेत्।

इत्यास्तां विस्तरः।

स्मृत्यर्थसार में कहा गया है कि कुश, काश, यव, दूब, खश, शर, गेहूँ, सरसों, मुञ्ज एवं बल्वज—ये दश दर्भ कहे गये हैं। इनका संग्रह भादो मास के दर्श अमावस्या में करना चाहिये। इस तरह से लाये हुये दर्भ का व्यवहार बार-बार करना चाहिये। इनको ग्रहण करने का मन्त्र इस प्रकार है—

विरिञ्चिना सहोत्पन्न परमेष्ठिनिसर्गज। नुद पापानि सर्वाणि भव स्वस्तिकरो मम।।

यह मन्त्र कहकर पूर्व या उत्तरमुख होकर 'हुं फट्' मन्त्र से एक ही बार में उखाड़कर कुश का संग्रह करे। बिना टूटे और अग्रभाग में हरे कुश पितरों के लिये शुभ होते हैं। देवकार्य और जपादि में जड़रहित कुश प्रयुक्त होते हैं। सात पत्तों वाला कुश देव एवं पितर कर्म में प्रशस्त होता है। लम्बे मूल वाला एवं वित्ता भर लम्बा कुश पवित्र होता है। ब्राह्मण का पवित्र चार दर्भ पिञ्जूल से होता है। एक-एक पत्ते को तोड़कर सभी वर्णों के सभी कार्यों हेतु पवित्र में दो गाँठ लगाये। शान्ति कर्म में तीन गाँठ लगाये। पौष्टिक कार्य में पाँच गाँठ लगाये। अभिचार में चार गाँठ लगाये। विद्वेषण में एक ही गाँठ लगाये। पवित्र और दर्भसहित कर्माङ्ग में आचमन करे। इससे यह जूठा नहीं होता। भुक्त एवं उच्छिष्ट कुश देवादि कार्य में वर्जित हैं। पिण्डदान, श्राद्ध, पितृतर्पण में ये प्रयोज्य हैं। पुरीष-पेशाब करने के समय इन्हें त्याग देना चाहिये। नीवी मध्य में स्थित कुश त्याज्य होता है। यज्ञ भूमि में स्थित कुश भी त्याज्य होता है। बाँयें हाथ में दर्भ लेकर दाँयें हाथ से आचमन न करे। वस्त्रादि से जल ग्रहण कर पीने में कोई दोष नहीं होता। ब्रह्मग्रन्थि युक्त दूर्वा से भी आचमन न करे। स्नान, दान, होम, जप, स्वाध्याय, पितृतर्पण पवित्र और दर्भ हाथों में लेकर करे। इनके बिना न करे। कुश के अभाव में काश से समस्त करे; क्योंकि काश भी कुश के समान ही होते हैं। काश के अभाव में यथोचित अन्य दर्भ ग्रहण करे। आर्द्र, रात में तोड़े हुए या शाम में तोड़े हुए दर्भ ग्रहण न करे। दर्भ के अभाव में सोना-चाँदी ग्रहण कर क्रिया सम्पन्न करे।

नग्नभेदाः

नारदपञ्चरात्रे—

अपवित्रकरो नग्नः शिरसि प्रावृतोऽपि वा। प्रलपन् वा जपेद्यावत्तावन्निष्फलमुच्यते ॥१॥ इति।

नग्नमाहात्रिः—

नग्नो मलिनवस्त्रः स्यान्नग्नश्चार्द्रपटस्तथा। नग्नो द्विगुणवस्त्रः स्यान्नग्नः स्निग्धपटस्तथा ॥१॥
द्विकच्छोऽनुत्तरीयश्च नग्नश्चावस्त्र एव च। इति।

भविष्यपुराणे—

द्विकच्छः कच्छशेषश्च बहिःकच्छस्तथैव च। एककच्छः कच्छशून्यो नग्नः पञ्चविधः स्मृतः ॥१॥ इति।

देवलः—'बहुवासा भवेन्नग्नो नग्नः कौपीनवाससा' इति।

नारद पञ्चरात्र में कहा गया है कि कुशारहित, नग्न या शिर ढककर या बोलते हुये जो जप किया जाता है, वह निष्फल

होता है। नग्न के विषय में अत्रि ने कहा है कि मलिन वस्त्र धारण करने वाला, गीला धारण करने वाला, दो वस्त्र धारण करने वाला, स्निग्ध वस्त्र धारण करने वाला, दो कच्छा धारण करने वाला, उत्तरीयरहित एवं वस्त्ररहित—ये सभी नग्न कहे जाते हैं। भविष्य पुराण में कहा गया है कि द्विकच्छ, बिना कच्छ के, बहिःकच्छ, एककच्छ एवं कच्छ शून्य—ये पाँचों नग्न होते हैं। देवल ने बहुत वस्त्रधारी एवं कौपीनधारी को भी नग्न माना है।

प्रौढ़पादलक्षणम्

कात्यायनः—

दानमाचमनं होमं भोजनं देवतार्चनम्। प्रौढपादो न कुर्वीत स्वाध्यायं चैव तर्पणम्॥१॥
आसनारूढपादस्तु जानुनोर्जङ्घयोस्तथा। कृतावसक्थिको यस्तु प्रौढपादः स उच्यते॥२॥ इति।

मन्त्रतन्त्रप्रकाशे तु—उक्तनियमानभिधाय 'शक्तावेवं सर्वमेतदशक्तः शक्तितौ जपेत्' इत्युक्तम्।

कात्यायन ने कहा है कि दान, आचमन, हवन, भोजन, देवर्ताचन, स्वाध्याय एवं तर्पण प्रौढ़पाद होकर नहीं करना चाहिये। आसन पर पैर, जानु एवं जङ्घों को सटाकर बैठने वाले को प्रौढ़पाद कहते हैं।

जपतद्भेदलक्षणम्

अथ जपस्तत्र कुम्भसम्भवः—

गुरोर्लब्धस्य मन्त्रस्य शश्वदावर्तनं हि यत्। अन्तरङ्गाक्षराणां च न्यासपूर्वो जपः स्मृतः॥१॥ इति।

अङ्गेति सुतीक्ष्णसंबोधनम्। अक्षराणामन्तरावर्तनं जपः इति संबन्धः। तद्भेदानाह वायवीयसंहितायाम्—

जपः स्यादक्षरावृत्तिर्वाचिकोपांशुमानसः। च उच्चनीचस्वरितैः शब्दैः स्पष्टपदाक्षरैः॥१॥
मन्त्रमुच्चारयेद्वाचा वाचिकः स जपः स्मृतः। शनैरुच्चारयेन्मन्त्रमीषदोष्ठौ च चालयेत्॥२॥
किञ्चिच्छ्रवणयोग्यः स्यादुपांशुः स जपः स्मृतः। जिह्वाजपः स विज्ञेयः केवलं जिह्वया जपः॥३॥
धिया यदक्षरश्रेणीं पदवर्णस्वरात्मिकाम्। उच्चरेदर्थसंस्मृत्या स उक्तो मानसो जपः॥४॥
उच्चैर्जपो विशिष्टः स्याद्यज्ञादेर्दशभिर्गुणैः। उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः॥५॥ इति।

नारदपञ्चरात्रे—

वाचिकः सर्वकार्येषु उपांशुः सर्वसिद्धिषु। मानसः मोक्षकार्येषु ध्यायेदेव च सर्वतः॥१॥ इति।

महाभारते—

सर्वेषामेव यज्ञानां जपयज्ञः प्रशस्यते। अहिंसया हि भूतानां जायते वा महाफलम्॥१॥
जपनिष्ठो द्विजश्रेष्ठः सर्वयज्ञफलं लभेत्। इति।

श्रीभगवद्वचनं च 'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि' इति। पाद्मनारदीदयोः—

यावन्तः कर्मयज्ञाः स्युः प्रदीप्तानि तपांसि च। ते सर्वे जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥१॥
जपेन देवता नित्यं स्तूयमाना प्रसीदति। प्रसन्ना विपुलान् भोगान्दद्यान्मुक्तिं च शाश्वतीम्॥२॥ इति।

भृगुसंहितायाम्—

ये पाकयज्ञाश्चत्वारो विधियज्ञसमन्विताः। ते सर्वे जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥१॥ इति।

जप एवं उसके भेद—अगस्त्य के अनुसार गुरु से प्राप्त मन्त्र का बार-बार अन्तराङ्ग अक्षरों से न्यासपूर्वक आवर्तन करना ही जप कहा जाता है। जप के भेद के विषय में वायवीय संहिता में कहा गया है कि अक्षरों का वाचिक, उपांशु एवं मानस उच्चारण जप कहलाता है। उच्च-नीच एवं स्वरित शब्दपूर्वक स्पष्ट पद एवं अक्षरों से जिस मन्त्र का उच्चारण वाणी से किया जाता है, वह वाचिक जप कहलाता है। होठों को चलाते हुये कुछ सुनने योग्य धीरे से मन्त्रोच्चारण करना उपांशु

जप कहलाता है। केवल जीभ से जप जिह्वाजप कहलाता है। बुद्धि से पद-वर्ण-स्वरात्मक अक्षर श्रेणी का अर्थस्मरण-पूर्वक मन ही मन उच्चारण मानस जप कहलाता है। यज्ञ से दशगुणा विशिष्ट उच्चारण जप है। उपांशु जप सौ गुना अधिक विशिष्ट है एवं मानस जप यज्ञादि से हजार गुना विशिष्ट है।

नारदपञ्चरात्र में कहा गया है कि वाचिक जप सभी कार्यों में करना चाहिये। सभी सिद्धियों के लिये उपांशु जप एवं मोक्ष के लिये मानस करना चाहिये। महाभारत में कहा गया है कि सभी यज्ञों में जपयज्ञ श्रेष्ट है। भूतों की हिंसा न करने से महान् फल प्राप्त होता है। जपनिष्ठ द्विजश्रेष्ठ सभी यज्ञों का फल प्राप्त करता है। पाद्म एवं नारदीय में भी कहा गया है कि जो भी यज्ञकर्म और कठिन तप हैं, वे सब जपयज्ञ की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं हैं। नित्य स्तूयमान देवता जप से प्रसन्न होते हैं और प्रसन्न होकर वे विपुल भोग एवं शाश्वती मुक्ति प्रदान करते हैं। भृगुसंहिता में कहा गया है कि विधियज्ञ से समन्वित जो चार पाकयज्ञ कहे गये हैं, वे जपयज्ञ की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं हैं।

विहितासनानि

अथासनानि, तत्र नारदः—

कुशाजिनाम्बरैर्युक्तं चतुरङ्गुलमूर्ध्वतः। चतुर्हस्तं द्विहस्तं च सुदृढं मृदु निर्मलम् ॥१॥
आसनं कल्पयित्वा तु जपकर्म समारभेत्। इति।

वैशम्पायनः—

सर्वसिद्ध्यै व्याघ्रचर्म ज्ञानसिद्ध्यै मृगाजिनम्। वस्त्रासनं रोगहरं वेत्रजं श्रीविवर्धनम् ॥१॥
कौशेयं पौष्टिकं ज्ञेयं कम्बलं दुःखमोचनम्। इति।

वस्त्रमाविकम्। वक्ष्यमाणब्रह्मयामलवचनेन केवलवस्त्रासने दोषश्रवणात्। 'वस्त्रेषु कम्बलं श्रेष्ठमासनं देवतुष्टये' इत्युत्तरतन्त्रवचनात्। भृगुः—

काम्यार्थं कम्बलं चैवाभीष्टदं रक्तकम्बलम्। धर्मार्थकाममोक्षाप्तिश्चैलाजिनकुशोत्तरे ॥१॥ इति।

ब्रह्मयामले—

कम्बलौ श्वेतरक्तौ च विचित्रौ नीलपीतकौ। व्याघ्राजिनं च कौरङ्गमन्यैर्नानाविधासनैः ॥१॥ इति।

जपकर्म के लिये विहित आसन—नारद ने कहा है कि कुश, अजिन एवं वस्त्र से चार अंगुल उच्च, चार हाथ लम्बा, दो हाथ चौड़ा सुदृढ़ मुलायम निर्मल आसन बनाकर जप प्रारम्भ करना चाहिये। वैशम्पायन ने कहा है कि व्याघ्रचर्म के आसन पर जप करने से सर्वसिद्धि एवं मृगाजिन पर ज्ञानसिद्धि होती है। जप में वस्त्रासन रोगहर एवं वेत्र का आसन श्रीविवर्धक होता है। कौशेय आसन पौष्टिक और कम्बल का आसन दुःखमोचक होता है।

उत्तरतन्त्र के अनुसार केवल वस्त्र के आसन पर बैठकर जप करना दोषयुक्त होता है; अतः देवता की तुष्टि के लिये कम्बल का आसन श्रेष्ठ होता है। भृगु ने कहा है कि काम्यकर्म में कम्बल ग्राह्य है। उसमें भी लाल कम्बल अभीष्टप्रद है। धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के लिये मृगछाला और केवल मोक्ष-हेतु कुशासन ग्राह्य है। ब्रह्मयामल में कहा गया है कि उजला, लाल, रंग-बिरंगा, नीला, पीला कम्बल; बघछाला, मृगछाला, कौरङ्ग आदि नाना प्रकार के आसन ग्राह्य हैं।

निषिद्धासनानि

अथ निषिद्धासनानि सारसंग्रहे—

वंशेष्टकाश्मधरणीतृणपल्लवनिर्मितम्। वर्जयेदासनं मन्त्री दारिद्र्यव्याधिदुःखदम् ॥१॥
नादीक्षितो विशेज्जातु कृष्णसाराजिने गृही। विशेद्यतिर्वनस्थश्च ब्रह्मचारी च स्नातकः ॥२॥ इति।

ब्रह्मयामले—

तृणपल्लवकाष्ठानि पाषाणं मृण्मयं तथा। वंशासनं च वस्त्रं च केवलं क्षितिरासनम् ॥१॥

एवमष्टविधं देवि चासनं परिवर्जयेत्। तृणासने भवेद्रोगः पल्लवे चित्तविभ्रमः ॥२॥
पाषाणे च तथोच्चाटो ज्वरः स्यान्मृण्मयासने। क्षित्यासनं भवेत्पीडापापविस्फोटदुःखदम् ॥३॥
वंशासने दरिद्रः स्याद्वस्त्रे स्थानविनाशनम्। चिन्ता च प्रबला हानिरुच्चाटो विविधो ज्वरः ॥४॥
शोकशूलादिका रोगा मृत्युः स्याद् दारुकासने। इत्थं चाष्टासनं देवि वर्जयेत् सर्वकर्मसु ॥५॥ इति।

जपकर्म में निषिद्ध आसन—सारसंग्रह के अनुसार बाँस, ईंट, पत्थर, भूमि, तृण एवं पल्लव से निर्मित आसन दारिद्र्य व्याधि एवं दुःखप्रद होने के कारण त्याज्य हैं। कभी भी अदीक्षित व्यक्ति को एवं गृहस्थ को कृष्ण मृगचर्म पर नहीं बैठना चाहिये; बल्कि संन्यासी, वनवासी, ब्रह्मचारी एवं स्नातक को ही कृष्ण मृगचर्म पर आसीन होना चाहिये।

ब्रह्मयामल में कहा गया है कि घास, पल्लव, लकड़ी, पत्थर, मिट्टी से निर्मित बाँस, वस्त्र एवं केवल मिट्टी के आसन होता—इन आठ प्रकार के आसनों पर बैठकर जप न करे। तृणासन से रोग होता है। पल्लवासन से चित्तविभ्रम होता है। पत्थर के आसन से उच्चाटन होता है। मिट्टी के आसन पर बैठने से बुखार होता है। पृथिवी पर बैठकर जप करने से पीड़ा एवं पाप का विस्फोट होता है। वंशासन दारिद्र्यप्रद होता है। वस्त्रासन से स्थान का विनाश होता है। साथ ही इससे चिन्ता, प्रबल हानि, उच्चाटन विविध ज्वर होता है। लकड़ी के आसन से शोक, शूलादि रोग से मृत्यु तक होती है। इस प्रकार सभी कर्मों में इन आठ आसनों को ग्रहण नहीं करना चाहिये।

जपपूर्वदिनकृत्यम्

अथ जपपूर्वदिनकृत्यम्। तत्र त्रैलोक्यसंमोहनतन्त्रे—
शुभे मुहूर्ते नक्षत्रे (शुद्धे काले यतव्रतः। गुरोराज्ञां समासाद्य ततः कर्म समारभेत् ॥१॥ इति।

सनत्कुमारः—
अथ वक्ष्यामि मन्त्रस्य पुरश्चरणमुत्तमम्। कृताभिषेको विधिवन्मन्त्रं लब्ध्वा गुरोर्मुखात् ॥१॥
शुभे मुहूर्ते नक्षत्रे) तिथौ स्नात्वा यथाविधि। भोजनाच्छादनाद्यैस्तु विप्रान् संतर्पयेद्यथा ॥१॥
भूवित्तवस्त्रभूषाद्यैर्गुरुं संतोष्य चात्मनः। आरभेत जपं पश्चात् तदनुज्ञापुरःसरम् ॥२॥ इति।

जप के पूर्वदिन के कृत्य—त्रैलोक्यमोहन तन्त्र में कहा गया है कि शुभ मुहूर्त, नक्षत्र एवं शुद्ध समय में व्रत के लिये उद्यत व्यक्ति को गुरु से आज्ञा लेकर जपकर्म का प्रारम्भ करना चाहिये। सनत्कुमार ने भी कहा है कि मन्त्र का उत्तम पुरश्चरण इस प्रकार होता है—अभिषेक के बाद गुरुमुख से विधिवत् मन्त्र प्राप्त करे। शुभ मुहूर्त-नक्षत्र-तिथि में स्नान करके भोजन-वस्त्रादि से ब्राह्मणों को तृप्त करके भूमि-धन-वस्त्र-भूषादि से अपने गुरु को सन्तुष्ट करके गुरु से आज्ञा लेकर जप प्रारम्भ करे।

क्षेत्रपालबलिमन्त्रः

प्रथमतन्त्रे—'क्षेत्रपालांश्च संपूज्य बलिं दद्याद्यथाविधि'। बलिमन्त्रस्तु—
पूर्वमेहिद्वयं पश्चाद्विदुषि स्यान्मुरुद्वयम्। भञ्जयद्वितयं भूयो तर्जयद्वितयं तथा ॥१॥
ततो विघ्नपदद्वन्द्वं महाभैरवतत्परम्। क्षेत्रपाल बलिं गृह्णद्वयं पावकसुन्दरी ॥२॥
बलिमन्त्रोऽयमाख्यातः सर्वकामफलप्रदः। तथैव परिवाराय बलिमेतेन चाहरेत् ॥३॥ इति।
मन्त्रः प्रयोगे वक्ष्यते। ततश्चोपवासः कर्तव्य।

प्रथमतन्त्र में कहा गया है कि क्षेत्रपाल की पूजा करके विहित मन्त्र से यथाविधि बलि प्रदान करे। बलि प्रदान करने का यह मन्त्र समस्त कामनाओं के फल को देने वाला है। उक्त मन्त्र से ही परिवार को भी बलि प्रदान करना चाहिये। बलि प्रदान करने के पश्चात् उपवास करना चाहिये।

जपारम्भकार्यम्

अथ जपारम्भस्तत्र महाकपिलपञ्चरात्रे—

एवं नक्षत्रतिथ्यादौ करणे योगवासरे। मन्त्रोपदेशो गुरुणा साधनं च शुभावहम् ॥१॥

इति दीक्षापुरश्चरणयोः समाननक्षत्रादिकं ज्ञेयम्। तत्र प्रागुक्तविधिना विचार्य समीचीनसमयं ज्ञात्वा समारभेत्। तदुक्तं दक्षिणामूर्तिकल्पे—

साधयेत् प्रवरो विद्वान् पूर्वपक्षं समाश्रितः। पुण्ये मुहूर्ते नक्षत्रे तिथौ स्नात्वा यथाविधि ॥१॥
नत्वा गुरुं गणेशं च नत्वा दुर्गां च मातृकाः। इति।

तथा कुम्भसंभवः—'ततः सङ्कल्प्य कुर्वीत पुरश्चरणमादरात्'। नारदीये—'सङ्कल्पं तु बुधः कुर्यात् स्वस्तिवाचनपूर्वकम्'। तथा देवलः—

अभुक्त्वा प्रातरेवाथ (राहारं) स्नात्वाचम्य समाहितः।
सूर्यादिदेवताभ्यश्च निवेद्य व्रतमाचरेत् ॥१॥

प्रातर्व्रतमाचरेदिति सम्बन्धः। व्रतं स्वकर्तव्यविषयो नियमसंकल्पः। तदुक्तं कुम्भसंभवेन—

कर्तव्यस्य समस्तस्य नियमग्रहणं व्रतम्। नियमव्यतिरेकेण सर्वं भवति निष्फलम् ॥१॥ इति।

अभुक्त्वा प्रातराहारमित्येकवचनादर्थात्पूर्वदिन एकभक्तं कार्यम्। अतश्चोपवासाशक्तस्यैकभक्तं ज्ञेयम्। सूर्यादिदेवताभ्य इति 'सूर्यः सोम' इत्यादिना मत्स्यपुराणोक्तपर्यायेण निवेद्येत्यर्थः। ते श्लोकास्तु प्रयोगे वक्ष्यन्ते। महाभारते—

गृहीत्वोदुम्बरं पात्रं वारिपूर्णमुदङ्मुखः। उपवासं तु गृह्णीयात् तथा संकल्पयेद् बुधः ॥१॥

उदङ्मुख इति नियमग्रहणार्थम्। सङ्कल्पयेत् मनसा नियमयेदिति। तथा गौतमः—'अन्तर्जानुकरं कृत्वा सलिलं सकुशोदकम्। फलं समभिसन्धाय' इति। तथा कुम्भसम्भवः—'निष्कामानामनेनैव साक्षात्कारो भवेत्' इति। साक्षात्कारः स्वेष्टदेवतादर्शनम्, अनेन पुरश्चरणेनेति। अत्र यद्यपि 'मनसा संकल्पयति, वा चाभिलपति, कर्मणा चोपपादयति' इति हारीतवचनात् 'तस्माद्यत्पुरुषो मनसाधिगच्छति, तद्वाचा वदति, तत्कर्मणा करोति' इति श्रुतेश्च मनसाधिगतस्य वाचाभिलापे क्रियमाणे येन रूपेण मनसाधिगच्छति तेनैव वाचाप्यभिलापः कर्तव्यः इति प्राप्यते, अतोऽमुककामेन मया इदं कर्तव्यमिति फलक्रियोल्लेख एव प्रतीयते, तथापि मासादीनामप्युल्लेखः कर्तव्यः। तथा च ब्रह्माण्डपुराणे—'मासपक्षतिथीनां च निमित्तानां च सर्वशः। उल्लेखनमकुर्वाणो न तस्य फलभाग् भवेत्' इति। मासपक्षतिथीनां च सर्वशः सर्वप्रकारेण सामान्यविशेषभावेन। तत्र सामान्येन (मासपक्षतिथिपदेन, विशेषतः कार्तिकशुक्लप्रतिपदादिपदेन। दृश्यते च 'अस्मिन्मासि सिते पक्षे' इत्यादिमुनीनां प्रयोगः। निमित्तानां च देशकालादीनां सर्वप्रकारेण तत्र सामान्येन) भारतवर्षपदेन, तस्य सर्वकर्मफलहेतुत्वात्। तदुक्तं विष्णुपुराणे—

इतः संप्राप्यते स्वर्गो मुक्तिमस्मात्प्रयाति हि। तिर्यक्त्वं नारकत्वं च यात्यतः पुरुषो मुने ॥
न खल्वन्यत्र मर्त्यानां कर्मभूमिर्विधीयते। इति।

विशेषेण काश्यादिपदेन, कालस्यापि सामान्यत अद्येत्यनेन विशेषतः सूर्योपरागादिपदेन च। न चैवं मासादीनां निमित्ततायामुल्लेखद्वयप्रसङ्गः संयोगपृथक्त्वन्यायेन सकृदुल्लेखस्यैवोभयार्थत्वात्, उल्लेखनं वचनप्रयोगमकुर्वतः फलाभावश्चाभिहितः। अत एव गरुडपुराणे श्राद्धप्रकरणे—'ॐ अद्यास्मिन्देशेऽमुकमासेऽमुकपक्षेऽमुकतिथावमुकराशिगते सवितरि' इत्याद्यभिलापः। अग्निपुराणे—'अद्य सोमार्कग्रहणे संक्रान्त्यादौ सुतीर्थके' इति। तथा—'मकरस्थे रवौ माघे प्रातःकाले तथामले। गोपदेऽपि जले स्नानं स्वर्गदं पापिनामपि' इति। पद्मपुराणे—विधिवाक्ये 'मकरस्थे रवौ माघे' इत्युक्तम्। एवमन्येष्वपि विधिवाक्येषु श्रूयते। फलं चात्र—'मन्त्रसिद्धिः सकामानां' इत्युक्तवचनात्। न चैहिकी एव मन्त्रसिद्धिरित्यभिलपनीयम्, उक्तनारदवचनेनोभयसिद्धेः पुरश्चरणफलत्वाभिधानादिति। तथा—'पूजा त्रैकालिकी नित्यं जपस्तर्पणमेव च। होमो ब्राह्मणभुक्तिश्च पुरश्चरणमुच्यते' इति कुम्भसंभवेन जपादीनामेव

पुरश्चरणशब्देनाभिधानाच्च पुरश्चरणमहं करिष्ये इत्यभिलपनीयम्। न च पुरश्चरणस्य चिरसमयसाध्यत्वेन 'अद्यामुकतिथौ पुरश्चरणं करिष्ये' इत्यनुपपन्नं स्यादिति। सांप्रतं करिष्ये, इति कृधातोः कृतिमात्रार्थत्वात् क्रियायाः कृतिसामान्यान्वितत्वेन वर्तमानतिथौ यया कयापि कृत्या संपादितया तत्तत्तिथौ कृतेर्निर्वाहत्वोपपत्तेरिति।

जप का आरम्भ—महाकपिलपञ्चरात्र के अनुसार शुभ नक्षत्र, तिथि, करण, योग, दिन में गुरु से उपदिष्ट मन्त्र का साधन करना कल्याणकारी होता है। दीक्षा और पुरश्चरण के लिये नक्षत्रादि समान ही होते हैं। पूर्वोक्त विधि से सम्यक् रूप से विचार कर समीचीन समय में दीक्षा-पुरश्चरण का प्रारम्भ करना चाहिये। जैसा कि दक्षिणामूर्ति कल्प में भी कहा गया है कि प्रवर विद्वान् पूर्व पक्ष के समाश्रित होकर मन्त्र का साधन करे। इसका प्रारम्भ पुण्य मुहूर्त, नक्षत्र, तिथि में स्नान करके करे। मन्त्र-साधन के पहले गुरु, गणेश, मातृका एवं दुर्गा को प्रणाम करे। तदनन्तर आदरपूर्वक स्वस्तिवाचन करते हुये सङ्कल्प करके पुरश्चरण का आरम्भ करे। देवल ने कहा है कि प्रातःकाल में बिना भोजन किए समाहित चित्त होकर स्नान करे। सूर्यादि देवता को निवेदन करके व्रत का आचरण व्रत के विषय में करे। अगस्त्य ने कहा है कि सभी कर्तव्य कर्म के लिये नियमों को ग्रहण करना ही व्रत कहलाता है। नियम में व्यतिरेक होने पर सभी कर्म निष्फल होते हैं। व्रत प्रारम्भ करने के पूर्व वाले दिन एक शाम भोजन करे। इस प्रकार उपवास करने में अशक्त होने पर एक शाम भोजन करने का विधान किया गया है। उपवास के विषय में महाभारत में कहा गया है कि गूलर के पात्र में जल भरकर उत्तरमुख होकर उपवास ग्रहण करने के पश्चात् सङ्कल्प करे अर्थात् मन को नियमित करे। अगस्त्य ने कहा है कि निष्काम साधकों को पुरश्चरण से ही मन्त्र का साक्षात्कार होता है। हारीत ने कहा है कि मन से निश्चित कर्म का ही वाणी से कथन करना चाहिये; फिर भी मासादि के नाम का उल्लेख अवश्य करना चाहिये। ब्रह्माण्डपुराण में कहा भी है कि मास, पक्ष, तिथि एवं निमित्त का उल्लेख न करने से व्रताचरण का कोई फल प्राप्त नहीं होता। निमित्त के रूप में देश-कालादि सभी का उल्लेख करना ग्रन्थकार को अभीप्सित है; जैसे भारतवर्ष। यतः भारतवर्ष को समस्त कर्मों के फल को प्रदान करने वाला बताया गया है। विष्णुपुराण में कहा भी गया है कि भारतवर्ष से ही स्वर्ग की प्राप्ति होती है एवं प्राणी मुक्ति प्राप्त कर हमारे पास आते हैं, तिर्यक्त्व एवं नारकत्व भी यहीं पर प्राप्त होता है। अन्यत्र कहीं भी मनुष्यों की कर्मभूमि नहीं है। अगस्त्य के अनुसार नित्यप्रति तीनों काल में पूजा, नित्य जप एवं तर्पण, होम तथा ब्राह्मणभोजन कराने से ही पुरश्चरण सम्पन्न होता है।

व्रतयज्ञविवाहादौ सूतकविचारः

एवं जपमद्यारभ्य करिष्ये इत्यतः परमाशौचेऽपि न जपबाधः। तदुक्तं विष्णुना—

यज्ञव्रतविवाहेषु श्राद्धे होमार्चने जपे। प्रारब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे च सूतकम् ॥१॥
प्रारम्भो वरणं यज्ञे संकल्पो व्रतजापयोः। नान्दीमुखं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिष्क्रिया ॥२॥ इति।

वस्तुतस्तु तान्त्रिकदीक्षावतामाशौचादिसंभवेऽपि नित्यार्चनबाधोपि नास्ति। 'जपो देवार्चनविधिः कार्यो दीक्षान्वितैर्नरैः। नास्ति पापं यतस्तेषां सूतकं वा यतात्मनाम्' इति देवीयामलवचनात्। 'सूतके मृतके चैव धूमोद्गारादिके तथा। जपार्चाद्यं तथा कुर्यान्मन्त्रन्यासपुरःसरम्' इति मृडानीतन्त्रवचनात्।'शिवविष्णवर्चने दीक्षा यस्य चाग्निपरिग्रहः। ब्रह्मचारियतीनां च शरीरे नास्ति सूतकम्' इति विष्णुयामलवचनात्। 'सूतके मृतके चैव नित्यं विष्णुमयस्य च। सानुष्ठानस्य विप्रेन्द्र सद्यः शुद्धिः प्रजायते' इति नारदपञ्चरात्रवचनात् 'उपासने तु विप्राणामङ्गशुद्धिः प्रजायते' इति पाराशरवचनाच्च। तत्र विप्राणामित्युक्तेः क्षत्रियादीनामधिकारो नास्तीति प्रतीयते। 'ब्राह्मणस्यैव पूज्योऽहं शुचेरप्यशुचेरपि। स्त्रीशूद्रस्यापि संस्पर्शो वज्रपातात् सुदुःसहः' इति विष्णुवचनात्। 'विप्रस्य तु सदैवाहं शुचेरप्यशुचेरपि। पूजां गृह्णामि शूद्रस्य पुनः स्वाचारवर्तिनः' इति शिववचनात्। 'नैवाप्रपूज्य भुञ्जीत शिवलिङ्गं महेश्वरि। सूतके मृतके चापि न त्याज्यं शिवपूजनम्' इति लिङ्गपुराणवचनाच्चेति। शूद्रस्येत्युपलक्षणं विप्रस्येत्युक्तत्वादिति एतत्तान्त्रिकपूजायामेव, पञ्चयज्ञादौ तु नाधिकारः। ('अग्निहोत्रादिकर्मार्थं शुद्धिस्तात्कालिकी स्मृता। पञ्चयज्ञान् प्रकुर्वीत ह्यशुचिः पुनरेव सः' इति गौतमवचनात्)। तात्कालिकी, यावता तत्कर्म सिद्ध्यति। नैमित्तिककाम्यपूजायां तु तान्त्रिकाणामपि नाधिकारः।

सूतके मृतके चापि वर्तमाने तु नारद। कामतः पूजिते मन्त्रे शान्तिकादौ च कुत्रचित् ॥१॥
जपेत् पञ्चशतं मन्त्री सिंहमन्त्रस्य भक्तितः। शतत्रयमकामाच्च प्रायश्चित्तविधौ जपेत् ॥२॥

इति नारदपञ्चरात्रवचनात्। अकामात् नैमित्तिकार्चने।

एक बार 'जपमद्यारभ्य करिष्ये' इस प्रकार सङ्कल्प हो जाने पर उत्कट आशौच प्राप्त होने पर भी उसमें कोई विघ्न नहीं होता, जैसा कि विष्णु ने कहा भी है—यज्ञ, व्रत, विवाह, श्राद्ध, हवन, अर्चन एवं जप के प्रारम्भ हो जाने पर सूतक हो जाने पर भी सूतक नहीं लगता; अपितु आरम्भ न करने पर ही सूतक का प्रभाव होता है। यज्ञ में प्रारम्भ में वरण, व्रत एवं जप में सङ्कल्प, विवाहादि में नान्दीमुख श्राद्ध एवं श्राद्ध में पाक बनाया जाता है। इन समस्त कर्मों के आरम्भ हो जाने पर मध्य में किसी भी प्रकार का सूतक उपस्थित हो जाने पर अनुष्ठीयमान कर्म में कोई विघ्न नहीं होता। तान्त्रिक दीक्षाप्राप्त व्यक्ति को सूतक उपस्थित होने पर भी उसके नित्यार्चन में कोई बाधा नहीं होती। देवीयामल में कहा भी है कि दीक्षित पुरुष को ही जप एवं देवार्चन करना चाहिये। दीक्षितों एवं संन्यासियों को सूतक उपस्थित होने पर भी उक्त कर्म करने में कोई दोष नहीं होता। मृडानीतन्त्र में भी कहा गया है कि सूतक, मरण, धूमोद्गारादि में भी मन्त्रन्यासपूर्वक जप-पूजा आदि करना चाहिये। विष्णुयामल के अनुसार शिव एवं विष्णु के अर्चन हेतु दीक्षित, अग्निहोत्री, ब्रह्मचारी एवं संन्यासी के शरीर पर सूतक का प्रभाव नहीं होता। नारदपञ्चरात्र में भी कहा गया है कि सूतक एवं मरण की स्थिति में नित्य विष्णु का अनुष्ठान करने वाले ब्रह्माण की तत्काल शुद्धि हो जाती है। पराशर के अनुसार भी उपासना में ब्राह्मणों की अंगशुद्धि होती है। विष्णु एवं शिव ने भी कहा है कि पवित्र अथवा अपवित्र ब्राह्मण के द्वारा ही मैं पूज्य हूँ। स्त्री एवं शूद्र का तो स्पर्श भी मेरे लिये वज्रपात के समान होता है। शिव तो आचारनिष्ठ शूद्र की पूजा को भी स्वीकार करने की घोषणा करते हैं। लिङ्गपुराण में कहा गया है कि बिना शिवलिङ्ग की पूजा किये भोजन नहीं करना चाहिये एवं सूतक अथवा मरण में भी शिवपूजा का त्याग नहीं करना चाहिये। फिर भी शूद्रों का तान्त्रिक पूजा में ही अधिकार समझना चाहिये, पञ्चयज्ञादि में उनका कोई अधिकार नहीं होता। आशौच में रहने वाली यह शुद्धि आरब्ध कर्म की पूर्णाहुति तक के लिये ही होती है। नैमित्तिक काम्य पूजा में तो तान्त्रिकों का भी अधिकार नहीं होता, जैसा कि नारदपञ्चरात्र में कहा भी गया है कि जननाशौच अथवा मरणाशौच उपस्थित होने पर काम्य पूजा में, मन्त्रजप में अथवा शान्तिपाठादि में सिंहमन्त्र का भक्तिपूर्वक पाँच सौ जप करना चाहिये, नित्य पूजा में भी प्रायश्चित्तस्वरूप तीन सौ जप करना चाहिये।

प्रतिदिनं समसंख्यया जपविधिः

वायवीयसंहितायाम्—

एकभक्तविधानेन बिलम्बत्वरितं विना। उक्तसंख्यं जपं कुर्यात् पुरश्चरणसिद्धये ॥१॥
देवतागुरुमन्त्राणामैक्यं संभावयन् धिया। जपेदेकमनाः प्रातःकालान्मध्यन्दिनावधि ॥२॥
यत्संख्यया समारब्धं तत्कर्तव्यं दिने दिने। यदि न्यूनाधिकं कुर्याद् व्रतभ्रष्टो भवेन्नरः ॥३॥ इति।

अत्र 'दिवा चैव जपं कुर्यात्पौरश्चरणिको विधिः' इति फेत्कारिणीतन्त्रेऽपि दिवापदाभिधानात्तु 'जपं रात्रौ च वर्जयेत्' इति कुम्भसंभवेन रजनीजपनिषेधाच्च, देशकालाद्युपद्रवसंभावनायां चतुर्थमुहूर्तपर्यन्तमपि जप्तव्यम्। पञ्चममुहूर्तस्य तु—'राक्षसीनाम सा वेला गर्हिता सर्वकर्मसु' इति मत्स्यपुराणे निन्दितत्वादिति। अत्र मुहूर्तशब्देन भाग उच्यते, दिवसस्य पञ्चमभागो निषिद्ध इत्यर्थः। तथा पिङ्गलामते—

नाध्यातो नार्चितो मन्त्रः सुसिद्धोऽपि प्रसीदति। नाजप्तः सिद्धिदानेच्छुर्नाहुतः फलदो भवेत् ॥१॥
पूजा ध्यानं जपं होमं तस्मात्कर्मचतुष्टयम्। प्रत्यहं साधकः कुर्यात्स्वयं चेत्सिद्धिमिच्छति ॥२॥
जपस्यान्तः शिवं ध्यायेद्ध्यानस्यान्तः पुनर्जपेत्। जपध्यानसमायुक्तः शीघ्रं सिद्ध्यति मन्त्रवित् ॥३॥

नारदः—

संख्यापूर्तौ निजैर्द्रव्यैर्जपसंख्यादशांशतः। यथोक्तकुण्डे जुहुयाद्यथाविधि समाहितः ॥१॥

अथवा प्रत्यहं जप्त्वा पूर्वस्मिंस्तावदेव हि। जुहूयात्तद्दशांशतः ....॥२॥ इति।

वायवीय संहिता में कहा गया है कि एक शाम भोजन करते हुए सामान्य रूप से अर्थात् न ही देर करके और न ही जल्दी-जल्दी पुरश्चरण-हेतु जप करना चाहिये। बुद्धि से देवता, गुरु एवं मन्त्र में ऐक्य की भावना करे। प्रातःकाल से दोपहर तक एकाग्रता से जप करे। जितनी संख्या से प्रथम दिन जप प्रारम्भ किया हो, उतनी ही संख्या में प्रतिदिन जप करे। न्यूनाधिक जप से पुरुष व्रतभ्रष्ट होता है।

पुरश्चरण हेतु दिन में ही यह जप करे। फेत्कारिणी तन्त्र के इस विधान के अनुसार रात्रि में जप नहीं करना चाहिये। अगस्त्य ने भी रात्रिजप का निषेध किया है। देश-काल आदि में उपद्रव होने की सम्भावना होने पर चौथे मुहूर्त तक भी जप करना चाहिये। पञ्चम मुहूर्त राक्षसी वेला होती है, जो कि सभी कर्मों में गर्हित कही गई है। पिङ्गलामत के अनुसार ध्यान-अर्चन के बिना सुसिद्ध मन्त्र भी सिद्ध नहीं होते। जप और हवन के बिना मन्त्र फलद नहीं होते। इसलिये सिद्धि चाहने वाले साधक को पूजा, ध्यान, जप और हवन—ये चार कर्म प्रतिदिन करना चाहिये। जप के बाद शिव का ध्यान करना चाहिये एवं ध्यान के बाद पुनः जप करना चाहिये। जप और ध्यान से समन्वित मन्त्रवित् को शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है। नारद का वचन है कि जपसंख्या पूरी होने पर जप का दशांश निर्दिष्ट द्रव्यों से यथोक्त कुण्ड में यथाविधि समाहित चित्त होकर हवन करना चाहिये अथवा प्रतिदिन जप करके दशांश हवन करना चाहिये।

जपादौ दिनातिक्रमे सिद्धिरोधः

वैशम्पायनः—

नैरन्तर्य्यविधिः प्रोक्तो न दिनं व्यतिलङ्घयेत्। दिवसातिक्रमात्पुंसो मन्त्रसिद्धिर्भवेन्न हि॥१॥
यावत्संख्यं जपेदह्नि पूर्वस्मिंस्तावदेव तु। दिनान्तरेऽपि प्रजपेदन्यथा सिद्धिरोधकृत्॥२॥

गौतमः—

ध्यानार्चनजपानां च प्राणायामास्त्रयस्त्रयः। आद्यन्तयोर्विधीयन्ते नासिकापुटचारिणः॥१॥ इति।

वैशम्पायन ने कहा है कि जप निरन्तर एवं विधिवत् करे। एक दिन भी उल्लङ्घन न करे। दिवस के उल्लङ्घन से मन्त्रसिद्धि नहीं होती। प्रारम्भ दिवस में जितनी संख्या में जप करे, उतनी ही संख्या में जप बाद के दिनों में भी करे; अन्यथा सिद्धि में अवरोध उपस्थित होता है। गौतम ने कहा है कि ध्यान-अर्चन-जप के आदि और अन्त में दोनों नासाछिद्रों से तीन-तीन प्राणायाम करना चाहिये।

जपादौ मालाया इतिकर्तव्यता

उत्तरतन्त्रे—

जपादौ पूजयेन्मालां तोयैरभ्युक्ष्य यत्नतः। निधाय मण्डलस्यान्तः सव्यहस्तगतां च वा॥१॥
इष्टमन्त्रेण मालायाः प्रोक्षणं परिकीर्तितम्।

ॐ मां माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि। चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव॥१॥
पूजयित्वा ततो मालां गृह्णीयाद् दक्षिणे करे। बीजं गणपतेः पूर्वमुच्चार्य तदनन्तरम्॥२॥
अविघ्नं कुरु माले त्वं गृह्णीयादित्यनेन च। इति।

मण्डलस्यान्तर्निधाय वा सव्यहस्ते गतां वाभ्युक्ष्य पूजयेदिति संबन्धः।

उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि जप प्रारम्भ करने के पहले माला का यत्नपूर्वक जल से अभ्युक्षण करके उसकी पूजा करे। मण्डल में रखकर या बाँयें हाथ में रखकर माला का प्रोक्षण इष्ट मन्त्र से करे। माला का प्रोक्षण इस मन्त्र से करना चाहिये—

ॐ मां माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि। चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव।।

इस प्रकार माला का पूजन सम्पन्न कर उसे दाँयें हाथ से ग्रहण करते हुये गणपति बीज का उच्चारण करके 'अविघ्नं कुरु माले त्वं' कहकर उक्त माला को जप-हेतु ग्रहण करना चाहिये।

जपादौ ध्यानादीतिकर्तण्यता

तथा—

जपं सभारभेत्पश्चात्पूर्ववद् ध्यानमास्थितः। हस्तेन स्रजमादाय चिन्तयन् मनसा शिवाम् ॥१॥
चिन्तयित्वा गुरुं मूर्ध्नि यथावर्णादिकं भवेत्। मन्त्रं च कण्ठतो ध्यात्वा पीतवर्णं हिरण्मयम् ॥२॥
महामायां च हृदये आत्मानं गुरुपादयोः। आज्ञाचक्रे ततः पश्चाद् गुरोर्मन्त्रस्य चात्मनः ॥३॥
देव्याश्चाप्येकतां नीत्वा सुषुम्नावर्त्मना ततः। तत्त्वस्वरूपमेकं तद्यच्चक्रं प्रतिलम्भयेत् ॥४॥
षट्चक्रेऽपि महामायां क्षणं ध्यात्वा प्रयत्नतः। लम्भयेन्मूलमन्त्रेण चादिषोडशचक्रकम् ॥५॥
आदिषोडशचक्रस्थां साधकानन्ददायिनीम्। चिन्तयन् साधको देवि जपकर्म सभारभेत् ॥६॥
भ्रुवोरुपरि नाडीनां त्रयाणां प्रान्त उच्यते। तत्प्रान्ते त्रिपथस्थानं षट्कोणं चतुरङ्गुलम् ॥७॥
रक्तं च कुलयोगज्ञैराज्ञाचक्रमितीष्यते। कण्ठे त्रयाणां नाडीनां वेष्टनं विद्यते नृणाम् ॥८॥
सुषुम्नेडापिङ्गलानां षट्कोणं तत्षडङ्गुलम्। तत्षट् चक्रमिति प्रोक्तं शुक्लं कण्ठस्य मध्यगम् ॥९॥
त्रयाणामपि नाडीनां हृदये चैकता भवेत्। तत्स्थानं षोडशारं स्यात् सप्ताङ्गुलप्रमाणतः ॥१०॥
तत्पीतमुक्तं योगज्ञैरादिषोडशचक्रकम्। ध्येयानामपि मन्त्राणां चिन्तनस्य जपस्य च ॥११॥
यस्मादाद्यं तु हृदयं तस्मादादीति गद्यते। इति।

तस्मात् प्रणवोच्चारात्।

ध्यान के बाद जप आरम्भ करे। हाथ में माला लेकर मन से शिवा का चिन्तन करे। मूर्धा में गुरु का ध्यान करके अपने वर्ण का ध्यान करे। कण्ठ में मन्त्र का ध्यान करके पीतवर्ण सोना के समान महामाया को हृदय में स्थापित कर आत्मा को गुरुचरणों में लगाये। तब आज्ञाचक्र में गुरु, मन्त्र, आत्मा और देवी के ऐक्य की भावना करे। सुषुम्ना मार्ग से चक्रों के प्रत्येक तत्त्व से प्रतिलम्भित करे। क्षणमात्र में षट्चक्र में भी महामाया का ध्यान करके आरम्भ से षोडश चक्र में मूल मन्त्र का लम्भन करे। आदि षोडश चक्र में स्थित होने पर साधक को देवी आनन्ददायिनी होती है। साधक देवी का चिन्तन करके जप का आरम्भ करे। भ्रुवों के ऊपर तीनों नाड़ियों का स्थान है, उसके तिमुहानी पर चार अंगुल का षट्कोण है। उसका वर्ण लाल है। कुल-योगज्ञानी आज्ञाचक्र की इच्छा करते हैं। मनुष्यों के कण्ठ में तीनों नाड़ियों का वेष्टन है। वहाँ सुषुम्ना-इड़ा-पिङ्गला से निर्मित छः अंगुल का षट्कोण है। कण्ठ के मध्य में जो षट्कोण है, उसका वर्ण उजला है। तीनों नाड़ियों की एकता हृदय में होती है। सात अंगुल के उस स्थान को षोडशार कहते हैं। उसका वर्ण पीला है। योगज्ञ के लिये यह षोडश चक्र है। मन्त्र का ध्यान-जप एवं चिन्तन पहले हृदय में किया जाता है; इसीलिये हृदय को आदि स्थान कहते हैं।

मन्त्रसेतुनिर्णयः

तदुक्तं तत्रैव—

निःसेतु च यथा तोयं क्षणान्निम्नं प्रसर्पति। मन्त्रस्तथैव निःसेतुः क्षणात्क्षरति यज्वनाम् ॥१॥
तस्मात् सर्वत्र मन्त्रेषु चतुर्वर्णा द्विजातयः। पार्श्वयोः सेतुमादाय जपकर्म समारभेत् ॥२॥

समारभेयुरित्यर्थः। छान्दसत्वादेकवचनम्। 'मन्त्राणां प्रणवः सेतुस्तत् सेतुः प्रणवः स्मृतः। चतुर्दशस्वरो योऽसौ शेष औकारसंज्ञकः। स चानुस्वारचन्द्राभ्यां शूद्रायां सेतुरुच्यते'। अत्र शिवामित्युपलक्षणं तेन स्वेष्टदेवता-मित्यर्थः। सर्वपूजासु संगतमिति स्वयमभिधानात्।

उत्तरतन्त्र में कहा है कि बाँध के बिना जैसे जल एक क्षण से भी कम समय में नीचे की ओर बह जाता है, वैसे ही बिना सेतु के मन्त्र जापकों से क्षण में ही दूर हो जाते हैं। इसलिये सभी मन्त्रों में चारो वर्णों के लिये यह आवश्यक है कि मन्त्र के दोनों ओर सेतु बाँधकर जपकर्म का प्रारम्भ करे। ॐकार को मन्त्रों में सेतु कहा गया है। चन्द्रबिन्दु-सहित चौदहवें स्वर को शूद्रों का सेतु कहा गया है। यह सेतु 'औँ' है।

मालावर्तनधारणनियमः

तथा—

पूजयित्वा ततो मालां गृह्णीयाद् दक्षिणे करे। मध्यमाया मध्यभागे वर्जयित्वा तु तर्जनीम् ॥१॥
अनामिकाकनिष्ठाभ्यां युताया नम्रभावतः। स्थापयित्वा तत्र मालामङ्गुष्ठाग्रेण तद्गतम् ॥२॥
प्रत्येकं बीजमादाय अङ्कादूर्ध्वेन भैरव। प्रतिवारं पठेन्मन्त्रं शनैरोष्ठौ न चालयेत् ॥३॥
मालाबीजं तु जप्तव्यं स्पृशेन्न हि परस्परम्। पूर्वं जपप्रयुक्तेन चाङ्गुष्ठाग्रेण भैरव ॥४॥
पूर्वबीजं जपन्यस्तु परबीजं तु संस्पृशेत्। अङ्गुष्ठेन भवेत्तस्य निष्फलः स जपः सदा ॥५॥
मालां स्वहृदयासन्ने धृत्वा दक्षिणपाणिना। देवीं विचिन्तयन् जप्यं कुर्याद्वामेन न स्पृशेत् ॥६॥ इति।

अङ्कादूर्ध्वेनाङ्गुष्ठाग्रेणेत्यर्थः। मालाबीजं तत्सम्बन्धिमणिः। शैवागमे—

तर्जन्या न स्पृशेत्सूत्रं कम्पयेन्न विधूनयेत्। न स्पृशेद्वामहस्तेन करभ्रष्टं न कारयेत् ॥१॥
अक्षाणां चालनेऽङ्गुष्ठेनान्यमक्षं न संस्पृशेत्। जपकाले सदा विद्वान् मेरुं नैव विलङ्घयेत् ॥२॥
परिवर्तनकाले च संघट्टं नैव कारयेत्। कलिः खटखटाशब्दे दोलमाने चलन्मतिः ॥३॥
पतिते चैव विद्वेषः स्फुटिते व्याधिसंभवः। हस्तच्युते महाविघ्नः सूत्रच्छेदे विनश्यति ॥४॥

पतिते मध्यमाया अङ्गुल्यन्तरगते। स्फुटिते मणौ। सूत्रच्छेदे गुणच्छेदेऽपीत्यर्थः। तथा—

कासे क्षुते च जृम्भायामेकमावर्तनं त्यजेत्। प्रमादात्तर्जनीस्पर्शो भवेदावर्तनं त्यजेत् ॥१॥
जपे निषिद्धसंस्पर्शे क्षालयित्वा पुनर्जपेत्। इति।

आवर्तनं मन्त्रस्य। योगिनीतन्त्रे—

सर्वास्वपि च मालासु मेरुः पार्श्वे विधीयते। न स्पृशेत्तं कदाचित्तु स्पृष्टे ह्यावर्तनं पुनः ॥१॥
न स्पृशेत् तर्जन्येति, सर्वत्र तर्जनीस्पर्शस्यैव निषेधात् अन्याङ्गुलीनामस्पर्शासंभवाद्वेति।

माला को पूजकर दाँयें हाथ में ग्रहण करे। मध्यमा के मध्य भाग में रखे। तर्जनी को अलग रखे। अनामिका-कनिष्ठा को जोड़े। अंगुष्ठाग्र से प्रत्येक मणि को एक-एक मन्त्र से जोड़कर अपनी ओर खींचे। प्रत्येक बार धीरे से मन्त्र को पढ़े, ओठों को न हिलाये। जप के समय माला की मणियाँ परस्पर स्पर्श न करें। पूर्व जप्त अंगुष्ठाग्र से मणि को खींचकर दूसरे मन्त्र के जप हेतु अंगुष्ठाग्र को मणि पर रखे। मन्त्रोच्चार के पहले मणि के स्पर्श से जप निष्फल होता है। माला को अपने हृदय के निकट दाँयें हाथ में पकड़कर देवी का चिन्तन करके जप करे। माला का स्पर्श बाँयें हाथ से न करे। शैवागम में कहा गया है कि तर्जनी से माला को स्पर्श न करे। न उसे हिलाये और न ही कम्पित करे। बाँयें हाथ से स्पर्श न करे। हाथ से नीचे भी न गिराये। माला का चालन अंगूठे से करे। अन्य अक्ष का स्पर्श न करे। जप के समय माला से खटखट शब्द न होने दे। माला हिलने से जापक का मन चञ्चल होता है। हाथ से माला छूटने पर विद्वेष होता है। फूटने पर व्याधि होती है। हाथ से गिर जाने पर महाविघ्न होता है। धागे के टूटने पर जापक का नाश होता है।

कास, छींक एवं जम्भाई आने पर माला के एक आवर्तन का त्याग करे। प्रमाद से तर्जनी से माला के छू जाने पर गतिमान आवर्तन को छोड़ दे। जप में निषिद्ध के स्पर्श होने पर माला को धोकर जप करे। योगिनीतन्त्र में कहा गया है कि सभी माला में पार्श्व में मेरु होता है। उसे कभी न छूये। कदाचित् स्पर्श हो जाने पर माला का एक आवर्तन पुनः करे।

मन्त्रजपविचारः

तथा महाकपिलपञ्चरात्रे—

एकचित्तः प्रशान्तात्माप्यक्षसूत्रकरः शुचिः। भुग्नग्रीवोन्नतः शान्तः कण्डून्मीलनवर्जितः ॥१॥
सविसर्गं समात्रं च सबिन्दुं साक्षरं स्फुटम्। न द्रुतं नापि विश्रान्तं क्रमान्मन्त्रं जपेत्सुधीः ॥२॥ इति।

नारदपञ्चरात्रे—

अक्षरादक्षरं यावत् सर्वदोषविवर्जितम्। विलम्बितं च नातीव तथा स्पष्टपदोद्भवम् ॥१॥
चित्तविक्षेपरहितमत्युत्कृष्टधियान्वितम् । एवं कृत्वा जपं विप्र विनिवेद्यश्च यागवत् ॥२॥ इति।

कपिल पञ्चरात्र के अनुसार एकाग्रचित्त होकर शान्तिपूर्वक शुद्ध हाथ में माला लेकर जप करे, जप के समय ग्रीवा सीधी रखे, खुजली एवं आलस्य न करे। साधक, सविसर्ग, समात्रा, सबिन्दु, साक्षर, स्पष्ट एवं न जल्दी न धीरे क्रम से साधक मन्त्र का जप करे। नारदपञ्चरात्र में कहा गया है कि अक्षर से अक्षर तक कोई दोष नहीं होता। अतीव धीमी गति से जप न करे। पदों को स्पष्ट बोलकर जप न करे। विक्षेपरहित चित्त से अति उत्कृष्ट बुद्धि से जप करके जापक ब्राह्मण जप को यज्ञ के समान निवेदित करे।

मालायाः मन्त्रोद्धारः

योगिनीतन्त्रे—

अष्टोत्तरशतं वापि जपान्ते शिरसि क्षिपेत्। त्वं माले सर्वदेवानां प्रीतिदा शुभदा मम ॥१॥
शिवं कुरुष्व मे भद्रे यशो वीर्यं च सर्वदा। पुष्करं शिखिबीजस्थं सूक्ष्मसूक्ष्मान्वितं भवेत् ॥२॥
आकाशशशिसंयुक्तं सिद्ध्यै हृदयसंयुतम्। एष पञ्चाक्षरो मन्त्रो मालायाः परिकीर्तितः ॥३॥
ग्रहणे स्थापने चैव पूजने विनियोजयेत् ।

पुष्करं हकारः, शिखी रेफः, सूक्ष्मसूक्ष्मः ईकारः, आकाशशशिभ्यां बिन्द्वर्धचन्द्राभ्यां युतं, सिद्ध्यै स्वरूपं, हृदयं नमः। फेत्कारिणीतन्त्रे—'यथाशक्ति जपं कृत्वा प्राणायामत्रयं चरेत्' इति।

योगिनीतन्त्र में कहा गया है कि एक सौ आठ जप के बाद माला का स्पर्श शिर से कराकर इस प्रकार प्रार्थना करे—
त्वं माले सर्वदेवानां प्रीतिदा शुभदा मम। शिवं कुरुष्व मे भद्रे यशोवीर्यं च सर्वदा।।

माला का पञ्चाक्षर मन्त्र है—ह्रीं सिद्ध्यै नमः। माला को ग्रहण, स्थापन और पूजन में इसका विनियोग करना चाहिये। फेत्कारिणी तन्त्र में कहा गया है कि यथाशक्ति जप करके तीन प्राणायाम करे।

जपनिवेदनमन्त्रः

नारदपञ्चरात्रे—

जपं तदनु कुर्वीत यथाशक्त्यायुतादिकम्। निवेदयेद्विभोस्तच्च वाक्कर्ममनसान्वितम् ॥१॥
पुण्डरीकाक्ष विश्वात्मन् मन्त्रमूर्ते जनार्दन। गृहाणेमं जपं नाथ मम दीनस्य शाश्वत ॥२॥
इत्युक्त्वार्घ्योदकं पुष्पे कृत्वा दक्षिणपाणिगम्। अग्रतो निक्षिपेद्विष्णोर्मूलमन्त्रेण नारद ॥३॥
मन्त्रात्मा भगवान् विष्णुरचिरात् सिद्धिदो भवेत्। इति।

शिवादावाह सोमशम्भुः—

मानसोपांशुवाष्पाणां(च्यानां) कुर्यादिकतमं जपम्। मूलस्याष्टशतं जप्त्वा न द्रुतं न विलम्बितम् ॥१॥
गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्। सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादात्त्वयि स्थिता ॥२॥
भोगी श्लोकं पठित्वामुं दक्षहस्तेन शम्भवे। मूलमन्त्रार्घ्यतोयेन वरहस्ते निवेदयेत् ॥३॥ इति।

नारदपञ्चरात्रे—

संपूज्याथ जपं कुर्याद् यावद्वै प्रहरद्वयम्। तदूर्ध्वे पूर्ववत्स्नात्वा विशेषेण विधानवित् ॥१॥
न्यासावसानमखिलं कर्म कुर्यात् पुरोदितम्। पूजाग्निहोमपर्यन्तं ततश्च जपमारभेत् ॥२॥
यावद्दिनावसानं तु भूयः स्नात्वा ततो द्विजः। उपास्य पूर्ववत्सन्ध्यां देवं संपूजयेत्पुनः ॥३॥
विसृज्य भोजनं कुर्यात् सततं तारकोदये ।

सन्ध्यामुपास्य देवं पूर्ववत् पूजयेदिति संबन्धः।

अथातो वर्ज्यावर्ज्यानि त्रैलोक्यसंमोहनतन्त्रे—

भिक्षाशी वा हविष्याशी शाकमूलफलाशनः। पयोव्रती वा नियतो जपेदेकाग्रमानसः ॥१॥ इति।

भिक्षास्वरूपमाह कुम्भसंभवः—

वैदिकाचारयुक्तानां शुचीनां श्रीमतां सताम्। सत्कुलस्थानजातानां भिक्षाशी वाग्रजन्मनाम् ॥१॥ इति।

नारदः—

चरुमूलफलक्षीरदधिभिक्षान्नसक्तवः। एतत्सप्तविधं प्रोक्तं पवित्रं व्रतभोजनम् ॥१॥ इति।

कपिलः—

यावो यवागूः शाकं च पयो भैक्षं हविष्यकम्। पूर्वं पूर्वं प्रशस्तं स्यादशनं मन्त्रसाधने ॥१॥ इति।

हविरुक्तं कुम्भसंभवेन—

सितैकविधहैमन्तं मुन्यन्नं स्वीयसंश्रृतम्। अशूद्रावहतं पद्भ्यामनुत्तोल्यहतं च यत् ॥१॥
दधि क्षीरं घृतं गव्यमैक्षवं गुडवर्जितम्। तिलाश्चैव सिता मुद्गाः कन्दः केमुकवर्जितः॥२॥
नारिकेलफलं चैव कदली लवली तथा। आम्रमामलकं चैव पनसं च हरीतकी ॥३॥
व्रतान्तरप्रशस्तं च हविष्यं मन्यते बुधः। अवैष्णवमलभ्यं चाप्यप्रशस्तं व्रतान्तरे ॥४॥
त्याज्यमेवात्र तत्सर्वं यदीच्छेत्सिद्धिमात्मनः। लघुमिष्टहिताशी च विनीतः शान्तचेतनः ॥५॥

मुन्यन्नं नीवारः। शातातपः—

हैमन्तिकं सिता स्विन्नं शालिमुद्गास्तिला यवाः। कलायकङ्गुनीवारा वास्तूकं हिलमोचका ॥१॥
षष्टिका कालशाकं च मूलकं केमुकेतरत्। कन्दं सैन्धवसामुद्रे गव्ये च दधिसर्पिषी ॥२॥
पयोऽनुद्धृतसारं च पनसाम्रे हरीतकी। पिप्पली जीरकं चैव नागरङ्गकतिन्तिणी ॥३॥
कदली लवली धात्री फलान्यगुडमैक्षवम्। अतैलपक्वं मुनयो हविष्यान्नं प्रचक्षते ॥४॥

मूलकं हविरपि वैष्णवानां निषिद्धम्। तदुक्तं विष्णुयामले—

यत्र मांसं तथा मद्यं तथा वृन्ताकमूलके। निवेदयेन्नैव तत्र हरेरैकान्तिकी रतिः ॥१॥ इति।

नारदपञ्चरात्र के अनुसार दश हजार तक जप यथाशक्ति करना चाहिये। उसे वचन-कर्म एवं मन से परमात्मा को निवेदित करना चाहिये। जप-निवेदन मन्त्र इस प्रकार है—

पुण्डरीकाक्ष विश्वात्मन् मन्त्रमूर्ते जनार्दन। गृहाणेमं जपं नाथ मम दीनस्य शाश्वत।।

इस मन्त्र को पढ़कर दाँयें हाथ में अर्घ्य जल और फूल लेकर मूल मन्त्र से विष्णु के आगे उसका निक्षेप करे। ऐसा करने से मन्त्रात्मा भगवान् विष्णु शीघ्र ही सिद्धिदायक होते हैं। सोमशम्भु ने शिवा से कहा है कि मानस, उपांशु एवं वाचिक में से कोई एक जप सामान्य अवस्था में एक सौ आठ बार करे। तदनन्तर निम्न श्लोक पढ़कर शंभु के दाहिने हाथ में अर्घ्यजल लेकर मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुये जप का समर्पण करे—

गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्। सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादात्त्वयि स्थिता।।

नारदपञ्चरात्र में भी कहा गया है कि पूजा करके मध्याह्न तक दो प्रहर जप करे। उसके बाद स्नान करके विशेष विधान को जानने वाला पूर्वोक्त न्यास तक सभी कर्म करे। तब पूजाग्नि हवन तक कर्म सम्पन्न कर जप करे। दिन की समाप्ति के बाद स्नान करके पूर्ववत् सन्ध्या में देवता का पूजन करे। विसर्जन करके रात्रि होने पर भोजन करे।

त्रैलोक्यमोहन तन्त्र में कहा गया है कि भिक्षाशी, हविष्याशी होकर या फल-मूल-शाक का भोजन करके अथवा केवल

दूध पीकर एकाग्र मन से जप करे। अगस्त्य के अनुसार भिक्षा का स्वरूप इस प्रकार है—वैदिक आचार से सम्पन्न, पवित्र, धनवान, सज्जन, उच्च कुल में उत्पन्न लोगों से भिक्षा माँगकर ब्राह्मण को भोजन करना चाहिये। नारद के अनुसार खीर, मूल, फल, दूध, दही, भिक्षान्न एवं सत्तू—ये सात प्रकार के पवित्र भोजन व्रत के योग्य होते हैं। कपिल ने कहा है कि यव, यवागू, साग, दूध, भिक्षा एवं हविष्य—ये क्रमशः मन्त्रसाधन में प्रशस्त भोजन होते हैं। अगस्त्य के अनुसार हेमन्त ऋतु में उत्पन्न चावल, नीवार, स्वोपार्जित, शूद्र से अस्पृष्ट, जिसका दाना पाँव से छुड़ाया हुआ न हो, दही, दूध, घृत, गव्य, ऐक्षव, गुडवर्जित, तिल, सिता, मूँग, कन्द, केमुकवर्जित नारियल फल, केला, लवली, आम, आमला, कटहल एवं हरीत की व्रत के बाद प्रशस्त हविष्य माने जाते हैं। अन्य व्रतों में अवैष्णव से प्राप्त भी प्रशस्त कहा गया है। सिद्धि चाहने वालों को इन सबों का त्याग कर देना चाहिये। सुपाच्य एवं मीठे अन्न का विनम्र एवं शान्त चित्त होकर भोजन करना चाहिये। शातातप के अनुसार हैमन्तिक सिता, स्विन्न, शालि, मूंग, तिल, यव, कलाय, कङ्गुनी, नीवार, बथुआ, हिलमोचका, षष्टिका, कालशाक, मूली, केमुक, कन्द, सेन्धा नमक, समुद्री नमक, दधि, गोघृत, दूध, कटहल, आम, हरीतकी, पिप्पली, जीरा, नागरङ्गक, इमली, केला, लवली, आमला आदि फल, गुडरहित इक्षुरसनिर्मित पदार्थ एवं अतैल पक्व को मुनि हविष्यान्न कहते हैं। मूली के हवि होने पर भी वह वैष्णवों के लिये त्याज्य है; जैसा कि विष्णुयामल में कहा भी गया है—जहाँ मांस, मद्य और वृन्ताकमूलक का शाक हो, वहाँ विष्णुभक्त को नैवेद्य नहीं देना चाहिये।

व्रतवर्ज्यानि

अथ वर्ज्यानि। तत्र कुम्भसंभवः—

लवणं च पलं चैव क्षारं क्षौद्रं रसान्तरम्। माषमुद्गसमूराद्यान् कोद्रवांश्चणकानपि ॥१॥

क्षारं लवणमिति सम्बन्धः। मुद्गाः सिताः। उत्तरतन्त्रे—

स्विन्नं च लवणं मांसं गृञ्जनं कांस्यभोजनम्। माषाढकीमसूरांश्च कोद्रवांश्चणकानपि ॥१॥
ताम्बूलं च द्विभुक्तं च दुस्संवादं प्रमत्तताम्। वर्जयेत्.................................... ॥२॥ इति।

व्रत में वर्ज्य—अगस्त्य के अनुसार नमक, पल, क्षार, क्षौद्र, रसान्तर, उड़द, मूँग, मसूर एवं को दो तथा चना का सेवन व्रत में वर्जित है। उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि स्विन्न, नमक, मांस, गृञ्जन, कास्य पात्र में भोजन, उड़द, आढ़की, मसूर, चना, कोदो, चना, ताम्बूल, दो बार भोजन, निन्दित वार्ता एवं प्रमत्तता व्रत में वर्जित हैं।

मन्त्रसिद्ध्यसिद्ध्योर्हेतुकथनम्

ब्रह्मयामले—

निश्चयोत्साहधैर्याच्च तत्त्वज्ञानस्य दर्शनात्। अल्पाशनादसङ्गाच्च षड्भिर्मन्त्रः प्रसिद्ध्यति ॥१॥
प्रयासाद्बहुभक्ष्याच्च प्रजल्पान्नियमाग्रहात्। नीचसङ्गाच्च लौल्याच्च षड्भिर्मन्त्रो न सिद्ध्यति ॥२॥
अशङ्कितमनाश्चैव शिवशक्तिमयत्वतः। देवीमन्त्रमयं साक्षाद्ध्यायेदात्मानमात्मनि ॥३॥
मनोऽन्यत्र शिवोऽन्यत्र शक्तिरन्यत्र मारुतः। न सिद्ध्यति वरारोहे कल्पकोटिशतैरपि ॥४॥
पर्युषं चारनालं च कोद्रवान्नं मसूरिकम्। कांस्यपात्रं च तैलं च मन्त्रवीर्यहराणि षट् ॥५॥
वीर्यविज्ञानयोर्हन्ता ज्ञानहर्ता च पर्युषः। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मन्त्री पर्युषितं त्यजेत् ॥६॥
आरनालं चान्यमन्नं मन्त्री दृष्ट्वा परित्यजेत्। फललोपो भवेन्नूनं मन्त्रवीर्यं हरेद् ध्रुवम् ॥७॥
तेन कारणभावेन मन्त्री क्षारांश्च वर्जयेत्। पित्तलं मृत्युदं नूनं क्षुद्रधान्यञ्च कोद्रवम् ॥८॥
कोद्रवान्नं परित्याज्यं सर्वथा जपकर्मणि। मसूरी मानहन्त्री च परित्याज्याथ सर्वदा ॥९॥
कांस्यपात्रमशुद्धं च तच्छप्तं विष्णुना पुरा। मन्त्रवीर्यं हरत्याशु यद्यपि स्यान्महेश्वरः ॥१०॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कांस्यं त्याज्यं तु साधकैः। तिलतैलं मन्त्रपूतं पावनं देवदुर्लभम् ॥११॥

मर्दयित्वा प्रयत्नेन स्नानं कार्यं हि सर्वदा। वर्जयेज्जपवेलायां भोज्यं नैव सदा बुधैः ॥१२॥
न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं मन्त्रिणा तत्कदाचन। इति।

ब्रह्मयामल में कहा गया है कि निश्चय से, उत्साह से, धैर्य से, तत्त्वज्ञान के दर्शन से, अल्प भोजन से और असङ्ग से—इन छः कार्यों से मन्त्र सिद्ध होते हैं। प्रयास, अधिक भोजन, प्रजल्प, नियम, आग्रह, नीच सङ्गति और लोलुपता—इन छः के सेवन से मन्त्र सिद्ध नहीं होते। अशङ्कित मन से शिव-शक्तिमय देवी को साक्षात् मन्त्रमय मानकर उसका उनसे अपने को अभिन्न मानकर ध्यान करने से मन्त्र सिद्ध होते हैं। मन कहीं और, शिव कहीं और एवं शक्ति कहीं और वायु के समान हो तो करोड़ों कल्प में भी मन्त्र सिद्ध नहीं होते। वासी अन्न, आरनाल, कोद्रवान्न, मसूर, कांस्यपात्र और तेल—ये छः मन्त्रवीर्य को हरण करने वाले हैं। पर्युषित अन्न वीर्य एवं विज्ञान का घातक तथा ज्ञानहर्ता होता है; इसलिये सभी यत्नों से साधक को पर्युषित अन्न का त्याग कर देना चाहिये। दूसरे का अन्न एवं आरनाल को देखकर साधक उसका त्याग कर दे। इससे फल का लोप होता है और मन्त्रवीर्य का हरण होता है। आवश्यक होने पर भी साधक क्षार को ग्रहण न करे। पित्तल मृत्युप्रद होता है। क्षुद्र धान्य एवं कोदो भी इसी प्रकार के होते हैं। जपकाल में कोद्रवान्न का सर्वथा त्याग करे। मसूर मानहर्ता होने के कारण सब प्रकार से त्याज्य होता है। अशुद्ध एवं विष्णु द्वारा शापित होने के कारण मन्त्रवीर्य का हर्ता होने से कांस्यपात्र का प्रयोग नहीं करना चाहिये। मन्त्रपूत पवित्र तिल तैल देवदुर्लभ है। इसलिये स्नान के पहले इससे शरीर का मालिश करे। जपकाल में इसे वर्जित करे और भोजन में इसका व्यवहार कभी न करे। साधक के लिये ये कभी भी भोक्तव्य नहीं हैं।

भोजनसम्पादनादि

अथ भोजनपर्यायस्तत्र कुम्भसंभवः—
उपस्तीर्याभिघार्यैत संस्कृत्य प्रोक्षणादिभिः। पाचयेद्वैदिकैर्मन्त्रैः पुनर्मूलेन मन्त्रवित् ॥१॥

वैदिकैः प्रोक्षणादिभिः पायचेदिति संबन्धः। मूलेन मन्त्रयेदिति शेषः। तथा सोमशंभुः—'हृदा संभोजयेन्मन्त्री पूतैराचामयेज्जलैः'। हृदा हृदयमन्त्रेण, जलं च मूलेनाभिमन्त्रितं पिबेदिति। पलाशपत्रेण मध्यपत्रवर्जितेन कृतपत्रावल्यामेव भुञ्जीतेति वदन्ति, कांस्यभाजननिषेधादयं नियम इति तत्त्वम्।

भोजन और उसके पर्याय—कुम्भसम्भव के अनुसार प्रोक्षणादि से संस्कृत भूमि को परिस्तरण करके वैदिक मन्त्र से भोजन पकाये। पुनः मन्त्रवित् उसे मूल मन्त्र से ग्रहण करे। आशय यह है कि वैदिक मन्त्र से प्रोक्षणादि करे। मूलमन्त्र से मन्त्रित करे। सोमशम्भु के अनुसार हृदयमन्त्र से भोजन करे एवं मूल मन्त्र से जलपान करे। पलाश के पत्तों में मध्य पत्र को छोड़कर बनाई गई पत्रावलि में भोजन करे; क्योंकि कास्यपात्र में भोजन नहीं करना चाहिये।

शयनप्रकारः

अथ शयनं विजयमालिनीतन्त्रे—'अधः शयानः शुद्धात्मा जितक्रोधो जितेन्द्रियः' इति। नारदपञ्चरात्रे—
भुक्त्वा शयीत शयने सुशुद्धे च सुशीतले। अर्धरात्रे समुत्थायं पादशौचं चरेद् द्विजः ॥१॥
आचम्य देवं संस्मृत्य शीघ्रं संपूज्य पूर्ववत्। जपं कुर्याद्यथाशक्ति अर्पयेच्च तथेश्वरि ॥२॥ इति।

तथा वैशम्पायनः—
शयनं कुशशय्यायां विन्यसेच्छुचिवस्त्रधृत्। तद्वासः क्षालयेन्नित्यमन्यथा विघ्नमावहेत् ॥१॥ इति।

तथा वायवीयसंहितायाम्—
अहतास्तरणास्तीर्णे सदर्भशयने शुचिः।
मन्त्रिते च शिवं ध्यायन् प्राक्शिरस्को निशि स्वपेत् ॥१॥ इति।

मन्त्रिते स्वेष्टमन्त्रेण। शिवमित्युपलक्षणम्। कपिलपञ्चरात्रे—

गुरुपादार्चनं कृत्वा उपवासी जितेन्द्रियः। दर्भशय्यां गतो रात्रौ दृष्ट्वा स्वप्नं निवेदयेत् ॥१॥ इति।

योगिनीतन्त्रे—

यज्जाग्रतो दूरमुदेति दैवमावृत्य मन्त्रान् प्रयतस्त्रिरेतान्।
लघ्वेकभुग् दक्षिणापार्श्वशायी स्वप्नं परीक्षेत यथोपदेशम् ॥१॥

मन्त्रानिति बहुवचनेन सकलं सूक्तं गृह्यते। तथा—

भगवन् देवदेवेश शूलभृद् वृषवाहन। इष्टानिष्टे समाचक्ष्व मम स्वप्नस्य शाश्वत ॥१॥
एवं सुप्तः कुशास्तीर्णे ततः प्रयतमानसः। निशान्ते पश्यति स्वप्नं शुभं वा यदि वाशुभम् ॥२॥ इति।

विजयमालिनी तन्त्र के अनुसार शुद्धात्मा, जितक्रोध एवं जितेन्द्रिय को जमीन पर शयन करना चाहिये। नारदपञ्चरात्र में कहा गया है कि भोजन के बाद सुन्दर, शुद्ध, शीतल शय्या पर शयन करे। द्विज को आधी रात में उठकर पाद-प्रक्षालन करना चाहिये। तदनन्तर आचमन करके देव का स्मरण करते हुये पूर्ववत् शीघ्र पूजा करके यथाशक्ति जप करना चाहिये। वैशम्पायन ने भी कहा है कि कुशशय्या पर पवित्र वस्त्र बिछाकर शयन करे। उस वस्त्र को नित्य धोये; अन्यथा विघ्न होते हैं। वायवीय संहिता में कहा है कि स्वच्छ चादर पर पवित्र दर्भ बिछाकर पवित्रतापूर्वक शयन करे। मन्त्रजप के पश्चात् शिव अथवा अपने इष्टदेव का ध्यान करते हुये पूर्व की ओर शिर करके शयन करे।

कपिलपञ्चरात्र में कहा गया है कि गुरुपादार्चन करके उपवासी एवं जितेन्द्रिय व्यक्ति दर्भशय्या पर जाकर रात्रि में शयन की प्रार्थना करे।

योगिनी तन्त्र के अनुसार 'यज्जाग्रतो' 'दूरमुदेति' दैवमावृत्य'—इन तीनों मन्त्रों का स्मरण करते हुये एक बार लघु भोजन करके दाहिने करवट होकर शयन करते हुये यथा उपदेश स्वप्नों की परीक्षा करे। सोने के समय इस प्रकार प्रार्थना करे—

भगवन् देवदेवेश शूलभृद् वृषवाहन। इष्टानिष्टे समाचक्ष्व मम स्वप्नस्य शाश्वत।।

इस प्रकार प्रार्थना कर कुश के बिछावन पर प्रयत मानस होकर शयन करने पर साधक रात के अन्त में शुभ या अशुभ स्वप्न देखता है।

स्वप्नमाणवमन्त्रः

पिङ्गलामते—

तारो हिलिद्वयं शूलपाणये द्विठ ईरितः। स्वप्नमाणवमन्त्रोऽयं शम्भुना परिकीर्तितः ॥१॥
नमोऽजाय त्रिनेत्राय पिङ्गलाय महात्मने। वामाय विश्वरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः ॥२॥
स्वप्ने कथय मे तथ्यं सर्वकार्येष्वशेषतः। क्रियासिद्धिं विधास्यामि त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥३॥ इति।

मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—

ॐ ह्रत् सकललोकाय विष्णवे प्रभविष्णवे। विश्वाय विश्वरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः ॥१॥
स्वप्नमाणवमन्त्रोऽयं कथितो नारदादिभिः । इति।

पिङ्गलामत के अनुसार 'ॐ हिलि हिलि शूलपाणये ठः ठः'—यह स्वप्न का आणव मन्त्र है, ऐसा शिवजी का कथन है। शयन के समय भगवान् शंकर से इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहये—अज, त्रिनेत्र, पिङ्गल, विश्वरूप स्वप्नाधिपति के लिये नमस्कार है। हे महेश्वर! मेरे समस्त कार्यों के सम्बन्ध में स्वप्न में आप मुझे आदेशित करें, आपके प्रसाद से मैं कार्यसिद्धि को प्राप्त करूँ।

मन्त्रतन्त्रप्रकाश में कहा गया है कि नारद आदि के अनुसार स्वप्न का आणव मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ ह्रत्सकललोकाय विष्णवे प्रभविष्णवे। विश्वाय विश्वरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः।।

शुभसूचकस्वप्नाः

अथ शुभसूचकस्वप्नास्तत्र योगिनीतन्त्रे—

त्रिविधं दर्शनं तस्य यथार्थमयथार्थकम्। अपावकं यत्स्वस्थानामख्यातानां हि दर्शनम् ॥१॥
यथार्थं तदयथार्थमस्वस्थानां विकारजम्। अपावकं मानसं च यथार्थफलमुच्यते ॥२॥

एषां स्वरूपमाह—यदिति दर्शनं देवादीनां, विकारजं पित्रादीनां, मानसं मनोविकाराजम्॥ आगमसिद्धान्ते—

आद्ये वर्षे वत्सरार्धे द्वितीये यामे पाको वर्षपादात् तृतीये।
मासे पाकः शर्वरीतुर्ययामे सद्यः पाको यो विसर्गेषु दृष्टः ॥१॥

आद्ये यामे दृष्टस्य स्वप्नस्य वर्षे वर्षमात्रे पाकः फलम्। एवमग्रेऽपि। विसर्गे निशान्ते। तथा 'ज्व(दू)रेऽधमा मध्यमा स्याददृष्टेऽनुत्तमोत्तमे'। न विद्यते उत्तमो यस्याः सा सिद्धिरुत्तमे स्वप्ने इत्यर्थः। तानेवाह तत्रैव—

स्वप्ने पश्यति वै देवं निजेष्टं सर्वतोमुखम्। गुरुं प्रसादसुमुखं निर्मलं चन्द्रमण्डलम् ॥१॥
गङ्गां गां भारतीं भानुं लिङ्गिनं लिङ्गमैश्वरम्। प्रसन्नं तत्र जानीयात्सिद्धिं स्वप्ननिदर्शने ॥२॥

प्रसन्नं निजेष्टदेवमत एव सिद्धिमपि। नारदपञ्चरात्रे—

क्षितिलाभः क्षतजाब्धितरणं चाग्निपूजनम्। होमश्च ज्वलिते वह्नौ संग्रामविजयस्तथा ॥१॥
हंसकोकमयूराणां रथारोहणमेव च।

कोकश्चक्रवाकः। कपिलपञ्चरात्रे—

कन्यां छत्रं रथं दीपं प्रासादं कमलं नदीम्। कुञ्जरं वृषभं माल्यं समुद्रं फलिनं द्रुमम् ॥१॥
पर्वतं च हयं मेध्यमाममासं सुरासवम्। एवमादीनि सर्वाणि दृष्ट्वा सिद्धिमवाप्नुयात् ॥२॥ इति।
यदा कर्मसु काम्येषु स्त्रियं स्वप्नेषु पश्यति। समृद्धिं तत्र जानीयात्तस्मिन् स्वप्ननिदर्शने ॥१॥ इति।

भैरवीतन्त्रे—

नदीसमुद्रतरणमाकाशगमनं तथा। भास्करोदयनं चैव प्रज्वलन्तं हुताशनम् ॥१॥

ग्रहनक्षत्रताराणां चन्द्रमण्डलदर्शनम्। नक्षत्राण्यश्विन्यादीनि। तारा अन्यानीति।

हर्म्यस्यारोहणं चैव प्रासादशिखरेऽपि वा। नागाश्ववृषभेन्द्राणां तरुशैलाग्ररोहणम् ॥२॥
विमानगमनं चैव सिद्धमन्त्रस्य दर्शनम्। लाभः सिद्धतरोश्चैव देवीनां चैव दर्शनम् ॥३॥
एवमादीनि संदृष्ट्वा नरः सिद्धिमवाप्नुयात्। स्वप्ने तु मदिरापानमाममांसस्य भक्षणम् ॥४॥
क्रिमिविष्टानुलेपं च रुधिरेणाभिषेचनम्। भोजनं दधिभक्तस्य श्वेतवस्त्रानुलेपनम् ॥५॥
सिंहासनं रथं यानं ध्वजं राज्याभिषेचनम्। रत्नान्याभरणादीनि स्वप्ने दृष्ट्वा प्रसिद्ध्यति ॥६॥ इति।

नारदपञ्चरात्रे—

गुरुर्देवो द्विजः कन्या गोगजाश्वाश्च केसरी। दर्पणं शङ्खभीर्य्यौ च तन्त्रीवाद्यं च रोचनम् ॥१॥
ताम्बूलभक्षणं चैव तथा दध्यभिव(न)न्दनम्। सिद्धान्नमाममांसं च मद्यस्त्रीमदिरासवाः ॥२॥
छत्रं यानं सितं वस्त्रं तथान्यश्वेतचन्दनम्। माल्यमुक्ताफले हारः पूर्णः समुदितः शशी ॥३॥
प्रचण्डकिरणः स्वस्थो निम्नगाथ महोदधिः। प्रफुल्लपादपः शाली रोचना कुङ्कुमं मधु ॥४॥
लाजाः सिद्धार्थकाबीजं नवभाण्डं च पायसम्। उपपन्नोऽप्यथाचार्यो गायत्री वरसंगता ॥५॥
मनःप्रीतिकराश्चान्ये लोके शंसापदं गताः। सर्वे स्वप्नाः शुभाः प्रोक्ताः सिद्धिमोक्षफलप्रदाः ॥६॥ इति।

शुभसूचक स्वप्न—योगिनीतन्त्र में कहा गया है कि स्वप्न में तीन प्रकार के दर्शन होते हैं—यथार्थ, अयथार्थ और

अपावक। स्वस्थ लोगों को दिखाई देने वाले स्वप्न यथार्थ होते हैं। जिनके शरीरस्थ वात-पित्त-कफ में विकृति होती है, उनके स्वप्न अयथार्थ होते हैं। इनका फल इस प्रकार होता है। आगमसिद्धान्त में कहा गया है कि प्रथम प्रहर में देखे गये यथार्थ स्वप्न का फल एक वर्ष में प्राप्त होता है। दूसरे प्रहर में दृष्ट स्वप्न का फल छः महीने में प्राप्त होता है। तीसरे प्रहर के स्वनों का फल तीन महीने में प्राप्त होता है। चौथे प्रहर के स्वनों का फल एक मास में होता है एवं रात्रि की समाप्ति वेला में जो स्वप्न दृष्ट होते हैं; उनका फल सद्यः प्राप्त होता है। वहीं पर कहा गया है कि स्वप्न में चारो ओर देवता, अपने इष्टदेव, प्रसन्न गुरु, निर्मल चन्द्रमण्डल, गंगा, गाय, सरस्वती, सूर्य, शिवलिङ्ग अथवा प्रसन्न ईश्वर को स्वप्न में देखने से सिद्धि प्राप्त होती है।

नारदपञ्चरात्र में कहा है कि भूमिलाभ, समुद्रतरण, अग्निपूजन, ज्वलित अग्नि में हवन, संग्राम में विजय, हंस-चक्रवाक एवं मयूर के रथ पर आरोहण स्वप्न में—यह सब देखना सिद्धिप्रद होता है।

कपिलपञ्चरात्र में कहा है कि स्वप्न में कन्या, छत्र, रथ, दीपक, भवन, कमल, नदी, हाथी, साँढ़, माला, समुद्र, फलदार वृक्ष, पर्वत, घोड़ा, मेद, मांस, सुरा, आसव आदि देखने से सिद्धि की प्राप्ति होती है। श्रुति भी कहती है कि यदि कोई काम्य कर्मों में स्वप्न में स्त्री को देखता है तो उस साधक को समृद्धि की प्राप्ति होती है। भैरवीतन्त्र में कहा गया है कि नदी या समुद्र में तैरना, आकाशगमन, सूर्योदय, प्रज्वलित अग्नि, ग्रह-नक्षत्र-तारा-चन्द्रमण्डल का दर्शन, महल पर चढ़ना अथवा महल के शिखर पर चढ़ना, नाग, घोड़ा, बेल अथवा पेड़, पर्वतशिखर पर चढ़ना, विमान से कहीं जाना, सिद्ध मन्त्र का दर्शन, सिद्ध वृक्ष का लाभ, देवी का दर्शन आदि स्वप्न में देखने पर व्यक्ति को सिद्धि मिलती है। स्वप्न में मदिरापान, मांस भक्षण, क्रिमि-विष्टानुलेपन, रक्त से अभिषेक-दही, भात का भोजन, श्वेत वस्त्र धारण, सिंहासन, रथ, यान, झण्डा, राज्याभिषेक, रत्नजटित आभूषण देखने से सिद्धि मिलती है। नारदपञ्चरात्र में कहा है कि गुरु, देव, द्विज, कन्या, गाय, हाथी, घोड़ा, सिंह, दर्पण, शङ्ख, भेरी, मनोहारी तन्त्रीवाद्य, ताम्बूलभक्षण, दही, सिद्धान्न, पक्व मांस, मद्य, स्त्री, मदिरा, आसव, छत्र, यान, उजला वस्त्र, श्वेत चन्दन, माला, मुक्ताफल, हार, पूर्णिमा का चाँद, आकाशस्थ प्रचण्ड सूर्य एवं अस्ताचलगामी सूर्य खिले हुये पादप, चावल, रोचना, मधु, कुङ्कुम, लावा, सरसों, नया वर्तन, पायस, आचार्यप्रदत्त, गायत्री, एवं अन्य मनोरम तथा संसार में प्रशंसा देने वाले स्वप्न सिद्धि एवं मोक्ष देने वाले हैं।

अशुभसूचकस्वप्नाः

अथाशुभसूचकाः। नारदः—

अतोऽन्ये विपरीतास्तु मनसः खेददाश्च ये। गर्हिता लोकविद्विष्टाः स्वप्नास्ते ह्यशुभावहाः ॥१॥

अत उक्तशुभसूचकात्। कपिलपञ्चरात्रे—

चण्डालं कलभं काकं गर्तं शून्यममङ्गलम्। तैलाभ्यक्तं नरं नग्नं शुष्कवृक्षं सकण्ठकम् ॥१॥
प्रासादमतलं दृष्ट्वा नरो रोगमवाप्नुयात् ।

कलभं बालमुष्ट्रम्।

अशुभ-सूचक स्वप्न—नारदपञ्चरात्र में कहा गया है कि उपर्युक्त के अतिरिक्त मन को क्लेश प्रदान करने वाले, लोक में निन्दित एवं द्वेष फैलाने वाले स्वप्न अशुभ फल वाले होते हैं।

कपिलपञ्चरात्र में कहा गया है कि चाण्डाल, ऊँट का बच्चा, कौआ, खाई, अशुभ स्थान समस्त शरीर में तेल लगाया मनुष्य, नग्न मनुष्य, सूखा एवं काँटेदार वृक्ष महल एवं पाताल देखने पर मनुष्य रोगी होता है।

अशुभस्वप्नप्रायश्चित्तम्

तत्र प्रायश्चित्तमाह कपिलः—'दृष्ट्वा दुःस्वप्नकं चैव होमात् सिद्धिमवाप्नुयात्'। तथा पिङ्गलामते—'शुभे शुभं भवेत्तस्य जुहुयादशुभे शतम्। अस्त्रेणेति क्रमाद्विद्वान्' इति। नारदपञ्चरात्रे—

दृष्ट्वा समाचरेद्धोमं दन्तकाष्ठोदितं मुने। केवलेनाथवाज्येन सिंहमन्त्रेण शान्तये ॥१॥

दन्तकाष्ठप्रकरणे तावदाह स्वयमेव—

शतं सहस्रं साष्टं वा यथाशक्त्याथवा द्विजः। अस्त्रसंपुटितेनैषां नाम्ना स्वाहान्वितेन च ॥१॥
दोषाञ्जहिजहीत्येव पदं नामावसानगम्।

अस्त्रसिंहमन्त्रयोर्विकल्पः। एषां दोषनिदानानाम्।

अशुभ स्वप्नदर्शन का प्रायश्चित्त—कपिल ने कहा है कि खराब स्वप्न देखने पर हवन से सिद्धि मिलती है। पिङ्गलामत में भी कहा गया है कि शुभ स्वप्न से शुभ फल प्राप्त होता है एवं अशुभ स्वप्न देखने पर अस्त्रमन्त्र से एक सौ हवन करना चाहिये। नारदपञ्चरात्र में भी कहा गया है कि दुःस्वप्न देखने पर उसकी शान्ति के लिये दन्तकाष्ठ से अथवा केवल गोघृत से सिंहमन्त्र द्वारा हवन करना चाहिये। दन्तकाष्ठ प्रकरण में वहीं कहा गया है कि ब्राह्मण को दन्तकाष्ठ से सौ, हजार, यथाशक्ति अस्त्र या सिंह मन्त्र से सम्पुटित दोष नाम के उच्चारण के बाद 'दोषां जहि जहि' पद जोड़कर स्वाहा कहते हुये हवन करना चाहिये।

स्वप्ननिवेदनम्

अथ स्वप्ननिवेदनं तत्रैव—

शिष्यस्तु शुचिराचान्तः पुष्पहस्तो गुरूत्तमम्। प्रणम्य शिरसा हृष्टस्तस्मै स्वप्नं निवेदयेत् ॥१॥
स्वप्ने वाक्षिसमक्षं वा आश्चर्यमतिहर्षदम्। अकस्माद्यदि जायेत नाख्यातव्यं गुरोर्विना ॥२॥
मन्त्रप्रसादजनितं लिङ्गं च न गुरोर्विना। प्रकाशनीयं विप्रेन्द्र कस्यचित् सिद्धिमिच्छता ॥३॥
प्रकाशयति यो मोहादौत्सुक्यान्मन्त्रजं सुखम्। निकटस्थाश्च तास्तस्य सिद्धयो यान्ति दूरतः ॥५॥
आविर्भवन्ति दुःखानि शोकाश्च विविधा अपि। इति।

वक्रतुण्डकल्पे—'चित्तप्रसादो मनसश्च तुष्टिरल्पाशिता स्पन्दपराङ्मुखत्वम्' इति। तथा भैरवीतन्त्रे—
ज्योतिः पश्यति सर्वत्र शरीरं वा प्रकाशयुक्। निजं शरीरमथवा देवतामयमेव हि ॥१॥ इति।

स्वप्न-निवेदन—नारदपञ्चरात्र में कहा गया है कि स्वप्न देखने का बाद शिष्य आचमन करके पवित्र होकर हाथ में फूल लेकर पूज्य गुरु को प्रणाम करके सन्तुष्ट गुरु को अपना इष्ट स्वप्न बतलाये। स्वप्न में या आँखों के सामने अति हर्षद आश्चर्य यदि अकस्मात् दिखाई पड़े तो उसे गुरु के अतिरिक्त किसी से न कहे। सिद्धि का इच्छुक विप्र मन्त्र-प्रसाद-जनित लक्षण को भी गुरु के अतिरिक्त किसी अन्य को न बतलाये। जो मोहवश उत्सुकता वश मन्त्रज सुख को दूसरे को बतलाता है, उससे प्राप्त होने वाली सिद्धि भी दूर चली जाती है। साथ ही उसे विविध दुःख और शोक होते हैं। वक्रतुण्ड-कल्प में कहा गया है कि चित्त में प्रसन्नता, मन को सन्तुष्टि, अल्प भोजन से तुष्टि एवं स्पन्द पराङ्गमुखत्व शुभ लक्षण होते हैं। भैरवीतन्त्र में कहा गया है कि सर्वत्र ज्योति का दर्शन अथवा अपने शरीर को प्रकाशयुक्त या देवतामय देखना शुभ होता है।

साधकस्य विघ्नपूर्वं मन्त्रसिद्धिचिह्नानि

नारदापञ्चरात्रे—

मन्त्राराधनसक्तस्य प्रथमं वत्सरत्रयम्। जायन्ते बहवो विघ्ना नियमस्थस्य नारद ॥१॥
नोद्वेगं साधको याति कर्मणा मनसा यदि। तृतीयवत्सरादूर्ध्वं राजानश्च महीभृतः ॥२॥
प्रार्थयन्तेऽनुरोधेन गर्विता अपि मानिनः। प्रसादः क्रियतां नाथ ममोद्धरणकारणम् ॥३॥
प्रज्वलन्तं च पश्यन्ति तेजसा विभवेन च। अतस्ते मुनिशार्दूल निष्ठुरं वक्तुमक्षमाः ॥४॥
नवमाद्वत्सरादूर्ध्वं स्वयं सिद्ध्यति मन्त्रराट्। नानाश्चर्याणि हृदये मन्त्रसिद्धिमयानि वै ॥५॥
अत्यानन्दप्रदान्याशु प्रत्यक्षेऽपि बहिस्तथा। जडधीस्तु क्षणं विप्र क्षणमस्ति प्रहर्षितः ॥६॥
क्षणं दुन्दभिनिर्घोषं शृणोति त्वन्तरिक्षतः। क्षणं च मधुरं वाद्यं नानागीतसमन्वितम् ॥७॥
आजिघ्रति क्षणं गन्धान् कर्पूरमृगनाभिजान्। उत्पतन्तं क्षणं वापि पश्यत्यात्मानमात्मना ॥८॥

चन्द्रार्ककिरणाकीर्णं क्षणमालोकयेन्नभः । गजगोवृषनादांश्च शृणुयाच्च क्षणं द्विजः ॥९॥
निर्भराम्बुदसंक्षोभं क्षणमाकर्षयत्यपि । तारकाणि विचित्राणि योगिनो नभसि स्थितान् ॥१०॥
पश्यत्युद्ग्राहयतश्च क्षणं मन्त्रं व्रती सदा । क्षणं किलिकिलारावां हंसबर्हिरवं तथा ॥११॥
क्षणं मेघोदयं पश्येत्क्षणं रात्रिन्दिने सति । रात्रौ च दिवसालोकं ससूर्यं क्षणमीक्षते ॥१२॥
बलेन परिपूर्णश्च तेजसा भास्करोपमः । पूर्णेन्दुसदृशः कान्त्या गमने विहगोपमः ॥१३॥
स्वर्ण युक्तः प्रोच्येत गाम्भीर्येण सुखेन च । स्वल्पाशनेनाकृशता बहुनापि न चीयते ॥१४॥
विण्मूत्रयोरथाल्पत्वं भवेन्निद्राजयस्तथा । जपध्यानगतो मन्त्री न खेदमधिगच्छति ॥१५॥
विना भोजनपानाभ्यां पक्षमासादिकं मुने । इत्येवमादिभिश्चिह्नैर्महाविस्मयकारिभिः ॥१६॥
प्रवृत्तैः संप्रबोद्धव्यं प्रसन्नो मन्त्रराडिति । इति।

तथा बौधायनः—'सिद्धेस्तु त्रीणि चिह्नानि दाता भोक्ता अयाचकः'। दाता भोक्ताप्ययाचक इत्यर्थः।

नारदपञ्चरात्र में कहा गया है कि मन्त्राराधन में निरत नियमस्थित साधक को प्रथम तीन वर्षों में बहुत विघ्न होते हैं। साधक मन और कर्म से यदि उद्विग्न नहीं होता तब तीसरे वर्ष के बाद राजा और महीपाल उससे अनुरोध से प्रार्थना करते हैं कि हे नाथ! प्रसन्न होकर मेरा उद्धार कीजिये। वह साधक तेज एवं वैभव से प्रकाशमान रहता है। इसलिये उससे निष्ठुर वचन बोलने में वे राजागण अक्षम होते हैं। नव वर्षों के बाद उसे मन्त्रराज स्वयं सिद्ध हो जाता हैं। मन्त्रसिद्धि होने पर उसके हृदय में अनेक आश्चर्य होते हैं। बाहर भी अत्यन्त आनन्दप्रदायक घटनायें घटित होती हैं। वह साधक क्षण में ही जडवत् हो जाता है और क्षण में ही हर्षित होता है। अन्तरिक्ष से ढोल बजने की आवाज उसे सुनाई पड़ती है। क्षण में ही नाना गीत-समन्वित मधुर वाद्य सुनाई पड़ते हैं। क्षण में कपूर-कस्तूरी का गन्ध होने लगता है तो क्षण में ही वह अपने आपको उड़ते हुये देखता है। आकाश को क्षण में ही चन्द्र, सूर्य की किरणों से आलोकित देखता है। क्षण में ये उसे गाय, हाथी, साँढ का नाद सुनाई पड़ता है। क्षण में जलपूरित बादलों को वह आकर्षित करता है। आकाश में स्थित विचित्र तारकों को देखता है। वह उन्हें क्षण में देखता है और क्षण में पकड़ता है एवं क्षण में ही उसे हंस एवं मोर के किलकिल शब्द सुनाई पड़ते हैं। क्षण में ही वह बादल देखता है। क्षण में ही दिन में रात देखता है और रात में दिन के समान प्रकाशमान सूर्य को देखता है। साधक बल से परिपूर्ण होता है एवं सूर्य के समान तेजस्वी होता है। पूर्ण चन्द्र के समान उसकी कान्ति होती है और चलने में वह पक्षी के समान हो जाता है। वह मधुर बोलता है। गम्भीरता, सुख एवं गति से वह युक्त होता है, स्वल्प भोजन एक बार करने से भी वह बहुत दिनों में भी कृश नहीं होता। मूत्र-पुरीषत्याग के साथ-साथ निद्रा पर भी वह विजय प्राप्त कर लेता है जप और ध्यान में निरत साधक को कष्ट नहीं होता। बिना भोजन एवं पानी के वह एक पक्ष या एक माह तक रहने पर भी उसे कष्ट नहीं होता है। इस प्रकार के महाविस्मयकारी लक्षणों को देखकर यह जानना चाहिये कि उसे मन्त्रसिद्धि प्राप्त हो गई है। बौधापन के अनुसार दाता और भोक्ता होते हुये याचक होना सिद्धि के लक्षण कहे गये हैं।

सिद्धिप्रत्ययाः

प्रपञ्चसारे (१० प० ४३ श्लो०)—

ततोऽस्य प्रत्ययास्त्वेवं जायन्ते जपतो मनुम् । अधिष्ठितं निश्यदीपं निस्तमिस्रं गृहं भवेत् ॥१॥

अकार्भस्तेजसासौ भवति नलिनजा सन्ततं किङ्करी स्याद्
रोगा नश्यन्ति दृष्ट्वा द्रुतमथ धनधान्याकुलं तत्समीपम् ।
देवा नित्यं नमोऽस्मै विदधति फणिनो नैव दंशन्ति पुत्राः
पौत्रा मित्राणि ऋद्धास्तनुविपदि परं धाम विष्णोः स भूयात् ॥ (१० प० ४७ श्लो०) इति।

एवं कृतेऽपि न सिद्ध्यति चेत्तदा द्वयं त्रयं वा पुरश्चरणं कुर्यात्। तदुक्तं फेत्कारिणीतन्त्रे—

कर्मणा प्रबलेनैव प्रतिबन्धो विरोधिना । यदि सिद्धिं न लभते द्विस्त्रिर्वा पुनराचरेत् ॥१॥ इति।

प्रपञ्चसार में कहा गया है कि मन्त्र के जप करते समय रात में बिना दीपक जलाये लक्षणों को देखकर यह जानना चाहिये कि उसे मन्त्रसिद्धि प्राप्त हो गई है। बौधायन के अनुसार दाता और भोक्ता होते हुये याचक न होना सिद्धि के लक्षण कहे गये हैं। घर अन्धकाररहित हो जाय तो यह मन्त्रसिद्धि का लक्षण होता है। सूर्य के समान उसका तेज होता है। लक्ष्मी उसकी किङ्करी होती है। उसे देखकर ही रोगों का नाश होता है। उसे देखकर ही धन-धान्य आकुल होकर तेजी से उसके समीप आने लगते हैं। देवता उसे प्रणाम करते हैं। नाग उसे नहीं काटते। उसके पुत्र, पौत्र, मित्रों की वृद्धि होती है। उसे विपदाएँ नहीं होती। वह विष्णु के परमधाम में जाता है। इस प्रकार एक पुरश्चरण करने से यदि सिद्धि नहीं मिलती तब दूसरा और तीसरा पुरश्चरण करना चाहिये। फेत्कारिणी तन्त्र में कहा भी गया है कि कर्म की प्रबलता या विरोधियों के प्रतिबन्ध के कारण यदि सिद्धि न प्राप्त हो तो दो या तीन बार पुरश्चरण करना चाहिये।

होमक्रमः

अथ होमपर्यायो विचार्यते। तत्र वायवीयसंहितायाम्—

अथाग्निकार्यं वक्ष्यामि कुण्डे वा स्थण्डिलेऽपि वा।
वेद्यामथायसे पात्रे मृण्मये वा नवे शुभे ॥१॥ इति।

ज्ञानार्णवे—

नित्यं नैमित्तिकं होमं स्थण्डिले वा समाचरेत्। गोमयेनोपलिप्तायां भूमौ सुस्थलरूपकम् ॥१॥
हस्तमात्रं तु तत्कुर्याद्वालुकाभिः सुशोभनम्। अङ्गुलोत्सेधसंयुक्तं चतुरस्रं समन्ततः ॥२॥ इति।

क्रियासारे—

समोऽष्टदिक्षु प्राक्प्रह्वः प्रागुदक्प्रवणोऽपि वा। उदक्प्रह्वः प्रदेशो वा स्थण्डिलस्य स्थलं स्मृतम् ॥१॥ इति।

प्रह्वः प्रवणः। तथा च कपिलः—'स्थण्डिलं वालुकाभिर्वा रक्तमृद्रजसाऽपि वा'। तथा वशिष्ठः—'हस्तमात्रं स्थण्डिलं वा संक्षिप्ते होमकर्मणि'। अत्र संक्षिप्ते इत्यभिधानात् सहस्रादिसंख्यो होमः स्थण्डिले न कर्तव्यः, इति केचित्। तत्र—'होमं समारभेत् कुण्डे स्थण्डिले वाथ पूजिते। अग्निप्रणयनं कृत्वा ह्याचार्यः सर्ववेदवित् ॥ तिलहोमं व्याहृतिभिरष्टोत्तरसहस्रकम्' इति वायुपुराणवचनात्, 'कुण्डे वा स्थण्डिले वाथ तत्र होमो विधीयते। अयुतं होमसंख्या च पलाशसमिधस्तथा' इति पद्मपुराणवचनाच्च।

होमक्रम—वायवीय संहिता में कहा गया है कि हवन स्थण्डिल या कुण्ड में करे अथवा वेदी पर लौहनिर्मित पात्र या मिट्टी से निर्मित नूतन पात्र में हवन करे। ज्ञानार्णव में कहा गया है कि नित्य या नैमित्तिक हवन स्थण्डिल में करे। एतदर्थ गोबर से लिप्ति समतल सुन्दर भूमि पर हाथ भर का एक अंगुल ऊँचा और चतुरस्र स्थण्डिल का बालू से निर्माण करे।

क्रियासार में कहा गया है कि आठों दिशा में समतल या पूर्व में ढालू या पूर्व-उत्तर में ढलवाँ या उत्तर में ढालू प्रदेश में स्थण्डिल बनाये। कपिल ने कहा है कि बालू से या लाल मिट्टी के चूर्ण से स्थण्डिल बनाये। वसिष्ठ ने कहा है कि संक्षिप्त हवन कर्म में एक हाथ लम्बा चौड़ा स्थण्डिल बनाये। पूजित कुण्ड या स्थण्डिल में सभी वेदों के ज्ञाता आचार्य अग्नि का प्रणयन करके एक हजार आठ मन्त्रों से तिल से हवन करे—इस वायुपुराण के कथनानुसार एवं कुण्ड या स्थण्डिल में पलाश की समिधा से द.. हजार हवन करे—इस पद्मपुराण के वचन से स्पष्ट होता है कि स्थण्डिल सर्वविध हवन हेतु प्रशस्त होता है।

होमाशक्तौ द्विगुणादिजपः

अत्र होमाशक्तौ तु 'जपोऽशक्तस्य सर्वत्र' इति नारायणीयवचनात् जप एव कार्यः। तत्र ब्राह्मणैः पुरश्चरणजपसंख्याचतुर्गुणजपः कार्यः, क्षत्रियैः षड्गुणः' वैश्यैरष्टगुणः। 'होमकर्मणि शक्तानां त्रयाणां जपसाम्यता। होमकर्मण्यशक्तानां वेदर्तुवसुसंमितम्' इति उत्तरतन्त्रवचनात्। तदशक्तौ तु विप्राणां द्विगुणः, क्षत्रियाणां त्रिगुणः, वैश्यानां चतुर्गुणः, 'होमकर्मण्यशक्तनां विप्राणां द्विगुणो जपः। इतरेषां तु वर्णानां त्रिगुणादिर्विधीयते' इति गौतमवचनात्।

तत्राप्यशक्तौ होमसंख्याचतुर्गुणजपः कार्यः। 'होमाशक्तौ जपं कुर्याद्धोमसंख्याचतुर्गुणम्' इति वशिष्ठवचनात्। एतदपि विप्रमात्रपरं, क्षत्रियवैश्ययोः प्राग्वत् षड्गुणाष्टगुणजपो भवति प्रागुक्तवचनात्। तत्राप्यशक्तौ होमसंख्याद्विगुणजपो वा कार्यः। 'यद्यदङ्गं विहीयेत तत्संख्याद्विगुणो जपः। कर्तव्यः साङ्गसिद्ध्यर्थं तदशक्तेन भक्तितः' इति कुम्भसंभववचनात्। तदशक्तेन पुरश्चरणसंख्याचतुर्गुणादिकरणाशक्तेन। एतदपि विप्रमात्रपरं, क्षत्रियवैश्ययोस्त्रिगुणचतुर्गुणजपो भवति प्रागुक्तगौतमवचनादेव। द्विजभक्तेतरशूद्राणां तु चतुर्गुणपक्षे दशगुणजपो भवति, द्विगुणपक्षे तु पञ्चगुणजप इति। द्विजभक्तशूद्राणां तु यं वर्णमाश्रितो यः शूद्रस्तस्य तद्वर्णविहितजप ऐति। तदुक्तमुत्तरतन्त्रे—

द्विजानां होमविरहे यः प्रोक्तः सूरिभिर्जपः। तद्योषितां स एवोक्तः शूद्रो यं वर्णमाश्रितः ॥१॥
तत्स्त्रीणां विहितं जापं कुर्याद्भक्तिपरायणः। इति।

गौतमोऽप्याह—

होमाभावे द्विजानां तु जपः प्रोक्तः पुरा तु यः। तत्सुभ्रुवां च तद्भृत्य शूद्राणां च स एव हि ॥१॥ इति। अतः स्त्रीशूद्रैर्होमानधिकाराज्जप एव कार्यः।

होम करने में असमर्थ होने पर सभी जगह जप ही करना चाहिये—ऐसा नारायणीयम् में कहा गया है। होमाशक्ति में ब्राह्मण को पुरश्चरण जपसंख्या का चौगुना, क्षत्रिय को छः गुना और वैश्य को आठ गुण जप करना चाहिये। उत्तरतन्त्र में भी कहा गया है कि होम करने में समर्थ होने पर ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य के जप एक समान ही होते है, अशक्ति की स्थिति में ब्राह्मण को वेद = चार गुना, क्षत्रिय को ऋतु = छः गुना एवं वैश्य को वसु = आठ गुना जप करना चाहिये। हवन में अशक्त होने पर विप्र दोगुना, क्षत्रिय तिगुना एवं वैश्य ऐसा चौगुना जप करे। गौतम का कथन है। हवन में अशक्त होने पर हवनसंख्या का चौगुना जप करे—यह वशिष्ठ का मत है। उसमें भी अशक्त होने पर होमसंख्या का दोगुना जप करे; क्योंकि जिस अङ्ग को न कर सके, उसकी संख्या का दुगुना जप करे; ऐसा अगस्त्य का कथन है।

शूद्रों को चौगुना के बदले दशगुना जप करना चाहिये एवं दोगुना के बदले पाँच गुना जप करना चाहिये। द्विज, भक्त एवं शूद्र में से जो शूद्र जिस वर्ण का आश्रित हो, उस वर्ण के लिये विहित जप करे। जैसा कि उत्तरतन्त्र में कहा भी है—हवन में अशक्त द्विजों के लिये जितने जप का विधान किया गया है, उतने ही जप उनकी स्त्रियों एवं उनके आश्रित शूद्रों को भी करना चाहिये। गौतम ने भी कहा है कि होमाभाव में द्विजों के लिये जितने जप का विधान किया गया है, उतना ही जप उसकी पत्नी एवं उसके आश्रित शूद्र को भी करना चाहिये। इससे स्पष्ट होता है, स्त्री और शूद्र का हवन में अधिकार नहीं होता; इसलिये उन्हें जप ही करना चाहिये।

तर्पणब्राह्मणभोजने

उत्तरतन्त्रे—

ततो होमदशांशेन जले संपूज्य देवताम्। तर्पयामीति मन्त्रान्ते प्रोक्ताद्भिर्मूर्ध्नि तर्पयेत् ॥१॥ इति।

वैशम्पायनः—

तर्पणस्य दशांशेन नमोऽन्तं मन्त्रमुच्चरन्। अभिषिञ्चेत् स्वमूर्धानं जलैः कुम्भाख्यमुद्रया ॥१॥ इति।

उत्तरतन्त्रे—

तदन्ते भोजयेद्विप्रान् सदाचारान् दशांशतः। नानाविधैर्भक्ष्यभोज्यैर्लेह्यैश्चोष्यैस्तथेतरैः ॥१॥
सर्वथा भोजयेद्विप्रान् कृतसाङ्गत्वसिद्धये। विप्राराधनमात्रेण व्यङ्गं साङ्गत्वमाप्नुयात् ॥२॥
एकमङ्गं विहीयेत ततो नेष्टमवाप्नुयात्। अङ्गहीनं भवेद्यद्यत्कर्म नेष्टार्थसाधकम् ॥३॥
न्यूनातिरिक्तकर्माणि न फलन्ति मनोरथान्। त एव पूर्णतां यान्ति समस्तानि भवन्ति चेत् ॥४॥
अतो यत्नेन विदुषो भोजयेत्सर्वकर्मसु। यानि यान्यपि कर्माणि हीयन्ते द्विजभोजनैः ॥५॥

निरर्थकानि तानि स्युर्बीजान्यूषरगानिवत् । गुरुं सन्तोषयेत्पश्चाद्गोहिरण्याम्बरादिभिः ॥६॥
गुरौ तुष्टे हि संतुष्टो मन्त्रः सिद्ध्यति मन्त्रिणः । इत्थं पुरश्चरणतः प्रसन्ना देवता भवेत् ॥७॥ इति।

उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि देवता का जल में पूजन कर हवन का दशांश मूर्धा में तर्पण मन्त्र के अन्त में तर्पयामि बोलकर करना चाहिये। वैशम्पायन ने भी कहा है कि नमः युक्त मन्त्र का उच्चारण करते हुये कुम्भ मुद्रा से जल लेकर तर्पण का दशांश अपने शिर पर अभिषेक करना चाहिये। उत्तरतन्त्र में कहा है कि इसके बाद मार्जन का दशांश सदाचारी विप्रों को भोजन कराना चाहिये। भोजन में नाना प्रकार के भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य पदार्थों को होना चाहिये। साङ्गत्व सिद्धि के लिये विप्रों को भोजन कराये। विप्रों के आराधनमात्र से व्यङ्ग भी साङ्गत्व प्राप्त करता है। एक अङ्ग को छोड़ने पर इष्ट की प्राप्ति नहीं होती। अङ्गहीन कर्म से इष्ट कर्म सिद्ध नहीं होता। न्यूनाधिक कर्मों से मनोरथ सिद्ध नहीं होते। सभी अङ्गों को करने से ही कर्म की पूर्णता होती है। अतः यत्न से विद्वानों को भोजन कराये। द्विजों को भोजन कराये बिना जो-जो कर्म किये जाते हैं, वे सभी ऊषर में बीज बोने के समान होते हैं। भोजन के पश्चात् गुरु को गाय, सोना, वस्त्रादिदान से सन्तुष्ट करे। गुरु के तुष्ट होने से मन्त्र तुष्ट होते हैं और सिद्ध होते हैं। इस प्रकार के पुरश्चरण से देवता प्रसन्न होते हैं।

पुस्तकलिखितादिमन्त्रजपपातकम्

श्रीकुलार्णवे—

यदृच्छया श्रुतं मन्त्रं छद्मनापि छलेन वा । परेरितं वा गाथां वा सञ्जपेद्यद्यनर्थकृत् ॥१॥
पुस्तके लिखितान् मन्त्रानालोक्य प्रजपन्ति ये । ब्रह्महत्यासमं तेषां पातकं परिकीर्तितम् ॥२॥
अनेककोटिमन्त्राश्च चित्तव्याकुलकारणम् । मन्त्रं गुरुमुखात्प्राप्तमेकं स्यात्सर्वसिद्धिदम् ॥३॥ इति।

श्रीकुलार्णव में कहा गया है कि इच्छानुसार सुने हुये, कपट से या छल से प्राप्त या दूसरे से सुने गये या कथा में सुने गये मन्त्र का जप अनर्थकारी होता है। पुस्तक में लिखित मन्त्र देखकर जो उसका जप करता है, उसे ब्रह्महत्या के समान पाप लगता है। अनेक करोड़ मन्त्र चित्त को व्याकुल करने वाले होते हैं। गुरुमुख से प्राप्त एक ही से सभी सिद्धियाँ मिलती हैं।

प्रोक्तमालासंस्कारादीनां प्रयोगः

अथ प्रयोगः—तत्र जपमाला, सा तु द्विविधा मातृकाक्षरमयी मणिमयी चेति। तत्र मणयस्तु—पुत्रजीव-शङ्खविद्रुमरत्नमुक्ताफलपद्मबीजसुवर्णरजतकुशग्रन्थिरुद्राक्षा इत्यक्षविशेषा। अक्षसंख्या तु सात्त्विकराजसताम-सभेदेनाष्टोत्तरशतं, चतुःपञ्चाशत्सप्तविंशतिश्चेति।

प्रयोग में जपमाला दो प्रकार की होती है। पहली मातृकाक्षरमयी और दूसरी मणिमयी। पुत्रजीवक, शङ्ख, मूँगा, रक्तमुक्ताफल, कमलगट्टा, सोना, चाँदी, कुशग्रन्थि और रुद्राक्ष—ये मणिमयी माला की मणियाँ होती हैं। मणियों की संख्या सात्त्विक, राजस एवं तामसभेद से एक सौ आठ, चौवन और सत्ताईस होती है।

अथ मालायाः संस्कारकालः—तत्र विष्णोर्द्वादशीपूर्वाह्णः। शक्तेरष्टमीनवमीचतुर्दशीरात्रिः। गणेशस्य चतुर्थीमध्याह्नः। शिवस्य त्रयोदशी दिवा। सूर्यस्य सप्तमीपूर्वाह्न इति।

माला का संस्कार काल—विष्णु की माला द्वादशी के पूर्वाह्न में बनाये। शक्ति की माला अष्टमी, नवमी, चतुर्दशी की रात में बनाये। गणेश की माला चतुर्थी के मध्याह्न में बनाये। शिव की माला त्रयोदशी के दिन में बनाये एवं सूर्य की माला सप्तमी के पूर्वाह्न में बनाये।

अथ मालायाः सूत्राणि—विष्णोः पद्मसूत्रं कार्पाससूत्रं वा, देव्याः पट्टसूत्रं, शिवस्योर्णभवं वाल्कलं वा, सूर्यगणेशयोः कपार्ससूत्रं पट्टसूत्रं वा, कार्पाससूत्रं चेद् ब्राह्मणीकर्तितं स्वसमानवर्णयोषित्कर्तितं वा त्रिगुणं त्रिगुणीकृतं कुर्यात्। अन्येषु सूत्रेषु यथायोग्यमेव कार्यमिति।

माला के सूत्र—विष्णुमाला में पद्मसूत्र या कपास का धागा; देवी के माला में रेशमी धागा, शिवमाला में ऊन या वल्कल का धागा; सूर्य-गणेशमाला में कपास या रेशम का धागा लगाये। ब्राह्मण द्वारा कर्तित या अपनी जाति की स्त्री द्वारा कर्तित कपास के तीन सूत्रों को त्रिगुणित करके माला को गाँथे। अन्य धागों से यथायोग्य बनाये।

अथ संस्कारः—तत्र प्रमाणोक्तमात्रया गोमूत्रगोमयदुग्धदधिघृतकुशजलात्मकं पञ्चगव्यं संपाद्य, शक्तिव्यतिरिक्ते पूर्वदिने कृतैकभक्तः साधकः प्रातःकृतनित्यकृत्यः सूत्रं मणींश्च पृथक्पृथक् पञ्चगव्येन जलैश्च प्रक्षाल्य नवसु पिप्पलदलेषु पद्माकाररचितेषु सूत्रं मणींश्च संस्थाप्य, तेषु प्रणवं भुवनेश्वरीबीजं मातृकाक्षराणि च सूत्रे प्रतिबीजं बीजेष्वपि विन्यस्य मणीन् सूत्रं च गन्धादिभिः संपूज्य, कुण्डादौ नित्यहोमविधिनाग्निं संस्थाप्य यथाशक्ति सघृतैस्तिलैः केवलघृतैर्वा सद्यादिपञ्चमन्त्रैर्हुत्वा, होमाशक्तौ जपं वा विधाय सूत्रे रुद्राक्षपुत्रजीवपद्माक्षाश्चेत् मुखेन मुखं संयोजयन् यथामुखमन्यमणीनित्यारोप्यैकैकमणिमध्ये गुरूक्तविधिना ब्रह्मग्रन्थिं विधाय गोपुच्छाकारेण ग्रन्थयित्वा सर्वतः स्थूलं सजातीयमेकं मणिमूर्ध्वमुखं सूत्रद्वयमेकीकृत्य मेरुं ग्रन्थयित्वा संपन्नां 'ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः। भवे भवे नातिभवे भजस्व मां भवोद्भवाय नमः' इति मन्त्रेण पञ्चगव्येन शीतलजलेन च प्रक्षाल्य, 'ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः' इति मन्त्रेण चन्दनागरुकर्पूरकुङ्कुमैर्विघृष्य, 'ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः' इत्यगरूशीर-कर्पूरशर्करागुग्गुलमधुचन्दनघृतैर्धूपयित्वा, 'ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्' इति गन्धचन्दनकस्तूरीकुङ्कुमकर्पूरैर्लेपयेत्। ततः 'ॐ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मेऽस्तु सदाशिवोम्' इति मन्त्रेण प्रतिबीजं शतं शतमभिमन्त्रयेत् (मेरुं चानेन 'अघोरेभ्योथ' इत्यनेनापि शतं शतमभिमन्त्रयेत्। प्रत्येकं तु सकृत्सकृदिति वा,) ततस्तत्र पूर्वोक्तवक्त्रभेदेन यस्य रुद्राक्षस्य या च देवता तामावाह्यावाहनस्थापनसंनिधापनसंनिरोधनसंमुखीकरणसकलीकरणावगुण्ठनामृतीकरणपरमीकरणानि तत्तन्मुद्रया विधाय प्रागुक्तैः पञ्चभिर्मन्त्रैः प्रतिबीजं पञ्चोपचारैस्तां देवतां स्वेष्टदेवतावत् पूजयित्वेत्थं संस्कृतमालया जपं कुर्यात्। इति जपमालासंस्कारविधिः।

मालासंस्कार—प्रमाणोक्त मात्रा में मूत्र, गोबर, दूध, दही, घृत एवं कुशा डालकर जलात्मक पञ्चगव्य बनाये। शक्ति के अनुसार संस्कार के एक दिन पहले एक शाम भोजन करके रहे। दूसरे दिन प्रातःकाल नित्य कृत्य करके सूत्र और मणि को पृथक्-पृथक् पञ्चगव्य जल से धोये। नव पीपल पत्तों से पद्माकार पत्तल बनाकर उस पर धागे और मणियों को रखे। उन सूत्रों एवं मणियों में क्रमशः प्रणव एवं भुवनेश्वरी बीज मातृकाक्षरों का न्यास करे। मणियों और धागे का गन्धादि से पूजा क़रे। कुण्डादि में नित्य होम विधि से अग्निस्थापन करके घी और तिल से या केवल घी से सद्योजातादि पाँच मन्त्रों से हवन करे। हवन में अशक्त होने पर जप करे। धागे में रुद्राक्ष, पुत्रजीवक आदि के मणियों को मुख से मुख मिलाकर पिरोये। यथामुख मणियों को पिरो कर प्रत्येक मणि के बाद गुरूक्त रीति से ब्रह्मगाँठ लगाये। माला का गोपुच्छाकार ग्रन्थन करे। सबसे बड़ा सजातीय एक ऊर्ध्वमुख मणि में दोनों ओर के धागों को मिलाकर पिरोये। इस प्रकार मेरु बनाये। माला बनाकर सद्योजात मन्त्र से पञ्चगव्य एवं शीतल जल से उसे प्रक्षालित करे। 'ॐ वामदेव' मन्त्र से चन्दन अगर कपूर कुङ्कुमादि उसमें मले। 'ॐ अघोरेभ्योथ' मन्त्र से अगर, खश, कर्पूर, शक्कर, गुग्गुल, मधु, चन्दन, घी, अष्टगन्ध से उसे धूपित करे।

'ॐ तत्पुरुषाय' से गन्ध चन्दन कस्तूरी कुङ्कुम कपूर का लेप लगाये। 'ॐ ईशान' मन्त्र से सौ जप से प्रत्येक मणि को मन्त्रित करे। मेरु को 'अघोरेभ्योथ' के सौ जप से मन्त्रित करे। पूर्वोक्त मुखभेद से जिस रुद्राक्ष का जो देवता है, उसका आवाहन करके स्थापन, सन्निधापन, संनिरोधन, सम्मुखीकरण, सकलीकरन, अवगुण्ठन, परमीकरण उन-उन मुद्राओं से करे। पूर्वोक्त सद्योजातादि पाँच मन्त्रों से प्रत्येक बीज के देवता का पूजन अपने इष्टदेवता के समान करे। तदनन्तर इस प्रकार की संस्कृत माला से जप करे।

इत्थं प्रतिष्ठितमालया जपं कुर्वन् यदा तत्सूत्रं जीर्णमिति जानाति, तदैव दृढं सूत्रं ग्रन्थयित्वा तया स्वेष्टमन्त्रमष्टोत्तरशतं प्रायश्चित्तार्थं जपित्वा पश्चात्तया मालया यथापूर्वं जपं कुर्यात्। अयं प्रतिष्ठाप्रकारस्तु रुद्राक्षस्यैव नान्येषाम्। अन्येषां पद्माक्षादीनां तु प्रतिष्ठाविधिः प्रदर्श्यते—तत्र ग्रथितां मालां कुत्रचित्पात्रे संस्थाप्य, तस्यां गणेशसूर्यविष्णुशिवदुर्गाः पृथक्पृथगावाह्य संपूज्य हौमितिमन्त्रेण पञ्चगव्ये निक्षिप्य पुनस्तां तस्मादुद्धृत्य स्वर्णपात्रस्थे पिप्पलपत्रस्थे वा धूपवासिते पञ्चामृते निक्षिप्य, पुनस्तामुद्धृत्य शीतलजले निक्षिप्य प्रक्षाल्य चन्दनागरुकस्तूरीक-पूरकुङ्कुमसौगन्धिकपङ्कैरनुलिप्य, तस्यां हौमिति मन्त्रमष्टोत्तरशतं जपित्वा, नव ग्रहान् दश दिक्पालांश्च संपूज्य सघृतैस्तिलैर्यथाशक्ति स्वेष्टमन्त्रेण हुत्वा गुरवे यथाशक्तिकाञ्चनं दक्षिणां दत्त्वा ब्राह्मणांश्चान्नादिभिः तोषयेदिति।

अथवा सूत्रं मणींश्च पञ्चगव्ये दिनत्रयं संस्थाप्य, चतुर्थदिने समुद्धृत्यास्त्रमन्त्रेण प्रक्षाल्य हृन्मन्त्रेण ग्रन्थयित्वा स्थण्डिले स्वेष्टदेवतापूजामण्डलं विधाय, तत्र स्वेष्टदेवतां संपूज्य मूलमन्त्रमष्टोत्तरशतं जपित्वा, स्वेष्टदेवताकल्पोक्तपुरश्चरणहोमद्रव्येण घृतेन वा यथाशक्ति हुत्वा, मण्डलमध्ये मालां संस्थाप्य तस्यामस्त्रमन्त्रं मूलमन्त्रं षडङ्गमन्त्रांश्च विन्यस्य स्वेष्टदेवतारूपां तां विचिन्त्य वक्ष्यमाणविधिना सर्वभूतबलिं दत्त्वा, तस्यामिष्टदेवतां संपूज्याचार्यं दक्षिणादिभिः परितोष्य प्रणम्य ब्राह्मणांश्चान्नादिभिस्तोषयेदितीत्थं प्रतिष्ठितया मालया नित्यं मन्त्रं जपेत्।

इस प्रकार प्रतिष्ठित माला से जप करते-करते उसका सूत्र जब जीर्ण हो जाय तब उसी प्रकार के मजबूत धागे में उसे पुनः गूँथकर स्वेष्ट मन्त्र का एक सौ आठ जप प्रायश्चित्तस्वरूप करने के बाद इससे पूर्ववत् जप करे। प्रतिष्ठा का यह प्रकार रुद्राक्ष की माला के लिये ही है। दूसरे प्रकार की मालाओं के लिये नहीं है। अन्य पद्माक्षादि की माला की प्रतिष्ठा-विधि इस प्रकार है—ग्रथित माला को किसी पात्र में स्थापित करे, उनमें गणेश सूर्य-विष्णु शिव दुर्गा का पृथक्-पृथक् आवाहन-पूजन करे। 'हौं' मन्त्र से उसे पञ्चगव्य में निक्षिप्त करे। पुनः उन्हें उसमें से निकालकर सोने के पात्र में या पीपल के पत्तों पर रखकर उनपर धूपवासित पञ्चामृत निक्षिप्त करे। पुनः उसमें से निकालकर शीतल जल में रखकर उसे प्रक्षालित करे। पुनः उस पर चन्दन अगर कस्तूरी कपूर कुङ्कुम सौगन्धिक का लेप लगाये। उनमें हौं मन्त्र का एक सौ आठ जप करे। नवग्रह एवं दश दिक्पालों का पूजन करे। घी तिल से यथाशक्ति इष्टमन्त्र से हवन करे। तदनन्तर गुरु को यथाशक्ति सुवर्ण की दक्षिणा प्रदान करके ब्राह्मणों को अन्नादि से तुष्ट करे।

अथवा सूत्र और मणियों को तीन दिनों तक पञ्चगव्य में डुबोये रखे। चौथे दिन उसमें से निकालकर मन्त्र से प्रक्षालित करे हृन्मन्त्र से ग्रथित करके स्थण्डिल पर अपने इष्ट देवता का मण्डल बनाकर उसमें इष्ट देवता की पूजा करके मूल मन्त्र का एक सौ आठ जप करे। इष्ट देवता के रूप में उक्त पुरश्चरण हवन द्रव्यों से या घी से यथाशक्ति हवन करे। मण्डल के मध्य में माला को स्थापित करके उसमें अस्त्र मन्त्र, मूल मन्त्र, षडङ्गमन्त्र का न्यास करे। उसे अपने इष्ट देवता स्वरूप मानकर यथाविधि सर्वभूत को बलि प्रदान करे। उसमें इष्ट देवता का पूजन करे। आचार्य को दक्षिणादि देकर तुष्ट करे, प्रणाम करे। तदनन्तर ब्राह्मणों को अन्न आदि से तुष्ट करके प्रतिष्ठित माला से नित्य जप करे।

अथ पुरश्चरणकाले विहितानि—तत्र मनःसंहरणशौचमौनमन्त्रार्थचिन्तनाव्यग्रतानिर्वेदश्रद्धाजपोत्साहक्रोध-त्यागस्ववर्णाश्रमधर्मानुष्टानपरितुष्ठतेन्द्रियनिग्रहब्रह्मचर्यगुरुनतिकेवलामलकस्नानमन्त्राभिमन्त्रितजलाभिषेकाः, त्रिषवणं द्विसवनमशक्तौ सकृद्वा स्नानं देवर्षिपितृस्वेष्टदेवतातर्पणं मध्यपत्ररहितपलाशपत्ररचितपत्रावल्यां रात्रौ मितभोजनं गोविप्रबालादिषु कृपा चेति।

पुरश्चरण काल के कर्तव्य—मन की एकाग्रता, शौच, मन्त्रार्थ-चिन्तन, अव्यग्रता, निर्वेद, श्रद्धा, जप, उत्साह, क्रोधत्याग, स्ववर्णाश्रम धर्मानुष्ठान, सन्तोष, इन्द्रियनिग्रह, ब्रह्मचर्य, गुरु को प्रणाम, केवल आमला से स्नान, मन्त्राभिमन्त्रित जल से अभिषेक, तीनों काल या दो काल में स्नान करने में अशक्त होने पर एक बार स्नान, देव, ऋषि पितृ एवं स्वेष्ट देवता का तर्पण, मध्यपत्र रहित पलाशपत्र रचित पत्रावलि पर रात में भोजन, गाय-विप्र एवं बालकों पर कृपा—ये सब पुरश्चरण काल में विहित कृत्य होते हैं।

अथ तत्कालनिषिद्धानि—अप्रियानृतभाषणकरञ्जविभीतकार्कस्नुहीच्छायाक्रमणप्रतिग्रहस्त्रीशूद्रपतितनास्तिकोच्छिष्टसंभाषणस्नानतर्पणाद्यननुष्ठानबहुवस्त्रैकवस्त्रमलिनवस्त्रधारणकाम्यकर्मासंकल्पितस्ववर्णाश्रमाविहितकर्माचरणकांस्यभोजनदिवाभोजनासद्भाषणान्यपूजनकौटिल्यक्षौराभ्यङ्गासाधुसमागमोष्णजलस्नानोन्मर्दनगीतवाद्यादिश्रवणनृत्यदर्शनाष्टविधमैथुनतत्कथालापक्षुद्रकर्मास्थानस्पर्शप्राणिहिंसाकञ्चुकोष्णीषधारणासंवृतकराप्रावरणकेशमोक्षणशिरःप्रावरणचिन्ताक्रोधभ्रमत्वरामनोरथशयनोत्थानगमनान्धकारामङ्गलस्थानपादुकाधारणयानशय्याधिरोहणपादप्रसारणोत्कटासनक्षुतजृम्भाहिक्काविकलमनस्कानासनप्रौढपादनग्नकुशराहित्यादीनि।

पुरश्चरण काल में निषिद्ध—अप्रिय या असत्य भाषण, करञ्ज, लिसोड़ा, अकवन, स्नुही की छाया का लङ्घन, प्रतिग्रह, स्त्री शूद्र पतित नास्तिक से उच्छिष्ट भाषण, स्नान-तर्पण का न करना, बहुवस्त्र, एक वस्त्र अथवा मलिन वस्त्र धारण, काम्य कर्म, असङ्कल्पित स्ववर्णाश्रम के अविहित कर्माचरण, कांस्य पात्र में भोजन दिवा, भोजन, झूठा भाषण, अन्य पूजन, कौटिल्य, क्षौर, शरीर में तैलमालिश, असाधु समागम, उष्ण जल से स्नान, मालिश, गीत-वाद्यादि का श्रवण, नृत्य दर्शन, अष्टविध मैथुन, उसका कथालाप, क्षुद्र कर्म, अस्पृश्य का स्पर्श, प्राणी हिंसा, कञ्चुकी-उष्णीश धारण, उलटे हाथ को ढकना, केश आँख शिर को ढकना, चिन्ता-क्रोध-भ्रम-त्वरा मनोरथ, शयन-उत्थान-गमन-अन्धकार-अमंगल स्थान में पादुका धारण, यान-शय्या पर अधिरोहण, पाद प्रसारण, उत्कटासन, छींक, जम्हाई, हिचकी, व्यग्रता, प्रौढ़पाद, नग्नता, कुशराहित्य—ये सभी निषिद्ध हैं।

अथासनानि—तत्र व्याघ्रचर्ममृगाजिनवेत्रनिर्मितकम्बलकुशकटरक्तपटवस्त्रात्मकानि विहितानि।

आसन—व्याघ्रचर्म, मृगाजिन, वेत्रनिर्मित, कम्बल, कुशकी चटाई एवं लाल वस्त्र से रचित आसन पूजादि कार्य में विहित हैं।

अथ निषिद्धासनानि—वंशरचितदारुमयपाषाणतृणवस्त्रपल्लवेष्टकानिर्मितानि केवलभूतलं चेति।

निषिद्ध आसन—बाँस से निर्मित, काष्ठनिर्मित, पत्थर, तृण, वस्त्र, पल्लव, ईंट से निर्मित एवं केवल भूमि पर बैठना निषिद्ध है।

अथ पुरश्चरणारम्भपूर्वदिनकृत्यम्—तत्र प्रातः स्नात्वा नित्यक्रियां निर्वर्त्य ब्राह्मणान् भोजनादिभिस्तोषयित्वा स्वगुरुमपि वस्त्राभरणधनधान्यादिभिः सन्तोष्य जपस्थाने त्रिकोणवृत्तचतुरस्त्रमण्डले 'क्षं क्षेत्रपालाय नमः। क्षेत्रपाल इहागच्छ इहागच्छ' इति क्षेत्रपालमावाह्योक्तमन्त्रेण क्षेत्रपालं गन्धादिभिः संपूज्य तदग्रे त्रिकोणमण्डले साधारं सान्नव्यञ्जनोदकपूर्णं बलिपात्रं निधाय 'एह्येहि विद्वि(दु)षि मुरु मुरु भञ्जय भञ्जय तर्जय तर्जय विघ्न विघ्न महाभैरव क्षेत्रपाल बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा' इति मन्त्रेण बलिं दत्त्वोपवसेत्।

पुरश्चरण आरम्भ दिवस के पहले दिन का कृत्य—पूर्व दिन में प्रातःस्नान करके नित्य क्रिया को सम्पन्न कर ब्राह्मणों को भोजनादि कराये। अपने गुरु को भी वस्त्राभरण-धन-धान्य से सन्तुष्ट करे। जपस्थान में त्रिकोण वृत्त चतुरस्त्र में 'क्षं क्षेत्रपालाय नमः क्षेत्रपाल इहागच्छ इहागच्छ' से आवाहन करे। उक्त मन्त्र से क्षेत्रपाल की पूजा गन्धादि से करे। उसके आगे त्रिकोण मण्डल पर आधार रखकर उस पर बलिपात्र रखकर उसमें अन्न व्यञ्जन जल डालकर 'एह्येहि विद्विषि मुरु मुरु भञ्जय भञ्जय तर्जय तर्जय विघ्न विघ्न महाभैरव क्षेत्रपाल बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा' मन्त्र का उच्चारण कर बलि देकर विसर्जित करे।

अथ जपारम्भदिनकृत्यम्—तत्र शुभे मासि चन्द्रतारानुकूले तिथिवारनक्षत्रादिशोधिते सुदिवसे प्रातः स्नात्वा गुरुविप्राज्ञामादाय ब्राह्मणैः स्वस्तिवाचनं कारयित्वा कुशहस्तः 'ॐ सूर्यः सोमो यमः कालः सन्ध्ये भूतान्यहः क्षमा। पवनो दिक्पतिर्भूमिराकाशं खचरामराः। ब्राह्म्यं शासनमास्थाय कल्पध्वमिह सन्निधिम्' इति पठित्वा ताम्रपात्रे कुशतिलाक्षतजलान्यादायोदङ्मुखः ॐ अद्यामुके मासि अमुकराशिगते सवितरि अमुकपक्षेऽमुकतिथौ भारतवर्षाख्यभूप्रदेशे, विशेषक्षेत्रं चेदमुकक्षेत्रे, अमुकशर्म्मा, क्षत्रियश्चेदमुकवर्मा, वैश्यश्चेदमुकगुप्तः, शूद्रश्चेदमुकदासः

अमुकमन्त्रसिद्धिकामोऽमुकमन्त्रस्येयत्संख्याजपात्मकं पुरश्चरणं करिष्ये, अद्यारभ्यैतावद् दिनैरहं करिष्ये, इति वा संकल्पं विधाय, गुरुगणपतिदुर्गामातॄर्नत्वा पूजां समाप्य जपमारभेत। तत्र मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रं य कृत्वा मूलमन्त्रस्य ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासान् विन्यस्य, हृदि देवं ध्यायन् जपमालां वामहस्ते कुत्रचित्पात्रे वा संस्थाप्याघ्योंदकेन मूलमन्त्रेण संप्रोक्ष्य 'ॐ मां माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि। चतुवर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव' इति गन्धपुष्पाक्षतैर्मालां संपूज्य 'ॐ अविघ्नं कुरु माले त्वं' इति मन्त्रेण दक्षिणहस्तेन मालामादाय, स्वशिरसि श्रीगुरुं कण्ठे पीतवर्णं मूलमन्त्रं, हृदये स्वेष्टदेवतां, गुरुपादयोः स्वात्मानं च ध्यात्वा भ्रूमध्यस्थाज्ञाचक्रे गुरुदैवतमन्त्रात्मनामैक्यं विभाव्य, कण्ठस्थविशुद्धिचक्रे तच्चतुष्टयमेकीभूतं सुषुम्नावर्त्मनानीय तत्र देवतां ध्यात्वा, मूलमन्त्रेण हृदयस्थानाहतचक्रमानीय तत्रापि देवतां ध्यायन् हृदयसमीपे मालामानीय दक्षहस्तस्य मध्यमाङ्गुलिमध्यपर्वणि संस्थाप्यैकचित्तो भुग्नग्रीवोन्नतगात्रः कण्डून्मीलनरहितः खटखटादिशब्दमकुर्वन् मन्त्रार्थगतचित्तो मालायाः प्रतिबीजं मन्त्रमुच्चरन्, पूर्वबीजजपसमयेऽपरं बीजमस्पृशन् प्रणवोच्चारणपूर्वकं मन्त्रमारभ्य प्रातःकालान्मध्यन्दिनावधि देशाद्युपद्रवसंभावनायां त्वरया समापनीये वा सार्धप्रहरद्वयावधि जपित्वा, सर्वशेषावृत्त्यन्ते पुनः प्रणवमुच्चार्य जपं समाप्य 'त्वं माले सर्वदेवानां प्रीतिदा शुभदा भव। शिवं कुरुष्व मे भद्रे यशो वीर्यं च सर्वदा' इति मन्त्रेण मालां स्वशिरसि निधाय, पुनः प्राणायामत्र-यर्ष्यादिकरषडङ्गन्यासान् विधायाघ्योंदकेन प्रागुक्तमन्त्रेण जपं समर्प्य प्रागुक्तमालापूजनमन्त्रेण मालां संपूज्य रहसि स्थापयेत्। अत्र प्रणवोच्चारणं च त्रैवर्णिकानामेव। शूद्रादीनां तु औकारस्त्वाद्यन्तयोः प्रणवत्वेन ग्राह्य इति। ततो मध्याह्नस्नानादिकं विधाय पुनः पूजां विस्तरतः कृत्वा, प्रतिदिनहोमपक्षे जपदशांशं कल्पोक्तद्रव्यैर्विधिना संस्कृते वह्नौ हुत्वा होमदशांशं तर्पणं तर्पणदशांशं मार्जनं मार्जनदशांशं ब्राह्मणभोजनं च प्रत्यहं कुर्यात्। प्रतिलक्षहोमपक्षे एकलक्षसंख्यं जपं समाप्य तद् दशांशहोमादिकं कृत्वाग्रिमलक्षजपमारभेत्। कल्पोक्तसंख्याजपसमाप्त्यनन्तरहोमपक्षे कल्पोक्तसंख्यं जपं समाप्य पश्चात् तद् दशांशहोमादिकं कुर्यात्, इति पक्षत्रयेऽप्येकः पक्षः कार्यः। होमपर्यायस्तु प्रागेव दीक्षाप्रकरणे प्रोक्तः। होमाशक्तौ तु जप एव कार्यः। तत्र ब्राह्मणैः पुरश्चरणसंख्याचतुर्गुणः कार्यः, क्षत्रियैः षड्गुणो, वैश्यैरष्टगुणः कार्यः। अत्राशक्तौ ब्राह्मणैः पुरश्चरणसंख्याद्विगुणो जपः कार्यः, क्षत्रियैस्त्रिगुणो, वैश्यैश्चतुर्गुण इति। तत्राप्यशक्तौ होमसंख्याचतुर्गुणजपः कार्यः। एतदपि विप्रमात्रपरं, क्षत्रियवैश्ययोः प्राग्वत् षड्गुणाष्टगुणजपो भवति। तत्राप्यशक्तौ होमसंख्याद्विगुणजपो वा कार्यः, एतदपि विप्रमात्रपरं, क्षत्रियवैश्ययोस्तु त्रिगुणचतुर्गुणजपो भवति। द्विजभक्तेतरशूद्राणां दशगुणो जपो भवति। चतुर्गुणद्विगुणपक्षे तु पञ्चगुणजप इति। द्विजभक्तशूद्राणां तु यं वर्णमाश्रितो यः शूद्रस्तद्वर्णविहितजप एव, द्विजस्त्रीणामपि तथैवेति। स्त्रीशूद्राणां होमानधिकारात् जप एव विहित इति। इत्थं होमं विधाय चन्दनागरुकर्पूरादिवासितैर्जलैर्होमसंख्यादशांशतः प्रागुक्तविधिना जले देवं ध्यात्वा संपूज्य संतर्प्य स्वात्मानं देवतारूपं ध्यायन्, कुम्भमुद्रया मूलमन्त्रान्ते 'आत्मानमभिषिञ्चामि नमः' इति तर्पणसंख्यादशांशतः स्वमूर्ध्नि अभिषिच्याभिषेकसंख्यादशांशसंख्यकान् स्वेष्टदेवताभक्तान् सदाचारान् ब्राह्मणान् प्रातर्निमन्त्र्याहूयाभ्यङ्गादिना स्नापयित्वा वस्त्रगन्धादिभिरलंकृत्य, षड्रसैर्नानाविधैर्भक्ष्यैर्भोज्यैः स्वेष्टदेवताबुद्ध्या भोजयित्वा ताम्बूलदक्षिणादिभिः परितोष्य विसृजेदिति प्रत्यहं लक्षान्ते वा समस्तसंख्यासमाप्तौ वा भक्तिपूर्वकं कुर्यादिति। ततः प्रकृते मध्याह्नपूजानन्तरं वैश्वदेवादिकमाह्निकं विधाय, स्वेष्टदेवतामन्त्रजपध्यानकीर्तनश्रवणादिना दिनशेषं नीत्वा, शक्तौ सायन्तनस्नानं विधाय देवं संपूज्य भुञ्जीत। तत्र भोज्यानि—भैक्षं शुक्लैकविधास्विन्नहैमन्तिकनीवारषष्टिकाकङ्गुयवाः शूद्रानवहता बहुशः पादाभ्यामनुत्तोल्यावहताः, गुडवर्जितमैक्षवं, कृष्णतिलमुद्गकलायाः, केमुकवर्जं कन्दविशेषाः, नारिकेलकदलीफल-लवलीपनसाम्रामलकार्द्रकहरीतकीवास्तुककालशाकहिलमोचकाः, सैन्धवसामुद्रे लवणेऽनुद्धृतसाराणि गव्यानि, पिप्पलीजीरकनागरङ्गतिन्त्रिणीमूलकानि।

जपारम्भ दिवस के कर्तव्य—शुभ मास में चन्द्र-तारा की अनुकूलता में शोधित तिथि, वार, नक्षत्र में, शुभ दिन में प्रातःस्नान करके गुरु एवं ब्राह्मण से आज्ञा लेकर ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराये। हाथ में कुश लेकर 'ॐ सूर्यः सोमो

यमः कालः सन्ध्ये भूतान्यहः क्षपा। पवनो दिक्पतिर्भूमिराकाशं खचरामराः। ब्राह्मयं शासनमास्थाय कल्पध्वमिह सन्निधिम्' यह पढ़कर ताम्रपात्र में कुश-तिल-अक्षत-जल लेकर उत्तरमुख होकर कहे—ॐ अद्यामुकेमासि अमुकराशिगते सवितरि अमुकपक्षे अमुकतिथौ भारतवर्षाख्यभूप्रदेशे विशेषक्षेत्रं चेदमुकक्षेत्रे अमुकशर्मा, क्षत्रियश्चेत् अमुकवर्मा, वश्यश्चेत् अमुकगुप्तः शूद्रश्चेदमुकदासः अमुकमन्त्रसिद्धिकामो अमुकमन्त्रस्य इयत्संख्याजपात्मकं पुरश्चरणं करिष्ये। अद्यारभ्यैतावद्दिनैरहं करिष्ये—इस प्रकार सङ्कल्प करके गुरु-गणेश-दुर्गा एवं माताओं को प्रणाम करके पूजा समाप्त कर जप करे। मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करे। मूल मन्त्र के ऋष्यादि कर षडङ्ग न्यासों को करके हृदय में देव का ध्यान करके जपमाला को वाम हाथ में या किसी पात्र में रखकर अर्घ्य जल से मूल मन्त्र के द्वारा प्रोक्षित करके निम्नलिखित श्लोक पढ़े—

ॐ मां माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि। चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव।।

इस प्रकार गन्ध पुष्पाक्षत से माला की पूजा करे। 'ॐ अविघ्नं कुरु माले त्वं' मन्त्र से दाँयें हाथ में माला लेकर अपने शिर में श्रीगुरु, कण्ठ में पीतवर्ण के मूल मन्त्र, हृदय में इष्ट देवता एवं आत्मा में गुरुपाद का ध्यान करे। भ्रूमध्यस्थ आज्ञाचक्र में गुरु, देवता एवं मन्त्रों को एकाकार करते हुये कण्ठस्थ विशुद्धिचक्र में उन चारों को एकरूप मानकर सुषुम्णा मार्ग से लाकर वहाँ देवता का ध्यान कर मूल मन्त्र से हृदयस्थ अनाहत चक्र में लाकर वहाँ भी देवता का ध्यान करे। हृदय के समीप माला को लाकर दाँयें हाथ की मध्यमा अंगुलि के मध्य पर्व पर स्थापित करे। एकचित्त से सीधी ग्रीवा, उन्नत गात्र, खुजली-रहित, खटखटादि शब्द-रहित, मन्त्रार्थ का चिन्तन करते हुये माला के प्रत्येक बीज से मन्त्र उच्चरित करके पूर्वबीज के जप के समय दूसरे बीज का स्पर्श न करते हुए, प्रणवोच्चारपूर्वक मन्त्रजप आरम्भ करे। प्रातःकाल से मध्य दिवस तक देशादि उपद्रव की सम्भावना होने के कारण त्वरित गति से जप का समापन करे या ढाई प्रहर तक जप करे। सर्वशेष आवृत्ति के अन्त में पुनः प्रणव का उच्चारण करके जप समाप्त करे। तदनन्तर 'त्वं माले..........वीर्यं च सर्वदा' कहकर माला को शिर से स्पर्श कराये। फिर तीन प्राणायाम एवं ऋष्यादि कर षडङ्ग न्यास करे। अर्घ्य जल से पूर्वोक्त मन्त्र के द्वारा जप समर्पित करे। पूर्वोक्त मालापूजन मन्त्र से माला का पूजनकर एकान्त स्थान पर उसे स्थापित करे।

यहाँ यह ध्यातव्य है कि प्रणवोच्चारण तीनों ही वर्णों के लिये कहा गया है। शूद्रों को आदि और अन्त में औकार का उच्चारण प्रणव के रूप में करना चाहिये। तब मध्याह्न स्नानादिक करके पुनः विस्तार से पूजा करके प्रतिदिन होम के रूप में जप का दशांश का हवन कल्पोक्त द्रव्यों से विधिवत् संस्कृत अग्नि में करे। हवन का दशांश तर्पण, तर्पण का दशांश मार्जन एवं मार्जन का दशांश ब्राह्मणभोजन प्रतिदिन कराये। प्रतिलक्ष जप के पक्ष में एक लाख जप पूरा होने पर उसका दशांश होमादि करके अग्रिम लक्ष जप प्रारम्भ करे। कल्पोक्त जपसंख्या समापन के बाद हवन के पक्ष में कल्पोक्त संख्या में जप के बाद दशांश हवनादि करे। इन तीन पक्षों में से एक ही पक्ष के अनुसार कार्य करे। होम करने में अशक्त होने पर जप ही करना चाहिये। वहाँ ब्राह्मणों को पुरश्चरणसंख्या का चौगुना जप करना चाहिये। क्षत्रियों को छः गुना एवं वैश्यों का आठगुना जप करना चाहिये। इसमें भी अशक्त होने पर ब्राह्मणों को दुगुना जप, क्षत्रियों को तिगुना और वैश्यों को चौगुना जप करना चाहिये। इसमें भी अशक्त होने पर ब्राह्मण को होम का चौगुना जप करे। क्षत्रिय वैश्यों के लिये पूर्ववत् छः गुना एवं आठ गुना जप करणीय होता है। इसमें भी अशक्त होने पर विप्रों को हवनसंख्या का दोगुना जप करना चाहिये एवं क्षत्रियों और वैश्यों को तिगुना-चौगुना जप करना चाहिये। द्विज भक्तों के अतिरिक्त शूद्रों के लिये दश गुना जप करणीय होता है। चौगुना-दोगुना पक्ष में पाँच गुना जप करना है।

इस प्रकार हवन के बाद चन्दन अगर कपूरादि से वासित जल से होमसंख्या के दशांश पूर्वोक्त विधि से जल में देवता को ध्यान-पूजन करके तर्पण करे। अपने को देवता रूप माने। कुम्भ मुद्रा से मूल मन्त्र के अन्त में 'आत्मानमभिषिञ्चामि नमः' कहकर तर्पणसंख्या का दशांश अपने मूर्धा पर अभिषेक करे। अभिषेकसंख्या का दशांश संख्या में स्वेष्ट देवता, भक्तों को, सदाचारी ब्राह्मणी को प्रातः निमन्त्रण देकर अभ्यङ्ग स्नान कराकर गन्ध-वस्त्र से अलंकृत करे। षड्रस के नानाविध भोक्ष्य भेज्य स्वेष्ट देवता बुद्धि से भोजन कराये। ताम्बूल दक्षिणादि से परितुष्ट करके उनका विसर्जन करे। प्रतिदिन या लक्षजप के बाद या पूरी संख्या में जपसमाप्ति के बाद भक्तिपूर्वक हवनादि करे। तब मध्याह्न पूजा के बाद वैश्वदेवादि आह्निक कर्म करे।

स्वेष्ट देवता मन्त्र जप ध्यान कीर्तन श्रवणादि से शेष दिन बिताये। समर्थ होने पर सायान्त स्नान करे। देवता की पूजा करके भोजन करे। भोजन में भिक्षा में प्राप्त सफेद एक ही प्रकार का हेमन्तिक धान्य, षष्टिक धान्य, कङ्गु, यव जो शूद्रों द्वारा लाये न हों एवं पैरों से मर्दित न हों, गुड़रहित ईक्षु पदार्थ, कृष्ण तिल, मुद्‌ग, कलाप, केमुकरहित कन्द आदि, नारियल केलाफल, लवली, कटहल, आम, आँवला, अदरकहरीतकी वास्तुक, कालशाक, हिलमोचक, सैन्धव, सामुद्रिक नमक के बिना गव्य, पिप्पली, जीरा, नारङ्गी, इमली एवं मूली ग्रहण करना चाहिये।

अथ वर्ज्यानि—गुडकृत्रिमलवणक्षारलवणस्विन्नपर्युषितनिःस्नेहकीटादिदूषितकाञ्जिकगृञ्जनबिल्वकरञ्ज-लशुनमृणालकोद्रवमण्डकतैलपक्वमाषमसूरचणकगोधूमदेवधान्यादीनि, अतिभोजनं दिवाभोजनं च।

वर्ज्य भोजन—गुड़, कृत्रिम नमक, क्षार नमक, स्विन्न, बासी, नि:स्नेह, कीटादि-दूषित, काञ्जिक गृञ्जन, बेल, करञ्ज, लशुन, मृणाल, कोद्रव, मण्डक, तैलपक्व, उडद, मसूर, चना, गेहूँ, देव धान्य, अति भोजन एवं दिवा भोजन वर्ज्य होते हैं।

अथ भोजनपर्यायः—तत्र स्वेष्टदेवताप्रसादमन्नं मध्यपत्ररहितपलाशपत्रैः कल्पितपत्रावल्यां संस्थाप्य वैदिकमन्त्रैः संस्कृत्य मूलमन्त्रेण प्रोक्ष्य प्रतिद्रव्यं मूलमन्त्रेण सप्तवारमभिमन्त्र्य मितं मितं हृन्मन्त्रेणाश्नीयात्, मूलमन्त्रेण द्वात्रिंशद्वारमभिमन्त्रितं जलं च पिबेत्।

भोजन के पर्याय—स्वेष्ट देवता के प्रसाद स्वरूप अन्न को मध्य पत्ररहित पलाश पत्र से निर्मित पत्रावली पर स्थापित करके वैदिक मन्त्रों से उसे संस्कृत करके मूल मन्त्र से प्रोक्षित कर प्रति द्रव्य को मूल मन्त्र के सात जप से अभिमन्त्रित करके हृन्मन्त्र से थोड़ा-थोड़ा भोजन करे। मूल मन्त्र से बत्तीस बार अभिमन्त्रित जल का पान करे।

अथ शयनम्—तत्र कुशनिर्मितायां शय्यायां प्रक्षालितायां क्षाराद्भिः प्रक्षालितं वस्त्रमास्तीर्य शय्यां मूलमन्त्रेण सप्तवारमभिमन्त्र्य, 'यज्जाग्रत' इति सूक्तस्य शिवसंकल्पऋषिः त्रिष्टुप् छन्दः मनो देवता सूक्तजपे विनियोगः।

यज्जाग्रतो दूरमुदेति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥१॥
येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्ष्यमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥२॥
यत् प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥३॥
येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥४॥
यस्मिन्नृचः सामयजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥५॥
सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥६॥

इति मन्त्रांस्त्रिः पठित्वा।

भगवन् देवदेवेश शूलभृद् वृषवाहन। इष्टानिष्टे समाचक्ष्व मम स्वप्तस्य शाश्वत ॥१॥ इति। 'ॐ हिलि हिलि शूलपाणये स्वाहा'।

नमोऽजाय त्रिनेत्राय पिङ्गलाय महात्मने। वामाय विश्वरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः ॥१॥

स्वप्ने कथय मे तथ्यं सर्वकार्येष्वशेषत:। क्रियासिद्धिं विधास्यामि त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥२॥
नम: सकललोकाय विष्णवे प्रभविष्णवे। विश्वाय विश्वरूपाय स्वप्नाधिपतये नम: ॥३॥

इति मन्त्रांश्च सकृज्जपित्वा प्राक्शिरा दक्षिणपार्श्वशायी स्वप्नं परीक्षेत। तत्र स्वस्थानां प्रथमे प्रहरे दृष्टस्य स्वप्नस्य वर्षेण फलं, द्वितीये षष्ठे मासि, तृतीये मासत्रयेण, चतुर्थे मासेन, निशान्ते सद्य: फलं ज्ञेयमिति।

शयन—कुशनिर्मित प्रक्षालित शय्या पर क्षार आदि से प्रक्षालित वस्त्र बिछाकर उसे मूल मन्त्र के सात जप से मन्त्रित करके 'यज्जाग्रत' सूक्त विनियोगपूर्वक तीन बार पाठ करे—

नमोऽजाय त्रिनेत्राय पिङ्गलाय महात्मने। वामाय विश्वरूपाय स्वप्नाधिपतये नम:।।
स्वप्ने कथय मे तथ्यं सर्वकार्येष्वशेषत:। क्रियासिद्धिं विधास्यामि त्वत्प्रसादान्महेश्वर।।
नम: सकललोकाय विष्णवे प्रभविष्णवे। विश्वाय विश्वरूपाय स्वप्नाधिपतये नम:।।

इस मन्त्र का एक बार जप करने के बाद पूर्व दिशा में शिर रखकर दक्षिण पार्श्व में लेटकर स्वप्न की परीक्षा करे। स्वस्थ लोगों को पहले प्रहर के स्वप्नदर्शन का फल एक वर्ष में मिलता है। द्वितीय प्रहर के स्वप्न का फल छ: महीने में, तृतीय प्रहर के स्वप्न का फल तीन माहों में, चौथे प्रहर के स्वप्न का फल एक महीना में, रात्रि के अन्त में दृष्ट स्वप्न का फल तुरन्त मिलता है।

अथ सिद्धिसूचकस्वप्ना:—प्रसादसुमुखस्वेष्टदेवतागुरुनिर्मलचन्द्रसूर्यमण्डल-गङ्गागोसरस्वतीसंन्यासिशिवलिङ्गानां दर्शनं, भूमिलाभ: रक्तसमुद्रतरणं युद्धजयो, होमवह्निपूजनं, हंसचक्रवाकमयूरसारसदर्शनं, रथारोहरण-कन्याच्छत्ररथदीपप्रासादगजवृषमाल्यसमुद्रसर्पकुलवृक्षपर्वतपवित्राममांसतुरगसुरासवस्त्रीदर्शनं, नदीतरणाकाश-गमनग्रहनक्षत्रदर्शनहर्म्यप्रासादशिखरगजाश्ववृषभतरुपर्वतशिखरारोहरणविमानगमनलाभदेवीदर्शनानि, मदिरापानाम-मांसभक्षणपुरीषानुलेपनरक्ताभिषेकरत्नाभरणादिदर्शनानि।

सिद्धिसूचक स्वप्न—प्रसन्नता से सुन्दर मुख वाले स्वेष्ट देवता, गुरु, निर्मल चन्द्र-सूर्यमण्डल, गङ्गा, सरस्वती, संन्यासी, शिवलिङ्ग, भूमिलाभ, रक्त समुद्रतरण, युद्ध में जय, होमाग्नि पूजन-हंस-चक्रवाक-मयूर-सारस दर्शन, रथारोहण, कन्या, छत्र, रथ, दीप, प्रासाद, शिविर, हाथी, साँढ़, घोड़ा, वृक्ष, पर्वतशिखर पर रोहण, विमानगमन का लाभ, देवी दर्शन, मदिरापान, मांसभक्षण, मल का लेप, रक्त से स्नान, रत्नाभरणादि का दर्शन—ये सब सिद्धिसूचक स्वप्न होते हैं।

अथाशुभसूचका:—चण्डालकलभकाकशून्यगर्तामङ्गलद्रव्यतैलाभ्यक्तनरनग्नशुष्कवृक्षकण्टकतरुतल-रहितप्रासाददर्शनं रोगदम्। तत्र प्रायश्चित्तं नृसिंहमन्त्रं पठित्वा दु:स्वप्नसूचितान् दोषान् जहि जहि पुनर्नृसिंहमन्त्रं पठित्वा स्वाहा, इत्यष्टोत्तरशतं घृतैर्जुहुयात्। अथवा एवमेवास्त्रमन्त्रेण वा होम: कार्य:। नृसिंहमन्त्रस्त्वेकाक्षर:, स च क्ष्रौमिति। अस्त्रमन्त्रस्तु स्वोपास्यमूलविद्याया:।

अशुभसूचक स्वप्न—चण्डाल, ऊँट का बच्चा, कौआ, शून्य खाई, अमङ्गल द्रव्य, तैलाभ्यक्त मनुष्य, नग्न मनुष्य, शुष्क वृक्ष, कटीला वृक्ष, तलरहित मकान का स्वप्न में दर्शन रोगप्रद होता है। उसका प्रायश्चित्त 'ॐ क्ष्रौं जय जय लक्ष्मीनृसिंह दु:स्वप्नसूचितान् दोषान् जहि जहि ॐ क्ष्रौं जय जय लक्ष्मीनृसिंह स्वाहा'—इस मन्त्र से एक सौ आठ बार घी से हवन करके किया जाता है। अथवा केवल अस्त्रमन्त्र से हवन करने से अशुभ स्वप्नदर्शन का प्रायश्चित्त होता है। नृसिंह मन्त्र एकाक्षर 'क्ष्रौं' है। अस्त्रमन्त्र स्वोपास्य मूल विद्या होता है।

अथ स्वप्ननिवेदनम्—तत्र गुरुचरणारबिन्दयुगलं प्रणम्य पुष्पहस्त: स्वप्नं तस्मै निवेदयेत्। गुरोरन्यत्र न प्रकाशयेत्।

स्वप्न निवेदन—गुरु के चरणकमलों में प्रणाम करके हाथ में फूल लेकर स्वप्न का निवेदन करे। गुरु के अतिरिक्त किसी दूसरे को अपना स्वप्न कभी न बताये।

अथ सिद्धिचिह्नानि—चित्तप्रसादो मनस्तुष्टिः स्वल्पाशननिद्राजयज्योतिर्दर्शनाकस्मादतिहर्षान्तरिक्षस्थदुन्दुभिशब्दमधुरवाद्यनानागीतश्रवणं, कर्पूरादिसुगन्धिपरिमलाघ्राणं, चन्द्रार्ककिरणाकीर्णाकाशालोकनानि। एवं कृतेऽपि न सिद्ध्यति चेद् द्विस्त्रिर्वा पुनः पुनः कुर्यात्।

सिद्धि के चिह्न—चित्त में प्रसन्नता, मन में तुष्टि, अल्प भोजन, निद्राजय, ज्योति दर्शन, अकस्मात् अति हर्ष, अन्तरिक्ष में ढोल बजना, मधुर वाद्य वाले गीत का सुनायी पड़ना, कर्पूरादि सुगन्धि, परिमल गन्ध होना, चन्द्र, सूर्य, किरणों से आलोकित आकाश का दिखायी पड़ना। इतना करने पर भी यदि सिद्धि न मिले तब पुनः दूसरा या तीसरा पुरश्चरण करे।

मन्त्रसिद्धिप्रकारान्तराणि

अथ मन्त्रसिद्धेरन्यः पर्यायः। तत्र कुलप्रकाशतन्त्रे—

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते। ग्रहणेऽर्कस्य चेन्दोर्वा शुचिः पुर्वमुपोषितः ॥१॥
नद्यां समुद्रगामिन्यां नाभिमात्रे जले स्थितः। स्पर्शाद्विमुक्तिपर्यन्तं जपेन्मन्त्रं समाहितः ॥२॥
तावत्कालं जपित्वेत्थं ततो होमादिकं चरेत्। इति।

अयमर्थः—तत्र सूर्योपरागे पूर्वदिनमुपोषितश्चन्द्रग्रहणे तद्दिन एवोपोषितो ग्रहणं दृष्ट्वा स्नानं विधायाद्यामुके मासि अमुकराशिगते सूर्येऽमुकपक्षेऽमुकतिथौ अमुकतीर्थे सूर्यग्रहणे चन्द्रग्रहणे वामुकगोत्रोऽमुकशर्म्मेत्यादि अमुकमन्त्रसिद्धिकामोऽमुकग्रहणतत्समयमारभ्य विमुक्तिपर्यन्तममुकमन्त्रजपमहं करिष्ये, इति सङ्कल्पं कृत्वा विमुक्तिपर्यन्तं जपेत्। ग्रहणकालीनजपदशांशहोमं करिष्ये, इति होमसङ्कल्पः। होमाशक्तौ प्रागुक्तवत् जपः कार्यः। अपरस्तु मन्त्रसिद्धिपर्यायः। तत्र कुम्भसम्भवः—

कृष्णाष्टमीं समारभ्य यावत् कृष्णचतुर्दशी। देवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रमयुतानां चतुष्टयम् ॥१॥
दशांशं होमयेत् पश्चात्तर्पयेदभिषेचयेत्। ततः सिद्धो भवेन्मन्त्रः························॥२॥ इति।

अयमर्थः—तत्राद्येत्याद्यमुकमन्त्रसिद्धिकामः कृष्णाष्टमीमारभ्य तच्चतुर्दशीपर्यन्तममुकमन्त्रस्यायुतचतुष्टयजपमहं करिष्ये, इति संकल्पं विधायायुतचतुष्टयजपं सप्तधा विभज्य चतुर्दशोत्तरसप्तशताधिकसहस्रपञ्चकं जपित्वा तद्दशांशहोमादिकं च कुर्यादिति। अपरः प्रकारस्तु कालोत्तरे—

मन्त्री तु प्रजपेन्मन्त्रं मातृकाक्षरसंपुटम्। अनुलोमविलोमेन मन्त्रसिद्धिः प्रजायते ॥१॥
त्रिषष्ट्यक्षरसंयुक्तमातृकाक्षरसंपुटम्। क्रमोत्क्रमात् शतावृत्त्या मासात् सिद्धो भवेन्मनुः ॥२॥
मातृकाजपमात्रेण मन्त्राणां कोटिकोटयः। सिद्धाः स्युर्नैव सन्देहो यस्मात्सर्वं तदुद्भवम् ॥३॥ इति।

अयमर्थः—क्रमोत्क्रमात् मातृकापुटितं मन्त्रं प्रतिदिनं शतं मासमात्रं जपेदिति। अत्राप्यद्येत्यादि० क्रमोत्क्रममातृकापुटितमन्त्रस्य मासमात्रं प्रतिदिनं शतशतसंख्यजपमहं करिष्ये, इति संकल्पं विधाय प्रतिदिनं जपेत्। अत्र शतशब्दो न्यूनसंख्याव्यवच्छेदकः, तेनाष्टोत्तरशतसंख्यं जपेदित्यर्थः। मातृकासंपुटप्रकारस्तु—अंआंइंईं उंऊंऋंॠं ऌंॡंएंऐं ओंऔंअंअः कंखंगंघंङं चंछंजंझंञं टंठंडंढंणं तंथंदंधंनं पंफंबंभंमं यंरंलंवं शंषंसंहंळंक्षं मूलं क्षंळंहंसंषंशंवंलंरंयंमंभंबंफंपंनंधंदंथंतंणंढंडंठंटंञंझंजंछंचंङंघंगंखंकंअः अंऔंओंऐंएंॡंऌंॠंऋंऊंउंईंइंआंअं, इति शतवारं मूलमन्त्रं जपेदिति। त्रिषष्ट्यर्णमातृका तु बह्वृचप्रातिशाख्ये 'त्रिषष्टिश्चतुःषष्टिर्वा वर्णाः शम्भुमते मताः' इति प्रागेवोक्तम् (३ श्वा० ६४ पृ०)। एवं त्रिषष्ट्यर्णमातृकया प्रत्यक्षरबिन्दुयुक्तया प्राग्वत् स्वेष्टमन्त्रं संपुटीकृत्य मासमात्रं प्रतिदिनमष्टोत्तरशतं जपेत्। संकल्पोऽपि प्राग्वदेव। अपरश्च प्रकारः कुलार्णवे—

मासमात्रं जपेन्मन्त्रं भूतलिप्या पुटीकृतम्। क्रमोत्क्रमात् सहस्रं तु मासात् सिद्धो भवेन्मनुः ॥१॥ इति।

अयमर्थः—तत्र क्रमोत्क्रमभूतलिप्या पुटीकृत्य मूलमन्त्रमष्टोत्तरसहस्रं मासमात्रं प्रतिदिनं जपेत्। सङ्कल्पस्तु

पूर्ववदेव। भूतलिपयस्तु प्रागेवोक्ताः (३ श्वा० ६४ पृ०)। **अष्टोत्तरशतमिति पाठे गुरुजप्तमन्त्रपरं ज्ञेयम्। प्रकारान्तरं तु वायवीयसंहितायाम्—**

त्रिकालं गन्धपुष्पाद्यैर्योऽर्चयेद् देवतां निशि। पुरश्चरणकृत्येन विनैवासौ प्रसीदति ॥११॥ इति।

अस्यार्थ—अद्येहेत्यादि० अमुकमन्त्रसिद्धिकामो रात्रौ त्रिकालपूजनं करिष्ये, इति सङ्कल्पं कृत्वा वत्सरमात्रं रात्रौ प्रतिदिनं त्रिकालं सर्वोपचारैर्देवीं साङ्गावरणां पूजयेत्। एवं षण्मासं त्रिमासं वा मासमात्रं वा पूजयेत्। पुरश्चरणमन्तरेणापि मन्त्रसिद्धिर्भवति इति।

मन्त्रसिद्धि के अन्य प्रकार—कुलप्रकाशतन्त्र में कहा गया है कि सूर्य, चन्द्रग्रहण के पहले उपवास रहकर समुद्रगामिनी नदी में नाभि तक जल में खड़े होकर ग्रहणस्पर्श से मोक्ष तक समाहितचित्त होकर मन्त्र का जप करे। ग्रहणमोक्ष के बाद दशांश हवन करे। हवन करने में अशक्त होने पर पूर्वोक्त संख्या में जप करे। अगस्त्य ने कहा है कि कृष्णाष्टमी से आरम्भ करके कृष्ण चतुर्दशी तक देवता का ध्यान करके चालीस हजार जप करे। दशांश हवन करे। इसके बाद तर्पण मार्जन करने से मन्त्र सिद्ध होते हैं।

कालोत्तर में कहा गया है कि मातृकाक्षर से सम्पुटित मन्त्र का जप साधक करे। अनुलोम-विलोम क्रम से सम्पुटित जप से मन्त्र सिद्ध होता है। तिरसठ संयुक्त मातृकाक्षरों से सम्पुटित मन्त्र का क्रमोत्क्रम से सौ जप करने पर एक महीने में मन्त्र सिद्ध होता है। मातृका के जपमात्र से कोटि-कोटि मन्त्र सिद्ध होते हैं, इसमें सन्देह नहीं है; क्योंकि मातृका से ही सभी मन्त्र उत्पन्न हुये हैं। इसका तात्पर्य है कि क्रमोत्क्रम से मातृकापुटित मन्त्र का जप प्रतिदिन एक सौ आठ की संख्या में एक महीने तक करे। मातृका सम्पुट का प्रकार है—अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं मूल मन्त्र क्षं ळं हं सं षं सं शं वं लं रं यं मं भं बं फं पं नं धं दं थं तं णं ढं डं ठं टं ञं झं जं छं चं ङं घं गं खं कं अः अं औं ओं ऐं एं ॡं ऌं ॠं ऋं ऊं उं ईं इं आं अं। इस प्रकार सम्पुटित करके एक सौ आठ बार मन्त्र का जप प्रतिदिन करे। बह्वृच प्रतिशाख्य में कहा गया है कि तिरसठ मातृकाओं को बिन्दुयुक्त करके पूर्ववत् इष्ट मन्त्र को पुटित करके एक माह तक एक सौ आठ जप करने से मन्त्र सिद्ध होते हैं। कुलार्णव में कहा गया है कि मन्त्र को भूतलिपि से पुटित करके एक महीना तक प्रतिदिन क्रमोत्क्रम से एक हजार आठ की संख्या में प्रतिदिन जप करने से मन्त्र सिद्ध होता है।

वायवीय संहिता में कहा गया है कि रात में देवता का गन्ध-पुष्पादि से त्रिकालपूजन करने पर पुरश्चरण के बिना भी देवता प्रसन्न होता है। तात्पर्य यह है कि सङ्कल्पपूर्वक एक वर्ष तक प्रत्येक रात्रि में प्रतिदिन सभी उपचारों से साङ्ग सावरण देवी का त्रिकाल पूजन छः माह या तीन माह या एक माह तक लगातार करने से पुरश्चरण के बिना भी मन्त्रसिद्धि होती है।

कादिमते प्रकारान्तरम्

अन्यप्रकारस्तु कादिमते—

यो मन्त्रस्तस्य (मन्त्रस्य) वर्णौषधिविनिर्मिताः। तत्तद्वर्णोक्तसंख्याभिर्गुटिकाः मन्त्रसिद्धिदाः ॥१॥
तथाभिषेकस्तद्धारणं तत्खादस्तद्विलेपनम्। तत्पूजा च तथा सिद्धिदायकास्तु न संशयः ॥२॥ इति।

अयमर्थः—तत्र मन्त्रवर्णौषधिविनिर्मितमन्त्रवर्णसमसंख्यानां गुटिकानां धारणं, तद्भक्षणं, विलेपनं, ताभिः पूजां तत् क्वाथजलैः स्नानं तद्भस्मधारणं च कुर्यात्। तेन मन्त्रसिद्धिर्भवति।

कादिमत से अन्य प्रकार—मन्त्रवर्णों की औषधि से निर्मित मन्त्रवर्ण की संख्या में गुटिका से ग्रथित माला सिद्धिदा होती है। वर्णौषधियों से निर्मित गुटिका का धारण, उन्हें खाना, उनका लेप और उनकी पूजा, उनके क्वाथ से स्नान एवं उनके भस्म को धारण करने मन्त्र सिद्ध होता है।

पञ्चाशद्वर्णौषधिनामानि

वर्णौषधयस्तु प्रपञ्चसारे (३ प० ५३ श्लो०)—

चन्दनकुचन्दनागरुकर्पूरोशीररोगजलघुसृणाः । कक्कोलजातिमांसीमुराचोरग्रन्थिरोचनापत्राः ॥१॥
पिप्पलबिल्वगुहारुणतृणकलवङ्गाह्वकुम्भिवन्दिन्यः । सोडुम्बरकाश्मरिकास्थिराब्जदरपुष्पिकामयूरशिखाः ॥२॥
प्लक्षाग्निमन्थसिंहीकुशाह्वदर्भाश्च कृष्णदरपुष्पी । रोहिणटुण्टुकबृहतीपाटलचित्रातुलस्यपामार्गाः ॥३॥
शतमूलिलताद्विरेफा विष्णुक्रान्ता मुषल्यथाञ्जलिनी । दूर्वा श्रीदेवीसहे तथैव लक्ष्मीसदाभद्रे ॥४॥
आदीनामिति कथिता वर्णानां क्रमवशादथौषधयः । गुटिकाकषायभसितप्रभेदतो निखिलसिद्धिदायिन्यः ॥५॥ इति।

अथैतासां नामानि यथा—चन्दनं रक्तचन्दनं अगरु-कर्पूर-उशीर-कुष्ठ-वाल-कुङ्कुम-जातीफल-जटा-मांसी-मुरा-चोर-ग्रन्थि-गोरोचना-पत्रा, पिप्पल-बिल्व-पृश्निपर्णी-चित्रक-लवङ्ग-कत्तृण-कट्फल-वन्दि-उदुम्बर-पाषाणभेद-पद्म-शङ्खपुष्पी-मयूरशिखा-प्लक्ष-अग्निमन्थ-सिंही-कुश-कृष्णशङ्खपुष्पी-रोहिणी-स्योनाक-बृहती-पाटल-मूषकपर्णी-तुलसी-अपामार्ग-इन्द्रवल्ली-भृङ्गराज-अपराजिता-तालमूली-कृताञ्जलि-दूर्वा-श्रीदेवी-कुमारी-भारङ्गी-भद्रमुस्ताः, इत्येकपञ्चाशदौषधयः क्रमादकारादिक्षकारान्तैकपञ्चाशद्वर्णानामिति।

प्रपञ्चसार के अनुसार वर्णौषधि—वर्णौषधियों के नाम प्रपञ्चसार में इस प्रकार बताये गये हैं—चन्दन, रक्तचन्दन, अगर, कपूर, खश, कूठ, बाल, कुङ्कुम, जातीफल, जटामासी, मुरा, चोर, ग्रन्थि, गोरोचन, पत्र, पिप्पल, बेल, पृश्निपर्णी, चित्रक, लवङ्ग, कत्तृण, कट्फल, वन्दि, गूलर, पाषाणभेद, पद्म, शङ्खपुष्पी, मयूरशिखा, पाँकड़, अग्निमन्थ, सिंही, कुश, कृष्ण शंखपुष्पी, रोहिण, स्योनाक, बृहती, पाटल, मूषकपर्णी, तुलसी, अपामार्ग, इन्द्रवल्ली, भृङ्गराज, अपराजिता, तालमूली, कृताञ्जली, दूर्वा, श्रीदेवी, कुमारी, भारङ्गी, भद्रमुस्ता—ये इक्यावन औषधियाँ होती हैं। अ से क्ष तक की मातृकाओं में से प्रत्येक की क्रमशः एक-एक औषधि होती है।

मन्त्रसिद्धिप्रकारान्तरम्

अपरप्रकारश्च मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—

संस्कृतं पूजितं मन्त्रं दत्त्वा शिष्याय देशिकः । कुर्यादथ तयोरैक्यं शास्त्रदृष्टेन वर्त्मना ॥१॥
मन्त्रं विदर्भयित्वा तु नामवर्णैर्यथाक्रमम् । आद्यन्ते सकलं नाम ततः प्रणवमालिखेत् ॥२॥
स्वराः पत्रेषु संलेख्या ध्यायेत्तानमृतात्मकान् । भूर्जे रोचनगन्धाद्यैः पद्ममध्ये सुशोभने ॥३॥
मृदा पवित्रयावेष्ट्य तत्पुनः सिक्थकेन तु । निक्षिपेन्मधुरे तत्तु मृण्मये लघुभाजने ॥४॥
क्षीरपूर्णे नवे कुम्भे तत्क्षिपेल्लघुभाजनम् । धारयेद् देशिकः कुम्भमग्निकुण्डसमीपतः ॥५॥
मन्त्रसाधकयोरैक्यसिद्ध्यर्थं जुहुयात्ततः । मूलमन्त्रेण मन्त्रज्ञः सहस्रं शतमेव वा ॥६॥
कुम्भे संपातयेच्चैव मधुराणां त्रयं शुभम् । होमं समाप्य तं कुम्भं विनिक्षिप्य जलाशये ॥७॥
स्वगुरुं ब्राह्मणान् स्वर्णैस्तोषयेद्दक्षिणादिभिः । एतद्यो न विजानाति नासौ साधक उच्यते ॥८॥
रहस्यं कथितं चैतन्न वदेद्यस्य कस्यचित् । उत्तमाय तु शिष्याय पुत्राय च वदेदिदम् ॥९॥ इति।

अयमर्थः—भूर्जपत्रे गोरोचनागन्धादिभिरष्टदलपद्मं विरच्य तत्कर्णिकायां साधकनामवर्णविदर्भितं मन्त्रमाद्यन्ते सकलं नाम प्रणवं च विलिख्य, पत्रेषु द्वन्द्वशः क्रमेण स्वरान् विलिख्य गुटिकीकृत्य, पवित्रमृदा संवेष्ट्य तदपि सिक्थकेन संवेष्ट्य मधुरत्रयपूरिते स्वल्पमृत्पात्रे निक्षिप्य, क्षीरपूर्णे नूतनकुम्भे सयन्त्रगुटिकमृत्पात्रं निक्षिप्य, प्रागुक्तविधिनाग्निं कुण्डादौ संस्कृत्य तत्समीपे तत्कुम्भं संस्थाप्य, ॐ अद्येत्यादि० अमुकमन्त्रसिद्धिकामो विद्यासाधकयोरैक्यत्व-सिद्ध्यर्थमष्टोत्तरसहस्रं शतं वा मधुरत्रयहोममहं करिष्ये, इति संकल्प्य, उपास्यमन्त्रेण संकल्पितसंख्यं प्रत्याहुति कुम्भे संपातं स्रुवलग्नं हुतशेषं निक्षिपन् हुत्वा तं कुम्भं जलाशये निक्षिप्य गुरुब्राह्मणादीन् स्वर्णादिभिस्तोषयेदिति।

मन्त्रतन्त्रप्रकाश में कहा गया है कि भोजपत्र पर गोरोचन-गन्धादि से अष्टदल पद्म बनाकर उसकी कर्णिका में साधक नाम-वर्ण लिखकर आदि और अन्त में सम्पूर्ण नाम लिखकर प्रणव लिखे। आठ दलों में दो-दो स्वरों को लिखे। उसकी गुटिका बनाकर पवित्र मिट्टी से उसे लपेट दे। तब उस पर मोम लपेटे। मधुरत्रय से पूर्ण छोटे मिट्टी के पात्र में उसे डुबो दे। दुग्धपूर्ण नये कुम्भ में यन्त्रसहित मिट्टीपात्र को डुबो दे। पूर्वोक्त विधि से कुण्ड का संस्कार करे। उसके समीप उस घट को स्थापित करके सङ्कल्प कर उपास्य मन्त्र से सङ्कल्पित संख्या में प्रति आहुति कुम्भ में स्रुव लग्न हुतशेष का संपात करे। हवन के बाद घड़े को जलाशय में गाड़ दे। तदनन्तर गुरु ब्राह्मणों को सोना आदि से तुष्ट करे। इस प्रक्रिया को जो नहीं जानता, वह साधक कहलाने का अधिकारी नहीं है। इस रहस्य को उत्तम शिष्य एवं उत्तम पुत्र के अतिरिक्त किसी से नहीं कहना चाहिये।

मन्त्रसिद्ध्यै द्रावणादिसंस्कारः तत्प्रयोगश्च

एवं कृतेऽपि न सिद्ध्यति तदा मन्त्रस्य द्रावणादिकं कुर्यात्। तदुक्तं महाहारकतन्त्रे—

द्रावणं बोधनं वश्यं पीडनं पोषशोषणे। दाहनं च बुधः कुर्यात्ततः सिद्धो भवेन्मनुः ॥१॥
द्रावणं वारुणैर्बीजैर्ग्रथनक्रमयोगतः। तन्मन्त्रं यन्त्र आलिख्य शिलाकर्पूरकुङ्कुमैः ॥२॥
उशीररोचनाभ्यां च मन्त्रं संग्रथितं लिखेत्। क्षीराज्यमधुतोयानां मध्ये तं लिखितं क्षिपेत् ॥३॥
पूजनाज्जपनाद्धोमाद् द्रावितः फलदो भवेत्। द्रावितोऽपि न सिद्धश्चेद्बोधनं तस्य कारेयत् ॥४॥
सारस्वतेन बीजेन संपुटीकृत्य तं जपेत्। एवं बुद्धो भवेत्सिद्धो नो चेत्तस्य वशं कुरु ॥५॥
कुचन्दनं तथा दारु हरिद्रा मदनं शिला। एतैस्तु लिखितो मन्त्रो भूर्जपत्रे सुशोभने ॥६॥

मदनं कस्तूरी, शिला मनःशिला।

कण्ठे धृतो भवेत्सिद्धो नो चेत्कुर्यात्तु पीडनम्। अधरोत्तररूपेण पदानि परिजप्य वै ॥७॥
ध्यायीत देवतां तद्वदधरोत्तररूपिणीम्। विद्यामादित्यदुग्धेन लिखित्वाक्रम्य चाङ्घ्रिणा ॥८॥
तथाभूतेन मन्त्रेण होमः कार्यो दिने दिने। पीडितो लज्जयाविष्टः सिद्धश्चेन्न हि पोषयेत् ॥९॥
बालातृतीयबीजेन पुटितं मधुदुग्धतः। धारयेल्लिखितं मन्त्रमथवा शोषणं चरेत् ॥१०॥
द्वाभ्यां च वायुबीजाभ्यां लिखेन्मन्त्रं विदर्भितम्। भस्मना धारयेत्कण्ठे नो चेद्दाह्योऽग्निबीजतः ॥११॥
सिद्धः स्यान्नात्र सन्देहो मन्त्र इत्याह शङ्करः। इति।

अथैतेषां प्रयोगाः; तत्रादौ द्रावणम्—वमिति वरुणबीजेन ग्रथितं मूलमन्त्रं कर्पूरकुङ्कुमगोरोचनामनः-शिलोशीरैः पूजाचक्ररूपयन्त्रमध्ये विलिख्य कस्मिंश्चित्पात्रे दुग्धमधुघृतजलमेकीकृत्य तत्र यन्त्रं निधाय पूजाजपहोमान् कुर्यात् इति।

अथ बोधनम्—तत्तु वाग्भवबीजसंपुटितमन्त्रजपरूपम्।

अथ वशीकरणम्—तत्र भूर्जपत्रे रक्तचन्दनदारुहरिद्राकस्तूरीमनःशिलाभिर्मूलमन्त्रमालिख्य कण्ठे धारयेदिति।

अथ पीडनम्—तत्राधरोत्तरभावेन मन्त्रपदानि प्रजप्य देवतामप्यधरोत्तरभावेन ध्यात्वा अर्कपत्रे अर्कदुग्धेन तु मन्त्रमालिख्य तत्पादेनाक्रम्याधरोत्तरक्रमपठितमन्त्रेण होमं च कुर्यादिति।

अथ पोषणम्—तत्र बालातृतीयबीजपुटितं मन्त्रं गोदुग्धमधुभ्यां भूर्जादौ विलिख्य धारयेत् इति।

अथ शोषणम्—तत्र यज्ञभस्मना वायुबीजविदर्भितं मन्त्रं विलिख्य कण्ठे धारयेदिति।

अथ दाहनम्—पालाशबीजतैलेन वह्निबीजसंपुटितं मन्त्रस्यैकैकमक्षरं विलिख्य प्रतिवर्णमधश्चोर्ध्वं च वह्निबीजमालिख्य कण्ठे धारयेदिति। विदर्भलक्षणं तु (शारदातिलके—मन्त्रार्णद्वन्द्वमध्यस्थं साध्यनामाक्षरं लिखेत्। विदर्भ एष विज्ञेयः, इति) तन्त्रान्तरे—'एकान्तरं तु ग्रथनं विदर्भो द्व्यन्तरीकृतः' इति च। एकवीराकल्पे—

कर्माण्येतानि कुर्वीत प्रत्येकं मण्डलावधि। जपहोमादिकाङ्गानां संख्या चाष्टोत्तरं शतम् ॥१॥

एवं यदि न सिद्धः स्यात्तदा मन्त्रं जपेत्सुधीः । अश्वत्थपत्रनवके मन्त्रं यन्त्रं च मालिकाम् ॥२॥
विधानं पद्धतिं चैव संस्थाप्य संप्रपूज्य च । जले निक्षिप्ये दीक्षार्थं शीघ्रं गुरुमथाश्रयेत् ॥३॥ इति।

एतावत्सर्वं महाविद्याव्यतिरिक्तविषयं, महाविद्यानां तु मोक्षैकप्रधानत्वाद् भोगानामनुपादेयत्वात्, आर्थसमाज इति न्यायाद् भवन्ति चेद्भोगास्तदा भवन्तु, नाम, नो चेत्मा भूवन् महाविद्यानां त्यक्तुमयोग्यत्वात्।

उपर्युक्त क्रिया से भी यदि मन्त्र सिद्ध न हो तो मन्त्र का द्रावण आदि संस्कार करना चाहिये, जैसा कि महाहारक तन्त्र में कहा गया है कि पुरश्चरण से सिद्धि न मिलने पर द्रावण, बोधन, वशीकरण, पीड़न, पोषण, शोषण एवं दाहन करने पर मन्त्र सिद्ध होते हैं। **द्रावण**—वरुणबीज 'वं' से ग्रथित मूल मन्त्र को कपूर, कुङ्कुम, गोरोचन, मन:शिला, खश से पूजाचक्र रूप यन्त्र के मध्य में लिखकर किसी पात्र में दूध, मधु, घी, जल मिलाकर उसमें यन्त्र को रखकर पूजा-जप-हवन करे। **बोधन**—वाग्भवबीज 'ऐं' से सम्पुटित करके मन्त्रजप करे। **वशीकरण**—भोजपत्र पर लाल चन्दन, दारु हल्दी, कस्तूरी, मनसिल से मूल मन्त्र को लिखकर गले में धारण करे। **पीड़न**—अधरोत्तर भाव से मन्त्रपदों का जप करे। देवता का ध्यान भी अधरोत्तर भाव से करे। अकवन के पत्ते पर अकवन के दूध से मन्त्र को लिखे। उसे पैर से दबाकर अधरोत्तर क्रम से पठित मन्त्र से हवन करे। **पोषण**—बाला मन्त्र के तृतीय बीज 'सौ:' से पुटित मन्त्र को गोदुग्ध और मधु से भोजपत्र पर लिखकर धारण करे। **शोषण**—वायुबीज से विदर्भित मन्त्र को यज्ञभस्म से लिखकर गले में धारण करे। **दाहन**—मन्त्र के प्रत्येक अक्षर को वह्निबीज 'रं' से सम्पुटित करके पलाशबीज के तेल से लिखे। प्रत्येक वर्ण के ऊपर-नीचे वह्निबीज 'रं' लिखकर गले में धारण करे।

एकवीराकल्प में कहा गया है कि प्रत्येक चालीस दिनों में इन कर्मों को करे। इनमें जप होमादि की संख्या एक सौ आठ होती है। इस पर भी यदि मन्त्र सिद्ध नहीं होता तब साधक जप करे। नव पीपल के पत्तों पर मन्त्र, यन्त्र, मालिका विधान एवं पद्धति को स्थापित करके पूजा करके उसे जल में डालकर दीक्षा के लिये गुरु का आश्रय ग्रहण करे।

सिद्धिलक्षणानि

अथ प्रसङ्गतः सिद्धिलक्षणं तन्त्रान्तरे—

मनोरथाना क्लेशः सिद्धेरुत्तमलक्षणम् । मृत्यूनां हरणं तद्वद् देवतादर्शनं तथा ॥१॥
प्रयोगाणां तथाक्लेशसिद्धिः सिद्धेस्तु लक्षणम् । परकायप्रवेशश्च पुरप्रवेशनं तथा ॥२॥
ऊर्ध्वोत्क्रमणमेवं हि चराचरपुरे गतिः । खेचरीमेलनं चैव तत्कथाश्रवणादिकम् ॥३॥
भूच्छिद्राणि च संपश्येत्पातालदिषु सङ्गमः । आकर्षणं सुरस्त्रीणां नागस्त्रीणां तथैव च ॥४॥
पादुका गुटिकास्तद्वदञ्जनं विवरं तथा । अणिमादींश्च संप्राप्य केवलं मोक्षमाप्नुयात् ॥५॥
इत्येवं कथितं ब्रह्मन् प्रधानं सिद्धिलक्षणम् । ख्यातिर्वाहनभूषादिलाभः सुचिरजीवनम् ॥६॥
नृपाणामङ्गनानां च वशीकरणमुत्तमम् । सर्वत्र सर्वलोकेषु चमत्कारकरः सुखी ॥७॥
रोगापहरणं दृष्ट्या विषापहरणं तथा । पाण्डित्यं च कवित्वं च चतुर्विधमयत्नतः ॥८॥
वैराग्यं च मुमुक्षुत्वं त्यागिता सर्ववश्यता । अष्टाङ्गयोगाभ्यसनं भोगेच्छापरिवर्जनम् ॥९॥
सर्वभूतेष्वनुकम्पा सर्वज्ञादिगुणोदयः । इत्यादिगुणसंपत्तिर्मध्यसिद्धेस्तु लक्षणम् ॥१०॥
ख्यातिर्वाहनभूषादिलाभः सुचिरजीवनम् । नृपाणामङ्गनानां च वात्सल्यं लोकवश्यता ॥११॥
महैश्वर्यं धनित्वं च पुत्रदारादिसंपदः । अधमाः सिद्धयः प्रोक्ता मन्त्रिणः प्रथमभूमिकाः ॥१२॥
तीर्थे मन्त्रोपदेशश्च श्रद्धा च जपकर्मणि । फलिष्यतीति विश्वासस्तत्सत्सिद्धेस्तु लक्षणम् ॥१३॥
निर्बीजा मनवो ये च तेषु बीजानि योजयेत् । कामं वा विषबीजं वा जपतां सिद्धिदो मनुः ॥१४॥
स्थानस्था वरदा मन्त्रा ध्यानस्थाश्च फलप्रदाः । स्थानध्यानविहीनानां कोटिजापात्फलं न हि ॥१५॥
मातृकापुटितं कृत्वा मूलमन्त्रं जपेत्सुधीः । क्रमोत्क्रमाच्छतावृत्त्या तदन्ते केवलं मनुम् ॥१६॥

एवं तु प्रत्यहं जप्याद्यावन्मासं समाप्यते। निश्चितं मन्त्रसिद्धिः स्यादित्युक्तं तन्त्रवेदिभिः ॥१७॥
गुरुं संतोषयेद्भक्त्या भूषणाच्छादनादिभिः। गुरोः संतोषमात्रेण मन्त्रसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ॥१७॥
गुरुमूलमिदं सर्वमित्याहुस्तन्त्रवेदिनः। गुरुं विलङ्घ्य शास्त्रेऽस्मिन् नाधिकारः सुरेश्वरि ॥१९॥
एतेषां मन्त्रतन्त्राणां प्रयोगः क्रियते यदि। गुरोराज्ञां विना देवि सिद्धिहानिः प्रजायते ॥२०॥
शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन। यस्य देवे च मन्त्रे च गुरौ च त्रिषु निश्चला ॥२१॥
न व्यवच्छिद्यते भक्तिस्तस्य सिद्धिरदूरतः। भावनारहितानां च क्षुद्राणां क्षुद्रचेतसाम् ॥२२॥
चतुर्गुणो जपः प्रोक्तः सिद्धये नान्यथा भवेत्।

इत्येकवीराकल्पवचनात् पशुभावानां (वनावतां) पुरश्चरणचतुष्टयान्मन्त्रसिद्धिः। अत एव 'चतुर्धानुष्ठितो मन्त्रः' इति पूर्वमुक्तम्। क्षुद्राणां पशूनामित्यर्थः। भावना दिव्यवीरभावना।

सिद्धि के लक्षण—अन्य तन्त्रों में कहा गया है कि बिना कष्ट के मनोरथ सिद्ध होना सिद्धि का लक्षण है। मृत्यु को दूर करना, देवता-दर्शन एवं बिना कष्ट के प्रयोग का सिद्ध होना सिद्धि का लक्षण है। परकाया-प्रवेश, नगरप्रवेश, ऊपर उठना, चराचर पुरी में आना-जाना, खेचरी मेलन, उसकी कथा सुनना, भूमिछिद्र में प्रवेश करके पातालादि में जाना, देवबालाओं एवं नागकन्याओं का आकर्षण, पादुका-गुटिका-अञ्जन-विवर-अणिमादि को प्राप्त करके केवल मोक्ष की प्राप्ति—ये सभी सिद्धि के प्रधान लक्षण कहे गये हैं। इनके अतिरिक्त सिद्धि के अन्य लक्षण इस प्रकार हैं—ख्याति, वाहन, भूषादि लाभ, दीर्घ जीवन, उत्तम राजाएं एवं अङ्गनाओं का वशीकरण, सर्वत्र सभी लोकों में चमत्कार करना, सुखी रहना, दृष्टि से रोगों को दूर करना, दृष्टि से विषहरण, पाण्डित्य, बिना प्रयत्न के चतुर्विध कवित्व, वैराग्य, मुमुक्षुत्व, त्याग, सर्ववश्यता, अष्टाङ्गयोगाभ्यास, भोगेच्छा का त्याग, सभी भूतों पर दया, सर्वज्ञादि गुणोदय—इत्यादि गुणसम्पत्ति मध्यम सिद्धि के लक्षण हैं। ख्याति-प्राप्ति, वाहन-भूषण लाभ, आदि का जीवन, नृपों लम्बा एवं अङ्गनाओं का प्रेम लोकवश्यता, महान् ऐश्वर्य, धनित्व, पुत्र, दारादि सम्पदा अधम सिद्धि के लक्षण कहे गये हैं, यह साधकों की प्रथम भूमिका होती है। तीर्थ में मन्त्रोपदेश, जपकर्म में श्रद्धा, फल में विश्वास सत्सिद्धि के लक्षण हैं। निर्बीज मन्त्रों में काम या विषबीज जोड़कर जप करने से मन्त्र सिद्धि होते हैं। ध्यानस्थित मन्त्र फलप्रद होते हैं। स्थानस्थित मन्त्र वरप्रद होते हैं। स्थान-ध्यानविहीन मन्त्र का करोड़ जप करने से भी फल नहीं मिलता। साधक मातृकापुटित मूल मन्त्र का जप करे। क्रमोत्क्रम से सौ आवृत्ति जप के बाद अन्त में केवल मन्त्र का जप करे। इस प्रकार का जप प्रतिदिन एक महीने तक करने से निश्चित ही मन्त्रसिद्धि मिलती है—ऐसा तन्त्रज्ञानियों का कथन है। गुरु को भक्ति, भूषण एवं वस्त्र से सन्तुष्ट करना चाहिये। गुरु के सन्तुष्ट होने पर निश्चय ही मन्त्र सिद्ध होता है। सभी तन्त्रज्ञानियों का कथन है कि मन्त्र गुरुमूल ही होते हैं। गुरु को छोड़ने पर इस शास्त्र में किसी का अधिकार नहीं होता। इस मन्त्र-तन्त्रों का प्रयोग कोई यदि गुरु की आज्ञा के बिना करता है तो सिद्धि की हानि होती है। शिव के रूठने पर गुरु रक्षा करता है, लेकिन गुरु के रूठने पर कोई रक्षा नहीं करता। देवता, मन्त्र एवं गुरु—इन तीनों में जिसकी निश्चल भक्ति रहती है, उससे सिद्धि दूर नहीं रहती। भावनारहितों, क्षुद्रों एवं क्षुद्र चित्तवालों को चौगुने जप से सिद्धि मिलती है; उनके लिये सिद्धि प्राप्त करने का इसके अतिरिक्त अन्य कोई प्रकार नहीं है।

आशय यह है कि पशुभाव वालों को चार पुरश्चरण से सिद्धि मिलती है। इसीलिये चार अनुष्ठान से मन्त्र सिद्ध होते हैं—ऐसा कहा गया है।

दिव्यपुरश्चरणम्

अथ दिव्यपुरश्चरणं तन्त्रान्तरे—
यदि विप्रः कुलश्रेष्ठः कुलद्रव्यपरायणः। तदानेन विधानेन कर्तव्यं कुलसाधनम् ॥१॥
मद्यं मांसं च मत्स्यं च मुद्रां मैथुनमेव च। अन्योन्यं नित्यता ज्ञेया कुलदेव्याः प्रपूजने ॥२॥ इति।

कुलश्रेष्ठो दिव्यो वा वीरो वा, अनेन विधानेन वक्ष्यमाणेन विधानेन, विप्राणां पाशवमेवानुकल्पादिविधानमिति विप्रपदेन निरस्तम्।

दिव्य पुरश्चरण—तन्त्रान्तर में कहा गया है कि यदि कुलश्रेष्ठ विप्र कुल द्रव्य-परायण हो तब यथाविधि कुल-साधन करे। कुलदेवी के पूजन में मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा, मैथुन की नित्यता रहती है।

कुलशक्तिपूजनक्रमः

कुलार्णवे कुलक्रममुपक्रम्य—

ब्राह्मणैस्तु सदा कार्यं क्षत्रियैस्तु रणागमे। वैश्यैर्धनप्रयोगे च शूद्रैस्तु न कदाचन ॥१॥ इति।

'अनुकल्पस्तु विप्राणाम्' इत्यादिवचनानि पशुविप्रपराणि, बाहुल्येन विप्राः पशव एव भवन्तीति। कुलचूडामणौ—

पुरश्चरणकाले च कुलशक्तिं प्रपूजयेत्। दीक्षितां गन्धपुष्पाद्यैर्भक्ष्यैः पायससंभवैः ॥१॥
आरम्भकाले वनितां स्वयं भक्ष्यान्नतेमनैः। शून्ये गेहे समानीय चार्घ्यादिकं विशोधयेत् ॥२॥
अमृतीकरणं कृत्वा शक्तिं चाभिमुखी नयेत्। आसनं प्रथमं दद्यात्स्वागतं च वदेत्पुनः ॥३॥
पाद्यमर्घ्यं च पानीयं मधुपर्कं जलं तथा। स्नापयेद् गन्धपुष्पाद्भिः केशसंस्कारमारभेत् ॥४॥
धूपयित्वा ततः केशान् कौशेयं च निवेदयेत्। ततः स्थानान्तरे पीठमास्तीर्य पादुकायुगम् ॥५॥
दत्त्वा तत्र समासीनां नानालङ्कारभूषणैः। भूषयित्वानुलेपं च गन्धं माल्यं निवेदयेत् ॥६॥
दद्यान्मण्डलमध्ये तु स्वर्णपात्रे सुशोभने। चर्व्यं चोष्यं लेह्यपेयं भोज्यं च पञ्चभक्षकम् ॥७॥
नानाविधं पिष्टकं च नानारससमन्वितम्। दुग्धं दधि घृतं तक्रं नवनीतं सशर्करम् ॥८॥
उपलाखण्डपूर्णं च नानाविधरसायनम्। नारिकेलं कपित्थं च नागरङ्गं सुदर्शनम् ॥९॥
लिम्पाकं बीजपूरं च दाडिमीफलमुत्तमम्। नानावन्यफलं चैव नानागन्धविलेपनम् ॥१०॥
चन्दनं मृगनाभिं च श्रीखण्डं नवपल्लवम्। टङ्कणं लोध्रकं चैव जलजं वनजं तथा ॥११॥
नानाशैलसमुद्भूतं नानालङ्कारभूषणम्। आदावन्ते च मध्ये च जपपूर्त्तौ विशेषतः ॥१२॥
न पूजयति चेत्कान्तां तदा विघ्नैर्विलिप्यते। पूर्वार्जिते फलं नास्ति का कथा परजन्मनि ॥१३॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन यदीच्छेदात्मनो हितम्। ममापि क्रोधसन्तापशमनं विघ्ननाशनम् ॥४॥
यत्नतः पूजनीयाः स्यु कुलाकुलजनाङ्गनाः। इति।

आदिमध्यावसानविधिस्त्वलाभेऽवधेयः, अत्यन्तालाभेऽभि आद्यन्तयोरावश्यकविधिः, आरम्भकाले चेति जपपूर्तौ विशेषत इति चोक्तेः।

इति श्रीमहामहोपाध्यायभगवत्पूज्यपाद-श्रीगोविन्दाचार्यशिष्य-श्रीभगवच्छङ्कराचार्यशिष्य-श्रीविष्णुशर्माचार्यशिष्य-श्रीप्रगल्भाचार्यशिष्य-श्रीविद्यारण्ययतिविरचिते श्रीविद्यार्णवाख्ये तन्त्रे षोड़शः श्वासः॥१६॥

●

कुलशक्ति का पूजनक्रम—कुलार्णव में कुलक्रम के विषय में कहा गया है कि ब्राह्मण सदैव क्रिया करे। क्षत्रिय युद्ध करे। वैश्य धन के लिये प्रयोग करे। शूद्र कभी प्रयोग न करे। कुलचूड़ामणि में कहा गया है कि पुरश्चरणकाल में कुलशक्ति की पूजा करे। दीक्षित स्त्री को आरम्भ में शून्य गृह में लाकर गन्ध-पुष्पादि से उसका पूजन करके पायस आदि भक्ष्य अन्न निवेदित कर अर्घ्यादि से उसका शोधन करे। अमृतीकरण करके उसे अपने सामने बैठाये। पहले आसन देवे, तब स्वागत कहे। तब पाद्य अर्घ्य पानीय मधुपर्क देकर जल से उसे स्नान कराये। गन्ध, पुष्पादि से उसका केशसंस्कार आरम्भ करे। केश को धूपित करके कौशेय प्रदान करे। तब दूसरे स्थान में पीठ पर आसनी बिछाकर पादुकायुगल प्रदान करे। इस प्रकार बैठने पर अनेक अलङ्कार एवं आभूषण से उसे भूषित करके अनुलेप, गन्ध एवं माला निवेदित करे। मण्डलमध्य में स्वर्णपात्र में चर्व्य, चोष्य,

लेह्य, पेय एवं भोज्य—ये पाँच प्रकार भक्ष्य रखे। नाना रसयुक्त विविध पिष्टक, दूध, दही, घी, मट्ठा, मक्खन, मिश्री, उपलाखण्डचूर्ण, अनेक प्रकार के रसायन, नारियल, कत्था, सुन्दर नारङ्गी, लिम्पाक, बीजपूर, अनार, जंगली फल, अनेक गन्ध का विलेपन, चन्दन, कस्तूरी, श्रीखण्ड, नव पल्लव, टङ्कण, लोध्रक, जलज, वनज, अनेक पर्वतों पर उपन्न अनेक अलङ्कार एवं आभूषण पूजा के प्रारम्भ, मध्य और अन्त में प्रदान करे। वनिता की पूजा न करने से बहुविध विघ्न होते हैं, पूर्वार्जित कर्मों का भी फल नहीं प्राप्त होता; फिर दूसरे जन्म की तो बात ही क्या है। यदि अपने कल्याण की इच्छा हो तो साधक को सभी प्रयत्न से कुल-अकुल में उत्पन्न अङ्गनाओं की पूजा करनी चाहिये। इससे भगवान् शिव के भी क्रोध एवं सन्ताप का शमन होकर विघ्न का नाश होता है।

इस प्रकार श्रीविद्यारण्ययतिविरचित श्रीविद्यार्णव तन्त्र के कपिलदेव नारायण-कृत भाषा-भाष्य में षोड़श श्वास पूर्ण हुआ

●

अथ सप्तदशः श्वासः

रहस्यपुरश्चरणम्

अथ रहस्यपुरश्चरणम्। तदुक्तं स्वतन्त्रतन्त्रे—

अथ वान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते। कुजे वा शनिवारे वा नरमुण्डं समाहृतम् ॥१॥
पञ्चगव्येन मिलितं चन्दनाद्यैर्विशेषतः। निक्षिप्य भूमौ हस्तार्धमानतः कानने वने ॥२॥
तत्र तद् दिवसे रात्रौ सहस्रं यदि मानतः। एकाकी प्रजपेन्मन्त्रं स भवेत्कल्पपादपः ॥३॥ इति।
अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते। शवमानीय तद् द्वारि तेनैव परिखन्य च ॥४॥
तद्दिनात्तद्दिनं यावत्तावदष्टोत्तरं शतम्। स भवेत्सर्वसिद्धीशो नात्र कार्या विचारणा ॥५॥ इति।
अथ वान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते। अष्टम्यां च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि ॥६॥
सूर्योदयं समारभ्य यावत्सूर्योदयान्तरम्। तावज्जप्त्वा निरातङ्कः सर्वसिद्धिश्वरो भवेत् ॥७॥ इति।

मुण्डमालातन्त्रे—

अथ वान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते। शरत्काले चतुर्थ्यादिनवम्यन्तं विशेषतः ॥१॥
भक्तितः पूजयित्वा तु रात्रौ तावत्सहस्रकम्। जपेदेकोऽपि विजने केवलं तिमिरालये ॥२॥
अष्टम्यादिनवम्यन्तमुपवासपरो भवेत्। कृष्णाष्टमीं समारभ्य यावत् कृष्णाष्टमी भवेत् ॥३॥
सहस्रसंख्ये जप्ते तु पुरश्चरणमिष्यते। कृष्णां चतुर्दशीं प्राप्य नवम्यन्तं महोत्सवे ॥४॥
अष्टमीनवमीरात्रौ पूजां कुर्याद्विशेषतः। दशम्यां पारणं कुर्यान्मत्स्यमांसादिभिर्युतम् ॥५॥
षट्सहस्रं जपेन्मन्त्रं नित्यं भक्तिपरायणः। चतुर्दशीं समारभ्य यावदन्या चतुर्दशी ॥६॥
तावज्जप्ते महेशानि पुरश्चरणमिष्यते। केवलं जपमात्रेण मन्त्राः सिद्धाः भवन्ति हि ॥७॥ इति।

स्वतन्त्रतन्त्रे—

रात्रौ मांसं रसं देवीं पूजयित्वा विधानतः। ततो नग्नां स्त्रियं नग्नो गच्छेत्क्लेदयुतोऽपि च ॥१॥
जपेल्लक्षं ततो देवीं होमयेज्ज्वलितेऽनले। योनिकुण्डे स्थिरः सर्पिर्मांसमत्स्यायुतं तथा ॥२॥
दशांशं तर्पयेन्मत्स्यैर्मांससमिश्रैस्तु साधकः। तर्पणस्य दशांशेन चाभिषिच्य जगन्मयीम् ॥३॥
दशांशं भोजयेत्स्वादु साधकं देवताप्रियम्। आद्यं मांसं च मत्स्यं च चर्वणं च निवेदयेत् ॥४॥
ततस्तु तोषयेद्भक्त्या गुरुं स्वर्णादिभिः प्रिये। इति।

दिव्यमतस्य श्रेष्ठत्वाल्लक्ष एव जपः, सहस्रमात्रमेव प्रात्यहिकमत एव 'जपेल्लक्ष'मिति पूर्वदर्शितवचनैकवाक्यत्वात्। होमादौ च प्रथमादिपदार्थस्य प्राधान्यम्। कुण्डस्य योनिरूपतायां नियमः। कुलसंभवे—

रात्रौ नग्नो मुक्तकेशो मैथुने चापि तत्त्वतः। प्रजप्तव्यं प्रयत्नेन सर्वकामार्थसिद्धये ॥१॥ इति।

तन्त्रान्तरे—

तावत्कालं जपेन्मन्त्रं यावच्छुक्रं न मुञ्चति। मुक्ते शुक्रे च देवेशि पुनर्मन्त्रं जपेत् सुधीः ॥१॥
रात्रौ ताम्बूलपूर्णास्यः शय्यायां लक्षमानतः।

इति च। 'शवासनाधिकफलं लिङ्गगेहप्रवेशनम्' इति च। योन्यभिमन्त्रणादिवत् दूतीयागवत्, अत्र च साधनातिरिक्तसमये नग्नस्त्रीदर्शनं निषिद्धमिति पूर्वोक्तम्। 'यदि भाग्यवशाद्देवि कुलदृष्टिः प्रजायते। तदैव मानसीं

पूजां स्वयं तासां प्रकल्पयेत्' इति कुत्रचिदभिहितं विहितमपि। एवं विरोधे व्यवस्थाबलात्कारेण विडम्बना न कर्तव्या इति निषेधः। भावपूर्वकस्तु विधिः। तथा च तन्त्रान्तरे—

तासां प्रहारं निन्दां च कौटिल्यमप्रियं तथा। सर्वथा नैव कर्तव्यमन्यथा सिद्धिरोधकृत् ॥१॥
स्त्रियो देवाः स्त्रियः प्राणाः स्त्रिय एव हि जीवितम्। स्त्रीगणेषु सदा भाव्यमभावे स्वस्त्रियामपि ॥२॥
तद्धस्तापचितं पुष्पं तद्धस्तापचितं जलम्। तद्धस्तापचितं भोज्यं देवताभ्यो निवेदयेत् ॥३॥ इति।

'दिव्यो वाप्यथ वीरो वा रात्रौ लक्षं जपं चरेत्' इत्युक्तेर्दिव्यवीरयोः समानमेव विधानम्। दिव्ये कुलरूपसाधनमावश्यकं 'गान्धर्वेण क्रमेणैव पञ्चमी भुवि दुर्लभा' इति वचनात् श्रीविद्याविषये दिव्य एव क्रमः, अन्यत्रोभयोस्तुल्यत्वात्।

रहस्यपुरश्चरण—स्वतन्त्रतन्त्र में कहा गया है कि मङ्गलवार अथवा शनिवार को एक नरमुण्ड लाकर पञ्चगव्य-मिश्रित चन्दनादि से उसे स्वच्छ करे। कानन वन की भूमि में एक वित्ता गड्ढा खोदकर उसे गाड़ दे। उस दिन रात में यदि एक हजार जप करे तो वह साधक कल्पवृक्ष के समान हो जाता है। दूसरे प्रकार का पुरश्चरण यह है कि एक शव लाकर द्वार पर भूमि में गाड़ दे। उस दिन से प्रारम्भ कर पुनः उसी दिन तक सात दिनों तक लगातार एक सौ आठ मन्त्रजप करे। ऐसा करने से साधक सर्वसिद्धीश हो जाता है। इसमें कुछ भी विचारणीय नहीं है। तीसरे प्रकार का पुरश्चरण यह है कि दोनों पक्षों की अष्टमी और चतुर्दशी में सूर्योदय से सूर्योदय तक निर्भय होकर मन्त्र जप करने से जापक सर्वसिद्धीश्वर होता है।

मुण्डमालातन्त्र में कहा गया है कि शरद ऋतु में विशेषकर चतुर्थी से नवमी तक रात में भक्तिपूर्वक पूजन कर एक हजार जप करे। निर्जन अन्धेरे गृह में अकेले जप करे। अष्टमी से नवमी तक उपवास रहे। कृष्णाष्टमी से कृष्णाष्टमी तक प्रतिदिन एक हजार जप से एक पुरश्चरण होता है। तदनन्तर कृष्ण चतुर्दशी से नवमी तक महोत्सव करे। अष्टमी एवं नवमी की रात में विशेष पूजा करे। दशमी में मांस-मत्स्यादि से युक्त धारण करे। नित्य भक्तिपूर्वक छः हजार मन्त्र जप करे। चतुर्दशी से प्रारम्भ कर चतुर्दशी तक जप करने से पुरश्चरण होता है। इस प्रकार केवल जपमात्र से मन्त्र सिद्ध होते हैं।

स्वतन्त्रतन्त्र में कहा गया है कि रात में मांस और रस से विधिवत् देवी की पूजा करे। तब स्वयं नग्न होकर नङ्गी स्त्री के पास क्लेदयुक्त होकर जाय। तब देवी मन्त्र का एक लाख जप करे। ज्वलित अग्नि में देवी के लिये हवन करे। स्थिर होकर योनिकुण्ड में दश हजार हवन गोघृत, मांस एवं मत्स्य से करे। जल में मांस-मछली मिलाकर दशांश तर्पण करे। तर्पण का दशांश जगन्मयी का मार्जन करे। दशांश देवताप्रिय साधकों को भोजन कराये। भोजन में पहले मांस मछली और चर्वण निवेदित करे। तब भक्तिपूर्वक गुरु को स्वर्णादि से सन्तुष्ट करे। कुलसम्भव में कहा गया है कि रात में नग्न होकर केश को खोलकर मैथुन क्रिया में रत होकर सभी कामनाओं की पूर्ति के लिये जप करे।

तन्त्रान्तर में कहा गया है कि तब तक मन्त्र जप करे जब तक कि वीर्यपात न हो जाय। वीर्यपतन के बाद पुनः मन्त्रजप करे। रात्रि में ताम्बूलपूरित मुख होकर शय्या पर जाकर एक लाख जप करे। शवासन से अधिक फल लिङ्ग को भग में प्रवेश कराने से होता है—ऐसा कहा गया है। इसमें योनि का अभिमन्त्र दूतीयाग के समान किया जाता है। यह भी ध्यातव्य है कि साधना के अतिरिक्त समय में नग्न स्त्री को देखना निषिद्ध है। कहा भी है कि यदि भाग्य से नग्न स्त्री का दर्शन हो जाय तो उसी समय स्वयं उसकी मानसी पूजा करनी चाहिये। स्पष्ट है कि स्त्री द्वारा विरोध करने पर बलात्कारपूर्वक अनुष्ठान नहीं करना चाहिये; अपितु सहमति से ही करना चाहिये, यही विधि है। जैसा कि तन्त्रान्तर में कहा भी है कि स्त्रियों पर प्रहार, उनकी निन्दा, उनसे कुटिलता, अप्रिय वचन आदि का व्यवहार नहीं करना चाहिये; अन्यथा सिद्धि नहीं मिलती है। स्त्री साक्षात् देवता है, स्त्री प्राण है, स्त्री ही जीवन है, अतः स्त्रियों से सदा भव्य भाव ही रखना चाहिये। अपनी स्त्री से भी यही भाव रखना चाहिये। उसके हाथ के फूल, उसके हाथ से लाये जल, उसके हाथ के बने भोजन देवताओं को निवेदित करना चाहिये। दिव्य या वीर रात में एक लाख जप करे—इस उक्ति के अनुसार दिव्य एवं वीर के लिये विधान समान है। दिव्य में कुल रूप का साधन आवश्यक है। गान्धर्व क्रम से पृथ्वी पर पञ्चमी दुर्लभ है—इस उक्ति के अनुसार श्रीविद्योपासना में भी दिव्य क्रम ही मान्य है।

वीरपुरश्चरणम्

अथ वीरपुरश्चरणं कुलरूपं, भावचूडामणौ—

वीरसाधनकार्यं च कर्तव्यं वीरपूरुषैः। दिव्यैरपि च कर्तव्यं पशुभिर्न च पामरैः ॥१॥
वीरं दिव्यं च यत्कर्म तत्पशोर्नेति निश्चितम्। इति।

अत्र दिव्यैरपीत्यनेन दिव्यानुष्ठेयता च प्रतिपाद्यते। एवं सति दिव्ये वीरकर्म गुप्तं, वीरे दिव्यकर्म गुप्तं, तदपि कादाचित्कम्। दिव्यवीरवेषौ तु प्रकटौ, वस्तुतस्तु सर्वमेव गुप्तं 'गोपनीयं प्रयत्नेन स्वयोनिरिव पार्वति। प्रकाशनात् सिद्धिहानिर्नात्र कार्या विचारणा' इत्यादितन्त्रान्तरवचनात्। 'गोपयेन्मातृजारवत्' इति चोक्तेः वीराणां पुरश्चरणादौ परकीयनारीं दीक्षितां यथाशक्ति पूजयेत्। तदुक्तं कुलचूडामणौ—

पुरश्चणकाले तु परयोषां प्रपूजयेत्। दीक्षितां वस्त्रभूषाद्यैर्भोज्यैः पायससंभवैः ॥१॥
आरम्भकाले नियतं स्वयं पक्वान्नतेमनम्। दुग्धं दधि घृतं तक्रं नवनीतं सशर्करम् ॥२॥
उपलाखण्डमार्द्रं च नानाविधरसायनम्। नारिकेलं कपित्थं च नागरङ्गं सुदर्शनम् ॥३॥
लिम्पाकं बीजपूरं च दाडिमीफलमुत्तमम्। नानावन्यफलं चैव नानागन्धविलेपनम् ॥४॥
चन्दनं मृगनाभिं च श्रीखण्डं नवपल्लवम्। टङ्कणं लोध्रकं चैव जलजं वनजं तथा ॥५॥
नानाशैलसमुद्भूतं नानालङ्कारभूषितम्। शून्ये गेहे समानीय चार्घ्योदकविशोधितम् ॥६॥
अमृतीकरणं कृत्वा शक्तिं चाभिमुखी नयेत्। ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या शूद्रा च कुलभूषणा ॥७॥
वेश्या नापितकन्या च रजकी नटकी तथा। विशेषवैदग्ध्ययुताः सर्वा एव कुलाङ्गनाः ॥८॥ इति।

दीक्षिता अष्टौ शक्तीः क्रमेण संस्थाप्यार्घ्यपात्रं स्थापयित्वाऽर्घ्योदकेन ताः प्रोक्ष्य, वमिति धेनुमुदयामृतीकृत्याष्टशक्तिरूपभेदं कृत्वा ब्राह्म्याद्यष्टशक्तीनां नामभिः कृतसंज्ञकाः।

आसनं प्रथमं दत्त्वा स्वागतं च पुनः पुनः। अर्घ्यं पाद्यं च पानीयं मधुपर्कं जलं ततः ॥९॥
स्नापयेद्गन्धपुष्पादि केशसंस्कारमेव च। धूपयित्वा ततः केशान् कौशेयं च निवेदयेत् ॥१०॥
ततः स्थानान्तरे पीठमास्तीर्य पादुकाद्वयम्। दत्त्वा तत्र समानीय नानालङ्कारभूषणैः ॥११॥
धूपयित्वानुलेपेन गन्धं माल्यं निवेदयेत्। तां तां शक्तिं समावाह्य मूर्ध्नि तासां समानयेत् ॥१२॥

ततस्तां शक्तिं यथाक्रमेण ब्रह्माण्यादिरूपां समावाह्य जीवन्यासादिकं कुर्यात्। यथा पूर्वोक्तप्राणप्रतिष्ठामन्त्रेणाऽमुष्यस्थाने ब्रह्माण्याः प्राणा इह प्राणा इत्यादिक्रमेण प्राणप्रतिष्ठां कुर्यादित्यर्थः। एवं माहेश्वर्या इत्यादिकमूहनीयम्। ततो गन्धपुष्पदीपान्नव्यञ्जनादिकं दत्त्वा तासां सव्यकर्णे क्रमेण स्तोत्रं पठेत्। तदुक्तं तत्रैव—

भोज्यं मण्डलमध्ये तु स्वर्णपात्रे सुशोभने। चर्व्यं चोष्यं लेह्यपेयं भक्ष्यं भोज्यं निवेदयेत् ॥१३॥
अदीक्षिता भवेद्या तु तदा मायां निवेदयेत्। तासां सव्येषु कर्णेषु ततस्तोत्रं समाचरेत् ॥१४॥
मातर्देवि नमस्तेऽस्तु ब्रह्मरूपधरेऽनघे। कृपया हर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ॥१५॥
माहेशि वरदे देवि परमानन्दरूपिणि। कृपया हर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ॥१६॥
कौमारि सर्वविद्येशे कुमारक्रीडने परे। कृपया हर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ॥१७॥
विष्णुरूपधरे देवि विनतासुतवाहिनि। कृपया हर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ॥१८॥
वाराहि वरदे देवि दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धरे। कृपया हर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ॥१९॥
शक्ररूपधरे देवि शक्रादिसुरपूजिते। कृपया हर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ॥२०॥
चामुण्डे मुण्डमालासृक्चर्चिते विघ्ननाशिनि। कृपया हर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ॥२१॥
महालक्ष्मि महोत्साहे क्षोभसन्तापनाशिनि। कृपया हर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ॥२२॥

मितिमातृमये देवि मितिमातृबहिष्कृते। एके बहुविधे देवि विश्वरूपे नमोऽस्तु ते॥२३॥
एतत् स्तोत्रं पठेद्यस्तु कर्मारम्भेषु संयतः। विदग्धां वा समालोक्य तस्य विघ्नं न जायते॥२४॥
कुलीनस्य द्वारदेवाः कथितास्तव पुत्रक। दीक्षाकाले नित्यपूजासमये नार्चयेद्यदि॥२५॥
तस्य पूजाफलं वत्स नीयते यक्षराक्षसैः। यदि व्रीडापरा सा तु भोजने तद् गृहाद्बहिः॥२६॥
स्थितः पठेत्स्मरेत्स्तोत्रं यावत्तृप्तिः प्रजायते। आचम्य मुखवासादि ताम्बूलं च निवेदयेत्॥२७॥
ततो दद्यात्पुनर्माल्यं गन्धं चन्दनपङ्किलम्। विसृज्य प्रदक्षिणीकृत्य वरं प्रार्थ्य सुखी भवेत्॥२८॥
अन्या यदि न गच्छेत्तु निजकन्यां निजानुजाम्। अग्रजां मातुलानीं वा मातरं तत्सपत्निकाम्॥२९॥
पूर्वाभावे परा पूज्या मदंशा योषितो यतः। सर्वाभावे ह्येकतरा पूजनीया प्रयत्नतः॥३०॥
एकश्चेत्कुलशास्त्रज्ञः पूजार्हस्तत्र भैरव। सर्व एव सुराः पूज्या सत्यं ब्रह्मशिवादयः॥३१॥
एका चेद्युवती तत्र पूजिता चावलोकिता। सर्वा एव परादेव्यः पूजिताः कुलभैरव॥३२॥ इति।

वीरपुरश्चरण—भावचूड़ामणि में कहा गया है कि वीर पुरुष द्वारा वीरसाधन करना चाहिये। दिव्य पुरुषों द्वारा भी वीरसाधन किया जाता है; परन्तु पशु एवं पामरों के द्वारा वीरसाधना नहीं करना चाहिये। वीर एवं दिव्य के जो कर्म हैं, वे पशु के लिये नहीं है, यह निश्चित है। दिव्य में वीरकर्म गुप्त हैं एवं वीर में दिव्य कर्म गुप्त हैं; वस्तुत: दिव्य एवं वीर दोनों ही योनि के समान गोपनीय है; उनके प्रकाशन से सिद्धि की हानि होती है। यह भी कहा गया है कि अपनी माता की योनि के समान इसे गुप्त रखना चाहिये। वीर पुरश्चरण में दीक्षित परकीया नारी की पूजा भी यथाशक्ति करनी चाहिये।

कुलचूड़ामणि में कहा भी गया है कि पुरश्चरण काल में दीक्षित परयोषिता की पूजा करे। उसे वस्त्र, भूषा, पायस भोजन एवं नियत आरम्भ काल में अपने से पकाया हुआ अन्न प्रदान करे। दूध, दही, घी, मट्ठा, मक्खन, मिश्री, उपलाखण्ड, अनेक रसायन, नारियल, कत्था, सुन्दर नारङ्गी, लिम्पाक, बीजपूर, उत्तम अनार, नाना वन्य फल, नाना गन्ध-विलेपन, चन्दन, कस्तूरी, श्रीखण्ड, नवपल्लव, टङ्कण, लोध्र, जलज, वनज, नाना शैलसमुद्भूत, नाना अलङ्कार भूषित स्त्री को शून्य गृह में लाकर अर्घ्योदक से शोधित कर उसका अमृतीकरण करके अपने सामने बैठाये। कुलभूषणस्वरूपा ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या, शूद्रा एवं वेश्या, नापितकन्या, रजकी, नटकी—ये आठ तथा सभी स्त्रियाँ कुलाङ्गना होती है। दीक्षित आठों शक्तियों को क्रमश: बैठाकर वैदग्ध्यमुक्ता—ये अर्घ्यपात्र स्थापित करके अर्घ्यजल से उनका प्रोक्षण करके 'वं' कहकर धेनुमुद्रा से अमृतीकरण करके आठों शक्तियों में भेदबुद्धि से ब्राह्मी आदि आठ शक्तियों के नाम से उन्हें नामित करे।

तदनन्तर प्रथमत: आसन देकर बार-बार उनका स्वागत करे। अर्घ्य-पाद्य-पानीय-मधुपर्क जल देकर उनको स्नान कराये। गन्ध-पुष्पादि से उनका केश संस्कार करे। केश को धूपित करे। कौशेय प्रदान करे। दूसरे स्थान में पीठ के आसन पर बिठाकर एक जोड़ा खड़ाऊँ प्रदान कर उन्हें वहाँ ले आये। नाना अलङ्कार एवं भूषण प्रदान करे, धूप देकर अनुलेप लगाये। गन्ध-माल्य समर्पित करे। उनके नामानुसार शक्तियों को उनके मूर्धा पर आवाहित करे।

जीवन्यास करके प्राणप्रतिष्ठा कर गन्ध-पुष्प-दीप-अन्न-व्यञ्जन आदि देकर उनके बाँयें कान में; स्तोत्र का पाठ करे, जैसा कि कुलचूड़ामणि में कहा भी गया है कि मण्डल में सोने के पात्र में भोज्य, चर्व्य, चोष्य, लेह्य, पेय भक्ष्य भोजन निवेदित करे। अदीक्षिता को 'ह्रीं' से भोजन निवेदित करे। तब उनके बाँयें कान में निम्न स्तोत्र का पाठ करे—

मातर्देवि नमस्तेऽस्तु ब्रह्मरूपधरेऽनघे। कृपया हर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे॥
माहेशि वरदे देवि परमानन्दरूपिणि। कृपया हर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे॥
कौमारि सर्वविघ्नेशे कुमारक्रीडने परे। कृपया हर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे॥
विष्णुरूपधरे देवि विनतासुतवाहिनि। कृपया हर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे॥
वाराहि वरदे देवि दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धरे। कृपया हर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे॥
शक्ररूपधरे देवि शक्रादिसुरपूजिते। कृपया हर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे॥

चामुण्डे मुण्डमालासृक्चर्चिते विघ्ननाशिनि। कृपया हर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे।।
महालक्ष्मि महोत्साहे क्षोभसन्तापनाशिनि। कृपया हर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे।।
मितिमातृमये देवि मितिमातृबहिष्कृते। एके बहुविधे देवि विश्वरूपे नमोऽस्तु ते।।

जो साधक इस स्तोत्र का पाठ कर्म के आरम्भ में संयत होकर करता है, उसे विदग्धों द्वारा देखने पर भी विघ्न नहीं होते। कुलीनों के द्वारदेवता की दीक्षाकाल में नित्यपूजा के समय में यदि पूजा नहीं की जाती तो उसके पूजाफल को यक्ष राक्षस ले लेते हैं। भोजन के समय उन्हें यदि लज्जा आती हो तो उस घर के बाहर स्थित होकर साधक स्तोत्र का स्मरण उनके भोजन के अन्त तक करे। पुन: उन्हें आचमन कराकर मुखवास एवं ताम्बूलादि निवेदित करे। तब फिर से माला पहनाये, गन्ध प्रदान करे एवं चन्दन का लेप लगाये। विसर्जन करके उनकी प्रदक्षिण कर उनसे वर माँग कर सुखी रहे। दूसरों की कन्या पूजन के लिये न मिले तब अपनी कन्या या अपने अनुज की कन्या, बड़ी बहन की कन्या या ममानी की कन्या या माँ के सौत की कन्या की पूजा करे। क्रमश: पहले के अभाव में दूसरों की पूजा करे; क्योंकि सभी कन्यायें देवी का ही अंश होती है। सबों के अभाव में यत्नपूर्वक एक ही की पूजा करे। एक ही यदि कुलशास्त्र को जानने वाली हो तो वह पूजनीय होती है। ब्रह्मा शिवादि सभी देवता उस एक की पूजा से ही पूजित हो जाते हैं। एक युवती की पूजा करने मात्र से ही सबों की पूजा सम्पन्न हो जाती है।

वीरसाधनविधानम्

वीरतन्त्रे—

यः कश्चित्कुरुते वीरसाधनं सुसमाहितः। प्राप्नोति परमां सिद्धिं नात्र कार्या विचारणा ॥१॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कर्तव्यं वीरसाधनम्। निर्भयेणैव शुचिना भूत्वा सर्वार्थसिद्धिदम् ॥२॥
नातः परतरं किञ्चिद्विद्यते शीघ्रसिद्धिदम्। भैरवेण पुरा प्रोक्तं सर्वकामार्थसिद्धिदम् ॥३॥
घटीबन्धेन वस्त्रं वै मूलेन परिधाप्य च। तद्बाह्ये च पुनर्वस्त्रं मूलेनाङ्गविलेपनम् ॥४॥
धृतोष्णीषश्च मूलेन सिन्दूरेणोर्ध्वपुण्ड्रकम्। इष्टदेवं गुरुं नत्वा यात्रा प्रहरमध्यतः ॥५॥
कार्या च साधकैः सार्धं हृदि मन्त्रं परामृशन्। अक्षुब्धो भुक्तभोज्यस्तु भुक्त्वा साधनमाचरेत् ॥६॥
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि। भौमवारे तमिस्त्रायां साधयेत् सिद्धिमुत्तमाम् ॥७॥
उपचारं समादाय कुलामृतरसादिकम्। निशायां मृतहट्टे च उन्मत्तानन्दभैरवः ॥८॥
दिग्वासा विमलो भस्मभूषितो मुक्तकेशकः। इति।

दिग्वस्त्रत्वं च कुत्रचिद्विहितम्। अन्यत्र च—

भूमिपुत्रसमायुक्ता सामावास्या शुभोदया। भद्रे पुष्करसंयोगे तस्यां वीरवरोत्तमः ॥१॥ इति।

रुद्रयामले—

सत्यक्रमे चतुर्वर्णैः क्षीराज्यमधुपिष्टकैः। त्रेतायां पूजयेद् देवीं घृतेन सर्वजातिभिः ॥१॥
मधुभिः सर्ववर्णैश्च पूजयेद् द्वापरे युगे। पूजनीया कलौ देवी केवलैरासवैश्च तैः ॥२॥ इति।
युगान्तरेष्वनुकल्पविधिः सर्ववर्णसाधारणः, कलौ प्रधानकल्पोऽपि तादृश एव।

वीरतन्त्र में कहा गया है कि जो कोई भी समाहित चित्त होकर वीर-साधना करता है, उसे परमा सिद्धि मिलती है। इसमें विचारणीय कुछ भी नहीं है। इसलिये सभी यत्नों से वीर साधन निर्भय होकर पवित्र स्थान में करने से सभी सिद्धियाँ मिलती हैं। इससे बढ़कर कोई दूसरा साधन शीघ्र सिद्धिप्रद नहीं है। भैरव को सर्वकामार्थ सिद्धिप्रद कहा गया है। घटीबन्ध के अनुसार वस्त्र पहनकर उसके बाहर पुन: वस्त्र पहनकर मूल मन्त्र से अङ्ग में लेप लगाकर पगड़ी बाँधकर मूलमन्त्र से सिन्दूर का ऊर्ध्व पुण्ड्र तिलक लगाये। तदनन्तर इष्ट देव और गुरु को प्रणाम करके प्रहर मध्य में यात्रा करते समय साधक हृदय में मन्त्र का स्मरण करे। अक्षुब्ध होकर भोजन योग्य पदार्थों का भोजन करके साधना करे। दोनों पक्षों की अष्टमी और चतुर्दशी

में मङ्गलवार में अन्धकार में उत्तम सिद्धि की साधना करे। कुलामृतसहित उपचारों को लाकर रात में श्मशान में नग्न होकर विमल भस्म लगाकर केश खोलकर साधना करे। यह भी कहा गया है कि मङ्गलकारी शुभ तिथि अमावस्या के उदित होने पर भद्रा में पुष्कर का संयोग होने पर उत्तम वीरवर साधना करे। रुद्रयामल में कहा गया है कि सत्ययुग में चारो वर्ण दूध गोघृत मधु और पकौड़े से, त्रेता में किसी के भी घी से, द्वापर में सभी वर्णों के लोग मधु से एवं कलियुग में केवल आसव से देवी की पूजा करनी चाहिये।

सुरातर्पणविचारः

गुडार्द्रकरसेनैव सुरा न ब्राह्मणस्य च। गौडी तु या क्षत्रियेण माध्वी वैश्येन तत्र वै ॥३॥
कदलीमधुसंमिश्रशालित्वक्केवलैः सुरा। सर्वा शूद्रस्य संप्रोक्ता यत्र वा तद्भविर्भवेत् ॥४॥

इति कुत्रचित्। पूर्ववदेवास्य व्याख्यानं, वस्तुतोऽनुकल्पः प्रधानालाभे संभवति न तु युगवर्णपरतया, गौडीमाध्वीति विशेषः कामनापरत्वेन। अथवा सुरा नेति भवतीत्याध्याहारस्तेन सुरा न भवति चेदित्यर्थः। गौडीमाध्वीत्यत्र 'गुडमधु चे'ति अण् प्रत्ययः। शूद्राणामपि प्रधानालाभे कदल्यादीन्येव सुरा, सुरानुकल्पः। यद्वा तत्रेति पदं चितायामित्यर्थं बोधयति, वीरसाधनप्रकरणत्वात्। यत्र चितागमनशवस्पर्शादिकमनवद्यं तत्र प्रधानमनवद्यमिति कानुपपत्तिः। तत् तदा शिरश्चालने, प्रधानानुकल्पोभयविधानात्। गुडार्द्रकरसेनेति कदलीत्यादि च 'नारिकेलोदकं कांस्ये ताम्रे दद्यात्तथा मधु। दधि दुग्धं तथा ताम्रे गुडमिश्रं तथा दधि। गुडार्द्रकमथो वापि पूजनार्थं प्रकल्पयेत्' इति। तत्तदपि तादृशपात्रादिसंयोगेन प्रधानुतुल्यतै(तयै)व भवतीति निषेधात् तादवस्थ्यमेव। तस्मात् प्रधानलाभेऽप्यनुकल्पपराण्येतानि वचनानि। अन्यच्च— 'कुलागमक्रमेणैव पूजयेत् परमेश्वरीम्' इति सकलतन्त्रस्वरसात्। कुलागमश्च कुलार्णवः। यथा (५०/५)—

शैवे च वैष्णवे शाक्ते सौरे सुगतदर्शने। बौद्धे पाशुपते सांख्ये मान्त्रे कालामुखे तथा ॥१॥
दक्षिणे वामसिद्धान्ते वैदिकादिषु पार्वति। विनालिपिशताभ्यां च पूजनं निष्फलं भवेत् ॥२॥
कुलद्रव्यैर्विना कुर्याज्जपं पूजां व्रतं तपः। निष्फलं तद्भवेद् देवि भस्मन्येव यथा हुतम् ॥३॥
यथा क्रतुषु विप्राणां सोमपानमदूषितम्। अलिपानं तथा देवि सोमवद्भोगमोक्षदम् ॥४॥

इत्यादि सहस्रशो वचनैर्ज्योतिष्टोमादियागेषु विहितवत् अत्रापि स्मृत्यनुमितवेदविहितत्वात् नाधर्मसाधनं, निषिद्धे तु जायत एवाधर्मः। श्रीधर्माचार्यकृते लघुस्तवे—'विप्राः क्षोणिभुजो विशस्तदितरे क्षीराज्यमध्वासवै'रिति। ज्ञानार्णवे—'वर्णानुक्रमभेदेन वर्णभेदा भवन्ति वै'। अपि च—'द्रवेण सात्त्विकेनेव ब्राह्मणः पूजयेच्छिवाम्' इति। तथा—

एवं दद्यात् क्षत्रियोऽपि पैष्टिकीं न कदाचन। नारिकेलोदकं कांस्ये ताम्रे दद्यात्तथा मधु ॥५॥
राजन्यवैश्ययोर्दानं न द्विजस्य कदाचन। एवं प्रदानमात्रेण हीनायुर्ब्राह्मणो भवेत् ॥६॥ इति।

भैरवीतन्त्रे—
यत्रावश्यं विनिर्दिष्टं मदिरादानपूजनम्। ब्राह्मणस्ताम्रपात्रे तु मधु मद्यं प्रकल्पयेत् ॥१॥
ब्राह्मणो मदिरां दत्त्वा ब्राह्मण्यादेव हीयते। स्वगात्ररुधिरं दत्त्वा स्वात्महत्यामवाप्नुयात् ॥२॥

इति नानाशास्त्रविचारेण विप्राणामनुकल्पप्रकारेण पूजनम्। 'सात्त्विकेनैव भावेन ब्राह्मणस्तर्पयेच्छिवाम्' इति। श्रीक्रमसंहितायामपि—

आवाभ्यां पिशितं रक्तं सुरां वापि सुरेश्वरि। वर्णाश्रमोचितं धर्ममविचार्यार्पयन्ति ये ॥१॥
भूतप्रेतपिशाचास्ते भवन्ति ब्रह्मराक्षसाः। इति।

वस्तुतस्तु—'गुडार्द्रकरसेनैव सुरा न ब्राह्मणस्य च' इति वचनात् वामागमेऽपि विप्रे नाधिकारः। तथा च श्रुतिः—'नित्यं मद्यं ब्राह्मणो वर्जयेत्' इति नित्यपदं कामतो यत्र कुत्रचित्प्राप्तिवचनम्, तथा अकामतोऽपि नित्यं

निषेधवचनं तन्निर्णयनिश्चितार्थं वेदेनैवोक्तत्वात्। ब्राह्मणस्य वामागमेऽपि निषेध एव बोध्यम्। तथा वचनेनाकारादिनाप्यर्थो बोध्यते। 'ब्राह्मणस्य सदाऽपेया क्षत्रियस्य रणागमे। वैश्यस्य धनसंयोगे शूद्रस्य न कदाचन' इति। महाकालसंहितायाम्— 'क्षीरेण ब्राह्मणैस्तर्प्या घृतेन नृपवंशजैः। माक्षिकैर्वैश्यवर्णैस्तु आसवैः शूद्रजातिभिः' इति। सारासारविचारस्त्वपेक्षित एव। तत्र विधिस्तु—

निःशङ्को निर्भयो वीरो निर्लज्जो निष्कुतूहलः। निर्णीतवेदशास्त्रार्थो वरदां वारुणीं पिबेत्॥१॥
तत्कर्म कुर्वतां पुंसां कर्मलोपो भवेद्यदि। तत्कथं तत्प्रकुर्वन्ति सप्तकोटिमुनीश्वराः॥२॥ इति।

ब्राह्मण की सुरा गुड़ और आर्द्रक रस की, क्षत्रियों की सुरा गुड़ की, वैश्यों के लिये महुआ की और शूद्रों की सुरा केला एवं मधु में धान की भूसी को मिलाकर बनती है।

कुलार्णव में कहा गया है कि शैव, वैष्णव, शाक्त, सौर, सुगत दर्शन, बौद्ध, पाशुपत, सांख्य, मान्त्र, कालामुख तथा दक्षिण-वाम सिद्धान्त में, वैदिकों में बिना सौ लिपि के पूजन निष्फल होते हैं। कुलद्रव्य के बिना जप, पूजा, व्रत, तप वैसे ही निष्फल होते हैं, जैसे कि भस्म में हवन करना। जैसे विप्रों के लिये यज्ञों में सोमपान निर्दोष होता है, वैसे ही मद्यपान भी सोमरस के समान भोग-मोक्षप्रदायक होता है। इस प्रकार हजारो वचनों से ज्यातिष्टोमादि यज्ञों में विहित के समान यहाँ भी स्मृति-अनुमित एवं वेद विहित होने से सुरापान अधर्मसाधन नहीं हैं; बल्कि निषेध करने पर अधर्म अवश्य होता है। साथ ही यह भी कहा है कि इस प्रकार क्षत्रिय भी पैष्टिकी सुरा से कभी भी पूजन न करे। नारियल जल कांस्यपात्र में एवं ताम्रपात्र में मधु प्रदान करे। क्षत्रियों एवं वैश्यों के लिये ये क्रमशः विहित हैं; ब्राह्मण को इसे कभी नहीं देना चाहिये; अन्यथा उसकी आयु क्षीण होती है।

भैरवीतन्त्र में भी कहा गया है कि जहाँ मदिरादान पूजन में आवश्यक रूप से निर्दिष्ट है, वहाँ ब्राह्मण ताम्रपात्र में मधु एवं मद्य कल्पित करे। ब्राह्मण मदिरा देकर ब्राह्मणत्व से हीन होता है और अपने गात्र का रुधिर देकर आत्म हत्या करता है। इस प्रकार अनेकों शास्त्रों के विचारों से विप्र अनुकल्प प्रकार से ही पूजा करे। कहा भी गया है कि सात्त्विक भाव से ही ब्राह्मण को पूजा करनी चाहिये।

श्रीक्रमसंहिता में भी कहा गया है कि मांस, रक्त या सुरा से अर्पण वर्णाश्रमोचित धर्म का विचार करके करना चाहिये। ऐसा न करने वाले भूत-प्रेत-पिशाच की श्रेणी में आते है और वे ब्रह्मराक्षस होते हैं। वस्तुतः तो गुड़ एवं आदि का रस ब्राहमणों की सुरा नहीं है—इस वचन से वामागम में विप्रों का अधिकार नहीं है। श्रुति ब्राह्मणों के लिये सदा-सर्वदा मद्य का निषेध करती है। इस प्रकार ब्राह्मण के लिये वामागम का निषेध ही जाना चाहिये। कहा भी है कि ब्राह्मणों के लिये सदा अपेय मदिरा युद्ध में क्षत्रियों के लिये पेय है। धन के लिये वैश्यों को पेय है और शूद्रों के लिये कभी भी पेय नहीं है। महाकालसंहिता में कहा गया है कि ब्राह्मण दूध से तर्पण करे। क्षत्रिय घी से, वैश्य मधु से और शूद्र आसव से तर्पण करे। यहाँ पर सार-आसार का विचार अवश्य करना चाहिये है। वहाँ विधि यह है कि—वीर निःशङ्क, निर्भय, निर्लज्ज एवं निष्कुतूहल होकर वेद एवं शास्त्र के अर्थ का निर्णय कर वरदा वारुणी का पान करे। उस कर्म के करने में अर्थात् वारुणी पान करने में यदि कर्म का लोप होता है तो तब सात करोड़ मुनीश्वर उसका पान कैसे करते हैं?

निषिद्धे निन्दा च—

आवृत्तिं गुरुपङ्क्तिं च वटुकादीनप्रपूज्य च। वीरोऽप्यत्र वृथापानाद् देवताशापमाप्नुयात्॥१॥
अयष्ट्वा भैरवं देवमकृत्वा मन्त्रतर्पणम्। पशुपानविधौ पीत्वा वीरोऽपि नरकं व्रजेत्॥२॥
अज्ञात्वा कौलिकाचारमयष्ट्वा गुरुपादुकाम्। योऽस्मिन् शास्त्रे प्रवर्तेत तं त्वं पीडयसे ध्रुवम्॥३॥
कौलज्ञाने त्वप्रसिद्धो यो द्रव्यं भोक्तुमिच्छति। स महापातकी देवि सर्वधर्मबहिष्कृतः॥४॥
समयाचारहीनस्य स्वैरवृत्तेर्दुरात्मनः। न सिद्धयः कुलभ्रंशस्तत् सर्वं नरकाय च॥५॥
यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामचारतः। स सिद्धिमिह नाप्नोति परत्र च परां गतिम्॥६॥

स्वेच्छया वर्तमानो यो दीक्षासंस्कारवर्जितः । न तस्य सद्गतिः क्वापि तपस्तीर्थव्रतादिषु ॥७॥
असंस्कृतं पिबन् मद्यं बलात्कारेण मैथुनम् । स्वप्रीत्यै आहृतं मांसं रौरवं नरकं व्रजेत् ॥८॥

इत्यादिवचनानि शतशो विधिनिषेधपराणि। प्रतिप्रसवस्तु—'क्वचिद्यदृच्छया प्राप्तमलिद्रव्यं तु भक्तितः। गृहीत्वा मूलमन्त्रेण गुरुं स्मृत्वा च पादुकाम्। तत्त्वत्रयेण संयुक्तं गृह्णीयान्मूलमुच्चरन्' इत्यपि संस्कृतपूजाविशेष-द्रव्यपरम् ।

निषिद्ध में निन्दा—आवृत्ति, गुरुपंक्ति एवं वटुकादि की पूजा करके वीर भी यदि व्यर्थ पान करता है तो उसे देवता शाप देते हैं। भैरवों की पूजा एवं मन्त्रतर्पण किये बिना जो पशुपान विधि से पीता है, वह वीर भी नरकगामी होता है। कौलिकाचार को जाने बिना और गुरुपादुका का पूजन किये बिना जो इस शास्त्र में प्रवर्तन करता है, उसे देवी अवश्य पीड़ा देती हैं। कौलज्ञान में दूसरे प्रसिद्ध द्रव्यों को माँगने की इच्छा जो करता है, वह पापी सभी धर्मों से बहिष्कृत होता है। समयाचार से हीन एवं स्वच्छन्द वृत्ति दुरात्मा को सिद्धि नहीं मिलती, कुल भ्रष्ट होकर नरक में जाता है। जो शास्त्रीय विधि को छोड़कर कामाचार करता है उसे इस लोक में तो सिद्धि नहीं ही मिलती, परलोक में परा गति को नहीं प्राप्त करता है। दीक्षा संस्कार से विहीन स्वेच्छाचारी को कभी सद्गति नहीं मिलती, उसे तप तीर्थ व्रत करने का भी कुछ फल नहीं मिलता। असंस्कृत होकर जो मद्य पान करता है, बलात्कार से मैथुन करता है और अपनी प्रसन्नता के लिये जो मांसभक्षण करता है, वह रौरव नरक में जाता है। इस प्रकार के सैकड़ों वचन विधि एवं निषधपरक प्राप्त होते हैं।

सुराभेदफलश्रुतिः

फलश्रुतिरपि—

सर्वसिद्धिकरी पैष्टी गौडी भोगप्रदायिनी । माध्वी मुक्तिकरी ज्ञेया सुराख्या त्रिविधा प्रिये ॥९॥
विद्याप्रदैक्षवी प्रोक्ता द्राक्षा राज्यप्रदायिनी । तालजा स्तम्भने शस्ता खार्जूरी रिपुनाशिनी ॥१०॥
नारिकेलभवा श्रीदा पानसाख्या शुभप्रदा । माधूकाख्या ज्ञानकारी दारिद्र्यरिपुहारिणी ॥११॥
मैरेयाख्या कुलेशानि सर्वपापप्रणाशिनी । क्षीरवृक्षसमुद्भूतं मद्यं वल्कलसंभवम् ॥१२॥
यस्यानन्दं निर्विशेषं सामोदं च मनोहरम् । द्रव्यं तदुत्तमं देवि देवताप्रीतिकारकम् ॥१३॥
सुरासंदर्शनादेव तीर्थकोटिफलं लभेत् । तद्गन्धाघ्राणमात्रेण शतक्रतुफलं लभेत् ॥१४॥
देवि तत्पानतः साक्षाल्लभेन्मुक्तिं चतुर्विधाम् । मांससंदर्शनादौ तु सुरादर्शनवत्फलम् ॥१५॥ इति।

तस्मात् कुलार्णवोक्तवचनान्येवादरणीयानीति सङ्गतं प्रतिभातीत्यलं जल्पितेन।

फलश्रुति भी है कि पैष्टी सर्वसिद्धिकरी, गौड़ी भोगप्रदायिनी एंव माध्वी मुक्तिकरी—इस प्रकार सुरा के तीन भेद होते हैं। ऐक्षवी विद्याप्रदा, द्राक्षा राज्यप्रदायिनी है। ताड़ी स्तम्भन में प्रशस्त है। खर्जूर से बनी सुरा रिपुनाशिनी है। नारिकेलोत्पन्न सुरा श्रीप्रदा एवं पानसा शुभदायिनी होती है। माधूका ज्ञानकरी एवं दरिद्रता तथा शत्रुनाशिनी है। मैरेय नामक सुरा सभी पापों का नाश करती है। दुग्धवृक्षों के छाल से बना मद्य अतिशय आनन्द को देने वाला होने के कारण देवताओं को प्रीतिकारक है। सुरा के दर्शनमात्र से करोड़ों तीर्थों का फल मिलता है। उसके गन्ध को सूँघने मात्र से ही सौ यज्ञों का फल मिलता है। उसे पीने से चतुर्विध मोक्ष साक्षात् प्राप्त होते हैं। मांस आदि के दर्शन का फल भी सुरादर्शन के समान ही है। इस प्रकार कुलार्णवोक्त वचन ही आदरणीय प्रतीत होते हैं।

नीलक्रमोक्तवीरसाधनम्

नीलतन्त्रे (प० ११)—

देव्युवाच

महानीलक्रमं देव सूचितं न प्रकाशितम् । कथयस्व महादेव सर्वसिद्धिप्रदं महत् ॥१॥

भैरव उवाच

शृणु देवि वरारोहे वीरसाधनमुत्तमम्। सर्वसिद्धिप्रदं साक्षात् सर्वदेवनमस्कृतम् ॥२॥
सर्वपापहरं देवि सर्वरोगविनाशनम्। ब्रह्मविष्णुशिवादीनां दिक्पालानां च भामिनि ॥३॥
भैरवाणां च सर्वेषां गन्धर्वाणां च योगिनाम्। स्वतः सिद्धिप्रदं देवि सर्वेषामालयं महत् ॥४॥
नान्यत् सिद्धिप्रदं देवि वीरसाधनवर्जितम्। महाबलो महाबुद्धिर्महासाहसिकः शुचिः ॥५॥
महास्वच्छो दयावांश्च सर्वभूतहिते रतः। तेषां कृते महादेवि कथितं नीलसाधनम् ॥६॥
(अष्टम्यां च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि। कृष्णपक्षे विशेषेण यथाविधि च साधयेत् ॥७॥
भौमवारे तमिस्रायां यामे याते च भामिनी। तदर्धाभ्यन्तरे सम्यक्पूजोपकरणं बलिम्) ॥८॥
सामिषान्नं गुडं छागं सुरां पिष्टकमेव च। नानाफलं च नैवेद्यं स्वस्वकल्पोक्तसाधनम् ॥९॥
चितास्थानं समानीय सुहृद्भिः शस्त्रपाणिभिः। समानगुणसंपन्नैः साधको वीतभीः स्वयम् ॥१०॥
न वीक्षते चतुर्दिक्षु देवताध्यानतत्परः। भीतश्चेत् साधकस्तत्र चतुर्दिक्षु च साधकाः ॥११॥
नो चेत्स्वयं केवलोऽसौ भैरवः परिकीर्तितः। प्रक्षालितां चिताभूमिं गत्वा साधकसत्तमः ॥१२॥
प्र(अ)क्षालिता यदि प्रायः कारयेदस्थितसञ्चयम्। अस्त्रान्तमूलमन्त्रेण प्रोक्षणं यागभूमिषु ॥१३॥
गुरुपादरजो ध्यात्वा गणेशं वटुकं तथा। योगिनीर्मातृकाश्चैव वामपादपुरःसरम् ॥१४॥
ये चात्र संस्थिता देवा राक्षसाश्च भयानकाः। पिशाचा यक्षसिद्धाश्च गन्धर्वाप्सरसां गणाः ॥१५॥
योगिन्यो मातरो भूताः सर्वाश्च खेचरस्त्रियः। सिद्धिदास्ता भवन्त्वद्य तथा च मम रक्षकाः ॥१६॥
प्रणम्य मनुनानेन पुष्पाञ्जलित्रयं क्षिपेत्। श्मशानाधिपतिं पश्चाद्भैरवं कालभैरवम् ॥१७॥
महाकालं यजेद्यत्नात् पूर्वादिदिक्चतुष्टये। पाद्यादिभिश्च मन्त्रज्ञो बलिं पश्चान्निवेदयेत् ॥१८॥
शवबीजं पुनः पश्चात् श्मशानाधिपते परम्। इममन्ते सामिषान्नं बलिं गृह्ण ततः परम् ॥१९॥
गृह्ण-गृह्णापययुगं विघ्ननिवारणं ततः। कुरु सिद्धिं मे ततोऽन्ते प्रयच्छ स्वाहयान्वितम् ॥२०॥
तारादिमनुना देवि प्रथमो बलिरीरितः। मायान्ते भैरवं पश्चाद्भयानक ततः परम् ॥२१॥
पूर्ववन्मन्त्रमुद्धृत्य दक्षिणे बलिमाहरेत्। हूमन्ते च महाकालात्पश्चात्पूर्ववदुद्धरेत् ॥२२॥
पश्चिमे कालदेवाय प्रणवाद्येन कल्पयेत्। शब्दा(वा)न्ते कालशब्दान्ते भैरवेति पदं ततः ॥२३॥
श्मशानाधिप इत्येवं पूर्ववच्चोत्तरे हरेत्। चितामध्ये ततो दद्याद् बलित्रयमनुत्तमम् ॥२४॥
कालरात्रि महाकालि कालिके घोरनिःस्वने। गृहाणेमं बलिं मातर्देहि सिद्धिमनुत्तमाम् ॥२५॥
कालिकायै बलिं दत्त्वा भूतनाथाय दापयेत्। शब्दा(वा)न्ते भूतनाथान्ते श्मशानाधिप इत्यपि ॥२६॥
प्रणवाद्येन मन्त्रेण दापयेद्बलिमुत्तमम्। हूं सर्वगणनाथान्ते धिप चैव तथा पुनः ॥२७॥
श्मशानमस्तके दत्त्वा पूर्ववच्च समुच्चरेत्। ताराद्येन बलिं दत्त्वा पञ्चगव्येन सुन्दरि ॥२८॥
अस्थिसंप्रोक्षणं कृत्वा पीठमन्त्रं न्यसेत्ततः। भूर्जे वा वटपत्रे वा तत्र पीठमनुं न्यसेत् ॥२९॥
पीठमास्तीर्य तस्मिन् वै बद्धवीरासनस्तदा। वीरार्चनेन देवेशि लोष्टान् दिक्षु परिक्षिपेत् ॥३०॥
कूर्चबीजद्वयं देवि मायायुग्मं ततः परम्। कालिके घोरदंष्ट्रे च प्रचण्डे चण्डनायिके ॥३१॥
दानवान् दारयेत्युक्त्वा हनेति द्वितयं ततः। परबीजं(वीरं) महाविघ्नं छेदयेति युगं ततः ॥३२॥
द्विठान्तो वर्मशस्त्रान्तो वीरार्चनमनुर्मतः। अनेन मन्त्रितांल्लोष्टान् दशदिक्षु विनिक्षिपेत् ॥३३॥
तन्मध्ये भैरवो देवो न विघ्नैः परिभूयते। यदि प्रमादाद् देवेशि साधको भयविह्वलः ॥३४॥
तदा तैस्तैः सुहृद्वर्गै रक्षितो नाभिभूयते। अर्केन्दुसितवाट्यालतूलनिर्मितवर्तिकम् ॥३५॥
प्रदीपं तत्र संस्थाप्य यन्त्रं तत्र प्रपूजयेत्। हते तस्मिन् महादीपे विघ्नैश्च परिभूयते ॥३६॥

तदधश्चास्त्रमन्त्रेण निखनेत् कुलदीपकम्। तत्तत्कल्पविधानेन भूतशुद्ध्यादिकं चरेत्॥३७॥
(मातृकाक्षरसंयुक्तां विद्यां षोढां न्यसेत्पुनः। क्रमाद्व्युत्क्रमयोगेन ताराषोढा प्रकीर्तिता॥३८॥
षोढाविन्यस्तदेहस्तु साक्षाद्विश्वेश्वरो भवेत्)। षोढा वा तारकं वापि विन्यस्य प्रजपेत् ततः॥३९॥ इति।

देवी ने कहा कि हे देव! महानील क्रम को आपने सूचित मात्र किया; प्रकाशित नहीं किया। इसलिये हे महादेव! सर्वसिद्धिप्रद उस महान् तन्त्र को कहिये। भैरव ने कहा—हे देवि! उत्तम वीर साधन को सुनो। यह साक्षात् सर्वसिद्धिप्रद एवं सर्व देव नमस्कृत है। यह सर्वपापहर और सर्वरोगविनाशक है। यह ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि देवता, दिक्पाल, समस्त भैरव, सभी गन्धर्व एवं योगियों को स्वत: सिद्धिप्रद है। इस वीरसाधन के अतिरिक्त दूसरा कुछ भी सिद्धिप्रद नहीं है। महाबली, महाबुद्धि, महासाहसिक, पवित्र, महास्वच्छ, दयावान, सभी भूतों के हित में निरत साधकों के लिये नीलसाधन कहा गया है। दोनों पक्षों की अष्टमी और चतुर्दशी; विशेषत: कृष्ण पक्ष में यथाविधि इसका साधन करना चाहिये। मङ्गलवार के अन्धकार में डेढ़ प्रहर रात के बाद सम्यक् पूजोपकरण, बलि, सामिषान्न, गुड़, बकरा, मदिरा, पीठी, अनेक फल, नैवेद्य अपने कल्पोक्त और साधन लेकर चिताभूमि में जाये। साथ में समान गुणसम्पन्न सशस्त्र बन्धु-बान्धवों को भी ले जाये। साधक स्वयं निर्भय रहे। चारो तरफ न देखकर ध्यान में तत्पर रहे। निर्भय साधक चारों ओर साधकों को न देखकर स्वयं को अकेला भैरव समझे। साधक प्रक्षालित चिताभूमि में जाय। चिताभूमि यदि प्रक्षालित न हो तो अस्थिसञ्चय करके मूल मन्त्र के अन्त में अस्त्रमन्त्र यागभूमि का प्रोक्षण करे। तदनन्तर गुरुचरणरज, गणेश, वटुक, योगिनी, मातृका का ध्यान करके बाँयाँ पैर आगे बढ़ाकर निम्न मन्त्र पढ़े—

ये चात्र संस्थिता देवा राक्षसाश्च भयानका:। पिशाचा यक्षसिद्धाश्च गन्धर्वाप्सरसां गणा:।।
योगिन्यो मातरो भूता: सर्वाश्च खेचरस्त्रिय:। सिद्धिदास्ता भवन्त्वद्य तथा च मम रक्षका:।।

इन मन्त्रों से प्रणाम करके तीन पुष्पाञ्जलि निवेदित करे। तब श्मशानाधिपति, भैरव, कालभैरव, महाकाल का पूजन पूर्वादि चारो दिशाओं में करे। पाद्यादि से पूजन के बाद मन्त्रज्ञ बलि निवेदित करे। बलिमन्त्र है—ॐ हूँ श्मशानाधिपते इमं सामिषान्नं (सामृतं) बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्ननिवारणं कुरु कुरु सिद्धिं मे प्रयच्छ स्वाहा।' इस मन्त्र से प्रथम बलि पश्चिम में प्रदान करे। दक्षिण दिशा में भैरव को बलि इस मन्त्र से दे—'ह्रीं श्मशानाधिप भैरव भयानक इमं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्ननिवारणं कुरु कुरु सिद्धिं मे प्रयच्छ स्वाहा। पूर्व दिशा में महाकाल को बलि इस मन्त्र से दे—ॐ हूं श्मशानाधिप महाकाल इमं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्ननिवारणं कुरु कुरु सिद्धिं मे प्रयच्छ स्वाहा।' उत्तर दिशा में कालभैरव को बलि इस मन्त्र से दे—'ॐ हूं श्मशानाधिप कालभैरव इमं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्ननिवारणं कुरु कुरु सिद्धिं मे प्रयच्छ स्वाहा।' तब चिता मध्य में तीन बलि प्रदान करे। बलिमन्त्र है—

कालरात्रि महाकालि कालिके घोरनि:स्वने। गृहाणेमं बलिं मातर्देहि सिद्धिमनुत्तमाम्।।

इस प्रकार कालिका को बलि देकर भूतनाथ को इस मन्त्र से बलि प्रदान करे—ॐ हूं श्मशानाधिप भूतनाथ इमं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्ननिवारणं कुरु कुरु सिद्धिं मे प्रयच्छ स्वाहा। श्मशान मस्तक में गणनाथ का पूजनकर इस मन्त्र से बलि देवे—ॐ हूं श्मशानाधिप सर्वगणनाथ इमं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्ननिवारणं कुरु कुरु सिद्धिं मे प्रयच्छ स्वाहा। तब चिता के पश्चिम या दक्षिण भाग में चिता से अस्थि एकत्र करके ॐ ह्रीं आधार- शक्तये नम:' से पञ्चगव्य से उसका प्रोक्षण करे। भोजपत्र या वटपत्र पर या पञ्च प्रेतपीठासन पर मन्त्र को लाल चन्दनादि से लिखकर उस पर अस्थि को रखे। उसके ऊपर कम्बल-अजिनादि का आसन बिछाये। उसकी पूजा करके वीरासन में उस पर बैठे। 'हूं हूं ह्रीं ह्रीं कालिके घोरदंष्ट्रे प्रचण्डे चण्डनायिके दानवान् दारय दारय, हन हन परवीरं महाविघ्नं छेदय छेदय स्वाहा हूं फट—इस वीरार्चन मन्त्र से दश मिट्टी के ढेलों को मन्त्रित करके दशो दिशाओं में फेंक दे। इसके मध्य में भैरव देव विघ्न नहीं करते। यदि प्रमादवश साधकभयविह्वल हो जाय तब उसके सुहृद् वर्ग भी उसकी रक्षा नहीं कर सकते। तब अर्क तूल कर्पूर श्वेत वाट्याल तूल से निर्मित बत्ती घी, तेल आदि में रखकर अघोरास्त्र मन्त्र से मन्त्रित रक्षादीप को मूलमन्त्र से प्रज्वलित करके स्थापित करके वहाँ

पर यन्त्र पूजन करे। महादीप के बुझने पर विघ्न होते हैं। इसलिये अस्त्रमन्त्र से गड्ढा खोदकर उसमें दीपक को रखकर कल्पित विधान से भूतशुद्ध्यादि करे। मातृकाक्षर-संयुक्त विद्या से षोढ़ा न्यास फिर से करे। क्रम एवं व्युत्क्रम के योग से ताराषोढ़ा कही गई है। षोढ़ा न्यास से न्यस्त देह साक्षात् विश्वेश्वर स्वरूप हो जाता है। इस प्रकार षोढ़ा या तारक का न्यास करके मन्त्र का जप करे।

तन्त्रान्तरे—

जपान्ते जपमध्ये च देहि देहीति भाषते। बलिं दद्यात्तदा देवि नो चेदन्ते भवेद्बलिः ॥१॥

बलिस्तु छागादिः। सामिषान्नादि तु बलिपात्राणामर्थे। 'चितापश्चिमभागे च उपविश्य जपं चरेत्' इति च क्वापि। 'गुरुर्वापि सतीर्थ्यो वा शिष्यो वा साधकोऽपि वा। स्थाप्यो दक्षिणदिग्भागे भवेच्चोत्तरसाधकः। काण्डप्रक्षेपभूभागे किंचिद् दूरे विचक्षणः' इति च। रुद्रयामले—

ततः पञ्चोपचारेण पुरतो देवतां यजेत्। निमील्य चक्षुषी पश्चाद् देवीं ध्यात्वा मनुं जपेत् ॥१॥
एकाक्षरीं दिक्सहस्रं त्र्यक्षरीमयुतं जपेत्। ततः परं तु मन्त्रज्ञो गजान्तकसहस्रकम् ॥२॥
निशायां वा समारभ्य उदयान्तं समाचरेत्। यद्यसह्यं भयं कर्णे नेत्रे वस्त्रेण बन्धयेत् ॥३॥
ततोऽर्धरात्रपर्यन्तं यदि किञ्चिन्नं लक्षयेत्। जयदुर्गाख्यमनुना चार्घ्यं तेनैव सर्षपान् ॥४॥
तिलोऽसि सोमदेवत्यो गोसवस्तृप्तिकारकः। पितृणां स्वर्गदाता त्वं मर्त्यानामभयक्षमः ॥५॥
भूतप्रेतपिशाचानां विघ्नेषु शान्तिकारकः। इति क्षिप्त्वा तिलान् देवि चतुर्भागे शिवादितः ॥६॥
पुनः सप्तपदं गत्वा पुनस्तत्रैव संविशेत्। देवं तत्रापि संपूज्य प्रजपेन्मनुमुत्तमम् ॥७॥
निर्भयः प्रजपेत्तावद्यावत्सिद्धिः प्रजायते। भयेति(यादि) स्वप्नज्ज्ञेयं परेऽह्नि शेषमाचरेत् ॥८॥ इति।

शेषं ब्राह्मणभोजनादिकम्। 'तिलकी पूर्वद्रव्येण उत्थाय च मनुं जपेत्' इति भयनिवारणं रक्षातिलकं च कुत्रचित्।

कुङ्कुमागरुकस्तूरी रोचना रक्तचन्दनम्। कर्पूरं पद्मरागं च केसरं हरिचन्दनम् ॥९॥
प्रत्येकं साधितं कृत्वा एकत्र साधयेद्बुधः। जिह्वाग्ररुधिरं वीरः श्मशाने च समाहितः ॥१०॥
तेनैव गुटिकां कृत्वा भद्रकालीमनुं जपेत्। नीलां नीलपताकां च ललज्जिह्वां करालिकाम् ॥११॥
ललाटे तिलकं कृत्वा साधको वीतभीः स्वयम्। वियदस्त्रान्वितं देवि वामाक्षिचन्द्रभूषितम् ॥१२॥
बीजं प्रत्येकवस्तूनां शृणु तासां च पार्वति। मूलमन्त्रं तु मन्त्रज्ञो जपेत्सार्धं शतत्रयम् ॥१३॥
जिह्वाग्ररुधिरं गृह्ण चामुण्डे घोरनिःस्वने। बलिं भुक्त्वा वरं देहि रुधिरं गहने वने ॥१४॥
कालि कालि प्रचण्डोग्रे ततोऽस्त्रं कवचं पुनः। कालिकेति समाख्याता जीवानां हितकाम्यया ॥१५॥
कूर्चयुग्मं महादेवि नीलायाः कथितं तव। वियदग्नियुतं देवि बलमिन्द्रसमायुतम् ॥१६॥
चन्द्रखण्डसमायुक्तं ततो नीलपदं पुनः। ततः पताके हूंफट् स्यात्पूर्वकूटमनुर्मतः ॥१७॥
जयश्रीधरणी देवी पताके वरणस्खले। इति नीलपताकेयं योज्या वा नीलसाधने ॥१८॥
या सा विद्या महातारा सा कालीति प्रकीर्तिता। पद्मरागं केसरं च गन्धद्रव्यं विशेषतः ॥१९॥ इति।

वियत् हकारः। अस्त्रान्वितं रेफान्वितम्। वामाक्षि ईकारः। चन्द्रोऽनुस्वारः। तेन ह्रीं इति बीजं अस्त्रं कवचमिति क्रमेण तात्पर्यम्। किंत्वस्त्रं कवचमिति हुंफट्, कूर्चयुग्मं हूं हूं, बल स्वरूपं इन्द्र ईकारः तेन हरबलीं इति कूटम्। जयो नकारः श्रीः ईकारः धरणी लकारस्तेन नील इति। वरणं कवचं तेन हुं, स्खलं अस्त्रं तेन फट्। 'अञ्जनाञ्चितलोचनः' इति च क्वापि। अन्यच्च—

स्वयं वै तत्र भगवान् भैरवो लगुडाङ्कितः। भ्रमतीतस्ततो वीरस्तं विलोक्य जपेन्मनुम् ॥१॥

यदि भाग्यवशाद् देवि लगुडस्तत्र लभ्यते। तदा स्वयं भैरवोऽसौ स्वयं विश्वम्भरो भवेत्॥२॥
तत्र नत्वा महादेवं महाकालं च भामिनि। तद्भस्मतिलकं कृत्वा स्वयं वीरेश्वरो भवेत्॥३॥ इति। तद्भस्म श्मशानभस्म, तिलकं विभूतिधारणमित्यर्थः।

तन्त्रान्तर में कहा गया है कि जप के अन्त एवं मध्य में 'देहि देहिं' पद का उच्चारण ही बलि प्रदान करना होता है; अलग से बलि नहीं प्रदान किया जाता। कुछ का मत है कि चिता के पश्चिम भाग में बैठकर जप करना चाहिये।

रुद्रयामल में कहा गया है कि तदनन्तर अपने सामने देवता का पूजन पञ्चोपचार से करके आँखों को बन्द करके देवी का ध्यान करते हुए मन्त्र का जप करे। एकाक्षर मन्त्र का जप दश हज़ार करे। तत्पश्चात् त्र्यक्षर मन्त्र का जप दश हजार करे। इसके बाद मन्त्रज्ञ आठ हजार जप करे। रात में प्रारम्भ करके सूर्योदय तक जप करे। जप के समय यदि असह्य भय उपस्थित हो तो कानों, नेत्रों को वस्त्र से बाँध ले। यदि आधी रात तक कुछ दिखायी या सुनाई न पड़े तब जयदुर्गा मन्त्र से अर्घ्य प्रदान करके उसी जयदुर्गा मन्त्र से हाथ में सरसों एवं तिल लेकर निम्न मन्त्र को पढ़ते हुये अपने चारो ओर छिड़क दे—

तिलोऽसि सोमदेवत्यो गोसवस्तृप्तिकारकः। पितॄणां स्वर्गदाता त्वं मर्त्यानामभयक्षमः॥
भूतप्रेतपिशाचानां विघ्नेषु शान्तिकारकः।

इस प्रकार सरसों एवं तिल बिखेरकर सात पग चलकर पुनः वहीं बैठकर देवता का पूजन कर मन्त्रजप करे। निर्भय होकर तब तक जप करे, जब तक सिद्धि न प्राप्त हो जाय। भयादि को स्वप्नवत् जाने एवं दूसरे दिन शेष ब्राह्मणभोजन आदि कार्यों को सम्पन्न करे।

कुङ्कुम, अगर, कस्तूरी, गोरोचन, रक्त चन्दन, कपूर, पद्मराग, केसर, हरिचन्दन—प्रत्येक को साधित करके सबको मिला दे। उसमें जिह्वाग्र रुधिर मिलाकर श्मशान में बैठकर एकाग्र चित्त होकर गुटिका बनाये। उनसे भद्रकाली मन्त्र का जप करे। भद्रकाली नीला नीलपताका ललज्जिह्वा और करालिका हैं। इनका तिलक ललाट में लगाकर साधक निर्भय हो जाय। ह्रीं बीज से प्रत्येक वस्तु को मन्त्रित करे। मन्त्रज्ञ मूल मन्त्र का जप साढ़े तीन सौ करे। तब इस प्रकार प्रार्थना करे—

जिह्वाग्ररुधिरं गृह्ण चामुण्डे घोरनिःस्वने। बलिं भुक्त्वा वरं देहि रुधिरं गहने वने॥
कालि कालि प्रचण्डोग्रे ततोऽस्त्रं कवचं पुनः। कालिकेति समाख्याता जीवानां हितकाम्यया॥

जो विद्या महातारा है, उसे ही काली भी कहते हैं। उसका पूजन विशेष गन्धद्रव्य—पद्मराग एवं केसर से किया जाता है। अन्यत्र कहा गया है कि तब वहाँ पर दण्डधारी भगवान् भैरव स्वयं भ्रमण करते हैं। तब वीर उन्हें देखकर मन्त्र जप करे। यदि भाग्यवश उनका दण्ड मिल जाय तब साधक स्वयं भैरव होकर विश्वम्भर हो जाता है। तब वहाँ महादेव महाकाल को प्रणाम करके उस श्मशान के भस्म का तिलक लगाकर अर्थात् विभूति धारण करके वह स्वयं वीरेश्वर हो जाता है।

वीरसाधनप्रयोगे चितासाधनम्

प्रयोगस्तु—तत्र प्रथमं विहितभौमामावास्यादिपर्व संलक्ष्य रात्रौ प्रहरार्धे गते अभुक्तो भुक्तभोज्यो वा मूलमन्त्रेण घटीबन्धेन वस्त्रं परिधाय उपरि सर्वाच्छादकवस्त्रान्तरेणाच्छाद्य, धृतोष्णीषो मुक्तकेशो दिगम्बरो वा मूलेन पूर्वसाधिततिलकं कृत्वा, अञ्जनाञ्चितनेत्रो रक्तचन्दनादिनाङ्गं विलिप्य मूलेनैव सिन्दूरेणोर्ध्वपुण्ड्रं कृत्वा, हृदि देवीं मूर्ध्नि गुरुं ध्यात्वा नत्वा, कुलामृतरससामिषान्नपिष्टकमत्स्यवटुकादिपूजाबलिपात्रसामग्रीं यथालाभं समादाय बल्यर्थं छागादि गन्धपुष्पाक्षतपञ्चगव्यं, पञ्चामृतादि च गृहीत्वा, खड्गपाणिभिः सुहृद्भिः रक्षकैः कृतरक्षोऽघोरास्त्रादिना बद्धशिखो मूलविद्यां हृदि स्मरन् अप्रक्षालितां सद्यश्चितां प्रक्षालितां प्राचीनचितां वा गच्छेत्। प्रक्षालनपक्षे त्वस्थिसञ्चयं कुर्यात्। ततः काण्डप्रक्षेपमात्रभूम्यन्तरा चतुर्दिक्ष्ववेक्षकान् सुहृद उत्तरसाधकान् खड्गपाणीन् किञ्चिद्दूरतः, एकश्चेद् दक्षिणतस्तमुत्तरसाधकं काण्डान्तरा धृत्वा, पश्चिमतः स्वयं सामान्यार्घ्यं कृत्वा मूलमन्त्रान्तेऽस्त्रमन्त्रेण पञ्चगव्येन यागभूमिं संप्रोक्ष्य, गुरुगणेश-वटुकयोगिनीर्ब्राह्म्याद्यष्टमातृकाश्च नमस्कृत्य, वामपादमग्रे कृत्वा 'ॐ ये चात्र

संस्थिता देवा राक्षसाश्च भयानकाः। पिशाचा यक्षसिद्धाश्च गन्धर्वाप्सरसां गणाः। योगिन्यो मातरो भूताः सर्वाश्च खेचरस्त्रियः। सिद्धिदास्ता भवन्त्वद्य तथा च मम रक्षकाः' इति मन्त्रेण नमस्कुर्वन् पुष्पाञ्जलित्रयं कवलत्रयं च चितामध्ये निक्षिपेत्। ततो बलिपात्राणि सप्त कृत्वा चतुर्दिक्षु चतुष्पात्राणि त्रीणि पात्राणि चितायां पश्चिममध्यपूर्वभागेषु त्रिकोणाकारतया वा संस्थापयेत्। पूर्वदिशि त्रिकोणोपरि श्मशानाधिपतिश्मशानस्तम्भं पाद्यादिभिरभ्यर्च्य 'ॐ हूं श्मशानाधिपते इमं सामिषान्नं (सामृतं) बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्ननिवारणं कुरु कुरु सिद्धिं मे प्रयच्छ स्वाहा' इति बलिं समर्पयेत्। दुग्धेन पञ्चगव्येन वा सर्वत्र संकल्पः। एवं दक्षिणदिशि भैरवं संपूज्य 'ॐ श्मशानाधिप भैरव भयानक इम'मित्यादि। पश्चिमदिशि महाकालं संपूज्य 'ॐ हूँ श्मशानाधिप महाकाल इम'मित्यादि। उत्तरदिशि कालभैरवं संपूज्य 'ॐ हूँ श्मशानाधिप कालभैरव इम'मित्यादि। एवं चितायां प्रथमं श्मशानकालिकां संपूज्य 'ॐ हूँ श्मशानवासिनि महाभीमे कालरात्रि महाकालि कालिके घोरनिःस्वने। गृहाणेमं बलिं मातर्देहि सिद्धिमनुत्तमाम्।। (ॐ ह्रीं) कालिकायै स्वाहा'। एवं भूतनाथं संपूज्य, 'ॐ हूँ श्मशानाधिप भूतनाथ इम'मित्यादि। श्मशानमस्तके गणनाथं संपूज्य, 'ॐ हूँ श्मशानाधिप सर्वगणनाथ इम'मित्यादि। ततश्चितापश्चिमभागे दक्षिणभागे वा कियन्त्यस्थीनि एकत्र कृत्वा, 'ॐ ह्रीं आधारशक्तये नमः' इति पञ्चगव्येन प्रोक्षयेत्। भूर्जे वा वटपत्रे वा पञ्चप्रेतपीठासनमन्त्रान् रक्तचन्दनादिना विलिख्य अस्थिषूपरि निधाय, तदुपरि कम्बलाजिनाद्यन्यतममासनमास्तीर्य संपूज्य, वीरासनेन तत्रोपविश्य 'हूँहूँह्रींह्रीं कालिके घोरदंष्ट्रे प्रचण्डे चण्डनायिके दानवान् दारय दारय हन हन परवीरं महाविघ्नं छेदय छेदय स्वाहा हुं फट्' इति वीरार्चनमन्त्रेण दश लोष्टान्यभिमन्त्र्य दश दिक्षु क्षिपेत्। अर्कतूलकर्पूरश्वेतवाट्यालतूलैर्निर्मितवर्तिकं घृततैलादिकं चाघोरास्त्रमन्त्राभिमन्त्रितं रक्षार्थं दीपं मूलेन प्रज्वालयेत्। तत्र यन्त्रं प्रपूजयेत्। तथा यत्नेन भाव्यं यथा जपसमाप्तिपर्यन्तं ज्वलति। ततस्तत्तत्कल्पोक्तविधिना भूतशुद्ध्यादिषोढान्यासजालं यथोचितं विन्यस्यार्घ्यादिकं संस्कृत्य, चितामध्ये महाचक्रं परिचिन्त्य पीठपूजान्ते देवतां संस्थाप्य, यथासंभवोपचारैः संपूज्यावरणपूजादि विधाय च यथोक्तसंख्यया विहितमालया देवताध्यानपूर्वकं जपेत्। एवं जप्ते यदि न किञ्चिल्लक्षयेत् तदा 'ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षणि स्वाहा' इति जयदुर्गामन्त्रेण देव्यै अर्घ्यं दत्त्वा, 'तिलोऽसि सोमदेवत्यो गोसवस्तृप्तिकारकः। पितृणां स्वर्गदाता त्वं मर्त्यानामभयक्षमः। भूतप्रेतपिशाचानां विघ्नेषु शान्तिकारकः' इति सर्वत्र तिलान् विकिरेत्। जयदुर्गामन्त्रेण सर्षपान् विकीर्य, उत्थाय सप्त पदानि गत्वा पुनस्तत्रोपविश्य, देवीं संपूज्य निर्भयो जपेत्। छागादिबलिविधानं यथोक्तक्रमसमये कर्तव्यम्। जपसमाप्तौ वरप्रार्थनां कृत्वा विसर्जनादि कृत्वा, समाग्रीं जले निक्षिप्य स्नात्वा गृहमागच्छेत्। भाग्येन लगुडलाभश्चेत्तदा तमादायागच्छेत्। इति चितासाधनम्।

वीरसाधन-प्रयोग में चितासाधन—पहले विहित भौम-अमावास्या आदि पर्व को जानकर आधे प्रहर रात के बीतने पर बिना भोजन किए या भोजन करके मूल मन्त्र से घटीबन्ध से वस्त्र धारण करे। ऊपर से ओढ़नी ओढ़कर अपने को ढँक ले। खुले केश, पगड़ी बाँधकर अथवा नग्न होकर मूलमन्त्र से पूर्व साधित तिलक लगाये। आँखों में काजल लगाकर रक्तचन्दन का लेप शरीर में लगाये। मूल मन्त्र से सिन्दूर का ऊर्ध्व पुण्ड लगाये। हृदय में देवी और मूर्धा में गुरु का ध्यान करके उन्हें प्रणाम करे। कुलामृत रस, सामिषान्न बड़ा, मछली, बटुकादि पूजा बलिपात्र की सामग्री जो भी उपलब्ध हो, उसे लेकर बलि के लिये छागादि, गन्ध, पुष्प, अक्षत, पञ्चगव्य, पञ्चामृत लेकर खड्गपाणि रक्षक बन्धुओं के साथ श्मशान में जाय। अघोरास्त्र से अपनी रक्षा करके शिखा बाँधकर मूल विद्या का हृदय में स्मरण करके अप्रक्षालित, सद्यः प्रक्षालित या प्राचीन चिता के पास जाय। यदि अप्रक्षालित चिता हो तो उसका प्रक्षालन करके वहाँ से अस्थिसञ्चय करे।

काण्ड प्रक्षेपमात्र दूरी पर चारो दिशाओं में उसके सुहृद्वर्ग मूल विद्या के उत्तर साधक हाथों में तलवार लेकर कुछ दूरी पर खड़े रहें। यदि एक ही हो तो उसे दक्षिण में करके साधक उससे उत्तर अन्य काण्ड पश्चिम में स्वयं सामान्य अर्घ्य दे। मूल मन्त्र से अस्त्र मन्त्र जोड़कर पञ्चगव्य से यागभूमि का प्रोक्षण करे। गुरु गणेश वटुक योगिनी ब्राह्मी आदि आठ मातृकाओं को प्रणाम करे। बाँयाँ पैर आगे बढ़ाकर—

ॐ ये चात्र संस्थिता देवा राक्षसाश्च भयानकाः। पिशाचा यक्षसिद्धाश्च गन्धर्वाप्सरसां गणाः।।
योगिन्यो मातरो भूताः सर्वाश्च खेचरस्त्रियाः। सिद्धिदास्ता भयन्त्वद्य तथा च मम रक्षकाः।।

इस मन्त्र को पढ़कर नमस्कार करते हुये तीन पुष्पाञ्जलि और तीन ग्रास चिता में डाले। तब सात बलिपात्रों में से चारो दिशा में चार और तीन पात्र चिता के पश्चिम, मध्य और पूर्वभाग में त्रिकोणाकार रखे। पूर्व दिशा के त्रिकोण पर श्मशानाधिपति श्मशानस्तम्भ का पाद्यादि से पूजन करके इस मन्त्र को पढ़कर बलि दे—ॐ हूँ श्मशानाधिपते इमं सामिषान्नं सामृतं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्ननिवारणं कुरु कुरु सिद्धिं मे प्रयच्छ स्वाहा। सर्वत्र सङ्कल्प दूध से या पञ्चगव्य से करे। दक्षिण दिशा में भैरव का पूजनकर ॐ श्मशानाधिप भैरव भयानक इमं सामिषान्नं सामृतं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्ननिवारणं कुरु कुरु सिद्धिं मे प्रयच्छ स्वाहा से बलि प्रदान करे। पश्चिम दिशा में महाकाल का पूजन कर—ॐ हूँ श्मशानाधिप महाकाल इमं सामिषान्नं सामृतं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्ननिवारणं कुरु कुरु सिद्धिं में प्रयच्छ स्वाहा मन्त्र से बलि प्रदान करे। उत्तर दिशा में कालभैरव का पूजनकर—ॐ श्मशानाधिप कालभैरव इमं सामिषान्नं सामृतं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्ननिवारणं कुरु कुरु सिद्धिं में प्रयच्छ स्वाहा मन्त्र से बलि प्रदान करे।

इस प्रकार चिता में पहले श्मशानकालिका का पूजन कर—'ॐ हूँ श्मशानवासिनि महाभीमे कालरात्रि महाकालि कालिके घोरनिःस्वने गृहाणेमं मे बलिं मातर्देहि सिद्धिमनुत्तमाम्। ॐ ह्रीं कालिकायै स्वाहा' से बलि दे। भूतनाथ का पूजन कर ॐ हूँ श्मशानाधिप भूतनाथ इमं सामिषान्नं सामृतं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्ननिवारणं कुरु कुरु सिद्धिं में प्रयच्छ स्वाहा मन्त्र से बलि दे। श्मशान के मस्तक में गणनाथ का पूजन कर—'ॐ हूँ श्मशानाधिप सर्वगणनाथ इमं सामिषान्नं सामृतं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्ननिवारणं कुरु कुरु सिद्धिं मे प्रयच्छ स्वाहा' मन्त्र से बलि दे। तब चिता के पश्चिम भाग या दक्षिण भाग में कुछ अस्थियों को एकत्र करके—ॐ ह्रीं आधारशक्तये नमः से पञ्चगव्य से उनका प्रोक्षण करे। भोजपत्र या वटपत्र पर पञ्चप्रेत पीठासन मन्त्रों को रक्तचन्दनादि से लिखकर अस्थियों पर रखे। उस पर कम्बल-अजिन आदि का आसन बिछाकर उसकी पूजा करके उस पर वीरासन में बैठे। 'हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं कालिके घोरदंष्ट्रे प्रचण्डे चण्डनायिके दानवान् दारय-दारय' हन हन परवीरं महाविघ्नं छेदय-छेदय स्वाहा हुं फट्। इस वीरार्चन मन्त्र से दश मिट्टी के ढेलों को मन्त्रित करके दश दिशाओं में फेक दे। अर्कतूल, कपूर, श्वेत वाट्याल तूल से निर्मित बत्ती एवं घी-तेल तथा अघोरास्त्र मन्त्र से मन्त्रित के रक्षादीप को मूलमन्त्र से जलाये। वहाँ पर यन्त्र की पूजा करे। दीपक ऐसा जलाये जो जपकाल की समाप्ति तक जलता रहे।

तदनन्तर कल्पोक्त विधि से भूतशुद्ध्यादि षोढ़ा न्यास यथोचित करके अर्घ्यादि को संस्कृत करके चितामध्य में महाचक्र का चिन्तन करे। पीठपूजा करके देवता को स्थापित कर यथासम्भव उपचारों से उसकी पूजा करे। साथ ही आवरण पूजन करके यथोक्त संख्या में विहित माला से देवता का ध्यान करके जप करे। जपकाल में यदि कुछ दिखायी न पड़े तब ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षणि स्वाहा—इस जय दुर्गा मन्त्र से देवी को अर्घ्य देकर करे—

तिलोऽसि सोमदेवत्यो गोसवस्तृप्तिकारकः। पितृणां स्वर्गदाता त्वं मर्त्यानामभयक्षमः।
भूतप्रेतपिशाचानां विघ्नेषु शान्तिकारकः।

इस मन्त्र को पढ़कर सर्वत्र तिल विखेरे। जयदुर्गामन्त्र से ही सरसों विखेर कर उठकर सात पग जाकर पुनः वहीं आकर बैठकर देवी का पूजनकर निर्भय होकर जप करे। छागादि बलि-विधान यथोक्त समय में करे। जप समाप्त होने पर वर प्रार्थना, विसर्जन आदि करके पूजा सामग्री को जल में डाल कर स्नान करके घर आ जाय। भाग्यवश यदि वहाँ भैरव का दण्ड मिल जाय तो उसे लेकर घर आ जाय।

शवसाधनम्

अथ शवसाधनं नीलतन्त्रे—

पूर्वोक्तमुपहारादि समादाय तु साधकः। साधयेच्च तथा सिद्धिसाधनस्थानमाश्रयेत् ।।१।।

गुरुध्यानादिकं सर्वं पूर्वोक्त मनसा चरेत्। वीरार्चनाकृते भूमौ मायामोहो न विद्यते ॥२॥
ये चात्रेत्यादिमन्त्रेण पुष्पाञ्जलित्रयं क्षिपेत्। श्मशानाधिपतीनां तु पूर्ववद्बलिमाहरेत् ॥३॥
अघोराख्येन मन्त्रेण शिखाबन्धनमाचरेत्। सुदर्शनेनात्मरक्षामुभाभ्यां वा प्रकल्पयेत् ॥४॥
मायास्फुरद्वयं भूयः प्रस्पुरद्वितयं पुनः। घोरघोरतरस्यान्ते तनुरूपपद ततः ॥५॥
चटयुग्मं तदन्ते च प्रचटद्वितयं ततः। कहद्वन्द्वं वमद्वन्द्वं ततो बन्धयुगं पुनः ॥६॥
घातयद्वितयं वर्म फडन्तः समुदाहृतः। एकपञ्चाशदर्णोऽयमघोरास्त्रमयो मनुः ॥७॥
हालाहलं समुद्धृत्य सहस्त्रारस्वरूपकम्। वर्मास्त्रान्तो महामन्त्रः सुदर्शनस्य कीर्तितः ॥८॥
भूतशुद्धिं ततः कृत्वा न्यासजालं प्रविन्यसेत्। जयदुर्गाख्यमनुना सर्षपान् दिक्षु निक्षिपेत् ॥९॥
तिलोसीति च मन्त्रेण तिलान् दिक्षु विनिक्षिपेत्। यष्टिविद्धं शूलविद्धं खड्गविद्धं पयोमृतम् ॥१०॥
रज्जुबद्धं सर्पदष्टं चाण्डालं चाभिभूतकम्। तरुणं सुन्दरं शूरं बालं नष्टं समुज्ज्वलम् ॥११॥
पलायनविशून्यं तु सन्मुखे रणवर्तिनम्। स्वेच्छामृतं द्विवर्षं च बद्धस्त्रीगोद्विजं तथा ॥१२॥
अन्नाभावमृतं क्लिष्टं सप्तार्धवर्षकं तथा। एवं चाष्टविधं त्यक्त्वा पूर्वोक्तान्यतमं शवम् ॥१३॥
गृहीत्वा मूलमन्त्रेण पूजास्थानं समानयेत्। चाण्डालं चाभिभूतं तु शीघ्रसिद्धिफलप्रदम् ॥१४॥
प्रणवाद्यस्त्रमन्त्रेण शवस्य प्रोक्षणं चरेत्। प्रणवं कूर्चबीजं च मृतकाय नमोऽस्तु फट् ॥१५॥
पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा प्रणमेत् स्पर्शपूर्वकम्। रे वीर परमानन्द शिवानन्द कुलेश्वर ॥१६॥
आनन्दभैरवाकार देवीपर्यङ्कशङ्कर। वीरोऽहं त्वां प्रपद्यामि उत्तिष्ठ चण्डिकार्चने ॥१७॥
प्रणम्यानेन मन्त्रेण क्षालयेत्तदन्तरम्। तारं शक्तिर्मृतकाय नमोऽन्ते मन्त्रमुच्चरेत् ॥१८॥
शवस्नपनमन्त्रोऽयं सर्वतन्त्रेषु देशितः। धूपेन धूपितं कृत्वा गन्धादिनाभिषिच्य(लिप्य) च ॥१९॥
रक्ताक्षो यदि देवेशि भक्षयेत् कुलसाधनम्। गत्वा शवस्य सान्निध्यं धारयेत् कटिदेशतः ॥२०॥
यद्युपद्रावयेदस्य दद्यान्निष्टीवनं शवे। पुनः प्रक्षालितं कृत्वा जपस्थानं समानयेत् ॥२१॥
कुशशय्यां परिष्कृत्य तत्र संस्थापयेच्छवम्। एलालवङ्गकर्पूरजातीखदिरसारकैः ॥२२॥
ताम्बूलं तन्मुखे दत्त्वा शवं कुर्यादधोमुखम्। स्थापयित्वा तस्य पृष्ठं चन्दनेन विलेपयेत् ॥२३॥
बाहुमूलादिकट्यन्तं चतुरस्रं विभाव्य च। मध्ये पद्मं चतुर्द्वारं दलाष्टकसमन्वितम् ॥२४॥
ततश्चैणेयमजिनं कम्बलान्तरितं न्यसेत्। द्वादशाङ्गुलमानानि यज्ञकाष्ठानि दिक्षु च ॥२५॥
संस्थाप्य पूजयेत्तत्र इन्द्रादिदश देवताः। विषमिन्द्राय संलिख्य सुराधिपतये ततः॥२६॥
इदं बलिं गृह्णद्वन्द्वं गृह्णापययुगं ततः। विघ्ननिवारणं कृत्वा सिद्धिं प्रयच्छ ठद्वयम् ॥२७॥
अनेन मनुना पूर्वे बलिं दद्यात्तु सामिषम्। स्वस्वनामादिकं दत्त्वा पूर्ववद्बलिमाहरेत् ॥२८॥
सर्वेषां लोकपालानां ततः साधकसत्तमः। शवाधिष्ठातृदेवेभ्यो बलिं दद्यात् सुरेश्वरि ॥२९॥

शवसाधन—नीलतन्त्र में कहा है कि पूर्वोक्त उपहारादि को लेकर साधक-साधना स्थल का आश्रय ग्रहण कर सिद्धि की साधना करे। गुरुध्यानादि पूर्वोक्त सभी का मानसिक अनुष्ठान करे। वीरार्चन करने पर पृथ्वी पर माया-मोह नहीं रहते। 'ये चात्र' इत्यादि मन्त्र से पुष्पाञ्जलि प्रदान करे। श्मशानाधिपतियों को पूर्ववत् बलि प्रदान करे। अघोर मन्त्र से शिखाबन्धन करे। सुदर्शन मन्त्र से अथवा अघोर मन्त्र से आत्मरक्षा करे। अघोरास्त्र मन्त्र है—'ॐ ह्रीं स्फुर स्फुर प्रस्फुर प्रस्फुर घोर-घोरतर तनुरूप चट चट प्रचट प्रचट कह कह वम वम बन्ध बन्ध घातय घातय हुं फट्' एवं सुदर्शन मन्त्र है—'ॐ सहस्रार हूं फट्'। तदनन्तर भूतशुद्धि करके षोढ़ा न्यास करे। जयदुर्गा मन्त्र से सभी दिशाओं में सरसों बिखेरे। 'तिलोऽसि' मन्त्र से दिशाओं में तिल बिखेरे। लाठी से मृत, शूल से मृत, तलवार से मृत, जल में डूबने से मृत, रस्सी से बद्ध होकर मृत, सर्पदंश से मृत अथवा चाण्डाल से मृत, तरुण सुन्दर वीर बालक के शव, युद्ध में पीठ न दिखाने वाले के शव में से किसी एक को ग्रहण करे। स्वेच्छामृत,

द्विवर्ष, वृद्ध स्त्री गो द्विज अन्नाभाव में मृत क्लिष्ट, साढ़े सात वर्ष का मृत—इन आठ शवों को छोड़कर पूर्वोक्त अन्य शवों में एक को ग्रहण कर उसे पूजास्थान में लाये। चाण्डाल से अभिभूत शव शीघ्र सिद्धि देने वाला होता है। ॐ हूँ से शव का प्रोक्षण करे। 'ॐ हूं मृतकाय नमोस्तु फट्' से तीन पुष्पाञ्जलि देकर स्पर्शपूर्वक उसे प्रणाम करे और कहे—रे वीर परमानन्द शिवानन्द कुलेश्वर। आनन्दभैरवाकार देवीपर्यंकशंकर। वीरोऽहं त्वां प्रपद्यामि उत्तिष्ठ चण्डिकार्चने। इन मन्त्र से प्रणाम के बाद ॐ ह्रीं मृतकाय नमः मन्त्र कहकर उसको स्नान कराये। शव के स्नान का मन्त्र सभी तन्त्रों में यही कहा गया है तदनन्तर उसे धूप से धूपित करे, गन्धादि का लेप लगाये। यदि शव की आँखें लाल हों तो कुलसाधन का भक्षण करके शव के निकट जाकर उसके कमर को पकड़े। इसमें वह शव यदि उपद्रव करे तो उसपर थूक दे। फिर धोकर उसे जपस्थान में ले आये। कुशशय्या बिछाकर उस पर शव को स्थापित करे। एला लवङ्ग कपूर जाती कत्था ताम्बूल उसके मुख में डालकर उसे अधोमुख स्थापित करके उसकी पीठ पर चन्दन का लेप लगाये। बाहुमूल से कमर तक चतुरस्र कल्पित करके बीच में चार द्वारों से युक्त चतुरस्र में अष्टदल कमल बनाये। उस पर कम्बलान्तरित मृगचर्म बिछाये। सभी दिशाओं में बारह अंगुल मान के यज्ञकाष्ठ के कीलों को गाड़े। उनमें इन्द्रादि दश देवताओं का पूजन करे। तदनन्तर 'लं इन्द्राय सुराधिपतये इदं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्ननिवारणं कृत्वा सिद्धिं प्रयच्छ स्वाहा'—इस मन्त्र से पूर्व दिशा में इन्द्र को सामिष बलि प्रदान करे। शेष नव दिक्पालों को मन्त्र में उनके नाम जोड़कर बलि प्रदान करे। तब सभी लोकपालों को 'शवाधिष्ठातृदेवेभ्यो नमः' से बलि प्रदान करे।

सुरया सह चतुःषष्टियोगिनीभ्यो बलिं दिशेत्। पूजाद्रव्यं सन्निधौ च दूरे चोत्तरसाधकम् ॥३०॥
संस्थाप्यासनमभ्यर्च्य स्वमन्त्रान्ते त्रपां ततः। फडित्यनेन मन्त्रेण तत्राश्वारोहणं विशेत् ॥३१॥
कुशान् पादतले दत्त्वा शवकेशान् प्रसार्य च। दृढं निबद्ध्य जुटिकां कृतसंकल्पसाधकः ॥३२॥
शवोपरि समारुह्य प्राणायामं विधाय च। वीरार्चनेन संमन्त्र्य दिक्षु लोष्टानि निक्षिपेत् ॥३३॥
ततो देवीं च संपूज्य उपचारैः सुविस्तरैः। शवास्ये विधिवद्देवि देवताप्यायनं चरेत् ॥३४॥
उत्थाय सन्मुखे स्थित्वा जपेद्भक्तिपरायणः। वशे मे भव देवेश ममामुकपदं ततः ॥३५॥
सिद्धिं देहि महाभाग कृताश्रमपदाम्बर। मूलं समुच्चरन् मन्त्री शवपादद्वयं पुनः ॥३६॥
पट्टसूत्रेण बध्नीयात् तदोत्थातुं न शक्नुयात्। भीमभीम महाभाव भव्यलोचन भावुक ॥३७॥
त्राहि मां देवदेवेश शवानामधिपाधिप। इति पादतले तस्य त्रिकोणं चक्रमुल्लिखेत् ॥३८॥
तदोत्थातुं न शक्नोति शवोऽपि निश्चलो भवेत्। उपविश्य पुनस्तस्य बाहू विस्तार्य पार्श्वयोः ॥३९॥
हस्तयोः कुशमास्तीर्य पादौ तत्र निधापयेत्। ओष्ठौ तु संपुटौ कृत्वा स्थिरचित्तः स्थिरेन्द्रियः ॥४०॥
सदा देवीं हृदि ध्यात्वा मौनी जपमथाचरेत्। श्मशाने प्रोक्तसंख्याभिर्जपं कुर्यात्कुलेश्वरि ॥४१॥
अथवारम्भकालाक्षु यावदुदयते रविः। यद्यर्धरात्रपर्यन्तं जप्ते किञ्चिन्न लक्ष्यते ॥४२॥
तदा पूर्ववदर्घ्यादि सप्तपादगतानि च। कृत्वोपविश्य तत्रैव जपं कुर्यादनन्यधीः ॥४३॥
चलाचलाद्भयं नास्ति भये जाते वदेत्पुनः। यत्प्रार्थयसि देवेश नरं वा कुञ्जरादिकम् ॥४४॥
दिनान्तरे तु दास्यामि स्वं नाम कथयस्व मे। इत्युक्ते संस्कृतेनैव निर्भयस्तु पुनर्जपेत् ॥४५॥
पुनश्चेन्मधुरं वक्ति वक्तव्यं मधुरं ततः। तदा सत्यवशं कार्यं वरं च प्रार्थयेत्ततः ॥४६॥
यदि सत्यं न कुर्याच्च वरं वा प्रयच्छेन्न च। तदा पुनर्जपेद्धीमान् एकाग्रमानसं स्मरन् ॥४७॥
नररूपं विना तत्र देवोऽपि नोपसर्पति। यत्नान्तरेण बोद्धव्यं नरो वा देवयोनयः ॥४८॥
माता वा तत्सुता वापि मातुलानी तथैव च। आगत्य विघ्नं चरते मायया रम्यविग्रहा ॥४९॥
उत्तिष्ठ वत्स ते कार्यं सर्वं जातं न संशयः। प्रभातसमयो जातस्त्वत्पिता क्रोशते गृहे ॥५०॥
प्रायशो मत्सरा लोका राजानो दण्डधारिणः। कदाचित्केनचिच्छास्ति तदा किं ते करिष्यति ॥५१॥
इत्यादिविविधैर्वाक्यैर्न च जापं परित्यजेत्। मृतपितृगणास्तत्र परदेशनिवासिनः ॥५२॥

प्रयान्ति बान्धवास्तत्र देवरूपधरास्ततः। स्त्रीपुत्रसेवकाश्चैव गृहीत्वानीयते परैः ॥५३॥
रुदन्ति पुत्रकाः सर्वे भ्रातरोऽनुजशिष्यकाः। निजकान्ताङ्गसंस्पर्शवस्त्रमाभरणादिकम् ॥५४॥
गृहीत्वानीयते यत्तु पालकैस्तद्द्वयं त्यजेत्। यदि न क्षुभ्यते तत्र कदा किं वा न लभ्यते ॥५५॥
स्त्रीरूपधारिणी देवी द्विजरूपधरः पुमान्। ऊरूं(हुंहुं)गृह्णेति शब्दं वै त्रिवागन्ते वरं लभेत् ॥५६॥
साधुनासाधुना वापि योषित्त्वे वरदायिनी। तदा वीरपतेस्तस्य किं भूतेन न सिध्यति ॥५७॥
निष्पापपुरुषे चैव कुले चैव सुसंस्कृता। असंकृततरा देवि पापयुक्ते न संशयः ॥५८॥

चौंसठ योगिनियों को सुरा के साथ बलि प्रदान करे। पूजा द्रव्य के निकट और उत्तरसाधक से दूर आसन बिछाकर उसकी पूजा करे अपने मन्त्र के अन्त में ह्रीं फट् लगाकर शव पर चढ़कर बैठे। उसके पैर के नीचे कुश देकर उसके केश को बिखरा दे। तब दृढ़ चोटी बनाकर सङ्कल्प करके शव पर बैठकर प्राणायाम करे। वीरार्चन मन्त्र से ढेलों को मन्त्रित करके दिशाओं में फेंके। तब देवी का पूजन विस्तारपूर्वक उपचारों से करे। शव के मुख में विधिवत् देवता का आप्यायन करे। उठकर सन्मुख बैठकर भक्तिसहित जप करके प्रार्थना करे—'वशे मे भव देवेश अमुकं सिद्धिं देहि महाभाग कृताश्रमपदामर'। तदनन्तर मूल मन्त्र का उच्चारण करके साधक शव के दोनों पैरों को रेशमी डोरी से इस प्रकार बाँधे, जिससे कि वह उठ न सके और तब प्रार्थना करे—

भीम भीम महाभाव भव्यलोचन भावुक। त्राहि मां देवदेवेश शवानामधिपाधिप॥

इसके बाद शव के पादतलवों में त्रिकोण चक्र बनाये। इससे शव उठने में समर्थ नहीं होने के कारण शव निश्चल हो जाता है। फिर उस पर बैठकर उसके हाथों को दोनों ओर फैला दे। फैले हुये उसके हाथों में कुश देकर उस पर अपने पैरों को रखे। ओठों को सम्पुटित करके स्थिर चित्त से इन्द्रियनिग्रह करके देवी का ध्यान हृदय में करके मौन होकर जप करे। श्मशान में निर्धारित संख्या में जप करे अथवा सूर्योदय काल तक जप करे। मध्य रात्रि में जप के समय यदि कुछ भी दिखायी न पड़े तब वहाँ से सात पग चलकर पूर्ववत् अर्घ्य प्रदान करके फिर वहीं बैठकर अनन्य बुद्धि से जप करे। चलाचल से भय नहीं होता है। भय होने पर इस प्रकार कहे—यत्प्रार्थयसि देवेश नरं वा कुञ्जरादिकम्। दिनान्तरे तु दास्यामि स्वं नाम कथयस्व मे। यह कहकर निर्भय होकर जप करे। फिर जब मधुर आवाज सुनायी पड़े तब प्रतिज्ञा कराकर कार्य के लिये उससे वर माँगे। यदि वह शपथ (प्रतिज्ञा) न करे और वर न दे तब पुनः एकाग्र मन से जप करे। मनुष्य रूप धारण के बिना वहाँ देवता भी नहीं चल सकते। इसलिये प्रयत्न करके यह जाना जाता है कि समुपस्थित आकृति नर है या देवयोनि, माता है या बेटी अथवा ममानी। उठो, तुम्हारा कार्य हो गया। प्रभात समय हो गया, तुम्हारे पिता घर में तुम्हें खोज रहे हैं। संसार में प्रायः लोग, दण्डधारी अथवा राजा ईर्ष्यालु होते हैं। कोई यदि तुम्हारा अपकार करे तो तुम क्या करोगे। इस प्रकार विविध वाक्यों के सुनने पर भी साधक जप का त्याग न करे। माता-पिता या परदेशी बान्धवों के रूप धर कर देवता आते हैं। दूसरों द्वारा स्त्री पुत्र सेवक को पकड़कर लाया जाता है। वे पुत्र, भाई, अनुज, शिष्य, पत्नी को पकड़कर लाते हैं, वे रोते हैं। फिर भी अपने इष्ट को पालक मानकर साधक यदि क्षुब्ध नहीं होता तब वह क्या नहीं पा सकता? तदनन्तर स्त्री रूपधारिणी देवी और द्विजरूपधर देवता आकर अरूं हुं हुं गृह्णगृह्ण गृह्ण कहते हैं, तब वर मिलता है। साधु या असाधु होने पर भी स्त्री उसे वर देती है। तब वीरपति को क्या सिद्ध नहीं होता। निष्पाप पुरुष एवं संस्कृत कुलोत्पन्न भी असंस्कृत होने पर पापयुक्त होता है; इसमें कोई सनेह नहीं करना चाहिये। सभी माया से विविध रूप धारण करके विघ्न करने आते है। तब आवाज आती है कि

सन्मुखेऽसन्मुखे वापि संस्कृतं वक्ति चापरम्। सैव देवी न संदेहः स देवो भैरवः स्वयम् ॥५९॥
न चेदेवं भवेच्चैव मायाकुटिलविग्रहा। न वरं वरयेत्तत्र न किञ्चिच्च वदेत्ततः ॥६०॥
संस्कृतं च समाख्याति वक्ति वक्तव्यमीदृशः। न चेत्स्वयं लौकिकोक्त्या वरं ग्राह्यं निराकुलम् ॥६१॥
अथवा उत्कटं किञ्चिल्लभ्येताप्यात्मनो हितम्। शब्दो वा जायते सम्यक् मृ(ऋ)तं वापि न लभ्यते ॥६२॥

सर्वं विचार्य ज्ञातव्यमेवं विघ्नाः प्रकीर्तिताः। देवताकृतयो देवि भैरवाकृतबुद्धयः ॥६३॥
अवश्यं तत्र भेतव्यं न तत्र प्रत्ययः क्वचित्। भैरवो वटुकाद्याश्च कुलशास्त्रपरायणाः ॥६४॥
एतच्छास्त्रप्रसङ्गेन कृत्वा कुटिलविग्रहा। पुत्रो भूत्वा हरेद्विद्यां नारी भूत्वा विमोहयेत् ॥६५॥
तस्मात्तत्त्वपरो वीरो विचारे यत्नमाचरेत्। सत्ये कृते वरं लब्ध्वा संत्यजेच्च जपादिकम् ॥६६॥
फलं जातमिति ज्ञात्वा जूटिकां मोचयेत्ततः। शवं प्रक्षाल्य संस्थाप्य मोचयेत्पादबन्धनम् ॥६७॥
पदचक्रं मार्जयित्वा पूजाद्रव्यं जले क्षिपेत्। शवं जले वा गर्ते वा निक्षिप्य स्नानमाचरेत् ॥६८॥
ततस्तु स्वगृहं गत्वा बलिं दत्त्वा दिनान्तरे। अग्रिमे दिवसे रात्रौ येषां देवानां यजमानोऽहम् ॥६९॥
ते गृह्णन्तु मया दत्तं बलिमन्त्रोऽयमीरितः। अथ यैर्याचितश्चाश्वनरकुञ्जरशूकरान् ॥७०॥
दत्त्वा पिष्टमयांस्तेन कर्तव्यं समुपोषणम्। यवक्षोदमयं वापि शालिक्षोदमयं च वा ॥७१॥
चन्द्रहासेन विधिवत्तन्मन्त्रेण च घातयेत्। परेऽह्नि नित्यमाचर्य पञ्चगव्यं पिबेत्ततः ॥७२॥
ब्राह्मणान् भोजयेत्तत्र पञ्चविंशतिसंख्यया। पञ्चपञ्चविहीनान् वा क्रमाच्चैव दशावधि ॥७३॥
ततः स्नात्वा च भुक्त्वा च निवसेदुत्तमे स्थले। यदि न स्याद्द्विप्रभोज्यं तदा निर्धनतां व्रजेत् ॥७४॥
तेन चेन्निर्धनत्वं स्यात्तदा देवः प्रकुप्यति। त्रिरात्रं वाथ षड्रात्रं गोपयेत्कुलसाधनम् ॥७५॥
शय्यायां यदि गच्छेद्वै तदा व्याधिं विनिर्दिशेत्। गीतं श्रुत्वा च बधिरो निश्चक्षुर्नृत्यदर्शनात् ॥७६॥
यदि वक्ति दिने वाक्यं तदा स मूकतां व्रजेत्। पश्चदशदिनान्ता हि देहे देवस्य संस्थितिः ॥७७॥
गोब्राह्मणदेवतानां निन्दां कुर्यान्न च क्वचित्। देवग्रोब्राह्मणादींश्च प्रत्यहं संस्पृशेच्छुचिः ॥७८॥
प्रातर्नित्यक्रियान्ते तु पञ्चगव्योदकं पिबेत्। ततः स्नायात्तु तीर्थादौ प्राप्ते षोडशवासरे ॥७९॥
स्वाहान्तं मूलमुच्चार्य तर्पयामि नमःपदम्। एवं शतत्रयादूर्ध्वं देवतां तर्पयेज्जलैः ॥८०॥
स्नानतर्पणशून्यस्य न स्याद्देवस्य तर्पणम्। इत्यनेन विधानेन सिद्धिं प्राप्नोति निश्चितम् ॥८१॥
भुक्त्वेहैव वरान् भोगानन्ते याति हरेः पदम्। असाङ्गं साङ्गमेवापि निष्फलं सफलं च वा ॥८२॥
कृत्वा साधनमेवैतच्छक्तेः प्रियतरो भवेत्। शवाभावे श्मशाने वा कार्या वीरस्य साधना ॥८३॥
ये भावा यस्य वै प्रोक्तास्तैर्भावैर्यदि नार्चयेत्। दशाहक्रमयोगेन भ्रष्टो भवति साधकः ॥८४॥
नोपदिशेद्वीरभावं न पूजां तत्र संदिशेत्। कुलान्मन्त्रं गृहीत्वा तु यावत्सिद्धिः प्रजायते ॥८५॥ इति।

प्रकट या अप्रकट रूप से जो संस्कृत बोलती है, वही देवी है एवं वही स्वयं भैरव है—इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये। ऐसा न होने पर वह कुटिल माया विग्रह होता है। न वह वर देने को कहता है और न ही कुछ बोलता है। जो संस्कृत होते हैं, वे ही इस प्रकार बोलते हैं। नहीं तो लोकप्रथानुसार निराकुल होकर स्वयं ही वर ग्रहण करे। कुछ उत्कट अपना हितकारी शब्द नहीं सुनाते। वे मरने पर भी कुछ लाभ नहीं करते। सभी विचार से ज्ञातव्य ये विघ्न होते हैं। देवता और भैरव की आकृति बुद्धि से जाननी चाहिये। वहाँ अवश्य ही विवेक का प्रयोग करना चाहिये, किसी पर विश्वास नहीं करना चाहिये। भैरव-वटुक आदि भी कुलशास्त्रों के ज्ञाता होते हैं और इस शास्त्र के प्रसंग से ही वे कुटिल विग्रह वाले होते हैं। पुत्र होकर वे विद्या छीनते हैं एवं स्त्री होकर मोहित करते हैं। इसलिये तत्त्वज्ञानी वीर को यत्नपूर्वक विचार कर आचरण करना चाहिये। पर वर प्राप्त करके जपादि का भी त्याग कर देना चाहिये। फलप्राप्ति ज्ञात होने पर जूटिका को खोलकर शव को धोकर उसके पैर का बन्धन खोल दे। उसके पैर के तलवों में अङ्कित चक्र को मिटा दे। पूजा द्रव्य को जल में डाल दे। शव को जल में या गड्ढे में डालकर स्नान करे। तब अपने घर जाकर दूसरे दिन बलि प्रदान करे। अग्रिमे दिवसे रात्रौ येषां देवानां यजमानोऽहं। ते गृह्णन्तु मया दत्तं बलिम्—यह बलि मन्त्र है। याचित अश्व, नर, कुञ्जर, शूकर के रूप में आटे से बने जीवों की बलि प्रदान करे। तब समुपोषण करे। यव के आटे या चावल के आटे से जीवों को बनाकर चन्द्रहास से विधिवत् उनपर घात करे। दूसरे दिन नित्य कृत्य के बाद पञ्चगव्य का पान करे। तब पच्चीस ब्राह्मणों को पाँच-पाँच या दश-दश के क्रम से भोजन कराये। तब स्नान करके स्वयं

भोजन करे एवं उत्तम स्थान में निवास करे। विप्र भोजन न कराने से निर्धनता होती है। इस निर्धनता से देवता कुपित होते हैं। कुलसाधन को तीन रात या छः रात तक गुप्त रखे। उस समय शय्या पर जाने से व्याधि होती है, गीत सुनने पर बहरा होता है एवं नृत्य देखने से अन्धा होता है तथा दिन में यदि वह बोलता है तब गूँगा होता है। पन्द्रह दिनों तक उसके देह में देवता का वास रहता है। गाय, देवता एवं ब्राह्मण की निन्दा कभी न करे। देव-गाय-ब्राह्मण का पवित्र होकर नित्य स्पर्श करे। प्रात:कालीन कृत्य करके नित्य पञ्चगव्योदक पिये। सोलहवें दिन तीर्थ आदि में स्नान करे। मूलमन्त्र के साथ तर्पयामि नमः स्वाहा कहकर तीन सौ से अधिक जल से देवता का तर्पण करे। स्नान एवं तर्पण से रहित होने पर देवता का तर्पण नहीं होता। इस प्रकार इन विधानों के अनुष्ठान से निश्चित ही सिद्धि मिलती है। साधक इस जन्म में ही वर को भोगकर अन्त में शिवलोक में जाता है। असांग या साङ्ग, निष्फल या सफल इस शव साधन को करके साधक शक्ति का सर्वाधिक प्रिय हो जाता है। शव के अभाव में श्मशान में वीरसाधना करनी चाहिये। जिसका जो भाव है, उस भाव से अर्चन न करने पर दश दिनों में साधक क्रमशः भ्रष्ट हो जाता है। वीरभाव एवं उसकी पूजा का उपदेश कभी नहीं करना चाहिये। कुलमन्त्र को ग्रहण करके जब तक सिद्धि न मिले तबतक जप करते रहना चाहिये।

तन्त्रान्तरे—

सर्वेषां जीवहीनानां जन्तूनां वीरसाधने। ब्राह्मणं गोमयं कृत्वा साधयेद्वीरसाधनम्॥१॥
मृतासनं विना यस्तु पूजयेत्पार्वतीं शिवाम्। तावत्कालं वसेद्घोरे यावदाभूतसंप्लवम्॥२॥
महाशवाः प्रशस्ताः स्युर्देवतावीरसाधने। क्षुद्राः प्रयोगकर्तॄणां प्रशस्ताः सर्वसिद्धिदाः॥३॥
एवं नीलक्रमो देवि कथितश्च तवानघे। न कस्यचित्प्रवक्तव्यं मया प्रीत्या तवोदितम्॥४॥ इति।

तन्त्रान्तर में कहा गया है कि वीरसाधन में सभी जीवहीन जन्तुओं के शरीर का उपयोग किया जाता है। ब्राह्मण गोबर से भूमि को लीप कर वीरसाधन करे। मृतासन के विना जो पार्वती शिवा का पूजन करता है वह प्रलयकाल तक घोर नरक में वास करता है। देवता-वीरसाधन में महाशव प्रशस्त होते हैं। क्षुद्र शव प्रयोगकर्ताओं के लिये सभी प्रकार की सिद्धि देने वाले होते हैं।

शवसाधनप्रयोगः

प्रयोगस्तु—तत्र पूर्वोक्तपर्व संलक्ष्य यथोक्तसमये पूर्वोक्तलक्षणस्तथा सामग्रीं समादायोत्तरसाधकसहितो विहितस्थानमासाद्य सामान्यार्घ्यं विधाय स्थानशोधनं कृत्वा गुरुगणेशादीन् नमस्कृत्य वीरार्चनमन्त्रं भूमौ लिखेत्। 'ये चात्रे'त्यादिना पुष्पाञ्जलित्रयादि विधाय पूर्वोक्तसप्तबलिपात्राणि श्मशानाधिपतिभ्यो निवेद्य 'ॐ ह्रींस्फुरस्फुर घोर घोरतर तनुरूप चटचट प्रचटप्रचट कहकह वमवम बन्धबन्ध घातयघातय हुंफट्' इत्यघोरास्त्रेण शिखां बद्ध्वा 'ॐ सहस्त्रार हुंफट्' इति सुदर्शनास्त्रेणात्मरक्षां कृत्वा स्वस्वकल्पोक्तभूतशुद्ध्यादिन्यासजालं विधाय जयदुर्गामन्त्रेण सर्षपान्, 'तिलोऽसी'ति तिलान् विकिरेत्। विहितशवनिकटे गत्वा मूलेन वीक्ष्य अस्त्रमन्त्रेण शवं संप्रोक्ष्य 'ॐहूंमृतकाय नमोऽस्तुफट्' इति पुष्पाञ्जलित्रयं शवोपरि निक्षिपेत्। 'ॐ हूं रे वीर परमानन्द शिवानन्द कुलेश्वर। आनन्दभैरवाकार देवीपर्यङ्कशङ्कर। वीरोऽहं त्वां प्रपद्यामि उत्तिष्ठ चण्डिकार्चने' इति स्पर्शपूर्वकं प्रणम्य 'ॐह्रींमृतकाय नमः' इति पञ्चब्रह्ममन्त्रैश्च पञ्चगव्येन सुगन्धिजलेन च संस्नाप्य, धूपेन धूपितं कृत्वा गन्धादिना विलिप्य, कटिदेशे धृत्वा मूलमन्त्रं जपन् जपस्थानमानयेत्। आनीय वा संस्कारमाचरेत्। भूमौ कुशशय्यामास्तीर्य तदुपरि संस्थाप्य एला-लवङ्गकर्पूरजातीखदिरसहितं ताम्बूलं तन्मुखे दत्त्वा शवमधोमुखं कुर्यात्। तत्पृष्ठे चन्दनेन बाहुमूलादिकट्यन्तं चतु-रस्त्राकारतया विलिप्य, तन्मध्ये चतुर्द्वारात्मकभूपुरसहितमष्टदलं विलिख्य, तत्र कम्बलाद्यासनमास्तीर्य द्वादशाङ्गुल-प्रमाणान् यज्ञकाष्ठोद्भवान् दश कीलान् दश दिक्षु निखाय तेष्विन्द्रादिदशदिक्पालान् संपूज्य पूर्वोक्तमन्त्रैः सामिषान्नबलिं दद्यात्। 'ॐहूंशवाधिष्ठातृदेवताभ्यो नमः, ॐडांडाकिनीभ्यो नमः, ॐह्रीचतुःषष्टिकोटियोगिनीभ्यो नमः' इति

बलित्रयं कियद् दूरे दद्यात्। पूजोपहारसामग्रीं समीपे उत्तरसाधकं दूरे स्थापयित्वा, मूलमन्त्रान्ते 'ह्रींफट् शवासनाय नमः' इत्यासनमभ्यर्च्य, मूलमन्त्रं स्मरन्नश्वारोहक्रमेण शवोपरि पूर्वमुखमुपविश्य, स्वपादतले कुशान् दत्त्वा शवकेशान् प्रसार्य दृढजूटिकां बद्ध्वा, स्ववामे अर्घ्यादिकं संस्कृत कृतसंकल्पः प्राणानायम्य वीरार्चनमन्त्रेण दशदिक्षु लोष्टानि निक्षपेत्। पूर्वोक्तरक्षादीपं दक्षिणे संस्थाप्य, बद्धजूटिकायां निजदेवतायाश्चक्रं परिचिन्त्य, पीठपूजान्ते देवीमावाह्य सावरणां सर्वोपचारैः संपूज्य वटुकादिबलिविधिं च विधाय, उत्थाय संमुखे स्थित्वा 'वशे मे भव देवेश ममामुकसिद्धिं देहि महाभाग कृताश्रमपदाम्बर' इति भक्तियुक्तः पठेत्। मूलमन्त्रेण पट्टसूत्रेण शवपादद्वयं बध्नीयात्। 'ॐ भीमभीम महाभाव भव्यलोचन भावुक। त्राहि मां देव देवेश शवानामधिपाधिप' इति शवपादतले त्रिकोणचक्रं लिखेत्। पुनस्तथैव शवोपर्युपविश्य, पार्श्वद्वये शवबाहू विस्तार्य हस्तयोः कुशमास्तीर्य निजपादद्वयं तत्र निधापयेत्। पुनः प्राणायामादि विधाय निर्भयः सन् देवताध्यानपूर्वकं श्मशानोक्तसंख्यया मौनी स्थिरकायवाङ्मना रहस्यमालया जपेत्। आरम्भादुदयपर्यन्तं वा जपेत्। कुत्रचित् शवस्योत्तानता श्रूयते, तदा हृदयोपर्यासिनम्। शवास्ये देवतापूजा जपमध्येऽर्घ्यादिकं पूर्ववत्। अतिभयं चेद्भवति तदा छागादिबलिस्तु आदौ मध्ये समाप्तौ वा। एवमुक्तभयादिकं परिहृत्य सावधानतया जप्त्वा सत्यवचनेन वरं संप्रार्थ्य जपं त्यक्त्वा फलं जातमित्यवधार्य, देवतां विसर्जयित्वा शवजूटिकां मोचयित्वा शवं प्रक्षाल्य पादबन्धं विमुच्य पादचक्रं मार्जयित्वा, पूजाद्रव्याणि जले निक्षिप्य, जले गर्ते वा शवं निक्षिप्य स्नात्वा गृहं गच्छेत्। दिनान्तरे पूर्वसंकल्पितं बलिं पिष्टमयं रचयित्वा 'ॐ अग्रिमे दिवसे रात्रौ येषां देवानां यजमानोऽहम्। ते गृह्णन्तु मया दत्तं नरकुञ्जरशूकरम्' इति खड्गेन पिष्टपुत्तलीं घातयेत्। दिनान्तरे नित्यं कृत्वा पञ्चगव्यं पीत्वा पञ्चविंशतिं विंशतिं पञ्चदश दश वा यथाशक्ति ब्राह्मणान् भोजयेत्। स्वयमपि स्नात्वा भुक्त्वा उत्तमे स्थले निवसेत्। एवं कुलसाधनं त्रिरात्रं षड्रात्रं वा गोपयेत्। पञ्चदशदिवसपर्यन्तं पञ्चगव्यप्राशनं, दिवा मौनं, स्त्रीनृत्यगीतवादित्रबहिर्गमनादिवर्जनं, सत्यभाषणं संयतेन्द्रियता च गोब्राह्मणदेवताभक्तिर्विशेषात्। षोडशदिने तीर्थादौ स्नात्वा सार्धशतत्रयसंख्यया देवतां तर्पयेदिति शवसाधनम्। 'या या उग्रतरा देव्यस्तासामेवं विधिर्मतः' इति वचनादुग्रदेवताविषयमेतत्। अनयोर्दिव्यवीरक्रमयोः रहस्यमित्यपि नामान्तरम्।

पूर्वोक्त पर्व को जानकर यथोक्त समय में पूर्वोक्त लक्षण की सामग्री लेकर उत्तरसाधकों के सहित विहित स्थान में जाय। सामान्यार्घ्य स्थापित करके स्थानशोधन करे। गुरु-गणेशादि को प्रणाम करके वीरार्चन मन्त्र को भूमि पर लिखे। 'ये चात्र' इत्यादि मन्त्र से तीन पुष्पाञ्जलि देकर पूर्वोक्त सात बलिपात्रों को श्मशानाधिपतियों को निवेदित करे। 'ॐ ह्रीं स्फुर स्फुर प्रस्फुर प्रस्फुर घोर घोरतर तनु रूप चट चट प्रचट प्रचट कह कह वम वम बन्ध बन्ध घातय घातय हुं फट् इस अघोरास्त्र मन्त्र से शिखा बाँधे एवं 'ॐ सहस्रार हुं फट्'—इस सुदर्शनास्त्र मन्त्र से आत्मरक्षा करे। अपने अपने कल्पोक्त भूतशुद्ध्यादि न्यासो को करे। जयदुर्गा मन्त्र से सरसो एवं तिलोऽसि मन्त्र से तिल बिखेरे। विहित शव के निकट जाकर मूल मन्त्र से उसे देखे। अस्त्रमन्त्र से शव को पोंछे। 'ॐ हूं मृतकाय नमऽस्तु फट्' से तीन पुष्पाञ्जलि शव पर निक्षिप्त करे। 'ॐ हूं रे वीर परमानन्द शिवानन्द कुलेश्वर। आनन्दभैरवाकार देवीपर्यंकशङ्कर। वीरोऽहं त्वां प्रपद्यामि उत्तिष्ठ चण्डिकार्चने' कहते हुये उस शव को स्पर्श करके प्रणाम करे। 'ॐ ह्रीं मृतकाय नमः'— इस पञ्च ब्रह्ममन्त्र से पञ्चगव्य और सुगन्धित जल से उसे स्नान कराकर धूप देकर गन्धादि का लेप लगाये। मूल मन्त्र जपते हुए उसे कमर से पकड़कर जपस्थान में ले आये अथवा लाने का संस्कार करे। जमीन पर कुशशय्या बिछाकर उस पर शव को स्थापित करे। एला लवङ्ग कपूर जायफल कत्था के साथ पान उसके मुख में देकर उसे अधोमुख लिटा दे। उसकी पीठ पर बाहुमूल से कमर तक चतुरस्र आकार में लेप लगाये। उस पर चार द्वारों से युक्त भूपुर सहित अष्टदल कमल बनाकर उस पर कम्बल आदि की आसनी बिछाकर यज्ञकाष्ठ से निर्मित बारह अंगुल लम्बे दश कीलों को दशो दिशाओं में गाड़ दे। उनकीलों में इन्द्रादि दश दिक्पालों की पूजा करके पूर्वोक्त मन्त्रों से उन्हें भात-मांस की बलि प्रदान करे। ॐ हूं शवाधिष्ठातृदेवताभ्यो नमः, ॐ डां डाकिनीभ्यो नमः, ॐ ह्रीं चतुःषष्टिकोटियोगिनीभ्यो नमः— इन मन्त्रों के द्वारा शव से कुछ दूरी पर तीन बलि प्रदान करे। समीप में पूजोपहार सामग्री को एवं उत्तरसाधक को कुछ दूरी

पर स्थापित करे। मूल मन्त्र के साथ ह्रीं फट् शवासनाय नमः कहकर आसन का पूजन करे। मूल मन्त्र का स्मरण करते हुए घोड़े पर सवार होने की तरह शव पर पूर्वमुख बैठे। अपने पैरों के नीचे कुश रखकर शव के केश को बिखेरकर मजबूत चोटी बनाये। अपने बाँयें भाग में अर्घ्यादि स्थापित करके सङ्कल्प करे। प्राणायाम करके दशो दिशाओं में वीरार्चन मन्त्र से मिट्टी के ढेलों को फेंके। अपने दाँयें भाग में पूर्वोक्त रक्षा दीप स्थाापित करे। शव की चोटी में अपने देवता के चक्र का चिन्तन करे। पीठ पूजा करके देवी को आवाहित करके सावरण सर्वोपचारों से पूजा करे। वटुकादि को विधिवत् बलि प्रदान करे। उठकर शव के सामने स्थित होकर प्रार्थना करे—'वशे मे भव देवेश ममामुकसिद्धिं देहि महाभाग कृताश्रमपदाम्बरम्'। मूल मन्त्र के द्वारा रेशमी रस्सी से शव के दोनों पैरों को बाँधे।

ॐ भीम भीम महाभाव भव्यलोचन भावुक। त्राहि मां देवदेवेश शवानामधिपाधिप।।

इस प्रकार कहते हुये शव के पैरों के तलवों में त्रिकोण चक्र बनाये। फिर उसी प्रकार शव पर बैठकर शव के दोनों हाथों को बगल में सीधा करके उन हाथों पर कुश रखकर उसपर अपने पैरों को स्थापित करे पुनः प्राणायामादि करके निर्भय होकर देवता-ध्यानपूर्वक श्मशानोक्त संख्या में मौन होकर काय एवं वचन मन को स्थिर करके रहस्यमाला से जप करे। आरम्भ से सूर्योदय तक जप करे। शास्त्रों में कहीं-कहीं शव की उत्तानता कही गई है, तब उसके हृदय पर आसन लगाये। शव के मुख में देवता की पूजा करके जपमध्य में पूर्ववत् अर्घ्यादि प्रदान करे। अतिभय लगने पर छागादि की बलि जप के आदि-मध्य अथवा समाप्ति में दे। इस प्रकार करके भय आदि भूलकर सावधानी से जप करके शपथपूर्वक वर माँगे। जप समाप्त करके भावना करे कि फल मिल गया। तदनन्तर देवता को विसर्जित करे। शव की चोटी खोल कर प्रक्षालित करके उसके पैरों का बन्धन खोलकर तलवों के चक्रों को मिटा दे। पूजा द्रव्यों को जल में डाल दे। शव को जल में या गड्ढे में डालकर स्नान करके घर आये। दूसरे दिन पूर्व सङ्कल्पित बलि पिष्ट से बनाकर—

ॐ अग्रिमे दिवसे रात्रौ येषां देवानां यजमानोऽहम्। ते गृह्णातु मया दत्तं नरकुञ्जरशूकरम्।।

यह कहकर तलवार से पिष्टपुत्तली का शिर काट दे। दूसरे दिन नित्य कर्म करके पञ्चगव्य पीकर पच्चीस, बीस, पन्द्रह या दश ब्राह्मणों को यथाशक्ति भोजन कराये। स्वयं भी स्नान करके भोजन कर उत्तम स्थान में निवास करे। इस कुलसाधन को तीन रात या छः रात तक गुप्त रखे। पन्द्रह दिनों तक पञ्चगव्य का पान, दिन में मौन धारण, स्त्री-नृत्य-गीत-वादित्र न देखे न सुने। बाहर न जाये। सत्य भाषण एवं संयतेन्द्रिय होकर गो-ब्राह्मण-देवता में विशेष भक्ति रखे। सोलहवें दिन तीर्थादि में स्नान करे, साढ़े तीन सौ बार तर्पण देवता का करे। जो-जो अत्यधिक उग्र देवियाँ हैं, उनके लिये यही विधि है।

संक्षेपपुरश्चरणम्

अथ संक्षेपपुरश्चरणं तन्त्रान्तरे—

ग्रहणेऽर्कस्य चेन्दोर्वा शुचिः पूर्वमुपोषितः। नद्यां समुद्रगामिन्यां नाभिमात्रेऽम्भसि स्थितः ।।१।।
स्पर्शाद्विमुक्तिपर्यन्तं जपेन्मन्त्रमनन्यधीः। होमयेत्तद् दशांशेन तद्दशांशेन तर्पयेत् ।।२।।
अभिषिञ्चेद् दशांशेन दशांशं विप्रभोजनम्। इति।

उपोषितोऽभुक्तः। समुद्रगामिन्यां साक्षात् परम्परया वा। असंभवे तडागादौ जले स्थित्यसामर्थ्ये तीरे स्थितोऽपि। स्पर्शात् प्राणायामऋष्यादिकरषडङ्गन्यासविलम्बितस्पर्शात् अङ्गवैगुण्येऽपि ग्रहणपुरश्चरणं कर्तव्यमेवमेव महाफलत्वात्। तथा—

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते। अष्टम्यां च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि ।।१।।
सूर्योदयात्समारभ्य यावत्सूर्योदयान्तरम्। तावज्जप्त्वा निरातङ्कः सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।।२।। इति।

अत्र तिथिभेदेन पुरश्चरणभेदः। होमादिकं तु पूर्ववत्। निरातङ्कः शङ्कारहितः। तथा—

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते। शरत्काले चतुर्थ्यादिनवम्यन्तं विशेषतः ।।१।।

भक्तितः पूजयित्वा तु रात्रौ तावत्सहस्रकम्। एकाकी विजने जप्यात्केवलं वा शिवालये ॥२॥
अष्टम्यादिनवम्यन्तमुपवासपरो भवेत्। इति।

चतुर्थ्यादित्वमिति मतभेदेन। कृष्णपक्षनवम्यादि-प्रतिपदादि-षष्ठ्यादिपक्षा अपि कुत्रचिदुक्ताः। वस्तुतः प्रतिपदादिपक्षः सांप्रदायिकः। रात्राविव्युपलक्षणम्। तावत्सहस्रकं तिथिसहस्रकम्। सहस्रं प्रत्यहमित्येव वा। अल्पाक्षरमन्त्रेषु संख्यावृद्धिक्रमः, अन्यत्र सहस्रमेव। तदा तावदिति पादपूरणे। होमादिकं पूर्वोक्तमेव। पशुमतानुकल्पमेतत्। तथा—

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते। अन्यत्र गुरुमार्गस्य लङ्घनं नैव कारयेत् ॥१॥
अष्टमीसंधिवेलायामष्टोत्तर(रं)लतागृहम्। प्रविश्य मन्त्री विधिवत्ताः समभ्यर्च्य यत्नतः ॥२॥
पूर्वोक्तकल्पमासाद्य पूजादिकं समाचरेत्। केवलं कामदेवोऽसौ जपेदष्टोत्तरं शतम् ॥३॥
तासां तु पत्रमूले तु उग्रां सम्पूज्य कर्णके। मन्त्रसिद्धिर्भवेत्सद्यो लतादर्शनपूजनात् ॥४॥ इति।

सन्धिवेला च शारदीयैव, पूर्वक्रमादष्टोत्तरं शतमित्यर्थः। अष्टावेव वा उत्तरं तदा श्रेष्ठमित्यर्थः। लतागृहमिति लतासङ्केतः। प्रविश्य सङ्गतीभूय वेष्टितो वा। पूर्वोक्तकल्पं शक्तिपूजाकल्पं, पत्रमूले मुद्रामूले उग्रां देवीं, कर्णके पार्श्वत्रये विद्याभागत्रयं संलिख्येति शेषः। अष्टोत्तरशतजपस्तु प्रत्येकमवधेयः। कामदेवो दिव्यवेशधरः। तथा—

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते। आकृष्टायाः कुलागारे भावेन मन्त्रमुत्तमम् ॥१॥
कर्णाकृष्टिलतागात्रे लिखित्वा मन्त्रमेव च। विधाय तत्र संस्कारं कृत्वा तस्यै निवेद्य च ॥२॥
किंचिज्जप्त्वा मनुं नीत्वा देवताभावतत्परः। तां विसृज्य नमस्कृत्य स्वयं जप्त्वा सुखं पुनः ॥३॥
प्रातः स्त्रीभ्यो बलिं दत्त्वा मन्त्रसिद्धिर्न संशयः। इति।

आकृष्टाया उपभुक्तायाः। कुलागारे मुद्रायां संपूर्णविद्याभावना। कर्णत्रये लेखनं भागत्रयस्य। संस्कारं शक्तिसंस्कारम्। निवेद्य सन्तर्प्य, किञ्चिदष्टोत्तरशतं जपः स्पर्शपूर्वकः, स्वयं जप्त्वाष्टोत्तरसहस्रमित्यर्थः।

अथवा विजने रम्ये स्थित्वा शय्यासने रतः। उदयान्तं दिवा जप्त्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥१॥

शय्यासने शक्तिसहिते इति शेषः। दिव्यमतानुकल्पभेतत्। तथा—

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते। कुजे वा शनिवारे वा नरमुण्डं समाहृतम् ॥१॥
पञ्चगव्येन मिलितं चन्दनाद्यैर्विशेषतः। निक्षिप्य भूमौ हस्तार्धमानतः कानने वने ॥२॥
तत्र तद्विवरे रात्रौ सहस्रं यदि मानवः। एकाकी प्रजपेन्मन्त्रं स भवेत्कल्पपादयः ॥३॥ इति।

कुजे मङ्गले, नरमुण्डं सद्यः कृत्तं यथालाभं वा, शववन्मुण्डेऽपि विहितनिषिद्धता, हस्तार्धमानतो द्वादशाङ्गुलमानतः, कानने वनेऽतिगहने इत्यर्थः। तथा—

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते। शवमानीय तद्वारे तेनैव परिखन्य तम् ॥१॥
तद्दिनात्तद्दिनं यावत्तावदष्टोत्तरं शतम्। स भवेत्सर्वसिद्धीशो नात्र कार्या विचारणा ॥२॥ इति।

तद्वारे मङ्गलादिवारे। तेनैव मानेनेत्यर्थः। तद्दिनादारम्भदिनादष्टोत्तरशतं प्रतिदिनं जपेदिति शेषः।

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते। निशायां मृतहट्टे च उन्मत्तानन्दभैरवः ॥१॥
दिग्वासा विमली भस्मभूषणो मुक्तकेशकः। कपालखड्गहस्तश्च जपेन्मातृकाय यदि ॥२॥
तदा तस्य महादेवि सर्वसिद्धिः प्रजायते। इति।

निशायामर्धरात्रे, मृतहट्टे श्मशाने, उन्मत्तानन्दभैरवः, प्रौढोल्लाससहितः, दिग्वासा दिगम्बरः। मातृकाया मातृकामालया, जपेदष्टोत्तरशतमित्यर्थः। वीरमतानुकल्पमेतत्। तथा—

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते। गुरुमानीय संस्थाप्य देववत् पूजनं गुरोः ॥१॥

**वस्त्रालङ्कारहेमाद्यैः संतोष्य गुरुमेव च। तत्सुतं तत्सुतां चैव तस्य पत्नीं तथैव च ॥२॥
पूजयित्वा मनुं जप्त्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्। इति।**

मनुं जप्त्वा सहस्रमित्यर्थः। तथा—

**अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते। सहस्रारे गुरोः पादपद्मं ध्यात्वा प्रजप्य च ॥१॥
केवलं देवभावेन सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्। इति।**

प्रजप्य स्वमन्त्रोक्तसंख्ययेति शेषः। इदं तु गुरोरसांनिध्ये। सर्वमतानुकल्पमेतत्। एतेषु होमादिनियमाभावः।
इति संक्षेपपुरश्चरणानि।

नानातन्त्रविचारेण नानाभावानुमोदनात्। पुरश्चरणरूपेण संसिद्ध्यै यततां नरः ॥१॥

संक्षिप्त पुरश्चरण—तन्त्रान्तर में कहा गया है कि सूर्य चन्द्रग्रहण के एक दिन पहले पवित्र होकर उपवास करे। समुद्रगामिनी नदी में नाभि के बराबर जल में स्थित होकर स्पर्श से मोक्ष तक एकाग्रता से मन्त्र का जप करे। जप का दशांश हवन और हवन का दशांश तर्पण करे। तर्पण का दशांश मार्जन करे एवं मार्जन का दशांश ब्राह्मणभोजन कराये। समुद्रगामिनी नदी न होने पर तडाग के जल में खड़ा होकर जप करे। इसमें भी अशक्त होने पर तट पर बैठकर जप करे। इस प्रकार पुरश्चरण का अनुष्ठान करने से महान् फल की प्राप्ति होती है।

अन्य प्रकार का पुरश्चरण—अब अन्य प्रकार के पुरश्चरण को कहता हूँ। दोनों पक्षों की अष्टमी और चतुर्दशी में सूर्योदय से सूर्योदय तक निरन्तर शंकारहित होकर जप करने से साधक समस्त सिद्धियों का स्वामी होता है। यहाँ पर तिथिभेद से पुरश्चरण में भिन्नता कही गई है। जप के पश्चात् होम आदि कार्य पूर्ववत् करना चाहिये।

अन्य प्रकार का पुरश्चरण—शरत् काल में विशेष रूप से चतुर्थी से नवमी तक भक्तिपूर्वक पूजा करके रात में अकेले निर्जन में अथवा शिवालय में निश्चित तिथिसंख्या में जप करे एवं उक्त अवधि में उपवास करे। जप समाप्ति के पश्चात् होम से लेकर ब्राह्मणभोजन तक की विधि पूर्ववत् सम्पन्न करनी चाहिये। यह विधि पशुमत के अनुसार कही गई है।

पुरश्चरण का अन्य प्रकार—अथवा अन्य प्रकार के पुरश्चरण को कहता हूँ। कहीं भी गुरुमार्ग का लङ्घन न करे। शारदीय अष्टमी की सन्धिवेला में एक सौ आठ लताओं के कुञ्ज में प्रवेश करके साधक यत्नपूर्वक उनकी विधिवत् पूजा करे। यह पूजा के अनुसार शक्ति पूजाकल्प करे। केवल कामदेव के रूप में एक सौ आठ जप करे। प्रत्येक में पत्रमूल में उग्रा का पूजन एवं कर्णिका में विद्या के तीन भाग का लेखन—इस प्रकार लतादर्शन-पूजन से तुरन्त मन्त्रसिद्धि होती है।

अन्य प्रकार से पुरश्चरण—आकृष्टा के कुलागार में उत्तम मन्त्र की भावना करे। लतागार की कर्णिका में मन्त्र को लिखे। वहीं उसका संस्कार करके निवेदित करे। कुछ जप करके मन्त्र को देवता भाव में लाये। उसका विसर्जन करके सुखपूर्वक जप करे। प्रात:काल में स्त्री को बलि देने से मन्त्र सिद्ध होता है। इसमें संशय नहीं है।

पुरश्चरण का अन्य प्रकार—निर्जन अथवा रम्य स्थान में स्थित होकर शय्यासन पर शक्ति के साथ रत होकर दिन के उदय से अन्त तक जप करने से साधक सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त करता है। यह अनुकल्प दिव्यमत के अनुसार कहा गया है।

पुरश्चरण का अन्य प्रकार—अन्य प्रकार के पुरश्चरण को कहता हुँ। मंगलवार या शनिवार में एक नरमुण्ड लाकर पञ्चगव्य में चन्दनादि मिलाकर उसे उसमें डुबो दे। उसके बाद अत्यन्त घने वन में जमीन में वित्ता भर गड्ढा खोदकर उसमें उसे गाड़ कर मिट्टी भर दे। पुन: उसी पर बैठकर रात में अकेले यदि मनुष्य एक हजार जप करे तो वह कल्पवृक्ष के समान हो जाता है।

अन्य प्रकार का पुरश्चरण—अन्य प्रकार का पुरश्चरण बतलाता हूँ। मंगलवार को शव लाकर बारह अंगुल गड्ढा

खोदकर गाड़ दे। उस दिन से अगले उसी दिन तक प्रतिदिन मन्त्र का एक सौ आठ जप करे। ऐसा साधक सभी सिद्धियों का स्वामी हो जाता है; इसमें विचारणीय कुछ नहीं है।

अन्य प्रकार का पुरश्चरण—अत्यन्त उल्लास के साथ आधी रात में श्मशान में जाकर नग्न होकर, स्वच्छतापूर्वक, भस्म लगाकर, केश खोलकर, हाथों में कपाल एवं खड्ग लेकर मातृकामाला से यदि एक सौ आठ जप करे तब उसे सभी सिद्धियाँ मिलती हैं। यह वीरमत का अनुकल्प है।

अन्य प्रकार का पुरश्चरण—गुरु को लाकर आसन पर बैठाकर देवता के समान उनका पूजन करके वस्त्र, आभूषण, सोना आदि देकर गुरुदेव को सन्तुष्ट करे। गुरु के न रहने पर उनके पुत्र या पुत्री या उनकी पत्नी की उसी प्रकार पूजा करके मन्त्र का एक हजार जप करने से साधक सर्वसिद्धीश्वर हो जाता है।

अन्य प्रकार पुरश्चरण—अन्य प्रकार के पुरश्चरण को कहता हूँ। गुरु की अनुपस्थिति में सहस्रार में गुरु के चरणकमलों का ध्यान करते हुए केवल देवमान से जप करने से साधक सभी सिद्धियों का स्वामी हो जाता है। इन सभी में होमादि करने का विधान नहीं है। इस प्रकार अनेक तन्त्रों के विचार से अनेक भावों के अनुमोदन से पुरश्चरण करके सिद्धि प्राप्त करने के लिये मनुष्य को प्रयत्नशील रहना चाहिये।

प्रयोगविशेषाः

अथ प्रयोगविशेषाः वैष्णवतन्त्रे—

एवं नित्यक्रमं कृत्वा नैमित्तिकमथाचरेत्। कृते नैमित्तिके विप्र नित्यस्य पूर्णता भवेत् ॥१॥
लक्षकृत्वो जपेन्मन्त्रमणिमादिगुणाँल्लभेत्। समुद्रगोदकाहरो जपेल्लक्षं समाहितः ॥२॥
जन्मस्थे भास्करे पद्मैर्होमाद्दशसहस्रकम्। कोटिजन्मोद्भवं पापं नाशमायाति निश्चितम् ॥३॥
नाशयेत् सर्वपापानि वाक्सिद्धिं चापि विन्दति। पर्वताग्रे यजेद्देवं शाकमूलफलाशनः ॥४॥
पुण्डरीकवरैर्देवं मासमेकं समर्चयेत्। धर्मार्थकाममोक्षाश्च करस्थाश्च भवन्ति हि ॥५॥
लक्ष्मीः स्थिरा भवेत्तस्य पुत्रपौत्रानुयायिनी। श्रीपुष्पैर्जुहुयात्तद्वद्वैशाखे मासि दुग्धपः ॥६॥
सर्वाशुद्धिक्षयकरः सर्वसिद्धिविवर्धकः। देवाः सर्वे नमस्यन्ति भक्त्या तं पुरुषर्षभम् ॥७॥
श्रीजलैस्तर्पयेद्देवं मात्स्यण्डीचन्द्रसंयुतैः। अष्टोत्तरशतं कृत्वा पूजान्ते भक्तितत्परः ॥८॥
मण्डलात्स लभेत्सिद्धिं दुष्करं सुकरं तु वा। यद्यत्कामयते मन्त्री अनायासेन लभ्यते ॥९॥
दुग्धबुद्ध्या जलैर्नित्यमष्टोत्तरशतं शतम्। तर्पयन्नखिलान् कामाँल्लभेन्मोक्षं च विन्दति ॥१०॥
कुशपुष्पैः समभ्यर्च्य मासमात्रं निरामयः। यशसे धर्मवृद्ध्यै च ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ॥११॥
हयारिकुसुमैः शुभ्रैर्मण्डलाज्ज्ञानवान् भवेत्। तथा रक्ताश्वमारेण अचलां भक्तिमाप्नुयात् ॥१२॥
तथा द्वाभ्यां समभ्यर्च्य भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति। ब्राह्मणानां क्षत्रियाणां वैश्यानां शेषजन्मनाम् ॥१३॥
स्त्रीणां चैव विशेषेण नैमित्तिकमिदं भवेत्। एतेषां मासमात्रं तु कृत्वा काम्यानि साधयेत् ॥१४॥ इति।

एवं प्रणवपुटितमन्त्रमयुतसंख्यया त्रिरात्रजपेन बृहस्पतिसमः सर्वशास्त्रव्याख्याता भवति। रविवारे अश्वत्थ-वृक्षमालया अष्टोत्तरशतं भूयोभूयो जपेत्। शान्तिरष्टोत्तरशतवर्षजीवनम्। अंशुकैर्मासमात्रपूजया मलिनकृच्छ्रघोरतर-पापविमुक्तिः। पट्टसूत्रैः पूजयातुलसंपत्तिः। विद्रुमपूजया त्रैलोक्यवशीकारः। माणिक्यपूजया सार्वभौमत्वं, पद्मरागेण पूजया राज्यत्वं, गारुत्मतैः पूजया ज्ञानं, हीरकेण पूजया सर्वसिद्धिः, स्वर्णपुष्पैः पूजया कुबेरसमसंपत्ति देहान्ते निर्वाणपदम्। मासमात्रेणेति सर्वत्र योजनीयम्। तन्त्रान्तरे—'एवं सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगानथ साधये'दिति।

प्रयोगविशेष—वैष्णवतन्त्र में कहा गया है कि नित्यकर्म के बाद नैमित्तिक आचार करे। नैमित्तिक कर्म के आचरण से ही नित्य कर्म की पूर्णता होती है। एक लाख मन्त्र-जप से साधक अणिमादि गुणों से सम्पन्न होता है। यह जप समुद्रगामिनी

नदियों के जल का आहार करके एकाग्रता से करना चाहिये। जन्मलग्न में सूर्य के होने पर दश हजार हवन कमलों से करे। इससे करोड़ों जन्मों के पाप नष्ट होते हैं। यह सभी पापों का नाश करके वाक्सिद्धि देता है। शाक-मूल-फल के आहार पर रहकर पर्वतशिखर पर देव का श्रेष्ठ कमल से एक मास अर्चन करने से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष साधक के वशीभूत हो जाते हैं। स्थिर लक्ष्मी उसके पुत्र-पौत्रादि तक रहती है। इसी प्रकार वैशाख में केवल दूध पर रहकर श्रीपुष्पों से हवन करने से सभी अशुद्धियों का नाश होकर सभी सिद्धियों में वृद्धि होती है। उस पुरुषश्रेष्ठ को सभी देवता भक्तिपूर्वक प्रणाम करते हैं। मात्स्यण्डी-चन्द्रसंयुत श्रीजल से पूजा के बाद एक सौ आठ तर्पण करने से चालीस दिनों में सिद्धि मिलती है, दुष्कर भी उसके लिये सुकर हो जाता है और वह साधक जो-जो चाहता है वे उसे अनायास ही मिल जाते हैं। जल को दूध मानकर नित्य एक सौ आठ तर्पण करने से साधक की सभी कामनाएँ पूरी होती हैं तथा मोक्ष मिलता है। एक महीने तक कुशपुष्प से पूजन करने पर साधक निरोग होता है। ब्रह्मचर्य व्रत में रहकर एक माह तक कुश से पूजा करने पर यश और धर्म की वृद्धि होती है। चालीस दिनों तक कनैल के फूलों से चालीस दिनों तक पूजन करने पर ज्ञानवान होता है। लाल कनैल के फूलों से पूजा करने साधक पर अचला भक्ति को प्राप्त करता है एवं दोनों फूलों से पूजा करने पर भोग एवं मोक्ष प्राप्त करता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं स्त्रियों को विशेष कर यह नैमित्तिक पूजा करनी चाहिये। इन्हें एक माह तक करने से उनकी सभी मनोकामनाएँ पूरी होती हैं।

तीन रात तक प्रणवपुटित मन्त्र का दश दश हजार जप करने से साधक बृहस्पति के समान सभी शास्त्रों का व्याख्याता हो जाता है। रविवार में अश्वत्थ वृक्ष से बनी माला से एक सौ आठ जप बार-बार करने से शान्ति प्राप्त होती है एवं साधक एक सौ आठ वर्ष तक जीवित रहता है। एक माह तक अंशुक से पूजा करने पर मलिन, कृच्छ्र एवं अत्यन्त घोर पापों का नाश होता है, रेशमी धागों से पूजा करने पर अतुल सम्पत्ति मिलती है। मूंगा से पूजा करने पर तीनों लोक साधक के वश में होते हैं। माणिक्य से पूजा करने पर सार्वभौमत्व, पद्मराग से पूजा करने पर राज्यत्व, गारुत्मत से पूजा करने पर ज्ञान, हीरा से पूजा करने पर सर्वसिद्धि एवं स्वर्णपुष्पों से पूजा करने पर कुबेर के समान सम्पत्ति की प्राप्ति होती है तथा देहान्त होने पर मोक्ष मिलता है। ये सभी नैमित्तिक पूजायें एक मास की अवधि तक करनी चाहिये।

षट्कर्मलक्षणम्

शारदातिलके (प० २३ श्लो० १२३)—

अथाभिधास्ये तन्त्रेऽस्मिन् सम्यक्षट्कर्मलक्षणम् । सर्वतन्त्रानुसारेण प्रयोगफलसिद्धिदम् ॥१॥
शान्तिवश्यस्तम्भनानि विद्वेषोच्चाटने ततः । मारणान्तानि शंसन्ति षट्कर्माणि मनीषिणः ॥२॥
रोगकृत्याग्रहादीनां निरासः शान्तिरीरिता । वश्यं जनानां सर्वेषां विधेयत्वमुदीरितम् ॥३॥
प्रवृत्तिरोधः सर्वेषां स्तम्भनं समुदाहृतम् । स्निग्धानां द्वेषजननं मिथो विद्वेषणं मतम् ॥४॥
उच्चाटनं स्वदेशादेर्भ्रंशनं परिकीर्तितम् । प्राणिनां प्राणहरणं मारणं समुदाहृतम् ॥५॥
स्वदेवतादिक्कालादीन् ज्ञात्वा कर्माणि साधयेत् ।

शारदातिलक में कहा गया है कि इस तन्त्र में अब सम्यक् रूप से षट्कर्म के लक्षणों को कहता हूँ। सभी तन्त्रों के अनुसार ये षट्कर्म प्रयोगफल-सिद्धिप्रद हैं, मनीषियों ने षट्कर्म में शान्ति, वश्य, स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन एवं मारण कर्म को कहा है। रोग, कृत्या आदि ग्रह के दुष्प्रभाव का अन्त करना शान्तिकर्म कहलाता है। सभी लोगों को वश में करने की विधि को वश्य कहते हैं। सभी की प्रवृत्तियों के निरोध को स्तम्भन कहते हैं। दो मित्रों में द्वेष उत्पन्न करने को विद्वेषण कहते हैं। अपने देश से बाहर भेजना उच्चाटन होता है एवं प्राणियों का प्राणान्त करना मारण कहलाता है। अपने देवता, दिशा, काल आदि का ज्ञान प्राप्त करके कर्मों का साधन करना चाहिये।

षट्कर्मदेवता-ऋतु-आसन-मुद्रा-यन्त्र-बीजादिकथनम्

रतिर्वाणी रमा लक्ष्मीर्दुर्गा काली यथाक्रमम् ॥६॥

षट्कर्मदेवताः प्रोक्ताः कर्मादौ ताः प्रपूजयेत् । ईशचन्द्रेन्द्रनिर्ऋतिवाय्वग्नीनां दिशो मताः ॥७॥
सूर्योदयात् समारभ्य घटिकादशकं क्रमात् । ऋतवः स्युर्वसन्ताद्या अहोरात्रं दिने दिने ॥८॥
वसन्तग्रीष्मवर्षाख्यशरद्धैमन्तशैशिराः । हेमन्तः शान्तिके प्रोक्तो वसन्तो वश्यकर्मणि ॥९॥
शिशिरः स्तम्भने ज्ञेयो विद्वेषे ग्रीष्म ईरितः । प्रावृडुच्चाटने ज्ञेया शरन्मारणकर्मणि ॥१०॥
पद्माख्यं स्वस्तिकं भूयो विकटं कुक्कुटं पुनः । वज्रं भद्रकमित्याहुरासनानि मनीषिणः ॥११॥
षण्मुद्राः क्रमतो ज्ञेयाः पद्मपाशगदाह्वयाः । मुसलाशनिखड्गाख्याः शान्तिकादिषु कर्मसु ॥१२॥
जलं शान्तिविधौ शस्तं वश्ये वह्निः सदेरितः । स्तम्भने पृथिवी शस्ता विद्वेषे व्योम कीर्तितम् ॥१३॥
उच्चाटने स्मृतो वायुर्भूयोऽग्निर्मारणे मतः । तत्तद्भूतोदयो सम्यक् तत्तन्मण्डलसंयुतम् ॥१४॥
तत्तत्कर्म विधातव्यं मन्त्रिणा निशितात्मना । शीतांशुसलिलक्षोणीव्योमवायुहविर्भुजाम् ॥१५॥
वर्णाः स्युर्यन्त्रबीजानि षट्कर्मसु यथाक्रमम् । ग्रथनं च विदर्भश्च संपुटो रोधनं तथा ॥१६॥
योगः पल्लव इत्येते विन्यास्याः षट्सु कर्मसु । मन्त्रार्णान्तरितान् कुर्यान्नामवर्णान् यथाविधि ॥१७॥
ग्रथनं तद्विजानीयात्प्रशस्तं शान्तिकर्मणि । मन्त्रार्णद्वन्द्वमध्यस्थं साध्यनामाक्षरं लिखेत् ॥१८॥
विदर्भ एष विज्ञेयो मन्त्रिभिर्वश्यकर्मणि । आदावन्ते च मन्त्रः स्यान्नाम्नोऽसौ संपुटो मतः ॥१९॥
एष संस्तम्भने शस्त इत्युक्तो मन्त्रवेदिभिः । नाम्न आद्यन्तमध्येषु मन्त्रः स्याद्रोधनं मतम् ॥२०॥
विद्वेषणविधाने तु प्रशस्तमिदमुत्तमम् । मन्त्रस्यान्ते भवेन्नाम योगः प्रोच्चाटने मतः ॥२१॥
अन्ते नाम्नो भवेन्मन्त्रो पल्लवो मारणे यतः । सितरक्तपीतमिश्रकृष्णधूम्राः प्रकीर्तिताः ॥२२॥
वर्णतो मन्त्रतन्त्रोक्ता देवताः षट्सु कर्मसु ।

षट्कर्मों के देवता क्रमशः रति, वाणी, रमा, लक्ष्मी, दुर्गा एवं काली कहे गये हैं। ये ही षट्कर्मों के देवता हैं। कर्म के प्रारम्भ में इनकी पूजा होती है। ईशान, उत्तर, पूर्व, नैर्ऋत्य, वायव्य, आग्नेय—ये क्रमशः इनकी दिशायें है। सूर्योदय से प्रारम्भ करके दश-दश घटी अर्थात् चार-चार घण्टों के क्रम से वसन्तादि ऋतुएँ प्रतिदिन दिन-रात में होती हैं। इन छः ऋतुओं के नाम वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त एवं शिशिर हैं। हेमन्त में शान्तिकर्म, वसन्त में वशीकरण, शिशिर में स्तम्भन, ग्रीष्म में विद्वेषण, वर्षा में उच्चाटन एवं शरद में मारण कर्म करना चाहिये। इन कर्मों के विहित आसन क्रमशः पद्मासन, स्वस्तिकासन, विकटासन, कुक्कुटासन, वज्रासन और भद्रासन हैं। इनकी छः मुद्राएँ क्रमशः पद्म, पाश, गदा, मुसल, वज्र और खड्ग हैं। प्रत्येक कर्म के भूतोदय, उसके मण्डल एवं उसके कर्म को ज्ञात करके साधक को अनुष्ठान करना चाहिये। जल भूतोदय में शान्ति, अग्नि भूतोदय में वश्य पृथ्वी तत्त्वोदय में स्तम्भन, व्योम तत्त्वोदय में विद्वेषण, वायु तत्त्वोदय में उच्चाटन और अग्नि तत्त्वोदय में मारण कर्म करना चाहिये। षट्कर्मों के यन्त्र में बीज, शीतांशु, सलिल, क्षोणी, व्योम, वायु और अग्नि वर्ण हैं। षट्कर्मों में ग्रथन, विदर्भ, सम्पुट, रोधन, योग, पल्लव का विन्यास होता है। मन्त्रवर्णों के नामवर्णों को जोड़ना ग्रथन कहलाता है। शान्ति कर्म में ग्रथन प्रशस्त होता है। मन्त्र के एक-एक वर्णों के बाद साध्य के नामाक्षर लिखना विदर्भ कहलाता है। वशीकरण में इसका प्रयोग किया जाता है। दो-दो वर्णों के बाद साध्य नामाक्षर लिखने को सम्पुट कहते हैं। स्तम्भन में इसका प्रयोग होता है। नाम के आदि, अन्त एवं मध्य में मन्त्र को रखना रोधन कहलाता है, विद्वेषण में इसका प्रयोग किया जाता है। मन्त्र के अन्त में नाम जोड़ने कहते योग कहते हैं। यह उच्चाटन कर्म में किया जाता है। नाम के बाद मन्त्र लगाने को पल्लव कहते हैं। यह मारण क्रिया में प्रयुक्त होता है। षट्कर्मों में मन्त्र तन्त्रोक्त देवता के वर्ण क्रमशः श्वेत, रक्त, पीत, मिश्र, कृष्ण और धूम्र गये हैं।

षट्कर्मयन्त्रलेखनद्रव्याणि

यन्त्राणां लेखनद्रव्यं चन्दनं रोचना निशा ॥२३॥
गृहधूमश्चिताङ्गारो मारणेऽष्ट विषाणि च । श्येनाग्निलोणपिण्डानि धत्तूरकरसस्तथा ॥२४॥

गृहधूमस्त्रिकटुकं विषाष्टकमुदीरितम्। देवताकालमुद्रादीन् सम्यग् ज्ञात्वा विचक्षणः ॥२५॥
षट्कर्माणि प्रयुञ्जीत यथोक्तफलसिद्धये।

यन्त्र-लेखन के द्रव्य चन्दन, गोरोचन, हल्दी, गृहधूम, चिता के अंगार होते है। मारण में यन्त्रलेखन द्रव्य अष्ट विष कये गये हैं। श्येन, अग्नि, लोणपिण्ड, धत्तूररस, गृहधूम एवं त्रिकटु—ये आठ प्रकार के विष होते हैं। देवता, काल एवं मुद्रादि का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करके साधक को यथोक्त फल की प्राप्ति के लिये षट्कर्म का अनुष्ठान करना चाहिये।

प्राणयन्त्रोद्धारः

एवं प्राणप्रतिष्ठामन्त्रमुपक्रम्य। तत्रैव (प० २३ श्लो० ९१)—

इति संसाधितो मन्त्रः षट्कर्मफलदो भवेत्। स्थापयेन्मनुना तेन प्राणान् सर्वत्र देशिकः ॥१॥
बीजान्तेऽमुष्यशब्दानामादौ दूतीः प्रयोजयेत्। मृता वैवस्वता भूयो जीवहा प्राणहा ततः ॥२॥
आकृष्या ग्रथनी पश्चात्प्रमादा विस्फुलिङ्गिनी। क्षेत्रप्रतिहरीत्येताः प्राणदूत्यो नव स्मृताः ॥३॥
पाशेन बद्धचेष्टस्य शक्त्या स्वीकृतचेतसः। अङ्कुशेनाहृतस्यापि साध्यस्यासून् समाहरेत् ॥४॥
द्वादशाङ्गुलमानेन कृत्वा साध्यस्य पुत्तलीम्। तस्यां प्राणात्मकं यन्त्रं सकीटं हृदये न्यसेत् ॥५॥
निशीथसमये साध्ये सुप्ते तस्य हृदम्बुजे। दलेषु वायुवह्नीन्द्रवरुणानामतः परम् ॥६॥
ईशराक्षसशीतांशुयमानां कर्णिकान्तरे। यादीन् हंससमायुक्तान् भृङ्गाकाराननुस्मरेत् ॥७॥
शिरोवस्त्र(बिन्दु)समुद्धृततन्तुसंबद्धविग्रहान्। एवमात्महृदम्भोजे भृङ्गीरूपान् धिया स्मरेत् ॥८॥
आत्महृत्पद्मगा भृङ्गी प्रस्थाप्य श्वासवर्त्मना। एकैकां साध्यहृत्पद्माद् भृङ्गानेकैकमानयेत् ॥९॥
पुत्तल्यां स्थापयेन्मन्त्री स्वचित्ते वा विधानवित्। तन्तुच्छेदं प्रकुर्वीत वह्निबीजेन संयतः ॥१०॥
आकृष्टान् साध्यहृद् भृङ्गांस्ततः संस्तम्भयेद्भ्रुवा। एवमेकादशावृत्तीः कुर्यात्सर्वेषु कर्मसु ॥११॥
वश्याकर्षणर्यादीनरुणान् संस्मरेद् बुधः। मोहविद्वेषयोर्धूम्रान् कृष्णान् मारणकर्मणि ॥१२॥
पीतान् संस्तम्भने ध्यायेत्प्राणाकर्षणकर्मणि। आकृष्य साध्यहृत्प्राणान् स्थापयेदात्मनो हृदि ॥१३॥
क्रूरकर्मसु पुत्तल्यां तेषां स्थापनमीरितम्। प्राणान् साध्यस्य मण्डूकानात्मनस्तु भुजङ्गमान् ॥१४॥
संस्मरेत्तत्र निपुणः सदा क्रूरेषु कर्मसु।
वाय्वग्निशक्रवरुणेश्वरराक्षसेन्दुप्रेतेशपत्रलिखितैरथ यादिवर्णैः।
बिन्द्वन्तिकैः क्षगतहंससमेतमध्यं प्राणात्मयन्त्रमथ वर्णवृतं धराढ्यम् ॥१६॥
इत्थं प्रयोगकुशलो मनुनानेन मन्त्रवित्। वशयेत्सकलान् देवान् किं पुनः पार्थिवानपि ॥१७॥ इति।

इस प्रकार संसाधित मन्त्र षट्कर्मों के फलदायक होते हैं। साधक मन्त्र से समस्त कर्मों में पहले प्राणप्रतिष्ठा करे। बीज के अन्त में साध्य नाम के आदि में दूती को योजित करे। मृता वैवस्वता, जीवहा, प्राणहा, आकृष्या, ग्रथनी, प्रमादा, विस्फुलिङ्गिनी एवं क्षेत्रप्रतिहरी—ये नव प्राणदूतियाँ होती हैं। ये दूतियाँ साध्य के प्राणों को पाश से बाँधकर, शक्ति से उसकी चेतना को अपने वश में करके, अंकुश से पकड़कर ले आती हैं। बारह अंगुल मान की साध्य की पुत्तली बनाकर उसके हृदय में प्राणात्मक यन्त्र सकीट न्यस्त करे। रात्रि में साध्य के सोने पर उसके हृदयकमल के वायव्य-आग्नेय-पूर्व-पश्चिम दलों में एवं ईशान-नैर्ऋत्य-उत्तर-दक्षिण कर्णिका में हंससमायुक्त भ्रमराकार यकारादि का क्रमशः स्मरण करे। शिरोवस्त्र से समुद्धूत धागे से सम्बद्ध विग्रह का स्मरण अपने हृदयकमल में भ्रमरीरूप में करे। अपने हृदयकमल में स्थिर भ्रमरी को श्वास मार्ग में स्थापित करके साध्य के हृदयकमल से एक-एक भ्रमरों को लाकर पुत्तली में अपने हृदय में सविधि स्थापित करे। तदनन्तर संयत होकर वह्निबीज से तन्तुच्छेद करे। लाये गये हृदयभ्रमरों को पुत्तली के भ्रुवों में स्तम्भित करे। सभी कर्मों में इसी प्रकार ग्यारह बार करे। प्राणाकर्षण कर्म को जानने वाला वशीकरण एवं आकर्षण कर्म में अरुण वर्ण, मोहन एवं विद्वेषण में धूम्र वर्ण, मारण कर्म में कृष्ण वर्ण एवं स्तम्भन में पीत वर्ण यादि का ध्यान करे। इस प्रकार साध्य के हृदय से प्राणाकर्षण करके अपने हृदय

में स्थापित करे। क्रूर कर्म में साध्य की पुत्तली में प्राण को स्थापित करे। क्रूर कर्म में निगुण साधक साध्य के प्राण को मेढ़क और अपने को सर्परूप समझे।

यन्त्र में यकारादि वर्णों को वायु, अग्नि, पूर्व, पश्चिम, ईशान, नैर्ऋत्य, उत्तर और दक्षिण के दलों में लिखे। मध्य में 'क्षं हंस' लिखे। यह प्राणात्म यन्त्र वर्णवृत भूपुरयुक्त होता है। इस प्रकार प्रयोग में कुशल मन्त्रज्ञाता इस मन्त्र से सभी देवताओं को भी अपने वश में कर सकता है, फिर मनुष्यों के बारे में तो कहना ही क्या है।

ग्रथितादिलक्षणम्

तन्त्रान्तरे—

साध्यनामार्णमेकैकं मन्त्रार्णे संप्रयोजितम्। ग्रथितं तत्समाख्यातं वश्याकृष्टिकरं परम् ॥१॥
मन्त्रमादौ वदेत्सर्वं साध्यसंज्ञामनन्तरम्। विपरीतं पुनश्चान्ते मन्त्रं तत्संपुटं भवेत् ॥२॥
शान्तिपुष्टिकरं ज्ञेयं त्रैलोक्यैश्वर्यदायकम्। अर्धमर्धं तदाद्यन्ते मन्त्रं कुर्याद्विचक्षणः ॥३॥
मध्ये वास्य भवेत्साध्यं ग्रस्तमित्यभिधीयते। अभिचारेषु सर्वेषु योजयेन्मारणेऽपि वा ॥४॥
अभिधानं वदेत्पूर्वं पश्चान्मन्त्रं तथा वदेत्। एतत् समस्तमित्युक्तं शत्रूच्चाटनकारकम् ॥५॥
द्वौ द्वौ मन्त्राक्षरौ यत्र एकैकं साध्यवर्णकम्। विदर्भितं तत्संप्रोक्तं दुष्टघ्नं वश्यलक्षणम् ॥६॥
मन्त्रार्णान्तरितं साध्यं समन्तात्तिष्ठते यदि। आक्रान्तं तद्विजानीयात्सद्यः सर्वार्थसाधनम् ॥७॥
स्तोभस्तम्भसमावेशवश्योच्चाटनकर्मसु। सकृत्पूर्वं वदेन्मन्त्रमन्ते चैव तथा पुनः ॥८॥
मध्ये चास्य भवेत्साध्यमाद्यन्तमिति तद्विदः। अन्योन्यप्रीतियुक्तानां विद्वेषणकरं परम् ॥९॥
आदौ चान्ते तथा मन्त्रं द्विवारं संप्रयोजयेत्। साध्यनाम सकृन्मध्ये गर्भस्थं संप्रचक्षते ॥१०॥
मारणोच्चाटनं वश्यं प्रयुक्तं कारयेन्नृणाम्। हेतिनौसैन्यधीगर्भस्तम्भनं च गतेस्तथा ॥११॥
त्रिधा मन्त्रं वदेत्पूर्वं तथैवान्ते पुनस्त्रिधा। सकृत्साध्यं भवेन्मध्ये तद्विद्यात्सर्वतो वृतम् ॥१२॥
सर्वोपसर्गशमनमपमृत्युनिवारणम्। सर्वसौभाग्यजननं मृतानाममृतप्रदम् ॥१३॥
आदौ मन्त्रं ततो नाम पुनर्मन्त्रं समुच्चरेत्। एवमेव त्रिधा कुर्याद्विद्वेद्युक्तिविदर्भितम् ॥१४॥
सर्वव्याधिहरं प्रोक्तं भूतापस्मारमर्दनम्। एकैकं साध्यवर्णं तु कृत्वा मन्त्रविदर्भितम् ॥१५॥
पूर्ववत्कथितं चान्यत्तस्याद्यन्ते प्रकल्पयेत्। विदर्भग्रथितं नाम मन्त्रलक्षणमुत्तमम् ॥१६॥
सर्वकर्मकरं प्रोक्तं सर्वैश्वर्यफलप्रदम्। एवमेते प्रयोगाः स्युः सिद्धमन्त्रस्य सिद्धिदाः ॥१७॥ इति।

एते ग्रथितादयस्तत्तत्कर्मसु यन्त्रलेखनादिविषये, इति बोद्धव्यम्। तन्त्रान्तरे—
सर्वेषां मन्त्रव्रातानां प्रणवः शिर उच्यते। हुंफट्स्वाहावषट्वौषण्नमः पल्लवसंज्ञकाः ॥ १॥
तत्तत्कर्मविधाने तु तत्तन्मन्त्रविचारणे। शिरःपल्लवसंयुक्तो मन्त्रो भवति सिद्धिदः ॥२॥ इति।

तन्त्रान्तर में कहा गया है कि साध्य के नामाक्षरों में से प्रत्येक को मन्त्र के एक-एक वर्ण के साथ जोड़ने को ग्रथित कहते हैं, यह वश्य तथा आकर्षण कर्म के लिये उपयुक्त होता है। पूरे मन्त्र को पहले बोलकर तब साध्य नाम बोले; फिर मन्त्रवर्णों को विपरीतक्रम से बोलने पर सम्पुट होता है। सम्पुटित होने पर मन्त्र शान्ति एवं पुष्टिकारक होता है तथा तीनों लोकों का ऐश्वर्य प्रदान करने में समर्थ होता है। विचक्षण साधक मन्त्र के आदि एवं अन्त भाग को विभक्त करके मध्य में जब साध्य का नाम निविष्ट करता है तो इसे ग्रस्त कहते हैं। सभी अभिचारों में और मारण कर्म में इसका प्रयोग होता है। साध्य नाम के बाद मन्त्र बोलने को समस्त कहते हैं। यह शत्रु का उच्चाटनकारक होता है। दो-दो मन्त्राक्षरों के बाद साध्य नाम के एक-एक वर्ण को लगाने से विदर्भ होता है। इससे दुष्टों का नाश या वशीकरण होता है। मन्त्र के वर्णों के मध्य में यदि साध्य का पूरा नाम होता है तो वह तब आक्रान्त कहलाता है, इससे तत्काल ही सर्वार्थ-साधन होता है। स्तोभ स्तम्भन समावेश वश्य उच्चाटन कर्म में साध्य नाम के पहले पूरा मन्त्र और बाद में पूरा मन्त्र एवं मध्य में साध्य नाम रखने से दो प्रेमियों में विद्वेष

होता है। साध्य नाम के पहले और बाद में दो बार मन्त्र लगाकर मध्य में साध्य नाम रखने को गर्भस्थ कहते हैं, इसका उपयोग मनुष्यों के मारण, उच्चाटन एवं वशीकरण में होता है। इससे शस्त्र साथ ही सेना बुद्धि, गर्भ एवं गति का भी स्तम्भन होता है। साध्य नाम के पहले और बाद में तीन-तीन बार मन्त्र बोलकर मध्य में एक बार साध्य का नाम बालेने को सर्वतोवृत्त कहते हैं; इससे सभी रोग और अपमृत्यु का निवारण होता है। साथ ही यह सर्वसौभाग्यजनक एवं मृतकों को जिलाने में भी सक्षम होता है। पहले मन्त्र तब साध्य नाम तब पुन: मन्त्र—इस प्रकार तीन बार करने पर युक्तिविदर्भित होता है। यह समस्त व्याधि का विनाशक और भूत-अपस्मार आदि का मर्दक होता है। साध्य के एक-एक वर्ण को मन्त्र से विदर्भित करे। पूर्ववत् उसके आदि-अन्त को भी कल्पित करने पर वह विदर्भग्रथित नाम उत्तम मन्त्र वाला होता है एवं सभी कार्य होते हैं। इससे सभी ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। ये सभी ग्रथित आदि प्रयोग सिद्ध मन्त्रों की सिद्धि प्रदान करने वाले होते है। इनका यन्त्र लेखन आदि में प्रयोग किया जाता है।

तन्त्रान्तरों में कहा गया है कि समस्त मन्त्रों में प्रणव अर्थात् ॐकार को शिर कहा जाता है एवं हुं, फट्, स्वाहा, वषट् तथा नम: पल्लव कहे जाते हैं। कर्मों के अनुष्ठान एवं मन्त्रों की विचारणा में शिर एवं पल्लव से संयुक्त मन्त्र सिद्धिप्रद होता है।

चक्रराजसाधनम्

दक्षिणामूर्तिसंहितायाम्—

अथातः संप्रवक्ष्यामि चक्रराजस्य साधनम्। एवं संसिद्धविद्याया विनियोगक्रमं शृणु ॥१॥
कृत्वा सिन्दूररजसा चक्रं तत्र विचिन्तयेत्। साध्यप्रतिकृतिं नाम लिखित्वा चिन्तयेत्ततः ॥२॥
ज्वलन्ती तत्क्षणाद् देवि मोहिता भयवर्जिता। त्यक्त्वा लज्जां समायाति अथान्यत्कथ्यते प्रिये ॥३॥
तन्मध्ये संस्थितो मन्त्री चिन्तयेदरुणप्रभम्। आत्मानं च तथा साध्यं तदा सौभाग्यसुन्दरः ॥४॥
अरुणैरुपचारैस्तु पूजयेन्मुद्रयावृतः। यस्य नाम्ना युतः सम्यक्स भवेद्दास एव हि ॥५॥
अदृष्टस्त्रीनामवर्णांश्चक्रमध्ये विलिख्य तु। योनिमुद्राधरो भूत्वा वेगादाकर्षणं भवेत् ॥६॥
देवकन्यां राजकन्यां नागकन्यामथापि वा। गोरोचनाकुङ्कुमाभ्यां समभागं च चन्दनम् ॥७॥
अष्टोत्तरशतावृत्त्या तिलकं सर्वमोहनम्। पुष्पं फलं जलं चान्नं गन्धं वस्त्रं च भूषणम् ॥८॥
ताम्बूलं पूर्वजप्तं च यस्मै संप्रेष्यते स तु। अङ्गना वा क्षणादेव दासीवास्य भवेत् प्रिये ॥९॥
करवीरै रक्तवर्णैस्त्रिमध्वक्तैः प्रपूजयेत्। चिन्तयन् मासमात्रं हि साध्याख्यां ललनां ततः ॥१०॥
इति कुर्वन् महेशानि पूजयेदरुणप्रभाम्। सिन्दूररचिते चक्रे राजानं मोहयेत् क्षणात् ॥११॥
त्रैलोक्यमोहनां वापि रम्भामाकर्षयेद् द्रुतम्।

चक्रराज-साधन—दक्षिणामूर्तिसंहिता में कहा गया है कि इस सिद्ध विद्या का विनियोग-क्रम इस प्रकार है—सर्वप्रथम सिन्दूर से चक्र का निर्माण करके उसमें साध्य की प्रतिकृति बनाकर उसका नाम लिखे। तदनन्तर तत्काल ही प्रतिकृति वाली साध्या दीप्तिमान् होकर समस्त भय एवं लज्जा का त्याग करके मोहित होकर साधक के सम्मुख उपस्थित हो जाती है। चक्रराज-साधन का दूसरा प्रकार यह है कि उस चक्र के मध्य में स्वयं अपने को तथा साध्य को अरुण प्रभा से युक्त होकर स्थित होने की भावना करे। तदनन्तर उस मुद्रा से आवृत्त सौभाग्य सुन्दर की लाल पुष्पों से पूजा करे। उस पूजा में जिसका नाम साध्यरूप में अंकित किया जायेगा, वह निश्चित रूप से पूजक का दास हो जाता है। कभी न देखी हुयी किसी स्त्री के नामाक्षरों को चक्र के मध्य में लिखकर योनिमुद्रा दिखाने से शीघ्र ही उस स्त्री का आकर्षण होता है। और इस विधि के आश्रयण से देवकन्या, राजकन्या अथवा नागकन्या को भी आकर्षित किया जा सकता है। गोरोचन, कुङ्कुम के बराबर चन्दन लेकर तीनों का लेप बनाकर उसे एक सौ आठ अभिमन्त्रित कर उसका तिलक लगाने से सबको मोहित किया जा सकता है। वह तिलकधारी एक सौ आठ बार जप करके पुष्प, फल, जल, अन्न, गन्ध, वस्त्र, आभूषण या ताम्बूल जिस किसी भी कामिनी के पास भेजता

है, वह कामिनी सद्यः ही उसकी दासी के समान हो जाती है। मधुरत्रय से सिक्त रक्त कनैल-पुष्प से एक मास तक चक्रराज का पूजन करते हुये साध्यस्वरूपा अङ्गना का चिन्तन करते हुये सिन्दूरनिर्मित चक्र में अरुण प्रभा वाली देवी का पूजन करने पर राजा भी तत्क्षण ही मोहित हो जाते हैं। वह साधक तीनों लोकों को भी मोहित कर सकता है और रम्भा को भी तत्काल अपने पास बुला सकता है।

चिताङ्गारेण चक्रं तु लिखेद्रक्तद्रवेण हि ॥१२॥
बाहौ बद्ध्वाथवा क्वापि ज्वरं नाशयति क्षणात् । अर्कनिम्बद्रवाभ्यां तु लेखन्यार्कस्य संलिखेत् ॥१३॥
द्वयोर्नाम मध्यबाह्यदेशे चक्रस्य संलिखेत् । गोमूत्रे स्थापयेत्तच्च भवेद्विद्वेषणं क्षणात् ॥१४॥
धूपयेच्चन्दनं रात्रौ वस्त्रं वा धारयेत्ततः । अष्टोत्तरशतावृत्त्या मोहयेद्भुवनत्रयम् ॥१५॥
लिप्तगोमयभूमौ तु लिखेद्रोचनया ततः । सुरूपां प्रतिमां रम्यां भूषाढ्यां परिचिन्तयेत् ॥१६॥
तद्भालगलहृन्नाभिजन्ममण्डलयोजिताम् । जन्मनाममहाविद्यामङ्कुशान्तर्विदर्भिताम् ॥१७॥
सर्वाङ्गसन्धिसंलीनं कामकूटं समालिखेत् । साध्याशाभिमुखो भूत्वा श्रीविद्यान्यासविग्रहः ॥१८॥
क्षोभणीबीजमुद्राभ्यां विद्यामष्टशतं जपेत् । योजयेत्तां कामगेहे चन्द्रसूर्यकलात्मके ॥१९॥
सानुरागातिविकला कामसायकपीडिता । त्रैलोक्यसुन्दरी नाम क्षणादायाति मोहिता ॥२०॥

चिताभस्म में रक्त द्रव मिलाकर चक्र को अङ्कित कर बाँह में बाँधने से तत्काल ही ज्वर का विनाश हो जाता है। अकवन एवं नीभ के रस से अकवन की कलम से चक्र के मध्य भाग से इतर स्थान पर दो नाम लिखकर उस चक्र को गोमूत्र में रख देने से उन दोनों में परस्पर द्वेष हो जाता है। वस्त्र को रात्रि में चन्दन से धूपित कर उसे धारण करके एक सौ आठ मन्त्र का जप करने से तीनों भुवन मोहित होते हैं। गोबर से लिपी भूमि पर गोरोचन से सुन्दर रम्य अलंकृत प्रतिमा बनाकर उसका चिन्तन करे। उसके ललाट, गला, हृदय, नाभि, योनि मण्डल में जन्मनाम को विद्याङ्कुश से विदर्भित करके लिखे। सभी जोड़ों में कामकूट लिखे। साध्य दिशा की ओर अभिमुख होकर श्रीविद्या का न्यास करे। क्षोभिणी एवं बीज मुद्रा से विद्या का आठ सौ जप करे। उसे चन्द्र-सूर्य कलात्मक योनि में योजित करे। तब त्रैलोक्यसुन्दरी भी अनुराग से विह्वल एवं कामबाण से पीड़ित हो मोहित होकर क्षण भर में ही आ जाती है।

अथवा मातृकां चक्रबाह्ये संवेष्ट्य मन्त्रवित् । चक्रं प्रपूजयेत्सम्यग्विद्यां पूर्णां च धारयेत् ॥२१॥
अवध्यः सर्वदुष्टानां व्याघ्रादीनां न संशयः । श्रीखण्डागरुकस्तूरीकर्पूरैश्च सकुङ्कुमैः ॥२२॥
स्वनाम क्रमतो लेख्यं पूर्ववन्मातृकां लिखेत् । तेनाजरामरत्वं तु साधकस्य न संशयः ॥२३॥
अनेनैव प्रकारेण रोचनागरुकुङ्कुमैः । चक्रं विलिख्य साध्यार्णसाधकार्णविदर्भितम् ॥२४॥
त्रैलोक्यमोहनो मन्त्री भवत्येव न संशयः । कामकूटेन देवेशि संदर्भ्य पृथगक्षरम् ॥२५॥
साध्यनाम्नस्त्रिकोणान्तर्मातृकां वेष्टयेद्बहिः । स्वर्णमध्यगतं धार्यं शिखायां यत्र कुत्रचित् ॥२६॥
लोकपालाश्च राजानो दुष्टास्त्रैलोक्यसंस्थिताः । ते सर्वे वश्यमायान्ति सन्निपातादयो ज्वराः ॥२७॥
अनेन विधिना नाम पुरं संदर्भ्य संक्षिपेत् । चतुष्पक्षे मध्यदेशे दिक्षु पूर्वादितः क्रमात् ॥२८॥
तस्य सौभाग्यमायाति राजानः किङ्कराः सदा । स्फुरत्तेजोमयीं पृथ्वीं प्रज्वलन्तीं चराचरम् ॥२९॥
चक्रान्तश्चिन्तयेन्नित्यं मासषट्कं ततो नरः । तेन कन्दर्पसुभगो लोके भवति निश्चयात् ॥३०॥
दृष्ट्याकर्षयते लोकान् विषं नाशयति ज्वरान् । तथा विषं च हरति दृष्ट्यावेशं करोति च ॥३१॥

अथवा चक्र को बाहर से मातृकाचक्र से वेष्टित करे। चक्र की विधिवत् पूजा करे और पूर्ण विद्या को धारण करे। ऐसा साधक सभी दुष्टों और व्याघ्रादि से अवध्य हो जाता है। श्रीखण्ड, अगर, कस्तूरी, कपूर, कुङ्कुम के लेप से अपना नाम लिखकर पूर्ववत् मातृकाओं को लिखे। तब साधक को अजरत्व एवं अमरत्व प्राप्त होता है। इसी प्रकार गोरोचन, अगर, कुङ्कुम

से चक्र बनाकर साध्य के नामाक्षरों को साधक के नामाक्षरों से विदर्भित करके लिखे। इससे साधक तीनों लोगों को मोहित कर सकता हैं। कामकूट से साध्य-नाम के अक्षरों को संदर्भित करके त्रिकोण में लिखकर उस त्रिकोण को मातृका से वेष्टित करे। शिखा में धारण करके इसे सोने में मढ़ाकर जहाँ कही भी जाय तो तीनों लोकों में स्थित लोकपाल दुष्ट राजागण—एवं सभी सन्निपात ज्वर भी साधक के वश में हो जाते हैं। इसी प्रकार नगर के नाम को सन्दर्भित करके चौराहे पर, नगर के मध्य में एवं पूर्वादि दिशाओं में क्रमशः गाड़ दे तो राजा भी सदा उसके दास होते हैं एवं देखने मात्र से अपने तेज से समस्त पृथ्वी एवं चराचर को प्रज्वलित करने वाले चक्र का जो व्यक्ति छः मास तक प्रतिदिन चिन्तन करता है, वह निश्चय ही संसार में कामदेव के समान सुन्दर हो जाता है। वह अपनी दृष्टि से लोगों को आकर्षित करता है, उनका बुखार छुड़ा देता है, विष के प्रभाव को नष्ट कर देता है एवं देखने मात्र से किसी को भी आवेशित कर देता है।

रात्रौ सिन्दूरलिखितं पूजयेदेकचित्ततः । करोत्याकर्षणं दूराद्योजनानां शतादपि ॥३२॥
अखण्डं दिक्षु कोणेषु क्रमेण परिपूजयेत् । यदा तदैव लोकोऽयं वश्यो भवति नान्यथा ॥३३॥
भूर्जपत्रे लिखेच्चक्रं रोचनागरुकुङ्कुमैः । स्वनामदर्भितं कुर्याद् देशं वा पुटभेदनम् ॥३४॥
मण्डलं विषमस्थानं भूमौ चक्रं निधापयेत् । धारयेद्वा ततो मन्त्री पुरं क्षोभयतीक्षणात् ॥३५॥
उन्मत्तरसलाक्षार्कक्षीरकुङ्कुमरोचनाः । कस्तूर्यलक्तसहिता एकीकृत्य तु संलिखेत् ॥३६॥
यन्नाम्ना तस्य देवेशि चौरजं व्याघ्रजं भयम् । ग्रहजं व्याधिजं चैव रिपुजं सिंहजं तथा ॥३७॥
अहिजं वाजिजं नास्ति सर्वान् मोहयति क्षणात् । रोचनाकुङ्कुमाभ्यां तु मध्यगां संलिखेद् बुधः ॥३८॥
त्रिकोणोभयगां चैव साध्यनामाङ्कितामधः । तच्चक्रं धारयेत्तस्मात् सप्ताहाद्विज्वरो भवेत् ॥३९॥
पीतद्रव्येण चक्रान्तर्लिखेद्विद्यामधस्ततः । साध्यनाम विलिख्यैतत् पूर्वस्यां दिशि संक्षिपेत् ॥४०॥
तस्माद् ब्रह्मापि जीवोऽपि सर्वज्ञो मूकतां व्रजेत् । अनेन विधिना नीलीरसेन विलिखेत्ततः ॥४१॥
दक्षिणाभिमुखो मन्त्री वह्नौ दग्ध्वा रिपून् दहेत् । महिषाश्वपुरीषेण गोमूत्रेण च संलिखेत् ॥४२॥
आरनालस्थितं कुर्याद् भवेद्विद्वेषणं क्षणात् । साध्यनाम लिखेन्मध्ये काकपक्षेण संचयेत् ॥४३॥
संलिख्य रोचनाद्रव्यैराकाशे दृष्टिगं यथा । शत्रूनुच्चाटयेदाशु हठोच्चाटोऽयमीरितः ॥४४॥
महानीलीरसोद्भिन्नरोचनादुग्धमिश्रितैः । लाक्षारसैर्लिखेच्चक्रं चतुर्वर्णान् वशं नयेत् ॥४५॥
अनेन विधिना नीरे स्थापयेत्तज्जलेन तु । सौभाग्यं महदाप्नोति स्नानपानान्न संशयः ॥४६॥
पीतं चक्रं यजेत्पूर्वे स्तम्भयेत्सर्ववादिनः । सिन्दूरलिखितं चक्रमुत्तरे लोकवश्यकृत् ॥४७॥
पश्चिमे पूजितं चक्रं गैरिकालिखितं ततः । मन्त्रिणो देवता वश्याः किं पुनर्योषितः प्रिये ॥४८॥
तथैव दक्षिणास्यस्तु कृष्णं चक्रं समर्चयेत् । साध्यस्य मन्त्रहानिः स्यान्मारणं च विशेषतः ॥४९॥
क्रमाद्दिगन्तरास्यः सन् वह्निकोणादिषु क्रमात् । स्तम्भं विद्वेषणं व्याधिमुच्चाटं कुरुते नरः ॥५०॥

रात में सिन्दूर-लिखित चक्र का पूजन यदि एकाग्रता से करे तो उस साधक से सौ योजन दूर रहने वाला भी आकर्षित होता है। अखण्ड दिशाओं एवं कोनों में क्रम से यदि पूजा करे तो तीनों लोक साधक के वश में होता है। भोजपत्र पर गोरोचन अगर कुङ्कुम से चक्र लिखकर उसके मध्य में अपने नाम अथवा देश का नाम लिखकर नगर मध्य में अथवा विषम स्थान की भूमि में उस चक्र को गाड़ दे या धारण करे तो क्षण में ही वह साधक नगर को क्षोभित कर देता है। धत्तूररस, लाह, अकवन का दूध, कुङ्कुम, गोरोचन, कस्तूरी एवं आलता को मिलाकर लिखित यन्त्र में जिसका नाम लिखा जाता है, उसे चोर, बाघ, ग्रह, रोग, शत्रु, सिंह, सर्प एवं घोड़े से भय नहीं होता तथा क्षणमात्र में ही वह सबों को मोहित कर लेता है। गोरोचन-कुङ्कुम से चक्र में उभयगामी त्रिकोण लिखकर उसके नीचे साध्य नाम लिखे। उस चक्र को धारण करे तो सप्ताह भर में ही वह ज्वर से रहित हो जाता है। पीले द्रव्य से चक्र में विद्या लिखे। उसके नीचे साध्य नाम लिखकर उसे पूर्व दिशा में फेंक दे तो इससे ब्रह्मा, बृहस्पति एवं सर्वज्ञ भी मूक हो जाते हैं। इसी प्रकार यन्त्र को नीली के रस से लिखकर दक्षिण तरफ मुख करके साधक

उसे आग में जला दे तो इससे उसके शत्रु जल जाते हैं। भैंस के गोबर और घोड़े की लीद को गोमूत्र में मिलाकर यन्त्र लिखकर उसे चावल के धोवन या माँड़ में रख दे तो क्षण में विद्वेषण होता हैं। कौए के पंख से साध्य का नाम चक्रमध्य में रोचना द्रव्य से लिखे आकाश को देखते हुए उस साध्य का स्मरण करे तो शत्रु का उच्चाटन होता है, इसे हठ उच्चाटन कहते हैं। महानीली के रस में रोचन, दूध, लाक्षारस मिलाकर चक्र लिखे तब वह साधक चारो वर्णों को वश में कर सकता है। इसी प्रकार चक्र को जल से लिखकर जल में स्थापित करे तो वह साधक स्नान और पान का महा सौभाग्य प्राप्त करता है। वाद-विवाद के पहले पीले चक्र की पूजा करे तो सभी वादियों को स्तम्भित कर देता है। सिन्दूर-लिखित चक्र की उत्तर में पूजा करने से लोक को वश में करता हैं। गेरू से लिखित यन्त्र की पूजा पश्चिम में करने से साधक के वश में देवता भी हो जाते है तब स्त्रियों के बारे में क्या कहा जाय। उसी प्रकार दक्षिण तरफ मुख करके काले चक्र का अर्चन करने से साध्य को मन्त्रसिद्धि नहीं मिलती और उसका मारण होता है। इसी प्रकार क्रमशः अग्नि आदि विदिशाओं की ओर मुख करके यन्त्र की पूजा करने से स्तम्भन, विद्वेषण, व्याधि एव उच्चाटन किया जाता है।

दुग्धे वश्यकरं क्षिप्रं रोचनालिखितं हठात् । दग्ध्वा तद्वह्निमध्यस्थं सर्वशत्रून् विनाशयेत् ॥५१॥
गोमूत्रमध्यगं चैतद् भवेदुच्चाटनं रिपोः । विद्वेषणं भवेच्चक्रे तेनैव परमेश्वरि ॥५२॥
सिन्दूरेण लिखेच्चक्रं निर्जने तु चतुष्पथे । सर्वसाध्यं समारभ्य मध्यान्तं मातृकां लिखेत् ॥५३॥
कुलाचारक्रमेणैव रात्रौ संपूजयेत् क्रमम् । साधकः खेचरो देवि जायते नात्र संशयः ॥५४॥
चतुर्दश्यां निशि स्वस्थो रुद्रभूमौ प्रपूजयेत् । षण्मासक्रमयोगेन साक्षाद्रुद्र इवापरः ॥५५॥
अञ्जनं विवरं सिद्धं गुलिकां पादुकाजयम् । खड्गं वेतालसौभाग्यं यक्षिणीं चेटकादिकम् ॥५६॥
सकलं सिद्धिजननं मन्त्री प्राप्नोति नान्यथा । चतुर्दश्यां चतुर्दश्यां प्रत्यष्टम्यां समाहितः ॥५७॥
एकविंशतिरात्रं तु निशि प्रेतशिलातले । श्रीचक्रं पूजयेत्तद्वत् सुरपूज्यस्तु साधकः ॥५८॥
पाशाङ्कुशधनुर्बाणैः पौरुषेयैर्महेश्वरि । कामो भूत्वा स्वर्गभूस्थपातालतलयोषिताम् ॥५९॥
हर्ता कर्ता स्वयं चैव महदाकर्षणं भवेत् । तद्वत् कामेश्वरीशस्त्रैर्देव्यात्मा भुवनत्रये ॥६०॥
पुरुषाकर्षणं चैतद्राजानः किङ्कराः प्रिये । एतत् कामकलाध्यानं कथितं बीजभेदतः ॥६१॥
वाग्भवाराधने देवि ज्ञानं सारस्वतं भवेत् । श्वेताभां श्वेतवस्त्राढ्यां श्वेतपुष्पैः समर्चयेत् ॥६२॥
अनेन विधिना देवि वाग्भवाराधनं भवेत् । अथ कामकला नाम सामर्थ्यं शृणु पार्वति ॥६३॥
कामो मन्मथकन्दर्पौ मकरध्वज एव हि । महाकामश्च पूर्वोक्ताः पञ्चकामाः क्रमेण तु ॥६४॥
कामं मन्मथमध्यस्थं देवि कन्दर्पवेश्मगम् । तत्पुटस्थं मीनकेतुं महाकामेशमस्तकम् ॥६५॥
अनेन कामतत्त्वेन मोहयेज्जगतीमिमाम् । मूलादिसृष्टिसंहारबिसतन्तुस्वरूपिणी ॥६६॥
तस्मात्कुण्डलिनीशक्तिः शक्तिकूटे महेश्वरि । त्रिकूटा त्रिपुरा देवि सर्वसिद्धिप्रदा भवेत् ॥६७॥
चतुःषष्टिर्यतः कोट्यो योगिनीनां महौजसाम् । चक्रमेतत्समाश्रित्य सतां सिद्धिप्रदाः सदा ॥६८॥

दूध से लिखित चक्र से शीघ्र वशीकरण होता है। गोरोचन-लिखित चक्र को आग में जलाने से सभी शत्रुओं का नाश होता है। यन्त्र को गोमूत्र में रखने से शत्रु का उच्चाटन होता है। उसी चक्र से विद्वेषण भी होता है। निर्जन चौराहे पर सिन्दूर से चक्र लिखकर बाहर से आरम्भ करके मध्य तक में क्रमशः मातृकाओं को लिखकर रात में कुलाचारक्रम से पूजा करे। इससे साधक को आकाशगमन की सिद्धि मिलती है। चतुर्दशी की रात में स्वस्थ होकर भूमि में रुद्र का पूजन छः महीनों तक करने से साधक साक्षात् दूसरा रुद्र हो जाता है। इससे अंजन-विवरसिद्धि, गुलिका-पादुका जय, खड्ग, वेताल, सौभाग्य, यक्षिणी, चेटिकादि सभी सिद्धियाँ मिलती हैं। प्रत्येक अष्टमी की रात में समाहित चित्त होकर इक्कीस दिनों तक प्रेतशिला के नीचे श्रीचक्र की पूजा करे। इससे साधक देवताओं का पूज्य हो जाता है। साथ ही वह पाश-अंकुश-धनुष-बाणधारी कामदेव होकर स्वर्ग पृथ्वी पाताल की सुन्दरियों को आकर्षित करने वाला हो जाता है। वह स्वयं उन स्त्रियों का कर्ता-हर्ता होता है।

उसी प्रकार स्त्री कामेश्वरी शस्त्रों से सम्पन्न होकर तीनों लोकों में देव्यात्मा होकर पुरुषों का आकर्षण करती है एवं राजा भी उसके किंकर हो जाते हैं। इस प्रकार यह कामकला का ध्यान बीजभेदपूर्वक कहा गया। वाग्भव के आराधन से सारस्वत ज्ञान होता है। शुभ्र छवि, श्वेत वस्त्र धारण करने वाली का श्वेत पुष्प से पूजन करे। इस प्रकार करने से वाग्भव की आराधना होती है। अब काम कला का सामर्थ्य को सुनो। काम, कन्दर्प, मन्मथ, मकरध्वज और महाकाम—ये पाँच क्रमशः काम गये हैं। काम-मन्मथ मध्यस्थ कन्दर्प गृहगत मीनकेतु एवं महाकामेश मस्तक—इस कामतत्त्व से सारे जगत् को मोहित किया जा सकता है। मूल से लेकर सृष्टि संहार तक बिसतन्तु स्वरूप वाली कुण्डलिनी शक्ति होती है। इस शक्तिकूट में निवास करने वाली त्रिकूटा एवं त्रिपुरादेवी सर्वसिद्धिप्रदा होती है। चौंसठ करोड़ देदीप्यमान योगिनियाँ इस इस चक्र के समाश्रित रहकर साधकों को सिद्धियाँ देती हैं।

मन्त्रयोग:

वामकेश्वरतन्त्रे च (२ प०)—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि मन्त्रयोगं यथाविधि। यत्रानेन विधानेन साधकेन प्रपूज्यते॥१॥
देशे वा नगरे ग्रामे जगत्क्षोभः प्रजायते। ज्वलत् कामाग्निसंतापप्रतापोत्तप्तमानसाः॥२॥
पिपीलिकास्थिन्यायेन दूरादायान्ति योषितः। मन्त्रसंमूढहृदयाः स्फुरज्जघनमण्डलाः॥३॥
तद् दर्शनान्महादेवि जायन्ते सर्वयोषितः। जप्ते लक्षैकमात्रे तु क्षुभ्यन्ते भूतलेऽङ्गनाः॥४॥
यदि न क्षुभ्यतीत्थं हि साधकस्य मनो मनाक्। संक्षुभ्यन्ते ततः सर्वाः पाताले नागकन्यकाः॥५॥
तासामपि यदा नासौ क्षोभं याति मनागपि। ततः स्वर्गनिवासिन्यो विद्रवन्ति सुराङ्गनाः॥६॥
एवं लक्षत्रयं जप्त्वा व्रतस्थः साधकोत्तमः। संक्षोभयति देवेशि त्रैलोक्यं सचराचरम्॥७॥
लिखित्वा विपुलं चक्रं तन्मध्ये प्रतिमां यदा। नाम्ना लिखति संयुक्तां ज्वलन्तीं चिन्तयेत्ततः॥८॥
शतयोजनमात्रस्था त्वदृष्टापि च या भवेत्। भयलज्जाविनिर्मुक्ता साप्यायाति विमोहिता॥९॥
तन्मध्यगोऽथवा भूत्वा मन्त्री चिन्तयते यदा। सर्वमात्मानमरुणं साध्यमप्यरुणीकृतम्॥१०॥
ततः सञ्जायते देवि सर्वसौभाग्यसुन्दरः। वल्लभः सर्वलोकस्य साधकः परमेश्वरि॥११॥
सर्वरक्तोपचारैस्तु पूजयेन्मुद्रयावृतः। यस्य नाम्नैव संयुक्तं स भवेद् दासवद्वशी॥१२॥

वामकेश्वर तन्त्र में कहा गया है कि विधिपूर्वक मन्त्रयोग विधान से पूजा करने पर देश, नगर, ग्राम या संसार में क्षोभ उत्पन्न होता है। इससे सुन्दरियाँ कामाग्नि से पीडित हो उसके ताप से उत्तप्त मन वाली होकर पिपीलिकास्थि न्यास से दूर से खीचीं चली आती हैं। सभी उसे देखते ही मन्त्र के प्रभाव वश मोहित हृदय एवं अनावृत जाँघों वाली हो जाती हैं। इस मन्त्रयोग के एक लाख जप से पृथ्वी की सुन्दरियाँ क्षुब्ध होती हैं। इस पर यदि साधक के मन में थोड़ा भी क्षोभ नहीं होता तब पाताल की नागकन्याएँ उसे क्षुब्ध करती हैं। इस पर भी यदि साधक के मन में कुछ भी क्षोभ नहीं होता तब स्वर्ग की सुन्दरियाँ उसे क्षुब्ध करती हैं। इस प्रकार व्रतस्थ साधकोत्तम जब तीन लाख जप कर लेता है तब उससे तीनों लोकों के चराचर क्षुब्ध हो उठते हैं। बड़ा चक्र बनाकर उसमें तरुणी की प्रतिमा बनाकर उसका नाम लिखकर उस देदीप्यमान चक्र का जो चिन्तन करता है तो सौ योजन दूर रहने वाली वह तरुणी भी भय-लज्जारहित होकर मुग्ध होकर साधक के समीप चली आती है। चक्र के मध्य में स्थित अपना चिन्तन यदि साधक करता है और सबको लाल वर्ण का मानता है एवं साध्य को भी लाल वर्ण का चिन्तन करता है तब साधक सर्वसौभाग्यसुन्दर होकर समस्त संसार का प्रिय हो जाता है। सभी रक्तवर्ण उपचारों को मुद्रा प्रदर्शनपूर्वक जिस किसी के नाम को संयुक्त करते हुये इसकी पूजा करता है, वह नामधारी व्यक्ति दास के समान साधक के वशीभूत हो जाता है।

अदृष्टायास्तु संयोज्य नाम चक्रस्य मध्यगम्। विरच्य योनिमुद्रां च तामाकर्षयति क्षणात्॥१३॥
यक्षिणीं वाथ गन्धर्वीं किन्नरीं वा सुरेश्वरि। सिद्धकन्यां नागकन्यां देवकन्यां च खेचरीम्॥१४॥

विद्याधरीमप्सरसमृषिकन्यामथोर्वशीम् । मदनोद्भवविक्षोभस्फुरज्जघनमण्डलाम् ॥१५॥
महाकामकलाध्यानात् क्षोभयेत् सर्वयोषितः । रोचनाकुङ्कुमाभ्यां च समभागं च चन्दनम् ॥१६॥
अष्टोत्तरशतं जप्तं तिलकं धारयेन्नरः । ततो यमीक्षते वक्ति स्पृशते चिन्तयत्यलम् ॥१७॥
अर्थेन च शरीरेण स वश्यं याति दासवत् । तथा पुष्पं फलं गन्धं पानं वस्त्रं महेश्वरि ॥१८॥
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा यस्याः संप्रेषते स्त्रियाः । सद्य आकृष्यते सा तु विमूढहृदया सती ॥१९॥
हठाकृष्टिरियं भद्रे न क्वचित् प्रतिहन्यते । लिखेद्रोचनयैकान्ते प्रतिमामवनीतले ॥२०॥
सुरूपां चारुशृङ्गारवेशाभरणभूषिताम् । तद्भालगलहृन्नाभिजन्ममण्डलयोजिताम् ॥२१॥
जन्मनाममहाविद्यामङ्कुशान्तर्विदर्भिताम् । सर्वाङ्गसन्धिसंलीनमालिख्य मदनाक्षरम् ॥२२॥
तदाशाभिमुखो भूत्वा त्रिपुरीकृतविग्रहः । बद्ध्वा तु क्षोभिणीमुद्रां विद्यामष्टोत्तरं जपेत् ॥२३॥
नियोज्य दहनागारे चन्द्रसूर्यप्रभा(कला)कुले । ततो विचलितापाङ्गामनङ्गशरपीडिताम् ॥२४॥
प्रोज्ज्वलन्मदनोल्लोलप्रचलज्जघनस्थलाम् । शक्तिचक्रोज्ज्वलद्रश्मिकलनाकवलीकृताम् ॥२५॥
दूरीकृतस्वचारित्रभयलज्जात्रपाङ्कुशाम् । आकृष्टहृदयां नष्टधैर्यामुड्डीनजीविताम् ॥२६॥
वप्रप्रासादनिगडनदीयन्त्रसुरक्षिताम् । नवानुरागसंधानवेपमानहृदम्बुजाम् ॥२७॥
मनोऽधिकमहामन्त्रपवनापहृतांशुकाम् । विमूढामिव विक्षुब्धामिव श्रान्तामिव द्रुताम् ॥२८॥
लिखितामिव निःसंज्ञामिव प्रमथितामिव । विहस्तामिव संकीर्णामिवाकुलितमानसाम् ॥२९॥
निलीनामिव निश्चेष्टामिवान्यत्वं गतामिव । भ्रमन्मन्त्रानिलोद्धूतपत्राकारां नभस्तले ॥३०॥
भ्रमन्तीमानयेन्नारीं योजनानां शतादपि ।

चक्र में मध्य में अदृष्टा (न देखी हुयी) का नाम लिखकर योनिमुद्रा दिखाने से क्षत्रमात्र में ही उसका आकर्षण होता है। यक्षिणी, गन्धर्वी, किन्नरी, सिद्धकन्या, नागकन्या, देवकन्या, खेचरी, विद्याधरी, अप्सरा, ऋषिकन्या या उर्वशी आदि सभी मन में उत्पन्न विक्षोभ से फड़कती जाँघों वाली होकर साधक के पास चली आती हैं। महाकामकला का ध्यान करने से सभी स्त्रियाँ क्षुब्ध होती है। गोरोचन, कुङ्कुम के बराबर चन्दन का लेप बनाकर एक सौ आठ जप से उसे मन्त्रित करके उसका तिलक लगाकर साधक जिसकी इच्छा करता है या बोलता है या स्पर्श करता है या जिसका चिन्तन करता है, वह धन और तन से दास के समान होकर उसके वश में हो जाता है। साथ ही फूल, फल, गन्ध, पान या वस्त्र को एक सौ आठ जप से मन्त्रित करके जिस स्त्री को भेजा जाय, वह तुरन्त ही विमूढ़ हृदया होकर उसके पास चली आती है। यह आकर्षण हठात् होता है लेकिन इससे किसी को कोई हानि नहीं होती है। रोचना से भूमि पर चक्र बनाकर उसके मध्य में एक सुन्दर, रम्य श्रृंगार, वेश एवं आभरण से भूषित प्रतिमा बनाकर उसके ललाट, हृदय, नाभि और योनि को जन्मनाम महाविद्या अंकुश से विदर्भित करके सभी अङ्गों के जोड़ों में मदनाक्षर लिखकर उसकी तरफ मुख करके अपने को त्रिपुरा के रूप का बनाकर क्षोभिणी मुद्रा बाँधकर श्रीविद्या का एक सौ आठ जप करे। उसकी योनि में चन्द्र-सूर्य की प्रभा को योजित करे एवं तब वह विचलित नयनों वाली पीड़ित कामबाण से मदविह्वल, थिरकती, जाँघों वाली, शक्तिचक्र की दीप्यमान कान्ति से युक्त अपने चरित्रगत भय, लज्जा एवं सङ्कोचरूप बन्धन को दूर करके अधीर होकर उड़ती हुई आकृष्ट हृदय वाली, पर्वत, भवन, बन्धन, नदी एवं यन्त्रों से सुरक्षित रहने पर भी नूतन अनुराग होने के कारण कम्पित हृदयकमल वाली, मन से भी अधिक गतिशील महामन्त्र के झकोरों से उड़ते वस्त्र वाली, तत्क्षण विमूढ़ा-विक्षुब्धा एवं थकी हुई के समान, चित्रलिखित के समान, संज्ञाहीन के समान, प्रमथित के समान, हस्तरहित के समान, सङ्कीर्ण के समान व्याकुल मन वाली होकर, विलीन-निश्चेष्ट हो दूसरे में लीन के समान, मन्त्ररूपी वायु के प्रभाव वश आकाश में उड़ते हुये पत्ते के समान सौ योजन दूर से भी स्त्री को उड़ाकर ले आती है।

अथवा मातृकां सर्वां लिखित्वा चक्रबाह्यतः ॥३१॥
धारयेद्बाहुमूले यः सोऽवध्यः सर्वजन्तुषु । तथैव हि महेशानि स्वसंज्ञाक्रमयोगतः ॥३२॥

चन्दनागरुकर्पूरैरजरामरतां व्रजेत्। एवं देवि विधानेन रोचनागरुकुङ्कुमैः ॥३३॥
लिखित्वा चक्रयोगेन यस्मिन् कस्मिन्नपि स्थितम्। साध्यनाम्ना स्वनाम्ना तु चक्रस्यान्तर्विदर्भितम् ॥३४॥
करोति सकलान् लोकानचिरात् पादवर्तिनः। मध्यङ्गतेन बीजेन महाकामकलात्मना ॥३५॥
एकमेकमवष्टभ्य साध्यनामाक्षरं प्रिये। बहिरपि लिखेदेव वेष्टयेन्मातृकाक्षरैः ॥३६॥
हेममध्यगतं कृत्वा धारयेद्वामके भुजे। शिखायामथवा वस्त्रे धारयेद्यत्र तत्र वा ॥३७॥
करोति दासभूतं हि त्रैलोक्यं सचराचरम्। संमोहयति राजानं वाजिनं दुष्टकुञ्जरम् ॥३८॥
चौरं केसरिणं सर्पं परतन्त्रं महाबलम्। शत्रून् वज्रशतं शस्त्रं वेतालं राक्षसं तथा ॥३९॥
भूतप्रेतपिशाचांश्च धारिता चक्ररूपिणी। तेन मन्त्रेण सन्दर्भ्य पुराणां नाम सुन्दरि ॥४०॥
मध्ये चतुष्पथे वापि चतुर्दिक्षु निधापयेत्। महान् कोलाहलस्तत्र ततो लोकस्य जायते ॥४१॥
योषितां च विशेषेण त्वदृष्टानामपीश्वरि। एतन्मध्यगतां पृथ्वीं सशैलवनकाननाम् ॥४२॥
चतुःसमुद्रपर्यन्तां ज्वलन्तीं चिन्तयेत् प्रिये। षण्मासध्यानयोगेन जायतेऽतिमनोहरः ॥४३॥
दृष्ट्यैवाकर्षयेल्लोकान् दृष्ट्यैव कुरुते वशम्। दृष्ट्या संक्षोभयेन्नारीं दृष्ट्यैवापहरेद्विषम् ॥४४॥
दृष्ट्या करोति चावेशं दृष्ट्या सर्वं विमोहयेत्। दृष्ट्या चातुर्थिकादींश्च नाशयेद्विषमज्वरान् ॥४५॥

अथवा चक्र के बाहर सभी मातृकाओं को लिखकर बाहुमूल में धारण करने से वह सभी जन्तुओं से अवध्य हो जाता है। उसी प्रकार मातृका वेष्टित उस चक्र के मध्य में चन्दन अगर कपूररज से अपना नाम लिखने पर साधक अजरता-अमरता प्राप्त करता है। इसी प्रकार कहीं भी स्थित होकर विधान से रोचन अगर कुङ्कुम से लिखित चक्र में साध्य एवं अपने नाम को चक्र के अन्दर लिखने से सभी लोक अल्पकाल में ही उसके अधीन हो जाते हैं। चक्रमध्य में स्थित बीजमन्त्र को कामकला के रूप में साध्यनाम के एक-एक अक्षर को पुटित कर बाहर भी इसी प्रकार लिखकर मातृका से वेष्टित कर सोने के ताबीज में भरकर बाँयीं भुजा में अथवा शिखा में धारण करने या वस्त्र में रखने से उसके वश में तीनों लोकों के चराचर हो जाते हैं। वह राजा, घोड़ों, दुष्ट हाथियों, चोरों, शेरों, सर्पों, परतन्त्रों, महाबलियों, शत्रुओं, सैकड़ों वज्र, शस्त्र, बेताल, राक्षस, भूत-प्रेत-पिशाच—सभी सम्मोहित हो जाते हैं। उस मन्त्र से नगरो के नामों को पुटित करके चौराहे पर अथवा मध्य में चारो तरफ गाड़ देने से वहाँ लोगों का महान कोलाहल होने लगता है। विशेषकर नारियों में कोलाहल होने लगता है। चक्र के मध्य में पहाड़-जङ्गलसहित चारो समुद्र तक पृथ्वी का चिन्तन छः महीने तक करने से साधक अत्यन्त सुन्दर हो जाता है। देखकर ही वह लोक को वाचाल बना देता है एवं अपनी दृष्टि से ही लोक को वश में कर लेता है। दृष्टि से ही चातुर्थिक आदि विषम ज्वरों का नाश कर देता है।

एतत् प्रपूजितं रात्रौ चक्रं सिन्दूररञ्जितम्। करोति महदाकर्षं सुदूरादपि योषिताम् ॥४६॥
सदा दिक्षु विदिक्ष्वेवं यदा देवि प्रपूज्यते। दिगनुक्रमयोगेन तदा सर्वं जगद्वशे ॥४७॥
भूर्जपत्रे विलिख्यैवं तरौ निर्विवरोदरे। रोचनागरुकाश्मीरैर्मध्ये संदर्भयेत् पुरम् ॥४८॥
विपुलं देशमथवा विषयं मण्डलं तथा। स्वनामसहितं देवि यदि भूमौ निधापयेत् ॥४९॥
धारयेदथवा हस्ते कण्ठे वा बाहुमूलतः। शिखायामथवा वस्त्रे यत्र तत्र स्थितं च वा ॥५०॥
चक्रमेतन्महाभागे पुरक्षोभणमुत्तमम्। अर्कक्षीरं कुङ्कुमं च धत्तूरकरसं तथा ॥५१॥
रोचनालक्तकं लाक्षारसं मृगमदोत्कटम्। एकीकृत्य चक्रमेतल्लिख्यते यस्य संज्ञया ॥५२॥
तस्य चौरग्रहव्याधिरिपुसिंहाहिवारिजम्। यक्षराक्षसवेतालभूतप्रेतपिशाचकात् ॥५३॥
लूतावृश्चिककीटादिकमलाशीतिकोद्भवम्। भयं न विद्यते तस्य परमन्त्राभिचारजम् ॥५४॥

सिन्दूररञ्जित चक्र की रात में पूजा करने से साधक दूरस्थ नारी को भी अपने पास बुला लेता है। सभी दिशाओं एवं

विदिशाओं में इस प्रकार दिगनुक्रम से जो सदा इस चक्र की पूजा करता है, उसके वश में सारा संसार हो जाता है। वृक्ष के नीचे बैठकर भोजपत्र पर विवररहित रोचन अगर केसर से यन्त्र लिखकर उस यन्त्र के मध्य में नगर, विस्तृत देश या मण्डल का नाम अपने नाम के साथ लिखकर जो कोई उस यन्त्र को भूमि में गाड़ देता है अथवा हाथ, गले, बाहुमूल, शिखा या वस्त्र में या जहाँ कभी भी धारण करता है तो इस चक्र के प्रभाव से वह नगर क्षुब्ध हो उठता है। अकवन का दूध, कुङ्कुम, धत्तूररस, रोचन, आलता, लाक्षारस एवं कस्तूरी को मिलाकर चक्र लिखकर उसमें जिसका नाम लिखा जाय, उसे चोर, ग्रह, व्याधि, शत्रु, सिंह, सर्प, जल, यक्ष, राक्षस, वेताल, भूत-प्रेत, पिशाच, लूता, बिच्छू, कीटादि से होने वाला भय नहीं रहता और दूसरे द्वारा प्रयुक्त अभिचार मन्त्रों से भी उसे कोई भय नहीं होता।

नित्यं संधारणाद् देवि कालमृत्युयमादयः। न शक्ता हिंसितुं सम्यग्रोमैकमपि सर्वदा ॥५५॥
अथवा मध्यगां देवीं त्रिकोणोदर(भय)गां तथा। अधस्तन्नामसंयुक्तां रोचनाकुङ्कुमाङ्किताम् ॥५६॥
निधापयेच्च सप्ताहाद्दासवत्किङ्करो भवेत्। पीतद्रव्येण संलिख्य धारये(दिन्द्रग्गिताम्) ॥५७॥
नाम्ना सर्वज्ञभूतोऽपि मूको भवति तत्क्षणात्। महानीलीरसेनापि नाम संयोज्य पूर्ववत् ॥५८॥
दक्षिणाभिमुखो वह्नौ दग्ध्वा मारयते क्षणात्। एकं नीलपटं सम्यक् नीलसूत्रेण वेष्टयेत् ॥५९॥
लम्बमानं तदाकाशे उच्चाटयति तत्क्षणात्। महिषाश्वपुरीषाभ्यां गोमूत्रेणाङ्कितं लिखेत् ॥६०॥
क्षिप्त्वारनालमध्यस्थं विद्विष्टः सर्वजन्तुषु। युक्त्वा रोचनया नाम काकपक्षेण संलिखेत् ॥६१॥
नीलीकर्पटके सम्यङ्नीलसूत्रेण वेष्टयेत्। लम्बमानं तदाकाशे परमुच्चाटनं भवेत् ॥६२॥
दुग्धलाक्षारोचनाभिर्महानीलीरसेन च। लिखित्वा धारयेच्चक्रं चातुर्वर्ण्यं वशं नयेत् ॥६३॥
एतेनैव विधानेन जलमध्ये विनिक्षिपेत्। सौभाग्यमतुलं तस्य स्नानपानादिभिर्भवेत् ॥६४॥
एतन्मध्यगतां देवि नगरीं वा वराङ्गनाम्। सप्ताहात्क्षोभयेत्सत्यं ज्वलमानां विचिन्त्य ताम् ॥६५॥
महापातकयुक्तात्मा यदि देवीं प्रपूजयेत्। शमीदूर्वासहाश्वत्थपल्लवैरथवार्कजैः ॥६६॥
मासेन हन्ति कलुषं सप्तजन्मकृतं नरः। लिखित्वा पीतवर्णं तु चक्रमेतद्यदार्चयेत् ॥६७॥
पूर्वाशाभिमुखो भूत्वा स्तम्भयेत् सर्ववादिनः। सिन्दूररेणुलिखितं पूजयेदुत्तरामुखः ॥६८॥
यदा तदास्य वशगो लोको भवति सर्वथा। गैरिकेणैतदालिख्य पूजयेत् पश्चिमामुखः ॥६९॥
यः स सर्वाङ्गनाकर्षवश्यक्षोभकरो भवेत्। दक्षिणाभिमुखो भूत्वा कृष्णं चक्रं समर्चयेत् ॥७०॥
यस्य नाम्ना तस्य नित्यं मन्त्रहानिस्तु जायते। तद्वद् दिगन्तरालेषु पूजितं परमेश्वरि ॥७१॥
स्तम्भविद्वेषणव्याधिशत्रूच्चाटनकारकम्। रोचनालिखितं देवि दुग्धमध्ये वशङ्करम् ॥७२॥
क्षिप्तं गोमूत्रमध्ये तु शत्रूच्चाटनकारकम्। तैलमध्यगतं चक्रं विद्वेषणकरं परम् ॥७३॥
ज्वलज्ज्वलनमध्यस्थं सर्वशत्रुविनाशनम्।

इसे नित्य धारण किए रहने से काल-मृत्यु-यमादि भी उसका कुछ नहीं विगाड़ सकते। चक्र के मध्य त्रिकोण में मन्त्र लिखकर उसके नीचे रोचन कुङ्कुम से नाम लिखकर सात दिनों तक रखने से साध्य दास के समान उसका सेवक हो जाता है। पीले द्रव्य से पूर्वमुख होकर नामनिर्देशपूर्वक यन्त्र धारण करने से वह व्यक्ति उसी क्षण गूँगा हो जाता है। महानीली के रस से उसमें पूर्ववत् साध्य नाम लिखकर दक्षिणमुख होकर आग में जलाने से साध्य की तत्काल मृत्यु हो जाती है। एक नीले कपड़े को नीले धागे से लपेट कर उसे आकाश में उड़ाने से तत्काल उच्चाटन होता है। भैंस एवं घोड़े के गोबर को गोमूत्र में मिलाकर यन्त्र लिखकर मांड़ में रख देने से सभी जन्तुओं में विद्वेष हो जाता है। उसमें रोचन मिलाकर कौए के पंख के मध्य में यन्त्र लिखकर नीली कपटी में रखकर नीले धागे से लपेट दे और आकाश में लटका दे तो परम उच्चाटन होता है। दूध लाह रोचना एवं महानीली रस से चक्र लिखकर धारण करे तो चारो वर्ण उसके वश में हो जाते हैं। इसे विधिवत् जल में डालकर उस जल से स्नान करने या उसका पान करने से अतुल सौभाग्य मिलता है। किसी नगरी या वराङ्गना का

दीप्यमान चिन्तन चक्र में करने से वह सात दिनों में क्षुब्ध हो जाती है। महान् पापात्मा भी यदि देवी का पूजन शमी दूब पीपल पत्ता या अकवन के पत्ते से करता है तो एक माह में उसके सात जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं। चक्र को पीले द्रव्य से लिखकर पूजा पूर्वमुख होकर करे तो सभी प्रतिवादियों का वह स्तम्भन कर सकता है। सिन्दूर से लिखित चक्र का पूजन उत्तर मुख होकर करने से उसके वश में सभी लोक होते हैं। गेरु से लिखकर पश्चिममुख होकर पूजा करने से समस्त स्त्रियों का आकर्षण, वशीकरण और क्षोभण होता है। दक्षिणमुख होकर काले रङ्ग से चक्र लिखकर पूजा करने से चक्र में जिसका नाम अङ्कित होता है, उसका मन्त्र सिद्ध नहीं होता। इसी प्रकार दो दिशाओं के मध्य में पूजित चरक स्तम्भन, विद्वेषण, व्याधि एवं शत्रु का उच्चाटन करने वाला होता है। रोचन से लिखकर दूध में रखने से वशीकरण होता है। गोमूत्र में रखने से शत्रूच्चाटन करने वाला होता है। तेल में रखने से विद्वेषकारी होता है। प्रज्वलित अग्नि में डालने से सभी शत्रुओं का विनाशक होता है।

अथवा देवदेवेशि यदेकान्ते चतुष्पथे ॥७४॥
तत्समीपे लिखेच्चक्रं सिन्दूरेण महाप्रभम् । सर्वबाह्यत आरभ्य यावन्मध्यं महेश्वरि ॥७५॥
अकारादिक्षकारान्तां मातृकां तत्र विन्यसेत् । पूजयेद्रात्रिसमये कुलाचारक्रमेण यः ॥७६॥
स तत्क्षणान्महादेवि साधकः खेचरो भवेत् । पूजयित्वा महेशानि तद्वदेकतरौ गिरौ ॥७७॥
अजरामरतां सत्यं लभते नात्र संशयः । महाभूतदिने वापि श्मशाने यदि पूजयेत् ॥७८॥
पूर्ववन्निशि देवेशि साधकः स्थिरमानसः । पादुकाखड्गवेतालसिद्धद्रव्यमहोदयान् ॥७९॥
अञ्जनं विवरं चेटीं यक्षीं दूरगतिं तथा । यत्किञ्चित्सिद्धिसन्तानं विद्यते भुवनत्रये ॥८०॥
तत्सर्वमेव सहसा साधयेत् साधकोत्तमः । इति।

अत्र सर्वत्र मण्डलावधि कर्तव्यता। जपे वायुतसंख्या ज्ञेया।

अथवा एकान्त चौराहे पर या उसके समीप सुन्दर चक्र सिन्दूर से लिखे। उसके बाहर से आरम्भ करके मध्य तक अं से क्षं तक की मातृकाओं का विन्यास करे। रात में उसकी पूजा कुलाचार क्रम से करने वाला साधक तत्काल आकाशगामी हो जाता है। इसी प्रकार एकान्त पर्वत पर पूजा करने से साधक अजर-अमर हो जाता है अथवा चतुर्दशी में श्मशान में पूर्ववत् रात में स्थिर मानस होकर जो साधक पूजा करता है वह पादुका, खड्ग, वेताल आदि सिद्ध द्रव्य, अञ्जन, विवर, चेटी, यक्षी, दूरगमन आदि जो भी सिद्धियाँ तीनों लोकों में वर्तमान हैं, उन सभी को वह उत्तम साधक अकस्मात् ही प्राप्त कर लेता है, यहाँ सभी कर्मों की अवधि एक मण्डल अर्थात् चालीस दिन एवं जपसंख्या दश हजार जाननी चाहिये।

अथ कूटत्रयसाधनं तत्रैव—

एतस्याः शृणु देवेशि बीजत्रितयसाधनम् । धवलाम्बरसंवीतो धवलाम्बरमध्यगः ॥१॥
पूजयेद्धवलैः पुष्पैर्ब्रह्मचर्यधरो नरः । धवलैरेव नैवेद्यैर्दधिक्षीरौदनादिभिः ॥२॥
संकल्पधवलैर्वापि यथाकामफलप्रदाम् । संपूज्य परमेशानि ध्यायेद्वागीश्वरीं पराम् ॥३॥
बीजरूपामुल्लसन्तीं ततोऽनङ्गपदावधि । ब्रह्मग्रन्थिं विनिर्भिद्य जिह्वाग्रे बीजरूपिणीम् ॥४॥
चिन्तयेन्नष्टहृदयो ग्राम्यो मूर्खोऽतिपातकी । शठोऽपि यः पदं स्पष्टमक्षरं वक्तुमक्षमः ॥५॥
जडो मूकोऽपि दुर्मेधा गतप्रज्ञो विनष्टधीः । सोऽपि संजायते वाग्मी वाचस्पतिरिवापरः ॥६॥
सत्पण्डितघटाटोपजेताऽप्रतिहतप्रभः । सत्तर्कपदवाक्यार्थशब्दालङ्कारसारवित् ॥७॥
वातोद्धतसमुद्रोर्मिमालातुल्यैरुपन्यसेत् । सुकुमारतरस्फाररीत्यलङ्कारपूर्वकैः ॥८॥
पदगुम्फैर्महाकाव्यकर्ता देवेशि जायते । वेदवेदाङ्गवेदान्तसिद्धान्तज्ञानपारगः ॥९॥
ज्योतिःशास्त्रेतिहासादिमीमांसास्मृतिवाक्यवित् । पुराणरसवादादिगारुडानेकमन्त्रवित् ॥१०॥
पातालशास्त्रविज्ञानभूततन्त्रार्थतत्त्ववित् । विचित्रचित्रकर्मादिशिल्पानेकविचक्षणः ॥११॥
महाव्याकरणोदारशब्दसंस्कृतसर्वगीः । सर्वभाषारुतज्ञानी समस्तलिपिकर्मकृत् ॥१२॥

नानाशास्त्रार्थशिक्षादिवेत्ता भुवनविश्रुतः । सर्ववाङ्मयवेत्ता च सर्वज्ञो देवि जायते ॥१३॥
एवमेषा महादेवि वाग्भवस्य तु साधना ।

कूटत्रय साधन—वामकेश्वर तन्त्र में भगवान् कूटत्रय अर्थात् ऐं ह्रीं श्रीं का साधन बताते हुये कहते हैं कि वाग्भव कूट का श्वेत वस्त्र पहनकर खुले आकाश के नीचे श्वेत फूलों से ब्रह्मचारी होकर दही-दूध-भात आदि उजले नैवेद्य से सङ्कल्पपूर्वक पूजन करने से यथाकामफल-प्रदायक होता है। पूजा करके परा वागीश्वरी का ध्यान 'ऐं' रूप में उल्लसित, अनङ्गस्वरूपा, ब्रह्मग्रन्थि का भेदन कर जिह्वा के अग्रभाग में दीपस्वरूप करने से नष्ट हृदय, गँवार, मूर्ख, अति पातकी एवं शठ भी जो कि स्पष्ट अक्षर या पद बोलने में अक्षम होता है वह जड़, गूँगा, मेधारहित, नष्ट बुद्धि वाला भी दूसरे बृहस्पति के समान वक्ता हो जाता है। पण्डितों की बृहत् मण्डली को जीतने वाला, अप्रतिहत प्रभा वाला, तर्कसहित पद-वाक्यार्थ एवं शब्दालंकारसार का ज्ञाता, वायु से उद्धत तरंगयुक्त समुद्र के समान शास्त्रों को प्रस्तुत करने वाला होता है। सुकुमारतर स्फुट रीति से अलङ्कारपूर्वक पद गुम्फित महाकाव्यकार हो जाता है। वेद वेदांग वेदान्त सिद्धान्त ज्ञान में प्रवीण होता है, ज्योतिषशास्त्र-इतिहास-मीमांसा-स्मृतिवाक्यों का जानकार होता है। पुराणों के रस का आस्वादन करने वाला एवं गारुड़ आदि अनेक मन्त्रों का ज्ञाता होता है। वह पाताल शास्त्र, विज्ञान एवं भूततन्त्रार्थ के तत्त्व को जानने वाला, विचित्र चित्रकारी आदि अनेक शिल्प कार्य में विचक्षण, व्याकरणवेत्ता, समस्त संस्कृत वाङ्मय का ज्ञाता, सभी भाषाओं को जानने वाला, समस्त लिपि कर्मकर्ता, अनेक शास्त्रार्थ शिक्षा आदि का ज्ञानी, लोकप्रसिद्ध, सभी वाङ्मय का वेत्ता और सर्वज्ञ होता है। इस प्रकार वाग्भव-साधना के अत्यन्त उत्कृष्ट फल प्राप्त होते हैं।

ततस्तु शृणु देवेशि कामराजस्य साधनम् ॥१४॥
तथा कामकलारूपा मदनाङ्कुरगोचरा । उदयादित्यबिम्बाभा समुज्ज्वलवपुः प्रिये ॥१५॥
स्फुरद् दीपशिखाकारा बिन्दुधाराप्रवर्षिणी । समस्तभुवनाभोगकवलीकृतजीविता ॥१६॥
महास्वमहिमाक्रान्तस्वच्छाहंकृतिभूमिका । क्रमेण तु ततोऽनङ्गपर्यन्तं प्रोल्लसन्त्यपि ॥१७॥
शरीरानङ्गपर्यन्तमेकैकमुभयात्मिका । ततो भवति देवेशि सर्वशृङ्गारमानिनाम् ॥१८॥
रागिणां साधको देवि बाधको मदनाधिकः । तद् दृष्टिपथगा नारी सुरी वाप्यथवासुरी ॥१९॥
विद्याधरी किन्नरी वा यक्षी नागाङ्गनाथवा । प्रचण्डतरभूपालकन्यका सिद्धकन्यका ॥२०॥
ज्वलन्मदनदुःप्रेक्ष्यदहनोत्तप्तमानसा । क्लिन्ना प्रचलितापाङ्गा विमूढा मदविह्वला ॥२१॥
निवेदितात्मसर्वस्वा वशगा देवि जायते । चलज्जलेन्दुसदृशी बालार्ककिरणारुणा ॥२२॥
चिन्तितां योषितां योनौ संक्षोभयति तत्क्षणात् । सैव सिन्दूरवर्णाभा हृदये चिन्तिता सती ॥२३॥
संमोहोन्मादनाविष्टचित्ताकर्षकरी स्मृता । नियोजिताथवा मूर्ध्नि वर्षन्ती रक्तबिन्दुभिः ॥२४॥
धारणासंप्रयोगेण करोति वशगं जगत् । अथान्यं संप्रवक्ष्यामि प्रयोगं भुवि दुर्लभम् ॥२५॥
येन विज्ञातमात्रेण साधको मदनायते । कामस्थं काममध्यस्थं कामोदरपुटीकृतम् ॥२६॥
कामेन कामयेत्कामं कामं कामेषु निक्षिपेत् । कामेन कामितं कृत्वा कामस्थं क्षोभयेद् ध्रुवम् ॥२७॥

इसके बाद कामराज कूट के साधन के बारे में सुनो। गोचर मदनाङ्कुर, कामकलारूपा, उदित सूर्य की कान्ति शरीर, दीपशिखा के समान दीप्तिमान, बिन्दुधारा की वर्षा करने वाली, समस्त जगत् के भोगों को धारण की हुई, अपने तेज से समस्त अहंकारों को आक्रान्त की हुई, क्रमशः सामान्य जन से कामदेव तक को उल्लसित करने वाली, शरीर से अनङ्गपर्यन्त सबसे अवस्थित, समस्त शृंगार के धनिकों एवं रागियों का साधक तथा कामदेव के बाधक कामराज कूट का साधन करने वाले की नजर में आने वाली देवकन्या, असुरकन्या, विद्याधरी, किन्नरी, यक्षिणी, नागकन्या, राजकन्या या सिद्धकन्या भी कामाग्नि से ज्वलित हो उत्तप्त मानसा होकर वे क्लिन्न, प्रचलित अपाङ्गा, विमूढ़ा, मदविह्वला होकर अपना सर्वस्व निवेदित कर वश में हो जाती है। जल में चञ्चल चन्द्रमा के समान उसके बाल सूर्य के समान अरुण वर्णा ह्रीं का योषिता की योनि में ध्यान करने

से उसे तत्काल क्षुब्ध कर देती है। हृदय में सिन्दूर वर्ण की उसकी कान्ति का ध्यान करने पर वह सम्मोहन एवं उन्माद के वशीभूत हो चित्ताकर्षण करने वाली हो जाती है। मूर्धा में लाल बिन्दु की वर्षा करती हुई ध्यान करने एवं धारण करने से वह संसार को वश में कर देती है।

इसका संसार में दुर्लभ एवं अन्य प्रयोग भी है, जिसे जानने मात्र से ही साधक मदनायत हो जाता है। कामस्थ, काममध्यस्थ एवं काम के मध्य पुटित काम से कामना करता है, काम को काम में निक्षिप्त करता है। काम से कामित करता है तब साधक कामस्थ को निश्चित रूप में क्षोभित करता है।

प्रवक्ष्यामि समासेन शक्तिबीजस्य साधनम्। शक्तिबीजस्वरूपा तु सृष्ट्वा संहरते यदा ॥२८॥
सृष्टिसंहारपर्यन्तं शरीरे परिचिन्तयेत्। ततो भवति देवेशि वैनतेय इवापरः ॥२९॥
नागानां दर्शनाद् देवि जडीकरणकारकः। दाहिनाममृतासारधीरधाराधरोपमः ॥३०॥
स्थिरकृत्रिमशङ्काख्यविषोपविषनाशनः। दुष्टव्याधिग्रहानीकडाकिनीरूपिकागणैः ॥३१॥
भूतप्रेतपिशाचाद्यैस्त्रिनेत्र इव दृश्यते। अथवा येन विद्येयं परिपूर्णा विचिन्त्यते ॥३२॥
जन्ममण्डलहृत्पद्ममुखमण्डलमध्यगा। केवलैव महेशानि पद्मरागसमप्रभा ॥३३॥
तस्याष्टगुणमैश्वर्यमचिरात् संप्रवर्तते। मनसा संस्मरत्यस्या यदि नामापि साधकः ॥३४॥
तदैव मातृचक्रस्य विदितो भवति प्रिये। यदैव ज्ञायते विद्या महात्रिपुरसुन्दरी ॥३५॥
तदैव मातृचक्राज्ञा संक्रामत्यस्य विग्रहे। सर्वासां सर्वसंस्थानां योगिनीनां भवेत्प्रियः ॥३६॥
पुत्रवत् परमेशानि ध्यानादेव हि साधकः। यदा तु परमेशानि परिपूर्णां प्रपूजयेत् ॥३७॥
प्रयच्छन्ति तदैवास्य खेचरीसिद्धिमुत्तमाम्। चतुःषष्टिर्यतः कोट्यो योगिनीनां महौजसाम् ॥३८॥
चक्रमेतत्समाश्रित्य संस्थिता वीरवन्दिते। आदौ सम्बन्धिनि पदे मध्ये बीजाष्टकं बहिः ॥३९॥
कुलाङ्गनाभोगरङ्गे जायतेऽनङ्गवत् प्रिये। करशुद्ध्यादिविद्यानामेकैकं परमेश्वरि ॥४०॥
रुद्रयामलतन्त्रे तु कर्म प्रोक्तं मया पुरा। तद्ध्यानैर्मदनो भूत्वा पाशाङ्कुशधनुःशरैः ॥४१॥
क्षोभयेत् सुरलोकस्थाः पातालतलयोषितः। तथैव शाक्तैर्देवेशि त्रिपुरीकृतविग्रहः ॥४२॥
साधयेत् सिद्धगन्धर्वदेवविद्याधरानपि। तत्र शाक्ता महावज्रप्रस्तारजनिताः शराः ॥४३॥
मादनास्त्वादिपरतः सर्वाधस्तान्नियोजिताः। आद्यन्तगो महापाशः पौरुषेयः प्रकीर्तितः ॥४४॥
रुद्रशक्तिः कुण्डलाख्या माया स्त्रीपाश उच्यते। तुरीयमरुणावर्गाद् द्वितीयमपि पार्वति ॥४५॥
पुंस्त्रीकोदण्डयुगलं कामाग्निव्यापकोऽङ्कुशः। इति।

शक्तिकूट का साधन—अब शक्ति बीज का साधन कहता हूँ। शक्ति बीजस्वरूपा देवी सृष्टि और संहार करती है। सृष्टि से संहार तक का चिन्तन अपने शरीर में साधक दूसरा गरुड़ हो जाता है। उसे देखकर नाग भी जड़वत् हो जाते हैं। वह दाहकों में अमृत सार, धीर धारा धरोपम होता है। स्थिर कृत्रिम शङ्काख्य विषि-उपविष का नाशक होता है। दुष्ट व्याधि ग्रहसमूह के लिये डाकिनीरूप होता है एवं भूत-प्रेत पिशाचों को साक्षार शिद के समान दिखायी पड़ता है अथवा जो इस सम्पूर्ण जन्ममण्डल, हृदय कमल एवं मुखमण्डल में पद्मराग के समान कान्ति वाली विद्या का चिन्तन करता है उसे अष्टगुण ऐश्वर्य थोड़े ही दिनों में ही प्राप्त हो जाते हैं। इसका मानसिक स्मरण या इसके नाम का स्मरण करने वाले साधक को मातृका चक्र ज्ञात हो जाता है। जैसे ही वह महात्रिपुर सुन्दरी विद्या का जप करता है वैसे ही मातृका चक्र एवं आज्ञा चक्र का संक्रमण उसके शरीर में हो जाता है। एवं सभी स्थान स्थित योगिनियों का प्रिय हो जाता है। जैसे ही अपने को उसका पुत्र मानकर साधक उसकी विधिवत् पूजा करता है, वैसे ही साधक को उत्तम खेचरी सिद्धि प्राप्त हो जाती है क्योंकि इस चक्र में चौंसठ करोड़ अमित तेज वाली योगिनियों का वास होता है। ये योगिनियाँ इस चक्र में स्थित रहती हैं। आदि में सम्बन्धित पद, मध्य में

बीजाष्टक और बाहर कुलाङ्गनाभोगरङ्ग रखने से साधक कामदेव के समान होता है। करशुद्धि आदि प्रत्येक विद्या का रुद्रयामल तन्त्र में विधिवत् वर्णन किया गया है। उसके ध्यान में मग्न होकर साधक पाश-कुश-धनुष-बाणों से स्वर्ग एवं पाताल की स्त्रियों को भी क्षुब्ध कर सकता है। इसी प्रकार शाक्त अपने को त्रिपुरारूप मानकर सिद्ध गन्धर्व देव विद्याधरों को सिद्ध करे। वहाँ पर शाक्त महावज्रप्रस्तारजनित बाण मादनादि को चारो ओर सबों के नीचे नियोजित करे। आदि एवं अन्त में स्थित महापाश को पौरुषेय कहते हैं, रुद्र शक्ति का नाम कुण्डलिनी है। माया को स्त्रीपाश कहते हैं। तुरीय अरुणवर्ग से दूसरा है। कोदण्डयुगल पुरुष-स्त्री हैं। व्यापक कामाग्नि अङ्कुश है।

ज्ञानार्णवे (१४ प०)—

गोरोचनादिभिर्द्रव्यैश्चक्रराजं समालिखेत्। अतीव सुन्दरीं रम्यां तन्मध्ये प्रतिमां शुभाम् ॥१॥
ज्वलन्तीं नामसहितां कामबीजविदर्भिताम्। चिन्तयेत्तु ततो देवि योजनैस्तु सहस्रशः ॥२॥
अदृष्टपूर्वा देवेशि श्रुतमात्रापि दुर्लभा। राजकन्याप्यदृश्या च भयलज्जाविवर्जिता ॥३॥
आयाति साधकं सम्यङ्मन्त्रमूढा सती प्रिया। चक्रमध्यगतो भूत्वा साधकश्चिन्तयेद्यदा ॥४॥
उद्यत्सूर्यसहस्राभमात्मानमरुणं तथा। साध्यमप्यरुणीभूतं चिन्तयेत् परमेश्वरि ॥५॥
अनेन क्रमयोगेन स्वयं कन्दर्पविग्रहः। सर्वसौन्दर्यसुभगः सर्वलोकवशंकरः ॥६॥
सर्वरक्तोपचारैश्च मुद्रासन्धितविग्रहः। चक्रं प्रपूजयेद्यस्य नामरूपविदर्भितम् ॥७॥
स भवेद्दासवद्देवि धनाढ्यो वापि भूपतिः। चक्रमध्यगतं कुर्यान्नाम यस्यास्तु योषितः ॥८॥
अदृष्टे वा महेशानि योनिमुद्राधरो बुधः। हठादानयते शीघ्रं यक्षिणीं राजकन्यकाम् ॥९॥
नागकन्यामप्सरसं खेचरीं वा सुराङ्गनाम्। विद्याधरीं दिव्यरूपामृषिकन्यां रिपुस्त्रियम् ॥१०॥
मदनोद्भवसन्तापां स्फुरज्जघनमण्डलाम्। कामबाणविभिन्नान्तःकरणां लोलचक्षुषम् ॥११॥
महाकामकलाध्यानयोगात्तु सुरवन्दिते। क्षोभयेत् स्वर्गभूर्लोकपातालतलयोषितः ॥१२॥
रोचनाभागमेकं तु एकं भागं तु कुङ्कुमम्। अथ भागद्वयं देवि चन्दनं मर्दयेत्समम् ॥१३॥
एकत्र तिलकं कुर्यात्त्रैलोक्यवशकारिणम्। अष्टोत्तरशतावृत्त्या मन्त्रयित्वा वशं नयेत् ॥१४॥ इति।

ज्ञानार्णव में कहा गया है कि गोरोचनादि द्रव्यों से चक्रराज अङ्कित करे। उसके मध्य में अतीव सुन्दरी मनोहर शुभ्र प्रतिमा बनाये। दीप्यमान कामबीज से विदर्भित नाम के साथ उसका चिन्तन करने से हजारों योजन पर स्थित पूर्व में न देखी गई एवं न सुनी हुई राजकन्या भी भय-लज्जाविहीन होकर मन्त्र से मोहित होकर साधक के समीप आ जाती है। चक्रमध्य में स्थित साधक उदीयमान हजारों सूर्य की आभा से युक्त स्वयं का एवं लाल वर्ण के साध्य का चिन्तन करता है तो इस प्रकार वह स्वयं कामदेव के समान रूपवान होकर समस्त लोक को वश में करने वाला हो जाता है। मुद्रासन्धित विग्रह होकर सभी लाल उपचारों से चक्र का पूजन जिस नाम-रूप को मध्य में रखकर करता है, वह धनाढ्य या राजा भी साधक का दास हो जाता है। जिस अदृष्ट योषिता का नाम चक्रमध्य में रखकर योनिमुद्रा बाँधकर साधक पूजा करता है, वह यक्षिणी या राजकन्या भी बलपूर्वक शीघ्र उपस्थित हो जाती है। नागकन्या, अप्सरा, खेचरी, देवाङ्गना, विद्याधरी, दिव्यरूपा ऋषिकन्या एवं शत्रु की स्त्रियाँ भी कामाग्नि से दग्ध होकर, फड़कते जघन मण्डल वाली, कामबाण से विद्ध मन वाली एवं चंचल नेत्रों वाली होकर शीघ्र ही उसके समीप आ जाती हैं। काम-कला के ध्यान से स्वर्ग, भूलोक, पाताल तलवासिनी सुन्दरियाँ भी क्षुब्ध हो उठती हैं। एक भाग गोरोचन, एक भाग कुङ्कुम, दो भाग चन्दन का मर्दन करके सबको एक में मिलाकर तिलक लगाने से तीनों लोक वश में हो जाते हैं, तिलक लगाने के पहले उक्त लेप को एक सौ आठ जप मन्त्र से मन्त्रित करना चाहिये।

तिलकधारणम्

शारदायाम् (प०१२ श्लो०६५)—

भागद्वयं मलयजं भागं कुङ्कुमकेसरम्। एकं गोरोचनायाश्च तानि पिष्ट्वा हिमाम्भसा ॥१॥

विदध्यात्तिलकं भाले यान् पश्येद्यैर्विलोक्यते। यान् स्पृशेत्स्पृश्यते यैर्वा वश्याः स्युस्तस्य तेऽचिरात् ॥२॥
कर्पूरकपिचोराणि समभागानि कारयेत्। चतुर्भागा जटामांसी तावती रोचना मता ॥३॥
कुङ्कुमं सप्तभागं स्याद् द्विभागं चन्दनं मतम्। अगरुर्नवभागः स्यादिति भागक्रमेण तु ॥४॥
हिमाद्रिः कन्यकापिष्टमेतत् सर्वं सुसाधितम्। विधाय तिलकं भाले कुर्याद्भूमिपतीन्नरान् ॥५॥
वनितां मदगर्वाढ्यां मदोन्मत्तान्मतङ्गजान्। सिंहव्याघ्रान् महासर्पान् भूतवेतालराक्षसान् ॥६॥
दर्शनादेव वशयेत् तिलकं धारयन्नरः। इति।

शारदातिलक में कहा गया है कि दो भाग मलयज चन्दन, एक भाग एवं कुङ्कुम केशर, एक भाग गोरोचन को शीतल जल से पीसकर ललाट में तिलक लगाकर साधक जिसे देखता है, जिसे स्पर्श करता है अथवा जिसके द्वारा उसका स्पर्श किया जाता है,वे सभी उसके वश में हो जाते हैं। कपूर एवं कपिचोर सम भाग चार भाग जटामांसी उतना ही गोरोचन, सात भाग कुङ्कुम, दो भाग चन्दन, नव भाग अगर लेकर शीतल जल से कन्या के द्वारा सबको मर्दित कराकर साधित करके ललाट में तिलक लगाने से साधक भूपतियों, मदगर्विता वनिताओं, मदोन्मत्त हाथियों, सिंहों, व्याघ्रों, महासर्पों, भूत-वेताल-राक्षसों को देखते ही अपने वश में कर लेता है।

आन्तरोपासना

अन्यच्च—
समस्तमन्त्रकल्पोक्तैर्ध्यानहोमजपादिभिः। ये प्रयोगास्तु कथिताः सिद्ध्यन्त्येव न संशयः ॥१॥

इति वचनात् मन्त्रान्तरेषु उक्तप्रयोगा अपि श्रीविद्याविषये विज्ञेयाः। अपि च—
तावदग्नौ न होतव्यं तत्र तन्त्रोदितं तथा। यावदात्ममहावह्नौ मनःपूर्णाहुतिं हुनेत् ॥१॥
स्वयं हि त्रिपुरा देवी लौहित्यं तद्विमर्शनम्। पाशाङ्कुशौ तदीयौ तु रागद्वेषात्मकौ स्मृतौ ॥२॥
शब्दस्पर्शादयो बाणा मनस्तस्या भवेद्धनुः। वश्यप्रतीतिजनिकाः शक्तयश्च क्रमेण याः ॥३॥
पूर्वपश्चिमकौ द्वारौ प्राणापानात्मकौ स्मृतौ। कालाद्दामाभिभूतानि नवचक्राण्यनुक्रमात् ॥४॥
कर्मधीन्द्रियचक्रस्थां देवीं संवित्स्वरूपिणीम्। विश्वासहस्तपुष्पैस्तु पूजयेत् सर्वसिद्धये ॥५॥

इत्यादिवचनैरान्तरोपासना श्रेष्ठेति बोध्यते। होम इत्युपलक्षणं जपादीनामप्यान्तरत्वमुक्तमेव तन्त्रान्तरेषु। प्रयोगाणामानन्त्याद् ग्रन्थबाहुल्यं मन्यमानेन दिङ्मात्रमेतत् प्रदर्शितम्। 'एतादृशानि कर्माणि यः कुर्यात् साधकोत्तमः। आत्मसंरक्षणार्थाय मृत्युञ्जयजपं चरेत्' इति प्रायश्चित्तश्रवणात् प्रयोगाणामनिष्टोत्पादकत्वमवधार्यते। तस्माद्विद्वद्भि-र्निष्कामोपासना कर्तव्येति सिद्धम्।

समस्त मन्त्रकल्पोक्त ध्यान-होम-जप से जिन प्रयोगों को कहा गया है, वे सभी सिद्ध होते हैं। इसमें कोई संशय नहीं है। यह भी कहा गया है कि तब तक अग्नि में तन्त्रोक्त हवन न करे जब तक आत्मा-स्थित अग्नि में मन की पूर्णाहुति न हुई हो। स्वयं को त्रिपुरादेवी मानकर उसके लौहित्य वर्ण का चिन्तन करे। उसके पाश-अंकुश को राग-द्वेषात्मक होने का स्मरण करे। शब्द स्पर्शादि को उसका बाण एवं मन को उसका धनुष समझे। उसकी समस्त शक्तियाँ वशकारिणी है; ऐसा चिन्तन करे। पूर्व-पश्चिम के द्वारों को प्राण एवं अपान माने। नव चक्रों को सामयिक दण्ड से अभिभूत माने। कर्म-बुद्धि-इन्द्रियों को चक्रस्थ देवी स्वरूपिणी माने। विश्वास हस्त फूलों से सभी सिद्धियों के लिये पूजन करे।

इन वचनों से आन्तरोपासना की श्रेष्ठता का बोध होता है। इन कर्मों को जो साधक करता है, वह अपनी रक्षा के मृत्युञ्जय का जप करे—इस प्रायश्चित्त का विधान दृष्ट होने के कारण प्रयोग अनिष्ट के जनक होते हैं, यह स्पष्ट होता है; इसलिये विद्वानों को निष्काम उपासना करनी चाहिये, यही ग्रन्थाभिप्राय ध्वनित होता है।

अधिकारिकथनम्

अथाधिकारिणः कुलार्णवे—

निरस्तदेह(हेय)कर्माणो मानवाः पुण्यकर्मिणः । समुत्पन्नकुलज्ञाना भजन्ते मां दृढव्रताः ॥१॥
पूर्णाभिषेकसहिता वेदशास्त्रार्थतत्त्वगाः । देवतागुरुभक्ताश्च नियताश्चार्चनप्रियाः ॥२॥
कुलागमरहस्यज्ञा देवताराधनोत्सुकाः । गुरूपदेशसंयुक्ताः पूजयेयुः कुलेश्वरीम् ॥३॥
शुद्धात्मा चातिसंहृष्टः क्रोधलौल्यविवर्जितः । पैशुन्यतादिविमुखः सुमुखस्तर्पयेच्छिवाम् ॥४॥
कौलाः पशुव्रतस्थाश्चेत् पक्षद्वयविडम्बकाः । केशसंख्या स्मृता यावत्तावत्तिष्ठन्ति रौरवे ॥५॥ इति।

कुलार्णव में कहा गया है कि जो पुण्यात्मा मनुष्य ऐहिक कर्मों को छोड़कर कुलज्ञान से सम्पन्न हो दृढ़तापूर्वक व्रत का अनुष्ठान कर मेरा भजन करते हैं, वे पूर्णाभिषिक्त होकर वेद एवं शास्त्र के अर्थ तथा तत्त्वों को जानकर, देवता एवं गुरु में भक्ति रखकर अर्चन के अनुरागी होते हैं। कुलागम के रहस्य को जानने वाले एवं देवता के आराधन में उत्सुक होकर गुरु के उपदेश संयुक्त हो जो कुलेश्वरी की पूजा करते हैं, वे शुद्धात्मा अतीव प्रसन्न एवं क्रोध-लोभ से रहित होकर पैशुन्यता आदि से विमुख होकर सुन्दर मुख से शिवा का तर्पण करते हैं। पशुव्रतस्थ यदि कौल दोनों पक्षों के विडम्बक होते हैं तो वे केशसंख्या के बराबर रौरव नरक में वास करते हैं।

पञ्चमुद्रावासना

अन्यच्च—

लिङ्गत्रयविशेषज्ञः षडाधारविभेदकः । पीठस्थानानि चागत्य महापद्मवनं व्रजेत् ॥६॥
आमूलाधारमागत्य ब्रह्मरन्ध्रं पुनः पुनः । चिच्चन्द्रमण्डले शक्तिसामरस्यसुखोदयः ॥७॥
व्योमपङ्कजनिःष्यन्दसुधापानरतो नरः । मधुपो मांससंभोक्ता त्वितरे मद्यपायिनः ॥८॥
पुण्यापुण्यपशुं हत्वा ज्ञानखड्गेन योगवित् । परे शिवे लयेच्चित्तं पलाशीति निगद्यते ॥९॥
मनसा चेन्द्रियगणं नियम्यात्मनि योजयेत् । मत्स्याशी स भवेद्देवि शेषास्तु प्राणिघातकाः ॥१०॥
अथाहन्तां तथासत्यं पैशुन्यं क्रोधमेव च । अन्नं नानाविधं चैतदेतानग्नौ जुहोति यः ॥११॥
कुलीनशेषभोक्ता स्यात्तदन्ये त्वघभोजिनः । पराशक्त्यात्ममिथुनसंयोगानन्दनिर्भरः ॥१२॥
य आस्ते मैथुनं तत् स्यादपरं स्त्रीनिषेवकः । अप्रबुद्धाः पराशक्तिः प्रबुद्धा कौलिकस्य या ॥१३॥
शक्तिं तां सेवयेद्यस्तु स भवेच्छक्तिसेवकः । इत्यादिपञ्चमुद्राणां वासनं कुलनायिके ॥१४॥
ज्ञात्वा गुरुमुखाद् देवि सेवते यः स उच्यते । इति।

अपि च 'मध्यानां मुखमुद्रादिकल्पनापरिकल्पनम्। ध्यानं शक्तिसमावेशः सा महत्सामरस्यता' इत्यादिवचनैरान्तरोपासनानिष्ठितस्यैव च बाह्यपूजादिष्वधिकारो द्योत्यते नान्यस्य। अयमधिकारश्चातुर्वर्ण्यसाधारण्येनेति वचनानि पूर्वं प्रदर्शितानि । दक्षिणामूर्तिसंहितायाम् (३१ प० ३५ श्लो०)—

दीक्षितस्याधिकारोऽत्र नान्यस्य परमेश्वरि । पुस्तके लिखितं दृष्ट्वा स्वयं ज्ञात्वा करोति यः ॥१॥
ब्रह्महत्यासुरापानस्वर्णस्तेयादिपातकैः । लिप्यते नात्र संदेहो नरके निवसत्यसौ ॥२॥ इति।

अन्यत्रापि 'गुरुं विलङ्घ्य शास्त्रेऽस्मिन्नाधिकारः सुरेष्वपि' इति।

लिङ्गत्रय के विशेषज्ञ एवं षडाधार के विभेदक पीठस्थानों में आकर महापद्मवन में निवास करते हैं। मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक बार-बार आकर चित् चन्द्रमण्डल में शक्तिसामरस्य सुख का अनुभव करते है। आकाशकमल से निःसृत सुधा के पान में वे निरत रहते हैं। मधुपायी एवं मांसभोक्ता तो दूसरे मद्य पीने वाले होते हैं। पुण्य-पाप के पशु को मानस खड्ग से मारकर योगी परशिवा में चित्त को लय किये रहते हैं वे पलाशी कहे जाते हैं। मन और इन्द्रियों को नियन्त्रित करके जो

उन्हे आत्मा से जोड़ते हैं, वे ही मत्स्याशी होते हैं। शेष प्राणिघातक होते हैं। अहङ्कार, असत्य, पैशुन्य एवं क्रोधरूपी विविध अन्न से जो अग्नि में हवन करते हैं, वे ही कुलीन होकर शेषभोक्ता होते हैं, दूसरे पापभोजी होते हैं। पराशक्ति एवं अपने संयोगरूपी आनन्द में जो मग्न रहते हैं वही वास्तविक मैथुन करते हैं, दूसरे तो स्त्री के सेवकमात्र होते हैं। अप्रबुद्ध पराशक्ति एवं प्रबुद्ध कौलिक की शक्ति का जो सेवन करता है, वही शक्तिसेवक होता है। इस प्रकार पञ्चमुद्राओं की वासना को गुरुमुख से जानकर जो सेवा करता है, वही कुलसाधक होता है। इस प्रकार आन्तरोपासना में जो रत रहते हैं, वे ही बाह्य पूजा के अधिकारी होते हैं, दूसरे नहीं। यह अधिकार चारो वर्णों को समान रूप से प्राप्त है।

दक्षिणामूर्तिसंहिता में कहा गया है कि इसमें दीक्षित का ही अधिकार है, दूसरों को नहीं। पुस्तक में लिखित देखकर या स्वयं ज्ञात करके जो यह पूजा करता है, वह ब्रह्महत्या, सुरापान, स्वर्णचोरी जैसे पापों से लिप्त होता है और निःसन्देह वह नरक में निवास करता है। अन्यत्र भी कहा है कि गुरु के बिना इस शास्त्र में देवताओं को भी अधिकार नहीं है।

काम्यहोमविधिः

अथ काम्यहोमविधिः। तत्रादौ तन्त्रोक्तपरिपाट्याग्निचक्रं विचार्य सौम्यक्रूरग्रहमुखेष्वाहुतिप्रवेशं विज्ञाय शुभग्रहमुखप्रवेशदिने शुभहोममशुभग्रहमुखप्रवेशदिने चाशुभहोमारम्भं कुर्यात्। तत्परिज्ञानप्रकारस्तु—सूर्यस्थित-नक्षत्रमारभ्य चन्द्रस्थितनक्षत्रपर्यन्तं गणयित्वा प्रतिग्रहं त्रीणि त्रीणि नक्षत्राणि सूर्यादिनवग्रहेभ्यो विभज्य दद्यात्। तत्रादौ सूर्यस्ततो बुधस्ततः शुक्रस्ततः शनैश्चरस्ततश्चन्द्रस्ततो भौमस्ततो गुरुस्ततो राहुस्ततः केतुरिति ग्रहाणां क्रमो ज्ञेयः। अत्र यस्य त्रिके होमारम्भस्तन्मुखे तदाहुतिप्रवेशः, इत्यग्निचक्रपरिज्ञानप्रकारः। अत्र सौम्यहोमे—सूर्ये शोकः, बुधे धनागमः, शुक्रेऽभीष्टफललाभः, शनौ पीडा, चन्द्रे सौख्यं, भौमे बन्धनं, गुरौ धनप्राप्तिः, राहौ रोगः, केतौ मृत्युरिति ग्रहाणां फलानि।

काम्य हवन विधि—सर्वप्रथम तन्त्रोक्त परिपाटी से अग्निचक्र का विचार करके सौम्य एवं क्रूर ग्रह के मुखों में आहुति-प्रवेश जानकर शुभ ग्रह मुखप्रवेश के दिन शुभ होम एवं अशुभ ग्रह मुखप्रवेश के दिन अशुभ हवन का आरम्भ करे। इन सबों को जानने की विधि यह है कि सूर्य-स्थित नक्षत्र से आरम्भ करके चन्द्रस्थित नक्षत्र तक गणना करके प्रतिग्रह तीन-तीन नक्षत्रों को सूर्यादि नवग्रहों से विभाजित करके रखे। यहाँ पहले सूर्य तब बुध, तब शुक्र, तब शनि, तब चन्द्र, तब मङ्गल, तब गुरु, तब राहु, तब केतु—यह ग्रहों का क्रम होता है। जिस त्रिक में होमारम्भ होता है, उसके मुख में उस आहुति का प्रवेश होता है। सौम्य हवन में सूर्य में सूर्यमुख में आहुति का प्रवेश होने पर शोक, बुध में धनागम, कुङ्कुम अभीष्ट फललाभ, शनि में पीड़ा, चन्द्र में सौख्य, मङ्गल में बन्धन, गुरु में धनप्राप्ति, राहु में रोग एवं केतु में मृत्यु—ये ग्रहों के फल कहे गये हैं।

अथ स्वर्गमर्त्यपातालेषु वह्नेः स्थितिं विज्ञाय तत्फलानि च ज्ञात्वा काम्यहोमारम्भं कुर्यात्। तत्परिज्ञान-प्रकारस्तु—प्रतिपदादिहोमतिथिपर्यन्तं गणयित्वा तथा सूर्यवारादि होमारम्भवारपर्यन्तं च गणयित्वोभयत्र लब्धसंख्या-कानङ्कानेकोनत्रिंशाङ्कैर्मेलयित्वा जाताङ्कसमुदायं त्रिभिर्हत्वावशिष्टाङ्क एकश्चेदग्निः स्वर्गे वसति, द्वयं चेत् पाताले, शून्यश्चेत् मर्त्यलोके (इति पावकस्थितिं विज्ञाय तत्फलानि निर्दिशेत्। तत्र स्वर्गस्थिते वह्नावुत्पातः पाताले धनक्षयो मर्त्यलोक)स्थिते सकललोकप्राप्तिः। इत्थं वह्निचक्रं विज्ञाय प्रागुक्ते मण्डपे प्रागुक्तद्वादशराशिस्थानगतेषु नवसु कुण्डेषु प्रागुक्तमङ्गलामङ्गलरूपेषु प्रागुक्तविधिनाग्निस्थापनं कृत्वा प्रागुक्तजिह्वाभेदान् विज्ञाय यथोक्तद्रव्यैर्यथाविधि जुहुयात्।

स्वर्ग पृथिवी एवं पाताल में अग्नि की स्थिति को जानकर और उसके फल को जानकर काम्य हवन का प्रारम्भ करना चाहिये। उसके परिज्ञान का प्रकार यह है कि प्रतिपदों से होमतिथि तक एवं सूर्यवारादि से होमारम्भ वार तक गणना करके दोनों की लब्ध संख्या में उन्तीस संख्या मिलाकर प्राप्त अङ्कसमुदाय को तीन से भाग दे। एक शेष होने पर अग्नि का वास स्वर्ग में, दो शेष बचने पर पाताल में एवं शून्य शेष रहने पर अग्नि का वास पृथ्वी पर होता है। इस प्रकार पावक की स्थिति जानकर उनके फलों का इस प्रकार विचार करे—स्वर्गस्थित अग्नि में हवन से उत्पात, पाताल स्थित में होने से धनक्षय एवं पृथ्वी स्थित अग्नि में हवन होने से सकल लोक की प्राप्ति होती है। इस प्रकार अग्निचक्र को जानकर पूर्वोक्त मण्डप में पूर्वोक्त

बारह राशि स्थानस्थित नव कुण्डों में पूर्वोक्त मङ्गल-अमङ्गल रूप से पूर्वोक्त विधि से अग्नि स्थापित करके पूर्वोक्त जिह्वाभेदों को जानकर यथोक्त द्रव्य से यथाविधि हवन करे।

सौम्यहोमद्रव्याणि

तत्र सौम्यहोमद्रव्याणि ज्ञानार्णवे (१७.१५२)—

मालतीजातिकामल्लीकुसुमैर्मधुमिश्रितैः । घृतपूर्णैर्हुनेद् देवि वागीशत्वं प्रजायते ॥१॥
मूकस्यापि हि मूढस्य शिलारूपस्य नान्यथा । जपापुष्पैराज्ययुक्तैः करवीरैस्तथाविधैः ॥२॥
हवनान्मोहयेन्मन्त्री लोकत्रयनिवासिनः । कर्पूरं कुङ्कुमं देवि मिश्रं मृगमदेन हि ॥३॥
हवनान्मदनो देवि मन्त्रिणा विजितो भवेत् । सौभाग्येन विलासेन सामर्थ्येनापि सुव्रते ॥४॥
चम्पकैः पाटलैर्हुत्वा श्रियं प्रोल्लसिताम्बराम् । प्राप्नोति मन्त्री महतीं स्तम्भयेज्जगतीमिमाम् ॥५॥
श्रीखण्डं गुग्गुलं चन्द्रमगुरुं होमयेत्ततः । राजनागेन्द्रदवानां पुरन्ध्रीर्वशमानयेत् ॥६॥
सर्वलोका वशास्तस्य भवन्त्येव न संशयः । लाक्षाहोमाल्लभेद्राज्यं दारिद्र्यभरपीडितः ॥७॥
दुर्गोपसर्गशमनं पलत्रिमधुहोमतः । दूरस्थितानां देवेशि गुरुणा प्रोक्तमार्गतः ॥८॥
होमः कार्यो वश्यकामैरन्यथा निष्फलं भवेत् । रुधिराक्तेन छागस्य मांसेन निशि होमतः ॥९॥
मधुरत्रययुक्तेन गुरुणोक्तविधानतः । परराष्ट्रं महादुर्गं समस्तं स्ववशं नयेत् ॥१०॥
महापलेन देवेशि रिपोः सैन्यं विनाशयेत् । खेचरो जायते रात्रौ कृत्वा होमं चतुष्पथे ॥११॥
क्षीरं मधु दधि त्वाज्यं पृथग्हुत्वा वरानने । आयुर्धनमहारोग्यसमृद्धिर्जायते नृणाम् ॥१२॥
क्रमेण शैलजे क्षीरमधुभ्यां मृत्युनाशनम् । दधिमाक्षिकहोमेन सौभाग्यं धनमाप्नुयात् ॥१३॥
सितया केवलं होमो वैरिस्तम्भनकारकः । कमलैररुणैर्होमः सम्यक् संपत्तिदायकः ॥१४॥
रक्तोत्पलैर्जगद्वश्यं राजानो वश्यगाः क्षणात् । नीलोत्पलैर्महादुष्टा वशमायान्ति नान्यथा ॥१५॥
श्वेतोत्पलैः श्रियं वाचं लभते हवनात्प्रिये । श्वेतैस्तु होमात्कमलैर्लक्ष्मीं सौभाग्यमाप्नुयात्॥१६॥
कह्लारहवनान्मन्त्री सौभाग्यं च धनं लभेत् । पूर्णबदरहोमेन वशीकुर्यान्महीसुरान् ॥१७॥
मातुलिङ्गफलोद्भूतहोमेन क्षत्रिया वशे । नारङ्गफलहोमेन वैश्या वश्या भवन्ति हि ॥१८॥
कूष्माण्डफलहोमेन शूद्रा वश्यास्तथा परे । द्राक्षाफलैः सिद्धयोऽष्टौ लक्षहोमान्न संशयः ॥१९॥
कदलीफलहोमेन लक्षमात्रेण भूभृतः । वश्याः स्युर्दशसंख्याका भवन्त्येव न संशयः ॥२०॥
खर्जूरीफलहोमेन लक्षमात्रेण भूभृतः । वश्या विंशतिसंख्याका इत्याज्ञा पारमेश्वरी ॥२१॥
नारिकेलफलैर्होमात् समृद्धिर्जायते प्रिये । लक्षमात्रेण मन्त्रज्ञो राजापर इव प्रिये ॥२२॥
पक्वाम्रफलहोमेन लक्षमात्रेण सुन्दरि । चतुःसमुद्रपर्यन्तां मेदिनीं वशमानयेत् ॥२३॥
पनसस्य फलैर्होमाल्लक्षेण शतभूभुजः । वश्या भवन्ति देवेशि नात्र कार्या विचारणा ॥२४॥
तिलाज्यहोमाद् देवेशि कार्यसिद्धिर्भवेत्प्रिये । राजिकालवणाभ्यां तु दुष्टलोकान् वशं नयेत् ॥२५॥
कुङ्कुमेन हुते देवि त्रैलोक्यं वशमानयेत् । गुग्गुलस्य च होमेन सर्वदुःखानि नाशयेत् ॥२६॥
वैरिणो वशगाः शीघ्रं चन्दनस्यापि होमतः । रक्तचन्दनहोमेन वश्या हि पुरुषाः स्त्रियः ॥२७॥
कर्पूरस्य च होमेन वाग्वश्यं जायते नृणाम् । कस्तूरीहोमतो देवि राजानो राजमन्त्रिणः ॥२८॥
वश्या भवन्ति सकलाः परिवारयुताः प्रिये । तिलतण्डुलहोमेन शान्तिर्भवति मन्दिरे ॥२९॥
शर्करागुडहोमेन सितायुक्तेन मन्त्रिणः । त्रैलोक्यं वशमायाति धान्यसिद्धिमवाप्नुयात् ॥३०॥
नानाविधान्नहोमेन धान्यसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् । सोपस्करैश्च वटकैरुपसर्गान् विनाशयेत् ॥३१॥
बन्धूककुसुमैर्होमात् सर्वसत्त्वान् वशं नयेत् । जपापुष्पैर्जगद्वश्यं बाणपुष्पैश्च मोहनम् ॥३२॥
बकुलस्य हुनेत्पुष्पैः सौभाग्यं जायते महत् । दशाङ्गधूपहोमेन सौभाग्यमतुलं लभेत् ॥३३॥ इति।

सौम्य होम द्रव्य—ज्ञानार्णव में कहा गया है कि मालती, जाति एवं मल्लिकापुष्प को मधुमिश्रित करके हवन करने से गूंगे, मूर्ख और पत्थरों को भी वागीशत्व प्राप्त होता है। यह अन्यथा नहीं है जपापुष्प एवं करवीर पुष्प को घी से पूरित कर हवन करने से तीन लोक का सम्मोहन होता है। कपूर कुङ्कुम में कस्तूरी मिलाकर हवन करने से कामदेव वश में होता है जिससे सौभाग्य, विलास और सामर्थ्य की प्राप्ति होती है। चम्पा और पाटल के हवन से उड़ते वस्त्रों वाली लक्ष्मी की प्राप्ति होती है साथ ही इससे साधक सारे संसार को स्तम्भित कर सकता है। श्रीखण्ड गुग्गुल कपूर अगर से हवन करने पर राजकन्या, नागकन्या एवं देवकन्या को साधक वश में कर सकता है। इससे सारा संसार ही उसके वश में हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। दारिद्र्यभय से पीड़ित होने पर भी लाक्षा से हवन करने पर साधक राज्य प्राप्त करता है। पल त्रिमधु के हवन से दुर्ग उपसर्ग का शमन होता है गुरु द्वारा कथित विधि से दूरस्थित लोगों को वशीभूत करने के लिये हवन करना चाहिये; अन्यथा एतदर्थ कृत हवन निष्फल होता है। रुधिराक्त छागमांस को त्रिमधु से मुक्त करके रात में गुरु द्वारा उक्त विधान से हवन करने पर परराष्ट्र एवं महादुर्ग सभी वश में होते हैं। महापल से हवन करने पर शत्रुसैन्य नष्ट होता है। रात में चौराहे पर हवन करने से होता आकाशगामी होता है। दूध दही मधु आज्य से पृथक्-पृथक् हवन करने से मनुष्य को आयु-धन-आरोग्य एवं समृद्धि की प्राप्ति होती है। क्रमशः दूध-मधु से हवन करने पर मृत्यु का नाश होता है। दही-मधु से हवन करने पर सौभाग्य और धन मिलते हैं। केवल मिश्री से हवन करने पर वैरियों का स्तम्भन होता है। लाल कमल के हवन से सम्पत्ति मिलती है। लाल कुमुद के हवन से राजागण तत्काल वश में होते हैं। नील कमल के हवन से महादुष्ट भी वश में आते हैं, श्वेत कुमुद के हवन से लक्ष्मी-सरस्वती दोनों मिलती है। श्वेत कमल से हवन करने पर लक्ष्मी और सौभाग्य की प्राप्ति होती है। कल्हार के हवन से साधक को सौभाग्य और धन का लाभ होता है। पूरे वैर के हवन से ब्राह्मण वश में होते हैं। मातुलुङ्ग फलों के टुकड़ों से हवन करने पर क्षत्रिय वश में होते हैं। नारङ्गी के हवन से वैश्य वशीभूत होते हैं। कूष्माण्ड के टुकड़ों से हवन करने पर शूद्र वश में होते हैं। द्राक्षाफल से एक लाख हवन करने पर आठो सिद्धियाँ मिलती हैं। केला से एक लाख हवन करने पर दश दिक्पाल वश में होते हैं। खजूर से एक लाख हवन करने पर बीस राजा वश में होते हैं। नारियल के टुकड़ों से हवन करने पर समृद्धि होती है। इसके एक लाख हवन से साधक दूसरे राजा के समान होता है। एक लाख हवन पके आम से करने पर चारों समुद्रों तक विस्तृत भूमि अर्थात् सम्पूर्ण पृथ्वी वश में होती है। कटहल फलखण्डों के हवन से सौ राजा वश में होते हैं। तिल और गोघृत के हवन से सभी कार्यों की सिद्धि होती है। राई और नमक के हवन से दुष्ट जन वश में होते हैं। कुङ्कुम के हवन से तीनों लोक वश में होते हैं। गुग्गुल के हवन से सभी दुःखों का नाश होता है। चन्दन के हवन से वैरी वश में होते हैं। लाल चन्दन से हवन करने पर स्त्री-पुरुष वश में होते हैं। कपूर से हवन करने पर मनुष्यों के वश में वाणी होती है। कस्तूरी से हवन करने पर राजा-राजमन्त्री सपरिवार वश में होते हैं। तिल-चावल से हवन करने पर घर में शान्ति होती है। शक्कर, गुड़, मिश्री के हवन से तीनों लोक वश में होते हैं एवं धन-धान्य-सिद्धि की प्राप्ति होती है। अनेक अन्न के हवन से धान्य-सिद्धि होती है। उपस्करसहित बड़ों के हवन उपद्रवों की शान्ति होती है। बन्धूक पुष्प के हवन से सभी सत्त्व वश में होते हैं। अड़हुल पुष्प के हवन से संसार वश में होता है। बाणपुष्प के हवन से मोहन होता है। वकुलपुष्प से हवन करने पर महान् सौभाग्य मिलता है। दशांग धूप से हवन करने पर अतुल सौभाग्य प्राप्त होता है।

कुलमूलावतारे—

मांसी शिवा कौशिकसर्जमज्जाभागाः समं वृक्षरुजः क्रमार्धम्।
शैलेयमुस्ताकरजं च कुष्ठं सर्वार्थखण्डः कथितो दशाङ्गः ॥१॥ इति।

तथा—

जम्बूफलैः स्त्रियो वश्याः कूष्माण्डैर्दैत्यकन्यकाः। श्रीफलैरतुला लक्ष्मीः पत्रैर्वा सुरवन्दिते ॥३४॥
इक्षुखण्डैः सुखावाप्तिस्तद्रसाद्राजकन्यकाः। वश्या भवन्ति देवेशि नारिकेलजलेन वा ॥३५॥
केवलं घृतहोमेन वरदाः सर्वशक्तयः। इति।

कुलमूलावतार में कहा गया है कि जटामासी, शिवा, कौशिक, सर्ज का मज्जा समभाग, वृक्षत्वक् अर्द्धभाग, शैलेय

(शिलाजीत), मुस्ता, करञ्ज, कूठ और सर्वार्थखण्ड—ये दशांग धूप कहे गये हैं।

जामुन से हवन करने पर स्त्रियाँ वश में होती हैं। कूष्माण्ड के हवन से दैत्यकन्या वश में होती है। श्रीफल या पत्तों से हवन करने पर अतुल लक्ष्मी मिलती है। ईख के टुकड़ों से हवन करने से सुख और उसके रस से या नारियलजल से हवन करने पर राज कन्याएँ वश में होती हैं। केवल घी से हवन करने पर सभी शक्तियाँ वरदायिनी होती हैं।

विद्याहोमविधानम्

तथा तन्त्रराजे (३२ प०)—

अथ होमं प्रवक्ष्यामि ललिताविद्यया शिवे। येन मर्त्योऽपि भुवने प्रख्यातो देवतासमः ॥१॥
तद्विधानं शृणु प्राज्ञे द्रव्यकालादिभेदतः। प्रोक्तेषु नवकुण्डेषु तत्तत्कर्मसु चोदिते ॥२॥
जुहुयादुक्तमार्गेण तत्राग्निध्यानपूर्वकम्। शुक्लप्रतिपदारम्भात् पूर्णान्तं कमलैर्हुनेत् ॥३॥
कैरवैर्हवनात् तेषु दिनेषु श्रियमाप्नुयात्। मधुरत्रयसंसिक्तैः पुष्पैररप्यरुणैः शुभैः ॥४॥
अखण्डितैरब्दमात्रान्नरो नृपतिसंनिभः। तेष्वेव दिवसेष्वब्जैः सितैस्तद्धवनाद् घृतैः ॥५॥
कह्लारैर्हवनात्तेषु दिनेषु धनधान्यवान्। तथैवोत्पलहोमेन श्रियमाप्नोति पुष्कलाम् ॥६॥
अरुणैरुत्पलैर्होमात्कन्यकां समवाप्नुयात्। केतकैर्हवनात्तेषु दिनेषु श्रियमाप्नुयात् ॥७॥
सौभाग्यं कीर्तिमारोग्यमवाप्नोत्यर्चनादपि। तैः षड्भिः कुङ्कुमक्षोदाप्लुतैस्तद्दिनहोमतः ॥८॥
अचलां च श्रियं प्राप्य सुखी जीवति भूतले। तैश्चन्दनाक्तैर्हवनात्तद् दिनेषु यथाविधि ॥९॥
पुत्रदासीदासयुतश्चिरं जीवति मानवः। तैरेवेन्दुद्रवाक्तैस्तु होमात् कन्दर्पसन्निभः ॥१०॥
नारीजनैः सह नरो दीर्घायुर्बहु जीवति। कृष्णप्रतिपदारम्भाद् दर्शान्तं जुहुयाच्च तैः ॥११॥
घृताक्तैरब्दमात्रेण निःसपत्ना लभेच्छ्रियम्। तेष्वेव दिवसेष्वग्नौ गुडैः क्षौद्राप्लुतैर्हुनेत् ॥१२॥
कान्तिलक्ष्मीजयारोग्ययुतो जीवति भूतले। द्राक्षाभिर्दुग्धसिक्ताभिस्तद् दिनैर्हवनान्नरः ॥१३॥
क्षीराहारी चिरं भूमौ जीवत्यकलुषाशयः। खर्जूरीफलहोमेन त्रिमध्वक्तेन तद् दिनैः ॥१४॥
आयुरारोग्यविजयसंपन्नां श्रियमश्नुते। कदलीफलहोमेन तथा तद्दिवसेषु च ॥१५॥
पुण्यकीर्तिर्नृपैर्मान्यो जीवेद्वर्षशतं सुखी। नारिकेलफलक्षोदैः सिताक्षौद्रसमन्वितैः ॥१६॥
हवनात्तद् दिनैरिष्टमखिलं समवाप्नुयात्। तैरिक्षुवारिसंसिक्तैर्हवनात् तद्दिनेषु वै ॥१७॥
वासांसि नानावर्णानि महार्हाणि लभेत सः। सर्वैश्च तैस्त्रिमध्वक्तैर्हवनाच्छ्रियमाप्नुयात् ॥१८॥
तैः सवत्ससितागव्यपयोक्तैर्हवनादपि। महिषीक्षीरसंसिक्तैर्होमादिष्टमवाप्नुयात् ॥१९॥
अजाक्षीरप्लुतैस्तैश्च तथाविक्षीरसंप्लुतैः। नारिकेलफलक्षोदक्षीराक्तैरपि तैर्हुनेत् ॥२०॥
तथा द्वादशभिर्द्रव्यैरेकैकैः संहतैस्तथा। नित्यशो हवनाद् दुग्धक्षौद्रसर्पिःसमन्वितैः ॥२१॥
संपन्नसस्यां पृथिवीमवाप्नोति स निश्चितम्। गोभूहिरण्यवासोभिः समृद्धो जीवति क्षितौ ॥२२॥
रविवारे सितान्नैस्तु क्षीराक्तैर्हवनात्तथा। अब्दादन्नसमृद्धिः स्याद् घृताक्तैर्वा मधुप्लुतैः ॥२३॥
सोमवारे सितोपेतैर्नारिकेलफलैर्हुतैः। संपन्नशस्यां पृथिवीमवाप्नोति सुनिश्चितम् ॥२४॥

तन्त्रराज में ललिता विद्या से हवन का विधान बताया गया है, जिसे करने से मनुष्य भी पृथ्वी पर प्रख्यात होकर देवता के समान हो जाता है। द्रव्य-काल आदि के भेद से उसका विधान इस प्रकार है—नव कुण्डों में तत्तत् कर्मानुसार अग्नि का ध्यान करते हुये कथित रीति से शुक्ल प्रतिपदा से पूर्णिमा तक कमल से हवन करे। उतने दिनों तक कैरव से हवन करने पर श्री की प्राप्ति होती है। मधुरत्रय से संसिक्त अखण्डित लाल फूलों से एक वर्ष तक हवन करने से मनुष्य राजा के समान हो जाता है। उतने ही समय तक श्वेत कमल, और घी और कल्हार से हवन करने पर होता धन-धान्य से युक्त होता है। इसी प्रकार कमल के हवन से पुष्कल श्री प्राप्त होती है। लाल कमल से हवन करने पर कन्या प्राप्त होती है। उतने ही समय तक

केतकी से हवन करने पर श्री की प्राप्ति होती है। सौभाग्य, आरोग्य एवं कीर्ति भी ललिता के अर्चन से प्राप्त होती है। इन छहों को कुङ्कुमलेप से प्लुत करके उतने ही समय तक हवन करने से होता अचल लक्ष्मी को प्राप्त करके पृथ्वी पर सुखपूर्वक जीवित रहता है। उन्हें चन्दनाक्त करके उतने ही समय तक हवन करने से पुत्र-दासी एवं दास से युक्त होकर चिरकाल तक जीवित रहता है। उन्हें इन्दुद्रव से सिक्त करके हवन करने से कामदेव के समान हो जाता है और पत्नी के साथ दीर्घायु होकर पुरुष बहुत समय तक जीवित रहता है। कृष्ण प्रतिपदा से अमावस्या तक उनको घृताक्त करके एक वर्ष तक हवन करने से अपनी अखण्ड श्री प्राप्त करता है। उन दिनों में अग्नि में गुड़ को मधु से प्लुत करके हवन करने से होता कान्ति-लक्ष्मी-जय एवं आरोग्य से युक्त होकर भूतल पर जीवित रहता है। दुग्धसिक्त द्राक्षा से उतने समय तक हवन करने से क्षीरहारी होकर पृथ्वी पर पापरहित होकर जीवित रहता है। खजूर को मधुरत्रय में मिलाकर उतने दिनों तक हवन करने से आयु-आरोग्य-विजय-सम्पन्न श्री प्राप्त करता है। उसी प्रकार केले से उतने दिनों तक हवन करने पुण्यकीर्ति राजा से सम्मानित होकर सौ वर्ष तक सुखी जीवन जीता रहता है। नारियल की लुगदी में सिता क्षौद्र मिलाकर हवन करने से समस्त कामनाओं को प्राप्त करता है। उनको ईखरस से संसिक्त करके उतने दिनों तक हवन करने से नाना वर्ण के वस्त्र एवं धन-सम्पत्ति का लाभ करता है। उन सबों को त्रिमध्वक्त करके हवन करने से श्री प्राप्त करता है। उनके साथ जीवित बछड़े वाली उजली गाय के दूध से हवन करने से अथवा भैंसे के दूध से संसिक्त करके हवन करने से मनोकामना को प्राप्त करता है। उन्हें बकरी के दूध से प्लुत करके तथा भेड़ के दूध से संप्लुत करके नारियल क्षोद क्षीराक्त करके भी हवन करे। साथ ही बारह द्रव्यों में से एक-एक से या सम्मिलित करके दूध-मधु-घी के साथ नित्य हवन करने से धान्य सम्पन्न पृथ्वी प्राप्त करता है। साथ ही गाय भूमि सोना वस्त्र से समृद्ध होकर पृथ्वी पर जीवित रहता है।

अङ्गारवारे क्षौद्राक्तैरन्नैर्होमाच्छ्रियं लभेत्। तैरिष्टभूमृण्मिलितैर्हवनात्तां महीं लभेत्॥२५॥
बुधवारे घृताक्तैस्तु होमेन तिलतण्डुलैः। श्रियं सकलकल्याणनिलयां लभतेऽब्दतः॥२६॥
गुरुवारे दुग्धसिक्तैः पनसास्थिपरागकैः। जुहुयादब्दमात्रेण लभते गेहमुत्तमम्॥२७॥
सितवारे नारिकेलक्षोदैः सितसमन्वितैः। गुडान्वितैर्वा जुहुयात् श्रिया सुचिरमेधते॥२८॥
शनिवारे तैलसिक्तैस्तिलैः शुद्धैस्तथेतरैः। हवनाल्लभते लक्ष्मीमब्दादतिमनोहराम्॥२९॥
तैः समस्तैः समस्ताक्तैर्जुहुयात्सप्तसु क्रमात्। तद्दिनैरिन्दिराढ्यः स्याद्विद्याहवनवैभवात्॥३०॥
तत्तद्दिनेषु तद्भक्त्या द्वौ द्वौ त्रींस्त्रीन् सुभोजयेत्। घृतक्षीरसिताक्षौद्रगुडापूपसमन्वितम्॥३१॥
अश्विन्यादिषु ऋक्षेषु नवस्वपि हुनेत्क्रमात्। शालिभिस्तण्डुलैर्मुद्गैर्माषैगौरितरैस्तिलैः॥३२॥
तथाविधैः सर्षपैश्च कोद्रवैरिन्दिराप्तये। क्षौद्रसर्पिस्तिलैर्दुग्धकेरोन्देक्षुरसाप्लुतैः॥३३॥
महिष्यजाविकाक्षीरप्लुतैस्तैर्नवसु क्रमात्। मघादिषु तथा होमं नवभिः स्यान्नवस्वपि॥३४॥
चणकैश्चणकान्नैश्च मुद्गान्नैः कृसरैस्तथा। माषान्नैश्च हरिद्रान्नैर्गुडान्नैः पायसैरपि॥३५॥
सुसिद्धान्नैस्त्रिमध्वक्तैः कीर्तिलक्ष्मीजयाप्तये। तथा मूलादिनवके नवभिर्जुहुयात्तथा॥३६॥
पृथुकैः सक्तुभिर्लाजैरिक्षुकाण्डैः पयःप्लुतैः। शालीचणकमुद्गोत्थैर्माषपिष्टतिलोद्भवैः॥३७॥
अपूपैर्मधुराभ्यक्तैर्विजयं कीर्तिमिन्दिराम्। आरोग्यमायुः सौभाग्यं मान्यतां च लभेद् ध्रुवम्॥३८॥
सिद्धयोगेषु यद्द्रव्यैर्जुर्हुयात् तत्समृद्धिमान्। तथामृताख्ययोगेषु जुहुयाद्रोगशान्तये॥३९॥
गुडूचीतिलदूर्वाभिस्त्रिमध्वाक्ताभिरादरात्। उच्चयोगेषु जुहुयादरुणैरुत्पलैरपि॥४०॥
उच्चैर्भवति सर्वेषां स्वकुलानां सुनिश्चितम्। पर्वताख्ये हुनेद्योगे यद् द्रव्यैस्तद्धि पर्वतम्॥४१॥
भवेदस्याचिरेणैव कालेन परमेश्वरि। अथान्यमद्भुतं होममाकर्णय वदामि ते॥४२॥
स्वक्षेत्रगे स्वोच्चगे वा जुहुयाद् ग्रहतृप्तये। पायसैर्घृतसिक्तैस्तु सितामिश्रैस्तु विद्यया॥४३॥
सर्वदा यो हुतविधिमेनं कुर्याद्यथाविधि। तत्तत्प्रोक्तेषु कालेषु ग्रहार्तिः स्यान्न तत्कुले॥४४॥

मासेषु जन्मत्रितये होमं कुर्याद्यथाविधि । दूर्वामृतातिलैर्नित्यं यावज्जीवं सुखी भवेत् ।।४५।।
तद्दिनेषु जपेद्विद्यां सहस्रं दिननित्यया । न तस्य कुत्रचित्कश्चित्कदाचित्क्लेशसंभवः ।।४६।।
तर्पणं कारयेच्चन्द्रवासितैर्मधुरैर्जलैः । सौरभाढ्यैः प्रसूनैश्च पूजयेद्वापि तद्दिने ।।४७।।
अवन्ध्यजन्मत्रितये स्यात्कदाचिन्न मान्त्रिकः । यदि स्यात्तस्य रोगादिपीडा भवति निश्चितम् ।।४८।।
उच्चस्थे वा स्वराशौ वा स्थिते चन्द्रे दिवाकरे । विद्यां जपेत्सहस्रं वा शतं वा पूजयेच्छिवाम् ।।४९।।
यस्तस्य रोगतो बाधा कदाचिन्न भवेद् ध्रुवम् । तस्मादुक्तेषु कालेषु तथा कुर्वन् सुखी भवेत् ।।५०।।
ग्रहरोगादिदारिद्र्यक्लेशयुक्तस्य मन्त्रिणः । मांत्रिकत्वं भवेल्लोके शोकहासास्पदं भवेत् ।।५१।।
पलाशपुष्पैश्च फलैः पत्रैः काण्डैश्च मूलकैः । हवनादब्दमात्रेण वाग्मी स्यात्कुण्ठवागपि ।।५२।।
अर्कपुष्पैस्त्रिमध्वक्तैर्होमादिष्टमवाप्नुयात् । मण्डलात्तस्य पत्रैश्च समिद्भिरपि मूलतः ।।५३।।

रविवार में श्वेत अन्न को दूध से प्लुत करके हवन से एक वर्ष में अन्नसमृद्धि मिलती है। घृताक्त या मधुप्लुत सितोपेत नारियल से सोमवार को हवन करने से धान्ययुक्त जमीन प्राप्त करता है। मङ्गलवार में मधु से संसिक्त अन्न से हवन करे तो श्री का लाभ होता है, उनमें इष्ट भूमि की मिट्टी मिलाकर हवन से उक्त भूमि प्राप्त होती है। बुधवार में घृताक्त तिलतण्डुल से हवन एक वर्ष तक करने से सभी कल्याण के आलयस्वरूप श्री की प्राप्ति होती है। गुरुवार में दुग्ध से सिक्त, कटहलबीज के चूर्ण से एक वर्ष तक हवन करने पर उत्तम घर प्राप्त होता है। शुक्रवार में नारियल क्षोद में मिश्री या गुड़ मिलाकर हवन करने से चिरस्थायी लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। शनिवार में तेल से सिक्त, तिल और शुद्ध अन्य को मिलाकर साल भर तक हवन करने से सुन्दर लक्ष्मी प्राप्त होती है। इन सबों को एक साथ मिलाकर क्रमशः सातो दिन रवि से शनि तक हवन करने पर साधक विद्या एवं हवन के वैभव लक्ष्मी से सम्पन्न होता है। उन सात दिनों तक भक्तिसहित दो-दो या तीन-तीन ब्राह्मणों को घी, दूध, मिश्री, मधु, गुड़, पूआ का भोजन कराना चाहिये।

अश्विनी आदि नक्षत्रों में नवों का हवन क्रम से करे। शालि, तण्डुल, मूँग, उड़द, उजला एवं काला तिल, लाल एवं पीला सरसों तथा कोदो से हवन करने पर लक्ष्मी प्राप्त होती है। मधु, गोघृत, तिल, गो, दूध, नारिकेलरस, इक्षुरस, भैंस का दूध, बकरी का दूध एवं भेंड़ के दूध से भिंगोकर नवों का क्रमशः हवन करना चाहिये। इसी प्रकार मघा आदि नक्षत्रों में भी नवों का नवों से हवन करे। चना, मूंग की खिचड़ी, उड़द की खिचड़ी, हरिद्रान्न, गुडान्न, खीर, मधुरत्रय में पके अन्न से हवन करने पर लक्ष्मी प्राप्त होती है। इसी प्रकार मूलादि नव नक्षत्रों में नवों से हवन करे। पृथुक, सत्तू, लाजा, ईखखण्ड, दूधप्लत शालि, चना, मूँग, पिष्ट उड़द, पिष्ट तिल, पिष्ट एवं अयूप को मधुराभ्यक्त करके हवन करने पर विजय, कीर्ति एवं लक्ष्मी प्राप्त होती है एवं आरोग्य, आयु, सौभाग्य एवं सम्मान की प्राप्ति होती है।

सिद्धयोगों में जिस द्रव्य से हवन होता है, उस द्रव्य की समृद्धि होती है। अमृत योग में उसी प्रकार के हवन से रोग का नाश होता है। अगुरु तिल दूब को त्रिमधुर से सिक्त करके हवन करने से भी रोगों का नाश होता है। उच्च योग में लाल कमल से हवन करने पर साधक सभी कुलों में उच्च होता है। पर्वत नामक योग में जिस द्रव्य से हवन होता है, वह द्रव्य पर्वत के बराबर प्राप्त होता है। बहुत थोड़े दिनों में ही ऐसा आश्चर्य प्राप्त होता है।

अब अन्य अद्‌भुत हवन को कहता हूँ। स्वगृही और उच्चस्थ ग्रह की तृप्ति के लिये खीर में घी मिलाकर या चीनी मिश्रित करके विद्या से हवन करे। इस प्रकार का हवन जो सर्वदा विधिवत् करता है, उसे उन कालों में ग्रहजन्य पीड़ा उसके कुल में नहीं होती। जन्ममास में दूब गुरुच और तिल—इन तीनों से जो हवन करता है, वह आजीवन सुखी होता है। उस दिन दिननित्या के साथ विद्या का जप भी यदि एक हजार करे तो उसे कहीं भी कभी भी कुछ भी क्लेश नहीं होता। कपूर से वासित मधुर जल से तर्पण करे और प्रभूत सुगन्धित फूलों से उस दिन पूजन करने से वह मन्त्रज्ञ अगले तीन जन्मों तक कदापि निःसन्तान नहीं होता एवं यदि रोगादि पीड़ा होती है तो उसका विनाश हो जाता है। उच्च राशि या अपने राशि में चन्द्र-सूर्य के होने पर विद्या का जप एक हजार करे या एक सौ करे शिवा का पूजन करे। ऐसा करने पर उसे कभी रोगबाधा नहीं होती।

इसलिये उक्त कालों में वैसा करने से साधक सुखी होता है। मन्त्रज्ञ को ग्रहबाधा या रोग आदि से क्लेश अथवा दारिद्र्य से युक्त होने पर लोक में उसका यान्त्रिकत्व होना उपहासास्पद होता है। पलाशपुष्प, फल, पत्र, काण्ड और मूल—इस पञ्चाङ्ग के हवन से साल भर में गूँगा भी वाग्मी हो जाता है। त्रिमधुराक्त अकवन के फूलों के हवन से इष्ट की प्राप्ति होती है। चालीस दिनों तक अकवन के पत्तों से एवं उसके जड़ की समिधा से हवन करने पर भी इष्ट की प्राप्ति होती है।

विल्वप्रसूनैस्तु फलैः पत्रैः काण्डैस्तथा हुनेत्। मूलैश्च लक्ष्मीसंसिद्ध्यै मा तदन्वयगा भवेत् ॥५४॥
पद्माक्षैर्मधुराभ्यक्तैर्होमात्तावद् दिनैर्नरः। इन्दिरां लभते रम्यां सर्वलोकचमत्कृताम् ॥५५॥
चम्पकैर्मधुसंमिश्रैर्जुहुयात्तद् दिनावधि। आढ्यः स्यादप्रजाः पुत्रानवाप्नोति गुणान्वितान् ॥५६॥
तैरेवाज्यप्लुतैर्होमान्मङ्गले तूच्चसंस्थिते। लभेत सर्वसस्याढ्यां भुवं भोक्ता च जायते ॥५७॥
तैः क्षीराक्तैर्हुतैश्चन्द्रे स्वोच्चगे तद्दिनैर्भवेत्। शतगुः साधकस्तद्वत्त्रिमध्वक्तैर्लभेत्त्रयम् ॥५८॥
पाटलैः क्षौद्रसंसिक्तैर्होमात् कन्यामवाप्नुयात्। तगरोत्थैरपि तथा लाजैश्च कुटजैरपि ॥५९॥
तैः क्षीरमिश्रैर्हवनाच्चतुर्भिर्लभते धनम्। अम्बराणि विचित्राणि महार्हाणि च तद्दिनैः ॥६०॥
शतपत्रैस्त्रिमध्वक्तैर्होमाल्लक्ष्मीमवाप्नुयात्। केसरैश्च कदम्बैश्च कुन्दैर्विचकिलैरपि ॥६१॥
मल्लिकामालिताजातीपुन्नागैश्च नमेरुभिः। जुहुयात् प्रथमारम्भे पञ्चम्यन्तं मधुप्लुतैः ॥६२॥
एकैकशः समस्तैश्च महालक्ष्मीमवाप्नुयात्। तैरेव क्षीरमिलितैर्होमात् स्वर्णमवाप्नुयात् ॥६३॥
तथाज्याक्तैश्च हवनाल्लभते भूषणैः श्रियम्। प्रसूनैः कर्णिकारोत्थैः क्षौद्राक्तैर्हवनाद्दिनैः ॥६४॥
उदितैरचलां लक्ष्मीमवाप्नोति सुनिश्चितम्। कह्लारै रक्तकुमुदैरुत्पलैः कमलद्वयैः ॥६५॥
प्राग्वन्नन्दादिपूर्णान्तमेकैकैर्वाथ पञ्चभिः। हवनाल्लभते लक्ष्मी सभूभूषणवाहनाम् ॥६६॥
त्रिमध्वक्तैस्तथैकैकैः सर्वैर्वा साधकोत्तमः। केतकीकुसुमैः क्षौद्रप्लुतैर्होमाच्च तद्दिनैः ॥६७॥
वासांसि लभते चित्राण्यनर्घाणि बहून्यपि। सितैः प्रसूनैः क्षीराक्तैर्होमादाप्नोति तद्दिनैः ॥६८॥
सितानि वासांसि तथा मुक्तादामानि रूप्यकम्। हुनेन्मरुवकैः क्षौद्रप्लुतैर्वाञ्छितसिद्धये ॥६९॥
तथा दमनकैः पत्रैर्हवनाच्छ्रियमश्नुते। यद्वर्णानि प्रसूनानि जुहुयाद्विद्यया प्रिये ॥७०॥
तद्वर्णान्येव वासांसि लभते साधको ध्रुवम्। मरिचैः सर्षपैस्तैलप्लुतैर्होमान्निशासु वै ॥७१॥
लज्जामानकुलत्यागलोलामिष्टां समानयेत्। पाटलीकुन्दमन्दारशेफालिकुसुमोद्भवैः ॥७२॥
चम्पकाशोकपुंनागनमेरुकुसुमैः शुभैः। हवनाद्वशयेत् सर्ववनिताः क्षौद्रसंप्लुतैः ॥७३॥
तैरेवाज्यप्लुतैर्होमाद् वशयेत् पुरुषानपि। तै राज्यलक्ष्मीं लभते घृताक्तैर्हवनान्निशि ॥७४॥
समस्तजीवभुवनं वशयेत्तैः सितान्वितैः। अन्नैर्घृताप्लुतैर्नित्यं हवनादन्नवान् भवेत् ॥७५॥
तथैव जुहुयान्नित्यमायुषे तिलतण्डुलैः। मध्यरात्रे तु लवणैः सुश्लिष्टपरिचूर्णितैः ॥७६॥
त्रिमध्वक्तैर्हुतैः सर्वान्वशयेदङ्गनाजनान्। तथा दध्यन्वितैर्लोणैर्होमाद्द्वेष्यं वशं नयेत् ॥७७॥
तथा पुण्ड्रेक्षुतोयाक्तैर्हुतैः स्युर्वशगा नृपाः। आज्यैस्तु केवलैर्होमाद्दिनैरुक्तैर्धनी भवेत् ॥७८॥
नित्यशो घृतहोमेन श्रीमान् भोगी च जायते। स्नातोऽनुलिप्तः स्रग्वी च सितगन्धस्रगम्बरः ॥७९॥
संपूज्य देवीं तुष्टात्मा संस्कृते हव्यवाहने। सवत्सायाः सिताया गोः पयसि द्विगुणे पचेत् ॥८०॥
प्रस्थमात्रं तण्डुलं तु शालिजं सितमेव च। सितदुग्धघृतोपेतं कृत्वा वै सिक्थकं महत् ॥८१॥
गृहीत्वा पाणिना विद्यां जपित्वा शतवारकम्। श्रियं मे देवि देहीति प्रोक्त्वा काष्ठोज्ज्वलेऽनले ॥८२॥
हुत्वा समाप्य पूजां तु तथा भुक्त्वा तु तद्दिनम्। मौनी तु गमयेदब्दात् श्रियं प्राप्नोति पुष्कलाम् ॥८३॥
निरन्तरं नित्यशश्च जुहुयाच्चेत्तदन्वयम्। न कदापि रमा मुञ्चत्यद्भुता मन्त्रशक्तयः ॥८४॥

बेल के फूल, फल, पत्ता, काण्ड और जड़ को त्रिमधुराक्त करके हवन करने से स्थिर लक्ष्मी प्राप्त होती है। मधुराक्त कमलगट्टे से चालीस दिनों तक हवन करने से सभी लोकों को चमत्कृत करने वाली रम्य लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। उतने ही दिनों तक मधुराक्त चम्पा से हवन करने पर प्रजा से रहित को भी बहुत से गुणवान पुत्र प्राप्त होते हैं। मंगल के उच्चस्थ होने पर आज्य प्लुत चम्पा के हवन से सभी धान्यों से भरपूर भूमि मिलती है और संसार में वह उसका भोग करता है। चन्द्रमा के उच्चस्थ होने पर चम्पा को क्षीराक्त करके हवन करने से भी वही फल मिलता है। त्रिमधुराक्त चम्पा के हवन से भी वैसा ही फल मिलता है। मधु से संसिक्त गुलाबफूल के हवन से कन्या से विवाह होता है। तगर, लावा, कुटज को दूध से मिश्रित करके हवन से धनलाभ होता है एवं विचित्र वस्त्र तथा बहुमूल्य पदार्थ प्राप्त होते हैं। त्रिमध्वक्त शतपत्री के हवन से लक्ष्मी मिलती है। केसर, कदम्ब, कुन्द, विचकिल, मल्लिका, मालती, जाती, पुन्नाग एवं नमेरु को मधु से प्लुत करके प्रतिपदा से पञ्चमी तक हवन करे। प्रत्येक से अलग-अलग या सबों को मिलाकर हवन करने से महालक्ष्मी मिलती है। उन्हीं को दूध-मिश्रित करके हवन से सुवर्ण प्राप्त होता है।

आज्याक्त उन फूलों से हवन करने पर आभूषण और धन प्राप्त होता है। मधु से अक्त कर्णिकार फूल से हवन सूर्योदय में करने से अचला लक्ष्मी प्राप्त होती है। कल्हार, रक्त श्वेत कुमुद, रक्त श्वेत कमल से पूर्ववत् नन्दा तिथि से प्रारम्भ करके पूर्णिमा तक हवन से धन-भूषण-वाहन प्राप्त होते हैं। मधुरत्रय से अक्त ऊपर वर्णित फूलों में से एक-एक से अलग या सबों को एक साथ मिलाकर हवन करने से भी वे ही फल प्राप्त होते हैं। उपरोक्त दिनों में मधुप्लुत केतकी से हवन करने पर विविध प्रकार के चित्र-विचित्र वस्त्र प्राप्त होते हैं। दूधमिश्रित श्वेत पुष्पों से उक्त दिनों में हवन करने से श्वेत वस्त्र, मोतियों की माला एवं रूपये प्राप्त होते हैं। मधुप्लुत मरुवकफूलों के हवन से इष्टसिद्धि होती है। दमनक के पत्तों के हवन से श्री की प्राप्ति होती है। विद्या उच्चारणपूर्वक जिन वर्णों के फूलों से हवन होता है, उन्हीं वर्णों के वस्त्र साधक को मिलते हैं। सरसों तेल से प्लुत मरिच से रात में हवन करने पर लज्जा-मान एवं कुल को त्यागकर इच्छित स्त्री लोलायित होकर साधक के पास आती है। पाटल, कुन्द, मन्दार, शेफाली, चम्पा, अशोक, पुंनाग, नमेरु के शुभ फूलों को मधु से संल्पुत करके हवन करने पर सभी स्त्रियाँ वश में होती हैं। उन्हें गोघृत से प्लुत करके हवन करने पर पुरुष वश में होते हैं। उनको घृताक्त करके हवन करने से राज्य लक्ष्मी प्राप्त होती है। उनमें चीनी मिलाकर हवन करने से सभी जीव वश में होते हैं। उन्हें घी से प्लुत करके नित्य हवन करने से अन्नवान होता है। उसी प्रकार नित्य तिल-तण्डुल के हवन से आयु की वृद्धि होती है। मध्यरात्रि में सुश्लिष्ट चूर्णित नमक में मधुरत्रय मिलाकर हवन करने पर सभी स्त्री-पुरुषों को वश में किया जा सकता है। दधिमिश्रित नमक के हवन से शत्रु वश में होता है। पुण्ड्रेक्षुरस मिश्रित नमक के हवन से राजागण वश में होते हैं। उक्त दिनों में केवल गोघृत से हवन करने पर होता धनी होता है। गोघृत के नित्य हवन से श्रीमान् एवं भोगी होता है। स्नान करके चन्दन लगाकर माला पहनकर श्वेत गन्ध माला वस्त्र धारण कर देवी का पूजनकर तुष्टात्मा संस्कृत अग्नि में बछढ़े वाली उगली गाय के दुगुने दूध में प्रस्थ मात्र शालिचावल एवं चीनी से खीर पकायें। उसमें चीनी दूध घी मिलाकर पिण्ड बनाकर उसे हाथ में लेकर एक सौ बार विद्या का जप करके 'श्रियं मे देवि देहि' कहकर काष्ठ प्रज्ज्वलित अग्नि में पूर्णाहुति देकर पूजा करके भोजन करे एवं उस दिन मौन रहे। इस प्रकार करने से एक वर्ष में पुष्कल श्री प्राप्त होती है। इस प्रकार के नित्य हवन से लक्ष्मी उसका त्याग कभी नहीं करती; क्योंकि मन्त्रों की शक्तियाँ अलौकिक होती हैं।

पायसैर्जुहुयात् पूर्णास्वर्कवारेषु साधकः। निवेदयेच्च पूजायामब्दादाढ्यतमो भवेत् ॥८५॥
सवत्सारुणवर्णाया गोः क्षीरान्नवनीतकम्। तद्दिनान्नं तु कह्लारप्रसूने निक्षिपेत्ततः ॥८६॥
तदुद्धृत्य हुनेदग्नौ भौमवारे तदुच्चके(गे)। काले तावद्दिनैर्लक्ष्मीं भूषा(म्या)ढ्यां लभते ध्रुवम् ॥८७॥
तथा धवलरूपाया नवनीतं सिताम्बुजे। निधायादाय मौनेन हुनेदग्नौ भृगोर्दिने ॥८८॥
सप्तवारप्रयोगेण महतीमाप्नुयाच्छ्रियम्। नृपमान्यां सर्वहृद्यां नानाभोगान्वितां शुभाम् ॥८९॥
तथारुणासमुद्भूतनवनीतं रवेर्दिने। निधाय विकचे पद्मे कर्णिकायां ततस्तु तत् ॥९०॥

जुहुयादष्टभिवरैराढ्यः स्यात्साधकः शिवे । कर्णिकारस्य पुष्पाणि तथा चम्पकजान्यपि ॥९१॥
जुहुयान्नवनीताक्तान्युच्चे स्वोच्चगते गुरौ । निरातङ्कामहार्य्यां च राजचौरापहारकैः ॥९२॥
प्राप्नोति महतीं लक्ष्मीं या तदन्वयगामिनी । केवलं नवनीतेन सितोपेतेन होमतः ॥९३॥
कीर्तिलक्ष्मीधनारोग्यविजयैरायुराप्नुयात् । बन्धूकैः किंशुकैश्चूतैस्त्रिमध्वक्तैर्हुतक्रिया ॥९४॥
सौभाग्यलक्ष्मीविजयकान्तिप्रज्ञावहा भवेत् । दध्यन्नहोमादन्नाढ्यः साधकः स्यात्त्रिमासतः ॥९५॥
आर्द्रेषु तालपत्रस्य खण्डेषु निजवाञ्छितम् । विलिख्य नवनीतेन समेतं जुहुयान्निशि ॥९६॥
मण्डलान्मासतो वारात्प्राप्नोत्येव स्ववाञ्छितम् । तथा पलाशपर्णेषु विलिख्य दरदैर्हुनेत् ॥९७॥
कुङ्कुमैश्चूतपत्रेषु लिखित्वा वा हुनेन्निशि । चन्दनैः पानसे पत्रे विलिख्य जुहुयात्तथा ॥९८॥
पक्षक्षोदैर्विलिख्येष्टं नागवल्लीदलेषु तैः । हुतैरवाप्नोति निजवाञ्छितं प्रोक्तकालतः ॥९९॥
कस्तूरीलिखितं त्विष्टं पत्रे चम्पकभूरुहैः । तैर्हुतैस्तदवाप्नोति तद्दिनैस्तद्विधानतः ॥१००॥
एलालवङ्गकक्कोलजातीफलसमन्वितैः । सितैरालिख्य च स्वेष्टं पत्रे पद्मसमुद्भवे ॥१०१॥
जुहुयात्तस्य संसिद्ध्यैर्बहुभिः किमिहोदितैः । नासाध्यमस्ति भुवने विद्याहोमैरुदीरितैः ॥१०२॥

रविवारी पूर्णिमा में पूजा के बाद पायस से हवन करने पर एक वर्ष में साधक धनाढ्य हो जाता है। सवत्सा लाल गाय के दूध के मक्खन में मिलाकर उस दिन के अन्न को कल्हार के फूलों में डाल दे। भौमवार में उसके उच्च होने पर फूलों को निकालकर हवन करे तो उस दिन से लक्ष्मी और प्रचुर भूषण का लाभ होने लगता है। उजली गाय के दूध के मक्खन में श्वेत कमल रखकर मौन होकर शुक्रवार में हवन करे। इस प्रकार के सात प्रयोग से महती श्री प्राप्त होती है। साधक नृपमान्य, सर्वप्रिय एवं नाना भोगों से संयुक्त होता है। लाल गाय के मक्खन रविवार में लेकर अविकसित कमल की कर्णिका में रखकर इस प्रकार आठ बार हवन करे तो साधक धनी हो जाता है। कर्णिकार या चम्पा के फूलों को मक्खन मिश्रित करके स्वगृही या उच्चस्थ गुरु के समय में हवन करे तो साधक निःसन्दिग्ध रूप से राजा एवं चोरों से न हस्तगत की जानेवाली लक्ष्मी प्राप्त करता है और वह लक्ष्मी उसके कुल की अनुगामिनी होती है। केवल मक्खन मिश्री के हवन से कीर्ति-लक्ष्मी-धन-आरोग्य-विजय एवं आयु की प्राप्ति होती है। बन्धूक; किंशुक एवं आममञ्जरी को मधुप्लुत करके हवन करने से साधक सौभाग्य, लक्ष्मी-विजय-कान्ति एवं बुद्धि को धारण करने वाला होता है। तीन माह तक दही और अन्न के हवन से साधक धनाढ्य होता है। आर्द्रा नक्षत्र में ताडपत्र के टुकड़ों पर निजवांछित लिखकर मक्खन के साथ रात में हवन करे तो हवन दिन से चालीस दिन या महीना भर में वाञ्छित प्राप्त होते हैं। पलाशपत्तों पर वाञ्छित लिखकर दरद के साथ हवन करे अथवा आम के पत्तों पर कुङ्कुम से वाञ्छित लिखकर रात में हवन करे अथवा कटहल के पत्तों पर चन्दन से लिखकर हवन करे अथवा पान के पत्तों पर पंख की कलम से मधु से लिखकर हवन करने से वाञ्छित मिलता है। चम्पक के पत्तों पर अभीष्ट को कस्तूरी से लिखकर हवन के दिन से अभीष्ट पूरा होता हैं। एला लवङ्ग कक्कोल जायफल में चीनी के घोल से कमल के पत्तों पर अपना इष्ट लिखकर हवन करने से साधक को बहुत सिद्धियाँ मिलती हैं। इस विद्या-हवन से संसार में कुछ भी असाध्य नहीं है।

क्रूरहोमविधानम्

अथ क्रूरहोमः। तत्र तन्त्रराजे (३१ प०)—

सूक्ष्मं परं च होमं ते कथितं परमेश्वरि । इदानीं स्थूलहोमं तु कथयाम्यरिमर्दनम् ॥१॥
तत्तत्कर्मोदिते कुण्डे कुर्याद्धोममुदीरितैः । विधानैर्द्वेषनिधनरोगनिग्रहचाटनम् ॥२॥
आयुर्दायं रिपोर्ज्ञात्वा लग्नोक्तर्क्षानुकूलतः । तदात्मकग्रहाणां च स्थितिमष्टकवर्गकम् ॥३॥
त्रयाणामानुकूल्येन कुर्यात्तदभिचारकम् । अन्यथा क्रूरकर्माणि कुर्वाणं नाशयन्ति हि ॥४॥
तान्येव कर्माणि ततस्तत्त्रयप्रातिकूल्यतः । कुर्यात्तद्देवताभक्तिमास्तिक्यं वर्तनं गुरुम् ॥५॥
तत्पार्श्ववर्तिमन्त्रज्ञानालोच्य रिपुनिग्रहम् । विदध्यादन्यथा शक्तिनैष्फल्यं वात्मनाशनम् ॥६॥

रिपोरष्टमलग्ने च काले त्वष्टमराशिगे। स्थाने कुर्यादनिष्टानि तद्विनाशाय साधकः ॥७॥
प्राच्यां मेषवृषौ वह्नौ मिथुनं दक्षिणे तथा। कुलीरसिंहमथ तन्निर्ऋत्यां कन्यका स्थिता ॥८॥
तुलाकीटौ पश्चिमतो धनुर्वायौ तु संस्थितम्। नक्रकुम्भावुत्तरतो मीन ईशे तु सुस्थितम् ॥९॥
एवं राशिक्रमं ज्ञात्वां कुर्यात्कर्माणि देशितः। काले तु पञ्च पञ्च स्युर्घटिकाः क्रमयोगतः ॥१०॥
चैत्रादिषु च मासेषु द्वादशस्वपि भास्करः। मेषादिराशिगो याति तथान्यैर्ग्रहमण्डलैः ॥११॥
देहेषु प्राणिनां तद्वदष्टाङ्गुलिविभेदतः। मूर्धादिचरणान्तं तु तान् द्वादशसु लक्षयेत् ॥१२॥
त्रयाणामानुगुण्येन कुर्यात्कर्माणि नान्यथा। शुभाशुभानि कर्माणि फलन्त्येवं कृते ध्रुवम् ॥१३॥
तथाहनि विषस्थानान्यमृतस्थानकानि च। ज्ञात्वा विदध्यात्पुत्तल्याः प्रयोगं सर्वतस्तथा ॥१४॥
सिते हृदि स्तनगले नासाक्षिणि तथा श्रुतौ। भ्रूशङ्खमूर्धमध्येषु तत्र भ्रूशङ्खमध्यतः ॥१५॥
कर्णे नेत्रे नासिकायां वर्तते पुरुषस्य तु। सव्यकण्ठे स्तनतटे हृदि नाभौ च गुह्यके ॥१६॥
जानुसन्ध्यंघ्रिपार्श्वेषु तथाङ्गुष्ठे च दक्षिणे। अंघ्रौ सन्धौ जानुगुह्ये नाभौ चेति सितेतरे ॥१७॥
तिष्ठेद्विषकला पुंसि स्त्रियां वामादि वर्तते। विषनाड्यां विषस्थाने वेधयेत्कण्ठकेन तु ॥१८॥
संकोचकाख्येन तथा तीव्रेणास्थिमयेन वै। बदरादिसमुत्थैर्वा तथायःसारसूचिभिः ॥१९॥
पुत्तल्यां यत्र तद्विद्धं तदङ्गं शत्रुदेहजम्। व्याधिना पीडितं कालादविधेयं भवेद् ध्रुवम् ॥२०॥
तत्र तेनार्तिना क्लिष्टो जीवितेशपुरं व्रजेत्।

क्रूर हवन—तन्त्रराज में कहा गया है कि सूक्ष्म हवन का विवेचन करने के पश्चात् अब शत्रुविनाशक स्थूल हवन का विवेचन किया जा रहा है। कर्म के अनुसार विहित कुण्ड में यथाविधि विद्वेषण, मारण, रोगनिग्रह एवं उच्चाटन कर्म करे। शत्रु की आयु, लग्नस्थित अनुकूल नक्षत्र एवं अष्टक वर्गस्थ ग्रह स्थिति तीनों के अनुकूल होने पर अभिचार कर्म करना चाहिये; उन तीनों को प्रतिकूल होने पर अभिचार कर्म क्रूर कर्मकर्ता का ही नाश कर देते हैं। उक्त तीनों को प्रतिकूल होने पर देवता में भक्ति एवं गुरु की आज्ञा का पालन कर गुरु से मन्त्र ज्ञान प्राप्त करके शत्रु का निग्रह करे; अन्यथा शक्ति की निष्फलता या अपनी मृत्यु होती है। शत्रु के लग्न से अष्टम भाव में राशिगत स्थान में यदि अरिष्ट ग्रह हों तो उनके विनाश के लिये पूर्व में मेष-वृष, अग्नि कोण में मिथुन, दक्षिण में कर्क-सिंह, नैर्ऋत्य में कन्या, पश्चिम में तुला-वृश्चिक, वायव्य में धनु, उत्तर में मकर-कुम्भ, ईशान में मीन—इस प्रकार राशि का क्रम जानकर साधक कर्म करे। तत्तत् काल में पाँच-पाँच घटी के योग से कर्म करे। चैत्रादि बारह महीनों में सूर्य मेषादि राशिगत हो एवं अन्य ग्रहमण्डल प्राणियों के देह में आठ-आठ अंगुल के भेद से मूर्धा से पैर तक उन बारह राशियों का स्थान मानकर तीनों के अनुगुणन से कर्म करे; इस प्रकार से करने पर शुभ-अशुभ कर्मों के फल मिलते हैं। इसी प्रकार शरीर में विषस्थान एवं अमृत स्थान को जानकर पुत्तली में तत्तुल्य प्रयोग करे। शुक्ल पक्ष में पुरुष का हृदय, स्तन, गला, नासा, आँख, कान, भ्रू, शङ्ख, मूर्धा, मध्य, भ्रू-शङ्ख मध्य से, कान से नाक, आँख, विषस्थान होता है। कृष्ण पक्ष में बायाँ कण्ठ, स्तन, हृदय, गुह्य, जानुसन्धि, पादपार्श्व, दाँयाँ अंगूठा, पादसन्धि, जानु, गुह्य, नाभि में विषकला का वास होता है। पुरुषों के दाँयें भाग में एवं स्त्रियों के बाँयें भाग में विषकला का वास होता है। विषस्थान में विषनाड़ी का सङ्कोचक कण्टक अथवा अस्थिनिर्मित तीक्ष्ण कण्टक अथवा बेर के काँटे अथवा लौहनिर्मित सूई से वेध करना चाहिये। पुत्तली के जिस अङ्ग में ये काँटे गड़ते हैं, शत्रु के उन्हीं अङ्गों में पीड़ा होती है। कालविधान से करने पर अवश्य होता है। इस पीड़ा से शत्रु पीड़ित होकर मर जाता है।

पुत्तलीकरणं वक्ष्ये शृणु निग्रहसिद्धये ॥२१॥
भौमशुक्रबुधाश्चन्द्रो भास्करः सौम्यभार्गवौ। मङ्गलो गुरुमन्दार्किगुरवोंऽशकराशिपाः ॥२२॥
नक्षत्राणि चतुष्पादान्येवमष्टोत्तरं शतम्। एतावत्यश्च पुत्तल्यस्त्वंशकक्रमयोगतः ॥२३॥
प्रथमे नवके चन्द्रभास्करांशकयोः क्रमात्। षोडश द्वादश तथा मानमङ्गुलिसंख्यया ॥२४॥

अन्यांशकेषु सर्वाश्च चतुर्दश समीरिताः। द्वितीये नवकेऽन्येषामध्यर्धाः स्युस्त्रयोदश ॥२५॥
तृतीये नवकेऽन्येषां त्रयोदश समीरितम्। चन्द्रार्कयोरेकविधः प्रोक्तसंख्याक्रमस्तथा ॥२६॥
पुत्तलीकरणे द्रव्यं चक्रिहस्तमृदान्वितम्। चितामृद्भस्मलवणं शुण्ठीपिप्पलिकायुतम् ॥२७॥
मारिचं गृहधूमं च लशुनं हिङ्गुसैन्धवम्। गैरिकं चेति कथितं पुत्तलीद्रव्यमीश्वरि ॥२८॥
साध्यर्क्षवृक्षैः पिष्टैश्च माषचूर्णैश्च सिक्थकैः। वैरिदेहजरोमाद्यैरुपेतैः पुत्तलीक्रिया ॥२९॥
पुत्तलीदैर्घ्यमानं तु कृत्वाष्टांशमथैकतः। शीर्षे त्रयात्कटेरूर्ध्वं त्रयात्पादद्वयं तथा ॥३०॥
कटिप्रपदयोरेकमंशमेवं तु पुत्तलीम्। विधाय तन्त्रे सर्वत्र प्रयोगानाचरेत्ततः ॥३१॥
पातालयोगे नीचाख्ये विषयोगे च मृत्युजे। नाशयोगे च दिनजमृत्यौ क्रकचयोगके ॥३२॥
चण्डीशचण्डायुधके महाशूले च काणके। रक्तस्थूणे कण्टकाख्ये स्थूणे पञ्चार्कसंज्ञके ॥३३॥
कुर्यात्प्रयोगान् प्रत्यर्थिभङ्गाय मरणाय च। निग्रहाय निरीक्ष्यैवं कुर्यात्सिद्धिमवाप्नुयात् ॥३४॥
वश्याकर्षणविद्वेषस्तम्भनोच्चाटमारणे। विदध्यात्पुत्तलीः सम्यक् चतस्रः प्रोक्तयोगतः ॥३५॥
पिष्टेन सिक्थेन तथा चक्रिहस्तमृदापि च। साध्यनक्षत्रवृक्षेणाप्युक्तलक्षणसंयुता ॥३६॥
आसने पादयोः स्थाने कुण्डमध्ये च साधकः। पिष्टमृत्तरुजाः खात्वा स्थापयेत् सिक्थमम्बरे ॥३७॥
कुण्डमध्यादुपर्यूर्ध्वपदां न्यक्शीर्षिकामपि। एवं साधारणं कृत्वा कुर्यात्कर्म समीरितम् ॥३८॥ इति।

निग्रहसिद्धि के लिये पुत्तलीकरण का विधान इस प्रकार है—बारह राशियों के स्वामी क्रमशः मंगल, शुक्र, बुध, चन्द्र, सूर्य, बुध, शुक्र, मङ्गल, गुरु, शनि, सूर्य एवं गुरु हैं। चतुष्पाद नक्षत्रों के एक सौ आठ पाद होते हैं। क्रमयोग से पुतली के अंश भी इतने ही होते हैं। प्रथम नवक में चन्द्र-सूर्य अंश के क्रम से सोलह बारह अंगुलिमान की संख्या है। अन्यों के चौदह अंश हैं। द्वितीय नवक में अन्यों के आधे-आधे मान से तेरह अंश हैं। तृतीय नवक में अन्यों के तेरह अंश होते हैं। चन्द्र और सूर्य की यह संख्या एक होती है।

पुत्तली बनाने के द्रव्य—कुम्हार के हाथ में लगी मिट्टी, चिता की मिट्टी एवं राख, नमक, सोंठ, पिप्पल, मरीच, गृहधूम, लहसुन, सेन्धा नमक और गेरु—ये पुत्तली बनाने के द्रव्य हैं। साध्य नक्षत्र के वृक्ष का चूर्ण, उड़दपिष्ट, सिक्थक, वैरी के रोमादि मिलाकर पुत्तली बनाये। पुत्तली की लम्बाई के अष्टांश से उसका शिर, तीन अंश से कटि के ऊपर और तीन अंश से दोनों पैर तथा एक-एक अंश से कटि से पैर तक का निर्माण करे। तदनन्तर सभी तान्त्रिक प्रयोग करे। नीच पाताल योग, विषयोग, मृत्युयोग, नाशयोग, दिनज मृत्युयोग, क्रकचयोग, चण्डीश, चण्डायुध, महाशूल, काणक योग, रक्तस्थूण, कण्टकस्थूण, पञ्चाक दोष में शत्रु के अंग-भंग एवं मारण तथा निग्रह के लिये प्रयोग करने से सिद्धि मिलती है। वशीकरण, आकर्षण, विद्वेषण, स्तम्भन, उच्चाटन, मारण में पुत्तली बनाकर प्रयोग करे। प्रोक्त चार योगों में पुत्तली सिक्थ, पिष्ट कुम्हार के हाथ की मिट्टी से बनाये। साध्य नक्षत्र वृक्ष से उक्त लक्षणयुक्त आसन पैर के स्थान पर, कुण्डमध्य में पिष्ट मिट्टी एवं उसके कण को गड्ढ़ा कर तथा सिक्थक को आकाश में स्थापित करे। पुत्तली को कुण्ड के ऊपर उलटा लटकाये। इन साधारण कर्मों के बाद विहित कर्म करे।

अथैतेषां विषमपदव्याख्या—तत्र निग्रहशब्दो युद्धादिषु पराजयविषयः। आयुर्दायमित्यादिनाशनमित्यन्तानां चतुर्णां श्लोकानामयमर्थः—रिपोरभिचारकाले ज्योतिःशास्त्रे होरास्कन्धोक्तप्रकारेण तस्य तत्कालीनायुर्दायं गोचराष्टकवर्गेषु ग्रहाणां स्थितिं च विचार्यैतत्त्रयानुकूल्ये सति तस्याभिचारकर्म कुर्यात्, तत्प्रातिकूल्ये तु न कुर्यात्। तमनवेक्ष्य क्रियमाणानि क्रूरकर्माणि यतः कुर्वाणमेव नाशयन्ति, अतः सर्वथा निरीक्ष्यैवं कुर्यात् इति। अथ च शत्रोर्देवताभक्तिमास्तिक्यमाचारं गुरुं तत्पार्श्ववर्तिनो मान्त्रिकानपि ज्ञात्वा तेषामानुभावादिकं तद्विद्भिरालोच्य तत्प्राबल्ये सति तदभिचारादिकं न कुर्यादिति।

रिपोरित्यादिश्लोकस्यायमर्थः—तत्र शत्रोर्जन्मर्क्षराशेश्चन्द्रलग्नराशेर्वाष्टमे लग्ने तदुदयकाले वक्ष्यमाण-द्वादशराशिस्थानेषु रिपोरष्टमराशिगे स्थाने तद्विनाशाय कर्म कुर्यादिति।

प्राच्यामित्यादिश्लोकद्वयस्यायमेवार्थः—तत्राभिचारादिकर्मकरणार्थं रचिते मण्डपादौ चतुरस्रीभूते नवधा विभक्ते पूर्वदिग्गतखण्डे उत्तरदक्षिणे क्रमेण मेषवृषयोः स्थानद्वयम्, आग्नेय्यां मिथुनस्य, दक्षिणे पूर्वपश्चिमक्रमेण कर्कसिंहयोः, नैर्ऋत्यां कन्यायाः, पश्चिमे दक्षिणोत्तरक्रमेण (तुलावृश्चिकयोः, वायव्यां धनुषः, उत्तरे पश्चिमपूर्वक्रमेण मकर)कुम्भयोः, ईशाने मीनस्येति। सुस्थितमित्यनेन कालचक्रस्थराशिचक्रवन्न भ्रमतीत्युक्तम्।

एवमित्यादिश्लोकस्यायमर्थः—उक्तक्रमेण देशेषु राशिस्थितिक्रमं ज्ञात्वा कालेऽपि सूर्याधिष्ठितराश्यादितः प्रतिराशि पञ्चपञ्चघटिका भ्रमयोगेन द्वादशराश्युदयकालेऽपि ज्ञात्वा क्रूरकर्माणि कुर्यादिति। राशीनां न्यूनाधिकभावस्तु देश(काल)योर्वैषम्याद् गणितशास्त्रेषूक्तः, तदत्राप्रयोजकमिति।

चैत्रादिष्वित्यस्य श्लोकस्यायमर्थः—चैत्रादिषु सौरमासेषु मेषाद्येकैकराशिभुक्तिक्रमेण ज्योतिःशास्त्रे तत्तद् ग्रहपरिवृत्तिप्रोक्तकालविशेषैश्चन्द्रादिग्रहमण्डलैः सह सूर्यो यातीति।

देहेष्वित्यादिश्लोकस्यायमर्थः—समस्तप्राणिनां देहेषु मेषादिमीनान्तक्रमेण अष्टाङ्गुलक्रमेण द्वादशस्थानेषु द्वादश राशीन् लक्षयेदिति।

त्रयाणामित्याद्यस्यायमर्थः—देशकालदेहात्मकानामानुकूल्येन वक्ष्यमाणकर्माणि कृतानि फलदानि भवन्तीत्यन्यथा न भवन्तीति।

तथेत्यादिश्लोकस्यायमर्थः—तत्राहनि प्रयोगदिवसे तथेत्यमृतस्थानकानीत्यत्रान्वयः। तानि तु पादाङ्गुष्ठ-पदगुल्फजानुलिङ्गनाभिहृत्स्तनगलनासाक्षिकर्णभ्रूशंखमूर्धाख्यानि, एतेषु स्थानेषु शुक्लपक्षे पूर्व(पुरुष)दक्षिण-पादाङ्गुष्ठमारभ्य मूर्धान्तं तत्पार्श्वस्थेषु पञ्चदशसु प्रोक्तेषु स्थानेषु तत्प्रथमादिपूर्णान्तं पञ्चदशसु तिथिषु प्रतितिथि एकस्मिन् स्थाने एका कलेति यथाक्रममारोहक्रमादमृतकलायाः स्थितिर्भवति। कृष्णपक्षे तु शिरोवामभागादिवाम-पादाङ्गुष्ठान्तेषु प्रोक्तेषु पञ्चदशसु स्थानेषु पूर्णानन्तरं प्रतिपदमारभ्यामावास्यान्तं पञ्चदशसु तिथिषु प्रतितिथि यथाक्रम-मवरोहणक्रमेणामृतकलास्थितिर्भवति। स्त्रीणां तु शिरोदक्षिणभागादि दक्षिणाङ्गुष्ठान्तं प्रोक्तेषु पञ्चदशसु स्थानेषु पूर्णानन्तरं प्रतिपदादिदर्शान्तं पञ्चदशसु तिथिषु प्रतितिथि यथाक्रममवरोहक्रमेण अमृतकलास्थितिर्भवति। दक्षपादां-गुष्ठादिशिरोदक्षिणभागान्तेषु प्रोक्तेषु पञ्चदशसु स्थानेषु दर्शानन्तरं प्रतिपदमारभ्य पूर्णान्तपञ्चदशसु तिथिषु प्रतितिथि यथाक्रममारोहक्रमेणामृतकलायाः स्थितिर्भवति। विषस्थानानि वक्ष्यमाणानि।

सितेत्यादिसार्धत्रयश्लोकस्यार्थः—तत्र शुक्लपक्षप्रथमा(तिपदा)दिदर्शान्तासु त्रिंशत्तिथिषु पुरुषाणां दक्षिणभागे हृदयादिमूर्धान्तेषु नवसु स्थानेषु पुनस्तद्वामपार्श्वे मूर्धादिपादाङ्गुष्ठान्तं पञ्चदशसु स्थानेषु पुनर्दक्षिणपादाङ्गुष्ठादिनाभ्यन्तं षट्सु स्थानेषु च संभूय त्रिंशत्स्थानेषु च स्त्रीणां तु तत्तत्तिथिषु तत्तत् स्थानेषु दक्षिणवामपार्श्वव्यत्ययक्रमेण विषपरिवृत्तिर्भवतीति।

विषनाड्यामित्यादिसार्धत्रयश्लोकस्यार्थः—तत्र सप्तविंशतिनक्षत्रेषु प्रतिनक्षत्रं ज्योतिःशास्त्रे प्रोक्त-विषात्मकनाडीचतुष्टयकाले शत्रुप्रतिकृतिरूपपुत्तल्या देहे प्रोक्तविषस्थाने संकोचकाख्यमत्स्यविशेषस्य देहोत्थती-व्रास्थ्ना बदरादिकण्टकैर्वा वेधात् शत्रोस्तत्तदङ्गव्याधिपीडातः प्रयोगस्य गौरवलाघवादिना शीघ्रं विलम्बेन वा मृत्युर्भवतीति।

भौमेत्यादिश्लोकस्यायमर्थः—तत्रार्किः शनैश्चरः। भौमादयो ग्रहा मेषादिद्वादशराशीनामश्विन्यादित्रित्रिन-क्षत्रोद्भवद्वादशद्वादशांशकानां च क्रमेणाधिपतय इत्यर्थः।

नक्षत्राणीत्यस्य श्लोकस्यार्थः—अश्विन्यादिसप्तविंशतिनक्षत्राणि प्रतिनक्षत्रं चतुश्चरणक्रमेणाष्टोत्तरशतचरणैरष्टोत्तरशतांशका भवन्ति, तेषामष्टोत्तरशतपुत्तलिका भवन्ति।

प्रथमेत्यादिश्लोकत्रयस्यायमर्थः—तत्राश्विन्याद्यश्लेषान्तनवनक्षत्रांशकेषु सूर्यसोमयोरंशकपुत्तलीनां क्रमेण द्वादशाङ्गुलं षोडशाङ्गुलं च मानं भवति। भौमादीनां चतुर्दशाङ्गुलमानं, मघादिज्येष्ठान्तद्वितीयनवकांशकानां सोमसूर्ययोः प्राग्वद्भौमादीनां सार्धत्रयोदशाङ्गुलमानं, मूलादिरेवत्यन्त्यतृतीयनवकांशकानां भौमादीनां त्रयोदशाङ्गुलमानं, सूर्यसोमयोः प्राग्वत्।

पुत्तलीकरणे इत्यादिश्लोकत्रयस्यार्थः—तत्र चक्रिहस्तमृत्, कुलालहस्तमृत्, चितामृद्भस्मसहितं लवणं च शुण्ठ्यादिचूर्णितं, लशुनं रसोनरसं, साध्यर्क्षवृक्षः साध्यनक्षत्रवृक्षः, सिक्तकं मधूच्छिष्टं, शत्रुदेहजरोमाद्यैरि-त्याद्यशब्देन तन्नखपादपर्शु च गृह्यते। अत्रायं निर्गलितार्थः। शत्रुनक्षत्रवृक्षेणैका पुत्तली कार्या, कुलालहस्तमृत्तिकयेतरा, माषपिष्टेनापरा, मधूच्छिष्टेन चेतरा, इति चतस्रः पुत्तल्यः सर्वकर्मसु कार्याः। तत्र क्रूरकर्मणि शुण्ठ्यादिद्रव्याष्टकं चिताभस्मादिभस्म शत्रुदेहरोमादीनि च यथायोग्यं चूर्णीकृतानि मृत्तिकायां पिष्टे मधूच्छिष्टे च मेलयित्वा पश्चात् तत्तत्पुत्तलिका कार्येति।

पुत्तलीदैर्घ्यमानमित्यादिश्लोकद्वयस्यार्थः—तत्र तत्तदंशकोक्तपुत्तलीदैर्घ्याङ्गुलमानमष्टधा विभज्य तेष्वेकांशेन कण्ठादूर्ध्वमंशेन कटिप्रदेशमंशत्रयेण पार्ष्णिभागादूर्ध्वमर्धांशेन प्रपदादिशेषाङ्गं च कुर्यादिति।

उपर्युक्त निग्रह शब्द युद्धादि में पराजय का विषय है। शत्रु के अभिचार काल में ज्योतिष शास्त्र के होरा स्कन्धोक्त प्रकार से उसके तत्कालीन आयु एवं अष्टक वर्ग में ग्रहों की स्थिति का विचार करे। उनके अनुकूल होने पर अभिचार कर्म करे। उनके प्रतिकूल होने पर न करे। उनकी उपेक्षा से क्रियामण क्रूर कर्म करने पर कर्ता का नाश होता है। अतः सर्वथा निरीक्षण के बाद कर्म करे। शत्रु के देवता भक्ति, सदाचार, गुरु एवं उसके समीपस्थ मन्त्रज्ञों को जानकर तथा अनुभाव आदि जानकर विद्वानों से उनका विचार कराकर उसके प्राबल्य होने पर अभिचारादि कर्म न करे। शत्रु का जन्म नक्षत्र राशि, चन्द्र लग्न राशि या लग्न से अष्टम में उसके उदय काल में वक्ष्यमाण बारह शशि स्थानों में शत्रु के अष्टम राशिगत स्थान में उसके विनाश का कार्य करे।

अभिचारादि कर्म के लिये रचित चतुरस्र मण्डप को नव भाग में बाँटे। पूर्व दिशा के खण्ड में उत्तर-दक्षिण में क्रम से मेष-वृष का, आग्नेय में मिथुन का, दक्षिण में पूर्व-पश्चिम क्रम से कर्क एवं सिंह का, नैर्ऋत्य में कन्या का, पश्चिम में दक्षिणोत्तर क्रम से तुला-वृश्चिक का, वायव्य में धनु का, उत्तर में पूर्व-पश्चिम क्रम से मकर-कुम्भ का तथा ईशान में मीन का स्थान है।

उक्त क्रम से राशि स्थिति क्रम जानकर काल में सूर्याधिष्ठित राशि से पाँच-पाँच घटी भ्रमयोग से राशि उदयकाल जानकर क्रूर कर्म करे। चैत्रादि सौर मासों में मेषादि एक-एक राशि भुक्ति क्रम से उस ग्रह की परिवृत्ति होने पर उस काल में चन्द्रादि ग्रहमण्डल के साथ सूर्य गमन करता है। सभी प्राणियों के देह में मेष से मीन तक आठ अंगुल के क्रम से बारह स्थानों में बारह राशियों का स्थान होता है।

देश-काल-देह एवं आत्मा की अनुकूलता में किये गये कर्म फलप्रद होते हैं, अन्यथा फल नहीं मिलते। प्रयोग दिवस में शरीर में अमृत स्थान का ज्ञान आवश्यक है। वे पादांगुष्ठ, गुल्फ, जानु, लिंग, नाभि, हृदय, स्तन, गला, नाक, आँख, कान, भ्रू, शङ्ख एवं मूर्धा में रहते हैं। शुक्ल पक्ष में पुरुष के दक्षिण पादाङ्गुष्ठ से प्रारम्भ करके मूर्धा तक पार्श्वों में पन्द्रह स्थानों में अमृतवास होता है। प्रतिपदा से पूर्णिमा तक पन्द्रह तिथियों में प्रति तिथि एक स्थान में एक कला का वास आरोहण क्रम से होता है। कृष्ण पक्ष में शिर के बाँएँ भाग में पादाङ्गुष्ठ तक के पन्द्रह स्थानों में पूर्णिमा के बाद प्रतिपदा से अमावस्या तक पन्द्रह तिथि से प्रतितिथि यथाक्रम अवरोह क्रम से अमृतकला की स्थिति होती है। स्त्रियों में शिर के दाँयें भाग से दाँयें पादाङ्गुष्ठ तक पन्द्रह स्थानों पूर्णिमा के बाद प्रतिपदा से अमावस्या तक पन्द्रह तिथियों में प्रतितिथि यथाक्रम अवरोहण क्रम से अमृत

कला की स्थिति होती है। दाँयें पैर के अंगूठे से शिर के दक्षिण भाग तक पन्द्रह स्थानों में अमावस्या के बाद प्रतिपदा से पूर्णिमा तक पन्द्रह स्थानों में प्रतितिथि यथाक्रम आरोहक्रम से अमृत कला रहती है।

शुक्ल पक्ष प्रतिपदा से अमावस्या तक तीस तिथियों में पुरुष के दाँयें भाग में हृदय से मूर्धा तक नव स्थानों में तब बाँयें पार्श्व में मूर्धा से पादाङ्गुष्ठ तक पन्द्रह स्थानों में पुनः दक्षिण पादाङ्गुष्ठ से नाभि तक छः स्थानों में क्रम से विष रहता है। स्त्रियों में तिथि के अनुसार उन-उन स्थानों में दक्षिण-वाम पार्श्व के व्यव्यय क्रम से विषपरिवृत्ति होती है।

सत्ताईस नक्षत्रों में प्रतिनक्षत्र ज्योतिःशास्त्र में कथित विष नाड़ीचतुष्टय काल में शत्रु पुत्तली में उक्त विषस्थान में सङ्कोच नामक मछली के शरीरस्थ तीक्ष्ण हड्डी या बैर के काँटे से वेध करने से के उन-उन अंगों में व्याधिजन्य पीड़ा होती है; प्रयोग की गुरुता-लघुता के अनुरूप शीघ्र या विलम्ब से उसकी मृत्यु होती है। भौमादि ग्रह मेषादि द्वादश राशि एवं अश्विनी आदि तीन-तीन नक्षत्र का उद्भव बारह-बारह अंश के क्रम से होता है। अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्रों में प्रति नक्षत्र चार चरण के क्रम से एक सौ आठ चरणों से एक सौ आठ अंश होते हैं। उनकी एक सौ आठ पुत्तली होती है।

अश्विनी से आश्लेषा तक नव नक्षत्रांश में सूर्य-सोम के अंश से निर्मित पुत्तली क्रम से सोलह अंगुल या बारह अंगुल मान की होती है। भौमादि का मान चौदह अंगुल है। मघा से ज्येष्ठा तक द्वितीय नवक में सूर्य चन्द्र के अंश पूर्ववत् भौमादि का साढ़े तेरह अंगुल मान है। मूल से रेवती तक तृतीय नवक में भौमादि का मान तेरह अंगुल तथा सूर्य सोम का मान पूर्ववत् होता है।

पुत्तली बनाने के लिये कुम्भकार के हाथ की मिट्टी, कुलाल के हाथ की मिट्टी, चिता की मिट्टी-राख, नमक, सोंठ, चूर्ण, लहसुन, साध्य नक्षत्र वृक्ष, सिक्थक (मोम), शत्रुदेह के रोम, नख, पाद, पर्शु आवश्यक द्रव्य होते हैं। आशय यह है कि शत्रुनक्षत्र वृक्ष से एक पुत्तली बनाये। कुलाल हाथ की मिट्टी से दूसरी, माषपिष्ट से तीसरी, मधूच्छिष्ट से चौथी—इस प्रकार से चार प्रकार की पुतलियाँ सभी कामों में बनती हैं। क्रूर कर्म में सोंठ आदि आठ द्रव्यों से, चिता भस्म, शत्रुदेह के रोमादि को यथायोग्य चूर्ण बनाकर मिट्टी पिष्ट एवं मोम में मिलाकर पुत्तली बनाये।

कर्मानुसार निर्मित लम्बी मूर्ति के अंगुल मान को आठ भाग में बाँटे। उसमें कण्ठ से ऊपर एक अंश, कटि प्रदेश में तीन अंश, पार्ष्णीभाग से ऊपर आधा अंश से पैर शेष एवं अङ्ग बनाना चाहिये।

सर्पशीर्षस्त्रुचा होमं कुर्यादशुभकर्मसु। वैरियोन्यसृजा कृत्वा चत्वरे जुहुयात्तथा ॥३९॥
त्रिकोणकुण्डे यमदिङ्मुखो भूत्वार्धरात्रके। श्मशाने निर्जने देशे विदध्यादभिचारकम् ॥४०॥
यत्राभिचारहोमं तु करोति भुवि साधकः। तत्राभितो नृपो रक्षां कारयेदात्मसिद्धये ॥४१॥
न चेदरातिर्नृपतिश्चारैर्ज्ञात्वा निहन्त्यमुम्। स्वराष्ट्रसन्धौ कुर्वीत न कुर्वीत स्वमण्डले ॥४२॥
यदि कुर्यात्प्रमादेन मान्त्रिकोऽज्ञानमोहितः। तद्राष्ट्रं पीडयन्त्येव शनकैर्वैरिभूभृतः ॥४३॥
अक्षद्रुमसमिद्धेऽग्नौ तत्फलैश्च करञ्जकैः। हैमीदलरसाक्तैस्तु होमाच्छत्रून् विनाशयेत् ॥४४॥
नक्तमालसमिद्धेऽग्नौ तत्फलैर्वा तथा हुनेत्। रिपुरुग्रोऽपि रोगार्तः प्रयाति यमसादनम् ॥४५॥
उन्मत्तकाष्ठैः प्रज्वाल्य वह्निं तद्बीजकैर्हुनेत्। तत्पत्राम्बुप्लुतैर्मासादरातिर्मृतिमाप्नुयात् ॥४६॥
आरग्वधसमिद्धेऽग्नौ तत्समिद्भिश्च तत्फलैः। वितस्तिमात्रैस्तैलाक्तैर्हवनाद्वैरिणो मृतिः ॥४७॥
अरुष्करसमिद्धेऽग्नौ तद्बीजैस्तद् घृताप्लुतैः। होमादरातेर्मृत्रेण ज्वरेण स्यान्मुतिर्ध्रुवम् ॥४८॥
सौवीराक्तैश्च कार्पासबीजैर्होमात्तु मण्डलात्। अरातीनामथान्योन्यकलहान्निधनं भवेत् ॥४९॥
सर्षपाज्याप्लुतैः शुण्ठीमागधीमरिचैर्हुनेत्। वैरिजन्मर्क्षवृक्षाग्नौ मण्डलात्तन्मृतिर्ज्वरात् ॥५०॥

सर्पाकार शिर वाले स्रुचा से अशुभ कर्मों में वैरी योनि के रक्त से बनाये गये चतुरस्र कुण्ड में हवन करे। त्रिकोण कुण्ड में दक्षिणमुख होकर आधी रात में श्मशान या निर्जन देश में अभि चार कर्म करे। भूमि पर जहाँ साधक अभिचार हवन

करता है, वहाँ चारो ओर आत्मसिद्धि के लिये राजा रक्षा करता है। नहीं तो शत्रु राजा अपने गुप्तचरों से पता लगाकर उसकी हत्या कर देता है। यह अभिचार कर्म अपने राष्ट्र की सन्धि में करना चाहिये, मण्डल में नहीं करना चाहिये। यदि अज्ञान मोहित मान्त्रिक प्रमाद से ऐसा करता है तब वैरी राजाओं से वह राष्ट्र पीड़ित होता है। रुद्राक्ष में समिधा की अग्नि में उसके फल एवं करञ्ज काष्ठ को हैमी दल रसाक्त करके शत्रुविनाश के लिये हवन करे। नक्तमाल के समिधा की अग्नि में उसके फल से हवन करने का फल भी वैसा ही है। इससे उग्र शत्रु भी रोगग्रस्त होकर यमलोक जाता है। धत्तूरकाष्ठ से ज्वलित अग्नि से धत्तूर बीज को उसके पत्तों के रस से प्लुत करके हवन करे तो महीने भर में शत्रु की मृत्यु हो जाती है। आरग्वध के लकड़ी की अग्नि में उसी की बित्ते भर की समिधा और उसके फलों को तेल में डूबोकर हवन करने पर शत्रु की मृत्यु होती है। अरुष्कर के लकड़ी की अग्नि में घृताक्त उसके बीजों से हवन करने पर वैरी की मृत्यु तीव्र ज्वर से होती है। खट्टी काञ्जी में डूबोये कार्यासबीज से हवन करने पर चालीस दिन के अन्दर शत्रु आपस में लड़कर मृत्यु को प्राप्त होते हैं। सर्षप एवं घी में डूबोकर शुण्ठी, मागधी एवं मरिच से शत्रु के जन्मनक्षत्र वृक्ष की अग्नि में हवन करने पर चालीस दिन के अन्दर ज्वर के प्रकोप से शत्रु की मृत्यु हो जाती है।

प्रागुक्तैः पुत्तलीं कृत्वा द्रव्यैरुक्तविधानतः। सर्षपारुष्करघृतसंसिक्तैर्जुहुयान्निशि ॥५१॥
प्राग्वद् हुत्वा तदङ्गैस्तु क्रुद्धचित्तोऽरुणाम्बरः। रक्तस्रग्गन्धपुष्पाक्तैर्होमाच्छत्रून् विनाशयेत् ॥५२॥
अरुष्करघृताभ्यक्तैस्तद्बीजैः सर्पशीर्षकैः। हवनाद्वैरिणो दाहज्वरप्राप्तिस्त्रिभिर्दिनैः ॥५३॥
वैरिनक्षत्रयोन्युत्थमांसैस्तद्रक्तसंप्लुतैः। हवनात्तत्तरूद्भूतसमिधां हवनादपि ॥५४॥
दिनैः कैश्चिद्रिपुः क्लिष्टो नाशमेति सुनिश्चितम्। द्रुमकुड्यनिपातेन निर्घातेनापि खड्गतः ॥५५॥
सलिले पावके सर्पदंशान्मत्तद्विपाद् गदात्। यक्षराक्षसगन्धर्वपिशाचैर्ब्रह्मराक्षसैः ॥५६॥
अन्यैर्वा कारणैः क्षिप्रं नाशमेति रिपुर्ध्रुवम्। निम्बपत्रैश्च कार्पासबीजैस्तत्काष्ठकाण्डजैः ॥५७॥
हवनात् सर्षपस्नेहसिक्तैर्विद्वेषणं भवेत्। नीचयोगे हुनेद्वह्नौ रिपुवृक्षसमेधिते ॥५८॥
तद्वृक्षखण्डैस्तैलाक्तैर्निशामध्ये रिपुर्दिनैः। उच्चाटितः प्रयात्येव मन्त्रशक्त्याभिताडितः ॥५९॥
मृत्युपत्रैश्च तत्काष्ठैस्तद्बीजैस्तच्छुचौ हुनेत्। अरातेर्दन्तिनो वाहा रोगैर्नश्यन्ति निश्चितम् ॥६०॥
गैरिकैः पुत्तलीं कृत्वा रिपोरष्टमराशिके। प्रागुक्तकण्टकाद्यैस्तु यदङ्गं वेधयेच्छनैः ॥६१॥
विषनाड्यां विषस्थाने तथैव यमकण्टके। अर्धप्रहरके शीर्षे प्रहरे वा शनैः शनैः ॥६२॥
अरातेस्तत्तदङ्गे स्यान्निधनं प्रहरादिना। ग्रन्थिभिर्वा कण्टकादिक्षतवृद्धिविदारणैः ॥६३॥
तन्नक्षत्रोक्तवृक्षोत्थपुत्तलीं स्थापितेरकाम्। गर्दभीमेहसलिले संस्थाप्य क्वाथयेच्छनैः ॥६४॥
रिपुर्दाहज्वरग्रस्तः शनैर्याति यमालयम्। मधूच्छिष्टेन तां कृत्वा तापयेन्निशि तां शनैः ॥६५॥
तेनोन्मादज्वरग्रस्तः प्रयाति निधनं शनैः। तां तत्कण्टकविद्धाङ्गीं खनेत्पितृगृहे निशि ॥६६॥
क्षणात् पिशाचाविष्टश्च रिपुर्याति यमालयम्। प्रागुक्तैरेव तद् द्रव्यैरशेषैः पुत्तलीं तथा ॥६७॥
निर्माय कुण्डमध्ये तां खात्वारातिमहीरुहैः। समिद्धेऽग्नौ तत्समिद्भिस्तैलाक्तैर्जुहुयान्निशि ॥६८॥
सन्निपातज्वरस्तस्य वक्रजिह्वोऽतिमूढधीः। प्रलपन् शनकैर्देहं त्यजन् याति यमालयम् ॥६९॥
तथाविधां तां प्रतिमां निखनेत्कृष्णपक्षके। नवम्यङ्गारदिवसे मातृगेहेऽग्रपीठके ॥७०॥
सप्ताहान्निधनं वैरी प्रयाति निशि ताडितः। भूताद्यैः शिरसि स्वीये निर्घातवदलक्षितम् ॥७१॥
सर्षपं माषचूर्णञ्च तिलं शालिजतण्डुलम्। पिष्ट्वा साध्यर्क्षवृक्षस्य शकलैरपि संयुतम् ॥७२॥
एरण्डबीजैर्मिलितं कृत्वा पुत्तलिकां ततः। तद्वक्षोऽन्तर्निधायारिनाम तालस्य पत्रगम् ॥७३॥
संजप्य तां स्पृशन् विद्यां तार्तीयप्रतिलोमतः। सहस्रवारं साध्यस्य वधर्क्षेऽष्टमराशिगे ॥७४॥
निबध्य तां पादयोस्तु भानुवृक्षोत्थतन्तुना। गृहीत्वा जीवहस्तेन तां जपन्निक्षिपेच्छुचौ ॥७५॥

हुत्वाग्नौ तैः सहस्रं तु तामूर्ध्वांघ्रिमवाङ्मुखीम् । तद्दिने तापतृष्णादिविह्वलेन ज्वरेण सः ॥७६॥
ग्रस्तदेहो लुठन् भूमौ विसंज्ञः प्रलपन् मुहुः । प्रयाति निधनं तूर्णं प्रयोगबलतः शिवे ॥७७॥
साध्यर्क्षवृक्षसंभूतां पुत्तलीमर्कदुग्धतः । वज्रीक्षीरेण चालिप्तां बद्धां प्राग्वदधोमुखीम् ॥७८॥
साध्यनामादिसंयुक्तां कुण्डादूर्ध्वं प्रलम्बयेत् । जुहुयात्तत्समिद्भिस्तु तत्क्षीराक्तैर्निशान्तरा ॥७९॥
ज्वरार्तिः स्यादरातेस्तु त्रिभिरेव दिनैस्ततः । यद्यस्ति तस्य रक्षेच्छा तां तडागोदरे खनेत् ॥८०॥
जम्बालमध्ये तेनास्मात्सौख्यं तस्य शनैः शनैः । तथा यदि न कुर्वीत चिरं रोगात्मको भवेत् ॥८१॥
तथा तामामभाण्डे तु निवेश्याङ्गारवासरे । चण्डिकायतने खात्वा तद्योनिं पुरतो बलिम् ॥८२॥
निहत्य दत्त्वारातिं तु निहन्यादुपसर्गकैः । स्वगेहे चुल्यधः खात्वा तदुपर्यग्निवर्धनात् ॥८३॥
अविच्छिन्नमरातेः स्याज्ज्वरादिगदसंभवः । तां तथा क्लृप्तरूपां तु रुरुजङ्घास्थिसंयुताम् ॥८४॥
निबध्य पूर्वसूत्रेण द्विषद्गेहे खनेन्निशि । राशौ तदष्टमे मासात् प्रयात्युच्चाटितोऽन्यतः ॥८५॥

पूर्वोक्त पुत्तली को उक्त द्रव्य से विधानपूर्वक बनाकर उसे सरसों, अरुष्कर एवं घी से संसिक्त करके रात में पूर्ववत् उसके अङ्गों से हवन करके क्रुद्ध चित्त होकर लाल वस्त्र धारण कर लाल मालायुक्त गन्ध पुष्प से हवन करने से शत्रु का विनाश होता है। अरुष्कर को घृताक्त करके उसके बीज से सर्पशीर्ष स्रुचा से हवन करने पर शत्रु ज्वरदाह से तीन दिनों में मर जाता है। वैरी नक्षत्र योनि के जानवर के मांस को उसके रक्त से प्लुत करके उस वृक्ष के लकड़ी की अग्नि में हवन करने पर कुछ दिनों में ही शत्रु का नाश हो जाता है। वृक्षों के डाल गिरने से, खड्ग से, घात करने से जल में डूबने से, अग्नि से, सर्प के काटने से, मदमत्त हाथी के प्रहार से, यक्ष राक्षस, गन्धर्व पिशाच ब्रह्मराक्षस के प्रकोप से या अन्य कारणों से निश्चित रूप से उस शत्रु का नाश होता है। नीम के पत्ते, कपास बीज कपास काष्ठ एवं टहनियों को सरसों तेल से सिक्त करके हवन करने से विद्वेषण होता है।

नीच योग में शत्रुवृक्ष की अग्नि में उसी के टुकड़ों को तैलाक्त करके मध्य रात्रि में शत्रुदिवस में हवन करे तो शत्रु मन्त्रशक्ति से ताड़ित होकर उच्चाटित हो जाता है। मृत्युपत्र, उसकी लकड़ी, उसके बीज से हवन करने पर शत्रु दाँत वाले पशुघात से या रोग से नष्ट हो जाता है। गेरु से पुत्तली बनाकर शत्रु की अष्टम राशि में पूर्वोक्त कण्टकादि से उक्त अङ्गों मे छेदन करे। विष नाड़ी में विष स्थान में उसी प्रकार यमकण्टक से अर्ध प्रहर के शीर्ष प्रहर में धीरे-धीरे शत्रु के अङ्ग में छेदन करे तो निधन होता है। प्रहर के प्रारम्भ में ग्रन्थि से कण्टकादि से क्षत-वृद्धि-विदारण से मृत्यु होती है। शत्रुनक्षत्र-वृक्ष से पुतली बनाकर गर्दभी के मूत्र में स्थापित करके उसके क्वाथ से धोने पर शत्रु दाहज्वर से ग्रस्त होकर धीरे-धीरे यमलोक जाता है। मोम से पुत्तली बनाकर उसे रात में आग पर तपाने से शत्रु उन्मादग्रस्त होकर धीरे-धीरे मर जाता है। उसी पुत्तली को काँटों से वेध कर रात में पितृगृह में गाड़ देने पर शत्रु तत्काल ही पिशाचाविष्ट होकर यमलोक में जाता है। पूर्वोक्त उसके द्रव्यों से पुत्तली बनाकर कुण्ड में उसे गाड़ कर शत्रुवृक्ष की समिधाग्नि में उसी की समिधा को तैलाक्त करके रात में हवन करे तो शत्रु सन्निपात ज्वरग्रस्त होकर वक्रजिह्व होकर व्यर्थ प्रलाप करते हुए धीरे-धीरे देह त्याग करके यमालय में जाता है। उसी प्रकार की प्रतिमा को कृष्णपक्ष में मङ्गलवारी नवमी में माता मदिर के अग्रपीठ में गाड़ दे तो सप्ताह भर में वैरी भूतादि से ताड़ित अपने शिर को पटक कर मर जाता है। सरसों उड़द चूर्ण तिल शालि तण्डुल पिष्ट में साध्य नक्षत्र वृक्ष के टुकड़ों को मिलाकर रेंड़ी का तेल मिलाकर पुत्तली बनाकर उसके वक्ष में ताड़पत्र पर शत्रु का नाम लिखकर गाड़ दे एवं उसे स्पर्श करते हुए तार्तीय विद्या का प्रतिलोम जप हजार बार करे; साध्य के वध नक्षत्र के अष्टमराशि में होने पर पुत्तली के पैरों को अनुवृक्ष की रस्सी से बाँध दे। उसे पकड़कर जीवहस्त से जप का निच्छेप अग्नि में करे। एक हजार जप उसकी ओर मुख करके करे। उस दिन से शत्रु ताप-तृष्णादि से विह्वल होकर ज्वरग्रस्त होकर, भूमि पर गिरकर, बेहोश होकर प्रलाप करते हुये इस प्रयोग बल से शीघ्र ही मर जाता है। साध्य नक्षत्र वृक्ष की पुत्तली को अकवन के दूध से या वज्री के दूध से लिप्त करके बाँध कर अधोमुख लटकाये। साध्य नामादि से संयुक्त करके कुण्ड के ऊपर लटका दे। उसी की समिधा को उसी के दूध से अक्त करके

हवन करे तो निशान्तर में शत्रु ज्वरग्रस्त होकर तीन दिनों तक रहता है। यदि उसे बचाने की इच्छा हो तो पुत्तली को तालाब में गाड़ देने से वह धीरे-धीरे ठीक हो जाता है। यदि ऐसा न करे तो दीर्घ काल तक वह रोगी रहता है। मङ्गलवार में उसे भाण्ड में रखकर चण्डी मन्दिर में गाड़कर उसकी योनि द्रव्य से उसके सामने बलि प्रदान करे। इससे शत्रु उपसर्ग से मर जाता है। अपने घर के चूल्हे के नीचे गड्ढा खोदकर गाड़ कर उसके ऊपर चूल्हा में आग जलाने से शत्रु ज्वरादि रोग से निरन्तर ग्रस्त रहता है। उसे क्लृप्त रूप में रुरु जङ्घास्थि से युक्त करके बाँधे। द्वेषी के घर में रात में उसकी अष्टमराशि में गाड़ दे तो एक महीने में उच्चाटित होकर वह अन्यत्र चला जाता है।

तथाविधं पुत्तलिकायुगं कृत्वोक्तमार्गतः। बिडालमूषकाचर्मनद्धं साध्याख्यया युतम् ॥८६॥
निखनेत्तीरयोर्नद्याः पितृगेहेऽथवा ततः। मातृगेहे नदीपूर्त्यां विद्वेषः स्याद्द्वयोः सदा ॥८७॥
ता एव प्राग्वदुत्पाद्य साध्याख्यादिसमन्विताः। तद्विद्याजपसिद्धास्ताः खनेदरिगृहे पुनः ॥८८॥
मध्येऽष्टदिक्षु तु तथा तत्कुलोत्सादनं भवेत्। एवं निकटवर्तीनामभिचार उदीरितः ॥८९॥
दूरस्थितानां द्विषतां कथं स्यादभिचारकम्। वदामि ते शृणु प्राज्ञे सुदूरस्थस्य वैरिणः ॥९०॥
विनाशने प्रयोगं तु क्षिप्रमप्यभिचारकम्। येनारिर्निकटस्थात्तु प्रागेव निधनं व्रजेत् ॥९१॥
साध्यर्क्षवृक्षैः पुत्तलिका विधायाष्टौ शतं क्रमात्। ताः प्राग्वदीरितक्षीरद्वयासिक्ताः ससंज्ञकाः ॥९२॥
तत्तदंशकमानापघनास्ताः मध्यरात्रतः। एकामेकां हुनेद्वैरिदिङ्मुखस्ता अशेषतः ॥९३॥
तत्तदंशककाले वा सुदूरस्थोऽपि नाशभाक्। कथं वा मान्त्रिकबली निहन्तुं शक्यतां व्रजेत् ॥९४॥
तच्छृणु त्वं शिवे वच्मि प्रकारं तस्य निग्रहे। तैर्मान्त्रिकैस्तस्य पूर्वं विद्वेषं कारयेत्ततः ॥९५॥
तद्द्विष्टे निधनं तस्मिन् सुशक्यं स्यादनाश्रयात्। भाग्यादिकं महारक्षाकरं मान्त्रिकसंगतम् ॥९६॥
राजानं राजपुत्रं वा कथं हन्यात् प्रयोगतः। तन्मे कथय देवेश यद्युपायस्तु विद्यते ॥९७॥
वदामि ते शृणु प्राज्ञे त्वमोघं घोरविग्रहम्। अभिचारमरातीनामाशु नाशकरं परम् ॥९८॥
सिद्धमन्त्राननतिस्निग्धान् षोडशातिस्थिराशयान्। तैरविच्छिन्नरूपं तु होमयेद्यामदिक्क्रमात् ॥९९॥
तेन तन्निधनं भूयाद्रक्षितप्याप्ययत्नतः। अरातिनिधनं कुर्यादेवमुक्तविधानतः ॥१००॥

उसी प्रकार उसी मार्ग से दो पुत्तलियाँ बनाकर उसे साध्य नाम से युक्त करके बिलार और चूहे के चमड़ों में लपेट दे। उन्हें नदीतट में गाड़ दे या पितृगृह में गाड़ दे या मातृगृह में गाड़ दे तो दोनों में बराबर द्वेष रहता है। उसी प्रकार पुत्तली बनाकर साध्य नाम से युक्त करके उसे विद्याजप से मन्त्रित कर शत्रु के घर में गाड़ देने पर आठो दिशाओं में उसके कुल का उत्सादन होता है। इस प्रकार निकटवर्तियों के लिये उच्चाटन का प्रयोग है। दूरस्थ वैरियों में विद्वेष कराने के लिये किये जाने वाले अभिचार को कहता हूँ। उनके विनाश के लिये शीघ्र अभिचारकर्म करना चाहिये, जिससे कि शत्रु निकट आने के पूर्व ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। साध्य वृक्ष से एक सौ आठ पुत्तलियाँ बनाये। उन्हें पूर्वोक्त क्षीरद्वय से सिक्त करे। उनमें नाम लिखे। उसके अंशक मान से मध्य रात से क्रमशः एक-एक से हवन वैरी-दिशा में मुख करके करे। उपर्युक्त अंशकाल में सुदूरस्थ वैरी भी मर जाता है। मान्त्रिक बली किसी को मारने में कैसे सक्षम होता है, उसे सुनो, उसके प्रकार को कहता हूँ। मान्त्रिक पहले उनमें द्वेष कराता है। द्वेष होने पर अनाश्रित हो जाने से उसका निधन आसान हो जाता है। भाग्य से महारक्षक से यदि राजा या राजपुत्र का साथ हो जाय तो प्रयोग से उसका मारण कैसे होगा? इसके उत्तर में कहते हैं कि भयंकर दुश्मनी रूपी अभिचार कर्म अमोघ अस्त्र है। इससे शत्रुओं का शीघ्र नाश होता है। सिद्ध मन्त्र अति स्निग्ध हैं। सोलह तिथि राशि उसके अविच्छिन्न रूप हैं। उसके अविच्छिन्न रूप में प्रहर-दिशा क्रम से हवन करने पर रक्षित होने पर भी उनका निधन हो जाता है।

काम्यहोमद्रव्याणां मानम्

अथ काम्यहोमद्रव्याणां मानम्। ज्ञानार्णवे (१७ प०)—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि मानं हवनसिद्धिदम्। पुष्पं समग्रं जुहुयात् कमलं चापि पुष्कलम् ॥१॥

कुसुम्भबाणपुष्पाणि यथेष्टानि हुनेत् प्रिये। शतसंख्या राजिकाः स्युस्तिलाश्च शतसंख्यया ॥२॥
लाजा मुष्टिप्रमाणाः स्युर्घृतं गान्धारमात्रकम्। (चुल्लकार्धं दधिक्षीरमन्नं ग्रासमितं भवेत् ॥३॥
स्थूलं फलं महेशानि कूष्माण्डं मातुलिङ्गकम्। मनःप्रियैश्च खण्डैश्च फलं भवति निश्चयात्) ॥४॥
रम्भाफलं चतुःखण्डं लघु चेत् खण्डितं नहि। नारिकेलस्य खण्डं हि स्थूलं कुर्यान्मनःप्रियम् ॥५॥
पर्वस्थाने चेक्षुदण्डं मनःसन्तोषकारकम्। द्राक्षाफलं समग्रं स्यान्नारङ्गं खार्जूरं तथा ॥६॥
गुग्गुलुः क्रमुकार्धं तु कुङ्कुमं च तथा भवेत्। गुञ्जासमं तु कर्पूरं कस्तूरी घुसृणं तथा ॥७॥
चन्दनं चागुरु देवि क्रमुकेण समं भवेत्। मनःप्रियाहुतीः कृत्वा होमं कुर्यात् सुलोचने ॥८॥
एतदाहुतिमानं ते कथितं सर्वसिद्धिदम्। यथेच्छया वरारोहे श्रीविद्यां परितोषयेत् ॥९॥

तथा शारदातिलके (५ प० १४१ श्लो०)—
कर्षमात्रं घृतं होमे शुक्तिमात्रं पयः स्मृतम्। (उक्तानि पञ्चगव्यानि तत्समानि मनीषिभिः ॥१॥
तत्समं मधु दुग्धान्नमक्षमात्रमुदाहृतम्।) दधि प्रसृतिमात्रं स्याल्लाजाः स्युर्मुष्टिसंमिताः ॥२॥
पृथुकास्तत्प्रमाणाः स्युः सक्तवोऽपि तथोदिताः। गुडः पलार्धमानः स्याच्छर्करापि तथा मता ॥३॥
ग्रासार्धं चरुमानं स्यादिक्षुः पर्वमितः स्मृतः। एकैकं पत्रपुष्पाणि तथापूपानि कल्पयेत् ॥४॥
कदलीनागरङ्गाणां फलान्येकैकशो विदुः। मातुलिङ्गं चतुःखण्डं पनसं दशधाकृतम् ॥५॥
अष्टधा नारिकेलानि खण्डितानि विदुर्बुधाः। त्रिधाकृतं बिल्वफलं कपित्थं खण्डितं द्विधा ॥६॥
उर्वारुकफलं होमे कथितं खण्डितं त्रिधा। फलान्यन्यान्यखण्डानि समिधः स्युर्दशाङ्गुलाः ॥७॥
दूर्वात्रयसमादिष्टं गुडूची चतुरङ्गुला। व्रीहयो मुष्टिमात्राः स्युर्मुद्गा माषा यवा अपि ॥८॥
तण्डुलाः स्युस्तदर्धांशाः कोद्रवा मुष्टिसंमिताः। गोधूमा रक्तकलमा विहिता मुष्टिमानतः ॥९॥
तिलाश्चुलुकमात्राः स्युः सर्षपास्तत्प्रमाणकाः। शुक्तिप्रमाणं लवणं मरिचान्यपि विंशतिः ॥१०॥
पुरं बदरमानं स्याद्रामठं तत्समं स्मृतम्। चन्दनागुरुकर्पूरकस्तूरीकुङ्कमानि च ॥११॥
तिन्तिडीबीजमानानि समुद्दिष्टानि देशिकैः। इति।

काम्य हवन में द्रव्यों का मान—ज्ञानार्णव में कहा गया है कि पूरे फूल की एक आहुति होती है। कमल भी एक ही लेना चाहिये। कुसुम्भ बाणपुष्प से यथेष्ट हवन करे। एक आहुति में सौ तिल और सौ राई ग्राह्य हैं। लाजा मुट्ठी भर और घी एक पल ग्राह्य होता है। आधा चुल्लू दही-दूध-अन्न एक ग्रास। बड़े फल कुम्हड़ा, मातुलुङ्ग की इच्छानुसार खण्डों में आहुति होती है। बड़ा केला का चार खण्ड और छोटा केला पूरा, नारियल का बड़ा खण्ड इच्छानुसार करे। ईख का एक पोर मन के लिये सन्तोषकारक होता है। द्राक्षाफल सम्पूर्ण और नारङ्गी-खजूर भी सम्पूर्ण की आहुति होती है। गुग्गुल, सुपाड़ी आधा एवं कुङ्कुम भी इतना ही। गुंजा के बराबर कपूर, कस्तूरी, घुसृण, चन्दन अगर की मनःप्रिय आहुति से हवन करे। ये आहुति-मान सर्वसिद्धिप्रद होते हैं। इस प्रकार इच्छानुसार हवन से श्री विद्या को परितुष्ट करना चाहिये।

शारदातिलक में कहा गया है कि घी कर्षमात्र एवं दूध शुक्तिमात्र हवन में लेना चाहिये। पञ्चगव्य भी उतने ही मान में ग्राह्य होते हैं। उसके ही समान मधु भी लेना चाहिये। दुग्धान्न अक्षमात्र ग्रहण करना चाहिये। दधि एक अंजुली एवं लाजा एक मुट्ठी उपर्युक्त कहे गये हैं। इसी प्रकार चूड़ा एवं सत्तू भी एक मुट्ठी ही ग्रहण करना चाहिये। गुड़ और शक्कर आधा पल ग्राह्य होता है। चरु का मान आधा और ईख का मान एक पोर हैं। एक-एक पत्र, पुष्प तथा पूआ की आहुति होती है। एक-एक नारङ्गी एवं केला की आहुति होती है। मातुलिङ्ग का चार खण्ड और कटहल का दस खण्ड करे। इसी प्रकार नारियल का आठ खण्ड करे। बेल का तीन खण्ड और कपित्थ का दो खण्ड करे। तरबूजा-खरबूजा का तीन खण्ड करे। अन्य फलों को अखण्डित रखे। समिधा दश अंगुल की होती है। दूब तीन अंगुल एवं गुडूची चार अंगुल की एक आहुति होती है। व्रीहि मुट्ठी भर और इतने ही मूँग, उड़द तथा यव भी होते हैं। चावल आधा मुट्ठी और कोदो मुट्ठी भर। गेहूँ एवं रक्त धान्य का मान

मुट्ठी भर है। तिल और सरसों चुल्लू भर शुक्ति भर नमक, मरिच बीस, गुग्गुल एवं हिंगु अस्सी गुंजा के बराबर ग्राह्य होते हैं। चन्दन अगर कपूर कस्तूरी कुङ्कुम की आहुति का मान इमली-बीज के बराबर होता है।

माषादिप्रमाणलक्षणम्

कर्षलक्षणमुक्तं सारसंग्रहे—'माषो दश गुञ्जाः स्यात् षोडशमाषो निगद्यते कर्षः' इति। तैलस्याप्येतदेव परिमाणम्। शुक्तिः कर्षद्वयं (प्रसृतिमात्रं), पलद्वयमात्रं, मुष्टिः पलं, पलार्धं कर्षद्वयम्, ग्रासार्धमशीतिरक्तिकामितमिति। तदुक्तं पिङ्गलामते—

गुञ्जाभिर्दशभिर्माषः शाणो माषचतुष्टयम्। द्वौ शाणौ घटकः कोलो बदरं द्रक्षणश्च सः ॥१॥
तौ द्वौ पाणितलं कर्षः सुवर्णं कवलग्रहः। पिचुर्बिडालपदकं तिन्दुकोऽक्षश्च तद्द्वयम् ॥२॥
शुक्तिरष्टात्मिका ते द्वे पलं बिल्वं चतुर्थिका। मुष्टिराम्रं प्रगुञ्जोऽथ द्वे पले प्रसृतिस्तथा ॥३॥ इति।

मातुलुङ्गं बीजपूरम्। उर्वारुकं कर्कटी। तदर्धांशाः शुक्तिमिताः। चुलुकमात्राः पाणितलप्रमाणाः कर्षमात्रा इत्यर्थः। पुरं गुग्गुलुः। बदरमानमशीतिगुञ्जामित। रामठं हिङ्गुः। तथा नारदपञ्चरात्रे—

तृतीयं खण्डमूलानां ह्रस्वानि स्वप्रमाणतः। इति।

शैवागमेऽपि—

खण्डत्रयं स्यान्मूलानां सूक्ष्माण्येवं च होमयेत्। कन्दानामष्टमं भागं लतानामङ्गुलद्वयम् ॥१॥ इति।

सारसंग्रह में कहा गया है कि दश गुञ्जा का एक माष और सोलह माष का एक कर्ष होता है। पिंगलामत में कहा गया है कि दश गुंजा का एक माष, चार माष का शाण, दो शाण का घटक, कोल बेर के बराबर। दो पाणितल कर्ष, सुवर्ण कवलग्रह पिचु विडाल पद के बराबर, तिन्दुक अक्ष उसका दुगुना, आठ शुक्ति का दो पल, बेल का चौथा भाग दो पल का, मुष्टिराम्र प्रगुञ्जा, दो पल की प्रसृति होती है।

शैवागम में कहा गया है कि मूल का तीन खण्ड करके छोटी-छोटी आहुति देना चाहिये। आहुति में कन्द का आठवें भाग एवं लताओं को दो अंगुल का ग्रहण करना चाहिये।

समिधां लक्षणम्

अथ समिधः। नारदपञ्चरात्रे—

समित् प्रादेशमात्रेण समच्छेदान्विता तथा। विशीर्णा द्विदला ह्रस्वा वक्राः स्थूलाः कृशा द्विधा ॥१॥
क्रिमिदष्टाश्च दीर्घाश्च निस्त्वचः परिवर्जिताः। विशीर्णायुः क्षयं कुर्याद् द्विदला व्याधिसंभवम् ॥२॥
ह्रस्वया मृत्युमाप्नोति वक्रा विघ्नकरी मता। स्थूलाभिहरते लक्ष्मीं कृशायां जायते क्षयः ॥३॥
द्विधायां नेत्रदोषाः स्युः कीटदष्टार्थनाशिनी। द्वेषं प्रकुरुते दीर्घा प्राणघ्न्यो निस्त्वचः स्मृताः ॥४॥
सक्षीरा नाधिकन्यूनाः समिधः सर्वकामदाः। आर्द्रत्वचा समच्छेदा तर्जन्यङ्गुलिवर्तुला ॥५॥
ईदृशी होमयेत्प्राज्ञः प्राप्नोति विपुलां श्रियम्। श्रौते स्मार्ते च तन्त्रोक्ते समिधः परिकीर्तिताः ॥६॥ इति।

तथा वायवीयसंहितायाम्—

ताः पालाश्यः परा वापि याज्ञीया द्वादशाङ्गुलाः। अवक्राश्चाप्यशुष्काश्च सत्वचो निर्व्रणाः समाः ॥१॥
दशाङ्गुला वा विहिताः कनिष्ठाङ्गुलिसंमिता। प्रादेशमात्रा वालाभे होतव्याः सकला अपि ॥२॥ इति।

समिधा—नारद पञ्चरात्र में कहा गया है कि समिधा एक वित्ता की जो बराबर तथा छिद्र रहित हो, ग्रहण करनी चाहिये। विशीर्ण, द्विदल, छोटी, टेढ़ी, मोटी, पतली, द्विधा विभक्त, कृमिदष्ट, लम्बी एवं छालरहित समिधा वर्जित है। विशीर्ण समिधा के हवन से आयु क्षीण होती है। द्विदल समिधा से रोग होते हैं। छोटी समिधा से मृत्यु होती है। टेढ़ी से विघ्न होते हैं। स्थूल समिधा की आहुति से लक्ष्मी का नाश होता है। पतली समिधा से क्षय होता है। जुड़वाँ से नेत्रदोष होता है। घुनी

हुई समिधा अर्थनाशिनी होती है। लम्बी समिधा द्वेषकारिणी होती है। छालरहित समिधा प्राणघातिनी होती है। न कम न अधिक मान वाली दुधैली समिधा सर्वकामदा होती है। गीले छाल वाली, बराबर, छेदरहित एवं तर्जनी अंगुल के समान गोल समिधा के हवन से विपुल श्री की प्राप्ति होती है। इन्हीं को श्रौत-स्मार्त तन्त्रोक्त समिधा कहते हैं।

वायवीय संहिता में कहा गया है कि यज्ञ में पलाश या अन्य की समिधा बारह या दश अंगुल लम्बी ग्राह्य होती है जो कि सीधी, गीली, त्वचासहित, व्रणरहित एवं एक समान होनी चाहिये। साथ ही वह कनिष्ठा अंगुल के बराबर मोटी होनी चाहिये। न मिलने पर सबों से हवन करे।

काम्यजपविधिः

अथ काम्यहोम(जप)विधिः। तत्र ज्ञानार्णवे (१७ प०)—

चक्रं समर्चयेद् देवि सकलं नियतव्रतः। बाह्यमध्यगतं वापि मध्यं वा चक्रमर्चयेत् ॥१॥
उपचारैः समाराध्य सहस्रं प्रजपेच्छुचिः। तदग्रे संस्थितो मन्त्री ततोऽनन्तफलं लभेत् ॥२॥
ध्यात्वाथवा चक्रराजमन्तःपूजासमन्वितम्। जपारम्भं सुधीः कुर्यान्महापातकहा भवेत् ॥३॥
निगदेनोपांशुना वा मानसेनाथ वा जपेत्। निगदः परमेशानि स्पष्टं वाचा निगद्यते ॥४॥
अव्यक्तस्तु स्फुरदोष्ठ उपांशुः परिकीर्तितः। मानसस्तु वरारोहे चिन्तनान्तररूपवान् ॥५॥
निगदेन तु यज्जप्तं लक्षमात्रं वरानने। उपांशूच्चारितैकेन तुल्यं भवति शैलजे ॥६॥
उपांशुर्लक्षमात्रं तु यज्जप्तं कमलेक्षणे। मानसोच्चारणात् तुल्यमेकेन परमेश्वरि ॥७॥
मुद्रासन्नद्धयोगः सन् पूर्वोक्तध्यानयोगतः। लक्षमात्रं जपेद्यस्तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥८॥
लक्षद्वयेन पापानि सप्तजन्मभवान्यपि। महापातकमुख्यानि नाशयेन्नात्र संशयः ॥९॥
ततो लक्षत्रयं जप्त्वा यन्त्रमात्रकलेवरः। महापातककोटीस्तु नाशयेन्नात्र संशयः ॥१०॥
चतुर्लक्षजपे देवि महावागीश्वरो भवेत्। कुबेर इव देवेशि पञ्चलक्षान्न संशयः ॥११॥
षड्लक्षजपमात्रेण महाविद्याधरो भवेत्। सप्तलक्षजपान्मन्त्री खेचरीमेलको भवेत् ॥१२॥
अष्टलक्षजपान्मन्त्री देवपूज्यो भवेन्नरः। अणिमाद्यष्टसिद्धीनां नायको भवति प्रिये ॥१३॥
वश्या भवन्ति राजानो योषितस्तु विशेषतः। नवलक्षप्रमाणं हि जपेत् त्रिपुरसुन्दरीम् ॥१४॥
रुद्रमूर्तिः स्वयं कर्ता हर्ता साक्षान्न संशयः। सर्वैर्वन्द्यः सदा स्वस्थः सर्वसौभाग्यवान् भवेत् ॥१५॥ इति।

काम्य होम में जपविधि—व्रत का अनुष्ठान करके समस्त चक्र का अर्चन करे। बाह्य मध्यगत अथवा मध्य चक्र का अर्चन करे। उपचारों में समाराधन करके एक हजार जप चक्र के आगे बैठकर करे तो अनन्त फल प्राप्त होता है। चक्र का ध्यान करके पूजा के बाद जप का आरम्भ करे। ऐसा करने से उसके महापापों का नाश होता है। जप वाचिक, मानसिक या उपांशु करे। वाचिक जप में उच्चारण स्पष्ट करे। बिना शब्द के होठ हिलाते हुए जप को उपांशु कहते हैं। मानसिक जप में रूप का आन्तर चिन्तन होता है। एक लाख वाचिक जप एक उपांशु जप के बराबर होता है एवं एक लाख उपांशु जप एक मानसिक जप के बराबर होता है। मुद्रा में सन्नद्ध होकर पूर्वोक्त ध्यान करके एक लाख जप करने से साधक सभी पापों से मुक्त हो जाता है। दो लाख जप से उसके सात जन्मों के पाप का नाश होने के साथ-साथ प्रमुख महापातकों का भी नाश होता है। यन्त्र मात्र कलेवर वाला होकर तीन लाख जप करने पर साधक के करोड़ों महापातकों का नाश होता है। चार लाख जप से साधक महान् वक्ता होता है। पाँच लाख जप से कुबेर के समान धनी होता है। छः लाख जप से महाविद्याधर होता है। सात लाख जप से साधक आकाशगामी होता है। आठ लाख जप से साधक सुर-नरपूज्य होकर अणिमादि आठो सिद्धियों का स्वामी होता है। उसके वश में सभी राजा और नारियाँ होती हैं। त्रिपुरसुन्दरी का नव लाख जप करने पर साधक साक्षात् रुद्रमूर्ति होकर स्वयं कर्ता-हर्ता हो जाता है। वह सबों के द्वारा वन्दनीय, सदा स्वस्थ एवं सर्वसौभाग्यवान होता है।

कूटत्रयस्य पृथक्साधनविधिः

अथ कूटत्रयस्य पृथक् साधनविधिः ज्ञानार्णवे (१६ प० २ श्लो०)—

एषा विद्या वरारोहे पारम्पर्यक्रमागता। भवबन्धं नाशयन्ती संस्मृता पापहारिणी ॥१॥
जपान्मृत्युजयं शान्तिं ध्यानात्सर्वार्थसाधनी। दुःखदौर्भाग्यदारिद्र्यभयघ्नी पूजिता भवेत् ॥२॥
महाघौघप्रशमनी स्मरणान्नात्र संशयः। पृथग्बीजत्रयस्याहं साधनं कथयामि ते ॥३॥
शुक्लाम्बरधरो वीरो गन्धकस्तूरिमण्डितः। मुक्ताफलस्फुरद्भूषाभूषणः शुभ्रमाल्यधृक् ॥४॥
शुभ्रमन्दिरसंविष्टो ब्रह्मचर्यसमन्वितः। पूजयेत् शुभकुसुमैर्नैवेद्यमपि चोज्ज्वलम् ॥५॥
पायसं दुग्धसंपूर्णं तथामृतफलौदनम्। घृतगोलकसंपन्ननानाशुभ्रान्नपूरितम् ॥६॥
नैवेद्यं दर्शयेद् देव्यै वागीश्वर्यै सुरेश्वरि। मनःसंकल्पशुद्धौ वा साधयेन्मोक्षवाङ्मयम् ॥७॥
वाग्भवाख्यां जपेद्विद्यां वागीशीं संस्मरन् बुधः। कर्पूरधवलां शुभ्रपुष्पाभरणभूषिताम् ॥८॥
अत्यन्तशुभ्रवदनां वज्रमौक्तिकभूषणाम्। मुक्ताफलामलमणिजपमालालसत्कराम् ॥९॥
पुस्तकं वरदानं च दधतीमभयप्रदाम्। एवं ध्यायेन्महेशानि सर्वविद्याधरो भवेत् ॥१०॥
मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं स्त्रवत्पीयूषवर्षिणीम्। तस्माज्ज्योतिर्मयीं ध्यायेज्जिह्वाग्रेऽमृतरूपिणीम् ॥११॥
पाषाणेन समो वापि मूर्खो जीवसमो भवेत्।

कूटत्रय का पृथक् साधन-विधि—परम्परा से ज्ञानार्णव में कहा गया है कि यह विद्या प्राप्त हुई है। यह भवबन्धन-नाशिनी एवं पापहारिणी कही जाती है। इसके जप से मृत्यु पर जय एवं शान्ति प्राप्त होती है। ध्यान से सर्वार्थ-साधन होता है एवं पूजा करने से दुःख दुर्भाग्य दारिद्र्य भय का नाश होता है। स्मरण करने से यह महापाप का प्रशमन करती है। इसके तीनों बीजों का पृथक्-पृथक् साधन इस प्रकार किया जाता है।

वाग्भव कूट साधन—श्वेत वस्त्रधारी वीर गन्ध-कस्तूरी से मण्डित होकर मोती के समान श्वेत वस्त्र, भूषण और माला धारण करके स्वच्छ मन्दिर में बैठकर ब्रह्मचर्य-समन्वित होकर शुभ्र फूलों, श्वेत नैवेद्य, पायस, दूध, सम्पूर्ण अमृतफल ओदन घृतगोलक सम्पन्न नाना शुभ्र अन्न पूरित नैवेद्य देवी वागीश्वरी को समर्पित करे। शुद्ध मन से संकल्पपूर्वक मोक्षवाङ्मय (ऐं) का साधन करे। वाग्भव विद्या का जप वागीश्वरी का स्मरण करते हुये करे। कर्पूर के समान धवल श्वेत पुष्पों एवं आभूषणों से भूषित, अत्यन्त स्वच्छ शरीर वाली, हीरा एवं मुक्ता से भूषित, मोतियों एवं मणियों की जपमाला को हाथ में धारण की हुई साथ ही पुस्तक, पर एवं अभयमुद्रा धारण की हुई देवी का ध्यान करने से साधक समस्त विद्याओं से युक्त होता है। मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक अमृत की वर्षा करने वाली, ज्योतिर्मयी रूप में जिह्वाग्र में अमृतरूपिणी देवी का ध्यान करने से वज्र मूर्ख भी बृहस्पति के समान हो जाता है।

अथ कामकलासक्तः साधकः परमेश्वरि ॥१२॥
रक्तालङ्कारसुभगो रक्तगन्धानुलेपनः। रक्तवस्त्रावृतः सम्यङ्मध्ये कामकलात्मकम् ॥१३॥
रक्तपुष्पैश्च विविधैः कुङ्कुमादिभिरर्चयेत्। मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तां स्फुरद्दीपस्वरूपिणीम् ॥१४॥
बन्धूककुसुमारक्तकान्तिभूषणभूषिताम्। इक्षुकोदण्डपुष्पेषुवराभयलसत्कराम् ॥१५॥
तदीयकान्तिसिन्दूरभरितभुवनत्रयाम्। चिन्तयेत्परमेशानि त्रैलोक्यं मोहयेत्क्षणात् ॥१६॥
राजानो वशमायान्ति पन्नगा राक्षसाः सुराः। कन्दर्प इव देवेशि योषितां मानहारकः ॥१७॥
मनश्चिन्तितयोषित्तु दासीव वशगा भवेत्। चलज्जलेन्दुसङ्काशां तरुणारुणविग्रहाम् ॥१८॥
चिन्तयेद्योषितां योनौ क्षोभयेत्सुरसुन्दरीम्। किं पुनर्मानुषीं देवि त्रैलोक्यमपि मोहयेत् ॥१९॥
एषा वै चिन्तिता देवि सिन्दूराभा हृदि क्षणात्। आकर्षयेत्तदा शीघ्रं रम्भां वापि तिलोत्तमाम् ॥२०॥

रक्तवर्णां स्त्रियं ध्यात्वा तदीयमहसा ततः। तस्या मूर्ध्नि स्मरेद्वीजं स्रवत्पीयूषवर्षणम् ॥२१॥
ध्यायन् संमोहयेद् देवि मदनोत्तप्तमानसम्। क्षणमात्रेण देवेशि त्रैलोक्यं वशमानयेत् ॥२२॥
एतत्कामकलाध्यानात् पञ्चकामा वरानने। मोहयन्ति जगत्सर्वं प्रयोगं शृणु पार्वति ॥२३॥
पूर्वोक्तकामा देवेशि ज्ञातव्याः पञ्चसंख्यकाः। विदर्भ्याद्येन कामेन मन्मथान्तर्गतं कुरु ॥२४॥
कन्दर्पसंपुटं कृत्वा कोणगर्भगतं ततः। मकरध्वजसंज्ञं तु सर्वमेतद्वरानने ॥२५॥
मीनकेतुगतं कुर्यान्मोहयेज्जगतीमिमाम्। त्रैलोक्यमोहनो नाम प्रयोगोऽयं प्रकीर्तितः ॥२६॥ इति।

अत्र विदर्भ्येत्यादि कुर्यादित्यन्तस्य पादोनश्लोकद्वयस्यायमर्थः—प्रथमं मन्मथकूटं क्लींकारमालिख्य तत्र ककारस्योदरे कामराजकूटं ह्रींकारमालिख्य, तस्य हकारोदरे मम रेफाधः अमुकं तयोर्मध्ये वशमानयेति साध्यनाम ह्रींकारविदर्भितं विलिख्य, बीजद्वयाद्बहिस्तृतीयकन्दर्पकूटरूपेण ऐंकारद्वयेन त्रिकोणाकारेण (पुटितषट्कोणेनावेष्ट्य तस्य षट्सु कोणोदरेषु चतुर्थं मकरकेतनं कूटाक्षरं ब्लूंकारमालिख्य, षट्कोणान्तर्बहिर्मीनकेतनकूटाक्षरेण) स्त्रींकारेण संवेष्ट्य वाञ्छितार्थेषु विनियुञ्ज्यादिति। अत्र पञ्चमकूटाक्षरलेखनेन तदक्षरवह्निस्थानगं सकलं यन्त्रं यथा भवति तथा गुरूक्तक्रमतः समालेख्यमिति रहस्यार्थः।

कामकूट का साधन—कामकला में आसक्त साधक रक्त अलंकार एवं रक्त गन्ध का अनुलेपन करके रक्त वस्त्र धारण कर सम्यक् मध्य में काम कलात्मक रूप का विविध लाल फूलों एवं कुङ्कुमादि से पूजन करे। मूलाधारो से ब्रह्मरन्ध्र तक दीप्तिमान दीपस्वरूप वाली बन्धूक कुसुम-सदृश लाल कान्ति वाले भूषण से भूषित, ईख का धनुष, पुष्प, वर, अभययुक्त हाथों वाली देवी के उसकी सिन्दूर वर्ण की कान्ति से तीनों लोक प्रकाशमान हैं—ऐसा चिन्तन करने पर साधक तत्काल तीनों लोकों को मोहित करता है। राजा, सर्प, राक्षस, देवता उसके वश में होते हैं। स्त्रियों के लिये वह कामदेव के समान होकर उनके गर्व का हरण करने वाला होता है। मन में चिन्तित स्त्री दासी के समान उसके वश में होती है। जल में चंचल चन्द्र के समान तरुण अरुण विग्रहा रूप में चिन्तन करने पर साधक देवाङ्गनाओं की योनि में भी क्षोभ उत्पन्न कर देता तो फिर भूसुन्दरी के बारे में तो कहना ही क्या है। वह तीनों लोकों को मोहित करने वाला होता है। हृदय में सिन्दूर वर्णा देवी का चिन्तन करने पर साधक तत्काल ही रम्भा या तिलोत्तमा को भी आकर्षित कर सकता है। स्त्री का ध्यान लाल वर्ण का करे। तब उसके तेज का ध्यान करे उसकी मूर्धा में अमृत की वर्षा करने वाले बीज का ध्यान करने से साधक ऐसे ध्यान से कामोतप्त मानस को भी मोहित कर देती है। क्षण भर में ही वह तीनों लोकों को वश में कर लेता है। इस प्रकार के कामकला के ध्यान से पञ्च कामदेव सारे संसार को मोहित कर देते हैं। इनका प्रयोग इस प्रकार है—पूर्वोक्त कामदेवी की संख्या पाँच है। आद्य काम से मन्मथ को विदर्भित करे। कन्दर्प से सम्पुटित करके उसे कोण गर्भगत करे। इन सबों को मकरध्वज कहते हैं। इसे मीनकेतुगत करने पर साधक इस संसार को मोहित कर सकता है, इस प्रयोग को त्रैलोक्यमोहन कहते हैं।

तथा—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि शक्तिबीजस्य साधनम्। सृष्टिसंहारपर्यन्तं शरीरं चिन्तयेत्परम् ॥१॥
स्रवत्पीयूषधाराभिर्वर्षन्तीं विषहारिणीम्। हेमप्रभाभासमानां विद्युन्निकरसुप्रभाम् ॥२॥
स्फुरच्चन्द्रकलापूर्णकलशं वरदाभये। ज्ञानमुद्रां च दधतीं साक्षादमृतरूपिणीम् ॥३॥
ध्यायन् विषं हरेन्मन्त्री नानाकारव्यवस्थितम्। तस्य संस्मरणाद्देवि नीलकण्ठत्वमागतः ॥४॥
अहं मृत्युञ्जयो भूत्वा विचरामि जले स्थले। वैनतेयसमो मन्त्री विषभारसहस्रनुत् ॥५॥
भूतप्रेतपिशाचांश्च नाशयेद्रोगसंचयम्। चातुर्थिकज्वरान् सर्वानपस्मारांश्च नाशयेत् ॥६॥
अथ त्रिकूटा संपूर्णा महात्रिपुरसुन्दरी। चिन्तिता साधकस्याशु त्रैलोक्यवशकारिणी ॥७॥
क्रमेण नाभिहृद्वक्त्रमण्डलस्थारुणप्रभा। पद्मरागमणिस्वच्छा चिन्तिता सुरवन्दिते ॥८॥
तस्याष्टगुणमैश्वर्यं सौभाग्यं च प्रजायते। तन्नाम संस्मरन् मन्त्री योगिनीनां भवेत्प्रियः ॥९॥
मातृचक्रं तस्य काये तेन सार्धं सुखी भवेत्। पुत्रवान् देवदेवेशि मन्त्री ध्यानान्न संशयः ॥१०॥ इति।

तथा—

यदा चक्रस्थिता पूर्णा खेचरीसिद्धिदायिनी। चतुष्षष्टिर्यतः कोट्यो योगिनीनां महौजसाम् ॥११॥
चक्रमेतत् समाश्रित्य संस्थिता वीरवन्दिते। आदौ सम्बोधनपदं मध्ये बीजाष्टकं बहिः ॥१२॥
कलां ध्यात्वाङ्गनानङ्गे कामराज इवापरः। पाशाङ्कुशधनुर्बाणैर्मादनैर्मोहयेत् प्रिये ॥१३॥
त्रैलोक्यसुन्दरीर्देवीः किं पुनर्मर्त्ययोषितः। तथैव शक्तिबन्धैश्च शस्त्रैस्तन्मयविग्रहः ॥१४॥
सिद्धगन्धर्वदेवांश्च वशीकुर्यान्न संशयः। एतामाराध्य देवेशि कामसौभाग्यसुन्दरः ॥१५॥
हरिश्च परमेशानि त्रिपुराराधनात्प्रिये। त्रैलोक्यमोहनो भूत्वा स्थितिकर्ताभवत्सदा ॥१६॥
एतत्समाराधनात्तु ब्रह्मा सृष्टिकरोऽभवत्। चन्द्रसूर्यौ वरारोहे सृष्टिसंहारकारकौ ॥१७॥ इति।

शक्तिकूट साधन—शक्तिबीज का साधन इस प्रकार किया जाता है—सृष्टि से संहार तक सम्पूर्ण शरीर का चिन्तन करे। उस शरीर से अमृतधारा स्रवित होकर बरस रही है। विष का हरण करने वाली स्वर्ण की कान्ति से उद्भासित, विद्युत्समूह से प्रकाशित, दीप्तिमान चन्द्रमा की कान्ति से समन्वित कलश, वरद, अभय एवं ज्ञानमुद्रा धारण करने वाली साक्षात् अमृतस्वरूपा का ध्यान करने से मन्त्री नाना प्रकार के विष का हरण कर सकता है। इसके स्मरण करने से साधक को नीलकण्ठत्व प्राप्त होता है। 'मैं मृत्युञ्जय के समान होकर जल एवं स्थल में विचरण कर रहा हूँ' इस प्रकार समझता हुआ साधक गरुड़ के समान होकर हजार विषों का अपहारक होता है, भूत-प्रेत-पिशाच और रोगसंचय का विनाश करता है, चातुर्थिक ज्वरों एवं सभी अपस्मारों का नाश करता है।

महात्रिपुरसन्दरी के सम्पूर्ण त्रिकूटा विद्या के चिन्तन करने पर वह शीघ्र ही त्रैलोक्य-वशकारिणी होती है। क्रम से उसके नाभि, हृदय, मुखमण्डल में स्थित अरुण प्रभा वाली एवं पद्मरागमणि के समान स्वच्छ रूप के चिन्तन से आठ गुना ऐश्वर्य और सौभाग्य प्राप्त होता है। उसके नामस्मरण मात्र से साधक योगिनियों का प्रिय होता है। उसके शरीर में मातृका चक्र का वास होता है और उसके साथ वह सुखी रहता है। ध्यानमात्र से साधक पुत्रवान होता है, इसमें संशय नहीं है। जब खेचरी-सिद्धिदायिनी पूर्णा चक्र में स्थित होती है तब चौंसठ करोड़ तेजस्विनी योगिनियाँ इस चक्र में स्थित हो जाती हैं। पहले सम्बोधन पद, मध्य में बीजाष्टक और बाहर कला का ध्यान अङ्गना के अङ्ग में करने से वह दूसरा कामदेव हो जाता है। पाश अङ्कुश धनुष एवं मादन बाण से वह त्रैलोक्यसुन्दरी को भी मोहित कर सकता हैं तब मानुषी नारियों की तो बात ही क्या है? उसी प्रकार शक्तिबन्ध एवं शस्त्रयुक्त स्वरूप का ध्यान कर सिद्ध, गन्धर्व एवं देवताओं को भी निस्सन्देह वश में कर सकता है। इसके आराधन से साधक काम सौभाग्यसुन्दर होता है। विष्णु भी इस त्रिपुरा का आराधन कर त्रैलोक्यमोहन होकर सदा-सर्वदा सृष्टि को स्थिर करने वाले बने रहते हैं। इनकी आराधना से ही ब्रह्मा भी सृष्टिकर्ता हुये हैं एवं चन्द्र-सूर्य भी सृष्टि तथा संहारकारक होते हैं।

श्रीचक्रसाधनविधिः

अथ श्रीचक्रसाधनविधिः, तत्र ज्ञानार्णवे (१४ प०)—

शृणु सर्वाङ्गसुभगे श्रीचक्रविधिमुत्तमम्। यस्य विज्ञानमात्रेण कर्ता हर्ता सदाशिवः ॥१॥
अनेन विधिना यत्र श्रीचक्रं क्रमसंयुतम्। पूज्यते तत्र सकलं वशीकुर्यान्न संशयः ॥२॥
नगरं वशमायाति दशमण्डलमद्रिजे। योषितः सकलाः वश्या ज्वलत्कामाग्निपीडिताः ॥३॥
विद्याविमूढहृदयाः साधके न्यस्तमानसाः। तद् दर्शनेन देवेशि जायन्ते सर्वयोषितः ॥४॥ इति।

तथा—

गोरोचनादिभिर्द्रव्यैश्चक्रराजं समालिखेत्। अतीव सुन्दरं रम्यं तन्मध्ये प्रतिमां वराम् ॥५॥
ज्वलन्तीं नामसहितां महाबीजविदर्भिताम्। इति।

महाबीजं मूलविद्यायाः द्वितीयकूटम्। विदर्भलक्षणं प्रागेवोक्तम्।

चिन्तयेत्तु तदा देवि योजनानां सहस्रशः । अदृष्टपूर्वा देवेशि श्रुतमात्रापि दुर्लभा ।।७।।
राजकन्याथवा चान्या भयलज्जाविवर्जिता । आयाति साधकं सम्यङ्मन्त्रमूढा सती प्रिये ।।८।।
चक्रमध्यगतो भूत्वा साधकश्चिन्तयेद्यदा । उद्यत्सूर्यसहस्राभमात्मानमरुणं तथा ।।९।।
साध्यमप्यरुणीभूतं चिन्तयेत् परमेश्वरि । अनेन क्रमयोगेन स्वयं कन्दर्परूपवान् ।।१०।।
सर्वसौन्दर्यसुभगः सर्वलोकवशङ्करः । सर्वरक्तोपचारैश्च मुद्रासहित(संनद्ध)विग्रहः ।।११।।
चक्रं प्रपूजयेद्यस्तु यस्य नाम विदर्भितम् । स भवेद्दासवद्देवि धनाढ्यो वापि भूपतिः ।।१२।।
चक्रमध्यगतं कुर्यान्नाम यस्यास्तु योषितः । अदृष्टाया महेशानि योनिमुद्राधरो बुधः ।।१३।।
हठादानयते शीघ्रं यक्षिणीं राजकन्यकाम् । नागकन्यामप्सरसं खेचरीं वा सुराङ्गनाम् ।।१४।।
विद्याधरीं दिव्यरूपामृषिकन्यामृषिस्त्रियम् । मदनोद्भवसंतापस्फुरज्जघनमण्डलाम् ।।१५।।
कामबाणप्रभिन्नान्तःकरणां लोलचक्षुषम् । महाकामकलाध्यानयोगात्तु सुरवन्दिते ।।१६।।
क्षोभयेत् स्वर्गभूर्लोकपातालतलयोषितः । इति।

श्रीचक्रसाधन-विधि—ज्ञानार्णव में महादेव ने कहा है कि हे सर्वाङ्गसुभगे! श्रीचक्र-साधन की उत्तम विधि को सुनो, जिसे जानकर ही साधक सदाशिव कर्ता-हर्ता हुये हैं। इस विधि से जहाँ श्रीचक्र का क्रमसंयुत पूजन होता है, वहाँ सभी वशीभूत हो जाते हैं। दश मण्डल का नगर उसके वश में होता है। सभी स्त्रियाँ कामाग्नि की ज्वाला से पीड़ित एवं विद्या विमूढ हृदय होकर उसे देखते उसके वशीभूत हो उसमें रत हो जाती हैं। गोरोचनादि से श्रीचक्रराज को लिखे। उसके मध्य में अति सुन्दर मनोहर श्रेष्ठ प्रतिमा बनाये। उस प्रतिमा को दीप्त नामसहित महाबीज से विदर्भित करे। उस प्रतिमा का चिन्तन करने पर हजारो योजन दूर स्थित न कभी देखी और न कभी सुनी दुर्लभ राजकन्या अथवा अन्य कन्या भय-लज्जारहित होकर मन्त्रमुग्ध होकर साधक के पास आती है। चक्र मध्य में स्थित साधक जब यह चिन्तन करता है कि वह उदीयमान हजारो सूर्यों के समान लाल वर्ण का है और साध्य भी लाल वर्ण का है तब इस क्रमयोग से वह स्वयं कामदेव के समान रूपवान हो जाता है, वह समस्त सौन्दर्य से समन्वित एवं सर्व लोक वशंकर हो जाता है। सभी लाल उपचारों से मुद्रासहित सन्नद्धविग्रह होकर चक्र की पूजा जिस नाम को विदर्भित करके की जाती है, वह धनाढ्य या भूपति होने पर भी दासवत् हो जाता है। जिस अदृष्ट स्त्री का नाम चक्रमध्य में लिखा जाता है, वह यक्षिणी, राजकन्या, नागकन्या, अप्सरा, खेचरी, सुराङ्गना, विद्याधरी, दिव्यरूपा ऋषिकन्या अथवा शत्रुपत्नी होने पर भी काम के सन्ताप से अपनी जांघों को फड़काती हुई एवं कामबाण से बिद्ध अन्तःकरण वाली चञ्चलनयना योनिमुद्राधारक साधक के पास शीघ्र ही बलपूर्वक आ जाती है। महाकामकला को ध्यान योग से क्षुब्ध वह साधक स्वर्ग भूलोक पाताललोक की नारियों को भी क्षुब्ध कर सकता है।

तिलकादिवश्यप्रयोगः

अथ तिलकादिवश्यप्रयोगः। तथा—
रोचनाभागमेकं तु भागमेकं तु कुङ्कुमम् । अथ भागद्वयं देवि चन्दनं मर्दयेत् समम् ।।१८।।
एकत्र तिलकं कुर्यात् त्रैलोक्यवशकारिणम् । अष्टोत्तरशतावृत्त्या मन्त्रयित्वा वशं नयेत् ।।१९।।
राजानं नगरं ग्रामं येन यद्यत्प्रदृश्यते । मन्त्रिणा परमेशानि तत्सर्वं तस्य वश्यगम् ।।२०।।
ताम्बूलं धूपमुदकं पत्रं पुष्पं फलं दधि । दुग्धं घृतं चूर्णमात्रं वस्त्रं कर्पूरमेव च ।।२१।।
कस्तूरी घुसृणं चैलालवङ्गं जातिपत्रकम् । फलं वा वस्तु यद्यत्तु सकलं परमेश्वरि ।।२२।।
शतमष्टोत्तरं जप्त्वा यस्मै यस्मै प्रयच्छति । स वश्यो जायते देवि नात्र कार्या विचारणा ।।२३।।
स्त्रियस्तु सकला वश्या दासीभूता भवन्ति हि । हठाकर्षणमेतत्ते कथितं नान्यथा भवेत् ।।२४।। इति।

तिलकादि वश्य-प्रयोग—एक भाग गोरोचन, एक भाग कुङ्कुम और दो भाग चन्दन को मिलाकर सबों को एकाकार कर उससे तिलक लगाकर विद्या का एक सौ आठ जप करता है तो वह साधक त्रैलोक्य के स्वामी को भी अपने वश में कर

लेता है। इस प्रकार के जिस साधक द्वारा राजा, नगर अथवा ग्राम जिसपर भी दृष्टिपात कर दिया जाता है, वे सभी उसके वश में हो जाता हैं। ताम्बूल, धूप, जल, पत्र, पुष्प, फल, दही, दूध, घी, चूर्णपात्र वस्त्र, कपूर, कस्तूरी, घुसृण, इलायची, लवङ्ग, जातिपत्र या जिस किसी भी वस्तु को एक सौ आठ जप से मन्त्रित करके जिसको भी वह साधक दे देता है, वह उसके वश में हो जाता है; इसमें कुछ भी विचारणीय नहीं है। सभी स्त्रियाँ उसके वश में होकर उसकी दासी हो जाती हैं। इसे ही हठाकर्षण कहते हैं।

आकर्षणादिप्रयोगः

अथाकर्षणप्रयोगः। तथा—

रहस्यस्थानके मन्त्री लिखेद्रोचनया भुवि। चारुश्रृङ्गारवेषाढ्यां सर्वाभरणभूषिताम् ॥२५॥
प्रतिमां सुन्दराङ्गीं तां विलिख्य सुमनोहराम्। तद्भालकण्ठहृन्नाभि तत्तन्मण्डल(जन्मभूमिषु)योजितम् ॥२६॥
जन्मनाममहाविद्यामङ्कुशान्तर्विदर्भिताम्। सर्वसन्धिषु देहस्य मदनाक्षरमालिखेत् ॥२७॥
लीनं दाडिमपुष्पाभं चिन्तयेद् देहसन्धिषु। तदाशाभिमुखो भूत्वा स्वयं देवीस्वरूपकः ॥२८॥
मुद्रां तु क्षोभिणीं बद्ध्वा मन्त्रमष्टशतं जपेत्। नियोज्य मदनागारे चन्द्रसूर्यकलात्मके ॥२९॥
ततो विकलसर्वाङ्गीं कामबाणैः प्रपीडिताम्। अनन्यमनसं प्रेमभ्रममाणां मदालसाम् ॥३०॥
एवमाकर्षयेन्नारीं योजनानां शतादपि। इति।

आकर्षण-प्रयोग—एकान्त स्थान में साधक भूमि पर गोरोचन से मनोहर श्रृंगार युक्त सुन्दर अंगों वाली एक मनोहर प्रतिमा बनाये। उसके ललाट कण्ठ हृदय नाभि जन्म भूमि जोड़े। जन्म नाम महाविद्या अङ्कुश से उसे विदर्भित करे। देह के सभी जोड़ों में मदनाक्षर क्लीं लिखे। देहसन्धियों में दाड़िम-पुष्प की कान्ति का चिन्तन करे। उसकी ओर मुख करके स्वयं को देवीस्वरूप मानकर क्षोभिणी मुद्रा बाँधकर मन्त्र का एक सौ आठ जप करे। चन्द्र-सूर्यकलात्मक उसके मदनागार में उस जप को नियोजित करे तब वह साध्या सर्वांगविकल एवं कामबाण से प्रपीड़ित होकर अनन्य मन से प्रेम में डोलती मदालसा सौ योजन दूर रहने पर भी आकर्षित होकर चली आती है।

तथा—

मातृकां विलिखेच्चक्रबाह्यतः सकलां प्रिये। भूर्जपत्रे स्वर्णपत्रे रौप्यपत्रेऽथ ताम्रजे ॥३२॥
सोऽवध्यः सर्वजन्तूनां व्याघ्रादीनां विशेषतः। तथैव मातृकायुक्तां स्वमाज्ञाचक्रमण्डिताम् ॥३३॥
कर्पूरकुङ्कुमाद्यैस्तु अजरामरतां लभेत्। अनेनैव विधानेन रोचनागुरुकुङ्कुमैः ॥३४॥
लिखितं चक्रयोगेन साध्यनाम वरानने। विदर्भितं स्वनाम्ना तु यस्मिन् कस्मिन्नपि स्थितम् ॥३५॥
स्थावरं जङ्गमं वापि सकलं जनमण्डलम्। वशीकुर्यान्महेशानि पादाक्रान्तं न संशयः ॥३६॥
महात्रिपुरसुन्दर्याः कामकूटेन भास्वता। एकमेवमवष्टभ्य साध्यनामाक्षराणि हि ॥३७॥
बहिरप्यालिखेद्वर्णैर्मातृकायाः प्रवेष्टयेत्। हेममध्यगतं कुर्याच्छिखायां वामके भुजे ॥३८॥
धारयेद्यत्र कुत्रापि त्रैलोक्यवशकारिणम्। राजेन्द्रमपि देवेशि दासभूतं करोति हि ॥३९॥
राजानो वाजिनः सर्वे महादुष्टा मदोत्कटाः। व्याघ्राः केसरिणो मत्ता वश्यास्तस्य भवन्ति हि ॥४०॥
पूर्वक्रमेण नगरं नाम संदर्भ्य शैलजे। मध्ये चतुष्पथे वापि चतुर्दिक्षु निधापयेत् ॥४१॥
महाक्षोभो योषितां तु जनानां महतामपि। तथैव सर्वदुष्टानां पुरस्थानां च जायते ॥४२॥
एतन्मध्यगतां पृथ्वीं सशैलवनकाननाम्। ज्वलन्तीं सर्वराजेन्द्रमण्डितां सागराम्बराम् ॥४३॥
मासषट्कं चिन्तयेद्यः स संक्षोभकरो भवेत्। कटाक्षक्षेपमात्रेण नार्यस्तस्य वशाः प्रिये ॥४४॥
राजानो ब्राह्मणा वैश्याः शूद्राश्च पशवो जगत्। दृष्ट्याकर्षयते देवि त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥४५॥
दृष्ट्या विषं नाशयते नात्र कार्या विचारणा। भूतप्रेतपिशाचांश्च ज्वरांश्चातुर्थिकादिकान् ॥४६॥

शूलगुल्मादिरोगांश्च दृष्ट्या नाशयति क्षणात् । एतत् सिन्दूरसुभगं रात्रौ संपूजितं प्रिये ।।४७।।
योजनानां शताद्देवि सम्यगाकर्षयेत् स्त्रियम् । यदा दिक्षु विदिक्ष्वेवं सम्यग् देवि प्रपूज्यते ।।४८।।
तत्तद्दिक्षु स्थिताँल्लोकान् विदिक्स्थानपि सुन्दरि । वशमानयते शीघ्रं सपुत्रपशुबान्धवान् ।।४९।।

सभी मातृकाओं को चक्र के बाहर भोजपत्र, स्वर्णपत्र-चाँदीपत्र, ताम्रपत्र पर लिखे तो वह साधक सभी जन्तुओं, विशेषकर व्याघ्रादि से अवध्य हो जाता है। उसी प्रकार अपने आज्ञा चक्र को कपूर, कुङ्कुम आदि से मण्डित करे तो अजरता-अमरता प्राप्त करता है। इसी विधान से रोचन अगर कुङ्कुम से चक्रयोग से साध्य नाम को अपने नाम से विदर्भित कर जिस किसी भी स्थिति में लिखे तो स्थावर या जङ्गम किसी भी पादाक्रान्त जनमण्डल को अपने वश में कर लेता है, इसमें कोई संशय नहीं है। महात्रिपुरसुन्दरी के दीप्तिमान काम कूट से एक बार पुटित साध्य नाम के अक्षरों को बाहर लिखकर उसे मातृकाओं से वेष्टित करे। तदनन्तर उसे सोने के ताबीज में शिखा या बायीं भुजा में या कहीं भी धारण करने से कही भी तीनों लोकों के राजेन्द्र को भी दास के समान बना लेता है। राजा, महादुष्ट मतवाले घोड़े, बाघ, सिंह उसके वश में हो जाते हैं। पूर्व क्रम से नगर के नाम को सन्दर्भित करके नगर के मध्य में, चौराहे पर या चारों ओर स्थापित कर दे तो उस नगर के नारियों या बड़े लोगों में महाक्षोम होता है। साथ ही सभी दुष्ट और नगर के निवासी भी उसके वश में होते हैं। इसके मध्य में पर्वतों एवं जंगलों से समन्वित एवं समस्त राजाओं से सुशोभित समुद्रपर्यन्त पृथ्वी का छः माह तक चिन्तन करने पर सभी संक्षुब्ध हो जाते हैं। उसके कटाक्ष से ही नारियाँ उसके वश में हो जाती है। राजा, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, पशु एवं सम्पूर्ण जगत् को दृष्टि मात्र से वह आकर्षित करता है। सचराचर तीनों लोकों को आकर्षित कर लेता है। वह दृष्टिमात्र से ही विष को नष्ट्र कर देता है। भूत प्रेत पिशाच चातुर्थिक ज्वर, शूल, गुल्म आदि रोग उसकी दृष्टि से क्षणमात्र में ही नष्ट हो जाते हैं। सिन्दूर से रात में पूजित यह चक्र स्त्रियों को सौ योजन की दूरी से भी आकर्षित कर लेता है। इसी प्रकार दिशा-विदिशाओं में देवी का सम्यक् पूजन होता है तब उस दिशा एवं उपदिशा में स्थित लोग अपने पुत्र-पशु-बान्धवों के साथ वशीभूत होकर उसके पास चले आते हैं।

भूर्जपत्रे समालिख्य रोचनागरुकुङ्कुमैः । तन्मध्ये नगरं देशं मण्डलं खण्डमेव च ।।५०।।
नाम्ना विदर्भितं स्वस्य पूजयित्वा यथाविधि । भूमिमध्यगतं कृत्वा त्रैलोक्यं वशमानयेत् ।।५१।।
अथवा धारयेत् कण्ठे शिखायां बाहुमूलके । यत्र कुत्र स्थितं भद्रे क्षोभयेन्नगरं महत् ।।५२।।
अर्कक्षीरेण संयुक्तं धत्तूरकरसं तथा । रोचनाकुङ्कुमैश्चैव लाक्षालक्तकसंयुतम् ।।५३।।
कस्तूरीद्रवसंयुक्तमेकीकृत्य ततः परम् । चक्रमेतत्समालिख्य यस्य नाम्ना महेश्वरि ।।५४।।
तस्य व्याघ्रभयं व्याधिरिपुसर्पगजादिकम् । चौरग्रहजलारिष्टं शाकिनीडाकिनीभवम् ।।५५।।
भयं न विद्यते देवि परमन्त्राभिचारजम् । नित्यं समर्चयेद् देवि कालमृत्युं विनाशयेत् ।।५६।।
अथवा मध्यगां देवि त्रिकोणोभयमध्यगाम् । अधस्तान्नामसंयुक्तां रोचनाकुङ्कुमान्वितम् ।।५७।।
निधापयेच्च सप्ताहाद् दासवत्किङ्करो भवेत् । पीतद्रव्यैः समालिख्य पीतपुष्पैः समर्चयेत् ।।५८।।
पूर्वाशाभिमुखो भूत्वा स्तम्भयेत् सर्ववादिनः । सहस्रवदनो देवि मूको भवति तत्क्षणात् ।।५९।।
नाम्ना यस्य च वाग्मी हि पाषाण इव निश्चलः । जायते देवदेवेशि महानीलीरसेन तु ।।६०।।
नाम संयोज्य विधिवद् दक्षिणाशामुखो बुधः । वह्नौ दग्ध्वा महेशानि मारयेद्वैरिणं प्रिये ।।६१।।
महिषाश्वपुरीषाभ्यां सारमाकृष्य शैलजे । गोमूत्रेण च संलिख्य नाम संदर्भ्य पूर्ववत् ।।६२।।
(क्षिप्त्वारनालमध्यस्थं विद्वेषणकरं परम् । कृत्वा रोचनया नाम काकपक्षस्य मध्यगम्) ।।६३।।
लम्बमानं तदाकाशे शत्रूच्चाटनकारकम् । महानीलीरोचनाभ्यां दुग्धलाक्षारसादिभिः ।।६४।।
विलिख्य धारयेन्मन्त्री सर्ववर्णान् वशं नयेत् । अनेनैव विधानेन स्थापयेत्तीरमध्यगम् ।।६५।।
तेनोदकेन संस्नातः पीतं तत्सर्ववश्यकृत् । सौभाग्यं जायते तेन पानीयेन न संशयः ।।६६।।

एतन्मध्यगतां पृथ्वीं नगरं वामलोचने। सप्ताहात् क्षोभयेत् सत्यं ज्वलमानं विचिन्तयेत् ॥६७॥
अथ वक्ष्ये महेशानि महापातकनाशनम्। शिवां संपूजयेद् देवि सुगन्धैः कुसुमैः प्रिये ॥६८॥
महापातकयुक्तात्मा तत्क्षणात्पापहा भवेत्। शमीदूर्वाङ्कुराश्वत्थपल्लवैरथवार्कजैः ॥६९॥
मासेन हन्ति कलुषं सप्तजन्मकृतं नरः। पूर्वाशाभिमुखो भूत्वा पीतद्रव्यैः समर्चयेत् ॥७०॥
पीतस्थाने समालिख्य स्तम्भयेत् सर्ववादिनः। उत्तराभिमुखो भूत्वा चन्दनेन समालिखेत् ॥७१॥
संपूज्य विधिवद्भक्त्या सर्वलोकं वशं नयेत्। पश्चिमाभिमुखो भूत्वा चन्दनेन समालिखेत् ॥७२॥
संपूज्य विधिवद्विद्वान् सर्वयोषिन्मनो हरेत्। वल्लभो जायते तासां दासीमिव वशं नयेत् ॥७३॥
यमाशाभिमुखो भूत्वा चक्रं कृष्णं यदार्चयेत्। यस्य नामाङ्कितं तत्र मन्त्रहानिः प्रजायते ॥७४॥
अग्निराक्षसवायव्यशंभुकोणेषु पूजितम्। पूर्ववत् परमेशानि क्रमेण परितोषितम् ॥७५॥
स्तम्भविद्वेषणव्याधिशत्रूच्चाटनकारकम्। रोचनालिखितं चक्रं क्षीरमध्ये क्षिपेद्बुधः ॥७६॥
सर्ववश्यकरं देवि भवत्येव न संशयः। गोमूत्रमध्यगं सम्यक् शत्रूच्चाटकरं परम् ॥७७॥
तैलस्थं चक्रराजं तु विद्वेषणकरं परम्। ज्वलज्ज्वलनमध्यस्थं शत्रुनाशकरं भवेत् ॥७८॥
यद्येकान्ते चतुर्मार्गे सिन्दूररजसा लिखेत्। सर्वबाह्यात आरभ्य यावन्मध्यं महेश्वरि ॥७९॥
अकारादिक्षकारान्तां मातृकां तत्र विन्यसेत्। पूजयेद्रात्रिसमये कुलाचारक्रमेण तु ॥८०॥
साधकः खेचरो देवि जायते नात्र संशयः। गिरावेकतरस्तद्वदर्चयेत् कुलमार्गतः ॥८१॥
अजरामरतां लब्ध्वा सुखी भवति मान्त्रिकः। श्मशाने पूजयेच्चक्रं महाभूतदिने तु यः ॥८२॥
पूर्वक्रमेण विधिवत् साधकः स्थिरमानसः। खड्गसिद्धिं च वेतालसिद्धिं च गुटिकां लभेत् ॥८३॥
पादुकाञ्जनसिद्धिं च मनःसिद्धिं च धातुदाम्। समहावीरसिद्धिं तु यक्षिणीचेटकोद्भवाम् ॥८४॥
तत्सर्वं लभते मन्त्री नात्र कार्या विचारणा। इति।

इति श्रीमहामहोपाध्यायभगवत्पूज्यपाद-श्रीगोविन्दाचार्यशिष्य-श्रीभगवच्छङ्कराचार्यशिष्य-श्रीविष्णुशर्माचार्यशिष्य-श्रीप्रगल्भाचार्यशिष्य-श्रीविद्यारण्ययतिविरचिते श्रीविद्यार्णवाख्ये तन्त्रे सप्तदशः श्वासः॥१७॥

●

रोचन अगर कुङ्कुम से भोजपत्र पर चक्र बनाकर उसके मध्य में नगर-देश-मण्डल अथवा उसके एक खण्ड के नाम को अपने नामाक्षरों से विदर्भित करके यथाविधि पूजन कर उसे भूमि में गाड़ दे तो तीनों लोकों को साधक अपने वश में कर लेता है अथवा कण्ठ, शिखा या बाहुमूल में या जहाँ-कहीं भी धारण करे तो महानगर को क्षुब्ध कर सकता है। अकवन का दूध, धतूर का रस, रोचन, कुङ्कुम, लाक्षा, अलक्तक, कस्तूरीद्रव को मिलाकर चक्र बनाये। उसमें जिसका नाम लिखा जाय, उसे व्याघ्रभय-व्याधि-शत्रु-सर्प-हाथी-चोर-ग्रह-जलारिष्ट या शाकिनी-डाकिनी से उत्पन्न भय या मन्त्रानुष्ठित अभिचार कर्मों का भय नहीं रहता। उस चक्र का नित्य अर्चन करने से कालमृत्यु का विनाश होता है अथवा चक्रमध्य दोनों त्रिकोणों के मध्य में नीचे रोचन कुङ्कुम से नाम लिखकर स्थापित करने से सप्ताह के अन्दर वह उसका दास हो जाता है। पीले द्रव्य से चक्र लिखकर पीले फूल से अर्चन करे। यह पूजन पूर्वाभिमुख होकर करे तो साधक सभी वादियों को स्तम्भित कर देता है। सहस्र मुख वाले शेष भी उसी क्षण से मूक हो जाते हैं। जिन वाग्मी का नाम लिखित होता है, वह पत्थर के समान निश्चल हो जाता है। महानीली के रस से नाम संयोजित करके दक्षिणमुख होकर विधिवत् अग्नि में जलाने से वैरी की भी मृत्यु हो जाती है। भैंस, घोड़े के गोबर का सार निकालकर गोमूत्र मिलाकर उससे पूर्ववत् नाम सन्दर्भित करके उसे चावल के मांड में छिपा दे तो यह परम विद्वेषकारक होता है। रोचन से नाम लिखकर कौये के पंख से ढ़ककर उसे आकाश में लटका दे तो शत्रु का उच्चाटन होता है। महानीली, रोचन, दूध, लाक्षारस से चक्र को लिखकर साधक धारण करे तो सभी वर्णों को वश में कर सकता है। इसी विधान से चक्र को लिखकर जल में स्थापित करके उस जल से स्नान और उसका पान करने पर सबों को

वश में कर सकता है। उस जल से साधक सौभाग्यवान होता है। इसे किसी नगर के मध्य में गाड़ने से एक सप्ताह में उस सम्पूर्ण नगर को क्षुब्ध कर सकता है

अब महापातकनाशन कहता हूँ। सुगन्धित फूलों से शिवा का पूजन करे तो उसी क्षण से महापातकयुक्त मनुष्य निष्पाप होता है। शमी, दूर्वांकुर, पीपलपत्ता अथवा अकवन पत्ता से पूजा करने पर सात जन्मों के पापों का नाश एक ही महीने में हो जाता है। पूर्व की ओर मुख करके पीले द्रव्यों से पूजा करे एवं पीले रङ्ग से स्थान का नाम लिखने से सभी वादियों का स्तम्भन करता है। उत्तर की ओर मुख करके चन्दन से चक्र लिखे। भक्ति से उसका विधिवत् पूजन करे तो सभी लोक वश में होते हैं। पश्चिम की ओर मुख करके चन्दन से चक्र लिखकर उसका विधिवत् पूजन करे तो साधक सभी स्त्रियों के मन को मोहित कर सकता है। वह सभी स्त्रियों का प्रिय होता है और सभी उसकी दासी हो जाती हैं। दक्षिण की ओर मुख करके काले रंग से चक्र लिखकर उसमें जिसका नाम लिखकर पूजन करे, उस नाम वाले का मन्त्र सिद्ध नहीं होता। अग्नि, नैर्ऋत्य, वायव्य, ईशान कोणों में मुख करके पूजा करने से पूर्ववत् क्रम से नाम योजित करने से स्तम्भन-विद्वेषण-व्याधि एवं शत्रु का उच्चाटन होता है। रोचन से लिखित चक्र को दूध में डालने से वह सभी का वश्यकर होता है। उस चक्र को गोमूत्र में डालने से शत्रु का परम उच्चाटन होता है। चक्रराज को तेल में छिपाने से परम विद्वेष उत्पन्न होता है। प्रज्वलित अग्नि में डालने से शत्रु का नाश होता है। चौराहे पर सिन्दूररज से चक्र बनाकर बाहर से आरम्भ करके अन्दर मध्य तक अं से क्षं तक की मातृकाओं को लिखकर रात में कुलाचार क्रम से पूजा करे तो साधक खेचर अर्थात् आकाशचारी हो जाता है। पर्वत पर उसी चक्र का कुलमार्ग से अर्चन करे तो अजरता-अमरता प्राप्त करके मान्त्रिक सुखी होता है। कृष्ण चतुर्दशी में श्मशान में चक्र की पूजा पूर्वक्रम से विधिवत् स्थिर मन से करे तो खड्गसिद्धि एवं वेतालसिद्धि, पादुका अंजन सिद्धि, धातुप्रद मनःसिद्धि, महावीरसिद्धि, यक्षिणी-चेटक आदि की प्राप्त करता है।

इस प्रकार श्रीविद्यारण्ययतिविरचित श्रीविद्यार्णव तन्त्र के कपिलदेव नारायण-कृत भाषा-भाष्य में सप्तदश श्वास पूर्ण हुआ

●

अथाष्टादशः श्वासः

समयाचारः

अथ समयाचारः प्रयोगसारे—

देवस्थाने गुरुस्थाने श्मशाने वा चतुष्पथे। पादुकासनविण्मूत्रमैथुनानि विवर्जयेत् ॥१॥
(देवं गुरुं गुरुस्थानं क्षेत्रं क्षेत्राधिदेवताः। सिद्धं सिद्धाधिवासांश्च श्रीपूर्वं समुदीरयेत्) ॥२॥
प्रमत्तामन्त्यजां कन्यां पुष्पितां पतितस्तनीम्। विरूपां मुक्तकेशीञ्च कामार्ताञ्च न निन्दयेत् ॥३॥
(कन्यायोनिं पशुक्रीडां दिग्वस्त्रां प्रकटस्तनीम्। नालोकयेत्परद्रव्यं परदारांश्च वर्जयेत्)॥४॥
धान्यगोगुरुदेवाग्निविद्याकोशनरान् प्रति। नैव प्रसारयेत्पादौ नैतानपि च लङ्घयेत् ॥५॥
आलस्यमदसंमोहशाठ्यपैशुन्यविग्रहान् । असूयामात्मसंमानं परनिन्दां च वर्जयेत् ॥६॥ इति।

आलस्यं मन्दता। मदो विद्याधनाभिजात्यसम्पत्समुदितो मनस उल्लासः। मोहो मिथ्याभिनिवेशः। शाठ्यं शक्तिगूहणम्। पैशून्यं परोक्षे परदोषप्रकाशनम्। असूया गुणेषु दोषारोपः। आत्मसन्मानं आत्मनि सम्यक्पूज्यत्वबुद्धिः।

लिङ्गिनं व्रतिनं विप्रं वेदवेदाङ्गसंहिता। पुराणागमशास्त्राणि कल्पांश्चापि न दूषयेत् ॥७॥

वेदाङ्गानि प्रसिद्धानि, संहिता मन्वादिप्रणीतस्मृतिशास्त्राणि। आगमशास्त्राणि शिवाद्युक्तयामलादीनि। 'आगतं शिववक्त्रेभ्यो गतं वै गिरिजामुखे। मतं च वासुदेवस्य तस्मादागम उच्यते' इत्यागमशब्दनिरुक्तिः। कल्पान् नक्षत्र-कल्पो विधानकल्पोऽभिचारकल्पः शान्तिकल्पश्चेत्यथर्ववेदविभागरूपान् श्राद्धकल्पादिकानन्यांश्च।

युगं मुसलमश्मानं दाम चुल्लीमुलूखलम्। शूर्पं संमार्जनीं दण्डं ध्वजं वैडूर्यमायुधम् ॥८॥
कलशं चामरं छत्रं दर्पणं भूषणं तथा। भोगयोग्यानि चान्यानि यागद्रव्याणि यानि च ॥९॥
महास्थानेषु वस्तूनि यानि वा देवतालये। दिव्योक्तानि पदार्थानि भूताविष्टानि यानि वै ॥१०॥
लङ्घयेज्जातु नैतानि यद्वा न च पदा स्पृशेत्। या गोष्ठीर्लोकविद्विष्टा या च स्वैरविसर्पिणी ॥११॥
परहिंसारता या च न तामवतरेत् क्वचित्। प्रतिग्रहं न गृह्णीयादात्मभोगविधित्सया ॥१२॥
देवतागुरुपूजार्थं यत्नतोऽप्यर्जयेद्धनम्। धारयेदार्जवं सत्यं सौशील्यं समतां धृतिम् ॥१३॥
क्षान्तिं दयामनास्थां च दिव्यां शक्तिं च सर्वदा।

आर्जवमवक्रता। सत्यं यथादृष्टार्थभाषणम्। सौशील्यं सुस्वभावावस्थानम्। समता रागद्वेषादिराहित्यम्। धृतिं दुःखादिभिरवसीदतश्चित्तस्य स्थिरीकरणं, क्षान्तिः क्षमा, परिभवादिषूत्पद्यमानक्रोधप्रतिबन्धः। दया परदुःखासहनम्।

मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—

विभीतकार्ककारञ्जस्नुहीच्छायां न संश्रयेत्। स्तम्भदीपमनुष्याणामन्येषां प्राणिनां तथा ॥१॥
नखाग्रकेशनिर्धूतस्नानवस्नघटोदकम् । एतत्स्पर्शं त्यजेद् दूरे खरश्वाजरजस्तथा ॥२॥ इति।

लिङ्गपुराणे—

अजश्वानखरोष्ट्राणां मार्जनीभवरेणुकम्। संस्पृशेद्यदि मूढात्मा श्रियं हन्ति हरेरपि ॥१॥
न निन्देत्कारणं देवं न शास्त्रं तेन निर्मितम्। न गुरुं साधकं चैव लिङ्गच्छायां न लङ्घयेत् ॥२॥
नाद्याल्लङ्गेन्न निर्माल्यं तद् दद्याच्छिवदीक्षिते।

तदिति शिवनिर्माल्यम्। तथा नारदपञ्चरात्रे—

साधनस्य स्वभावेन केशश्मश्रुविलुञ्चितः। संभवे नववस्त्रश्च मलयूकाविवर्जितः ॥१॥
सुविनीतः सदायश्च मन्त्रमाराधयेत् परम्। इति।

साधनस्य स्वभावेनेत्यनेन पुरश्चरणमध्ये न वपनं कार्यमित्युक्तमपनीतकेशश्मश्रुरित्यर्थः। अत्र तु—

गङ्गायां भास्करे क्षेत्रे पित्रोश्च मरणं विना। वृथा च्छिनत्ति यः केशांस्तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥१॥
प्रयागतीर्थयात्रायां पितृमातृवियोगतः। कचानां पवनं कुर्याद् वृथा न विकचो भवेत् ॥२॥ इति।

कालिकापुराणविष्णुभ्यां यद्वपनं निषिध्यते तददीक्षितपरम्। 'जटिला मुण्डिताश्चैव शुक्लयज्ञोपवीतिनः। ब्रह्मचर्यरताः शान्ता वेदान्तज्ञानतत्पराः' इति कूर्मपुराणे शैवानां मुण्डितत्वोक्तेः।

समयाचार—प्रयोगसार में कहा गया है कि देवस्थान में, गुरुस्थान में, श्मशान में या चौराठे पर पादुका-आसन-मल-मूत्र-मैथुन न करे। देवता, गुरु, गुरुस्थान, क्षेत्र, क्षेत्राधिदेवता, सिद्ध, सिद्धाधिवास का उच्चारण पहले श्री लगाकर करे। प्रमत्ता, शूद्रा, रजस्वला, लटकते स्तनों वाली, कुरूपा, खुल बालों वाली और कामार्त्ता कन्या की निन्दा न करे। कन्या की योनि, पशुओं का मैथुन, नंगी स्त्री एवं खुले स्तनों का अवलोकन न करे। परद्रव्य और परदारा का ग्रहण न करे। धान्य, गाय, गुरु, देवता, अग्नि, पुस्तक, खजाना और मनुष्यों की ओर पैरों को न पसारे और न ही इनका लङ्घन करे। आलस्य, मद, सम्मोह, शठता, चुगलखोरी, ईर्ष्या, आत्मसम्मान और परनिन्दा का त्याग करे।

लिङ्ग के उपासक, व्रतधारी, विप्र, वेद-वेदाङ्ग, संहिता, पुराण, आगमशास्त्र और कल्पशास्त्र पर दोषारोपण न करे। युग, मुसल, पत्थर, रस्सी, चूल्हा, ऊखल, सूप, बढ़नी, दण्ड, झण्डा, वैडूर्य, आयुध, कलश, चामर, छत्र, दर्पण, भूषण, भोगयोग अन्य यागद्रव्य, महास्थान की वस्तुएँ, देवालय की वस्तुयें—ये सभी पदार्थ दिव्य होते हैं, भूताविष्ट होते हैं। इनको न लाँघे, न पैरों से छूने दे। लोकविद्वेषक गोष्ठी, स्वैरविसर्पिणी, परहिंसा-निरत गोष्ठी में कभी न बैठे। प्रतिग्रह को अपने भोग के लिये ग्रहण न करे। देवता एवं गुरुपूजा के लिये यत्नपूर्वक धन का अर्चन करे। अवक्रता, सत्य सौशील्य समता धैर्य, क्षमा, दया, अनास्था और दिव्य शक्तियों को सदा धारण करना चाहिये।

मन्त्रतन्त्रप्रकाश में कहा गया है कि लिसोड़ा, अकवन, करञ्ज और स्नुही की छाया में न बैठे। स्तम्भ-स्थित दीपक मनुष्य अथवा अन्य प्राणियों के नखाग्र, केश, स्नान के बाद के उतारे हुए कपड़े एवं घड़े के जल का स्पर्श न करे। गदहे और घोड़ों के पैरों से उड़े धूल का भी दूर से ही त्याग कर दे।

लिङ्गपुराण में कहा गया है कि बकरा, कुत्ता, गदहा, ऊँट एवं झाड़ू से उड़े धूल का मूढ़मति यदि स्पर्श करता है तो वह भगवान् के भी लक्ष्मी का हरण कर लेता है। ब्रह्मा एवं उनके द्वारा निर्मित शास्त्र की निन्दा न करे। गुरु, साधक तथा लिङ्गछाया का लङ्घन न करे। शिवनिर्माल्य का लङ्घन अथवा भक्षण न करे, अपितु उसे शिवदीक्षित को समर्पित कर दे।

नारदपञ्चरात्र में कहा गया है कि साधन में स्वभाव से केश-दाढ़ी कटवाये। सम्भव हो तो नया वस्त्र धारण करे। मल एवं यूका से रहित होकर विनम्र एवं सदाशय होकर मन्त्र की आराधना करे। गंगा में, सूर्यक्षेत्र में एवं पितृमरण के अतिरिक्त दिनों में व्यर्थ में जो केश छिलवाता है, उसे ब्रह्मघातक कहते हैं। प्रयाग में, तीर्थयात्रा में एवं माता-पिता के वियोग में केश छिलवाये; व्यर्थ में केशों का मुण्डन नहीं कराना चाहिये।

तथा—

सामान्यसिद्ध्यै रक्षार्थं परेषां न कदाचन। प्रयोक्तव्यः स्वमन्त्रश्च आपद्यपि न चाचरेत् ॥१५॥
गारुडं भूतवादं च भयात् स्वार्थे न चात्मनि। कृपया परया कुर्यादनाथेषु असंसदि ॥१६॥
सोमसूर्यान्तरस्थं च गवां चाश्वा(वाय्व)ग्निमध्यगम्। भावयेद् दैवतं विष्णुं गुरुं विप्रशरीरगम् ॥१७॥
मन्येत मातापितरौ विष्णुं तद्वत् प्रियातिथिम्। ज्ञेयो विश्वाश्रयो विष्णुरात्मा ज्ञेयश्च विष्णुवत् ॥१८॥

यत्र यत्र परीवादो मात्सर्याच्छ्रूयते गुरोः। तत्र तत्र न वस्तव्यं प्रयायात् संस्मरन् हरिम् ॥१९॥
यैः कृता च गुरोर्निन्दा विभोः शास्त्रस्य नारद। नापि तैः सह वक्तव्यं वस्तव्वं वा कदाचन ॥२०॥
कर्मणा मनसा वाचा न कुर्यात् पारदारिकम्। न निन्द्या ब्राह्मणा देवा विष्णुर्धेनुस्तथैव च ॥२१॥
रुद्राश्चादित्या अग्निश्च लोकपाला ग्रहास्तथा। गुरुर्वा वैष्णवश्चापि पुरुषः पूर्वदीक्षितः ॥२२॥
तेन कुत्रचित् कार्ये शापानुग्रहकर्मणी। न तेन मन्त्रो वक्तव्यो मुद्रा वा समया अपि ॥२३॥
स्वानुष्ठानेऽपि यत्कर्म सर्वं सर्वस्य गोपयेत्। मन्त्रगुप्तिश्च कर्तव्या सततं मन्त्रसिद्धये ॥२४॥ इति। तेन साधकेन।

सामान्य सिद्धि की रक्षा के लिये दूसरे मन्त्र का प्रयोग कदापि न करे। विपत्ति में भी अपने मन्त्र का प्रयोग न करे। विषभय अथवा भूतभय में भी अपने लिये कभी भी मन्त्र का प्रयोग न करे; अपितु दूसरे, पर दशावश एवं अनाथों के लिये मन्त्र का प्रयोग करे। सोम-सूर्य ग्रहण में, गाय घोड़ों के आग से घिरने पर तथा गुरु एवं विप्र के शरीर में विष्णु की भावना करे। माता-पिता को विष्णु माने। उसी प्रकार प्रिय अतिथि को भी विष्णु माने। विष्णु के समस्त जगत् का अधिष्ठान एवं अपने को विष्णु के समान समझे। गुरु के बारे में जहाँ-जहाँ परिवाद या मात्सर्य सुनायी पड़े, वहाँ नहीं रहना चाहिये। हरि-स्मरणपूर्वक वहाँ से चले जाना चाहिये। जो गुरु विष्णु एवं शास्त्र की निन्दा करे, उसके साथ न रहे और न बात करे। कर्म-मन-वचन से परायी स्त्रियों की निन्दा न करे। उसी प्रकार ब्राह्मण, देवता, विष्णु एवं गौ की निन्दा न करे। रुद्र, आदित्य, अग्नि, लोकपाल, ग्रह, गुरु, वैष्णव, पूर्व दीक्षित पुरुष—इनके लिये कभी भी शाप और अनुग्रह कर्म न करे। उनको मन्त्र, मुद्रा या समय न बतलाये। अपने अनुष्ठान के सभी कर्मों को सबों से गुप्त रखे। मन्त्रसिद्धि के लिये सदैव मन्त्र को गुप्त रखना चाहिये।

तन्त्रान्तरे—
सर्वभूतेष्वनुकम्पा दानं चातिथिपूजनम्। पञ्चेज्या तीर्थसेवा च स्वाध्यायो गुरुसेवनम् ॥१॥
सामान्यं सर्वलोकानामेष धर्मः सनातनः। ब्रह्मचारी दीक्षितश्चेत् त्रिसंध्यं देवमर्चयेत् ॥२॥
स्नानं त्रिषवणं तस्य वेदाध्ययनमेव च। भैक्ष्यं संप्रार्थयेत् साक्षाध्दयायेद् देवं निरन्तरम् ॥३॥
गृहस्थो दीक्षया सिक्तः सर्वं पूर्ववदाचरेत्। न जपो नार्चनं नैव ध्यानं नापि विधिक्रमः ॥४॥
केवलं सततं श्रीमच्चरणाम्भोजभागिनाम्। सन्न्यासिनां मुमुक्षूणां मानसः कथितः क्रमः ॥५॥
परिव्राडविरक्तश्च विरक्तश्च गृही तथा। उभौ तौ नरके घोरे पच्येदाभूतसंप्लवम् ॥६॥
गृहस्थो धर्मपत्न्या च पूजयेद्देवमन्वहम्। दया दानं महार्हं च येन देवः प्रसीदति ॥७॥
संन्यासिनां द्रव्यदाने नाधिकारोऽस्ति सुव्रत। वर्णिनां च वनस्थानां को वदेदनपेक्षितम् ॥८॥ इति।

तन्त्रान्तर में कहा गया है कि सभी भूतों पर दया, दान, अतिथिपूजन, पञ्चयज्ञ, तीर्थसेवन, स्वाध्याय एवं गुरु-सेवा—यह सभी लोकों में सामान्य सनातन धर्म है। ब्रह्मचारी यदि दीक्षित हो तो तीनों सन्ध्याओं में देवार्चन करे। तीनों काल में स्नान, वेदाध्ययन, भिक्षा माँगने के समय साक्षात् देव का निरन्तर ध्यान करे। दीक्षित गृहस्थ भी पूर्ववत् सभी आचरण करे। जप, अर्चन, ध्यान एवं विधिक्रम का अनुष्ठान न कर सतत् केवल श्रीचरणकमलों का सतत् चिन्तन संन्यासियों एवं मुमुक्षुओं का मानसिक क्रम कहा गया है। विरक्त संन्यासी एवं विरक्त गृही—ये दोनों प्रलयकाल तक घोर नरक में रहते हैं जो गृहस्थ धर्मपत्नी के साथ देवता का नित्य पूजन करता है, दया एवं मूल्यवान वस्तुओं का दान करता है उससे देवता प्रसन्न रहते हैं। संन्यासियों को द्रव्यदान का अधिकार नहीं है। ब्रह्मचारी एवं वनचारी से अनपेक्षित बात न करे।

अन्यत्रापि—
अथाचारं प्रवक्ष्यामि यत् स्मृत्वामृतमश्नुते। सर्वभूतहिते युक्तः समयाचारपालकः ॥१॥
अनित्यकर्मसंत्यागी नित्यानुष्ठानतत्परः। मन्त्राणां साधनद्वारे शिवभावनतत्परः ॥२॥
परस्यां देवतायां तु सर्वकर्मनिवेदकः। अन्यमन्त्रार्चनश्रद्धामन्यमन्त्रप्रपूजनम् ॥३॥

कुलस्त्रीवीरनिन्दां च तद् द्रव्यस्यापहारणम्। स्त्रीषु रोषं प्रहारं च वर्जयेद्भक्तिमान् सदा ॥४॥
स्त्रीमयं च जगत्सर्वं स्वयं चैव तथा भवेत्। स्त्रीषु द्वेषो न कर्तव्यो विशेषात्पूजनं स्त्रियाः ॥५॥
भक्ष्यं ताम्बूलमन्यच्च भक्ष्यद्रव्यं यथारुचि। पेयं चर्व्यं तथा चोष्यं भक्ष्यं लेह्यं तथा सुखम् ॥६॥
सर्वं च युवतीरूपं भावयेद्यतमानसः। कुलजां युवतीं वीक्ष्य नमस्कुर्यात् समाहितः ॥७॥
बालां वा यौवनप्रौढां वृद्धां वा सुन्दरीं तथा। कुत्सितां वा महादुष्टां नमस्कृत्या विभावयेत् ॥८॥
कुमारीपूजनं कुर्यात् सर्वकार्येषु सर्वदा। कुमारीपूजनाद् देवि सर्वसिद्धिः प्रजायते ॥९॥ इति।
कुमारीपूजनमग्रे वक्ष्यामः।

अन्यत्र भी कहा गया है कि अब वह आचार कहता हूँ, जिसके स्मरणमात्र से अमृतत्व प्राप्त होता है। समयाचार का पालक सभी प्राणियों के हित में लगा रहता है। अनित्य कर्म को त्याग कर नित्य अनुष्ठान करता है। मन्त्रों की साधना द्वारा शिवभावन में तत्पर रहता है। दूसरे देवता को सभी कर्मों का निवेदन, अन्य मन्त्रार्चन में श्रद्धा, अन्य मन्त्र का पूजन, कुल-स्त्री एवं वीर की निन्दा, उनके धन का अपहरण, स्त्रियों पर क्रोध एवं प्रहार भक्तिमान को कभी नहीं करना चाहिये। सारे संसार को स्त्रीमय माने, स्वयं को भी वैसा ही माने। स्त्री से द्वेष न करे; विशेषतः भक्ष्य, ताम्बूल, अन्य भक्ष्य द्रव्य उनकी रुचि के अनुसार उन्हें समर्पित कर स्त्रियों का पूजन करना चाहिये। पेय, चर्व्य, चोष्य, भक्ष्य, लेह्य तथा सुखद वस्तुओं को प्रयत्नपूर्वक स्त्रीरूप मानना चाहिये। कुलस्त्री को देखकर प्रणाम करे। बाला या युवती, वृद्धा या सुन्दरी, कुत्सिता महादुष्टा सभी स्त्रियों को नमस्कार के योग्य जानना चाहिये। सभी कार्यों में सदैव कुमारी-पूजन करना चाहिये। कुमारी-पूजन से सभी सिद्धियाँ मिलती हैं।

अन्यच्च—
यस्मिन् मन्त्रे य आचारस्तत्र धर्मस्तु तादृशः। कृतार्थस्तेन जायेत स्वर्गो वा मोक्ष एव वा ॥१०॥
नाधर्मो जायते तेन किंच धर्मो महान् भवेत्। विस्मिता विलयं यान्ति पशवः शास्त्रमोहिताः ॥११॥
भ्रान्तिस्तत्र न कर्तव्या सिद्धिहानिः प्रजायते। विशुद्धचित्तस्तत्सिद्धिं लभते चापवर्गजाम् ॥१२॥
निर्विकल्पस्तु मन्त्रज्ञो ब्रह्म साक्षान्न संशयः। भैरवो यदि सञ्जातः सिद्धिस्तत्र न संशयः ॥१३॥
रात्रौ पूजा विशेषेण कर्तव्या सिद्धिमिच्छता। देव्यै निवेदितं यद्यत्तत्सर्वं भक्षयेन्नरः ॥१४॥
यदन्ना देवता यस्य तदन्नः पुरुषोत्तमः। नैवेद्यनिन्दकं दृष्ट्वा नृत्यन्ते योगिनीगणाः ॥१५॥
रक्तपानोद्यताः सर्वा मांसास्थिचर्वणोद्यताः। इति।

अन्यत्र भी कहा गया है कि जिस मन्त्र में जैसा आचार होता है, उसका धर्म भी वैसा ही होता है। उस धर्माचरण से ही कृतार्थ होकर साधक स्वर्ग या मोक्ष प्राप्त होता है। उससे कुछ भी अधर्म नहीं होता; क्योंकि धर्म महान् होता है। शास्त्रमोहित पशु विस्मित होकर विलीन हो जाते हैं। शास्त्र में भ्रान्ति न करे। भ्रान्ति करने से सिद्धि की हानि होती है। विशुद्ध चित्त से सिद्धि का लाभ होता है और अपवर्ग मिलता है। जो मन्त्रज्ञ संशयरहित होता है, वह साक्षात् ब्रह्मस्वरूप होता है। यदि वह भैरव हो जाता है तब उसे सिद्धि मिलने में संशय नहीं होता। सिद्धि के इच्छुकों को विशेष करके रात्रिपूजा करनी चाहिये। सब कुछ देवी को निवेदित करके भक्षण करना चाहिये। जो अन्न जिसका देवता होता है, वह अन्न पुरुषोत्तम होता है। नैवेद्य के निन्दक को देखकर योगिनियाँ नृत्य करती हैं। वे सभी उसके मांस एवं हड्डी को चबाती हुई उसका रक्तपान करने को उद्यत रहती हैं।

कुलार्णवे—
असंस्कृतं वृथापानं बलात्कारेण मैथुनम्। स्वप्रीत्यै आहृतं मांसं रौरवं नरकं व्रजेत् ॥१॥
आत्मार्थं प्राणिनां हिंसा न कदाचिन्मयोदिता। बलिदानं विना देव्या हिंसा सर्वत्र वर्जयेत् ॥२॥
अनिमित्तं तृणं वापि च्छेदयेन्न कदाचन। मामनादृत्य पुण्यं च पापं स्यात् प्रत्यवायतः ॥३॥

मन्निमित्तं कृतं पापं पुण्यं भवति शाम्भवि । यैरेवाप्यायनं द्रव्यैः सिद्धिस्तैरेव चोदिता ॥४॥
कुण्डीकुम्भकपालानि मधुपूर्णानि बिभृतः । किं न पश्यति लोकोऽयं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ॥५॥
श्रीगुरोः कुलशास्त्रेभ्यः सम्यग् विज्ञाय वासनाम् । पञ्चमुद्रा निषेवेत चान्यथा नरकं व्रजेत् ॥६॥
कुलद्रव्याणि सेवन्ते येऽन्यदर्शनमाश्रिताः । तदङ्गरोमसंख्याभिर्जायन्ते भूतयोनिषु ॥७॥ इति।

तथा (८.७)—

अदीक्षितैरनाचारैरतन्त्रज्ञैरदैवतैः । दूषकैः समयभ्रष्टैर्न कुर्याद् द्रव्यसंगतिम् ॥१॥
अभिज्ञम्मन्यमानैश्च पाषाण्डव्रतधारिभिः । पशुभिर्द्रव्यकर्मस्थैर्न कुर्याद् द्रव्यसङ्गतिम् ॥२॥
स्त्रीद्विष्टैर्गुरुभिः शप्तैर्भक्तिहीनैर्दुरात्मभिः । कुलोपदेशहीनैश्च न कुर्याद् द्रव्यसङ्गतिम् ॥३॥
अनभिज्ञैरनर्हैश्च न कुर्याद् द्रव्यसङ्गतिम् । पदवाक्यप्रमाणज्ञाः श्रुतिस्मृत्यर्थवेदिनः ॥४॥
कुलधर्मानभिज्ञा ये तान् सर्वान् वर्जयेत्प्रिये । स्वकुलेऽपि प्रसूता ये वृद्धाचारप्रवर्तिनः ॥५॥
त्वत्पूजाविमुखाः स्युश्चेत्तैः सङ्गं वर्जयेत्प्रिये । स्त्रीपुत्रमित्रबन्धूनां स्निग्धानामपि पार्वति ॥६॥
कुलाचारानभिज्ञानां संगतिं वर्जयेत् प्रिये । अदृष्टपुरुषाणां च देशान्तरनिवासिनाम् ॥७॥
विना सङ्केतयोगेन न कुर्याद् द्रव्यसङ्गतिम् । कुलीनं नावमन्येत पूजयेत्तं विचक्षणः ॥८॥
कुलीनेषु प्रसन्नेषु प्रसन्ना देवता भवेत् । स्वपात्रस्थितशेषं च न दद्याद्भैरवाय च ॥९॥
यदि दद्यात्कुलेशानि देवताशापमाप्नुयात् । आसनं भोजनं पात्रमुपानच्छयनानि च ॥१०॥
अनभिज्ञैरनर्हैश्च संकरं नैव कारयेत् । कुलपूजान्तरायं तु यः करोति हि दुर्मतिः ॥११॥
स याति नरकं घोरमेकविंशतिभिः कुलैः । तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कुलपूजारतो भवेत् ॥१२॥
लभते सर्वसिद्धिं च नात्र कार्या विचारणा । आराधनासमर्थश्चेत् दद्यादर्चनसाधनम् ॥१३॥
यो दातुं नैव शक्नोति कुर्यादर्चनदर्शनम् । सम्यक् शतक्रतून् कृत्वा यत्फलं समवाप्नुयात् ॥१४॥
तत्फलं समवाप्नोति सकृत्कृत्वा क्रमार्चनम् । दत्त्वा षोडशदानानि यत्फलं लभते नरः ॥१५॥
तत्फलं समवाप्नोति दत्त्वा श्रीचक्रसाधनम् । सार्धत्रिकोटितीर्थेषु स्नात्वा यत्फलमाप्नुयात् ॥१६॥
तत्फलं लभते भक्त्या कृत्वा श्रीचक्रदर्शनम् । बहुनोक्तेन किं देवि यथाशक्त्या ददाति यः ॥१७॥
कुलाचार्याय पूजार्थं कुलद्रव्यं स सर्ववित् । यथैवान्तश्चरा राज्ञः प्रियाः स्युर्न बहिश्चराः ॥१८॥
तथान्तर्यागनिष्ठा ये प्रिया मे देवि नापरे । समर्पयन्ति ते भक्त्या त्वावाभ्यां पिशितासवम् ॥१९॥
उत्पादयति चानन्दं मत्प्रियः कौलिकः प्रिये । अनधीतोऽप्यशास्त्रज्ञो गुरुभक्तो दृढव्रतः ॥२०॥
कुलपूजारतो यस्तु स मे प्रियतमो भवेत् । इति।

तन्त्रान्तरे—

कुलजां युवतीं वीक्ष्य नमस्कुर्यात् समाहितः । यदि भाग्यवशाद् देवि कुलदृष्टिः प्रजायते ॥१॥
तदैव मानसीं पूजां तत्र तासां प्रकल्पयेत् ।

तासां भगादिदेवीनाम्। तथा—

भगिनीं भगजिह्वां च भगास्यां भगसाक्षिणीम् । भगदन्तां भगाक्षीं च भगकर्णां भगत्वचाम् ॥३॥
भगनासां भगस्तनीं भगस्थां भगसर्पिणीम् । संपूज्य ताभ्यो गन्धाद्यैर्मानसैर्गुरुमेव च ॥४॥
नमस्कृत्य विधानेन स्वयमक्षोभितः सुधीः । बालां वा यौवनोन्मत्तां वृद्धां वा सुन्दरीं तथा ॥५॥
कुत्सितां वा महादुष्टां नमस्कृत्या विभावयेत् । तासां प्रहारं निन्दां च कौटिल्यमप्रियं तथा ॥६॥
सर्वथा च न कर्तव्यमन्यथा सिद्धिरोधकृत् । स्त्रियो देवाः स्त्रियः प्राणाः स्त्रियश्चैव विभूषणम् ॥७॥

स्त्रीसङ्गिना सदा भाव्यमन्यथा सिद्धिहानिकृत् । जपस्थाने महाशङ्खं निवेश्योर्ध्वं जपं चरेत् ।।८।।
स्त्रियं गच्छन् स्पृशन् पश्यन् विशेषात्कुलजां शुभाभ् । भक्षंस्ताम्बूलमन्यानि भक्ष्यद्रव्यं यथारुचि ।।९।।
भुक्त्वा ह्यशेषभक्ष्याणि भुक्त्वा शेषं जपं चरेत् ।इति।

कुलार्णव में कहा गया है कि असंस्कृत मद्यपान करने से, बलात्कारपूर्वक मैथुन करने से एवं अपनी प्रीति के लिये मांसभक्षण करने से रौरव नरक मिलता है। अपने लिये प्राणी-हिंसा करना मेरे द्वारा कभी नहीं कहा गया है, बलिदान के अतिरिक्त हिंसा सर्वत्र वर्जित है। बिना कारण के तृण भी कभी न तोड़े। मेरा अनादर करने से पुण्य भी प्रत्यवायत: पाप हो जाता है। मेरे लिये किया गया पाप भी पुण्य होता है। जहाँ द्रव्य से सन्तुष्टि होती है वहीं सिद्धि मिलती है, कुण्डी-कुम्भ एवं कपाल को मधुपूर्ण देखने वाला इस संसार में क्या नहीं देखता है। ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर को श्रीगुरु एवं कुलशास्त्र से वासना को सम्यक् रूप से जानकर पञ्चमुद्रा का सेवन करे; अन्यथा नरक में जाता है। अन्य मार्ग में आश्रित होकर जो कुलद्रव्य का सेवन करता है, वह अपने अङ्ग की रोमसंख्या के बराबर भूतयोनि में निवास करता है।

यह भी कहा गया है कि अदीक्षित, अनाचारी, अतन्त्रज्ञ, देवताविहीन, दूषक एवं समयभ्रष्ट के साथ द्रव्यसङ्गति नहीं करनी चाहिये। विज्ञ, अभिमानी, कपटी एवं द्रव्य कर्मस्थ पशुओं के साथ द्रव्यसङ्गति न करे। स्त्रीद्वेषी, गुरुशापित, भक्तिहीन, दुरात्मा एवं कुलोपदेशहीन से द्रव्यसङ्गति न करे। अनभिज्ञ, अयोग्य से द्रव्यसङ्गति न करे। पदवाक्य-प्रमाणज्ञ एवं श्रुति-स्मृति के अर्थ का ज्ञानी होते हुये भी कुलधर्म को न जानने वाले का त्याग कर देना चाहिये। जो स्वकुल में जन्म लेकर भी वृद्धाचार करता है एवं देवी की पूजा से विमुख रहता है, उसकी सङ्गति नहीं करे। स्नेही स्त्री, पुत्र, मित्र एवं बन्धु भी यदि कुलाचार से अनभिज्ञ हो तो उनकी सङ्गति न करे। अदृष्ट पुरुष देशान्तरवासी से बिना संकेत योग के द्रव्यसंगति न करे। कुलीन की अवमानना न करे; अपितु विचक्षण उनकी पूजा करे। कुलीनों के प्रसन्न होने पर देवता प्रसन्न होते हैं। अपने पात्र में बचे अन्न को भैरवों को न दे। यदि देता है तब उसे देवता का शाप मिलता है। आसन, भोजन, पात्र जूता, शयन का अनभिज्ञ एवं अयोग्य से स्पर्श न होने दे। जो कुबुद्धि कुलपूजा में व्यवधान करता है, वह अपने इक्कीस कुलों सहित घोर नरक में जाता है। इसलिये सभी प्रयत्न से कुलपूजा में रत रहना चाहिये। इससे निस्सन्देह रूप से सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। आराधना में यदि असमर्थ हो तो अर्चन का साधन प्रदान करे, जो साधन देने में असमर्थ हो, वह अर्चन का दर्शन करे। सम्यक् रूप से किये गये सौ यज्ञों का जो फल होता है, वही फल क्रमार्चन से प्राप्त होता है। सोलह दान देने से मनुष्य को जो फल मिलते हैं, वे फल श्रीचक्र-साधन देने से प्राप्त होते हैं। साढ़े तीन करोड़ तीर्थों में स्नान से जो फल होता है, वह फल भक्ति से श्रीचक्र के दर्शन से मिलता है। बहुत कहने से क्या लाभ, जो यथाशक्ति कुलाचार्य को पूजा के लिये कुलद्रव्य देता है, वह सर्वज्ञ होता है। जैसे राजा को अन्तश्चर प्रिय होते हैं, वैसे बहिष्कर नहीं होते, उसी प्रकार देवी को अन्तर्याग में रत लोग प्रिय होते हैं, दूसरे नहीं। जो भक्तिसहित तुम्हें एवं मुझे मांस-मद्य समर्पित करते हैं, वे कौलिक आनन्ददायक होते हैं। अनपढ़ एवं शास्त्रज्ञानरहित गुरुभक्त भी यदि दृढ़व्रत होकर कुलपूजा में रत रहता है तो वह मुझे प्रिय होता है।

तन्त्रान्तर में कहा गया है कि कुलजा युवती को देखकर समाहित होकर प्रणाम करे। यदि भाग्यवश कुल को देख ले तो वहीं पर उनकी मानसिक पूजा कल्पित करे। भगिनी, भगजिह्वा, भगास्या, भगसाक्षिणी, भगदन्ता, भगाक्षी, भगकर्णा, भगत्वचा, भगनासा, भगस्तनी, भगस्था, भगसर्पिणी—इन भगादि देवियों का उनके नामों से गन्धादि से मानसिक पूजन करके उन्हें तथा गुरु को प्रणाम करके स्वयं अक्षुब्ध रहे। बाला, यौवनोन्मत्ता, वृद्धा, सुन्दरी, कुत्सिता एवं महादुष्टा भी नमस्कार के योग्य होती हैं। उन पर प्रहार, उनकी निन्दा, उनके प्रति कपट एवं अप्रिय वचन कदापि न कहे; अन्यथा सिद्धि अवरुद्ध होती है। स्त्री ही देवता, प्राण एवं आभूषण होती है; अत: उनका साथ कभी नहीं छोड़ना चाहिये, अन्यथा सिद्धि की हानि होती है। जपस्थान में महाशङ्ख को ऊपर करके जप करे। कल्याणकर्त्री कुलजा स्त्री के पास जाय, स्पर्श करे, देखे। यथारुचि भोजन कराकर पान मिलाकर या अन्य भक्ष्य द्रव्य यथारुचि खिलाकर उनसे अवशिष्ट भोज्य का भोजन कर शेष जप करे।

महामन्त्रसाधने स्वेच्छाचारः

वीरतन्त्रे—

दिक्कालनियमो नात्र स्थित्यादिनियमो न च। न जपे कालनियमो चर्यादिषु बलिष्वपि ॥१॥
स्वेच्छानियम उक्तश्च महामन्त्रस्य साधने। इति।

वीरतन्त्र में कहा गया है कि महामन्त्र साधन में दिक्काल नियम नहीं है और न ही स्थिति आदि का कोई नियम है। जप में काल का भी कोई नियम नहीं है और अर्चा या बलि में भी कोई नियम नहीं है; अपितु पूर्णतः स्वेच्छा ही नियम कहा गया है।

महामन्त्राः

महामन्त्रास्तु तत्रैव—

काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी। भैरवी च्छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती मता ॥१॥
बगला सिद्धविद्या च मातङ्गी कमलात्मिका। एता एव महाविद्या दश विद्याः प्रकीर्तिताः ॥२॥
नात्र शुद्ध्याद्यपेक्षास्ति नारिमित्रादिदूषणम्। न वा प्रयासबाहुल्यं समयासमयादिकम् ॥३॥ इति।

अत्र काली दक्षिणाकालिकादिंभेदाः। तारा ताराभेदाः। महाविद्या षोडशीश्रीमहात्रिपुरसुन्दर्याः। षोडशी पञ्चदशीभेदसहिता। भुवनेश्वरी तद्भेदसहिता। भैरवी बालादिभेदसहिता। छिन्नमस्ता तद्भेदसहिता। विद्या धूमावती, तद्भेदा घर्मटीमर्कटीआर्द्रपटीतद्भेदसहिता। बगला तद्भेदसहिता, वाराह्यष्टभेदसहिता। सिद्धविद्या च, मातङ्गी सुमुखीश्यामा-लघुमातङ्गीराजमातङ्गीभेदसहिता। कमलात्मिका महालक्ष्मी भेदसहिता। तथा—

वस्त्रासनस्थानगेहदेहस्पर्शादिवारिणः। शुद्धिं न चाचरेदत्र निर्विकल्पमनाश्चरेत् ॥४॥ इति।

कुलार्णवे—

कुलाचारगृहं गत्वा भक्त्या पापं विशोधयेत्। याचयेदमृतं कौलं तदभावे कुलं भवेत् ॥१॥
कुलाचारेण यत्कृत्वा दण्डपात्रं तु भक्तितः। नमस्कृत्य च गृह्णीयादन्यथा नरकं व्रजेत् ॥२॥ इति।

अन्यत्रापि—

वृथा न गमयेत्कालं द्यूतक्रीडादिना सुधीः। गमयेद् देवतापूजाजपयागस्तवादिना ॥१॥
वीराणां जपयज्ञस्तु सर्वकाले प्रशस्यते। सर्वदेशे सर्वपीठे कर्तव्यो नात्र संशयः ॥२॥
शक्तिःशिवःशिवःशक्तिः शक्तिर्ब्रह्मा जनार्दनः। शक्तिरिन्द्रो रविःशक्तिः शक्तिश्चन्द्रो ग्रहा ध्रुवः ॥३॥
शक्तिरूपं जगत् सर्वं यो न जानाति नारकी। इति।

वीरतन्त्रे—

स्नानादि मानसं शौचं मानसः प्रवरो जपः। पूजनं मानसं दिव्यं मानसं तर्पणादिकम् ॥१॥
सर्व एव शुभः कालो नाशुभो विद्यते क्वचित्। न विशेषो दिवा रात्रौ न सन्ध्यायां दिवानिशम् ॥२॥
सर्वदा पूजयेद् देवीमस्नातः कृतभोजनः। महानिशि शुचौ देशे बलिं मन्त्रेण दापयेत् ॥३॥
रात्रावेव महापूजा कर्तव्या वीरवन्दिते। तद् दिने सर्वथा कार्या शासनान्मम सुव्रते ॥४॥ इति।

काली, तारा, षोडशी भुवनेश्वरी महाविद्या भैरवी, छिन्नमस्ता, धूमावती, बगला, सिद्धविद्या एवं कमलात्मिका मातङ्गी को दश महाविद्या कहते हैं। इनकी उपासना में शुद्धि आदि अपेक्षित नहीं होती। अरि-मित्रादि का दूषण भी नहीं होता, न ही प्रयासबाहुल्य होता है और न समय-असमय का विचार होता है। महायन्त्र की उपासना में वस्त्र, आसन, स्थान, गृह, देहस्पर्श आदि में जल से शुद्धि नहीं करनी चाहिये; बल्कि निर्विकल्प मन से आचरण करना चाहिये।

कुलार्णव में कहा गया है कि कुलाचार गृह में जाकर भक्ति से पापों का शोधन करे। कौल अमृत की याचना करे

अथवा उसके अभाव में कुल की याचना करे। कुलाचार में कर्म को करके दण्डपात्र को भी भक्ति से नमस्कार करके ग्रहण करे; अन्यथा नरकवासी होता है।

अन्यत्र भी कहा गया है कि साधक जुआ-क्रीड़ा आदि में व्यर्थ समय न बिताये; अपितु समय को देवता-पूजा, जप, याग, स्तुति आदि में बिताये। वीरों को जपयज्ञ के लिये सभी समय प्रशस्त कहे गये हैं। यह जपयज्ञ सभी देश एवं सभी पीठ में कर्तव्य है, यहाँ संशय नहीं है। शक्ति शिव है, शिव ही शक्ति है। ब्रह्मा एवं विष्णु भी शक्ति हैं। इन्द्र शक्ति हैं, सूर्य शक्ति है, चन्द्र शक्ति है, सभी ग्रह एवं ध्रुव भी शक्ति हैं। सारा संसार शक्तिरूप है। जो यह नहीं जानता है, वह नारकी होता है।

वीरतन्त्र में कहा गया है कि मानस स्नानादि से शुद्धि होती है। मानस जप उत्तम होता है। मानस पूजन दिव्य होता है। मानस तर्पण दिव्य होता है। सभी समय शुभ है, कुछ भी अशुभ नहीं होता। दिन-रात में कोई विशेषता नहीं है, न ही सन्ध्या में दिन-रात का कोई भेद है। देवी की पूजा बिना नहाये एवं भोजन करने पर भी सर्वदा करनी चाहिये। महानिशा में पवित्र देश में मन्त्र से बलि प्रदान करे। रात में ही महापूजा करनी चाहिये। उस दिन मेरे शासन के अनुसार कार्य करना चाहिये।

महानिशा तु तत्रैव—

अर्धरात्रात् परं यच्च मुहूर्तद्वयमेव च। सा महारात्रिरुद्दिष्टा तद्दतं चाक्षयं भवेत् ॥५॥ इति।

गन्धर्वतन्त्रे—

पृथ्वीमृतुमतीं वीक्ष्यं सहस्रं यदि नित्यशः। तदा वादी स्वसिद्धान्तहतः क्षितितलं व्रजेत् ॥१॥

पृथ्वीं कुलम्। नित्यश इति षोडशदिनं यावत्।

पर्वते हस्तमारोप्य निर्भयो यतमानसः। कवितां लभते सोऽपि अमृतत्वं च गच्छति ॥२॥

अत्रापि सहस्रमिति सम्बन्धः। पर्वतः स्तनः। नीलतन्त्रे—

पद्मं दृष्ट्वा यथा बिम्बं खञ्जनं शिखरं तथा। चामरं रविबिम्बं च तिलपुष्पं सरोरुहम् ॥१॥
त्रिशूलं वीक्ष्य जप्त्वा च शतशः शुद्धभावतः। मुखप्रसादं सुमुखं सुलोचनं सुहास्यकम् ॥२॥
सुकेशं सुगतिं चैव सुगन्धिं सुखमेव च। लभते च यथासंख्यं शृणु पार्वति सादरम् ॥३॥

पद्मं मुखं, बिम्बमधरम्, खञ्जनं चक्षुः, शिखरं स्तनं, चामरं केशं, रविबिम्बं सिन्दूरं, तिलपुष्पं नासिकां, सरोरुहं नाभिं, त्रिशूलं त्रिवलीमिति। भावचूडामणौ—

एकाकी निर्जने देशे श्मशाने विजने वने। शून्यागारे नदीतीरे निःशङ्को विहरेत् सदा ॥१॥
महाचीनद्रुमे देवीं ध्यात्वा तत्र प्रपूजयेत्। तद्दुमोद्भवपुष्पेण पूजयेद्भक्तिभावतः ॥२॥
स भवेत्कुलदेवश्च कुलक्रमगतः शुचिः। ब्रह्मतरोर्महापद्मे देवीं ध्यात्वा यथाविधि ॥३॥
तत्सुधारससारेण तर्पयेन्मातृकानने। महाचीनद्रुमलतावेष्टितः साधकोत्तमः ॥४॥
रात्रौ यदि जपेन्मत्रं सैव कल्पलता भवेत्। तिथिक्रमेण संख्याभिर्लताभिर्वेष्टितो यदि ॥५॥
तदा मासेन सिद्धिः स्यात् सहस्रजपमानतः। अष्टम्यां च चतुर्दश्यां द्विगुणं यदि दृश्यते ॥६॥
तत्रैव महतीं सिद्धिं देवानामपि दुर्लभाम्। इति।

महानिशा—आधी रात के बाद जो दो मुहूर्त होते हैं, उन्हें ही महानिशा कहते हैं। उनमें किया गया कार्य अक्षय होता है। एक मुहूर्त अड़तालीस मिनट का होता है अर्थात् बारह बजे से डेढ़ बजे तक महानिशा काल होता है।

गन्धर्व तन्त्र में कहा गया है कि रजस्वला योनि को देखकर प्रतिदिन एक हजार जप सोलह दिनों तक करे तो वादी स्वसिद्धान्त से हत होकर पृथ्वी पर रहता है। स्तन पर हाथ रखकर निर्भय यतमानस होकर एक हजार जप करने से कवित्व शक्ति प्राप्त होती है और अमृतत्व प्राप्त होता है।

नीलतन्त्र में कहा गया है कि युवती का मुख, अधर, आँख, स्तन, केश, सिन्दूर, नाक, नाभि एवं त्रिवली को देखते हुए शुद्ध भाव से सौ-सौ जप करने से मुख की प्रसन्नता, सुन्दर मुख, सुन्दर आँखें, सुन्दर हँसी, सुन्दर केश, सुन्दर गति, सुन्दर गन्ध एवं सुख का लाभ जप की संख्या के बराबर प्राप्त होता है।

भावचूड़ामणि में कहा गया है कि निर्जन देश में, श्मशान में, निर्जन वन में, सूने घर में, नदीतट पर निःशंक भाव से एकाकी होकर सदा विचरण करे। महाचीन के वृक्ष में देवी का ध्यान करके पूजा करे। उस वृक्ष के फूलों से भक्तिसहित पूजा करे तो वह कुलदेवता होकर कुलक्रमगत पवित्र होता है। ब्रह्मवृक्ष पलाश-महापद्म में देवी का ध्यान करके यथाविधि उसके सुधारससार से महाचीन द्रुमलता-वेष्टित मातृकानन में तर्पण करके रात में यदि मन्त्र जप करे तो वह कल्पलता के समान हो जाता है। तिथिक्रम की संख्या से लता से वेष्टित करके एक मास तक एक हजार जप करने से सिद्धि मिलती है। अष्टमी चतुर्दशी में यदि दुगुना दिखे तो देवदुर्लभ महती सिद्धि मिलती है।

कूलचूडामणौ—

श्रृणु पुत्र रहस्यं मे समयाचारसम्भवम्। येन हीना न सिध्यन्ति जन्मकोटिसहस्रशः ॥१॥
मानवः कुलशास्त्राणां कुलाचार्यानुचारिणाम्। तदा चरेत्तु सर्वत्र वैष्णावाचारतत्परः ॥२॥
परनिन्दासहिष्णुः स्यादुपकाररतः सदा। पर्वते विपिने वापि निर्जने शून्यमण्डपे ॥३॥
चतुष्पथे जनशून्ये यदि दैवाद्गतिर्भवेत्। क्षणं ध्यात्वा मनुं जप्त्वा नत्वा गच्छेद्यथासुखम् ॥४॥
गृध्रं वीक्ष्य महाकालीं नमस्कुर्यादलक्षितम्। क्षेमङ्करीं तथा वीक्ष्य जम्बुकीं यमदूतिकाम् ॥५॥
कुररं श्येनभूकाकौ कृष्णमार्जारमेव च। कृशोदरि महाचण्डे मुक्तकेशि बलिप्रिये ॥६॥
कुलाचारप्रसन्नास्ये नमस्ते शङ्करप्रिये। श्मशानं च शिवं दृष्ट्वा प्रदक्षिणमनुव्रजन् ॥७॥
प्रणम्यानेन मनुना मन्त्री सुखमवाप्नुयात्। घोरदंष्ट्रे करालास्ये फिटिशब्दप्रणादिनि ॥८॥
घोरघोररवास्फारे नमस्ते विन्ध्यवासिनि। भाग्योदयसमुत्पन्ने नमस्ते वरवर्णिनि ॥९॥
कृष्णवर्णं तथा पुष्पं राजानं राजपुत्रकम्। हस्त्यश्वरथशस्त्राणि फलकान् वीरपूरुषान् ॥१०॥
महिषं कुलदेवं च दृष्ट्वा महिषमर्दिनीम्। प्रणम्य जयदुर्गां वा सर्वविघ्नैर्न लिप्यते ॥११॥
जय देवि जगद्धात्रि त्रिपुराद्ये त्रिदैवते। भक्तेभ्यो वरदे देवि महिषघ्नि नमोऽस्तु ते ॥१२॥
मद्यभाण्डं सदालोक्य मत्स्यं मांसं वरस्त्रियम्। दृष्ट्वा च भैरवीं देवीं प्रणमेद्विभृशन् मनुम् ॥१३॥
घोरविघ्नविनाशाय कुलाचारसमृद्धये। नमामि वरदे देवि मुण्डमालाविभूषिते ॥१४॥
रक्तधारासमाकीर्णा वरदे त्वां नमाम्यहम्। सर्वविघ्नहरे देवि नमस्ते हरवल्लभे ॥१५॥
एतेषां दर्शने चैव यदि नैवं प्रकुर्वते। शक्तिमन्त्रं पुरस्कृत्य तस्य सिद्धिर्न जायते ॥१६॥
कुलाचारे कुलाष्टम्यां चतुर्दश्यां विशेषतः। योगिनीपूजनं तत्र प्रधानं कुलपूजनम् ॥१७॥
यथा विष्णुतिथौ विष्णुः पूजितो वाञ्छितप्रदः। तथा कुलतिथौ दुर्गा पूजिता वरदायिनी ॥१८॥ इति।

कुलचूड़ामणि में कहा गया है कि समयाचारसम्भव के रहस्य को सुनो, जिससे रहित व्यक्ति को हजार करोड़ जन्मों में भी सिद्धि नहीं मिलती। कुलशास्त्र एवं कुलाचार का अनुसरण करने वाला मनुष्य वैष्णवाचार में तत्पर होकर कुलाचार का सर्वत्र पालन करे। वह सदा परनिन्दा-सहिष्णु तथा उपकार में रत रहे। पर्वत में, वन में, निर्जन शून्य मण्डप में, चौराहे पर, जनशून्य में यदि कभी जाना पड़े तो क्षण भर ध्यान करके मन्त्र का जप कर प्रणाम करके सुखपूर्वक आगे जाय। गीध को देखकर अलक्षित महाकाली को प्रणाम करे। जम्बुकी एवं यमदूतिका को देखकर क्षेमंकरी को प्रणाम करे। कुरर, बाज, भूकाक, काले विलार को देखकर 'कृशोदरि महाचण्डे मुक्तकेशि बलिप्रिये कुलाचारप्रसन्नास्ये शङ्करप्रिये' कहकर प्रणाम करे। श्मशान और शिव को देखकर उनकी प्रदक्षिणा करके निम्न मन्त्र से प्रार्थना करने पर साधक सुखी होता है—

घोरदंष्ट्रे करालास्ये फिटिशब्दप्रणादिनि। घोर-घोररवस्फारे नमस्ते विन्ध्यवासिनि।।
भाग्योदयसमुत्पन्ने नमस्ते वरवर्णिनि।

काले रङ्ग के फूल, राजा, राजपुत्र, हाथी, घोड़ा, रथ, शस्त्र, फलक, वीरपुरुष, भैंसा एवं कुलदेव को देखकर महिषमर्दिनी को या जयदुर्गा को प्रणाम करने से कोई विघ्न नहीं होता। इनका नमस्कार मन्त्र है—

जय देवि जगद्धात्रि त्रिपुराद्ये त्रिदैवते। भक्तेभ्यो वरदे देवि महिषाघ्नि नमोस्तु ते।।

मद्यभाण्ड, मत्स्य, मांस, सुन्दर स्त्री और भैरवी देवी को देखकर मन में मन्त्र को बोलते हुये प्रणाम करे—

घोरविघ्नविनाशाय कुलाचारसमृद्धये। नमामि वरदे देवि मुण्डमालाविभूषिते।।
रक्तधारासमाकीर्णां वरदे त्वां नमाम्यहम्। सर्वविघ्नहरे देवि नमस्ते हरवल्लभे।।

इनका दर्शन यदि नहीं होता तो मन्त्र पुरश्चरण से भी सिद्धि नहीं मिलती। कुलाचार में कुलाष्टमी; विशेषकर चतुर्दशी में योगिनीपूजन करके प्रधान रूप से कुलपूजा करे। जिस प्रकार विष्णु की तिथि में पूजा से विष्णु अभीष्ट फल देने वाले होते हैं, वैसे ही कुलतिथि में पूजा से दुर्गा वरदायिनी होती हैं।

कुलाचारनियमः

कुलाचारनियमस्तु यामले—

रविश्चन्द्रो गुरुः सौरश्चत्वारश्चाकुला इमे। भौमशुक्रौ कुलाख्यौ तु बुधवारः कुलाकुलः ।।१।।
द्वितीया दशमी षष्ठी कुलाकुलमुदाहृतम्। विषमाश्चाकुलाः सर्वा शेषाश्च तिथयः कुलाः ।।२।।
वारुणार्द्राभिजिन्मूलं कुलाकुलमुदाहृतम्। कुलानि समयुग्मनि शेषभान्यकुलानि च ।।३।।
तिथौ वारे च नक्षत्रे ह्यकुले स्थायिनो जयः। कुलाख्ये जयिनो नित्यं साम्यं चैव कुलाकुले ।।४।। इति।

एवं कुलाचारादिकं ज्ञात्वा साधकः कर्म कुर्यात्।

कुलाचार के नियम—यामल में कहा गया है कि सूर्य-चन्द्र-गुरु-शनिवार—ये चार अकुल हैं। भौम-शुक्रवार कुल हैं एवं बुधवार कुलाकुल है। द्वितीया, दशमी, षष्ठी कुलाकुल तिथियाँ हैं। विषम तिथियाँ अकुल हैं। शेष सभी तिथियाँ कुल हैं। वारुण आर्द्रा अभिजित् मूल को कुलाकुल कहते हैं। समयुग्म नक्षत्र कुल हैं एवं शेष अन्य अकुल हैं। स्थायी तिथि वार नक्षत्र अकुल में जय होती है। कुल तिथि, वार, नक्षत्र नित्य जयी होते हैं। कुलाकुल नित्य साम्य होते हैं। इस प्रकार के कुलाचार आदि को जानकर साधक कर्म करे।

शिवाबलिः

अथ शिवाबलिः। कुलचूडामणौ—

बिल्वमूले प्रान्तरे वा श्मशाने वापि साधकः। मांसप्रधानं नैवेद्यं सन्ध्याकाले निवेदयेत् ।।१।।
कालिकालीति वक्तव्ये तत्रोमा शिवरूपिणी। पशुरूपधरायाति परिवारगणैः सह ।।२।।
भुक्त्वा रौति यदैशान्यां मुखमुत्तोल्य सस्वरम्। तदैव मङ्गलं तस्य नान्यथा कुलभूषणम् ।।३।।
अवश्यमन्नदानेन नियतं तोषयेच्छिवाम्। नित्यश्राद्धं तथा सन्ध्यावन्दनं पितृतर्पणम् ।।४।।
तथैव कुलसेव्यानां नित्यता कुलपूजने। पशुरूपां शिवां देवीं यो नार्चयति निर्जने ।।५।।
शिवारावेण तस्याशु सर्वं नश्यति निश्चितम्। जपपूजाविधानानि यत्किञ्चित्सुकृतानि च ।।६।।
गृहीत्वा शापमादाय शिवा रोदिति निर्जने। एकया भुज्यते यत्र शिवया देव भैरव ।।७।।
तत्रैव सर्वशक्तीनां प्रीतिः परमदुर्लभा। पशुशक्तिः पक्षिशक्तिर्नवशक्तिर्यथाक्रमात् ।।८।।
पूजनाद्द्विगुणं कर्म सगुणं साधयेत्त ततः। तेन सर्वप्रयत्नेन कर्तव्यं पूजनं महत् ।।९।।
राजादिभयमापन्ने देशान्तरभयादिके। शुभाशुभानि कर्माणि विचिन्त्य बलिमाहरेत् ।।१०।।
गृह्ण देवि महाभागे शिवे कालाग्निरूपिणि। शुभाशुभफलं व्यक्तं ब्रूहि गृह्ण बलिं तव ।।११।।
एवमुच्चार्य दातव्यो बलिः कुलार्चनप्रियैः। यदि न भुज्यते वत्स तदा नैव शुभं भवेत् ।।१२।।
शुभं यदि भवेत्त्वत्र भुज्यते तदशेषतः। एवं ज्ञात्वा महादेव शान्तिस्वस्त्ययनं चरेत् ।।१३।। इति।

कुलवर्त्म सर्वत्र गोपनीयम्। तन्त्रान्तरे—

निर्जने चैव कर्तव्यं न चैवं जनसंनिधौ। किंवा पक्षिपतङ्गादिदर्शने नैव कारयेत् ॥१॥
पातालमण्डपे वापि गह्वरेषु नियन्त्रिते। निश्छिद्रमण्डपे वापि कर्तव्यं न च सन्निधौ ॥२॥
कुलपुष्पं कुलद्रव्यं कुलपूजां कुलं जपम्। कुलं कुलपतिं चैव कुलमालां कुलाकुलम् ॥३॥
कुलचक्रं कुलध्यानं सर्वथा न प्रकाशयेत्। प्रकाशात्कार्यहानिः स्यात्प्रकाशान्निधनादिकम् ॥४॥
प्रकाशान्मन्त्रनाशः स्यात्प्रकाशात्कुलहिंसनम्। प्रकाशान्मृत्युलाभः स्यान्न प्रकाश्यं कदाचन ॥५॥
पूजाकाले च देवेशि यदि कोऽप्यत्र गच्छति। दर्शयेद्वैष्णवीं मुद्रां विष्णुन्यासं तथा स्तवम् ॥६॥
प्रकाशाद्यदि गुप्तिः स्यात्तत्प्रकाशान्न दूषणम्। गोपनाद्यदि व्यक्तिः स्यान्न गुप्तिरभिधीयते ॥७॥ इति।

वीरतन्त्रे शिवाबलिमधिकृत्य—

नृपलं वैरिनाशाय समरे विजयाय च। छागलं परसैन्यस्य स्तम्भनाय विशेषतः ॥१॥
सर्वरोगोपशमनं सर्वापद्विनिवारणम्। परवादिमुखस्तम्भे माहिषं शस्यते पलम् ॥२॥
मृगजं सर्वशत्रूणामुच्चाटनकरं परम्। शशोत्थं वश्यकर्मादावाविकं कृष्टिकारकम् ॥३॥
पशूत्थं मोहने शस्तं विद्वेषे तुरगोद्भवम्। उच्चाटे चोष्ट्रजं शस्तं खरोत्थं प्रीतिनाशनम् ॥४॥
महामांसाष्टकस्येह फलं शृणु क्रमेण च। आयुःकीर्तिधनारोग्यपुत्रश्रीजयकान्तिदम् ॥५॥ इति।

शिवाबलि—कुलचूड़ामणि में कहा गया है कि बिल्वमूल में, प्रान्तर में या श्मशान में मांसप्रधान नैवेद्य सन्ध्या-काल में निवेदित करे। काली-काली पुकारने पर शिवरूपिणी उमा पशुरूप धारण करके परिवारसहित आती है और बलि-भक्षण करके पूर्व तरफ मुख उठाकर जोर से रुदन करती है तब कुलभूषण को मङ्गल होता है, अन्यथा नहीं। अन्नदान देकर शिवा को अवश्य संतुष्ट करे। नित्य श्राद्ध, सन्ध्या वन्दन, पितृतर्पण भी करे। उसी प्रकार कुलसेव्यों के नित्य कुलपूजा में पशुरूपा शिवादेवी का अर्चन जो साधक निर्जन स्थान में नहीं करता है तो शिवाराव से उसका सब कुछ नष्ट हो जाता है। जप पूजा विधान से सभी सुकृतों को ग्रहण करके शाप देकर शिवा निर्जन में रोती है। एक भी शिवा को जो भोजन कराता है तब उसकी सभी शक्तियों से परम दुर्लभ प्रीति होती है। पशुशक्ति, पक्षीशक्ति एवं नव शक्ति का यथाक्रम से पूजन दुगुना करे। तब सगुण कर्म का साधन करे। इसलिये सभी प्रयत्न से महत् पूजन करना चाहिये। राजादि से भय प्राप्त होने पर अथवा अन्य देश में भय होने पर शुभ-अशुभ कर्मों का चिन्तन करके बलि प्रदान करना चाहिये। बलिमन्त्र इस प्रकार है—

गृह्ण देवि महाभागे शिवे कालाग्निरूपिणि। शुभाशुभफलं व्यक्तं ब्रूहि गृह्ण बलिं तव।।

यह कहकर कुलार्चन में रत साधक को बलि देनी चाहिये। यदि शिवा बलि नहीं खाती है तब शुभ नहीं होता। पूरे बलि को खा जाय तभी शुभ होता है। इसे जानकर शान्ति स्वस्त्ययन आदि का आचरण करना चाहिये। कुलमार्ग सर्वत्र गोपनीय होता है।

तन्त्रान्तर में कहा गया है कि कुलाचार निर्जन स्थान में करे, लोगों के बीच में न करे। पशु-पक्षी-पतङ्ग आदि के दिखाई देने पर भी न करे। पातालमण्डप में या नियन्त्रित गुफा में या निश्छिद्र मण्डप में करे, किसी की सन्निधि में न करे। कुलपुष्प, कुलद्रव्य, कुलपूजा, कुलजप, कुल, कुलपति, कुलमाला, कुलाकुल, कुलचक्र एवं कुलध्यान का प्रकाशन कभी न करे। प्रकाशित करने से कार्य की हानि, मृत्यु, मन्त्र का नाश, से कुलहिंसा और मृत्यु तक हो सकती है। अतः कदापि प्रकाशित न करे। पूजाकाल में यदि कोई वहाँ आ जाय तो वैष्णवी मुद्रा दिखाये, विष्णु-न्यास करे तथा स्तोत्रपाठ करे। प्रकाशन से यदि गुप्ति होती है तो उसे प्रकाशित करने में दोष नहीं है। यदि व्यक्ति को गोपन हो तो गुप्ति अभिधेय नहीं होता। कदाचित् देहहानि होती है इससे व्यक्ति का प्रकाशन भी न करे। पूजा न करना श्रेष्ठ है, लेकिन व्यक्ति कदापि श्रेष्ठ नहीं है।

वीरतन्त्र में कहा गया है कि युद्ध में वैरी-नाश और विजय के लिये मनुष्य-मांस एवं शत्रुसेना को स्तम्भित करने के लिये छाग की बलि देनी चाहिये। सभी रोगों के उपशमन, सभी आपदा के विनिवारण, परवादी के मुखस्तम्भन में भैंसे

के मांस की बलि प्रशस्त है। मृगमांस से बलि समस्त शत्रु का परम उच्चाटनकारक है। खरहे का मांस वशीकरण में एवं भेड़ का मांस आकर्षण में प्रशस्त कहा गया है। पशु का मांस मोहन में एवं विद्वेषण में घोड़े का मांस उत्तम है। उच्चाटन में ऊँट का मांस तथा गदहे का मांस प्रीतिनाशक है। इन्हें महामांसाष्टक कहते हैं। ये सभी क्रमशः आयु, कीर्ति, धन, आरोग्य, पुत्र, श्री, जय एवं कान्तिदायक होते हैं।

महामांसाष्टकं तत्रैव—

गोनरेभाश्वमहिषवराहाजमृगोद्भवम् । महामांसाष्टकमिदं देवताप्रीतिकारकम् ॥६॥
खेचराणां विशेषेण खेचरीसिद्धिदं फलम् । सर्वमांसं सुरायुक्तं दद्याद् देव्यै विशेषतः ॥७॥
मत्स्योत्थं मन्त्रसिद्ध्यै च कौक्कुटं कार्मणापहम् । इति।

अथैतस्य प्रयोगः—'बिल्वमूले प्रान्तरे वा' इत्यादि विजनस्थले सन्ध्याकाले तत्र गत्वा बलिद्रव्यं क्वचित्संस्थाप्य स्वयमासने समुपविश्य पुरतः पाषाणादौ पूजायन्त्रमथवा त्रिकोणषट्कोणवृत्तचतुरस्रात्मकं वा मण्डलं चन्दनादिना विरचय्य गुरुगणपतिक्षेत्रेशान् प्रणम्य मूलेन प्राणायामत्रयर्घ्यादिकरषडङ्गन्यासध्यानानि विधाय अद्येत्यादि अमुक-देवशर्मामुककामः श्रीपरदेवताप्रीत्यर्थं शिवाबलिविधिं करिष्ये इति संकल्प्य 'बलिमण्डलाय नमः' इति गन्धादिना मण्डलं संपूज्य, तत्र बलिद्रव्यं निक्षिप्य 'बलिद्रव्याय नमः' इति बलिद्रव्यं संपूज्य, मूलविद्यामुच्चार्य 'कालि काल्युमे शिवरूपिणि पशुरूपधरे परिवारगणैः सहात्रायाहि धूपदीपादिसहितं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा' पुनर्मूलं अमुक-देवतायै सायुधायै सशक्तिकायै पशुरूपधरायै एष बलिर्नमः, इत्युत्सृज्य 'गृह्ण देवि महाभागे शिवे कालाग्निरूपिणि। शुभाशुभफलं व्यक्तं ब्रूहि गृह्ण बलिं तव' इति प्रार्थ्य क्वचिद् दूरे गत्वा, एकान्ते स्वासनोपर्युपविश्य प्राणायामादिपूर्वकं मूलमन्त्रं जपेत्। यावदागत्य शिवाबलिं स्वीकृत्य रौति तावत्कालं जपित्वा जपं समर्प्य नद्यादौ पादौ प्रक्षाल्याचम्य देवीं ध्यायन्मौनी पश्चादपश्यन् गृहमागच्छेदिति।

महामांसाष्टक—वीरतन्त्र में ही कहा गया है कि गाय, नर, हाथी, अश्व, भैंसा, सूअर, बकरा एवं मृग—इन आठ के मांस को महामांसाष्टक कहते हैं। ये देवता को प्रीतिकारक होते हैं। आकाशचारी पक्षियों के मांस खेचरी-सिद्धिप्रद होते हैं। सभी मांसों को सुरा के साथ देवी को देना चाहिये। मन्त्रसिद्धि के लिये मछली की बलि देनी चाहिये। कुक्कुट का मांस कर्म का हरण करने वाला होता है।

प्रयोग—जनरहित स्थल में सन्ध्या काल में जाकर बलि द्रव्य को वहीं रखकर स्वयं आसन पर बैठकर सामने पत्थर पर पूजा यन्त्र अथवा त्रिकोण षट्कोण चतुरस्र युक्त मण्डल चन्दनादि से बनाकर गुरु गणेश क्षेत्रपति को प्रणाम करके तीन प्राणायाम करे। अर्घ्यादि स्थापन करे, कर-षडङ्ग न्यास करे। सङ्कल्प करे। सङ्कल्प के बाद 'बलिमण्डलाय नमः' से बलि द्रव्य की पूजा गन्धादि से करे। वहाँ बलि द्रव्य रखकर 'बलिद्रव्याय नमः' से बलिद्रव्य की पूजा करे। मूल विद्या का उच्चारण करके 'कालि काल्युमे शिवरूपिणि पशुरूपधरे परिवारगणै सहात्रायाहि धूपदीपादिसहितं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा' कहकर पुनः 'मूलं अमुकदेवतायै सायुधायै सशक्तिकायै पशुरूपधरायै एष बलिर्नमः' कहकर बलि प्रदान करे। तब कहे—गृह्ण देवि महाभागे शिवे कालाग्निरूपिणि। शुभाशुभफलं व्यक्तं ब्रूहि गृह्ण बलिं तव। ऐसी प्रार्थना करके कुछ दूर जाकर एकान्त में अपने आसन पर बैठकर प्राणायामादि-पूर्वक मूल मन्त्र का जप करे। जब तक शिवा आकर बलि ग्रहण न करे तब तक जप करता रहे। तदनन्तर जप समर्पण करके नदी आदि में पैरों को धोकर आचमन करके देवी का ध्यान मौन होकर करते हुये बिना पीछे देखे अपने घर आये।

दूतीयागविधिः

अथ दूतीयागः। देवीयामले—

श्रीमहादेव उवाच

दूतीयागविधिं वक्ष्ये कौलधर्मोत्तमोत्तमम् । तस्यानुष्ठानमात्रेण स्वयं ब्रह्मत्वमाप्नुयात् ॥१॥

सन्ति नानाविधा धर्मा ऐहिकामुष्मिकप्रदाः । तत्सारं तु समालोक्य तथान्यन्मन्त्रसंग्रहम् ॥२॥
तन्मध्ये सारभूतं च सद्यः प्रत्ययकारकम् । न कस्यापि वरारोहे प्रोक्तवांस्त्रिदशेष्वपि ॥३॥
दूतीयागे कृते मन्त्री सर्वज्ञो जायते ध्रुवम् । न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥४॥
देवा यक्षाश्च गन्धर्वा ऋषयश्च मुनीश्वराः । ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यास्तथान्ये पितृदेवताः ॥५॥
दूतीयागविधिं कृत्वा तत्तत्पदमवाप्नुयुः । विधिवत्सुकृती कृत्वा दूतीयागं तु पार्वति ॥६॥
कृतकृत्यो न सन्देहः सुन्दरी सुप्रसीदति । येषां वंशे प्रजायेत दूतीयागो महेश्वरि ॥७॥
ते धन्याश्च समृद्धार्थास्ते वन्द्याः सुहृदः समाः । कायेन मनसा वाचा सर्वथा न प्रकाशयेत् ॥८॥
सुतं पत्नीं शिरो दद्यान्न देयमिदमुत्तमम् । कुर्यात् प्रयत्नतश्चैव दूतिकायजनं प्रिये ॥९॥
यैः कृतं यजनं दूत्यास्तैरिष्टाः क्रतवोऽखिलाः । सर्वतीर्थमयः प्रोक्तः सर्वदेवमयो भवेत् ॥१०॥
पुरश्चर्यादि सकलं कृतं तेन न संशयः । अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ॥११॥
आसमुद्रा च धरणी दत्ता तेन सदक्षिणा । मेरुमन्दरतुल्यानि सुवर्णान्यर्पितानि वै ॥१२॥
गोकोटिदानाद्यत्पुण्यं तत्पुण्यं जायते प्रिये । तस्मत्सर्वप्रयत्नेन दूतीयागं समाचरेत् ॥१३॥
पूजासंपूर्णदं भद्रे सर्वारिष्टप्रशामकम् । यदनुष्ठानमात्रेण सर्वमाचरितं भवेत् ॥१४॥
शक्तिपूजा प्रकर्तव्या विधिवद्भक्तिसंयुतैः ।

दूतीयाग—देवीयामल में श्री महादेव ने कहा है कि—कौल धर्म के सर्वोत्तम दूतीयाग की विधि को कहता हूँ। इसके अनुष्ठान मात्र से स्वयं साधक ब्रह्मत्व प्राप्त करता है। ऐहिक और आमुष्मिक फलप्रद अनेक धर्मों के सार को देख करके तथा अन्य मन्त्र के संग्रह देखकर सबों का सारभूत तुरन्त विश्वास करने योग्य इस दूतीयाग को मैंने देवताओं से भी नहीं कहा है। दूतीयाग को करने से साधक सर्वज्ञ हो जाता है। करोड़ों कल्प तक उसका पुनर्जन्म नहीं होता। देवता-यक्ष-गन्धर्व-ऋषि-मुनि-ब्रह्मा-विष्णु-महेश आदि एवं अन्य पितृ देवताओं ने दूतीयाग करके ही अपने पदों को प्राप्त किया है। इस दूतीयाग को विधिवत् करके पुण्यात्मा कृतकृत्य हो जाता है और उस पर सुन्दरी प्रसन्न होती है। जिसके कुल में दूतीयाग होता है, वे धन्य एवं समृद्ध होते हैं एवं मित्रों तथा बान्धवों द्वारा वन्दनीय होते हैं। इसे तन-मन-वचन से भी प्रकाशित न करे। पुत्र एवं पत्नी शिर दे दे, पर इस उत्तम याग को न दे। प्रयत्न से दूतीयाग का अनुष्ठान करे। इस दूतीयाग को जिसने कर लिया, उसने सभी यज्ञों को कर लिया। वह स्वयं सर्वतीर्थमय एवं सर्वदेवमय हो जाता है। पुरश्चर्या आदि सभी कर्म उसके द्वारा कर लिये जाते हैं एवं हजारो अश्वमेध एवं सैंकड़ों वाजपेय यज्ञों को करने से तथा समुद्रपर्यन्त पृथ्वी दक्षिणा में देने से, मेरु पर्वत के बराबर सुवर्ण अर्पित करने से एवं करोड़ों गोदान करने से जो पुण्य प्राप्त होता है, वही पुण्य दूतीयाग को करने से प्राप्त होता है। इसलिये प्रयत्न से दूतीयाग का अनुष्ठान करना चाहिये। इसकी पूजा सब कुछ देने वाली एवं सभी अरिष्टों का नाश करने वाली होती है। इसके अनुष्ठान से सभी कर्म आचरित हो जाते हैं। इसलिये भक्तिपूर्वक विधिवत् शक्तिपूजा करनी चाहिये।

दूतीलक्षणानि

अथ दूतीं प्रवक्ष्यामि लक्षणानि च सुन्दरि ॥१५॥

अचञ्चला सलज्जा च कुलगा(जा) मृदुभाषिणी । पट्वी सुशीला प्रियवाग्गुरुशुश्रूषणे रता ॥१६॥
दयाधर्मरता शान्ता हितदा सुखरूपिणी । रूपयौवनसंपन्ना निश्चला मन्त्रतत्परा ॥१७॥
सदा तुष्टा सुपुष्टाङ्गी सुन्दरी मानिनी शुचिः । नातिकुब्जा च ह्रस्वा च चारुसर्वाङ्गसंयुता ॥१८॥
दीर्घकेशी विशालाक्षी सूत्रसुस्पष्टनासिका । पूर्णगण्डकपोला च रक्तोष्ठी च सुदन्तिका ॥१९॥
वर्तुलाननगौरा च सुहनुः कम्बुकण्ठिनी । सुबाहुवल्लीसंयुक्ता वृत्तपीनपयोधरा ॥२०॥
कृशमध्या सुनाभिः स्यादूरुस्तम्भातिमांसला । सरलाङ्गुलिकायुक्ता सर्वलक्षणसंयुता ॥२१॥

कायेन मनसा वाचा स्वार्थलौल्यविवर्जिता। पूजनीया प्रयत्नेन पञ्चविंशतिवार्षिका ॥२२॥
अप्रसूता विशेषेण श्यामा चैवोत्तमा मता।

श्यामालक्षणं तु कामशास्त्रे—स्निग्धनखनयनदशना निरनुशया मानिनी स्थिरस्नेहा। सुस्पर्शशिशिरवराङ्ग विवराङ्गना श्यामेति॥

अत ऊर्ध्वं न पूजा स्यादित्याज्ञा पारमेश्वरी। पूजिताश्चेद्वरारोहे तर्पणं निष्फलं भवेत् ॥२४॥
अर्चनेषु प्रयोक्तव्याः कामिन्यो भक्तिचेतसः। ता यदा रजसा युक्तास्ततः पूज्या महाफलाः ॥२५॥
आत्मीयाश्च पराश्चैव पुष्पवतीः प्रपूजयेत्। तत्र द्वेषपरो मूर्खो दारिद्रयं समवाप्नुयात् ॥२६॥ इति।

उत्तरतन्त्रे—

याममात्रे गते रात्रौ कुलगेहं ततः पुमान्। ताम्बूलापूरितमुखो धूपामोदसुगन्धितः ॥१॥
रक्तचन्दनदिग्धाङ्गो रक्तमाल्यानुलेपनः। रक्तवस्त्रपरीधानो लाक्षारक्तगृहं गतः ॥२॥
रक्तमाल्येन संवीतो रक्तपुष्पविभूषितः। पञ्चीकरणसंकेतैः पूजयेत्कुलनायिकाम् ॥३॥ इति।

अब दूती के लक्षण का वर्णन करता हूँ। अचञ्चला, सलज्जा, कुलजा, मृदुभाषिणी, चतुरा, सुशीला, प्रिय बोलने वाली गुरुसेवा में रत, दया-धर्म में लग्न, शान्ता, हितप्रदा, सुखरूपिणी, रूप-यौवन सम्पन्ना, निश्चला, मन्त्रतत्परा, सदा तुष्टा, सुपुष्टाङ्गी, सुन्दरी, मानिनी, पवित्रा, न अति लम्बी, न अति नाटी, सुन्दर अंगों वाली, दीर्घकेशी, विशालाक्षी, सूत्र के समान सुस्पष्ट नासिका वाली, पूर्ण गण्डकपोला, रक्तोष्ठी, सुन्दर दाँतों वाली, गोल मुख वाली, गौरवर्णा, सुन्दर ठुड्ढी वाली, शङ्ख के समान कण्ठ वाली, सुन्दर बाहुवल्ली से युक्त, गोल स्थूल स्तन, पतली कमर, सुन्दर नाभि, स्तम्भ के समान मांसल जाँघ, सीधी अंगुली, सभी लक्षणों से युक्त, मन-वचन एवं शरीर से स्वार्थ एवं लोभ से रहित पच्चीस वर्ष की दूती प्रयत्नपूर्वक पूजनीया होती है। उसमें भी अप्रसूता के साथ-साथ श्यामा को उत्तम कहा गया है।

पच्चीस वर्ष से अधिक उम्र वाली की पूजा नहीं करनी चाहिये—यह परमेश्वरी की आज्ञा है। कोई यदि पच्चीस वर्ष से अधिक उम्र वाली की पूजा करता है तो तर्पण निष्फल होता है। अर्चन में भक्तिमती कामिनी ही उपयुक्त होती है। वह यदि रजस्वला हो तो उसकी पूजा का महाफल होता है। चाहे अपनी स्त्री हो या परायी, रजस्वला स्त्री का ही पूजन करना चाहिये। उससे द्वेष करने वाला मूर्ख दरिद्र होता है।

उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि प्रहर भर रात बीतने पर साधक कुलगृह में जाय। उस समय साधक के मुख में पान हो, धूपामोद से सुगन्धित तन हो, अङ्ग में लाल चन्दन लगा हो, लाल माला एवं अनुलेपन से वह युक्त हो, लाल वस्त्र धारण किया हो। लाक्षा रक्त गृह में गया हुआ वह लाल जनेऊ एवं लाल फूलों से विभूषित हो। इस प्रकार वहाँ जाकर पञ्चीकरण सङ्केत से कुलनायिका का पूजन करे।

कुलनायिकाः

कुलनायिका यथा तत्रैव—

नटी कापालिनी वेश्या पुक्कसी नापिताङ्गना। रजकी रञ्जकी चैव सैरन्ध्री च सुवासिनी ॥४॥
घटिका खटिका चैव तथा गोपालकन्यका। विशेषवैदग्ध्ययुताः सर्वा एव कुलाङ्गनाः ॥५॥
गुरुभक्ता देवभक्ता घृणालज्जाविवर्जिताः। संगोपनरताः प्रायस्तरुण्यः सर्वसिद्धिदाः ॥६॥
अक्षताचारसंपन्नां शीलसौभाग्यशालिनीम्। सदापरिगृहीतां वा यद्वा सङ्केतमागताम् ॥७॥
अथवा तत्क्षणायातां मदनानलतापिताम्। विलिप्तां रक्तगन्धेन रक्ताम्बरविभूषिताम् ॥८॥
सुगन्धिरक्तकुसुमां सर्वाभरणभूषिताम्। सदानुष्ठाननिरतां सात्त्विकीं भक्तिसंयुताम् ॥९॥
कालुष्यरहितां कुर्यात्सभायां भक्तवत्सलाम्। चातुर्यौदार्यदाक्षिण्यकरणादिगुणाधिकाम् ॥१०॥
रूपयौवनसंपन्नां शीलसौभाग्यशालिनीम्। सुधूपधूपितां तन्वीं दूतीकर्मसु योजयेत् ॥११॥ इति।

कुमारीतन्त्रे—

नटी कापालिनी वेश्या रजकी नापिताङ्गना। ब्राह्मणी शूद्रकन्या च तथा गोपालकन्यका ॥१॥

ब्राह्मणीति ब्राह्मणविषयम्।

मालाकारस्य कन्यापि नव कन्याः प्रकीर्तिताः। एवं भूतां यजेत्तां तु प्रसूनतूलिकोपरि ॥२॥
अर्थाद्वा कामतो वापि सौख्यादपि च यो नरः। लिङ्गयोनिरतो मन्त्री रौरवं नरकं व्रजेत् ॥३॥ इति।

नटी कापालिनी, वेश्या, पुक्कसी, नाई कन्या, धोबिन, रञ्जकी, सैरन्ध्री, सुवासिनी, घटिका, खटिका, ग्वालिन, विशेष वैदग्ध्ययुक्त—इन सबों को कुलाङ्गना कहते हैं। गुरुभक्ता, देवभक्ता, घृणा-लज्जाविवर्जिता, सङ्गोपनरता तरुणी सर्वसिद्धिदायिनी होती है। अक्षत आचार से सम्पन्न, शील-सौभाग्य से युक्त, सङ्केत से आयी हुई, तत्काल कामाग्नि से तप्त होकर आयी हुई, लाल गन्ध विलिप्त, लाल वस्त्र से विभूषित, सुगन्धित लाल फूलों से संयुक्त, सभी आभरणों से भूषित, सदा अनुष्ठान में निरत, सात्विकी भक्तियुक्ता, कालुष्य-रहित, सभा में भक्तवत्सला, चातुर्य औदार्य दाक्षिण्य आदि गुणों से सम्पन्न, रूप-यौवनसम्पन्ना, शील सौभाग्य शालिनी सुधूपित तरुणी को दूती कर्म में नियोजित करे।

कुमारीतन्त्र के अनुसार दूती कार्य के लिये नटी, कापालिनी, वेश्या, धोबिन, नाइन, ब्राह्मणी, शूद्रकन्या, ग्वालिन और मालिन—ये नव कन्याएँ उपयुक्त कही गई हैं। इस प्रकार की कन्याओं का पूजन प्रसूनतूलिका पर करना चाहिये। जो मन्त्रज्ञ धन, काम अथवा सुख के लिये योनि में लिङ्ग को प्रविष्ट कराता है, वह साधक रौरव नरक का निवासी होता है।

उत्तरोत्तरं कुलनायिकापूजनफलम्

देवीयामले—

अथ पूजाफलं वक्ष्ये उत्तरोत्तरतोत्तरम्। स्वशक्त्या अयुतं पुण्यं परशक्तिप्रपूजने ॥१॥
ततो वेश्याधिका ज्ञेया रजक्यपि ततोऽधिका। रजक्याः क्षुरिकी श्रेष्ठा क्षुरिक्याश्चर्मकारिणी ॥२॥
ततोऽधिकतरा प्रोक्ता हेतुनारी वरानने। ततोऽधिकान्त्यसंभूता चण्डाली च ततोऽधिका ॥३॥
ततो मातङ्गिनी श्रेष्ठा मातङ्ग्याः पुक्कसी मता। पुक्कस्या अक्षता श्रेष्ठा ततोऽतिसुन्दरी स्मृता ॥४॥
सुन्दरीपरतः प्रोक्ता प्रीतिवत्यनुगामिनी। तत्परा परमेशानि तन्मनाः शुभलक्षणा ॥५॥
समयाचारसम्पन्ना मन्त्रज्ञा भयवर्जिता। विदग्धा त्वप्रसूता च धैर्यस्वातन्त्र्यसंयुता ॥६॥
एवं गुणसमायुक्ताः पूजयेत्सर्वयोषितः। आत्मीयाश्च पराश्चैव शक्तिमात्रं महेश्वरि ॥७॥
मन्त्राधिदेवताबुद्ध्या पूज्याः सर्वोपचारकैः। विविधैः फलताम्बूलैर्वस्त्रालङ्कारहेमभिः ॥८॥
संपूज्य विधिद्भक्त्या बहुहेतुं प्रदापयेत्। संभोगवासनां धृत्वा यः कुर्याच्छक्तिपूजनम् ॥९॥
स दारिद्र्यमवाप्नोति नारकी च भवेद् ध्रुवम्। परमानन्दरूपेण देहभावविवर्जितः ॥१०॥
शक्त्या यदुक्तं देवेशि तदूचे शाम्भवी स्वयम्। तदाज्ञा तु प्रकर्तव्या तदा श्रेयः प्रवर्तते ॥११॥
शक्त्याज्ञां लङ्घयेन्मन्त्री तपस्तेपे निरर्थकम्। कृतं तत्रोपहासादि कुष्ठी भवति नान्यथा ॥१२॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तद्वाक्यं तु समाचरेत्।

देवीयामल में कहा गया है कि अब उत्तरोत्तर उनके पूजाफल को कहता हूँ। अपनी शक्ति के पूजन से दश हजार गुना अधिक फल परशक्ति के पूजन में होता है। उससे अधिक वेश्या की पूजा का और वेश्या से अधिक रजकी के पूजन का फल होता है। रजकी से अधिक नाईकन्या के पूजन का फल होता है। नाइन से अधिक श्रेष्ठ चर्मकारिणी होती है और इससे भी अधिक हेतुनारी है। इससे भी अधिक श्रेष्ठ अन्त्यजा एवं उससे भी अधिक श्रेष्ठ चाण्डालिनी होती है। इससे अधिक श्रेष्ठ मातङ्गिनी होती है। मातङ्गी से श्रेष्ठ पुक्कसी होती है। अक्षत पुक्कसी श्रेष्ठ होती है। पुक्कसी से श्रेष्ठ सुन्दरी और सुन्दरी से श्रेष्ठ वह प्रेमिका होती है, जो साधक से प्रेम करती हो, उसके मनोनुकूल चलती हो, शुभ लक्षणों से युक्त हो, समयाचार

सम्पन्न हो, मन्त्रज्ञ हो, निर्भय हो, विदग्ध हो, अप्रसूता हो, धैर्य एवं स्वातन्त्र्य से युक्त हो। इस प्रकार के गुणों से युक्त सभी योषिताओं की पूजा करे। अपनी या परायी स्त्री को शक्ति मानकर मन्त्राधिदेवता बुद्धि से सभी उपचारों से पूजा करे। विविध फल, ताम्बूल, वस्त्र, अलङ्कार, सोना आदि से विधिवत् भक्तिपूर्वक उसका पूजन करे। बहुत कारणों को बताकर सम्भोग वासना धारण कर जो पूजा करता है, वह दरिद्र होता है और नरकगामी होता है। परमानन्दरूप से देहभाव छोड़कर जो पूज्य शक्ति है, उसे शाम्भवी ने स्वयं कहा है और उसी की आज्ञा से कर्म करने पर श्रेय प्राप्त होता है। जो साधक शक्ति की आज्ञा को नहीं मानता, उसका तप निरर्थक होता है। उसका उपहास करने पर कोढ़ी होता है। इसलिये सभी यत्नों से उसके वचनानुसार आचरण करना चाहिये।

वर्ज्यशक्तीनां लक्षणम्

व्यङ्गा वा विकृताङ्गी च काणाक्षी बधिरा तथा ॥१३॥
मुण्डिनी विधवा मूका प्रलापिन्यनृतभाषिणी । अदीक्षिता भक्तिहीना गुरुसेवाविवर्जिता ॥१४॥
दूषकी समयाद् भ्रष्टा घोरा कैतवचारिणी । वृद्धातुरा वक्रमुखी क्रोधदुर्गन्धिकश्मला ॥१५॥
सदा निष्ठुरवाक्या च अनाचारा च काकवाक् । दीर्घदन्ता च लम्बोष्ठी शुष्कस्तननितम्बिनी ॥१६॥
कृष्णवर्णातिमलिना कृशा विकलचेतना । महास्थूलातिरोगार्ता प्रलम्बितपयोधरा ॥१७॥
ईषन्नासिकनेत्रा च शुष्काङ्गी चोर्ध्वकेशिनी । कनिष्ठा क्रोडदन्ता च सदा स्वार्थसमन्विता ॥१८॥
कुष्ठी हीनाङ्गिनी चैव पंगवन्धा चातुरालसा । श्वेताङ्गिनी रौद्रबिम्बा च्छागयोनिः पिशाचिका ॥१९॥
मतिभ्रष्टातिविकला अतिदीर्घातिकुब्जिका । एतल्लक्षणसंपन्नाः शक्तीर्यत्नेन वर्जयेत् ॥२०॥
शक्तिपात्रं न दातव्यं विधवायै कदाचन । अज्ञानाल्लोभतो मोहाद् दत्ते पूजा तु निष्फला ॥२१॥
तस्माद् दूती प्रकर्तव्या लक्षणोक्ता तु पार्वति । इति।

व्यङ्गा, विकृताङ्गी, कानी, बहरी, मुण्डिनी, विधवा, गूंगी, प्रलापिनी, झूठी, अदीक्षिता, भक्तिहीना, गुरुसेवाविमुखा, दूषकी, समय से भ्रष्टा, घोरा, कैतवचारिणी, वृद्धा, आतुरा, वक्रमुखी, क्रोध-दुर्गन्धयुक्ता, निष्ठुरभाषिणी, आचाररहिता, कर्कशा, दीर्घदन्ता, लम्बोष्ठी, शुष्क स्तन-नितम्बिनी, काली, गन्दी, दुबली, विकल चेतना, अतिस्थूला, रोगिणी, प्रलम्बितस्तनी, छोटे नाक-नेत्र वाली, शुष्काङ्गी, ऊर्ध्वकेशिनी, कनिष्ठा, क्रोडदन्ता, स्वार्थी, कोढ़ी, हीनांगी, लंगड़ी, अन्धी, चतुरी, आलसी, श्वेतकुष्ठी, भयानक ओठों वाली, छागयोनि, पिशाचिका, मतिभ्रष्टा, अतिविकला, अतिलम्बी, नाटी, कुबड़ी—इन लक्षणों से युक्त शक्ति की पूजा न करे। विधवा को शक्तिपात्र कदापि न दे। अज्ञान, लोभ या मोहवश विधवा को शक्तिपात्र देने से पूजन निष्फल होता है। इसलिये उक्त लक्षणों से युक्त दूती की पूजा करनी चाहिये।

मातङ्गीपूजनम्

तथा ब्रह्मयामले—

नारद उवाच

सर्वज्ञ जगतां नाथ शाक्तं चेच्छ्रुतिचोदितम् । मातङ्गीपूजनं तत्र कथं मुक्तिप्रदायकम् ॥१॥
अर्चने प्रथिता वेश्या वेश्या सा तु रजस्वला । रजस्वला च मातङ्गी सा दूती सर्वमङ्गला ॥२॥
इति प्रोक्तं त्वया पूर्वमिदानीं तद्विपर्ययः । तव वाक्यमभूत् ब्रह्मन्नेतद्वद पितामह ॥३॥

ब्रह्मोवाच

मा कुरुष्वात्र सन्देहं वेदोक्तं शाक्तमुत्तमम् । अस्मिन् सर्वज्ञकल्पोऽसौ मातङ्गो मुनिपुङ्गवः ॥४॥
वर्षाणामयुतं वत्स तप उग्रं चचार ह । तेन प्रीता महादेवी देवानां हितकारिणी ॥५॥
वरं वृणीष्व भगवन् दास्यामि तव वाञ्छितम् । तच्छ्रुत्वा द्विजवर्यस्तां ययाचे धर्मसाधनम् ॥६॥
हे देवि जगतां मातः प्रीता चेद्यदि सांप्रतम् । अपत्यतां समासाद्य मत्कुलालम्बनं कुरु ॥७॥

इत्यभ्यर्थ्य मुनिश्रेष्ठो जनयामास तां सुताम् । श्यामलां चारुवदनां वीणाशुकसमन्विताम् ॥८॥
शारिकां ज्ञानसंपन्नां जपमालां कराम्बुजैः । धारयन्तीं विशालाक्षीं शङ्खताटङ्कशोभिनीम् ॥९॥
सा बभूव महादेवी मातङ्गकुलनन्दिनी । मातङ्गीति तदा देवी विख्याता वरदायिनी ॥१०॥
तां विलोक्य तदा शम्भुर्दूतीं चक्रे सुलक्षणाम् । त्रिपुराञ्जेतुकामेन योनिपूजा तदा कृता ॥११॥
प्रत्यालीढास्थिता देवी पूजां स्वीकृत्य निश्चला । यदा दृष्टरजा भूत्वा तां वव्रे शङ्करः प्रियाम् ॥१२॥
तदा प्रभृति सञ्जातो दूतीयागो मनोहरः । प्रणवेन तदा शम्भुस्तया सार्धं रतं भजन् ॥१३॥
प्रणवान्तर्गतं मन्त्रं मातङ्गाख्यं च निर्गतम् । सर्वसौभाग्यजननं मालामन्त्रमभूत्तदा ॥१४॥
रसावाप्तिपदं दिव्यमनिन्द्यं लोकरञ्जनम् । मातङ्गीमन्त्रमत्यर्थं मन्मथप्रतिपादकम् ॥१५॥
आद्यन्तशून्या सा देवी तस्मात्ख्याता तदन्त्यजा । मातङ्गी चान्त्यवर्णस्था तदा सा अन्त्यजाभवत् ॥१६॥
अन्त्यजानां द्विजानां च चक्रे ऐक्यं प्रशस्यते । सा देवी सर्ववर्णानां वरं दत्त्वा निरुत्तरम् ॥१७॥
कृत्वा सङ्केतसमयं चक्रे मातङ्गमुत्तमम् । न दोषः सर्ववर्णानामिति दत्त्वा वरं तदा ॥१८॥
न दोषं तत्र विज्ञेयं सर्वतः श्रुतिचोदितम् । देवीमुद्दिश्य मोक्षार्थं कृतं यद्दोषवर्जितम् ॥१९॥
एतच्छास्त्रमिदं दिव्यं न वाच्यं श्रुतिचोदितम् । अन्तर्यागमिदं ज्ञेयं बहिर्यागं च वैदिकम् ॥२०॥
मन्त्रतन्त्रसमायुक्तं तद्द्वयं ब्रह्मबोधकम् । चक्रसंकेतसमयं सर्वं तुभ्यं प्रकाशितम् ॥२१॥
गोपनीयं प्रयत्नेन न वाच्यं पशुसन्निधौ । त्यज शङ्कां महाभाग सत्यमेतन्मयोदितम् ॥२२॥

ब्रह्मयामल में नारद ने ब्रह्मा से पूछा कि हे सर्वज्ञ! जगन्नाथ! वेदविहित शाक्तमत में मातङ्गी-पूजन कैसे मुक्तिदायक होता है। अर्चन में वेश्या कथित है और वेश्या भी रजस्वला होनी चाहिये। रजस्वला भी चाण्डालिनी हो तो वह दूती सर्वमङ्गला होती है। पहले अपने जो कहा है, उसके विपरीत यह वाक्य है। यह कैसे सम्भव है? तब ब्रह्मा ने कहा—सन्देह मत करो, वेदोक्त शाक्त उत्तम है। इस कल्प में सर्वज्ञ मुनिपुङ्गव मातङ्ग हैं। दश हजार वर्षों तक उन्होंने उग्र तप किया। देवताओं की हितकारिणी महादेवी इससे प्रसन्न हुई। मतङ्ग से देवी ने कहा—हे भगवन्! वर माँगो, तुम्हारा वांछित मैं दूंगी। यह सुनकर उसने धर्मसाधन का वर माँगा। साथ ही कहा कि हे देवि जगज्जननि! यदि आप अभी मुझ पर प्रसन्न हैं तो अपत्यता धारण कर मेरे यहाँ जन्म लो। इस पर वर पाकर श्यामवर्णा, सुन्दर वदना, वीणा एवं वस्त्र से समन्वित, द्यूत-ज्ञान से सम्पन्न, हाथों में जपमाला धारण की हुई, विस्तृत नयना, शङ्ख एवं कर्णपूर से सुशोभित देवी को मुनिश्रेष्ठ ने पुत्री-रूप में प्राप्त किया।

इस रूप की देवी मातङ्गकुलनन्दिनी हुई। वह देवी वरदायिनी मातङ्गी नाम से विख्यात हुई। उसे देखकर शिव ने त्रिपुरासुर को जीतने के लिये दूती के रूप में उसका यजन किया और उसकी योनिपूजा की। धनुर्धारियों के आसन पर स्थित देवी ने पूजा स्वीकार की। जब उनका रज दृष्ट हुआ तब वह शङ्कर की प्रिया हुईं। उसी समय से मनोहर दूती याग का प्रचलन हुआ। शम्भु ने उसके साथ रमण करते हुये प्रणव से भजन किया। प्रणव के अन्दर से मातङ्गी मन्त्र निर्गत हुआ और यही सर्व सौभाग्यजनक मालामन्त्र हुआ। रसावाप्ति का स्थानस्वरूप, दिव्य, अनिन्द्य, लोकरञ्जक यह मातङ्गी मन्त्र कामदेव का प्रतिपादक है। वह देवी आदि एवं अन्त से रहित है, इसीलिये उन्हें अन्त्यजा कहते हैं। मातङ्गी अन्त्यवर्णस्था है, इसलिये भी उसे अन्त्यजा कहते हैं। अन्त्यजा और द्विजों का चक्र में ऐक्य कहा गया है। उस देवी ने सभी वर्णों को वर देकर निरुत्तर किया। मातङ्ग ने उस समय उत्तम सङ्केतसमय बनाया, तदनन्तर समस्त वर्णों में कोई दोष नहीं है—ऐसा वर प्रदान कर देवी ने कहा कि मातङ्गीपूजन में कोई दोष नहीं है, यह वेदविहित है। मोक्ष के लिये देवी के उद्देश्य से जो भी किया जाता है, वह दोषरहित होता है। यह दिव्य शास्त्र है, श्रुत्युक्त वाच्य नहीं है। चक्रसङ्केतसमय जो तुमसे कहा गया है, उसे यत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिये, पशु के निकट उसे कहना चाहिये। हे महाभाग नहीं शङ्का का त्याग करो। मेरा यह कथन सत्य है।

मातङ्गीपूजनं श्रेष्ठं दूतीयागे मनोहरे । योनिपूजां विना पूजा कृतापि ह्यकृता भवेत् ॥२३॥
कृत्वा केनापि सर्वज्ञ स भवेद्विगतामयः । आयुरारोग्यविभवानमिताँल्लभते नरः ॥२४॥

अनेनैव विधानेन विषार्तो निर्विषो भवेत्। पुत्रार्थी लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम् ॥२५॥
मातङ्गीशक्तिमभ्यर्च्य तया साकं समर्चयेत्। मातङ्गी मन्मथोपेता सर्वकामार्थसिद्धये ॥२६॥
शक्त्या साकं तदा पूज्या मातङ्गी मन्त्रदेवता। सा देवी शक्तिहीना तु न ददाति मनोरथम् ॥२७॥
निःशङ्कां निर्मलां तन्वीं श्यामां चारुपयोधराम्। कौलिकान्वयसंभूतां दीक्षितां क्रोधवर्जिताम् ॥२८॥
दीक्षितां कौलिके यागे सुशीलां च दृढव्रताम्। त्रिंशत्संवत्सराधःस्थां षोडशाब्दाधिकामपि ॥२९॥
पूजयेत् परया भक्त्या तस्या योनिं सुनिर्मलाम्। योनिमध्यगतां देवीं कालरात्रिमनुस्मरेत् ॥३०॥
तत्र भोगं समासाद्य देवीं सन्तर्पयेत् सदा। सकृज्जपेन संसिद्धिर्द्विस्त्रिर्वा नात्र संशयः ॥३१॥
पशुस्त्रीसङ्गमे प्राप्ते शुद्धिश्चेत्पशुबन्धनम्। अथवा गृहिणी पूज्या पूता पुष्पवतीष्टदा ॥३२॥
अर्चने कन्यकाः श्रेष्ठाः प्रमदाश्च विशेषतः। तासां भोज्यं प्रकर्तव्यमिति शास्त्रस्य निश्चयः ॥३३॥
शक्त्युल्लासकरं भोगमानन्दं मोक्ष उच्यते। दूत्यश्च भगिनी पुत्री पौत्री नप्त्री तथा स्नुषा ॥३४॥
रजकी चर्मकारी च मातङ्गी गृहिणी वरा। अर्जने प्रथिता वेश्या मन्त्रयुक्ता मनोहरा ॥३५॥
मातङ्गी यदि चेद्वेश्या वेश्या सापि रजस्वला। रजस्वला यदा चासीत्सर्वोत्कृष्टा इति स्मृता ॥३६॥
इत्यादि।

मनोहर दूती याग में मातङ्गी-पूजा श्रेष्ठ होती है। योनिपूजा के बिना पूजन होकर भी नहीं होता। किसी प्रकार पूजा सम्पन्न करने से साधक सर्वज्ञ होकर निर्भय होता है। उसे अमित आयु, आरोग्य एवं वैभव का लाभ होता है। इसी विधान से विषार्त्त निर्विष होता है, पुत्रार्थी को पुत्र और धनार्थी को धन मिलता है। मातङ्गी की पूजा के साथ ही शक्ति का भी पूजन करना चाहिये। मन्मथोपेत मातङ्गी सभी कार्य सिद्ध करती है। शक्तिपूजा के बाद मातङ्गी के पूजन से देवी शक्तिहीन होती है और मनोरथ पूरा नहीं करती। निःशङ्का, निर्मला, तन्वी, श्यामा, सुन्दर स्तनों वाली, कौलिक वंश में उत्पन्न, दीक्षिता, क्रोधरहिता, कौलिक याग में दीक्षित, ग्शीला, दृढ़व्रता दूती की उम्र सोलह से तीस वर्षों के बीच होनी चाहिये। सोलह से तीस वर्ष तक के उम्र वाली दूती की योनिपूजा करनी चाहिये। सुनिर्मल योनि के मध्य में कालरात्रि के मन्त्र का जप करना चाहिये। तब उसके साथ सम्भोग करके देवी को तृप्त करना चाहिये। इस प्रकार एक बार जप करने से ही सिद्धि मिल जाती है, इसमें संशय नहीं है। पशु स्त्री से सङ्गम होने पर पशु बन्धन से शुद्धि होती है। अथवा पवित्र रजस्वला गृहिणी की पूजा करने से इष्टप्राप्ति होती है। अर्चन में कन्या श्रेष्ठ होती है। उसमें भी प्रमदा विशेष श्रेष्ठ होती है। शास्त्र का निश्चय है कि उसका भोग करे। शक्ति को प्रमुदित करने वाले भोग के आनन्द को ही मोक्ष कहते हैं। भगिनी, पुत्री, पौत्री, नप्त्री, स्नुषा, रजकी, चमइन, डोमिन, गृहिणी उत्तम दूतियाँ होती हैं। मन्त्रदीक्षिता मनोहारा वेश्या अर्चन में श्रेष्ठ होती है। रजस्वला डोमिनी यदि वेश्या हो तो उसे सबसे उत्कृष्ट कहा गया है।

तथा कुलचूडामणौ—

तरुणोल्लाससंयुक्तां पर्यङ्के तु निवेशयेत्। भयलज्जादिसर्वाणि परित्यज्याथ दूतिकाम् ॥१॥
कञ्चुकं च परित्यज्य तथा वस्त्रं च पार्वति। आचार्यानुचरी रक्ता मनसा सुखदायिनी ॥२॥
देहभावं परित्यज्य संसक्तभुजकौ प्रिये। चुम्बनालिङ्गने चैव नखदन्तक्षतानि च ॥३॥
बहुना च किमुक्तेन प्राणस्यैक्यं समाचरेत्। दूती यस्य सुसंज्ञाता सफलं तस्य जीवितम् ॥४॥
वंशद्वयं समुद्धृत्य लभते शाश्वतं पदम्। सर्वदा सुखमाप्नोति सर्वैश्वर्यं च लभ्यते ॥५॥
न तस्य दुरितं किञ्चिन्न च मारीभयं भवेत्। चुम्बने परमैश्वर्यं नखदन्तक्षतैर्यशः ॥६॥
सम्भोगे च सुखं यद्यत्तद्विष्णोः परमं पदम्। न दद्याच्चुम्बनं यस्तु दरिद्रो जायते ध्रुवम् ॥७॥
आलिङ्गनं विना देवि कुष्ठी भवति पार्वति। विना दन्तक्षतं देवि लोके भवति निन्दितः ॥८॥
पञ्चमीं(मं) तु सकृद्दत्त्वा सावित्री जायते सती। द्वितीयेन च लक्ष्मीः स्यात्तृतीये पार्वती भवेत् ॥९॥

ततो दद्यात् सुखाधिक्यं तस्याः पुण्यं न गण्यते। आलिङ्गनैर्हरेद्रोगान् धनधान्यादि चुम्बनैः ॥१०॥
नखदन्तक्षताद्यैश्च तदा मोक्षः प्रजायते। सायुज्यं सङ्गमेन स्यात्सत्यमेव न संशयः ॥११॥ इति।

कुलचूड़ामणि में कहा गया है कि उल्लसित तरुणी दूती को पर्यङ्क पर सुलाये। उसे भय-लज्जादि सबों से रहित होना चाहिये। कंचुकी और वस्त्र का त्याग कर आचार्य की दासी होकर, अनुरक्ता और सुखदायिनी देहभाव का त्याग कर साधक उसे भुजाओं से बाँधकर उसका चुम्बन, आलिङ्गन, नख-दन्तक्षत आदि करे। बहुत कहने से क्या लाभ, एक प्राण होकर सञ्चरण करे। जिसकी दूती सुसंज्ञाता होती है, उसका जीवन सफल होता है, वह दोनों कुलों का उद्धार करके शाश्वत पद प्राप्त करता है और सर्वदा सुखी होता है, सभी ऐश्वर्य प्राप्त करता है। उसे कोई बिमारी नहीं होती और न ही मारीभय होता है। चुम्बन से परमैश्वर्य एवं नख-दन्तक्षत से यश मिलता है। सम्भोग में जो सुख होता है, वही विष्णु का परम पद है। यदि कोई चुम्बन नहीं करता है तो वह निश्चय ही दरिद्र होता है। अलिङ्गन के बिना कोढ़ी होता है। बिना दन्तक्षत के संसार में निन्दित होता है, पञ्चमी देने से दूती सती सावित्री होती है द्वितीय से लक्ष्मी और तृतीय से पार्वती होती है। तदनन्तर अधिक सुख देने से उसे अगणित पुण्य होते हैं। उसके आलिङ्गन से रोगों का नाश होता है चुम्बन से धन-धान्य मिलते हैं, नख-दन्तक्षतादि से मोक्ष प्राप्त होता है। संगम से सायुज्य होता है—यह सत्य है।

पञ्चमयागप्रशंसा

पञ्चमयागप्रशंसा भैरवयामले—
कुर्यादुच्चाटने द्वेषे मारणे मोहने तथा। सुरूपां च सुवेशां च तरुणीं सुन्दरीं तथा ॥१॥
प्रसन्नमुखशोभाढ्यां तथा सौभाग्यगर्विताम्। उदारवंशसंभूतां पूजाग्रहणहर्षिताम् ॥२॥
सुवासिनीमीदृशीं च पूजयित्वा विधानतः। तत्काले कार्यसिद्धिः स्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥३॥
विशेषतो योनिपूजां कुर्यादीप्सितसिद्धये। सुरूपां तरुणीं वेश्यां योनिपूजां समाचरेत् ॥४॥
सर्वजनमोहनं स्यान्नात्र कार्या विचारणा। सुरूपां तरुणीं दासीं योनिपूजां समाचरेत् ॥५॥
सर्वलोकस्य वश्यार्थं नात्र सन्देह इष्यते। मातङ्गिन्याः सुरूपायाः सुगुणायास्तथैव च ॥६॥
तरुण्या योनिपूजां च स्तम्भनार्थं समाचरेत्। यस्या अङ्गे देवतास्ति तस्या योनिं प्रपूजयेत् ॥७॥
आकर्षणार्थं मन्त्रज्ञो नात्र सन्देहसंभवः। सुरूपायास्तरुण्याश्च योगिन्या योनिपूजने ॥८॥
उच्चाटनादिकर्माणि जायन्ते नात्र संशयः। मदघूर्णितनेत्रायास्तरुण्या योनिपूजने ॥९॥
रजस्वलाया विद्वेषो भवत्येव न संशयः। विधवायाः सुरूपायास्तरुण्या योनिपूजने ॥१०॥
मारणं जायते शीघ्रं नात्र सन्देहसंभवः। परं तु निर्भयो भूत्वा सर्वमेतत् समाचरेत् ॥११॥
रजस्वला या च भवेत्सर्वजातिसमुद्भवा। तस्यास्तु पूजने सर्वकार्यसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ॥१२॥
सर्वकार्ये सुवासिन्याः पूजनं न्यासपूर्वकम्। भगमालिनिमन्त्रेण कुर्यात्प्रार्थनपूर्वकम् ॥१३॥
सर्वकार्येषु निष्पत्तिर्भवत्येव न संशयः। षोडशैरुपचारैस्तु पूजा सर्वत्र शस्यते ॥१४॥
यस्या अङ्गे देवतास्ति तस्याः पूजां समाचरेत्। वश्याकर्षणकर्माणि मनसा यद्यदीप्सितम् ॥१५॥
तत्सर्वं भवति क्षिप्रं नात्र सन्देह इष्यते। अस्पृश्यायास्तरुण्यास्तु पूजा द्वेषार्थमीरिता ॥१६॥
गुरुतः शास्त्रतो ज्ञात्वा सर्वकार्याणि साधयेत्। तांस्तान् प्रयोगान् कुर्वीत कार्यसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ॥१७॥
परचक्रस्तम्भने च जलस्तम्भन एव च। मेघाकर्षे भयावाप्तौ सर्वशत्रुनिवर्हणे ॥१८॥

पञ्चम यागप्रशंसा—भैरवयामल में कहा गया है कि उच्चाटन-विद्वेषण-मारण-मोहन में पञ्चम याग करे। सुवासिनी को सुरूपा, सुवेशा, युवती, सुन्दरी, प्रसन्नमुखी, शोभाढ्या, सौभाग्यगर्विता, उदार वंश में उत्पन्न एवं पूजाग्रहण में हर्षिता होना चाहिये। इस प्रकार की सुवासिनी की पूजा विधान से करे। इससे तत्काल कार्यसिद्धि होती है। ईप्सित-सिद्धि के लिये विशेषतः योनि-पूजा करे। सुन्दरी युवती वेश्या की योनिपूजा करने से सभी का मोहन होता है। सुन्दरी तरुणी दासी की योनिपूजा करने

से सभी लोक वश में होते हैं। सुन्दर रूप एवं गुणों वाली डोमिन युवती की योनिपूजा स्तम्भन के लिये करे। जिसके अङ्ग में देवता होते हैं, उसके योनि की पूजा करने से आकर्षण होता है। सुन्दर तरुणी योगिनी के यानि की पूजा करने से उच्चाटन आदि कर्म सफल होते हैं। मदघूर्णित नेत्रों वाली रजस्वला तरुणी की योनिपूजा करने से विद्वेषण होता है। सुन्दर विधवा तरुणी की योनिपूजा से शीघ्र मारण होता है। निर्भय होकर इन सबों की पूजा करे। सभी जाति की रजस्वला स्त्री की योनिपूजा से सभी कार्य सिद्ध होते हैं। सभी कार्य में सुवासिनी का पूजनादि कर्म न्यासपूर्वक भगमालिनी मन्त्र से प्रार्थनापूर्वक करे। ऐसा करने से सभी कार्य सम्पन्न होते हैं। षोडशोपचार पूजा सर्वत्र प्रशस्त मानी जाती है। जिस अङ्ग के जो देवता होते हैं, उनका पूजन करे। वश्य एवं आकर्षण कर्म में मानसिक पूजन से सभी ईप्सित प्राप्त होते हैं। विद्वेषण में अछूत तरुणी की पूजा करे। गुरु से और शास्त्र से जानकर सभी कार्य साधन करे। इससे जो भी प्रयोग करता है, वे सभी कार्य सिद्ध होते हैं। परचक्र, स्तम्भन, जलस्तम्भन, मेघाकर्षण, भय होने पर और सभी शत्रुओं के नाश के लिये इनका प्रयोग करना चाहिये।

पञ्चमयागप्रयोगः

अथैतत् प्रयोगः—तत्र साधकः प्रोक्तक्रमलक्षणः (कृतात्मपूजनक्रियः) स्वशिरसि श्रीगुरुपादुकांध्यात्वा संपूज्य प्रणम्य प्रोक्तक्रमेण श्रीगुरोराज्ञामादाय, सर्वलक्षणसंपन्नां ब्रह्मविद्यादीक्षितां दूतीं प्रातर्निमन्त्रितां सादरं स्वयं गत्वा प्रणम्य समाहूयानीय पूजास्थाने मृद्वासने समुपवेश्य, तस्याः पादावुष्णजलेन प्रक्षाल्य सुखोपविष्टां तां प्रणम्य, कृताञ्जलिः सन् 'भगवति श्रीपरदेवतायजनार्थं त्वं मे दूतीभूत्वा मां कृतार्थं कुरु' इति तां प्रार्थ्य देव्यग्रतः स्वासने समुपविश्य, कृताञ्जलिः 'अद्येत्यादि श्रीपरदेवताप्रीत्यर्थं दूतीयजनमहं करिष्ये' इति संकल्प्य, मूलविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासान् विधाय, स्ववामभागे दूतीं समुपवेश्य मूलविद्यया सुगन्धितैलेनाभ्यङ्गं कृत्वा, सुगन्धामलकाद्युद्वर्तनं विधायोष्णोदकेन स्नपयित्वा नीराजनं कृत्वा, सूक्ष्मवस्त्रेणाङ्गप्रोञ्छनं विधाय रक्तपटवस्त्र-युगमारक्तकञ्चुकं च परिधाप्य नानाविधाभरणैरलंकृत्य, केशान् विजटीकृत्य धूपयित्वा संयम्य सिन्दूरकज्जलालक्तकादिभिः सीमन्तनयनचरणादि रञ्जयित्वा, रत्नेश्वरीविद्यया सकुङ्कुमचन्दनत्रिपुण्ड्रयुक्ते भालतले सिन्दूरतिलकं कृत्वा, सुगन्धकुसुम-मालाभिः सुगन्धानुलेपनैश्चालंकृत्य, स्ववामभागे मृद्वासने समुपवश्ेय, स्वयं स्वासने समुपविष्टः प्राणायामत्रयमृष्या-दिन्यासांश्च विधाय, दूतीं देवीरूपां ध्यायन् प्राक्स्थापितशक्तिपात्रवत्स्वपुरतः पात्रान्तरं कलशस्थहेतुनापूर्य संस्कृत्य, तद्धेतुमुद्धरणपात्रेणोद्धृत्य भोगपात्रे कृत्वा सद्वितीयं भोगपात्रं तस्यै पुनः पुनर्निवेद्य, तरुणोल्लासयुक्तां ज्ञात्वा चक्र-स्योत्तरभागे स्वर्णरूप्यविद्रुमगजदन्तादिनिर्मितं स्वच्छं (सुदृढं) नवं पट्टसूत्ररचितारक्तपपट्टिकाभिर्गुम्फितं पर्यङ्कमास्तीर्य, तदुपरि पट्टवस्त्ररचितां बहुतरतूलभारभरितां तूलिकामास्तीर्य, तदुपर्युच्छीर्षकोपबर्हणादिकं निवेश्य तत्र सुगन्धपुष्पाणि कर्पूररजांसि च विकीर्य, तत्र प्रागुक्तविधिना योगपीठं संपूज्य, तदुपरि श्रीचक्रं विभाव्य, तथैव संपूज्य मञ्चकस्य पश्चिमे योगिनीबलिं पूर्वे क्षेत्रपालबलिं दक्षिणे गणेशबलिमुत्तरे वटुकबलिं चेति बलिचतुष्टयं दत्त्वा, पर्यङ्कोपरि दूतीं पश्चिमाभिमुखीं समुपवेश्य स्वयं पूर्वाभिमुख उपविश्य, मूलेन प्राणायामत्रयमृष्यादिकरषडङ्गन्यासांश्च कृत्वा, दूतीदेहे केवलां मातृकां विन्यस्य, वशिन्याद्यष्टकं विन्यस्य, शिरसि ४ द्रां द्रावणबाणाय नमः। पादयोः ४ द्रीं क्षोभणबाणाय नमः। मुखे ४ क्लीं वशीकरणबाणाय नमः। गुह्ये ४ ब्लूं आकर्षणबाणाय नमः। हृदि ४ सः संमोहनबाणाय नमः इति पञ्च बाणान् विन्यस्य; तस्या ललाटे ४ ह्रीं कामाय नमः। गले ४ क्लीं मन्मथाय नमः। हृदि ४ ऐं कन्दर्पाय नमः। नाभौ ४ ब्लूं मकरध्वजाय नमः। मूलाधारे ४ स्त्रीं मेनकेतवे नमः, इति विन्यस्य देहे पूर्वोक्ताः कामकलाः सोमकलाश्चेति विन्यस्य, तस्याः शिरसि सुभगाय ऋषये नमः। मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः। हृदये श्रीभगमालिन्यै देवतायै नमः। गुह्ये हर्ब्लेंबीजाय नमः। पादयोः स्त्रीं शक्तये नमः। नाभौ ह्रीं कीलकाय नमः, इति ऋष्यादिन्यासं विन्यस्य, तस्याः शरीरे भगमालिनीविद्यया मूर्धादिपादपर्यन्तं त्रिर्व्यापकं विन्यस्य, तस्याः शिरसि त्रिकोणं विभाव्य शिरस्त्रिकोणमध्ये वक्ष्यमाणविधिना बालां ध्यात्वा, तद्विद्यामुच्चार्य श्रीबालादेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अग्रकोणे क्लींकामेश्वरीश्री०। वामकोणे ऐंवागीश्वरीश्री०। दक्षिणकोणे सौः कुलगणपतिश्री०, इति प्रादक्षिण्येन संपूज्य,

तस्या दक्षिणस्तने क्लींकामदेवश्री०। वामे वंवसन्तश्री०। योनौ श्रीरतिदेवीश्री०। नाभौ श्रीप्रतिदेवीश्री०। पुनः शिरस्त्रिकोणाद् बहिः गंगणनाथश्री०। ४ सिंहपादश्री०। ४ विजयपादश्री०। ४ अनङ्गपादश्री०। ४भुजङ्गपादश्री०। ४ चित्रपादश्री०। (४ कनकपादश्री०) ४ कनकाध्यक्षपादश्री० इति त्रिकोणाद् बहिः परितः स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन संपूज्य, शिरस्त्रिकोणस्य वामकोणे ४ मां महालक्ष्म्यै नमः। दक्षे ४ सं सरस्वत्यै नमः । तस्या रोमराजिषु ४ नं नन्द-नोद्यानाय नमः इति संपूज्य, तस्याः शिरस्त्रिकोणमध्ये नवयोन्याढ्यकर्णिकं सकेसरमष्टदलकमलं दलाग्रेषु त्रिशूलयुक्तिं तद्बहिर्वृत्तं तद्बहिश्चतुर्द्वारयुक्तं चतुरस्रत्रयवेष्टितं बालाचक्रं विभाव्य, तत्र मण्डूकादिपरतत्त्वान्तं योगपीठं सर्वं शिरस्येव संपूज्याष्टदल केसरेषु ४ वामायै० ४ ज्येष्ठायै० ४ रौद्र्यै० ४ अम्बिकायै० ४ इच्छायै० ४ ज्ञानायै० ४ क्रियायै० ४ कुब्जिकायै० ४ विभ्व्यै० ४ विषघ्न्यै० ४ दूतर्यै० ४ आनन्दायै नमः, इति संपूज्य मध्ये ४ ह्सौः सदाशिव-महाप्रेतपद्मासनाय नमः, इति नवयोनिस्थत्रिकोणमध्ये संपूज्य, तत्र बालाविद्यामुच्चार्य 'श्रीबालामूर्तिं कल्पयामि' इति पुष्पाञ्जलिना मूर्तिं परिकल्प्य, पुनर्बालामुच्चार्य 'श्रीबालामूर्तये नमः' इति मूर्तिं संपूज्य, कराभ्यां पुष्पाञ्जलिमादाय हृदयकमले वक्ष्यमाणरूपां देवीं ध्यात्वा पुनस्तेजोरूपां तामापाद्य, तत्तेजः सुषुम्नामार्गेण ब्रह्मरन्ध्रं नीत्वा वहन्नासापुटाध्वना बहिर्निःसार्य करस्थपुष्पाञ्जलौ संयोज्य, ४ ऐंक्लीसौः श्रीभगवतीहागच्छागच्छेति दूत्याः शिरसि पुष्पाञ्जलिं निःक्षिप्यावाह्यावाहनीमुद्रां प्रदर्श्य, स्थापनादिपरमीकरणान्तं तत्तन्मुद्रया विधाय, प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा वरदाभयपुस्त-काक्षमालापाशाङ्कुशधनुर्बाणकपालकमलाख्या दश मुद्राः प्रदर्श्य,

भ्रमद्भ्रमरनीलाभधम्मिल्लामलपुष्पिणीम् । ब्रह्मरन्ध्रस्फुरद्भिन्नमुक्तालेखाविराजिताम् ॥१॥
मुक्तालेखारन्ध्ररत्नतिलकां मुकुटोज्ज्वलाम् । विशुद्धमुक्तावज्राढ्यचन्द्रलेखाकिरीटिनीम् ॥२॥
भ्रमद्भ्रमरनीलाभनेत्रत्रयविराजिताम् । सूर्यभास्वन्महारत्नकुण्डलालंकृतां पराम् ॥३॥
शुक्राकारस्फुरन्मुक्ताहारभूषणभूषिताम् । ग्रैवेयाङ्गदपत्रालीस्फुरत्कान्तिविराजिताम् ॥४॥
गङ्गातरङ्गकर्पूरशुभ्राम्बरविभूषिताम् । श्रीखण्डवल्लीसदृशबाहुवल्लीविराजिताम् ॥५॥
कङ्कणादिलसद्भूषामणिबन्धलसत्प्रभाम् । प्रवाललतिकाकारपाणिपल्लवशोभिताम् ॥६॥
वज्रवैडूर्यमुक्तालिमेखलां विमलप्रभाम् । रक्तोत्पलदलाकारपादपल्लवशोभिताम् ॥७॥
नक्षत्रमालासंकाशमुक्तामञ्जीरमण्डिताम् । वामेन पाणिनैकेन पुस्तकं चापरेण तु ॥८॥
अभयं च प्रयच्छन्तीं साधकाय वरानने । अक्षमालां च वरदं दक्षपाणिद्वयेन तु ॥९॥
दद्यतीं चिन्तयेद्देवीं वश्यसौभाग्यवक्प्रदाम् । क्षीरकुन्देन्दुधवलां प्रसन्नां संस्मरेत् प्रिये ॥१०॥

इति ध्यात्वा, बालाविद्यामुच्चार्य भगवति एतत्ते आसनं नमः। एवं स्वागतं, पाद्यं अर्घ्यं, आचमनीयं मधुपर्कं, पुनराचमनीयं, स्नानं, वस्त्रे, आचमनीयं आभरणानि समर्प्य, एष ते गन्धो नमः। इमानि ते पुष्पाणि वौषट्, इति पुष्पान्तैरुपचारैः संपूज्य, प्राग्योनिमध्ययोन्योरन्तराले ४ ऐं परमगुरुभ्यो नमः। ४ ऐं परापरगुरुभ्यो नमः। ४ ऐं अपरगुरुभ्यो नमः, इति गुरुपङ्क्तित्रयं विभाव्य संपूज्य योनिमुद्रां बद्ध्वा, हृदि मुखे भ्रूमध्ये ललाटे ब्रह्मरन्ध्रे च संस्थाप्य दर्शयेत् । ततः त्रिकोणस्य वामकोणे ४ ऐं रत्यै नमः। दक्षिणे ४ क्लीं प्रीत्यै० अग्रे ४ सौः मनोभवायै० इति संपूज्याष्टदलकेसरेषु अग्नीशनिर्ऋतिवायुकोणेष्वङ्गचतुष्टयं देव्यग्रे नेत्रं तदग्रादिचतुर्दिक्षु अस्त्रमिति प्रादक्षिण्येन षडङ्गानि संपूज्याष्टकोणत्रिकोणान्तरालेषु देव्यग्रमारभ्य चतुर्दिक्षु प्रादक्षिण्येन ४ द्रां द्राविण्यै० ४ द्रीं क्षोभिण्यै० ४ क्लीं वशीकरण्यै० ४ ब्लूं आकर्षिण्यै० अग्रे ४ सः संमोहिन्यै०। एष्वेव स्थानेषु, ४ ह्रीं कामाय नमः ४ क्लीं मन्मथाय नमः ४ ऐं कन्दर्पाय नमः ४ ब्लूं मकरध्वजाय नमः ४ स्त्रीं मेनकेतवे नमः। इति संपूज्य पूर्वाद्यष्टसु योनिषु ऐंक्लीब्लूंस्त्रींसः सुभगायै नमः। ५ भगायै०। ५ भगसर्पिण्यै०। ५ अनङ्गमालिन्यै०। ५ अनङ्गायै०। ५ अनङ्गकुसुमायै०। ५ अनङ्गमेखलायै०। ५ अनङ्गमदनायै०, इति संपूज्याष्टदलेषु देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन—अं असिताङ्गभैरवाय नमः।

आं ब्राह्म्यै०। इं रुरुभैरवाय०। ईं माहेश्वर्यै०। उं चण्डभैरवाय०। ऊं कौमार्यै०। ऋं क्रोधराजभैरवाय०। ॠं वैष्णव्यै०। लृं उन्मत्तभैरवाय०। लॄं वाराह्यै०। एं कपालिभैरवाय०। ऐं इन्द्राण्यै०। ओं भीषणभैरवाय०। औं चामुण्डायै०। अं संहारभैरवाय०। अः महालक्ष्म्यै०। इति संपूज्य, अष्टदलान्तरालेषु कामरूपाय नमः। मलयाय०। कोलगिरये०। कोलान्तकाय०। चौहाराय०। जालन्धराय०। उड्डीयानाय०। देवीकोटाय०। इत्यग्रादिप्रादक्षिण्येन संपूज्य, बहिर्वृत्ते देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येनाष्टदिक्षु, हेरुकाय नमः। त्रिपुरान्तकाय०। वेतालाय०। अग्निजिह्वाय०। कालान्तकाय०। कपालिने०। एकपादाय०। भीमरूपाय०। इन्द्रेशानयोर्मध्ये हाटकेश्वराय०। निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये मलयाय०, इति संपूज्य, तद्बहिः पूर्वादिदशदिक्षु इन्द्रादींस्तथायुधानि च सर्वचक्राहिः संपूज्य, धूपदीपनैवेद्यानि समर्प्य तदभेदबुद्ध्या दूत्यै हेतुं समर्प्य, स्वदेहे प्राग्वच्छ्रीकण्ठादिमातृकां विन्यस्य, स्वशिवे ॐह्रीं क ५ ह ६ स ४ शिवाय नमः। इति दशार्णया विद्यया संपूज्य शिवाग्रे ह्रों ईशानाय नमः। तत्पूर्वभागे ह्रें तत्पुरुषाय नमः। दक्षिणे ह्रुं अघोराय नमः। वामे ह्रिंवामदेवाय०। तत्पृष्ठे ह्रं सद्योजाताय० इति संपूज्य, एतेष्वेव स्थानेषु निवृत्त्यै नमः। प्रतिष्ठायै०। विद्यायै०। शान्त्यै०। शान्त्यतीतायै०। इति संपूज्य, क्लां क्लीमित्यादिना षडङ्गानि विन्यस्य, मुष्कयोर्मध्ये मूलविद्यामुच्चार्य नन्दिकेश्वराय नमः। इति संपूज्य, तस्यै कारणं दत्त्वा तदवशेषास्वादनेन स्वयं तरुणोल्लासयुक्तस्तस्याः स्तनयोर्मध्ये स्पृशन् 'ऐंह्रीं चपले चपलचित्ते रेतो मुञ्च २ ब्लूंक्लींस्त्रींहर्लें' इति द्राविणीविद्यां वारत्रयं जपित्वा, तस्या हृदयकमले प्रागुक्तानङ्गकुसुमाद्यष्टशक्तिभिः परिवृत्तां कामेश्वरीं रक्तवर्णां रक्तमाल्याभरणानुलेपनवसनालंकृतामिक्षुकोदण्डपुष्पबाणधरां (चन्द्रशेखरां) ध्यायन् 'क्लींकामकलात्मिके रेतो मुञ्च २ स्वाहा' इति कामेश्वरीमन्त्रं तस्या हृदि विन्यस्य, 'पशुसंमोहने देवि स्वभक्तानन्ददायिनि। बिन्दुरूपे परानन्दे रेतः शीघ्रं तु मोचय' इति हृदयं स्पृशन् पठित्वा 'ऐस्वोंस्त्रींब्लूंब्लः, इति योनिमुद्राबीजस्मरणात् तदीयमूलाधारदेशे शक्तिक्षोभं चिन्तयित्वा पुनस्तां शक्तिं मूलाधाराद् हृत्कमलं नीत्वा 'ऐंक्लींस्त्रीं' इति क्षोभिणीविद्यां स्मरन् हृदये शक्तिक्षोभं विचिन्त्य, पुनस्तां शक्तिं भ्रूमध्यं नीत्वा तत्र 'ऐंब्लूंऐंक्लीं' इति द्राविणीविद्यां स्मरन्, तयालातचक्रभ्रमणकुशलया सकलकमलकाननं विह्वलीभूतं चिन्तयन् ब्रह्मरन्ध्रं नीत्वा, परामृतकलास्रावपूरेण सह पुनर्मूलाधारमानीय 'ऐंगुह्ये रब्लौब्लः ऐंह्रींश्रींक्लींह्रींब्लूं' इति सर्वाङ्गसुन्दरीविद्यां तत्र स्मरन् स्वयं परमानन्दनिर्भरमनास्तल्लयो भूत्वा कियत्क्षणं न किञ्चिदपि चिन्तयेत्। इत्थं निरालम्बमुद्रा ततस्तत्स्मरकेतनेऽपि चिन्तनीया। ततस्तस्याः शिरसि वदने हृदये गुह्ये पादयोश्च 'ग्लूंस्लूंप्लूंम्लूंन्लूं' इति पञ्चरत्नबीजानि विन्यस्य, तद्वराङ्गाङ्कुरं दक्षकराग्रेण गृहीत्वा वामकराग्रेण मूलविद्यया वाग्भवकूटमुच्चरन् तद्योनिपङ्कजं स्पृष्ट्वा,

उद्यद्भानुसहस्रकान्तिमतुलं शीतांशुवच्छीतलं व्याकोशारुणपद्मरागरुचिरं दृष्ट्वा वराङ्गं ततः।
कस्तूरीघुसृणेन्दुचन्दनयुतं गोरोचनालेपितं ध्यात्वा तत्र परां परापरकलां तन्मध्यगां चिन्तयेत् ॥१॥

इति तत्पङ्कजं तन्मध्ये परकलां च ध्यात्वा, तत्र वाग्भवकूटमवटोपरि अवटाभ्यन्तरे कामराजकूटं च विलिख्य, गन्धाक्षतरक्तकरवीरपुष्पैस्त्रिः संपूज्य वराङ्गस्य वामभागे गुरुपङ्क्तित्रयमभ्यर्च्य, तस्या वामपादाङ्गुष्ठे 'शाम्भव्यै नमः'दक्षपादाङ्गष्ठे 'शम्भवे नमः' इति मूलविद्यया संपूज्य, नाभिदेशे 'बलिनाथेभ्यो नमः इति देवताश्च संपूज्य, तां प्रणम्य तदाज्ञया स्वयमक्षुब्धः सन् नानाविधासनपरिष्वङ्गकरजरदघातादिविविधविचित्रलीलाविलासविशेषैस्तां सम्यक् परितोषयन् तदङ्गजमदनमथनं कृत्वा, तदङ्गं निष्पीड्य तन्निर्गतं तत्त्वामृतं सुगन्धकुसुमेनोद्धृत्य कलशविशेषार्घ्यश्रीपात्रेषु मूलविद्यया संयोज्य, तदवटं हेतुना प्रक्षाल्य तद्हेतुं कलशे निक्षिप्य, तां प्रणम्य भोजनताम्बूलवसनाभरणदक्षिणादानैः परितोष्य स्वात्मानं कृतकृत्यं मत्वा श्रीगुरुं प्रणमेत्। तत्र तत्त्वस्य उत्तममध्यमत्वादिविशेषो देवीयामले—

कुण्डोद्भवामृतं देवि उत्तमोत्तममेव च। उत्तमं रजोबीजानि मध्यमं केवलं रजः ॥१॥
अधमं पौरुषं वीर्यं तथान्यच्चाधमाधमम्। इति।

साधक उक्त क्रम से आत्मपूजन करके अपने शिर में श्री गुरुपादुका का ध्यान करके पूजन करे, प्रणाम करे। उक्त क्रम से श्री गुरु की आज्ञा प्राप्त करे। सर्वलक्षणसम्पन्न एवं ब्रह्मविद्या में दीक्षित दूती को प्रात: निमन्त्रित क्ररे। स्वयं उसके यहाँ जाकर सादर प्रणाम करके उसे पूजास्थान में ले आये। मुलायम आसन पर बैठाकर उसके पैरों को गरम जल से धोये और सुख से बैठाये। पुन: उसे प्रणाम करे और हाथ जोड़कर भगवती श्री परदेवता के यजन में दूती बनने की उससे प्रार्थना करे। इस प्रकार प्रार्थना के बाद देवी के आगे अपने आसन पर बैठकर हाथों को जोड़कर सङ्कल्प करके मूल विद्या से तीन प्राणायाम करे। ऋष्यादि कर-षडङ्ग न्यास करे। अपने बाँयें भाग में दूती को बैठाकर मूल विद्या से सुगन्धित तेल उसके शरीर में लगाये। सुगन्धित आमला का उबटन लगाये। गरम जल से स्नान कराये। आरती करे। पतले वस्त्र से उसके अङ्गों को पोंछे। उसे लाल रेशमी वस्त्र और चोली पहनाये। नाना प्रकार के आभरणों से उसे अलंकृत करे। केशजटा को बिखेर कर धूपित करके सँवारे। सिन्दूर काजल अलता से बाल, नयन, चरणादि को रञ्जित करे। रत्नेश्वरी विद्या से कुङ्कुम चन्दन का त्रिपुण्डयुक्त ललाट में सिन्दूर का तिलक लगाये। सुगन्धित फूलों की माला एवं सुगन्धित अनुलेप से उसे अलंकृत करे। अपने बाँयें कोमल आसन पर बैठाये। स्वयं अपने आसन पर बैठे। तीन प्राणायाम ऋष्यादि न्यास करे। दूती का ध्यान देवी रूप में करे। पूर्वस्थापित शक्तिपात्र के समान अपने आगे दूसरे पात्र को कलश के कारण से पूर्ण करके संस्कृत करे। उसे उद्धरण पात्र में रखे। भोगपात्र रखकर उसमें मांस रखे। उसे बार-बार दूती को निवेदित करे। उसे तरुणोल्लास युक्त जानकर चक्र के उत्तर भाग में सोना-चाँदी-मूँगा-गजदन्तादि से निर्मित स्वच्छ सुदृढ़ नये रेशमी सूत्र से रचित, रक्त पट्टिका से गुम्फित पर्यंक पर उसे बैठाये। उसके ऊपर रेशमी वस्त्र से बने बहुत रुई भरी तूलिका बिछाये। उसके ऊपर तकिया आदि लगाये। उस पर सुगन्धित फूल कपूरचूर्ण बिखेरे। उसपर पूर्वोक्त विधि से योगपीठ की पूजा करे। उसके ऊपर श्रीचक्र की भावना करे और उसी प्रकार पूजा करे। मंच के पश्चिम में योगिनी बलि, पूर्व में क्षेत्रपाल बलि, दक्षिण में गणेशबलि और उत्तर में बटुकबलि प्रदान करे। पर्यङ्क पर दूती को पश्चिमाभिमुखी बैठाकर स्वयं पूर्वाभिमुख बैठे। मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करके ऋष्यादि कर-षडङ्ग न्यास करे। दूती के देह में केवल मातृका न्यास करे, वशिनी आदि आठ शक्ति का न्यास करे। तदनन्तर पञ्चबाण न्यास करे—

शिर में ॐ ऐं ह्रीं श्रीं द्रां द्रावणबाणाय नम:। पैरों में ॐ ऐं ह्रीं श्रीं द्रीं क्षोभणबाणाय नम:। मुख में ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं वशीकरणबाणाय नम:। गुह्य में ॐ ऐं ह्रीं श्रीं आकर्षणबाणाय नम:। हृदय में ॐ ऐं ह्रीं श्रीं स: सम्मोहनबाणाय नम:। दूती के ललाट में—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्रीं कामाय नम:। गले में ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं मन्मथाय नम:। हृदय में ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ऐं कन्दर्पाय नम:। नाभि में ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ब्लूं मकरध्वजाय नम:। मूलाधार में ॐ ऐं ह्रीं श्रीं स्त्रीं मीनकेतवे नम:। इसके बाद पूर्वोक्त कामकला और सोमकला का न्यास करे। उसके शिर में—सुभगाय ऋषये नम:। मुख में गायत्रीछन्दसे नम:। हृदय में श्रीभगमालिन्यै देवतायै नम:। गुह्य में ह्र्ब्लें बीजाय नम:। पैरों में स्त्रीं शक्तये नम:। नाभि में ह्रीं कीलकाय नम:।

इस प्रकार ऋष्यादि न्यास के बाद उसके शरीर में भगमालिनी विद्या से मूर्धा से पैरों तक तीन व्यापक न्यास करे। उसके शिर में त्रिकोण की भावना करके शिर के त्रिकोणमध्य में यथाविधि बाला का ध्यान करके उसकी विद्या को बोलकर श्रीबालादेवीश्रीपादुकां पूजयामि नम:। अग्रकोण में क्लीं कामेश्वरी श्री पादुकां पूजयामि नम:। वामकोण में ऐं वागीश्वरीश्रीपादुकां पूजयामि नम:। दक्षिण कोण में सौ: कुलगणपतिश्रीपादुकां पूजयामि नम:—इस प्रकार प्रादक्षिण्य क्रम से पूजा करे। उसके दक्षिण स्तन में क्लीं कामदेवश्रीपादुकां पूजयामि नम:। वाम स्तन में वं वसन्तश्रीपादुकां पूजयामि नम:। योनि में श्रीरतिदेवीश्रीपादुकां पूजयामि नम:। नाभि में श्रीप्रीतिदेवीश्रीपादुकां पूजयामि नम:। पुन: शिर के त्रिकोण के बाहर गं गणनाथश्रीपादुकां पूजयामि नम:। ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सिंहपादश्रीपादुकां पूजयामि नम:। ॐ ऐं ह्रीं श्रीं विजयपादश्रीपादुकां पूजयामि नम:। ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अनङ्ग-पादश्रीपादुकां पूजयामि नम:। ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भुजङ्गपादश्रीपादुकां पूजयामि नम:। ॐ ऐं ह्रीं श्रीं चित्रपादश्रीपादुकां पूजयामि नम:। ॐ ऐं ह्रीं श्रीं कनकपादश्रीपादुकां पूजयामि नम:। ॐ ऐं ह्रीं श्रीं कनकाध्यक्षपादश्रीपादुकां पूजयामि नम:। इस प्रकार त्रिकोण के बाहर चारो ओर अपने आगे से प्रादक्षिण्य क्रम से पूजा करे।

शिरस्थित त्रिकोण के वाम कोण में—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं मां महालक्ष्म्यै नम:। दक्षभाग में ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सं सरस्वत्यै नम:। उसकी रोमावलि में ॐ ऐं ह्रीं श्रीं नं नन्दनोद्यानाय नम:। इस प्रकार पूजन कर उसके शिरस्थ त्रिकोण मध्य में नवयोन्याढ्य

कर्णिका में, अष्टदल कमल के दलाग्रों में त्रिशूलयुक्त उसके बाहर के वृत्त में उसके बाद चार द्वार युक्त चतुरस्रत्रयवेष्टित बालाचक्र बनाकर उसमें मण्डूकादि से परतत्त्व तक योगपीठ का पूजन शिर में करे। तब अष्टदल केसरो में— ॐ ऐं ह्रीं श्री वामायै नमः। ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ज्येष्ठायै नमः। ॐ ऐं ह्रीं श्रीं रौद्र्यै नमः। ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अम्बिकायै नमः। ॐ ऐं ह्रीं श्री इच्छायै नमः। ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ज्ञानायै नमः। ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रियायै नमः। ॐ ऐं ह्रीं श्रीं कुब्जिकायै नमः। ॐ ऐं ह्रीं श्रीं विभ्व्यै नमः। ॐ ऐं ह्रीं श्रीं विषघ्न्यै नमः। ॐ ऐं ह्रीं श्रीं दूतर्यै नमः। ॐ ऐं ह्रीं श्रीं आनन्दायै नमः से पूजा करे। तब मध्य मे ॐ ऐं ह्रीं श्री ह्सौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः से नवयोनिस्थ त्रिकोण मध्य में पूजा करे। वहाँ बाला विद्या कहकर 'श्रीबालामूर्ति क्ल्पयामि' से पुष्पाञ्जलि देकर मूर्ति कल्पित करे। पुनः बाला का उच्चारण करके श्रीबालामूर्तये नमः से मूर्ति की पूजा करे। हाथों में पुष्पाञ्जलि लेकर हृदय कमल में वक्ष्यमाण रूपा देवी का ध्यान करके पुनः उसे तेजोरूप जानकर उस तेज को सुषुम्ना मार्ग से ब्रह्मरन्ध्र में लाकर प्रवहमान नासापुट से बाहर निकालकर करस्थ पुष्पाञ्जलि में जोड़कर ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ऐ क्लीं सौः श्री भगवति इहागच्छ कहकर दूती के शिर पर पुष्पाञ्जलि देकर आवाहन करके आवाहनी मुद्रा दिखाये। स्थापनादि से परमीकरण तक विहित मुद्रा दिखाकर प्राणप्रतिष्ठा करे। वर अभय पुस्तक अक्षमाला पाश अङ्कुश धनुष-बाण कपाल कमल नामक दश मुद्रा दिखाकर इस प्रकार ध्यान करे—

भ्रमद्भ्रमरनीलाभधम्मिल्लामलपुष्पिणीम् । ब्रह्मरन्ध्रस्फुरद्भिन्नमुक्तालेखाविराजिताम् ।।
मुक्तालेखारन्ध्ररत्नतिलकां मुकुटोज्ज्वलाम्। विशुद्धमुक्तावज्राढ्यचन्द्रलेखाकिरीटिनीम्।।
भ्रमद्भ्रमरनीलाभनेत्रत्रयविराजिताम् । सूर्यभास्वन्महारत्नकुण्डलालंकृतां पराम्।।
शुक्राकारस्फुरन्मुक्ताहारभूषणभूषिताम् । ग्रैवेयाङ्गदपत्रालीस्फुरत्कान्तिविराजिताम् ।।
गङ्गातरङ्गकर्पूरशुभ्राम्बरविभूषिताम् । श्रीखण्डवल्लीसदृशबाहुवल्लीविराजिताम् ।।
कङ्कणादिलसद्भूषामणिबन्धलसत्प्रभाम् । प्रवाललतिकाकारपाणिपल्लवशोभिताम् ।।
वज्रवैडूर्यमुक्तालिमेखलां विमलप्रभाम्। रक्तोत्पलदलाकारपादपल्लवशोभिताम् ।।
नक्षत्रमालासंकाशमुक्तामञ्जीरमण्डिताम् । वामेन पाणिनैकेन पुस्तकं चापरेण तु।।
अभयं च प्रयच्छन्तीं साधकाय वरानने। अक्षमालां च वरदं दक्षपाणिद्वयेन तु।।
दधतीं चिन्तयेद्देवीं वश्यसौभाग्यवक्प्रदाम्। क्षीरकुन्देन्दुधवलां प्रसन्नां संस्मरेत् प्रिये।।

इस प्रकार ध्यान के बाद बाला विद्या कहकर भगवति एतत्ते आसनं नमः। इसी प्रकार स्वागत, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय मधुपर्क, पुनराचमनीय, स्नान, वस्त्र, आचमनीय, आभरण देकर एष ते गन्धो नमः। इमानि ते पुष्पाणि वौषट् से पुष्पोपचार तक पूजा करे। पूर्व योनि एवं मध्य योनि के अन्तराल ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ऐं परमगुरुभ्यो नमः। ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ऐं परापरगुरुभ्यो नमः। ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ऐं अपरगुरुभ्यो नमः—इस प्रकार गुरुत्रय की भावना करके पूजन कर योनिमुद्रा बाँधकर हृदय मुख भ्रूमध्य ललाट ब्रह्मरन्ध्र में स्थापित करके दिखाये। तब त्रिकोणस्थ वाम कोण में ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ऐं रत्यै नमः। दक्षिण में ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं प्रीत्यै नमः। आगे ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सौः मनोभवायै नमः। इसके अष्टदल केसरों में अग्नि ईशान नैर्ऋत्य वायु कोणों में अङ्ग चतुष्टय, देवी आगे नेत्र, उसके आगे चारो दिशाओं में अस्त्र की पूजा प्रादक्षिण्य क्रम से करे। षडङ्ग पूजन के बाद अष्टकोण एवं त्रिकोण के अन्तराल में देवी के आगे से प्रारम्भ करके चारो दिशाओं में प्रादक्षिण्य क्रम से ॐ ऐं ह्रीं श्रीं द्रां द्राविण्यै नमः। ॐ ऐं ह्रीं श्रीं द्रीं क्षोभिण्यै नमः। ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्ली वशीकरण्यै नमः। ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ब्लूं आकर्षिण्यै नमः। आगे ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सः सम्मोहिन्यै नमः। तब इन्हीं स्थानों में—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्रीं कामाय नमः, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं मन्मथाय नमः, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ऐं कन्दर्पाय नमः, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ब्लूं मकरध्वजाय नमः, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं स्त्रीं मीनकतवे नमः, इसके बाद पूर्वादि आठों त्रिकोणों में—ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः सुभगायै नमः। ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः भगायै नमः। ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः भगसर्पिण्यै नमः। ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः अनङ्गमालिन्यै नमः। ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः अनङ्गायै नमः। ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः अनङ्गकुसुमायै नमः। ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः अनङ्गमेखलायै नमः। ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः अनङ्गमदनायै नमः।

इसके बाद आठ दलों में देवी के आगे से प्रादक्षिण्य क्रम से अं असितांगभैरवाय नमः, आं ब्राह्मै नमः, इं रुरुभैरवाय

नमः, ईं माहेश्वर्यै नमः, उं चण्डभैरवाय नमः, ऊं कौमार्यै नमः, ऋं क्रोधराजभैरवाय नमः, ॠं वैष्णव्यै नमः, ऌं उन्मत्तभैरवाय नमः, ॡं वाराह्यै नमः, एं कपालिभैरवाय नमः, ऐं इन्द्राण्यै नमः, ॐ भीषणभैरवाय नमः, औं चामुण्डायै नमः, अं संहारभैरवाय नमः, अः महालक्ष्म्यै नमः से पूजन करे। तब अष्ट दलों के अन्तराल में कामरूपाय नमः, मलयाय नमः, कोलगिरये नमः, कोलान्तकाय नमः, चौहाराय नमः, जालन्धराय नमः, उड्डीयानाय नमः, देवीकोटाय नमः से पूजन करे। इसके बाद बाहरी वृत्त में देवी के आगे से प्रदक्षिण क्रम से हेरुकाय नमः त्रिपुरान्तकाय नमः, वेतालाय नमः, अग्निजिह्वाय नमः, कालान्तकाय नमः, कपालिने नमः, एकपादाय नमः, भीमरूपाय नमः से पूजा करे। पूर्व-ईशान के मध्य में हाटकेश्वराय नमः से एवं नैर्ऋत्य-वरुण के मध्य मे मलयाय नमः से पूजन करे। इसके बाद पूर्वादि दशो दिशाओं में इन्द्रादि दश दिक्पालों और उनके आयुधों का पूजन करे। तब धूप-दीप-नैवेद्यादि समर्पित करे। दूती को देवी मानकर मद्य प्रदान करे। इसके बाद अपने शरीर में पूर्ववत् श्रीकण्ठादि मातृका का न्यास करे। तब अपने लिङ्ग की पूजा ॐ ह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं शिवाय नमः—इस दशाक्षरी विद्या से करके उसके आगे ह्रों ईशानाय नमः। उसके पूर्व भाग में ह्रें तत्पुरुषाय नमः। दक्षिण में ह्रुं अघोराय नमः। वाम भाग में वामदेवाय नमः। उसके पीठ में ह्रां सद्योजाताय नमः से पूजन करे। इसके बाद इन्ही स्थानों में निवृत्त्यै नमः। प्रतिष्ठायै नमः, विद्यायै नमः, शान्त्यै नमः, शान्त्यतीतायै नमः से पूजा करे। तब क्लां क्लीं इत्यादि से षडङ्ग न्यास करे। मुष्क के मध्य में मूल विद्या कहकर नन्दिकेश्वराय नमः से पूजा करे। इस प्रकार से पूजा करने के बाद दूती को कारण प्रदान करे। उसके जूठन को स्वयं तरुणोल्लासयुक्त होकर ग्रहण करके उसके स्तनों के मध्य को स्पर्श करके कहे—ऐ ह्रीं चपले चपलचित्ते रेतो मुंच मुंच ब्लूं क्लीं स्त्रीं ह्रब्लें। इस द्राविणी विद्या का जप तीन बार करे। तब उसके हृदय में पूर्वोक्त अनङ्गकुसुमादि आठ शक्तियों से परिवृत रक्तवर्णा, रक्त माल्य-आभरण-अनुलेपन-वस्त्र से अलंकृत, इक्षु-कोदण्ड-पुष्प-बाण धारण करने वाली कामेश्वरी का ध्यान करे। 'क्लीं कामकलात्मके रेतो मुंच मुंच स्वाहा' कहकर कामेश्वरी मन्त्र का दूती के हृदय में न्यास कर उसे हृदय का स्पर्श करते हुये निम्न मन्त्र का पाठ करे—

पशुसम्मोहने देवि स्वभक्तानन्ददायिनि। बिन्दुरूपं परानन्दे रेतः शीघ्रं तु मोचय।।

तब ऐं स्वों स्त्रीं ब्लूं ब्लः से योनिमुद्राबीज का स्मरण करके उसे मूलाधार में लाकर शक्तिक्षोभ का चिन्तन करे। पुनः उस शक्ति को मूलाधार से हृदय कमल में लाकर ऐं क्लीं स्त्रीं इस क्षोभिणी विद्या का स्मरण करके हृदय में शक्तिक्षोभ का चिन्तन करे। पुनः उस शक्ति को भ्रूमध्य में लाकर ऐं ब्लूं ऐं क्लीं इस द्राविणी विद्या का स्मरण करे। उसे अलात चक्र भ्रमण की कुशलता से सकल कमल कानन के विह्वलीभूत होने का चिन्तन करके ब्रह्मरन्ध्र में ले आये। परामृत कलास्राव के साथ पुनः मूलाधार में लाकर ऐं गुह्ये रब्लौंब्लः ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं ह्रीं ब्लूं इस मन्त्र से तब सर्वाङ्ग सुन्दरी विद्या का स्मरण करे। स्वयं परमानन्द निर्भर मन से उसमें लय होकर कुछ क्षणों तक कुछ भी चिन्तन न करे। इस प्रकार निरालम्ब मुद्रा के बाद उसकी योनि का भी चिन्तन करे। तब उसके शिर, मुख, हृदय, गुह्य और पैरों में ग्लूं स्लूं प्लूं म्लूं न्लूं—इस पञ्चरत्न विद्या बीज का न्यास करे। उस योनि के अङ्कुर को दाँयें हाथ से पकड़कर बायें हाथ से मूल विद्या के वाग्भव कूट का उच्चारण करते हुये उसके योनिकमल का स्पर्श करके इस प्रकार ध्यान करे—

उद्यद्भानुसहस्रकान्तिमतुलं शीतांशुवच्छीतलं व्याकोशारुणपद्मरागरुचिरं दृष्ट्वा वराङ्गं ततः।
कस्तूरीघुसृणेन्दुचन्दनयुतं गोरोचनालेपितं ध्यात्वा तत्र परां परापरकलां तन्मध्यगां चिन्तयेत्।।

इस प्रकार उसकी योनि एवं योनिमध्य में परकला का ध्यान करे। वाग्भव कूट अवट पर अवट के अन्दर कामराज कूट को लिखे। अवट छेद को कहते हैं। गन्धाक्षत लाल कनैल के फूलों से पूजा करे। योनि के वाम भाग में गुरु-पंक्तित्रय का पूजन करे। उसके वाम पादांगुष्ठ में शाम्भव्यै नमः, दक्ष पादांगुष्ठ में 'शम्भवे नमः' इस मूल विद्या से पूजा करे। नाभिदेश में बलिनाथेभ्यो नमः से देवता की पूजा करे। इस प्रकार पूजा के बाद उसे प्रणाम करे। उसकी आज्ञा से स्वयं अनेक क्षुब्ध होकर अनेक आसनों से उसका आलिङ्गन कर हाथ से एवं दाँतों से क्षत आदि विविध लीला विलास से उसे सम्यक् परितुष्ट करे। उसके अङ्ग का लिङ्ग से मथन करे। उसके अङ्ग को पीड़ित करके उससे निर्गत तत्त्वामृत को सुगन्धित फूलों से लेकर कलश विशेष अर्घ्य श्रीपात्र में मूल विद्या से मिलाये। उसके छेद को शराब से प्रक्षालित करे। उस कारण को कलश में डाल

दे। पुनः उसे प्रणाम करके भोजन-ताम्बूल-वस्त्राभरण-दक्षिणा आदि देकर सन्तुष्ट करके अपने को कृतकृत्य मानकर श्री गुरु को प्रणाम करे। तत्त्वों के उत्तम-मध्यम-अधम देवीयामल में इस प्रकार बताये गये हैं—कुण्ड से निकला अमृत उत्तमोत्तम होता है। वीर्ययुक्त होता है। रज उत्तम केवल रज मध्यम होता है एवं पुरुष का वीर्य अधम होता है। इसके अतिरिक्त सभी अधमाधम होते हैं।

संक्षेपतः शक्तिशोधनम्

अथ संक्षेपतः शक्तिशोधनं स्वतन्त्रे—

अङ्गन्यासकरन्यासौ प्राणायाममतः परम्। विधाय मातृकान्यासं कुलाङ्गेऽपि प्रविन्यसेत् ॥१॥ इति।

भावचूडामणौ—

अदीक्षितकुलासङ्गात् सिद्धिहानिः प्रजायते। बलाद्वा यत्नतो वापि अभिषेकं समाचरेत् ॥१॥
आदौ बालां समुच्चार्य त्रिपुरायै समुच्चरेत्। नमःशब्दं समुच्चार्य इमां शक्तिं ततो वदेत् ॥२॥
पवित्रं कुरु शब्दान्ते मम शक्तिं कुरु प्रिये। वह्निजायां समुच्चार्य शुद्धिमन्त्रः सुरेश्वरि ॥३॥

इति मन्त्रेणाभिषिच्य, तस्याः कर्णेऽभेदबुद्ध्या मायाबीजं समुच्चरेदिति शक्तिशोधनम्। ततोऽर्घ्यस्थापनानन्तरं पर्यङ्कमध्ये मण्डूकादिपरतत्त्वान्तं पीठपूजां विधाय, गन्धपुष्पधूपदीपादिकं दत्त्वा समन्ततो धूपामोदं कृत्वा, तूलिकोपरि कुलं संस्थाप्य, तदुपरि पूर्वादिदिक्षु मध्ये च—ह्रीं कामाय नमः। क्लीं मन्मथाय नमः। ऐं कन्दर्पाय नमः। ब्लूं मकरध्वजाय नमः। स्त्रीं मेनकेतवे नमः इति संपूज्य, तस्या ललाटे सिन्दूरेण त्रिकोणं विलिख्य 'ऐंक्लींस्त्रींह्रींब्लूं आधारशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि' इति। 'ह्सौः महाप्रेतपद्मासनाय नमः' इति संपूज्य बालां कामेशीं च पूजयेत्। कुलार्णवे—

गणेशं च कुलाध्यक्षं दुर्गां लक्ष्मीं सरस्वतीम्। त्रिकोणेषु च संपूज्य वसन्तं मदनं प्रिये ॥१॥
स्तनयोः पूजयेत्पश्चान्मुखं तस्याः सुधाकरम्। इति।

उत्तरतन्त्रे—

मौलौ गणेशं केशाग्रे कुलाध्यक्षं ललाटके। दुर्गां भ्रुवोस्तथा लक्ष्मीं रसनायां सरस्वतीम् ॥१॥
अत्र स्थानवैपरीत्यमैच्छिकम्।

संक्षेप में शक्तिशोधन—स्वतन्त्र तन्त्र में कहा गया है कि अङ्गन्यास एवं करन्यास के पश्चात् प्राणायाम करके मातृका न्यास करके कुलाङ्ग में भी न्यास करे। भावचूडामणि में कहा गया है कि अदीक्षित कुल वाली के सङ्ग करने से सिद्धि नहीं मिलती। अतः बल से या यत्न से उसका अभिषेक करे। अभिषेक का मन्त्र है—बाला त्रिपुरायै नमः इमां शक्तिं पवित्रं कुरु मम शक्तिं कुरु प्रिये स्वाहा। यह शुद्धि मन्त्र है। इस मन्त्र से अभिषेक करके उसके कान में अभेद बुद्धि से मायाबीज 'ह्रीं' का उच्चारण करे। यही शक्तिशोधन होता है। तब अर्घ्यस्थापन के बाद पर्यङ्क के मध्य में मण्डूक से परतत्त्व तक पीठ पूजा करे। गन्ध, पुष्प, धूपादि देकर चारो ओर धूप से सुगन्धित करके गद्दे पर कुलकन्या को बैठाये। उसके ऊपर पूर्वादि दिशाओं और मध्य में ह्रीं कामाय नमः, क्लीं मन्मथाय नमः, ऐं कन्दर्पाय नमः, ब्लूं मकरध्वजाय नमः एवं स्त्रीं मीनकेतवे नमः से पूजा करे। उसके ललाट में सिन्दूर से त्रिकोण लिखकर ऐं क्लीं स्त्रीं ह्रीं ब्लूं आधारशक्तिपादुकां पूजयामि, ह्सौः महाप्रेतपद्मासनाय नमः से पूजा करके बाला एवं कामेशी की पूजा करे। कुलार्णव में कहा गया है कि गणेश, कुलाध्यक्ष, दुर्गा, लक्ष्मी एवं सरस्वती को त्रिकोण में पूजकर वसन्त एवं मदन को स्तनों में पूजे। इसके बाद उसके मुख में सुधाकर की पूजा करे। उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि शिर पर गणेश, केशाग्र पर कुलाध्यक्ष, ललाट पर दुर्गा, भौहों पर लक्ष्मी और जीभ पर सरस्वती का पूजन करे। यहाँ इच्छानुसार स्थान-परिवर्तन में कोई दोष नहीं होता।

कामसोमयोः कलाः

ज्ञानार्णवे—

दक्षपादादिमूर्धान्तं वाममूर्धादि सुन्दरि। पादान्तं पूजयेत्सर्वाः कला वै कामसोमयोः ॥१॥
श्रद्धा प्रीती रतिश्चैव दूतिः कान्तिर्मनोरमा। मनोहरा मनोरामा मदनोन्मादिनी तथा ॥२॥
मोदिनी दीपिनी चैव षोडशी च वशङ्करी। रञ्जनी चैव देवेशि षोडशी प्रियदर्शना ॥३॥
स्वरषोडशसंयुक्ता एताः कामकला यजेत्। ततः सोमकलाः पूज्याः शिवाद्याश्चरणावधि ॥४॥
पूषा रमा च सुभगा रतिः प्रीतिस्तथा धृतिः। शुद्धिः सौम्या मरीचिश्च शैलजा अंशुमालिनी ॥५॥
अङ्गिरा वशिनी चैव च्छाया संपूर्णमण्डला। तथा तुष्ट्यमृते चैव कलाः सोमस्य षोडश ॥६॥ इति।

एवं स्वरादिकाः संपूज्य, तद्भगे—ऐं चान्द्र्यै नमः। ऐं सौर्यै नमः। ऐं आग्नेय्यै नमः, इति तिस्रो नाडीः संपूज्य भगमालामन्त्रेण पूजयेत्। 'ऐंह्रींश्रींऐंजूंब्लूं क्लिन्ने सर्वाणि भगानि वशमानय मे स्त्रींह्रींक्लींब्लूं भगमालिन्यै नमः ऐंह्रींश्रीं' इति मन्त्रेण पूजयेत्। तन्त्रान्तरे—

इहाप्यावाहनं नास्ति जीवन्यासो महेश्वरि। अथैवं च विधानेन षोडशैरुपचारकैः ॥१॥
इष्टदेवीं प्रपूज्याथ सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्। अर्चयेद्गन्धपुष्पाद्यैः स्वशिवं तदनन्तरम् ॥२॥
मूलमन्त्रं ततः ओंनमः शिवाय ततः परम्। यजेत् तत्पुरुषाघोरसद्योवामेशसंज्ञकैः ॥३॥ इति।

उत्तरतन्त्रे—

अवधूतेश्वरीं कुब्जां कामाख्यां समयामपि। वज्रेश्वरीं कालिकां च तथा दिक्चरवासिनीम् ॥१॥
महाचण्डेश्वरीं तारां पूजयेदत्र साधकः। तदनुज्ञां ततो लब्ध्वा दत्त्वा ताम्बूलमेव च ॥२॥
शिवं च तत्र निक्षिप्य गजतुण्डाख्यमुद्रया। धर्माधर्महविर्दीप्त आत्माग्नौ मनसा स्रुचा ॥३॥
सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम्। स्वाहान्तोऽयं महामन्त्र आरम्भे परिकीर्तितः ॥४॥
ततो जपेत् स्त्रियं गच्छन् विद्यां त्रिर्भुवनेश्वरीम्।

जपेदिति अष्टोत्तरसहस्रं शतं वाक्षुब्धो जपेत्।

प्रकाशाकाशहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनीस्रुचम्। धर्माधर्मकलास्नेहपूर्णामिग्नौ जुहोम्यहम् ॥६॥
स्वाहान्तोऽयं महामन्त्रः शुक्रत्यागे प्रकीर्तितः। इति।

यामलतन्त्रे—

संयोगाज्जायते सौख्यं परमानन्दलक्षणम्। कुलामृतं प्रयत्नेन गृह्णीयाद् दुर्लभं नरः ॥१॥
तेनामृतेन दिव्येन सर्वे तुष्टा भवन्ति हि। यत्कामं कुरुते मन्त्री तत्क्षणादेव सिद्ध्यति ॥२॥
कुलद्रव्यं च संशोध्य शिवशक्तिमयं प्रिये। बीजामृतं परं ब्रह्म जपन् निक्षिप्य सुन्दरि ॥३॥
अर्घ्यपात्रामृतैर्यत्नान्निर्विकल्पः सदानघः। श्रीविद्याक्रममभ्यर्च्य परब्रह्ममयो भवेत् ॥४॥

श्रीविद्येत्युपलक्षणम्। कुलामृतशोधनमन्त्रस्तु 'ॐ अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि देवि शुक्रशापं प्रमोचय प्रमोचय अमृतं स्रावय स्रावय अमृतं कुरु २ स्वाहा' इति सप्तवारं जपेदिति। इति कुलयागः। अयं प्रकारस्तु तादृशयायिस्थायिनाम्। शुद्धस्थायिनां तु प्रथमत एव स्ववामे शक्तिं संस्थाप्य प्राणायामादिकं कुर्यात्। तदुक्तं कुमारीकल्पे—

ततः षोडशवर्षीयां नारीमानीय मन्त्रवित्। युवतीं वा मदोन्मत्तां सुवेषां चारुहासिनीम् ॥१॥
सदा रते साभिलाषां सिन्दूराङ्कितभालकाम्। साधकः श्रेयसे तन्वीं वामे संस्थापयेद्बुधः ॥२॥
तस्यास्तु भूतशुद्ध्यादि कृत्वा वै मातृकां न्यसेत्। प्राणायामं ततः कृत्वा कारयित्वा यथाविधि ॥३॥

अत्र कुलयागोत्तरमन्तर्यजनं प्रशस्तम्।

ज्ञानार्णव में कहा गया है कि दाँयें पैर से मूर्धा तक और वाम मूर्धा से पैर तक चन्द्रमा की सभी कलाओ का पूजन करे। श्रद्धा प्रीति रति दूती कान्ति मनोरमा मनोहरा मनोरामा मदना उन्मादिनी मोदिनी दीपिनी षोडशी वशंकरी रंजनी और प्रियदर्शना को सोलह स्वरों से युक्त करके इन कामकलाओं की पूजा करे। तब शिव के शिर से पैरों तक चन्द्रकला की पूजा करे। पूषा रमा सुभगा रति प्रीति धृति शुद्धि सौम्या मरीचि शैलजा अंशुमालिनी अंगिरा वशिनी छायासम्पूर्णमण्डला तुष्टि अमृता—ये सोलह चन्द्रकला हैं। इस प्रकार स्वरादि के पूजन के बाद उसके भग में पूजा करे—ऐं चान्द्र्यै नमः। ऐं सौर्यै नमः। ऐं आग्नेय्यै नमः। इन तीनों से नाड़ी के पूजा के बाद इस भगमालिनी मन्त्र से पूजा करे—ऐं ह्लीं श्रीं ऐं जूं ब्लूं क्लिन्ने सर्वाणि भगानि वशमानय मे स्त्रीं ह्रीं क्लीं ब्लूं भगमालिन्यै नमः ऐं ह्रीं श्रीं।

तन्त्रान्तर में कहा गया है कि यहाँ आवाहन और जीवन्यास नहीं किया जाता है। इस विधान से इष्ट देवी की पूजा षोडशोपचार से करके साधक सभी सिद्धियों का स्वामी होता है। इसके बाद गन्ध-पुष्पादि से अपने लिङ्ग की पूजा करे। यह मूलमन्त्र ॐ नमः शिवाय के बाद तत्पुरुष अघोर सद्योजात वामदेव नाम से करे।

उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि अवधूतेश्वरी, कुब्जा, कामाख्या समया, वज्रेश्वरी कालिका, दिक्चरवासिनी, महाचण्डेश्वरी एवं तारा का पूजन यहाँ करे। तदनन्तर उससे आज्ञा लेकर उसे ताम्बूल प्रदान करे। तब गजतुण्ड मुद्रा से लिङ्ग को उसमें प्रविष्ट करे। उस समय यह मन्त्र पढ़े—

धर्माधर्महविर्दीप्त आत्माग्नौ मनसा स्रुचा। सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम् स्वाहा।।

स्त्री में जाते हुये क्षुब्ध होते समय भुवनेश्वरी विद्या का जप एक हजार आठ या एक सौ आठ बार करे। वीर्यत्याग के समय निम्न मन्त्र का जप करे—

प्रकाशाकाशहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनीस्रुचम्। धर्माधर्मकलास्नेहपूर्णामग्नौ जुहोम्यहम् स्वाहा।।

यामलतन्त्र में कहा गया है कि संयोग से परमानन्द लक्षण का सुख प्राप्त होता है। दुर्लभ कुलामृत को यत्नपूर्वक मनुष्य को ग्रहण करना चाहिये। उस दिव्य अमृत से सभी तुष्ट होते हैं। साधक जो भी कार्य करता है, वे तत्क्षण सिद्ध होते हैं। कुल द्रय को शोधित करके शिवशक्तिमय बीजामृत परं ब्रह्म का जप करके अर्घ्य पात्र के अमृत में डालकर निर्विकल्प कर्तव्य होता है, जिसमें अपने वाम भाग में श्रीविद्याक्रम से अर्चन करके परब्रह्ममय हो जाता है। कुलामृत शोधन का मन्त्र है—ॐ अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि देवि शुक्रशापं प्रमोचय प्रमोचय अमृतं स्रावय स्रावय अमृतं कुरु कुरु स्वाहा। इसका जप सात बार करे। इस प्रकार का कुलयाग यायी स्थायी के लिये होता है। शुद्ध स्थायी के लिये तो पहला कुलयाग ही कर्तव्य होता है, जिसमें अपने वाम भाग में शक्ति को स्थापित करके प्राणायामादि करना चाहिये। जैसा कि कुमारीकल्प में कहा भी है—तब साधक सोलह वर्ष की नारी ले आये। वह नारी युवती या मदोन्मत्ता, सुवेषा, चारुहासिनी, सदा सम्भोगेच्छुक हो, उसके ललाट में सिन्दूर लगा हो। साधक अपने कल्याण के लिये उस तन्वी को अपने बाँयें भाग में बैठाकर उसमें भूतशुद्धि करे, तब मातृका न्यास करे। तब स्वयं प्राणायाम करे और उससे भी कराये। यहाँ कुलयाग के बाद अन्तर्यजन करना चाहिये।

अन्तर्यजनम्

तदुक्तं तन्त्रान्तरे—

कुलयागं ततः कृत्वा ह्यन्तर्यजनमाचरेत्। अथान्तर्यजनं वक्ष्ये दृष्टादृष्टफलप्रदम्।।१।।
गुरोर्ध्यानं प्रकुर्वीत यथापूर्वं विशालधीः। स्नायाच्च विमले तीर्थे पुष्करे हृदयाश्रिते।।२।।
बिन्दुतीर्थेऽथवा स्नायात् पुनर्जन्म न विद्यते इति।

तन्त्रान्तर में कहा गया है कि कुलयाग करने के बाद अन्तर्यजन करना चाहिये। यह दृष्ट-अदृष्ट फलप्रद होता है। बुद्धिमान साधक यथापूर्व गुरुध्यान करे। हृदय में स्थित विमल तीर्थ या सरोवर में स्नान करे अथवा बिन्दु तीर्थ में स्नान करने से पुनर्जन्म नहीं होता।

स्नानलक्षणम्

अथवा—

इडा सुषुम्ना शिवतीर्थकेऽस्मिन् ज्ञानाम्बुपूर्णे वहतः शरीरे ॥३॥
ब्रह्माम्बुभिः स्नाति तयोः सदा यः किं तस्य गाङ्गैरपि पुष्करैर्वा ॥४॥

इति स्नानम्।

अथवा ज्ञान जल से पूर्ण नदियाँ शरीर में प्रवहमान हैं। जो इस ब्रह्मजल से सदा स्नान करता है उसके लिये गंगा या पुष्कर का क्या महत्त्व है।

सन्ध्यालक्षणम्

शिवशक्त्योः समावेशो यस्मिन् काले प्रजायते। सा सन्ध्या कुलनिष्ठानां समाधिस्थैः प्रतीयते ॥५॥
इति सन्ध्या।

सन्ध्या—जिस समय शिव-शक्ति का समावेश होता है, वही समाधि में स्थित कुलनिष्ठों की सन्ध्या कही गई है।

तर्पणलक्षणम्

चन्द्रार्कानलसंबन्धाद्गलितं यत् परामृतम्। तेनामृतेन दिव्येन तर्पयेत् परदेवताम् ॥६॥
इति तर्पणम्।

तर्पण—चन्द्र-सूर्य-अग्नि के संयोग से जो परामृत निकलता है, उस दिव्य अमृत से परदेवता का तर्पण करना चाहिये।

अर्घ्यदानलक्षणम्

ब्रह्मरन्ध्रादधोभागे यच्चान्द्रं पात्रमुत्तमम्। कलासारेण संपूर्य तर्पयेत्तेन खेचरीम् ॥७॥
इत्यर्घ्यदानम्।

अर्घ्य—ब्रह्मरन्ध्र के अधोभाग में जो उत्तम चान्द्र पात्र है, उसे कलासार से पूर्ण करके खेचरी का तर्पण करना चाहिये।

न्यासध्यानानि

आधारे लिङ्गनाभावित्याद्यन्तर्मातृकान्यासः।

ईड्यमानहृदयोऽयं हृदये स्याच्चिदात्मकः। क्रियते तत्परत्वेन हृन्मन्त्रेण ततः परम् ॥८॥
सर्वाङ्गादिगुणोत्सङ्गे संविद्रूपे परात्मनि। क्रियते तत्परत्वेन शिरोमन्त्रेण देशिकैः ॥९॥
हृच्छिरोन्ते च चिद्धाम मनसा भावना दृढा। क्रियते निजदेहस्य शिखामन्त्रेण देशिकैः ॥१०॥
मन्त्रात्मकस्य देहस्य मन्त्रेणानेन तेजसा। सर्वतो वर्ममन्त्रेण क्रियते देहसंवृतिः ॥११॥
वौषडिति मनुं जप्त्वा क्रियते देहनेत्रकम्। ततोऽस्त्रेण च मन्त्रज्ञः करोत्यस्त्रं चतुर्दिशः ॥१२॥
इति षडङ्गं विधाय ध्यानं कुर्यात्।

यद् ददाति परं ज्ञानं संविद्रूपे परात्मनि। हृदयादिमयं तेजः स्यादेतन्मन्त्रसंज्ञितम् ॥१३॥
आध्यात्मिकादिरूपं सत्साधकस्य विनाशयेत्। अविद्यायाः स्वतन्त्रं यत्परं धाम समीरितम् ॥१४॥
इति वा षडङ्गं विधाय ध्यानं कुर्यात्।

शक्तिद्वयपुटान्तःस्थं कमलद्वयशोभितम्। ज्योतिस्तत्त्वमयं ध्यायेत् कुलाकुलनियोजनात् ॥१५॥

आधार लिङ्ग नाभि आदि में मातृका न्यास—हृदय में ईड्यमान यह हृदय चिदात्मक है। उसके द्वारा हन्मन्त्र से हृदय में न्यास करे। सर्वाङ्गादि गुणोत्सङ्ग से संवित् रूप परमात्मा में शिरोमन्त्र से शिर के अन्त में चित्त धाम में मानसिक

भावना को शिखामन्त्र से दृढ़ करे। मन्त्रात्मक देह के इस मन्त्र तेज के साथ वर्म मन्त्र से चारो ओर से अपने देह को आच्छादित करे। वौषट् मन्त्र का जप करके देह को नेत्र से युक्त करे। तब अस्त्रमन्त्र से चारो ओर रक्षा करे।

षडङ्ग न्यास के बाद ध्यान करे—संवित् रूप परमात्मा जो ज्ञान देता है, उस हृदयादिमय तेज को मन्त्र कहते हैं। आध्यात्मिक रूप होकर वही साधक के अविद्या का विनाश करता है, उस अविद्या का जो स्वतन्त्र रूप है, उसे परम धाम कहते हैं। षडङ्ग न्यास के बाद ध्यान करे। कुल-अकुल के योग से दोनों शक्ति के मध्य में स्थित दो कमलों से शोभायमान तत्त्वमय ज्योति का ध्यान करना चाहिये।

ध्यानलक्षणम्

अथवा—

शृङ्गाटद्वयमध्यस्थं शक्तिद्वयपुटीकृतम्। सदा समरसं ध्येयं ध्यानं तत्कुलयोगिनाम् ॥१६॥

इति ध्यानम्।

ध्यान—शृंगाटद्वय के मध्य में स्थित दोनों शक्तियों को पुटित करके सदा समरस ध्येय का ध्यान कुलयोगी करता है।

पूजनम्

अर्चयन् विषयैः पुष्पैस्तत्क्षणात्तन्मयो भवेत्। न्यासस्तन्मयताबुद्धिः सोऽहंभावेन चिन्तयेत् ॥१७॥
अमायमनहङ्कारमरागममदं तथा। अमोहकमकर्मत्वमद्वेषाक्षोभकौ ततः ॥१८॥
अमात्सर्यमलोभं च दशपुष्पं विदुर्बुधाः। अहिंसा परमं पुष्पं पुष्पमिन्द्रियनिग्रहः ॥१९॥
दयापुष्पं ज्ञानपुष्पं क्षमापुष्पं च पञ्चमम्। इत्यष्टसप्तभिः पुष्पैः पूजयेत्परदेवताम् ॥२०॥

इति पूजनम्।

पूजन—परदेवता का अर्चन विषयपुष्पों से करके साधक उसी क्षण से उसी के समान हो जाता है। तन्मय भावना से न्यास करे। मैं भी वही हूँ—इस भाव से चिन्तन करे। मायारहित, अहंकार, राग, मद, मोह, कर्मत्व, द्वेष-क्षोभ, ईर्ष्या-लोभरहित स्थिति को दश पुष्प जाने। अहिंसा परम पुष्प, इन्द्रियनिग्रह पुष्प, दया पुष्प, ज्ञान पुष्प, क्षमापुष्प—ये पाँच पुष्प और होते हैं। इन दश और पाँच फूलों से परदेवता का पूजन करे।

जपलक्षणम्

माला पञ्चाशिका प्रोक्ता सूत्रं शक्तिशिवात्मकम्। ग्रथिता कुण्डलीशक्तिः कलान्ते मेरुसंस्थितिः ॥२१॥
जप्त्वा जपं परं धाम्नि तेजोरूपे निवेदयेत्।

इति जपः।

जप—शिव-शक्तिरूपा पचास मातृकाओं को कुण्डलिनी शक्ति के धागे से ग्रथित करके अन्त में कला को मेरु बनाये। इससे कृत जप को परम धाम के तेजरूप को समर्पित करे।

हवनम्

अमूलमपरिच्छिन्नं विभाव्यात्मान्तरात्मकम्। परमात्मस्वरूपं च तथा ज्ञानात्मरूपकम् ॥२३॥
चतुरस्त्रं च चित्कुण्डमानन्दमेखलायुतम्। नाभौ विभाव्य तन्मध्ये जुहुयात्साधकोत्तमः ॥२४॥
मूलाग्नौ नाभिचैतन्यहविषा मनसा स्रुचा। ज्ञानप्रदीपिते नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहं स्वाहा ॥२५॥

इति प्रथमाहुतिः। ततो मूलान्ते—

धर्माधर्महविर्दीप्त आत्माग्नौ मनसा स्रुचा। सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहं स्वाहा ॥२६॥

इति द्वितीयाहुतिः। मूलान्ते—

प्रकाशाकाशहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनीस्रुचम् । धर्माधर्मकलास्नेहपूर्णामग्नौ जुहोम्यहं स्वाहा ॥२७॥

इति तृतीयाहुतिः। ततो मूलान्ते—

अन्तर्निरन्तरनिरिन्धनमेधमाने मोहान्धकारपरिपन्थिनि संविदग्नौ ।
कस्मिंश्चिदद्भुतमरीचिविकासभूमौ विश्वं जुहोमि वसुधादिशिवावसानम् ॥२८॥

इति चतुर्थ्याहुतिः।

इत्यन्तर्यजनं कृत्वा साक्षाद्ब्रह्ममयो भवेत् । न तस्य पुण्यपापानि जीवन्मुक्तो भवेद् ध्रुवम् ॥२९॥

इत्यन्तर्यागः।

पररूप को अमूल अपरिच्छिन्न अन्तरात्मक मानकर परमात्मस्वरूप, ज्ञानात्मरूप चतुरस्र चित्तकुण्ड के आनन्द मेखलायुक्त होने की भावना नाभि में करके साधकोत्तम उसमें हवन करे। प्रथम आहुति प्रदान करने का मन्त्र है—

मूलाग्नौ नाभिचैतन्यहविषा मनसा स्रुचा । ज्ञानप्रदीपिते नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहं स्वाहा।।

मूल के बाद निम्न मन्त्र पढ़कर द्वितीय आहुति प्रदान करे—

धर्माधर्महविर्दीप्त आत्माग्नौ मनसा स्रुचा । सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहं स्वाहा।।

मूल के बाद निम्न मन्त्र पढ़कर तृतीय आहुति प्रदान करे—

प्रकाशाकाशहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनीस्रुचम् । धर्माधर्मकलास्नेहपूर्णामग्नौ जुहोम्यहं स्वाहा।।

मूल के अन्त में निम्न मन्त्र पढ़कर चतुर्थ आहुति प्रदान करे—

अन्तर्निरन्तरनिरिन्धनमेधमाने मोहान्धकारपरिपन्थिनि संविदग्नौ।
कस्मिंश्चिदद्भुतमरीचिविकासभूमौ विश्वं जुहोमि वसुधादिशिवावसानम्।।

इस अन्तर्यजन को करने से साधक साक्षात् ब्रह्ममय हो जाता है। उसके लिये पुण्य-पाप कुछ नहीं होता। निश्चित रूप से वह जीवन्मुक्त हो जाता है।

मधुपर्काङ्गच्छागादिपशुबलिविधानम्

अथ मधुपर्काङ्गच्छागादिपशुबलिविधानम्—पशुं स्नपयित्वा 'ॐ पशवे पाद्यं नमः' एवमर्घ्याचमनगन्धान् दत्त्वा शृङ्गयोर्मध्ये सिन्दूरादिना तिलकं दापयित्वा, पशुशिरसि पुष्पाणि दत्त्वा 'एतदधिपतयेऽग्नये नमः' इति पशुपृष्ठे पुष्पं दत्त्वा 'मूलं० एतत्संप्रदानरूपायै साङ्गोपाङ्गायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः' इति देव्यै पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा, वामहस्तेन पशुस्कन्धं धृत्वा पाशुपतास्त्रेण त्रिधा संप्रोक्ष्य, वाङ्मनःश्रोत्रत्वक्चक्षुरसनाघ्राणप्राणहस्तपादपायुमेढ्रमांस-रुधिरमेदोस्थिमज्जाशुक्रनाडीचक्ररोमपुच्छसर्वशृङ्गाणि ते आप्यायन्ताम्। एवं सर्वाङ्गानि ते शुन्धामि। अग्निः पशुरासीत्तेनायजन्त स एतल्लोकमजयद्यस्मिन्नग्निः स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबैता आपः। एवं ॐ वायुः पशुरासीत्०। ॐ सूर्यः पशुरासीत्०। ॐ विष्णुः पशुरासीत्०। ॐ रुद्रः पशुरासीत्०। ॐ हंसः शुचिषत्०। ॐ आपो हि ष्ठा मयोभुवः ०। वरुणस्योत्तम्भनमसि०। पञ्चब्रह्ममन्त्रैर्गायत्र्या मूलमन्त्रेण च पशुं प्रोक्षयेत् । ततो गन्धाक्षतकुसुमैः श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वा-घ्राणवाग्घस्तपादपायूपस्थशिरः। स्कन्धपृष्ठपुच्छमुखकण्ठहृदयोदरवृषणरोमरुधिरमांसवप्राणास्थि-नाडीचक्रस-र्वाङ्गेषु दिग्वातसूर्यप्रचेतोऽश्विवह्नीन्द्रोपेन्द्रमित्रप्रजापतिचामुण्डाभद्रकालीगन्धर्ववीरभद्रसरस्वतीमहालक्ष्मीभै-रवीसमुद्रवाराहीओषधिवनस्पतिब्रह्मविष्णुरुद्रपरमात्मसदाशिवगङ्गायमुनाजीवात्ममरुद्गणेभ्यो नमः, इति पूजयेदिति पशुपूजा। ततः पशुकर्णे, पशुपाशाय विद्महे पशुरूपाय धीमहि तन्नः पशुः प्रचोदयात्। ओं हिलिहिलि किलिकिलि पशुरूपधरायै ह्रीं दुर्गायै वौषट्, मूलविद्यां च जपेत्। ततः—

यज्ञार्थं पशवः सृष्टा यज्ञार्थं पशुघातनम्। अतस्त्वां घातयिष्यामि तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः ॥१॥
शिवाद्भूतमिदं पिण्डमतस्त्वं शिवतां गतः । आबुध्यस्व पशो त्वं हि नाशिवस्त्वं शिवोऽसि हि ॥२॥
पशो त्वं बलिरूपेण मम भाग्यादुपस्थितः । चण्डिकाप्रीतिदानेन दातुरापद्विनाशय ॥३॥
पशुरूपं परित्यज्य त्वं गन्धर्वस्वरूपधृक् । गौरीरूपं समासाद्य मम कल्याणदो भव ॥४॥
पशुपाशविमोक्षाय हेतुकूटस्थिताय च । पशवे च नमस्तुभ्यं नमस्ते बलिरूपिणे ॥५॥
छेद्योऽसि बलिरूपस्त्वमाज्ञया परया गुरोः । छेदभेदोद्भवं दुःखं क्षमस्व पशुरूपधृत् ॥६॥

इति संप्रार्थ्य सङ्कल्पं कुर्यात् । ॐ अद्यामुके मासि अमुकपक्षेऽमुकतिथौ अमुकगोत्रोऽमुकदेवशर्मा दशवर्षदेवीप्रीतिकामो मधुपर्काङ्गत्वेनेमं छागं वह्निदैवत्यं दक्षयज्ञविनाशिन्यै महाघोरायै योगिनीकोटिपरिवृतायै ह्रींदुर्गायै भद्रकाल्यै श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीदेव्यै साङ्गायै सायुधायै सवाहनायै सपरिवारायै साङ्गोपाङ्गायै सशक्तिकायै तुभ्यमहं घातयिष्ये, इति पशुशिरसि अक्षतयुक्तं जलं दद्यात्।

अथ खड्गपूजा—खड्गमानीय पुरतः स्थापयित्वा, पाशुपतास्त्रेण प्रोक्ष्य, चक्रमुद्रया संरक्ष्य, धेनुयोनिमुद्रे दर्शयित्वा, सिन्दूरेणास्त्रमन्त्रं खड्गे विलिख्य, मूलेनास्त्रेण वाभिमन्त्र्य प्रार्थयेत्। 'ॐअष्टबाहुर्महातेजाः श्याम आरक्तलोचनः। भीमदंष्ट्रः करालास्यो लोलजिह्वो भयानकः' इति ध्यात्वा, बाह्यप्राणप्रतिष्ठां कृत्वा, पाद्यादिभिः संपूज्य 'ॐ खड्ग तीक्ष्ण च्छिन्धि ३ कट्ठ २' इति त्रिर्जपित्वा 'ॐ असिविशसनः खड्ग तीक्ष्णधारो दुरासदः। श्रीगर्भो विजयश्चैव धर्मपाल नमोऽस्तु ते । करवाल कृपाण त्वं चण्डिकायाः करे स्थितः। पशुरक्तप्रदानेन चामुण्डाप्रीतिमावह' इति संप्रार्थ्य, 'ॐ कालिकालि करालि कालिके कालरात्रिके च्छिन्धि २ फट् २ हुंफट् रुधिरं पिब २ मासं भक्षय २ अस्थीनि चर्वय २ स्वाहा' इति पशुस्कन्धे खड्गं स्पर्शयेत्। ततश्छेदयित्वा किञ्चिद्रक्तमाममांसखण्डं देव्या दक्षभागे स्थापयित्वा 'ॐ रक्तदन्तिकायै स्वाहा' इति समर्प्य, तेन रुधिरेण देवीं त्रिस्तर्पयेत्। ततः सदीपं शिरो देव्या वामतस्त्रिकोणमण्डले स्थापयित्वा जलं गृहीत्वा 'ॐ महिषघ्नि महामाये चामुण्डे मुण्डमालिनि। आयुरारोग्यमैश्वर्यं देहि देवि नमोऽस्तु ते। ॐ चामुण्डायै स्वाहा' इति समर्पयेत्। इति पशुबलिविधिः।

मधुपर्कांग छागादि पशु-बलिविधान—पशु को स्नान कराकर 'ॐ पशवे पाद्यं नमः' से अर्घ्य आचमन गन्ध देकर शृङ्गों के मध्य में सिन्दूरादि से टीका लगाये। पशु के शिर पर फूल चढ़ाये। 'एतदधिपतये अग्नये नमः' से पशु के पीठ पर फूल चढ़ाये। 'मूलं एतत्सम्प्रदानरूपायै साङ्गोपाङ्गायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः' से देवी को पुष्पाञ्जलि प्रदान करे। पशु के कन्धे पर बाँयाँ हाथ रखकर पाशुपतास्त्र से तीन बार प्रोक्षण करे। तब यह कहे—

वाङ्मनःश्रोत्रत्वक्चक्षुसनाघ्राणप्राणहस्तपादपायुमेढ्रमांसरुधिरमेदोस्थिमज्जाशुक्रनाडीचक्ररोमपुच्छसर्वशृङ्गाणि ते आप्यायन्ताम्। एवं सर्वाङ्गानि ते शुन्धामि । अग्निः पशुरासीत्तेनायजन्त स एतल्लोकमजयद्यस्मिन्नग्निः स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबैता आपः। एवं ॐ वायुः पशुरासीत्०। ॐ सूर्यः पशुरासीत्०। ॐ विष्णुः पशुरासीत्०। ॐ रुद्रः पशुरासीत् ०। ॐ हंसः शुचिषत् ०। ॐ आपो हिष्ठा मयोभुवः०। वरुणस्योत्तम्भनमसि०। पञ्च ब्रह्ममन्त्र से, गायत्री से एवं मूल मन्त्र से पशु का प्रोक्षण करे। तब गन्ध अक्षत पुष्पों से श्रोत्र त्वक् चक्षु जिह्वा घ्राण वाग् हस्त पाद पायु उपस्थ शिर स्कन्ध पृष्ठ पुच्छ मुख कण्ठ हृदय उदर वृषण रोम रुधिर मांस वसा प्राण अस्थि नाड़ीचक्र आदि सभी अङ्गों में दिग् वात सूर्य प्रचेत अश्वि वह्नि इन्द्र उपेन्द्र मित्र प्रजापति चामुण्डा भद्रकाली गन्धर्व वीरभद्र सरस्वती महालक्ष्मी भैरवी समुद्र वाराही औषधि वनस्पति ब्रह्मा विष्णु रुद्र परमात्मा सदाशिव गंगा यमुना जीव आत्म मरुद्गण की पूजा करे। तब पशु के कान में—पशुपाशाय विद्महे पशुरूपाय धीमहि तन्नः पशुः प्रचोदयात्। ॐ हिलिहिलि किलि किलि पशुरूपधारायै ह्रीं दुर्गायै वौषट्—इस गायत्री को कहकर मूल विद्या का जप करे। तदनन्तर इस प्रकार प्रार्थना करे—

यज्ञार्थं पशवः सृष्टा यज्ञार्थं पशुघातनम्। अतस्त्वां घातयिष्यामि तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः॥
शिवाद्भूतमिदं पिण्डमतस्त्वं शिवतां गतः। आबुध्यस्व पशो त्वं हि नाशिवस्त्वं शिवोऽसि हि॥

पशो त्वं बलिरूपेण मम भाग्यादुपस्थितः। चण्डिकाप्रीतिदानेन दातुरापद्विनाशय।।
पशुरूपं परित्यज्य त्वं गन्धर्वस्वरूपधृक्। गौरीरूपं समासाद्य मम कल्याणदो भव।।
पशुपाशविमोक्षाय हेतुकूटस्थिताय च। पशवे च नमस्तुभ्यं नमस्ते बलिरूपिणे।।
छेद्योऽसि बलिरूपस्त्वमाज्ञया परया गुरोः। छेदभेदोद्भवं दुःखं क्षमस्व पशुरूपधृत्।।

इस प्रकार प्रार्थना के बाद सङ्कल्प करके पशु के शिर पर अक्षतयुक्त जल डाले।

खड्ग-पूजा—तलवार लाकर अपने आगे स्थापित करे। पाशुपतास्त्र से उसका प्रोक्षण करे। चक्रमुद्रा से उसका रक्षण करे। धेनु एवं योनिमुद्रा दिखाये। तलवार पर सिन्दूर से अस्त्रमन्त्र लिखे। मूल मन्त्र से अथवा अस्त्रमन्त्र से उसे अभिमन्त्रित करके प्रार्थना करे—

ॐ अष्टबाहुर्महातेजाः श्याम आरक्तलोचनः। भीमदंष्ट्रः करालास्यो लोलजिह्वो भयानकः।।

इसके बाद प्राणप्रतिष्ठा करके पाद्यादि से पूजा करे। 'ॐ खड्ग तीक्ष्ण छिन्दि छिन्दि कट्ठ-कट्ठ' का तीन बार जप करे।

ॐ असि विशसनः खड्ग तीक्ष्णधारो दुरासदः। श्रीगर्भो विजयश्चैव धर्मपाल नमोस्तु ते।।
करवाल कृपाण त्वं चण्डिकायाः करे स्थितः। पशुरक्तप्रदानेन चामुण्डाप्रीतिमा वह।।

तदनन्तर 'ॐ कालि कालि करालि कालिके कालरात्रिके छिन्धि छिन्धि फट् फट् हुं फट् रुधिरं पिबपिब मांस भक्षय भक्षय अस्थीनि चर्वय चर्वय स्वाहा' कहकर पशु के कन्धे का खड्ग से स्पर्श करे। तब उसकी गर्दन काट दे। थोड़ा रक्त और मांसखण्ड देवी के दक्ष भाग में रखकर 'ॐ रक्तदन्तिके स्वाहा' से समर्पित करके उस रुधिर से देवी को तीन बार तर्पण प्रदान करे। तब शिर पर दीपक रखकर देवी के त्रिकोण मण्डल में बाँयें से जल लेकर—ॐ महिषघ्नि महामाये चामुण्डे मुण्डमालिनि। आयुरारोग्यमैश्वर्यं देहि देवि नमोस्तु ते। ॐ चामुण्डायै स्वाहा—कहकर समर्पित करे।

कुमारीयजनविधिः

अथ कुमारीयजनविधिः। तत्र ज्ञानार्णवे—

होमादिकं तु सकलं कुमारीपूजनं विना। परिपूर्णफलं नैव सफलं पूजनाद्भवेत् ॥१॥
पुष्पं कुमार्यै यद्दत्तं तन्मेरुसदृशं भवेत्। कुमारी भोजिता येन त्रैलोक्यं तेन भोजितम् ॥२॥
कुमार्यै यज्जलं दत्तं तज्जलं सागरोपमम्। अन्नं तु मीननयने कुलाचलसमं भवेत् ॥३॥
एकाब्दात्षोडशाब्दान्ताः कुमार्यः पूजने शुभाः। विवाहरहिताः स्युश्चेदुत्तरोत्तरसिद्धिदाः ॥४॥
विवाहितास्तु देवेशि बाला एव कुमारिकाः। सुवासिन्यो महाप्रौढाः संशयं त्यज सुव्रते ॥५॥
कुमारीपूजनं देवि कुमारीमनुना भवेत्। इति।

त्रैलोक्यडामरतन्त्रे—

सर्वयज्ञोत्तमं भूप कुमारीपूजनं शृणु। कृते यस्मिन् महालक्ष्मीरचिरेण प्रसीदति ॥१॥
आमन्त्रयेद् दिने पूर्वे कुमारीमन्त्रपूर्वकम्। पूजादिने समाहूय कुमारीमाद्यदेवताम् ॥२॥
मण्डले चरणौ तस्याः क्षालयेदुष्णवारिणा। अर्चयेद् हेमपात्रेण वारिपुष्पाक्षतैः समम् ॥३॥
सुविताने शुभे स्थाने पङ्कजोपरि पीठके। उपवेश्य कुमारीं तां स्वाङ्गे न्यासं समाचरेत् ॥४॥

तत्तन्मन्त्रोक्तऋष्यादिन्यासम्।

आत्मानं विधिवत्पूज्य क्रोधदर्पविवर्जितः। अथ ध्यायेत्कुमारीं तां महालक्ष्मीस्वरूपिणीम् ॥५॥
नवाक्षरेण मन्त्रेण सुसिद्धेन समाचरेत्।

महालक्ष्मीस्वरूपिणीमिति नवाक्षरेणेति च तत्प्रकरणात्, तेन स्वेष्टदेवतास्वरूपिणीं स्वेष्टमन्त्रेण यजेदित्यर्थः।

दद्यादाचमनं तस्यै दद्याद्वस्त्रं सकौतुकम्। सकङ्कणाङ्गुलीयानि कर्णालङ्करणे शुभे ॥७॥
ग्रैवेयकं प्रदायाथ चन्दनेन विलेपयेत्। पूजयेत् पुष्पमालाभिर्दिव्यैर्धूपैः सुधूपयेत् ॥८॥
कुर्यादारात्रिकं राजंस्तथोपचार्य तां मुहुः। भोजयेद्भक्तिभावेन पायसं शर्कराघृतम् ॥९॥
सुपक्वान्नानि चान्नानि सर्वक्षोभविवर्जितः। फलेक्षु स्वादु चान्यच्च दद्यात्तस्यै पुनः पुनः ॥१०॥
यावत्सा भोजनं कुर्यात्तावन्मौनी जपेत्सुधीः। दद्यादाचमनं तस्यै ताम्बूलं च समर्पयेत् ॥११॥
अनर्घ्येण च दानेन कुमारीं प्रणतोऽसकृत्। प्रदक्षिणनमस्कारान् कृत्वा मूर्ध्नि कृताञ्जलिः ॥१२॥
विसर्जयेत् कुमारीं तां स्वगृहं हर्षनिर्भरः। अनेन विधिना भक्त्या कुमारीपूजयाप्नुयात् ॥१३॥
यं यं प्रार्थयते कामं देवानामपि दुर्लभम्। कुमारीपूजनं कृत्वा तं तं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥१४॥
ब्रह्मविष्णुमहेशानां कुमारी परमा कला। तत्पूजनेन राजेन्द्र त्रैलोक्यं स्यात्सुपूजितम् ॥१५॥
सम्यक्क्रतुफलं तस्य यः कुमारीः प्रपूजयेत्। तस्मात्पूजय भूपाल कुमारीर्यतमानसः ॥१६॥
स्वराज्यं प्राप्स्यसे विश्वं मा ते भूदत्र संशयः। इति।

कुमारी-पूजन विधि—ज्ञानार्णव में कहा गया है कि कुमारी-पूजन के बिना सभी होमादि कार्य फल प्रदान करने वाले नहीं होते; कुमारी-पूजन से ही वे सफल होते हैं। कुमारी पर जो फूल चढ़ाये जाते हैं, वे मेरू के समान हो जाते हैं। कुमारी को भोजन कराने से तीनों लोकों को भोजन मिल जाता है। कुमारी को जो जल दिया जाता है वह सागर के समान हो जाता है। उस मृगनयनी को जो अन्न दिया जाता है, वह कुलाचल के बराबर हो जाता है। एक वर्ष से प्रारम्भ कर सोलह वर्ष तक की कुमारी का पूजन में प्रयोग होता है। विवाहरहित कुमारियाँ उत्तरोत्तर सिद्धिदायिनी होती हैं। विवाहिता भी बाला के समान कुमारी होती है। सुवासिनी महाप्रौढ़ा होती है। कुमारी का पूजन कुमारीमन्त्र से किया जाता है।

त्रैलोक्यडामरतन्त्र में कहा गया है कि राजन: सभी यज्ञों में उत्तम कुमारी-पूजन को करने से महालक्ष्मी थोड़े ही दिनों में प्रसन्न होती है। कुमारी-पूजन दिन के एक दिन पहले कुमारी को मन्त्रपूर्वक निमन्त्रित करे। पूजा के दिन आद्य देवता स्वरूपा कुमारी को लाकर मण्डल में बैठाकर गरम जल से उसके पैरों को धोये। सोने पात्र में सम भाग में जल फूल अक्षत लेकर उसका अर्चन करे। चन्दोवा लगे शुभ स्थान में कमल अङ्कित पीठ पर उसे बैठाये। तब अपने अङ्ग में तत्तत् मन्त्रों से ऋष्यादि न्यास करे। क्रोध-घमण्ड से रहित होकर अपनी विधिवत् पूजा करके कुमारी का ध्यान महालक्ष्मी के रूप में करे। सुसिद्ध नवाक्षर मन्त्र से सभी पूजन कर्म करे। उसे आचमन एवं वस्त्र प्रदान करे। कङ्गन, अंगूठी, कर्णभूषण और ग्रैवेयक अर्थात् हार से उसे अलंकृत करे। चन्दन का लेप लगाये। पुष्प माला पहनाये। दिव्य धूप से धूपित करे। आरती करे, राजोपचार प्रदान करे। पायस, शक्कर, घी में सुपक्व अन्न एवं अन्य अन्न का भोजन भक्तिभाव से कराये। समस्त क्षोभ से रहित होकर फल ईख और अन्य स्वादिष्ट पदार्थ उसे बार-बार देवे। जब तक वह भोजन करे तब तक मौन होकर जप करे। तदनन्तर उसे आचमन कराकर ताम्बूल प्रदान करे। अनर्घ्य दान से कुमारी को सन्तुष्ट करे। प्रदक्षिण नमस्कार करके शिर पर हाथ जोड़कर कुमारी को घर जाने के लिये विसर्जित करे। इस प्रकार भक्ति से कुमारी-पूजन करने से साधक जो-जो इच्छा करता है, वे देवताओं को दुर्लभ होने पर भी उसे मिलते हैं, इसमें संशय नहीं है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश की परमा कला कुमारी है। उसके पूजन से तीनों लोक पूजित होते हैं। कुमारी-पूजन से सम्यक् यज्ञो के फल प्राप्त होते हैं। इसलिये कुमारी-पूजन यतमानस होकर करना चाहिये, इससे अपने राज्य की प्राप्ति होती है। इसमें कोई संशय नहीं है।

कुमारीपूजनप्रयोगः

अथ प्रयोगः—तत्र साधकः कृतनित्यक्रियः पूजादिनात् पूर्वदिने कुमार्या गृहं गत्वा मूलविद्यां स्मरन् कुमारिके भगवति पूजार्थं मया निमन्त्रितासि मां कृतार्थं कुरु, इति नारिकेलपूगीफलादिना निमन्त्र्य, पूजादिने नित्य-पूजानन्तरं कुमारीं सुगन्धतैलादिना सुस्नातामलंकृतामाहूय, पूजागृहाद्बहिः क्वचिन्मण्डले तस्याश्चरणावुष्णजलेन स्वयं सम्यक्प्रक्षाल्य सूक्ष्मवस्त्रेण प्रोञ्छ्य पूजास्थानं नीत्वा, अष्टदले सिन्दूरादिरचिते शुभे पीठे शुभास्तरणे पश्चिमाभिमुखीं समुपवेश्य, स्वयं तत्संमुखः स्वासने समुपविश्य अद्येत्यादि० अमुककामः कुमारीपूजनं करिष्ये, इति संकल्प्य

गुर्वादिवन्दनपूर्वकं मूलविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, ऋष्यादिसमस्तन्यासजातं कृत्वात्मपूजां विधाय, पीठपूजापूर्वकं तस्यां देवीमावाह्य ध्यात्वा, मूलविद्ययाचमनं दत्त्वा वस्त्रालङ्कारगन्धपुष्पधूपदीपान्तानुपचारान् समर्प्य पायसादिनानाविधान्न-पानैर्भोजयन् यावत्सा भोजनं करोति तावत्कालं मौनी मूलविद्यां जपेत्। ततो भुक्तवत्यास्तस्याः करक्षालनगण्डूषाचमनानि दत्त्वा सकर्पूरं ताम्बूलं समर्प्यारात्रिकं कृत्वा छत्रचामरादिराजोपचारैराराध्य यथाशक्ति दक्षिणां दत्त्वा प्रणम्य विसृजेदिति।

कुमारी पूजन प्रयोग—साधक नित्य कृत्य करके पूजादिन से एक दिन पहले कुमारी के घर जाकर मूल विद्या का स्मरण करके कहे—कुमारिके भगवति पूजार्थं मया निमन्त्रितासि मां कृतार्थं कुरु। तदनन्तर नारियल-पूगीफल प्रदान कर उस निमन्त्रित करे। पूजा के दिन नित्य पूजा के बाद सुगन्धित तेल लगाकर विधिवत् स्नान की हुई कुमारी को अलंकृत करके पूजागृह के बाहर लाकर किसी मण्डल में उसके पैरों को गरम जल से धोकर स्वच्छ वस्त्र से पोंछकर उसे पूजास्थान में ले आये। सिन्दूर आदि से रचित अष्टदल के शुभ पीठ पर शुभ आसन पर उसे पश्चिमाभिमुख बैठाये। स्वयं उसके आगे अपने आसन पर बैठकर कुमारीपूजन का सङ्कल्प करके गुरु आदि की वन्दना करके मूल विद्या से तीन प्राणायाम करे। ऋष्यादि सभी न्यासों को करके आत्मपूजा करे। पीठपूजा करके उस पर देवी का आवाहन करे। ध्यान करके मूल विद्या से आचमन प्रदान कर वस्त्र, अलङ्कार, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदि उपचार समर्पित कर पायसादि नाना प्रकार के अन्नपान से भोजन कराये। जब तक कुमारी भोजन करे तब तक मौन रहकर मूल विद्या का जप करे। भोजन करने के बाद हाथ धुलाकर आचमन कराये। कपूरसहित ताम्बूल देकर आरती करे। छत्र-चामरादि राजोपचार से उसका आराधन करके यथाशक्ति दक्षिणा देकर प्रणाम करके उसका विसर्जन करे।

पूज्यकुमारीलक्षणानि

अथात्र पूज्यापूज्यकुमारीलक्षणानि। तत्रादौ पूज्यकुमारीलक्षणानि स्कान्दे—

अरोगिणीं सुपुष्टाङ्गीं सुरूपां व्रणवर्जिताम्। एकवंशसमुद्भूतां कन्यां सम्यक् प्रपूजयेत्॥१॥ इति।

पूज्य कुमारी के लक्षण—स्कन्दपुराण में कहा गया है कि रोगरहित, पुष्ट अंगों वाली, सुन्दर रूप वाली, व्रणरहित एवं एक कुल में उत्पन्न कन्या की सम्यक् रूप से पूजा करनी चाहिये।

अपूज्यकुमारीलक्षणानि

अथापूज्यलक्षणानि तत्रैव—

हीनाधिकाङ्गीं कुष्ठाङ्गीं विशीलकुलसंभवाम्। ग्रन्थिस्पुटितशीर्णाङ्गीं रक्तपूयव्रणाङ्किताम्॥२॥
जात्यन्धां केकरां काणीं कुरूपां तनुलोमशाम्। संत्यजेद्रोगिणीं कन्यां दासीगर्भसमुद्भवाम्॥३॥

अपूज्य कुमारी के लक्षण—कम या अधिक अंगों वाली, कुष्ठ रोग से दूषित अंगों वाली, आचारहीन कुल में उत्पन्न, गिल्टीयुक्त दुर्बल शरीर वाली, रक्त-पूय व्रणों के चिह्न वाली, जन्मान्ध, केकरी (ऐंची), कानी, कुरूपा, पूरे शरीर में रोम वाली, रोगिणी एवं दासी के गर्भ से उत्पन्न कन्या अपूज्य होती है। इनका कुमारी-पूजन में त्याग कर देना चाहिये।

फलविशेषे पूज्यविशेषः

अथ फलविशेषे पूज्यविशेषश्च तत्रैव—

ब्राह्मणीं सर्वकार्येषु जयार्थे नृपवंशजाम्। लाभार्थे वैश्यसंभूतां सुतार्थे शूद्रवंशजाम्॥४॥
दारुणे चान्त्यजातीनां पूजयेद्विधिना नरः।

इति कुमारीपूजनम्।

फलविशेष में पूज्य विशेष—सभी कार्यों में ब्राह्मणी कुमारी, विजय के लिये क्षत्रिय कुमारी, लाभ के लिये वैश्यकन्या, पुत्र के लिये शूद्रकन्या एवं दुःख में अन्त्यजातीया कुमारी का पूजन विधिपूर्वक करना चाहिये।

वटुकादिबलिपञ्चकप्रयोगः

अथ वटुकादिबलिपञ्चकप्रयोगः—तत्र पूजाचक्रस्येशानादिकोणचतुष्टये त्रिकोणवृत्तचतुरस्रात्मकानि

बलिमण्डलानि विरच्य तेष्वीशानमण्डले 'वां वटुकभैरवाय नमः' इति वटुकं गन्धादिभिः संपूज्य तत्रान्नव्यञ्जन-तोयपुष्पादिभरितं साधारं ताम्रादिपात्रं संस्थाप्य वटुकबलिद्रव्याय नमः, इति वटुकबलिद्रव्यं संपूज्य ' ४ एह्येहि देवीपुत्र वटुकनाथ कपिलजटाभारभास्वर त्रिनेत्र ज्वालामुख सर्वविघ्नान्नाशय २ सर्वोपचारसहितं बलिं गृह्ण २ स्वाहा' इति पूर्वस्थापितार्घ्यपात्रात् पात्रान्तरेणोद्धृतजलेन वामाङ्गुष्ठानामिकाभ्यां बलिमुत्सृजेत् ।

एवमाग्नेयमण्डले 'यां योगिनीभ्यो नमः' इति योगिनीः संपूज्य,

ऊर्ध्वं ब्रह्माण्डतो वा दिवि गगनतले भूतले निस्तले वा
पाताले वाऽनले वा पवनसलिलयोर्यत्र कुत्र स्थिता वा ।
क्षेत्रे पीठोपपीठादिषु च कृतपदा धूपदीपादिकेन
प्रीता देव्यः सदा नः शुभबलिविधिना पान्तु वीरेन्द्रवन्द्याः ॥१॥

यां योगिनीभ्यः स्वाहा सर्वयोगिनीभ्यो हुंफट्स्वाहेति वामाङ्गुष्ठानामामध्याभिरर्घ्यजलधारया बलिमुत्सृजेत्।

ततो निर्ऋतिकोणगतमण्डले 'क्षां क्षेत्रपालाय नमः' इति क्षेत्रपालं संपूज्य प्राग्वद् बलिपात्रं निधाय 'क्षांक्षींक्षूंक्षैंक्षौंक्षः स्थानक्षेत्रपालधूपदीपादिसहितं बलिं गृह्ण २ स्वाहा' इति वामाङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां तर्जन्यैकया वा प्राग्वद्बलिपात्रेऽर्घ्यजलधारां दद्यात् ।

ततो वायव्यमण्डले 'गां गणपतये नमः' इति गणपतिं संपूज्य प्राग्वद् बलिपात्रं विधायाभ्यर्च्य 'गांगींगूंगणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय बलिं गृह्ण २ स्वाहेति वामाङ्गुष्ठमध्यमाभ्यां प्रग्वद्बलिमुत्सृजेत्' इति वटुकादिबलि-चतुष्टयविधिः।

वटुकादि बलि पञ्चक प्रयोग—पूजा चक्र के ईशानादि चारो कोनों में त्रिकोण वृत्त चतुरस्र से बलिमण्डल बनाये। उसके ईशान कोन में 'वां वटुकभैरवाय नमः' कहकर गन्धादि से वटुक को पूजकर वहाँ अन्न व्यञ्जन-जल-पुष्पादि से भरे ताम्र पात्र को आधार पर रखे। वटुक बलि द्रव्य का पूजन 'वटुकबलिद्रव्याय नमः' से करे। 'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं एह्येहि देवीपुत्र वटुकाय कपिलजटाभारभास्वर त्रिनेत्र ज्वालामुख सर्वविघ्नान् नाशय नाशय सर्वोपचारसहितं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा' कहकर पूर्व स्थापित अर्घ्य पात्र से दूसरे पात्र में जल लेकर अँगूठा-अनामिका से बलि उत्सर्जित करे।

इसी प्रकार आग्नेय मण्डल में 'यां योगिनीभ्यो नमः' से योगिनियों की पूजा करके—

ऊर्ध्वं ब्रह्माण्डतो वा दिवि गगनतले भूतले निस्तले वा पाताले वाऽनले वा पवनसलिलयोर्यत्र कुत्र स्थिता वा।
क्षेत्रे पीठोपपीठादिषु च कृतपदा धूपदीपादिकेन प्रीता देव्यः सदा नः शुभबलिविधिना पान्तु वीरेन्द्रवन्द्याः।।

यां योगिनीभ्यः स्वाहा सर्वयोगिनीभ्यो हुंफट् स्वाहा कहकर वामांगुष्ठ-अनामा-मध्यमा से जलधार गिराकर बलि उत्सर्जन करे। तदनन्तर नैर्ऋत्य मण्डल में क्षां क्षेत्रपालाय नमः से क्षेत्रपाल की पूजा करके पूर्ववत् बलि पात्र रखकर 'क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः स्थानक्षेत्रपालधूपदीपादिसहितं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा' कहकर वामांगुष्ठ एवं तर्जनी से या अकेले तर्जनी से पूर्ववत् बलि पात्र में जलधार गिराये। तदनन्तर वायव्य मण्डल में 'गां गणपतये नमः' से गणपति की पूजा करके पूर्ववत् बलिपात्र रखकर अर्चन करके 'गां गीं गूं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा' कहकर वामांगुष्ठ मध्यमा से पूर्ववत् बलि उत्सर्जित करे।

कुल्लिकादिलक्षणम्

अथ कुल्लिकादिलक्षणम्। तत्र श्रीरुद्रयामले—

ईश्वर उवाच

कुल्लुकां मूर्ध्नि सञ्जप्य हृदि सेतुं विचिन्तयेत् । महासेतुं विशुद्धे तु सहस्रारे तु चोद्धरेत् ॥१॥
मणिपूरे तु निर्वाणं महाकुण्डलिनीमधः। स्वाधिष्ठाने कामराजं राकिणीं मूर्ध्नि संस्थिताम् ॥२॥
विचिन्त्य विधिवद् देवि मूलाधारात्त्रिकं शिवे । विशुद्धान्तं स्मरेद् देवि बिसतन्तुतनीयसीम् ॥३॥

वेदिस्थानं हि जिह्वान्तं मूलमन्त्रावृतं मुहुः। इच्छाक्रियास्वमनिशं स्वेष्टदेवीस्वरूपिणी ॥४॥
ज्ञातव्या परमेशानि जपेन्मन्त्रमनुत्तमम्।

श्रीदेव्युवाच

कुल्लिका कीदृशी नाथ सेतुर्वा देव कीदृशः। कीदृशो वा महासेतुर्निर्वाणं नाथ कीदृशम् ॥५॥
अन्यद्वा कथितं यन्मे कीदृशं तद्वद प्रभो।

ईश्वर उवाच

गुह्याद् गुह्यतमं देवि तव स्नेहेन कथ्यते। विना येन महेशानि निष्फलं परमेश्वरि ॥६॥
तारायाः कुल्लिका देवि महानीलसरस्वती। पञ्चाक्षरी कालिकायाः कुल्लिका परिकथ्यते ॥७॥
काली कूर्चं वधूर्माया फडर्णा परमेश्वरी। छिन्नायास्तु महेशानि कुल्लिकाष्टाक्षरी भवेत् ॥८॥
वज्रवैरोचन्यै च अन्ते हुंफट् प्रकीर्तितम्। संपत्प्रदायाः प्रथमं भैरव्याः कुल्लिका मता ॥९॥
श्रीमत्त्रिपुरसुन्दर्याः कुल्लिका द्वादशाक्षरी। वाग्भवं प्रथमं बीजं कामराजं ततः परम् ॥१०॥
लज्जाबीजं ततः पश्चात्त्रिपुरेशी ततः परम्। भगवतीपदं दद्यादन्ते ठद्वयमुद्धरेत् ॥११॥
कालिकायाः स्वबीजं तु कूर्चं वधूं नियोजयेत्। लज्जास्त्रमन्तके दद्यात्तारा नीलसरस्वती ॥१२॥
अन्येषां तु महेशानि त्र्यक्षरी कुल्लिका भवेत्। तारं कूर्चं समुद्धृत्य पश्चादङ्कुशमुद्धरेत् ॥१३॥
इति ते कथिता देवि संक्षेपात्कुल्लिका मया। अज्ञात्वा कुल्लिकामेनां जपते योऽधमः प्रिये ॥१४॥
पञ्चत्वमाशु लभते सिद्धिहानिस्तु जायते। वृथा च तज्जपं सर्वं निष्फलं नात्र संशयः ॥१५॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूजयेन्मूर्ध्नि कुल्लिकाम्। अथातः संप्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व प्रियंवदे ॥१६॥
यस्याज्ञानेन विफलं जपहोमादिकं भवेत्। विप्राणां प्रणवः सेतुः क्षत्रियाणां तथैव च ॥१७॥
वैश्यजातेः फडन्तश्च माया शूद्रस्य कथ्यते। जप्त्वा त्विदं तु देवेशि सुन्दर्या भुवनेश्वरी ॥१८॥
कालिकायाः स्वबीजं तु ताराया: कूर्चबीजकम्। अन्येषां तु वधूबीजं महासेतुर्वरानने ॥१९॥
आदौ जप्त्वा महासेतुं जपेन्मन्त्रमनन्यधीः। धने धनेशतुल्योऽसौ वाचि वागीश्वरोपमः ॥२०॥
युद्धे कृतान्तसदृशो नारीणां मदनोपमः। जयकारं भवेत्तस्य सर्वकाले न संशयः ॥२१॥
अथ वक्ष्यामि निर्वाणं शृणु देवि वरानने। प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य मातृकाद्यं समुच्चरेत् ॥२२॥
एवं पुटितमूलं तु प्रजपेन्मणिपूरके। एवं निर्वाणमीशानि यो न जानाति पामरः ॥२३॥
वर्षकोटिशतेनापि सिद्धिस्तस्य कदापि न। तस्मात् सर्वप्रयत्नेन यद्यदुक्तं महेश्वरि ॥२४॥
तत्तदाचर्य विधिवत् प्रजपेन्मन्त्रमुत्तमम्। ऋषिश्छन्दो देवता च तद्बीजं शक्तिकीलके ॥२५॥
भावयेद्यत्नतो देवि ततः सेत्वादिकं जपेत्। एवं यदि जपेन्मन्त्री मन्त्रराजमनुत्तमम् ॥२६॥
षण्मासात्सिद्धिमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा। साक्षात्स एव जगतामधीशो नात्र संशयः ॥२७॥
स शरण्यं स वै ज्ञानी स एव मन्त्रतत्त्ववित्। स एव नृत्यते भूमौ विचरेच्च यथासुखम् ॥२८॥
तस्य दर्शनमात्रेण पलायन्ते च वैरिणः।

एवं कृत्वा सकलपुटितं यो जपेन्मन्त्रराजं तन्निर्वाणं भवनरुधितं कुल्लिकान्तानि जप्त्वा।
तेषां तद्वन्निखिलभुवने सिद्धयोऽष्टौ च हस्ते तेषां तत्त्वं वचसि वचनं पद्मपद्मान्तरे च ॥२९॥ इति।

अत्र तु ह्रींस्त्रींहूं इति ताराया: सभेदायाः कुल्लिका भवति। क्रींह्रींस्त्रींह्रींफट् इति पञ्चाक्षरी दक्षिणकालिकायाः सभेदाया कुल्लिका भवति। वज्रवैरोचन्यै हुंफट् इति छिन्नायाः सभेदायाः कुल्लिका भवति। ऐंक्लींह्रींऐंक्लींसौः भगवति स्वाहा इति द्वादशाक्षरी श्रीमत् त्रिपुरसुन्दर्याः सभेदायाः सम्पत्प्रदायाः भैरव्याः सभेदायाश्च कुल्लिका

भवति। ॐह्लूंकों इति त्र्यक्षरी अन्येषां मन्त्राणां विद्यानां च सर्वत्र कुल्लिका भवतीत्यर्थः। ब्राह्मणानां च प्रणवः सेतुर्भवति। क्षत्रियाणामपि स एव। वैश्यानां फडिति सेतुर्भवति। शूद्राणां तु मायाबीजं सेतुर्भवति। क्रीमिति कालिकाभेदानां महासेतुर्भवति। हूमिति ताराया महासेतुर्भवति। अन्येषां तु स्त्रीमिति महासेतुर्भवति। ॐ अं मूलं० ऐंअंओं, ॐआं मूलं० ऐंआंओं, ॐइं मूलं० ऐंइंॐ इत्यादि प्रत्यक्षरसम्पुटितमूलं निर्वाणमित्युच्यते। केचित्तु—ॐअं मूलं० ऐंअं समस्तमातृका, अन्ते ओमिति मणिपूरके सप्तवारं जपेदिति वदन्ति। अत्र यथागुरूपदेशं कार्यमिति।

कुल्लिकादि के लक्षण—श्री रुद्रयामल में ईश्वर ने कहा है कि मूर्धा में कुल्लुका का जप करके हृदय में सेतु का चिन्तन करे। विशुद्ध में महासेतु का चिन्तन करे एवं सहस्रार में उद्धार करे। मणिपूर में निर्वाण का, नीचे महाकुण्डलिनी का, स्वाधिष्ठान में कामराज का और मूर्धा में राकिणी का चिन्तन करे। मूलाधार से स्वाधिष्ठान-मणिपूर-अनाहत-विशुद्धि तक बिसतन्तुतनीयसी का स्मरण करे। जिह्वा के अग्रभाग को मूल मन्त्र से बार-बार आवृत्त वेदिस्थान जानना चाहिये। वही इच्छा-क्रियारूपा अपनी इष्टदेवी होती है। इस प्रकार जानकर उत्तम मन्त्र का जप करना चाहिये।

श्री देवी ने कहा—कुल्लिका किस प्रकार की होती है? सेतु किस प्रकार का होता है? निर्वाण कैसा है एवं महासेतु कैसा होता है? अन्य जो भी आपने कहा वे किस प्रकार के हैं, इसे कहिये।

ईश्वर बोले—हे देवि! तुम्हारे स्नेहवश गुह्य से गुह्यतम इस विषय को कहता हूँ। हे परमेश्वरि! इसके बिना किसी कर्म का कोई फल नहीं होता। तारा की कुल्लिका ह्रीं स्त्रीं हूं है। भेदसहिता दक्षिण कालिका की कुल्लिका पञ्चाक्षरी क्रीं ह्रीं स्त्रीं ह्रीं फट् है। छिन्नमस्ता की कुल्लिका अष्टाक्षरी—वज्रवैरोचन्यै हुं फट् है। प्रथम भैरवी की कुल्लिका ह्स्रैं हस्क्लीं ह्स्रौं हैं। श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरी की कुल्लिका द्वादशाक्षरी—ऐं क्लीं ह्रीं ऐं क्लीं सौः भगवति स्वाहा है। नील सरस्वती की कुल्लिका—क्रीं हूं स्त्रीं ह्रीं फट् है। दूसरों की कुल्लिका तीन अक्षरों की ॐ हूं क्रों है।

हे देवि! इस प्रकार संक्षेप में मैंने कुल्लिका के बारे में कहा। कुल्लिका को जाने बिना जो अधम जप करते हैं, उनकी शीघ्र ही मृत्यु होती है और वे सिद्धि को नहीं प्राप्त करते। उसका समस्त जप व्यर्थ और निष्फल होता है। इसलिये सभी यत्नों से मूर्धा में कुल्लिका की पूजा करनी चाहिये।

सेतु—हे प्रियंवदे! अब सेतु के बारे में सुनो। सेतु के बिना जप-होमादि विफल होते हैं। विप्रों और क्षत्रियों का सेतु प्रणव है। वैश्यों के लिये फडन्त है और शूद्रों का सेतु माया है। त्रिपुरसुन्दरी और भुवनेश्वरी का ह्रीं सेतु है। कालिका का क्रीं और तारा का हूँ है। दूसरों का महासेतु स्त्रीं है। साधक पहले सेतु का जप करे, तब मन्त्र का जप करे। इससे साधक धन में कुबेर के समान और वाणी में वागीश्वर के समान होता है। युद्ध में यमराज के समान और नारियों के लिये कामदेव के समान होता है। सभी समय में उसका जयकार होता है।

निर्वाण—हे देवि वरानने! अब निर्वाण का वर्णन सुनो। प्रणव के साथ मातृका का उच्चारण करके मन्त्र का उच्चारण करे। इस प्रकार के पुटित मन्त्र का जप मणिपूर में करे। इस प्रकार के निर्वाण को जो पामर नहीं जानता, उसे सौ करोड़ वर्षों में भी सिद्धि नहीं मिलती। इसलिये सभी प्रयत्नों से जो-जो कहा गया है, उसका विधिवत् आचरण करके मन्त्र जप करे। यत्नपूर्वक ऋषि छन्द देवता बीज कीलक की भावना करके सेतु आदि का जप करे। इस प्रकार यदि साधक मन्त्रराज का जप करता है तब उसे छः महीने में सिद्धि मिल जाती है। वह साक्षात् जगन्नाथ हो जाता है। वही शरण्य, वही ज्ञानी और वही मन्त्रतत्त्ववित् होता है। वही पृथ्वी पर नृत्य करता है और यथासुख भूमि पर विचरता है। उसे देखते ही वैरी भाग जाते हैं। इस प्रकार सबसे पुटित मन्त्रराज का निर्वाण-सेतु-कुल्लिका के साथ जो जप करता है, उसे संसार में आठों सिद्धियाँ उसके हाथ में होती हैं, उसकी वाणी में तत्त्व और पद्म-पद्मान्तर में वचन होता है।

भेदसहित तारा की कुल्लिका ह्रीं स्त्रीं हूं है। भेदसहित दक्षिण कालिका की कुल्लिका क्रीं ह्रीं स्त्रीं ह्रीं फट् है। भेद-सहित छिन्नमस्ता की कुल्लिका वज्रवैरोचन्यै हुं फट् है। त्रिपुरसुन्दरी, भेदसहित सम्पत्प्रदा और भेदसहित भैरवी की कुल्लिका

ऐं क्लीं ह्रीं ऐं क्लीं सौः भगवति स्वाहा है। अन्य मन्त्रों और विद्याओं की कुल्लिका ॐ हूं क्रों है। ब्राह्मणो का सेतु प्रणव है। क्षत्रियों का सेतु भी प्रणव ही है। वैश्यों का सेतु फट् है। शूद्रों का सेतु ह्रीं हैं। सभेद कालिका का महासेतु क्रीं है। तारा का महासेतु हूं है। दूसरों के लिये स्त्रीं महासेतु से है। ॐ ऊं मूल ऐं अं ओं, ॐ आं मूल ऐं आं औं, ॐ इं मूल, ऐं इं ॐ इत्यादि प्रति अक्षर से सम्पुटित मूल को निर्वाण कहते हैं। कुछ के अनुसार ओं अं मूल ऐं अं समस्त मातृका तब ॐ लगाकर मणिपूर में सात जप को निर्वाण कहते हैं। यहाँ गुरु के उपदेशानुसार निर्वाण का निश्चय करना चाहिये।

कुल्लिकाप्रयोगः

अथैतस्य प्रयोगः—मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा अस्याः श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीविद्यायाः, शिरसि अमुकाय ऋषये नमः। मुखे अमुकच्छन्दसे नमः। हृदये श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै देवतायै नमः। गुह्ये अमुकबीजाय नमः। पादयोः अमुकशक्तये नमः। नाभौ अमुककीलकाय नमः। इति विन्यस्य 'ऐंक्लींह्रींऐंक्लींसौः भगवति स्वाहा' इति कुल्लिकां मूर्ध्नि सप्तधा त्रिधा वा जपेत्। ॐ इति सेतुं हृदि तथैव स्मृत्वा; ह्रीमिति महासेतुं सहस्रारे तथैव स्मृत्वा, ॐअं मूलं० ॐऐंअं ५१ ॐ इति निर्वाणं मणिपूरके तथैव स्मरेत्। लिङ्गे क्लीमिति तथैव स्मरेत्। जिह्वायां मूलविद्यां तथैव स्मरेत्। मूर्ध्नि सहस्रारे 'ॐऐंह्रींश्रींरांरींरूंरैंरौंरः रमलवरयूं राकिणि मां रक्ष २ सर्वसत्त्ववशङ्करि देव्यागच्छ २ इमां पूजां गृह्ण २ ऐं घोरे देवि ह्रींसः परमघोरे हूं घोररूपे एह्येहि नमश्चामुण्डे डलरकसहैं श्रीमहात्रिपुरसुन्दरि देवि वरदे विच्चे' इति राकिणीं मूर्ध्नि स्मरेदिति। इति कुल्लुकादिविधिः।

कुल्लिका-प्रयोग—मूल मन्त्र से तीन प्राणायाम करके इस श्रीमहात्रिपुर सुन्दरी विद्या न्यास करने के बाद 'ऐं क्लीं ह्रीं ऐं क्लीं सौः भगवति स्वाहा' इस कुल्लिका का जप शिर पर सात बार या तीन बार करे। ॐ सेतु का स्मरण हृदय में करे। ह्रीं महासेतु का स्मरण वैसे ही सहस्रार में करे। ॐ अं मूल ॐ ऐं अं ५१ ॐ इस निर्वाण का स्मरण मणिपूर में करे। क्लीं का स्मरण लिङ्ग में करे। जिह्वा में मूल विद्या का स्मरण करे। मूर्धा-स्थित सहस्रार में ॐ ऐं ह्रीं श्रीं रां रीं रूं रैं रौं रः रमलवरयूं राकिणि मां रक्ष रक्ष सर्वसत्त्ववशंकरि देव्यागच्छ आगच्छ इमां पूजां गृह्ण गृह्ण ऐं घोरे देवि ह्रीं सः परमघोरे हूं घोररूपे एह्येहि नमश्चामुण्डे डलरकसहैं श्रीमहात्रिपुरसुन्दरि देवि वरदे विच्चे—इस राकिणी का स्मरण मूर्धा में करे।

प्राणप्रतिष्ठाविधानम्

अथ प्राणप्रतिष्ठाविधानम्। कुलार्णवे—

तारं नारायणं सेन्दुं मायामङ्कुशमुद्धरेत्। याद्यान् सबिन्दून् सप्तार्णानुद्धृत्य वियदोयुतम्॥१॥
बिन्दुयुक्तं चाजपाख्यं परमात्ममनुं वदेत्। अमुष्य शब्दमुद्धृत्य प्राणा इह इतीरयेत्॥२॥
प्राणाः पाशादिकान् वर्णांस्तिथिसंख्यान् पुनर्वदेत्। अमुष्य जीव इह च स्थित इत्युद्धरेत्ततः॥३॥
पुनः पञ्चदशार्णान्ते अमुष्येति पदं वदेत्। सर्वेन्द्रियाणि च ततः पुनः पञ्चदशार्णकान्॥४॥
अमुष्य वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रघ्राणपदादथ। प्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु च द्विठः॥५॥
इत्थं प्राणप्रतिष्ठाख्यमनुः प्रोक्तो मनीषिभिः। चतुर्दशोत्तरैर्वर्णैर्मन्त्रः सर्वार्थसिद्धिदः॥६॥ इति।

तारः प्रणवः, नारायण आकारः, सेन्दुः सानुस्वारः, माया भुवनेश्वरीबीजं, अङ्कुशः क्रोंबीजं, वियत् हकारः, ओं स्वरूपं, बिन्दुरनुस्वारः, तेन हों इति। अजपा हंस इति, परमात्ममनुः सोऽहमिति, द्विठः स्वाहाकारः, अमुष्यपदस्थाने साध्यपदं षष्ठ्यन्तं योज्यम्। स्वयं साध्यश्चेन्ममेति योज्यम्। अत्र केचित् पाशबीजादिपञ्चदश-वर्णानामादावेवोच्चारणं न स्थानान्तरेषु, काम्यप्रयोगकाले तेषां स्थानान्तरेषूच्चारो जपपूजादिषु नास्तीत्याहुः। 'प्रत्यमुष्यपदं पूर्वं पाशाद्यानि प्रयोजये'दिति शारदातिलकवचनात्। तत्र स्वगुरुमतं प्रमाणम्। तथा—

ऋषयो ब्रह्मविष्णवीशा मन्त्रस्यास्य समीरिताः। छन्दांसि ऋग्यजुःसामान्याहुरागमपारगाः॥७॥
प्राणशक्तिर्देवता स्यात्सर्वप्राणिहृदि स्थिता। पाशो बीजं शक्तिरेव शक्तिः कीलकमङ्कुशम्॥८॥

विनियोगस्तु विज्ञेयः प्राणस्थापनकर्मणि। श्रीकण्ठं बिन्दुसंयुक्तं कवर्गं बिन्दुसंयुतम् ॥९॥
आकाशवाय्वग्निजलपृथिव्यात्म च ने वदेत्। सबिन्द्वनन्तो हृन्मन्त्रः सूक्ष्मं बिन्दुयुतं वदेत् ॥१०॥
बिन्दुयुक्तचवर्गान्ते शब्दस्पर्श च रूप च। रसगन्धात्मने त्वन्ते त्रिमूर्तीशं सबिन्दुकम् ॥११॥
वदेदयं शिरोमन्त्रस्त्वमरेशं सबिन्दुकम्। टवर्गं च तथोद्धृत्य श्रोत्रत्वक्चक्षुरित्यथ ॥१२॥
जिह्वाघ्राणात्मनेऽर्घीशो बिन्दुयुक्तः शिखामनुः। झिण्टीशं बिन्दुसंयुक्तं तवर्गं तादृशं वदेत् ॥१३॥
वाक्पाणिपादपायूपस्थात्मने बिन्दुभौतिके। वर्माणुर्बिन्दुयुक्सद्यः पवर्गो बिन्दुसंयुतः ॥१४॥
वचनादानविसर्गगमनानन्द चात्मने। अनुग्रहो बिन्दुयुक्तो नेत्रमन्त्र उदाहृतः ॥१५॥
तिथिस्वरान्ते याद्यर्णान् दश बिन्दुविभूषितान्। उक्त्वा मनोबुद्ध्यहङ्कारान्तचित्तात्मने पदम् ॥१६॥
विसर्ग एष संप्रोक्तो मनुरस्त्राभिधानकः। एवं षडङ्गमनवस्तारबीजत्रयादिकाः ॥१७॥
न्यस्तव्या जातियुक्ताश्च मन्त्रिभिः स्वकराङ्गयोः। नाभितः पादयुग्मान्तं कण्ठादानाभिमस्तकात् ॥१८॥
कण्ठान्तमिति बीजानि पाशादीनि प्रविन्यसेत्। ततो हृत्पद्ममध्ये तु ध्यात्वा वसुदलाम्बुजम् ॥१९॥
तस्य वाय्वग्निपूर्वेषु पश्चिमेशानयोरपि। नैर्ऋत्योत्तरयाम्येषु कर्णिकायां दलेषु च ॥२०॥
यादिक्षान्तान्यक्षराणि बिन्दुयुक्तानि विन्यसेत्। एकैकशो लवर्ज्यानि ततो देवीं हृदि स्मरेत् ॥२१॥ इति।

प्राणप्रतिष्ठा-विधि—कुलार्णव के अनुसार 'ॐ आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं हंसः सोहं प्राणा इह प्राणाः। ॐ आं ह्रीं कौं यं रं लं वं शं षं हंसः जीव इह स्थितः। ॐ आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं हं सः सर्वेन्द्रियाणि वाक् मनः त्वक् चक्षु श्रोत्र जिह्वा घ्राण वाक् पाणि पाद पायु उपस्थ इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा'—यह मनीषियों के द्वारा कथित प्रतिष्ठामन्त्र है। यह मन्त्र सर्वार्थ-सिद्धिदायक है। इसका विनियोग इस प्रकार किया जाता है—

ॐ अस्य श्रीप्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्य ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र ऋषयः ऋग्यजुःसामानि छन्दांसि क्रियामयवपुःप्राणशक्तिः देवता, आं बीजम्, ह्रीं शक्तिः, क्रौं कीलकम्, प्राणप्रतिष्ठापने विनियोगः।

षडङ्ग न्यास—ॐ अं कं खं गं घं ङं आंः पृथ्वीजलतेजवायु-आकाशात्मने हृदयाय नमः। ॐ इं चं छं जं झं ञं ईं शब्दस्पर्शरूपरसगन्धात्मने शिरसे स्वाहा। ॐ उं टं ठं डं ढं णं ऊं त्वक् चक्षु श्रोत्र जिह्वा घ्राणात्मने शिखायै वषट्। ॐ एं तं थं दं धं नं ऐं वाक् पाणि पाद पायूपस्थात्मने कवचाय हुम्। ॐ ओं पं फं बं भं मं औं वचनादानगमनविसर्ग आनन्दात्मने नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ अं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं अः मन बुद्धि अहंकार चित्त विज्ञान आत्मने अस्त्राय फट् कहकर दाहिने हाथ को शिर के चारो ओर दक्षिणावर्त क्रम से घुमाकर दाँयें हाथ की तर्जनी एवं मध्यमा से बाँयीं हथेली पर मारकर ताली बजाये। ॐ आं बोलकर नाभि में आरम्भ करके पैरों के अन्त तक स्पर्श करे। ॐ ह्रीं कहकर हृदय से नाभि तक का स्पर्श करे। ॐ क्रौं कहकर मस्तक से हृदय तक का स्पर्श करे। हृदय कमल से अष्टदल कमल में वायु अग्नि पूर्व पश्चिम ईशान में नैर्ऋत्य उत्तर-दक्षिण दलों में य से क्ष अक्षरों का सानुस्वार न्यास करे।

अस्य प्रयोगस्तु—अस्य प्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्य शिरसि ब्रह्मविष्णुशिवेभ्यः ऋषिभ्यो नमः। मुखे ऋग्यजुः-सामभ्यश्छन्देभ्यो नमः। हृदये पराप्राणशक्त्यै देवतायै नमः। गुह्ये आंबीजाय नमः। पादयोः ह्रींशक्तये नमः। नाभौ क्रोंकीलकाय नमः। इति विन्यस्यामुष्य प्राणप्रतिष्ठार्थे विनियोगः इति कृताञ्जलिर्वदेत्। ततः ॐआंह्रींक्रोंअंकं ५ आंआकाशवाय्वग्निसलिलपृथिव्यात्मने आंहृदयाय नमः। ॐआंह्रींक्रोंइंचं ५ ईंशब्दस्पर्शरूपरसगन्धात्मने ईंशिरसे स्वाहा। ॐआंह्रींक्रोंउंटं ५ ऊंश्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणात्मने ऊंशिखायै वषट्। ॐआंह्रींक्रोंएंतं ५ ऐंवाक्पाणिपादपायूपस्थात्मने ऐंकवचाय हुं। ॐआंह्रींक्रोंओंपं ५ औंवचनादानविसर्गगमनानन्दात्मने औंनेत्रत्रयाय वौषट्। ॐआंह्रींक्रोंअंयं १० अःमनोबुद्ध्यहङ्कारचित्तात्मने अःअस्त्राय फट्। इति षडङ्गमन्त्रानङ्गुष्ठादिकरतलान्तं करयोर्विन्यस्य हृदयादिषडङ्गेष्वपि न्यसेत्। ततो नाभ्यादिपादद्वयाग्रान्तं आं नमः। कण्ठादिनाभ्यन्तं ह्रीं नमः। मूर्धादिकण्ठान्तं क्रों नमः। ततो हृदयकमले

वायव्यदले यं नमः। आग्नेये रं नमः। पूर्वे लं नमः। पश्चिमे वं नमः। ईशाने शं नमः। नैर्ऋत्ये षं नमः। उत्तरे सं नमः। दक्षिणे हं नमः। कर्णिकायां क्षं नमः। इति विन्यस्य ॐआंह्रींक्रोंयंरंलंवंशंषंसंहोंहंसः सोहं अमुष्य प्राणा इह प्राणाः १५ अमुष्य जीव इह स्थितः १५ अमुष्य सर्वेन्द्रियाणि १५ अमुष्य वाङ्मनस्त्वक्चक्षुःश्रोत्रजिह्वाघ्राणप्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा ॐ, इति मन्त्रेण सर्वाङ्गे व्यापकं त्रिधा विन्यस्य ध्यायेत्।

रक्ताब्धिपोतारुणपद्मसंस्थां पाशाङ्कुशाविक्षुशरासबाणान्।
शूलं कपालं दधतीं कराग्रै रक्तां त्रिनेत्रां प्रणमामि देवीम् ॥२२॥

एवं ध्यात्वा जगद्धात्रीं लक्षमेकं जपन्मनुम्। जुहुयाद् तद्दशांशं च चरुभिर्घृतसंयुतैः ॥२३॥
षट्कोणाढ्ये शक्तिपीठे विधिनानेन पूजयेत्। अर्चयेत् षट्सु कोणेषु ब्रह्माणं विष्णुमीश्वरम् ॥२४॥
वाणीं लक्ष्मीं रमां पश्चात्षडङ्गानि प्रपूजयेत्। दलेषु मातरः पूज्यास्तद्बाह्ये लोकनायकाः ॥२५॥
एवं संपूजयेद् देवीं सुगन्धिकुसुमादिभिः। इति संसाधितो मन्त्रः षट्कर्मफलदो भवेत् ॥१६॥
स्थापयेन्मनुनानेन प्राणान् सर्वत्र देशिकः। इति।

प्रयोग—इसका विनियोग इस प्रकार किया जाता है—अस्य प्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्य शिरसि ब्रह्मविष्णुशिवेभ्यः ऋषिभ्यो नमः। मुखे ऋग्यजुःसामभ्यश्छन्देभ्यो नमः। हृदये पराप्राणशक्त्यै देवतायै नमः । गुह्ये आंबीजाय नमः। पादयोः ह्रींशक्तये नमः। नाभौ क्रोंकीलकाय नमः। इस प्रकार न्यास करके हाथ जोड़कर कहे—अमुष्य प्राणप्रतिष्ठार्थे विनियोगः। तदनन्तर ॐआंह्रींक्रोंअंकं ५ आंआकाशवाय्वग्निसलिलपृथिव्यात्मने आंहृदयाय नमः, ॐआंह्रींक्रोंइंचं ५ ईंशब्दस्पर्शरूपरसगन्धात्मने ईंशिरसे स्वाहा, ॐआंह्रींक्रोंउंटं ५ ऊंश्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणात्मने ऊंशिखायै वषट्, ॐआंह्रींक्रोंएंतं ५ ऐंवाक्पाणिपादपायूपस्थात्मने ऐंकवचाय हुं। ॐआंह्रींक्रोंओंपं ५ औंवचनादानविसर्गगमनानन्दात्मने औंनेत्रत्रयाय वौषट्, ॐआंह्रींक्रोंअंयं १० अःमनोबुद्ध्यहङ्कारचित्तात्मने अःअस्त्राय फट्—इस प्रकार षडङ्ग मन्त्रों से अंगुष्ठ से करतल तक हाथ में न्यास करके हृदयादि षडङ्ग न्यास करे। तदनन्तर नाभि से दोनों पैरों के अग्र भाग तक आं नमः, कण्ठ से नाभि तक ह्रीं नमः, मुर्धा से कण्ठ तक क्रों नमः, तदनन्तर हृदयकमल के वायव्य कोण में यं नमः, आग्नेय में रं नमः, पूर्व में लं नमः, पश्चिम में वं नमः, ईशान में शं नमः, नैर्ऋत्य में षं नमः, उत्तर में सं नमः, दक्षिण में हं नमः, कर्णिका में क्षं नमः—इस प्रकार न्यास करके 'ॐआंह्रींक्रोंयंरंलंवंशंषंसंहोंहंसः सोहं अमुष्य प्राणा इह प्राणाः १५ अमुष्य जीव इह स्थितः १५ अमुष्य सर्वेन्द्रियाणि १५ अमुष्य वाङ्मनस्त्वक्चक्षुःश्रोत्रजिह्वाघ्राणप्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा ॐ' इस मन्त्र से सम्पर्ण अंगों में तीन बार व्यापक न्यास करके निम्नवत् ध्यान करे—

रक्ताब्धिपोतारुणपद्मसंस्थां पाशाङ्कुशाविक्षुशरासबाणान्।
शूलं कपालं दधतीं कराग्रै रक्तां त्रिनेत्रां प्रणमामि देवीम्।।

इस प्रकार जगद्धात्री का ध्यान करके एक लाख मन्त्र जप करे। उसका दशांश चरु घी से हवन करे। षट्कोण पीठ में विधिवत् पूजा करे। छः कोणों में ब्रह्मा विष्णु महेश वाणी लक्ष्मी उमा का पूजन करे। तब षडङ्ग पूजन करे। अष्टदल में अष्ट मातृकाओं की पूजा करे। उसके बाहर लोकपालों का पूजन करे। तब देवी की पूजा गन्ध-पुष्पादि से करे। इस प्रकार से सिद्ध मन्त्र षट्कर्म में फलप्रद होता है। इसी मन्त्र से देशिक सर्वत्र प्राणप्रतिष्ठा करे।

उपासनाविधिः

अत्र तदुपासनाविधिस्तु—प्राग्वत् प्रातःकृत्यादि योगपीठन्यासान्तं कृत्वा मूलेन प्राणायामत्रयर्ष्यादिकरषडङ्गन्यासान् विधायान्तर्यागोत्तरं स्वपुरतः सिन्दूरादिना षट्कोणाष्टदलभूपुरात्मकं पूजायन्त्रं विलिख्य पुरतः संस्थाप्याभ्यर्च्यार्घ्यादिस्थापनाद्यात्मपूजान्ते मण्डूकादिपरतत्त्वान्तं योगपीठं संपूज्य केसरेषु ॐजयायै नमः। विजयायै नमः। अजितायै नमः। अपराजितायै नमः। नित्यायै नमः। विलासिन्यै नमः। दोग्ध्र्यै नमः। अघोरायै नमः। मङ्गलायै नमः। इति संपूज्य, ह्रींसर्वशक्तिकमलासनाय नमः इति समस्तं पीठं संपूज्य, मूलमन्त्रेण मूर्तिं परिकल्प्यावाहनादिपुष्पोचारान्ते षट्कोणेषु देव्यग्रे देवीपृष्ठदक्षिणवामकोणेषु—ॐ ब्रह्मणे नमः। ॐ विष्णवे नमः। ॐ रुद्राय नमः। दक्षिणाग्रदेवीपृष्ठवामभागेषु—सरस्वत्यै नमः। लक्ष्म्यै० गौर्यै०। षट्कोणसन्धिषु प्राग्वदङ्गानि संपूज्याष्टसु पत्रेषु देव्यग्रादिप्रादक्षिणेन

प्रागुक्तब्राह्म्याद्याः चतुरस्रे लोकपालांस्तदस्त्राणि च संपूज्य धूपदीपादिकं सर्वं प्राग्वत् समापयेदिति। तथा—

लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं जुहुयात्तद् दशांशतः। साज्येन चरुणा पश्चात्तर्पणादि समाचरेत्॥१७॥ इति।

उपासना-विधि—पूर्ववत् प्रातः कृत्य से योग पीठ न्यास तक के कर्मों को करके तीन प्राणायाम करे। ऋष्यादि कर षडङ्ग न्यास करके अन्तर्याग करे। अपने आगे सिन्दूरादि से षट्कोण अष्टदल भूपुरात्मक पूजायन्त्र बनाकर स्थापित करे। अर्घ्यादि स्थापन एवं आत्मपूजा करके मण्डूक से परतत्त्व तक योगपीठ पूजा करे। केसर में—ॐ जयायै नमः, ॐ विजयायै नमः, ॐ अजितायै नमः, ॐ अपराजितायै नमः, ॐ नित्यायै नमः, ॐ विलासिन्यै नमः, ॐ दोग्ध्र्यै नमः, अघोरायै नमः मंगलायै नमः से पूजा करे। समस्त पीठ की पूजा 'ह्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः' से करे। मूल मन्त्र से मूर्ति कल्पित करके आवाहनादि से पुष्पोपचार तक करे। षट्कोण में देवी के पीछे दाँयें-बायें कोणों में—ॐ ब्रह्मणे नमः, ॐ विष्णवे नमः, ॐ रुद्राय नमः से पूजन करे, दक्षिण के अग्र भाग में देवी-पृष्ठवाम भाग में सरस्वत्यै नमः, लक्ष्म्यै नमः, गौर्यै नमः से पूजन करे। षट्कोण की सन्धियों में पूर्ववत् षडङ्गों की पूजा करे। देवी के आगे से प्रादक्षिण्य क्रम से ब्राह्मी आदि की पूजा अष्टदल में करे। चतुरस्र में लोकपालों और उनके अस्त्रों की पूजा धूप-दीप आदि से पूर्ववत् करके पूजा का समापन करे। जैसा कि कहा भी गया है—एक लाख मन्त्र जप करे, उसका दशांश हवन गोघृत और चरु से करे। तत्पश्चात् तर्पणादि करे।

प्राणदूत्यः

शारदायाम् (२३.९२)—

बीजान्तेऽमुष्यशब्दानामादौ दूतीः प्रपूजयेत्। मृता वैवस्वता भूयो जीवहा प्राणहा पुनः॥१॥
आकृष्या ग्रसना पश्चाद्भ्रमदा विस्फुलिङ्गिनी। क्षेत्रप्रतिहरीत्येताः प्राणदूत्यो नव स्मृताः॥२॥
पाशेन बद्धचेष्टस्य शक्त्या स्वीकृतचेतसः। अङ्कुशेन हृतस्यापि साध्यस्यासून् समाहरेत्॥३॥
द्वादशाङ्गुलमानेन कृत्वा साध्यस्य पुत्तलीम्। तस्याः प्राणात्मकं यन्त्रं सकीटं हृदये न्यसेत्॥४॥
निशीथसमये साध्ये सुप्ते तस्य हृदम्बुजे। दलेषु वायुवह्नीन्द्रवरुणानामतः परम्॥५॥
ईशराक्षसशीतांशुयमानां कर्णिकान्तरे। यादीन् हंससमायुक्तान् भृङ्गाकाराननुस्मरेत्॥६॥
शिरोबिन्दुसमुद्भूततन्तुसम्बद्धविग्रहान्। एवमात्महृदम्भोजे भृङ्गीरूपान् धिया स्मरेत्॥७॥
आत्महृत्पद्मगा भृङ्गी प्रस्थाप्य श्वासवर्त्मना। एकैकां साध्यहृत्पद्माद् भृङ्गानेकैकमानयेत्॥८॥
पुत्तल्यां स्थापयेन्मन्त्री स्वचित्ते वा विधानवित्। तन्तुच्छेदं प्रकुर्वीत वह्निबीजेन सर्वतः॥९॥
आकृष्टान् साध्यहृद्भृङ्गान् भुवा संस्तम्भयेत्ततः। एवमेकादशावृत्तिः कुर्यात्सर्वेषु कर्मसु॥१०॥
वश्याकर्षणयोर्यादीनरुणान् संस्मरेत् सुधीः। मोहविद्वेषयोर्धूम्रान् कृष्णान् मारणकर्मणि॥११॥
पीतान् संस्तम्भने ध्यायेत्प्राणाकर्षणकर्मवित्। आकृष्टान् साध्यहृत्प्राणान् स्थापयेदात्मनो हृदि॥१२॥
क्रूरकर्मसु पुत्तल्यां तेषां स्थापनमीरितम्। प्राणान् साध्यस्य मण्डूकानात्मनस्तु भुजङ्गमान्॥१३॥
संस्मरेत् तत्र निपुणः सदा क्रूरेषु कर्मसु।
वाय्वग्निशक्रवरुणेश्वरराक्षसेन्दुप्रेतेशपत्रलिखितैरथ यादिवर्णैः।
बिन्द्वन्तगैः क्षगतहंससमेतसाध्यं प्राणात्मयन्त्रमथ वर्णवृतं धरास्थम्॥१४॥
इत्थं प्रयोगकुशलो मनुनानेन मन्त्रवित्। वशयेत्सकलान् देवान् किं पुनः पार्थिवाङ्गनान्॥१॥ इति।

शारदातिलक में कहा गया है कि बीज के बाद आदि में दूती का नाम लगाकर पूजन करे। प्राण दूती नव हैं—मृता, वैवस्वता, जीवहा, प्राणहा, आकृष्या, ग्रसना, भ्रमदा, विस्फुलिङ्गिनी, क्षेत्रप्रतिहरी। ये साध्य के प्राणों का हरण पाश से बाँधकर उसके चित्त को शक्ति से वश में करके अंकुश से खींचकर करती हैं। साध्य की पुत्तली बारह अंगुल लम्बी बनाये। उसके प्राणयन्त्र को सकीट पुत्तली में न्यस्त करे। रात में सोये हुए साध्य के हृदय कमल में वायु, अग्नि, पूर्व, पश्चिम, ईशान, नैर्ऋत्य, उत्तर, दक्षिण दल की कर्णिका में यं रं लं वं शं षं सं हंसः का भृंगाकार रूप में स्मरण करे। शिरोबिन्दु से समुद्भूत तन्तु से

सम्बद्ध विग्रह का अपने हृदय कमल में स्मरण करे। आत्म हृदय में स्थित भृंगी को श्वास मार्ग से निकाल कर साध्य के हृदय में एक-एक करके प्रवेश कराये। अपने चित्त में पुत्तली को स्थापित करे। वह्नि बीज से उसके सारे अंगों में छेद करे। साध्य के हृदय से भ्रमरों को निकालकर बाहर स्तम्भित करे। इस प्रकार सभी कर्मों को ग्यारह बार करे। वश्य आकर्षण में यं रं लं वं शं षं सं हंसः का स्मरण लाल रङ्ग का करे। मोह-विद्वेषण में धूम्र वर्ण का और मारण में काले रंग का स्मरण करे। प्राणाकर्षण कर्म को जानने वाला स्तम्भन में पीत वर्ण का ध्यान करे। साध्य के हृदय से प्राण को आकर्षित करके अपने हृदय में स्थापित करे। क्रूर कर्म में पुत्तली स्थापित करे। साध्य का प्राण मेढ़क है और आत्मा सर्प है—इस प्रकार का स्मरण क्रूर कर्मों मे करे। यं रं लं वं शं षं सं हंसः वर्णों को वायु, अग्नि, पूर्व, पश्चिम, ईशान, नैर्ऋत्य, दक्षिण और उत्तर में लिखे। हंस साध्य समेत प्राणात्म यन्त्र को धरा पर स्थापित करे।

इस प्रयोग में कुशल मन्त्रवित् इस मन्त्र से सभी देवताओं को भी वश में कर सकता है, तब मनुष्यों की तो बात ही क्या है।

तत्पुरश्चरणविधिविशेषः

अत्र पुरश्चरणविधिमुक्त्वा विशेषो ब्रह्मयामले—

अत्र नित्यं हुनेन्मन्त्री जपाकिंशुकसंभवैः। पुष्पै रक्तोत्पलैर्वापि मूलेन च नवाहुतीः ॥१॥
हुत्वा बीजत्रयेणाथ हुनेदेकैकशः क्रमात्। यादिहंसान्तवर्णोत्थाः प्राणदूत्यो नव स्मृताः ॥२॥
मृता वैवस्वता चैव जीवहा प्राणहा तथा। आकर्षिणी च ग्रसना भ्रमदा विस्फुलिङ्गिनी ॥३॥
क्षेत्रज्ञहारिणी चेति संप्रोक्तास्ता यथाक्रमम्। तत्तद्वर्णादिना नाम्ना तासां चैव हुनेत्क्रमात् ॥४॥

आंह्रींक्रोंयं मृतायै स्वाहा इत्यादिप्रयोगः।

ध्यानं वक्ष्ये प्रयोगेषु यथा ध्येया महेश्वरि। गत्वा साध्यं दृढं बद्ध्वा पाशबीजेन सुन्दरि ॥५॥
शक्तिबीजेन तच्छक्तिं गृहीत्वाङ्कुशबीजतः। प्राणमाकृष्य साध्यस्य चानयन्तीं सदा स्मरेत् ॥६॥
निशीथसमये साध्ये सुप्ते तस्य हृदम्बुजे। दलेषु वायुवह्नीन्द्रवरुणानां सुरेश्वरि ॥७॥
ईशराक्षससौम्येषु दक्षिणे कर्णिकान्तरे। यादीन् हंससमायुक्तान् भृङ्गाकाराननुस्मरेत् ॥८॥
शिरोबिन्दुसमुद्भूततन्तुसम्बद्धविग्रहान्। एवमात्महृदम्भोजे भृङ्गीरूपान् धिया स्मरेत् ॥९॥
आत्महृत्पद्मगा भृङ्गीः प्रस्थाप्य श्वासवर्त्मना। एकैकान् साध्यहृत्पद्माद् भृङ्गानेकैकमानयेत् ॥१०॥
पुत्तल्यां स्थापयेन्मन्त्री स्वचित्ते वा विधानवित्। तन्तुच्छेदं प्रकुर्वीत वह्निबीजेन पार्वति ॥११॥
आकृष्टान् साध्यहृद्भृङ्गान् स्तम्भयेद्भूमिबीजतः। एवमेकादशावृत्तिः कुर्यात्सर्वेषु कर्मसु ॥१२॥
वश्याकर्षणयोर्यादीनरुणान् संस्मरेत् प्रिये। मोहविद्वेषयोर्धूम्रान् कृष्णान् मारणकर्मणि ॥१३॥
पीतान् संस्तम्भने देवि प्राणाकर्षणकर्मवित्। आकृष्टान् साध्यहृत्प्राणान् स्थापयेदात्मनो हृदि ॥१४॥
क्रूरकर्मसु पुत्तल्यां तेषां स्थापनमीरितम्। प्राणान् साध्यस्य मण्डूकानात्मनस्तु भुजङ्गमान् ॥१५॥
संस्मरेद् देवदेवेशि सदा क्रूरेषु कर्मसु। इत्थं प्रयोगकुशलो मनुनानेन सुन्दरि ॥१६॥
वशयेत्सकलान् देवान् किं पुनः पार्थिवाङ्गनान्। वाय्वग्निशक्रवरुणशिवराक्षससोमगान् ॥१७॥
दक्षिणान्तान् लिखेद्यादीन् हान्तानष्टसु पार्वति। दलेषु बिन्दुसंयुक्तान् क्षकारं कर्णिकान्तरे ॥१८॥
विलिख्य तस्य मध्ये तु हंस इत्यक्षरद्वयम्। साध्यनामसमोपेतं विलिखेद्गिरिसंभवे ॥१९॥
वेष्टयेच्चतुरस्रेण यन्त्रं प्राणमनोरिदम्। क्रूरकर्मसु संप्रोक्तद्रव्यैरष्टविषादिभिः ॥२०॥
कृतां पुत्तलिकां साध्यनरकेशसमन्विताम्। द्वादशाङ्गुलमानेन स्पष्टाङ्गीमतिमञ्जुलाम् ॥२१॥
तस्यास्तु हृदये देवि प्राणयन्त्रं विनिक्षिपेत्। लिखितं शववस्त्रे च सकीटं वरवर्णिनि ॥२२॥

प्राणान् संस्थापयेत्तस्यां साध्यस्य प्रोक्तरूपतः । छित्वा ताञ्जुहुयाद्रात्रौ साध्यं स्मृत्वा चितानले ॥२३॥
सप्तरात्रप्रयोगेण मारयेत् रिपुमात्मनः ।

सकीटं सजीवं, संस्थापितसाध्यप्राणमिति यावत्।

पुरश्चरण विधि में-विशेष—ब्रह्मयामल में कहा गया है कि अडहुल या पलाश फूलों से नित्य हवन करे अथवा मूल मन्त्र से नव आहुति लाल कमल से दे। एक श्री विद्या के प्रत्येक कूट से अलग-अलग हवन करे। य से हंसः तक नव वर्णों में नव प्राणदूतियाँ होती हैं। ये मृता, वैवस्वता, जीवहा, प्राणहा, आकर्षिणी, ग्रसदा, भ्रमना, विस्फुलिङ्गिनी और क्षेत्रज्ञ-हारिणी कही जाती हैं। उनके वर्ण और नाम से भी क्रमशः हवन करे। हवन का मन्त्र है—आं ह्रीं क्रों यं मृतायै स्वाहा। आं ह्रीं क्रों रं वैवस्वतायै स्वाहा इत्यादि।

प्रयोग में जैसा ध्यान करना चाहिये, उसे कहता हूँ। साध्य को पाश बीज से मजबूती से बाँध कर शक्ति बीज से उसकी शक्ति को ग्रहण कर अङ्कुश बीज से उसके प्राणों को खींचकर सदा ला रही है—इस प्रकार का स्मरण करे। रात में सोये हुए साध्य के हृदय कमल के वायव्य, आग्नेय, पूर्व, पश्चिम, ईशान, नैर्ऋत्य, उत्तर-दक्षिण में स्थित दलो की कर्णिका में य से हंस तक स्थित वर्णों को भ्रमराकार रूप में स्मरण करे। वर्णों को शिरोबिन्दु से उत्पन्न धागे से बद्ध विग्रह मानकर उन्हें अपने हृदय कमल में भ्रमर बुद्धि से ले आये। आत्म हृदय पद्मगत भ्रमरों को श्वास मार्ग से निकालकर साध्य पुत्तली में स्थापित करे। पुत्तली को अपने में स्थापित करे। वह्नि बीज से उनमें छेद करे। तब साध्य हृदयस्थ भृङ्गों को भूमिबीज से स्तम्भित करे। ऐसा ग्यारह बार सभी कर्मों में करे। वश्य आकर्षण में यकारादि वर्णों का स्मरण लाल वर्ण का करे। मोहन-विद्वेषण में उन्हें धूम्र वर्ण का स्मरण करे। मारण कर्म में काले रङ्ग का स्मरण करे और स्तम्भन में पीले रङ्ग का स्मरण करे। प्राणाकर्षण को जानने वाला साध्य के हृदयस्थ प्राणों को अपने हृदय में स्थापित करे। क्रूर कर्मों में इन्हें साध्य की पुत्तली में स्थापित करे। कल्पना करे कि साध्य के प्राण मेढ़क हैं और स्वयं वह सर्प है। क्रूर कर्मों में ऐसा ही चिन्तन करे। प्रयोग में कुशल साधक इस मन्त्र से सभी देवताओं को भी वश में कर सकता है; तब मनुष्यों की तो बात ही क्या है।

वायव्य आग्नेय पूर्व पश्चिम ईशान नैर्ऋत्य उत्तर दक्षिण में य से ह तक के आठ वर्णों को सानुस्वार अष्टदल के आठ दलों की कर्णिका में लिखे। क्ष को कर्णिका के मध्य में लिखे। इसके बाद चक्र के मध्य में साध्य नाम-सहित हंस के लिखे। यन्त्र को चारो ओर से इन प्राणमन्त्रों से वेष्टित करे। क्रूर कर्म में आठो प्रकार के विष से लिखे। नरकेश से समन्वित साध्य की बारह अंगुली लम्बी पुत्तली बनाये, जिसके सभी अङ्ग स्पष्ट एवं मनोहर हों। पुतली के हृदय में प्राणयन्त्र गाड़ दे। यह प्राणयन्त्र शववस्त्र पर लिखित होना चाहिये। पुत्तली में यथाविधि प्राण प्रतिष्ठा करे। चिता की अग्नि में उसके टुकड़ों से रात में उसको स्मरण करते हुए हवन करे। इस प्रयोग से शत्रु सात रात में मर जाता है।

अष्टविषाणि

अष्टविषाणि तु—

श्येनाग्निलोणपिण्डानि धत्तूरकरसस्तथा । गृहधूमस्त्रिकटुकं त्रिषाष्टकमुदाहृतम् ॥२४॥

इत्युक्तानि। श्येनः श्येनविष्ठा, अग्निश्चित्रकं, लोणपिण्डः कृत्रिमलवणम्। अन्यत्सुगमम्।

अष्टविष—वाजविष्ठा, चित्रक, कृत्रिम नमक, धत्तूर रस, गृहधूम और त्रिकटु—इनको अष्टविष कहा जाता है।

शैवादिकलापरिगणना

तथा—

कला आवाहयेत्कुम्भे प्रतिमादिषु मन्त्रवित् । शैवे च गाणपत्ये च षण्णवत्यः कलाः स्मृताः ॥२५॥
पञ्चाशीतिः कलाः सौरे चतुर्नवतिर्वैष्णवे । शाक्ते तु सप्ततिः प्रोक्ता शैव्यश्चेति च केचन ॥२६॥

शैव्यः षण्णवतिकलाः शाक्तेऽपि योज्या इति केचन वदन्तीत्यर्थः।

कुम्भ प्रतिमादि में साधक कला का आवाहन करे। शैव एवं गाणपत्य में छियानबे कला कही गई हैं। सौर कला पच्चासी, वैष्णव कला चौरानबे एवं शाक्त कला सत्तर हैं। कुछ के मत से शैव्य में उनहत्तर कला होती है।

छियानबे कलाओं में ३६ तत्त्व, सूर्य-सोमकला ३२, दूती ९, प्राण १०, यादि ९—३६ + ३२ + ९ + १० + ९ = ९६ होती हैं।

शैवी: कला आह—

तत्र तत्त्वानि षट्त्रिंशद् द्वात्रिंशत् कामसोमयो:। दूत्यो नव दश प्राणा यादयो नव वर्णका: ॥२७॥
कला: शैवा(वी:) वदाम्यत्र शिवशक्तिसदाशिवा:। ईश्वर: शुद्धविद्या च माया विद्या कला तथा ॥२८॥
राग: कालश्च नियति: पुरुष: प्रकृतिस्तथा। अहङ्कारश्च बुद्धिश्च मन:श्रोत्रत्वचस्तत: ॥२९॥
जिह्वा घ्राणश्च वाक्पाणिपादा: पायुस्तत: परम्। उपस्थशब्दौ स्पर्शश्च रसो गन्धो वियन्मरुत् ॥३०॥
वह्नि: सलिलपृथ्व्यौ च श्रद्धा प्रीती रतिर्धृति:। कान्तिर्मनोरमा चैव ततश्चैव मनोहरा ॥३१॥
मनोरथा च मदनोन्मादिनी मोहिनी तथा। शंखिनी शोषिणी चैव वशंकरी च शिञ्जिनी ॥३२॥
सुतगा सस्वराश्चैव षोडशात्र समीरिता:। पूषा चेद्धा सुमनसा रति: प्रीतिर्धृतिस्तथा ॥३३॥
ऋद्धि: सौम्या मरीचिश्च ततश्चाप्यंशुमालिनी। शशिनी चाङ्गिरा च्छाया तत: संपूर्णमण्डला ॥३४॥
तुष्टामृताख्या: कथिता: कलास्ता: सस्वरा विधो:। अमृताद्या दश प्राणा यादयो नव वर्णका: ॥३५॥
षण्णवत्य: कला: प्रोक्ता: शैवे शाक्ते च गाणपे। अथ वक्ष्ये वैष्णवाख्या: कला: शृणु वरानने ॥३६॥
जीवप्राणौ बुद्धिमन:श्रोत्राद्या विंशतिस्तथा। हृत्पद्मं सूर्यसोमाग्निवासुदेवाह्वयास्तत: ॥३७॥
संकर्षणश्च प्रद्युम्नश्चानिरुद्धस्तत: परम्। श्रद्धादयोऽत्र विज्ञेया: सौरा: शृणु वदामि ते ॥३८॥
आकाशवाय्वग्निजलपृथिवीशब्द एव च। स्पर्शो रूपं रसो गन्ध: श्रोत्रं त्वक् चक्षुरेव च ॥३९॥
जिह्वा घ्राणं च वाक्पाणी पादपायू तथैव च। उपस्थश्च मनो गर्वो बुद्धिर्धी: प्रकृतिस्तत: ॥४०॥
श्रद्धादयोऽत्र विज्ञेया: शाक्ता: शृणु वरानने। आत्मविद्याशिवाश्चैते प्रतिलोमक्रमात् पुन: ॥४१॥
अनुलोमेन ते भूय: सर्वतत्त्वं तथैव च। श्रद्धादयस्तत: प्रोक्ता: कला: सर्वा: समीरिता: ॥४२॥ इति।

अस्यार्थ:—सौम्यकर्मसु प्रतिमादिष्वावाहने तु साधक: कृतनित्यक्रिय: यथोक्तलक्षणप्रतिमाग्रे स्वासने समुपविश्य दिनान्तरावाहितसमस्तकलापूर्णपूर्णकुम्भमात्मप्रतिमयोर्मध्ये साधारं संस्थाप्य प्राणानायम्य अद्येत्यादितिथ्युल्ले-खनान्तेऽमुकाकृतिप्रतिमायाममुकदेवतासान्निध्यकारिण्योऽमुकसंख्याककला आवाहयिष्ये इति संकल्प्य प्राणयन्त्रं प्राणप्रतिष्ठामन्त्रेण प्रतिष्ठितं प्रतिमाया गले बद्ध्वा आवाहयेत्।

शैवी कला—शिव-शक्ति, सदाशिव, ईश्वर, शुद्ध विद्या, माया विद्या, कला, राग, काल, नियति, पुरुष, प्रकृति, अहंकार, बुद्धि, मन, कर्ण, त्वचा, जिह्वा, घ्राण, वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ, शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध, वियत्, मरुत्, अग्नि, जल, पृथ्वी, श्रद्धा, प्रीति, रति, धृति, कान्ति, मनोरमा, मनोहरा, मनोरथा, मदना, उन्मादिनी, मोहिनी, शङ्खिनी, शोषिणी, वशंकरी, शिञ्जिनी, सुतगा, सस्वरा, पूषा, इद्धा, सुमनसा, रति, प्रीति, धृति, ऋद्धि, सौम्या, मरीचि, अंशुमालिनी, शशिनी, अंगिरा, छाया, सम्पूर्णमण्डला, तुष्टा-अमृता आदि चन्द्रकला, अभृतादि दश प्राण, यादि नव वर्ण—ये छिआनबे कला शैव, शाक्त और गाणपत्य के हैं।

वैष्णव कला—जीव प्राण बुद्धि, मन, श्रोत्रादि बीस, हृत्पद्म, सूर्य-सोम-अग्नि-कला, वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, श्रद्धा, दया—कुल चौरानबे कला।

सौर कला—आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण, वाक्, पाणि, पाद, पयू, उपस्थ, मन, गर्व, बुद्धि, धी, प्रकृति, श्रद्धा आदि।

शाक्त कला—आत्माविद्या शिवा—ये प्रतिलोम क्रम से, पुनः अनुलोम क्रम से और सभी तत्त्व। तत्पश्चात् श्रद्धा आदि कला।

सौम्य कर्म में प्रतिमादि आवाहन में साधक नित्य कृत्य के बाद यथोक्त लक्षण प्रतिमा के आगे अपने आसन पर बैठकर दिनान्तर में आवाहित समस्त कला-पूर्ण कुम्भ को अपने और प्रतिमा के मध्य में आधार पर स्थापित करे। प्राणायाम करके तिथि उल्लेखपूर्वक अमुकाकृति प्रतिमा में अमुक देवता के सान्निध्यकारिणी अमुक संख्या कला का आवाहन करता हूँ—ऐसा सङ्कल्प करके प्राणयन्त्र को प्राणप्रतिष्ठा मन्त्र से प्रतिष्ठित प्रतिमा के गले में बाँधकर आवाहन करे।

प्राणयन्त्ररचनाप्रकारः

प्राणयन्त्ररचनाप्रकारस्तु—भूर्जादावष्टगन्धेनाष्टदलकमलं विलिख्य कर्णिकायां ससाध्यं क्षकारं विलिख्य हंस इत्यक्षरद्वयेन क्षकारं वेष्टयित्वा वायव्यदले यं, आग्नेये रं, पूर्वे लं, पश्चिमे वं, ईशाने शं, नैर्ऋत्ये षं, उत्तरे सं, याम्यदले हं, इति वर्णाष्टकं विलिख्य बहिर्भूपुरं विलिख्य मातृकार्णैर्वेष्टयित्वा तत्तत् स्थानेषु दिक्पालबीजानि विलिखेदिति प्राणयन्त्रं विलिख्य होमसंपातं कुर्यादिति। तत आहवनीयदेवतामन्त्रेण प्राणायामर्ष्यादिकरषडङ्गन्यासध्यानानि विधाय प्रतिमाया भूतशुद्धिमातृकान्यासान्तं विधाय, प्रतिमाहृदये स्पृशन् प्राणप्रतिष्ठामन्त्रेण अमुष्यपदस्थाने आहवनीयदेवतानाम षष्ठ्यन्तं संस्थाप्य प्राणप्रतिष्ठामन्त्रमष्टोत्तरशतवारं जपित्वा कला आवाहयेत्। यथा—सुगन्धजलपुष्पभरितपूर्णकुम्भमुखपिधानवस्त्रं निष्कास्य तन्मध्यस्थपुष्पमेकमुद्धृत्य ॐआंह्रींक्रोंहंसः सोऽहं यरलवशषसहों अमुकदेवतायाः शिवतत्त्वरूपप्राणकला इह स्थिताः, १५ अमुकदेवतायाः शिवतत्त्वरूपजीवकला इह, १५ अमुकदेवतायाः शिवतत्त्वरूपसर्वेन्द्रियकलाः, १५ अमुकदेवतायाः शिवतत्त्वरूपवाङ्मनश्चक्षुस्त्वक्श्रोत्रजिह्वाघ्राणप्राणकला इहैवागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा, इत्युच्चार्य प्रतिमाशिरसि निक्षिपेत्। एवं शक्तितत्त्वरूप० ईश्वरतत्त्वरूप० इत्यादि क्रम ऊह्यः। अत्र संप्रदायस्तु—प्रथमकलामेकवारमुच्चार्यावाहयेत्। द्वितीयाया वारद्वयम्। तृतीयायास्त्रिवारम्। चतुर्थ्याश्चतुर्वारम्, एवं क्रमेणैकोत्तरवृद्ध्योच्चारणमिति। तन्त्रान्तरे—

शुक्लप्रतिपदारम्भाद्यावत् पूर्णा तिथिर्भवेत्। कुर्यादावाहनं मन्त्री प्रतिमादौ शुभे तथा ॥१॥
आकर्षणं कलानां तु कृष्णे प्रतिपदादितः। कलानां ह्रासवृद्ध्येन्दोः कृष्णशुक्लप्रभेदतः ॥२॥
तिथिक्रमेण जायेते तथैवात्र दिनक्रमः। गुरुतः शास्त्रतः सम्यग् ज्ञात्वा कुर्वीत देशिकः ॥३॥
अज्ञात्वा कुरुते यस्तु म्रियते मूढधीः स्वयम्। इति।

प्राणयन्त्र रचना-प्रकार—भोजपत्र पर अष्टगन्ध से अष्टदल कमल बनाये। कर्णिका में क्ष के साथ साध्य का नाम लिखे। उसे हंस—इस दो अक्षर से वेष्टित करे। तब यन्त्र के वायव्य दल में यं, आग्नेय में रं, पूर्व में लं, पश्चिम में वं, ईशान में शं, नैर्ऋत्य में षं, उत्तर में सं एवं दक्षिण दल में हं लिखे।

अष्टदल के बाहर भूपुर लिखकर उसे मातृका से वेष्टित करे। दिक्पालों के स्थान में दिक्पालों के बीज लिखे। इस प्रकार प्राणयन्त्र लिखकर होमसम्पात करे। आवाहनीय देवता के मन्त्र से प्राणायाम ऋष्यादि कर षडङ्ग न्यास ध्यान करे। प्रतिमा में भूतशुद्धि, मातृका न्यास करे। प्रतिमा के हृदय को स्पर्श करके प्राण-प्रतिष्ठा मन्त्र से अमुक पद के स्थान पर आवाहनीय देवता का षष्ठ्यन्त नाम लिखे। प्राण-प्रतिष्ठा मन्त्र का एक सौ आठ जप करके कला का आवाहन करे। सुगन्ध जल-पुष्पभरित कुम्भ से पिधान वस्त्र निकाल कर उसमें से एक फूल निकालकर—ॐ आं ह्रीं क्रों हंसः सोऽहं यरलवशषसहों अमुकदेवतायाः शिवतत्त्वरूपप्राणकला इह तिष्ठ इह स्थितः। ॐ आं ह्रीं क्रों हंसः सोऽहं यरलवशषसहों अमुकदेवताया शिवरूपजीवकला इह। ॐ आं ह्रीं क्रों हंसः सोऽहं यरलवशषसहों अमुकदेवतायाः शिवतत्त्वरूपसर्वेन्द्रियकला। ॐ आं ह्रीं क्रों हंसः सोऽहं यरलवशषसहों अमुक देवतायाः शिव तत्त्व रूप वाङ्मनश्चक्षु त्वक् श्रोत्र जिह्वा प्राणकला इहैवागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा—इनका उच्चारण करके प्रतिमा के शिर पर निक्षिप्त करे। इसी प्रकार शक्तितत्त्वरूप, ईश्वरतत्त्वरूप इत्यादि क्रम से कार्य करे। यहाँ

सम्प्रदायगत भेद यह है कि प्रथम कला का एक बार कहकर आवाहन करे। द्वितीया में दो बार, तृतीया में तीन बार, चतुर्थ में चार बार—इस क्रम से एकोत्तर वृद्धि से उच्चारण करे।

तन्त्रान्तर में कहा गया है कि शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से पूर्णिमा तक की तिथियों में प्रतिमा आदि में शुभ कर्मों में आवाहन करे। आकर्षण में कला का आवाहन कृष्णपक्ष में करे। कृष्ण-शुक्ल पक्ष में तिथिक्रम के अनुसार चन्द्रकलाओं में ह्रास-वृद्धि होती है। तिथि क्रम के समान हो दिनक्रम भी विचारणीय होता है। गुरु से एवं शास्त्र से सम्यक् ज्ञान प्राप्त करके साधक को प्रयोग करना चाहिये। बिना जाने यदि कोई प्रयोग करता है तो वह मन्द बुद्धि स्वयं मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

नित्यहोमेऽग्निस्थापनविधिः

अथ नित्यहोमेऽग्निस्थापनविधिः—पूजास्थानस्येशानभागे कुण्डस्थण्डिलाद्यन्यतमे गोमयेनोपलिप्ते मूलेन वीक्ष्यास्त्रेण संरक्ष्यास्त्रेणैव कुशैः संताड्य कवचमन्त्रेण प्रोक्ष्य, हृन्मन्त्रेण विष्णुरुद्रेन्द्रदेवताकास्तिस्रो रेखाः प्रागग्रा ब्रह्मयमचन्द्रदेवताका उत्तराग्रास्तिस्रो रेखाः कुशमूलेन विलिख्य, कुशाम्बुनास्त्रमन्त्रेण संप्रोक्ष्य 'ह्रींसर्वशक्तिकमलासनाय नमः' इति तन्मध्ये योगपीठं संपूज्य, तत्र भुवनेशीमृतुमतीं सञ्चिन्त्य, तद्योनावावसथ्यस्थाने शिवबीजतया सूर्य-कान्तादिभवमग्निं प्रणवेन संस्थाप्य 'ॐ चित्पिङ्गल हनहन दहदह पचपच सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा' इति मन्त्रेण कुशैर्मुखफूत्कृत्याग्निं प्रज्वाल्य काष्ठैः पटूकृत्य 'ॐ अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्। सुवर्णवर्णममलं समिद्धं सर्वतोमुखम्' इति पठन् कृताञ्जलिरुपस्थायोपविश्य लिङ्गे—सरयूं हिरण्यायै नमः। गुदे—षरयूं कनकायै नमः। शिरसि—शरयूं रक्तायै नमः। मुखे—वरयूं कृष्णायै नमः। नासिकायां—लरयूं सुप्रभायै नमः। नेत्रयोः—ररयूं अतिरक्तायै नमः। सर्वाङ्गे—यरयूं बहुरूपायै नमः। इति सप्तजिह्वा विन्यस्य, ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः। ॐ स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा। ॐ उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै विषट्। ॐ धूमव्यापिने कवचाय हुं। ॐ सप्तजिह्वाय नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ धनुर्धरायास्त्राय फट्। इति षडङ्गानि विधाय, शिरसि—अग्नये जातवेदसे नमः। वामांसे—अग्नेय सप्तजिह्वाय नमः। वामपार्श्वे—अग्नये हव्यवाहनाय नमः। वामकट्यां—अग्नये अश्वोदराय नमः। लिङ्गे—अग्नये वैश्वानराय नमः। दक्षिणकट्यां—अग्नये कौमारतेजसे नमः। दक्षिणपार्श्वे—अग्नये विश्वमुखाय नमः। दक्षांसे—अग्नये देवमुखाय नमः। इत्यष्टौ मूर्तीर्विन्यस्य, गर्भरहितैर्दर्भैरग्निं प्रागादिक्रमेणोत्तराग्रैः पूर्वाग्रैश्च परिस्तीर्य वह्नेर्मुखे षट्कोणं विभाव्य, तत्र (मध्ये षट्सु कोणेषु मध्यादिप्रादक्षिण्येन प्रागुक्ताः सप्तजिह्वाः संपूज्य तद्बहिरष्टदलकमलं विभाव्य तत्केसरेषु अग्नीशाननिर्ऋतिवायुकोणेषु तदग्रादि प्रागादिचतुर्दिक्षु च) प्रागुक्तषडङ्गानि संपूज्य, तद्बहिरष्टदलेषु प्रागादिप्रादक्षिण्येन प्रागुक्ता अष्टमूर्तीः संपूज्य, तद्बहिश्चतुरस्रे दिक्पालांस्तदायुधानि च संपूज्य, मध्ये 'ॐ वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा' इत्यग्निं गन्धादिभिः संपूज्यास्त्रमन्त्रेण क्षालितायामाज्यस्थाल्यामाज्यं निक्षिप्य मूलेनाष्टधाभिमन्त्र्य, वमिति धेनुमुद्रयामृतीकृत्य कवचेन प्रदीप्तदर्भद्वयेन नीराज्य दर्भद्वयमग्नौ निक्षिप्य, पुनर्दर्भान् प्रज्वाल्यास्त्रमन्त्रेण घृते प्रदर्श्याग्नौ तान् निक्षिप्य, स्रुक्स्रुवौ तदभावे पलाशस्य मध्यपत्रद्वयमश्वत्थपत्रद्वयं वा गृहीत्वाग्नौ प्रताप्य कवचेन दर्भैः संमार्ज्य, पुनः प्रताप्यास्त्रेण प्रोक्ष्य दर्भेषु निधाय, मार्जनदर्भानद्भिः संस्पृश्याग्नौ निक्षिप्य, स्रुवेणाज्यमादायाग्नेर्दक्षिणनेत्रे 'अग्नये स्वाहा' इति हुत्वा अग्नये इदं न ममेत्युद्देशत्यागं कृत्वा, पुन-राज्यमादायाग्नेर्वामनेत्रे 'सोमाय स्वाहा' इति हुत्वा सोमाय इदं न मम। पुनरग्नेर्भालनेत्रे 'अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा' अग्नेर्वक्त्रे 'अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' ततः ॐ भूः स्वाहा अग्नये इदं न मम। ॐ भुवः स्वाहा वायवे इदं न मम। ॐ स्वः स्वाहा सूर्याय इदं न मम। ॐ भूर्भुवः स्वाहा प्रजापतये इदं न मम, इत्याहुतिचतुष्टयं हुत्वा 'ॐ वैश्वानर जातवेद०' इति मन्त्रेणाहुतित्रयं हुत्वा 'अग्नेर्गर्भाधानं संपादयामि स्वाहा' इति गर्भाधानपुंसवनसीमन्तोन्नयनजातकर्मान्नप्रा-शनचूडाकरणोपनयनसमावर्तनविवाहाख्यान् संस्कारान् पृथक्पृथगष्टावष्टावाज्याहुतीर्हुत्वा, प्रागुक्तजिह्वादिमूर्त्यन्तदेवतानां 'सरयूं हिरण्यायै स्वाहा' इत्यादि तत्तन्नामभिश्चतुर्थीस्वाहान्तैरेकैकामाहुतिं हुत्वा, ॐ स्वाहा। ॐ श्रीं स्वाहा, ॐश्रींह्रीं स्वाहा, ॐश्रींह्रींक्लीं स्वाहा। ॐश्रींह्रींक्लींग्लौं स्वाहा। ॐश्रींह्रींक्लींग्लौंगं स्वाहा। ॐश्रींह्रींक्लींग्लौंगं गणपतये

स्वाहा। ॐश्रींह्रींक्लींग्लौंगं गणपतये वरवरद स्वाहा। ॐश्रींह्रींक्लींग्लौंगं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे स्वाहा। ॐश्रींह्रींक्लींग्लौंगं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा। इति गणपतिमन्त्रं दशधा विभज्य हुत्वा पुनः समस्तेन गणपतिमन्त्रेण (चतुर्धा जुहुयात्। इति संस्कृते वह्नौ देवं ध्यात्वा मूलमन्त्रेण गन्धादिभिः संपूज्य वह्निदेवतयोरैक्यं विभावयन् मूलमन्त्रेण स्वाहान्तेनाज्यपायसतिलतण्डुलव्रीहयवभक्तानामन्यतमेन घृतव्यतिरिक्तद्रव्येषु त्रिधा योगं केवल-घृतयोगं च कृत्वा) पञ्चविंशत्याहुतीर्हुत्वा मूलमन्त्रस्य षडङ्गमन्त्रैः षडाहुतीर्मूलमन्त्रेण पञ्चविंशत्याहुतीर्हुत्वावरणदेवता-नामेकैकामाज्याहुतिं हुत्वा ॐ भूरग्नये च पृथिव्यै च महते च स्वाहा। ॐ भुवो वायवे चान्तरिक्षाय च महते च स्वाहा। ॐ स्वरादित्याय च दिवे च महते च स्वाहा। ॐ भूर्भुवःस्वश्चन्द्रमसे च नक्षत्रेभ्यश्च दिग्भ्यश्च महते च स्वाहा। इति चतस्र आज्याहुतीर्हुत्वा, ॐ इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारजाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत् स्मृतं यदुक्तं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा, इति मन्त्रेणाष्टावेकां वाज्याहुतिं हुत्वा वह्निं प्राग्वत् संपूज्य, न्यूनातिरिक्तसिद्ध्यर्थं ददामि सघृतं तिलम्। ॐ ह्वं साङ्गं कुरु कुरु स्वाहा इति तिलैरेकामाहुतिं हुत्वा। ॐ सहस्रार्चिर्महातेजा नमस्ते बहुरूपधृक्। सर्वाशिने सर्वगत पावकाय नमोऽस्तु ते। त्वं रौद्रघोरकर्मा च घोरहा त्वं नमोऽस्तु ते। विष्णुस्त्वं लोकपालोऽसि शान्तिमत्र प्रयच्छ मे। इत्यग्निं प्रार्थ्य, घृतेन स्रुचमापूर्य तदुपरि पुष्पं दत्त्वा अधोमुखेन स्रुवेण तन्मुखं पिधाय शङ्खवत्संपुटाभ्यां गृहीत्वोत्थाय मूलमन्त्रेण वौषडन्तेनाहुतित्रयं हुत्वा, प्रोक्षणीयजलेन वह्निं परिषिच्य, मूलमन्त्रेण स्वेष्टदेवं तत्र संपूज्य, संहारमुद्रया पूजाचक्रे विसृज्य स्वहृद्युद्वास्याग्निं संपूज्य 'भो भो वह्ने महाप्राज्ञ सर्वकर्मप्रसाधक। कर्मान्तरेऽपि संप्राप्ते सान्निध्यं कुरु सादरम्' इत्यग्निं प्रार्थ्य संहारमुद्रया स्वहृद्युद्वासयेत्।
इति नित्यहोमे अग्निस्थापनविधिः।

नित्य हवन में अग्नि-स्थापन विधि—पूजा स्थान के ईशान भाग में कुण्डल स्थण्डिल को गोबर से लिप्त कर मूल मन्त्र से देखे, अस्त्र मन्त्र से रक्षित करे, अस्त्र मन्त्र से ही कुश से ताड़ित करे, कवच मन्त्र से प्रोक्षण करे, हृन्मन्त्र से विष्णु-रुद्र-इन्द्र देवता के लिये तीन रेखा पूर्व के अग्र भाग में, ब्रह्म-यम-चन्द्र देवता का उत्तर के अग्र भाग में तीन रेखा कुशमूल से खींचे। कुशजल द्वारा अस्त्र मन्त्र से प्रोक्षण करे। 'ह्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः से मध्य में योगपीठ की पूजा करे। वहाँ भुवनेशी का ऋतुमती रूप में चिन्तन करे। उसकी योनि के अग्नि स्थान में शिवबीज से सूर्यकान्तादि से उत्पन्न अग्नि को प्रणव से स्थापित करके 'ॐ चित्पिङ्गल हन हन दह दह पच पच सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा' मन्त्र से कुश के द्वारा मुख से फूंककर अग्नि को प्रज्वलित करे। उस पर लकड़ी रखकर 'ॐ अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्। सुवर्णवर्णममलं समिद्धं सर्वतोमुखम्' यह पढ़ते हुये हाथ जोड़कर बैठकर—लिङ्ग में सरयूं हिरण्यायै नमः। गुदा में षरयूं कनकायै नमः, शिर में शरयूं रक्तायै नमः, मुख में वरयूं कृष्णायै नमः, नासिका में लरयूं सुप्रभायै नमः, नेत्रों में ररयूं अतिरक्तायै नमः, समस्त अंग में यरयूं बहुरूपायै नमः—इस प्रकार सप्तजिह्वा का विन्यास करके ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः, ॐ स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा, ॐ उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै वषट्, ॐ धूमव्यापिने कवचाय हुं, ॐ सप्तजिह्वाय नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ धनुर्धरायस्त्राय फट्—इस प्रकार षडङ्ग न्यास करे।

अष्टमूर्ति न्यास—शिर पर अग्नये जातवेदसे नमः। बाँयें कन्धे पर अग्नये सप्तजिह्वाय नमः। वाम पार्श्व में अग्नये हव्यवाहनाय नमः। बाँईं ओर कमर में अग्नये अश्वोदराय नमः। लिंग में अग्नये वैश्वानराय नमः। कमर के दाहिने भाग में अग्नये कौमारतेजसे नमः। दक्षिण पार्श्व में अग्नये विश्वमुखाय नमः। दाहिने कन्धे पर अग्नये देवमुखाय नमः। इसके बाद गर्भरहित दर्भ से अग्नि को प्रागादि क्रम से उत्तराग्र और पूर्वाग्र फैलाकर अग्निमुख में षट्कोण की भावना करके उसके छहों कोनों में मध्यादि प्रादक्षिण्य क्रम से उक्त सातो जिह्वाओं की पूजा करके उसके बाहर अष्टदल कमल कल्पित करके उसके केसर में अग्नि ईशान नैर्ऋत्य वायु कोण में उसके आगे पूर्वादि चारो दिशाओं में उक्त षडङ्गों की पूजा करे। उसके बाहर आठ दलों में पूर्वादि प्रादक्षिण्य क्रम से पूर्वोक्त आठ मूर्ति की पूजा करे। उसके बाहर चतुरस्र में दिक्पालों और उनके आयुधों की पूजा करके मध्य में 'ॐ वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा' मन्त्र से गन्धादि से पूजा करके अस्त्र मन्त्र से क्षालित

आज्य थाली में आज्य रखकर मूल के आठ जप से उसे अभिमन्त्रित करे। 'वं' से धेनु मुद्रा से अमृतीकरण करे। कवच से प्रदीप्त दो दर्भ से नीराजन करे। दो दर्भ अग्नि में डाले। पुनः दर्भ जलाकर अस्त्रमन्त्र से घी में अग्नि को दिखाकर डाल दे। स्रुक्स्रुवा या उसके अभाव में पलाश के दो पत्तों या पीपल के दो पत्तों को आग में तपाकर कवच से दर्भ द्वारा मार्जित करे। पुनः तपाकर अस्त्र से पोंछे। दर्भों में रखे। मार्जित कुशों को जल से स्पर्श कराकर अग्नि में डाल दे। स्रुव में घी लेकर अग्नि के दक्षिण नेत्र में 'अग्नये स्वाहा' से हवन करके अग्नये इदं न मम कहकर आहुति डाले। पुनः आज्य लेकर अग्नि के वाम नेत्र में 'सोमाय स्वाहा' से आहुति देकर कहे—सोमाय इदं न मम। पुनः अग्नि के ललाटस्थ नेत्र में अग्निषोमाभ्यां स्वाहा, अग्नि के मुख में अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा। तब ॐ भूः स्वाहा अग्नये इदं न मम, ॐ भुवः स्वाहा वायवे इदं न मम। ॐ स्वः स्वाहा सूर्याय इदं न मम, ॐ भूर्भुवः स्वाहा प्रजापतये इदं न मम—इस प्रकार चार आहुति देकर 'ॐ वैश्वानर जातवेद' मन्त्र से तीन आहुति प्रदान करे। तब 'अग्नेर्गर्भाधानसंस्कारं करोमि स्वाहा'—इस प्रकार गर्भाधान पुंसवन सीमन्तोन्नयन जातकर्म अन्नप्राशन चूड़ाकरण उपनयन समावर्तन विवाह संस्कारों के लिये अलग-अलग आठ-आठ आज्याहुति से हवन करे। पूर्वोक्त जिह्वादि मूर्त्यन्त देवताओं को 'सरयूं हिरण्यायै स्वाहा' इत्यादि उन-उन चतुर्थ्यन्त नामों के साथ स्वाहा लगाकर एक-एक आहुति प्रदान करे। ॐ स्वाहा, ॐ श्रीं स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वरवरद स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा—इस प्रकार गणपति मन्त्र को दश भाग में बाँटकर हवन करने के बाद पुनः समस्त गणपति मन्त्र से चार बार हवन करे। इस प्रकार की संस्कृत अग्नि में देवता का ध्यान करके मूल मन्त्र से गन्धादि से पूजा करे। अग्नि और देवता में ऐक्य की भावना करे। मूल मन्त्र के साथ स्वाहा जोड़कर आज्य पायस तिल चावल व्रीहि यव भात में से किसी एक को घृत व्यतिरिक्त द्रव्य से तिगुना योग और केवल घृतयोग करके पच्चीस आहुति डाले। मूल मन्त्र के षडङ्ग मन्त्र से छः आहुति, मूल मन्त्र से पच्चीस आहुति से हवन करके आवरण देवताओं को एक-एक आज्याहुति प्रदान कर ॐ भूरग्नये च पृथिव्यै च महते च स्वाहा ॐ भुवो वायवे चान्तरिक्षाय च महते च स्वाहा ॐ स्वरादित्याय च दिवे च महते च स्वाहा ॐ भूर्भुवः स्वः चन्द्रमसे च नक्षत्रेभ्यश्च दिग्भ्यश्च महते च स्वाहा—इस प्रकार चार आज्याहुति के बाद ॐ इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारजाग्रत्स्वप्नसुषुप्ति-अवस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यां उदरेण शिश्ना यत्स्मृतं यदुक्तं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा—मन्त्र से आठ या एक आज्याहुति देकर अग्नि की पूर्ववत् पूजा करके 'न्यूनातिरिक्तसिद्ध्यर्थं ददामि सघृतं तिलम् ॐ ह्रं साङ्गं कुरु कुरु स्वाहा' कहकर तिलों से एक आहुति प्रदान कर इस प्रकार प्रार्थना करे—

ॐ सहस्रार्चिर्महातेजा नमस्ते बहुरूपधृक्। सर्वाशिने सर्वगत पावकाय नमोऽस्तु ते।।
त्वं रौद्रघोरकर्मा च घोरहा त्वं नमोऽस्तु ते। विष्णुस्त्वं लोकपालोऽसि शान्तिमत्र प्रयच्छ मे।।

इस प्रकार अग्नि से प्रार्थना करके स्रुक में घी भरकर उस पर फूल रखकर अधोमुख स्रुवा से उसके मुख को शङ्खवत् सम्पुटित करके पकड़कर उठाकर मूल मन्त्र में वौषट् लगाकर तीन आहुति दे। प्रोक्षणी पात्रस्थ जल से अग्नि का परिसेचन करे। मूल मन्त्र से अपने इष्टदेव की पूजा करे। संहार मुद्रा से पूजा चक्र में विसर्जन करे। अपने हृदय में उद्वासन करे। अग्नि की पूजा करके इस प्रकार प्रार्थना करे—

भो भो वह्ने महाप्राज्ञ सर्वकर्मप्रसाधक। कर्मान्तरेऽपि सम्प्राप्ते सान्निध्यं कुरु सादरम्।

प्रार्थना के बाद संहार मुद्रा से अपने हृदय में उसका उद्वासन करे।

सामान्येन मन्त्रान्तराणां नित्यपूजाविधिः

अत्र नित्यपूजाविधिस्तु श्रीविद्यायाः प्रागेव (१० श्वा०) निरूपितः। सांप्रतं सामान्यतः सर्वेषां मन्त्राणां नित्यपूजाविधिः प्रदर्श्यते। पूजा द्विविधा अनिर्माल्या सनिर्माल्या चेति। अनिर्माल्या मानसपूजा, सनिर्माल्या बाह्यपूजा। तदुक्तं तत्त्वसारे—

अनिर्माल्यं सनिर्माल्यमर्चनं द्विविधं मतम्। दिव्यैर्मनोभवैर्द्रव्यैर्गन्धपुष्पैः स्रगादिभिः ॥१॥
यदर्चनमनिर्माल्यं दिव्यभोगापवर्गदम्। ग्राम्यारण्यादिसंभूतैर्यागद्रव्यैर्मनोरमैः ॥२॥
भक्तैर्यत्क्रियते सम्यक्सनिर्माल्यं तदर्चनम्। जातमात्राणि पुष्पाणि घ्रातान्येव निसर्गतः ॥३॥
पञ्चभिश्च महाभूतैर्भानुना शशिना तथा। प्राणिभिश्च द्विरेफाद्यैश्चोष्यन्ते च न संशयः ॥४॥

अतो निर्माल्यमित्युक्तम् इति। अत्र चाद्ये यतीनामधिकारः। यदाहागस्त्यः—'द्विविधं स्याल्लब्धमनोर्बाह्यान्तर-मुपासनम्। न्यासिनामान्तरं प्रोक्तमिति'। यत्तु—

मनसा पूजयेद्योगी पुष्पैर्वारण्यसंभवैः। शिवार्थं पुष्पहिंसायां न भवेत्स तु हिंसकः ॥१॥
तत्तु जितेन्द्रिययतिपरम्।

परिव्राड् ज्ञानमात्रेण होमदानादिभिर्विना। सर्वदुःखपिशाचेभ्यो मुक्तो भवति नान्यथा ॥२॥
पुण्यस्त्रियो गृहस्थाश्च मङ्गलैर्मङ्गलार्थिनः। पूजोपकरणैः कुर्युर्दद्युर्दानानि चार्हणाम् ॥३॥
वानप्रस्थाश्च यतयो यद्येवं कुर्युरन्वहम्। संस्कारान्न निवर्तन्ते विद्यातिक्रमदोषतः ॥४॥
आरूढपतिता ह्येते भवेयुर्दुःखभाजनम्।

इति कुम्भसंभवोक्तेरेव यतीनामसंयतेन्द्रियत्वं दोषायैव, अतस्तेषां मानसपूजनमेव विहितमिति। यद्वा सर्वेषा-मेवाधिकारः। यदुक्तं पद्मपुराणे—

स्मरणे पूजने विष्णोस्तथा मानसपूजने। सदाधिकारः सर्वेषां महापातकिनामपि ॥१॥ इति।

अन्यत्र तु गृहस्थानामेवाधिकारः। यदुक्तमगस्त्येन—'अन्येषामुभयं तथेति'। अन्येषां गृहस्थानामुभयं बाह्यमाभ्यन्तरं च। अत्रान्तर्यजनं बाह्यार्चनस्याङ्गत्वेनोक्तं, न केवलं मानसार्चने निषेधदर्शनात्। यदाह स्वयमेव—

न गृही ज्ञानमात्रेण परत्रेह च मङ्गलम्। प्राप्नोति चन्द्रवदने दानहोमादिभिर्विना ॥१॥
गृहस्थो यदि दानानि दद्यान्न जुहुयादपि। पूजयेद्विधिनानेन कः कुर्यादितदन्वहम् ॥२॥
न ब्रह्मचारिणो दातुमधिकारोऽस्ति भामिनि। नारण्यवासिनां शक्तिर्न ते सन्ति कलौ युगे ॥३॥
गुरुभ्योऽपि च सर्वेभ्यः को वा दातुमपेक्षते। इति।

अत्र—

घ्रातं पुष्पफलं सिद्धेरलं नो मानसाद्यथ। तस्मादपरिहार्यत्वादन्यथा चानुपायतः ॥५॥
अल्पबुद्धित्वतो नृणां बाह्यपुष्पैर्भवेत् प्रिये।

इति यत्तत्त्वसारवचनं तत्तदङ्गभूतस्याभ्यन्तरयजनस्यात्यन्तमावश्यकत्वं गृहस्थानामुपपादयतीति। तस्माद् गृहस्थानां बाह्यपूजैव नित्या, सा च पञ्चविधा।

श्रीविद्या की नित्य पूजा विधि पूर्व में निरूपित की जा चुकी है। अब सामान्यत: सभी मन्त्रों की नित्य पूजां विधि को प्रदर्शित किया जाता है। पूजा दो प्रकार की होती है—अनिर्माल्या और सनिर्माल्या। अनिर्माल्या पूजा मानसिक होती है और सनिर्माल्या पूजा बाह्य होती है। जैसा कि तत्त्वसार में कहा भी गया है—

अनिर्माल्या-सनिर्माल्या के भेद से पूजा दो प्रकार की होती है। दिव्य मानसिक द्रव्य, गन्ध-पुष्प-माला आदि से की जाने वाली पूजा अनिर्माल्या होती है, वह दिव्य भोग एवं अपवर्ग-प्रदायक होती है। गाँव अथवा जंगल में उत्पन्न मनोरम उपचारों से भक्तिपूर्वक जो पूजा होती है, उसे सनिर्माल्या कहते हैं। पाँच महाभूतों से उत्पन्न पुष्पों को स्वभावत: सूर्य-चन्द्र सूँघते हैं।

प्राणियों में भ्रमर उसका आस्वादन करते हैं, इसीलिये इसे निर्माल्य कहा गया है। अनिर्माल्या पूजा मात्र संन्यासियों के लिये होती है। यह जो कहा है कि योगी मानसिक पूजा करे या वन में उत्पन्न फूलों से करे, शिव के लिये फूल तोड़ने से हिंसा नहीं होती और न ही तोड़ने वाला हिंसक होता है—यह वचन जितेन्द्रिय यतिपरक है।

संन्यासी होम-दान आदि किये बिना ज्ञानमात्र से ही सभी दु:खों एवं पिशाचों से मुक्त हो जाता है, दूसरे प्रकार से नहीं। मंगल की कामना वाले गृहस्थ एवं पुण्यस्त्रियाँ मङ्गलदायक उपकरणों से पूजा करें एवं योग्य पात्र में दान करें। ऐसा करने से ही उनका कल्याण होता है। वानप्रस्थ और यति यदि इस प्रकार प्रतिदिन करते हैं तो भी संस्कारों से छुटकारा नहीं पाते; क्योंकि इसमे विद्या अतिक्रम का दोष होता है। इस दोष से पतित होकर वे दु:ख के भागी होते हैं—अगस्त्य की इस उक्ति के अनुसार यतियों में संयतेन्द्रियत्व दोष है; अत: उनके लिये मानस पूजा ही विहित है। जैसा कि पद्मपुराण में भी कहा है कि विष्णु के स्मरण, पूजन और मानस पूजन में सदैव सबका अधिकार है। महापापियों को भी इसका अधिकार है। अन्यत्र केवल गृहस्थों को ही इसका अधिकारी कहा गया है। अगस्त्य ने भी कहा है गृहस्थों का बाह्य एवं आन्तर दोनों उपासना का अधिकार है। यहाँ पर अन्तर्यजन बाह्यार्चन के अङ्गरूप में कथित है, न कि केवल मानसार्चन में; क्योंकि गृहस्थों के लिये मानसार्चन का निषेध है, जैसा कि स्वयं अगस्त्य ने ही कहा है कि गृहस्थ को दान-हवन के बिना ज्ञानमात्र से परलोक में या इस लोक में मङ्गल नहीं होता है। गृहस्थ यदि अन्नदान न करे, हवन न करे, विधिपूर्वक पूजन न करे तो और कौन कर सकता है? ब्रह्मचारियों को दान का अधिकार नहीं है और न ही वनवासियों में दान की शक्ति है; साथ ही कलियुग में वे दोनों हैं भी नहीं। गुरु को और सबों को कौन दान देगा? मन से भी फूलों फलों को सूँघा नहीं जाता। इसलिये कोई दूसरा उपाय न होने के कारण उपचारों से पूजन अपरिहार्य है। अल्प बुद्धि वाले मनुष्य को पुष्पों से बाह्य पूजा करनी चाहिये—इस तत्त्वसार वचन के अनुसार बाह्य पूजन के अङ्गरूप में आभ्यन्तर पूजन गृहस्थों के लिये अत्यन्त आवश्यक है। इसलिये गृहस्थों को बाह्य पूजा प्रतिदिन करनी चाहिये, जो कि पाँच प्रकार की होती है।

गृहस्थानां बाह्यपूजा पञ्चधा

उक्तं च मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—

पूजा पञ्चविधा प्रोक्ता पञ्चरात्रादितन्त्रके। ताश्चाभिगमना चोपादानेज्याध्याययोगकाः ॥१॥
तत्राभिगमना नाम मन्त्रिभिः परिकीर्त्यते। संमार्जनोपलेपादिसंस्कारो देवमन्दिरे ॥२॥
उपादानं भवेद् देवपूजासाधनमेलनम्। ततश्चापि भवेदन्या गन्धपुष्पादिभिः पुनः ॥३॥
पीठपूजा च देवस्य साङ्गावरणपूजनम्। मन्त्रार्थभावनापूर्वं जपो मन्त्रस्य कीर्तनम् ॥४॥
तच्छास्त्राध्ययनं सम्यक्स्वाध्यायो मन्त्रिभिः स्मृतः। गुरुदेवात्मनामैक्यभावना योग उच्यते ॥५॥
सालोक्यमपि सारूप्यं सामीप्यं सार्ष्टिनामकम्। सायुज्यमपि पञ्चानां फलान्येवं विदुः क्रमात् ॥६॥ इति।

मन्त्रतन्त्रप्रकाश में कहा गया है कि पञ्चरात्रादि तन्त्रों में पूजा पाँच प्रकार की कही गई है। वह अभिगमना, उपादाना, इज्या, स्वाध्याय और योगरूपा है। इनमें अभिगमना मान्त्रिकों के लिये है; इसमें सम्मार्जन-उपलेप आदि संस्कार मन्दिरों में किये जाते हैं। उपादाना देवपूजन-हेतु साधन के एकत्रीकरण को कहते हैं। गन्ध-पुष्पादि से पीठ पूजा और देवता का साङ्ग सावरण पूजन, मन्त्रार्थ भावनापूर्वक जप और मन्त्र का कीर्तन इज्या कहलाता है। इष्ट से सम्बन्धित शास्त्रों का सम्यक् अध्ययन स्वाध्याय कहा जाता है। गुरु-देवता एवं आत्मा में ऐक्य भावना ही योग है। यह योग भी सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य, सार्ष्टि एवं सायुज्य के भेद से पाँच प्रकार का होता है।

प्रातःप्रधानभूतेज्यानिरूपणम्

तत्रादाविज्यानिरूपणेन सर्वासामपि निरूपणं स्यादित्यतः प्रधानभूतेज्या निरूप्यते। तत्र श्रीनारदपञ्चरात्रे—

निशावसाने शयनात् स्मृत्वा नारायणं प्रभुम्। उत्थाय दक्षिणाङ्गेन वामपादं न्यसेद्भुवि ॥१॥

निशावसाने पश्चिमे यामे।

केचिद्वा मध्यमौ यामौ रात्रौ सुप्त्वा विशांपते। संचिन्तयन्ति धर्मार्थौ याम उत्थाय पश्चिमे ॥२॥

इति भारतोक्तेः। दक्षिणाङ्गेनोत्थाय नारायणं स्मृत्वेति संबन्धः। नारायणमित्युपलक्षणं तेन स्वष्टदेवतां स्मृत्वेत्यर्थः। उत्तरतन्त्रे—

रात्रिशेषे समुत्थाय कृत्वावश्यकमादरात्। रात्रिवासः परित्यज्य वाससी परिधाय च ॥१॥
आचम्य शुद्धदेहः सन् देवतायागमन्दिरम्। मार्जयित्वोपलिप्याथ भक्तियुक्तस्तु शक्तिभिः ॥२॥
उपविश्य शुचौ देशे प्राङ्मुखः प्रोक्त आसने। प्राणायामत्रयं कृत्वा कृत्वा न्यासं विधानतः ॥३॥
न्यासमृष्यादिन्यासम्।

निर्माल्यमपकृष्याथ दद्यात् पुष्पाञ्जलिं तथा। अर्घ्यपाद्ये निवेद्याथ दद्याद्वै दन्तधावनम् ॥४॥
मुखप्रक्षालनं दत्त्वा दद्यादाचमनीयकम्। करास्यप्रोञ्छनायाथ दद्याद्वासोऽमलं शुभम् ॥५॥ इति।

उपर्युक्त पाँचों पूजा में प्रधान होने के कारण इज्या का निरूपण करते हुये नारद पञ्चरात्र मे कहा गया है कि रात्रि के अन्तिम प्रहर में नारायण प्रभु का स्मरण करते हुये दक्षिण ओर से शय्या से उठकर बाँयाँ पैर पृथ्वी पर रखे। महाभारत के अनुसार मध्य रात्रि में सो कर पश्चिम याम में उठकर धर्म एवं अर्थ का चिन्तन करना चाहिये। उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि रात्रिशेष में उठकर आदरसहित आवश्यक कृत्य करे। रात में पहने वस्त्र को त्याग कर दूसरा वस्त्र पहने। आचमन करके शुद्ध देह होकर देवता याग मन्दिर का यथाशक्ति भक्तिपूर्वक मार्जन एवं उपलेपन करके पवित्र स्थान में विहित आसन पर पूर्वमुख बैठकर तीन प्राणायाम करके विधिपूर्वक न्यास ऋष्यादि न्यास करे। निर्माल्य हटाकर पुष्पाञ्जलि प्रदान करे। अर्घ्य-पाद्य निवेदन करके दतुवन प्रदान करे। मुखप्रक्षालन देकर आचमनीय प्रदान करे। हाथों को पोंछने के लिये स्वच्छ वस्त्र प्रदान करे।

दक्षिणामूर्तिसंहितायाम् (२४ प०)—

प्रातरुत्थाय शिरसि संस्मरेत् पद्ममुज्ज्वलम्। कर्पूराभं स्मरेत्तत्र श्रीगुरुं देवरूपिणम् ॥१॥
सुप्रसन्नं लसद्भूषामण्डितं शान्तिभूषितम्।

इति पद्मं शिरसि। 'गुरुपादाम्बुजद्वन्द्वं संस्मरेन्निजमूर्धनि' इत्युत्तरतन्त्रवचनात्। भैरवतन्त्रे—

व्योमाम्बुजे कर्णिकमध्यसंस्थे सिंहासने संस्थितदिव्यमूर्तिम्।
ध्यायेद्गुरुं चन्द्रशिलाप्रकाशं सत्पुस्तकाभीतिवरान् दधानम् ॥१॥
श्वेताम्बरं श्वेतविलेपपुष्पमुक्ताविभूषं मुदितं त्रिनेत्रम्।
वामाङ्कपीठस्थितरक्तशक्तिं मन्दस्मितं सान्द्रकृपानिधानम् ॥२॥
रक्ताङ्गरागाभरणाम्बराढ्यां स्मेराननां पीनकुचां प्रियाङ्के।
वामे निषण्णामतिरक्तकान्तिं वामेन लीलाकमलं करेण ॥३॥
ध्यायेद् दधानामपरेण नाथमाश्लिष्य गाढं द्विभुजां त्रिनेत्राम्।

अर्चयेद्गन्धपुष्पाद्यैर्बहिष्ठैर्मानसैस्तु वा। नामभिस्तस्य संकेतसंसिद्धैर्गुरुकीर्तनैः ॥४॥
तदज्ञाने गुरुभ्योऽथ नमोऽन्ते वै समर्चयेत्। स्तुवीत स्तुतिभिः प्रीत आचार्यं सर्वसिद्धये ॥५॥ इति।

दक्षिणामूर्तिसंहिता में कहा गया है कि सबेरे उठकर शिर में उज्वल पद्म का स्मरण करे। उसमें कपूर की आभा वाले अतीव प्रसन्न, अलंकरणों से सुशोभित एवं परम शान्त देवरूपी गुरु का स्मरण करे। उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि गुरु के चरणकमल का स्मरण अपने मूर्धा में करना चाहिये। भैरवतन्त्र में कहा गया है कि आकाश कमल की कर्णिका में स्थित सिंहासन पर संस्थित दिव्य मूर्ति गुरु का ध्यान करे। वह गुरु चन्द्रमा के समान प्रकाशित हैं, अपने हाथों में अभय और वरमुद्रा धारण किये हैं। श्वेत वस्त्र, श्वेत चन्दन, श्वेत पुष्प एवं मोतियों को धारण किये हैं, उनके नेत्र बन्द हैं, उनके बाँयीं गोद में मन्द हास्य करती हुई अशेष करुणामूर्ति रक्तशक्ति विराजमान है; लाल अङ्गराग, आभूषण एवं वस्त्र से सुशोभित प्रसन्नमुखी उन्नत स्तनों वाली प्रिया उनकी गोद में वाम भाग में बैठी है; जिसके बाँएँ हाथ में लीलाकमल है और दूसरे हाथ से अपने स्वामी का गाढ आलिङ्गन की हुई है। साथ ही उसके दो हाथ और तीन नेत्र हैं। उस गुरु की गन्ध-पुष्पादि से बाह्य या मानस पूजा नाम से करे। गुरुकीर्तन से संकेत सिद्ध होता है। उसके ज्ञात न होने पर गुरु का अर्चन 'गुरुभ्यो नमः' कहकर करे। स्तोत्रों से उनकी स्तुति करे। आचार्य के प्रसन्न होने पर सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

प्रातः स्मरणातिरिक्तकाले स्वगुरुध्यानमाह शैवागमे—

दीक्षाकाले यथारूपं स्वस्यानुग्रहकर्मणि। दृष्टं तत्तेन भावेन ध्यायन्नाह्निकमाचरेत् ॥१॥ इति।

वैखानसपञ्चरात्रे—'तथैव रात्रिशेषं च कालं सूर्योदयावधि'। अरुणोदयावधीत्यर्थः। तस्यैव स्नानकालत्वात्—'कर्तव्यं सजपं ध्यानं नित्यमाराधकेन वै' इति। कपिलपञ्चरात्रे—

विभज्य पञ्चधा रात्रिं शेषे देवार्चनादिकम्। जपं होमं तथा ध्यानं नित्यं कुर्वीत साधकः ॥१॥ इति।

उत्तरतन्त्रे—

इति स्तुत्वा हृदि स्वीये ध्यायेदिष्टां च देवताम्। गुरुदेवतयोरैक्यं भावयेच्च निराकुलः ॥१॥
इष्टार्थप्रार्थनां कृत्वा ह्याज्ञां संप्रार्थयेत्ततः। इष्टदेवस्य भूमेश्च तस्यां श्वासानुसारतः ॥२॥
विन्यस्य पादमुत्थाय कुर्यादावश्यकीं क्रियाम्।

प्रार्थनाश्लोकस्त्वग्रे वक्ष्यते। 'इत्थमुच्चार्य लब्धाज्ञो देशिकः शौचमाचरेत्' इति।

प्रातःस्मरण के अतिरिक्त समय में गुरु का ध्यान—प्रातःकाल के अतिरिक्त समय में गुरु के ध्यान का निरूपण करते हुये शैवागम में कहा गया है कि दीक्षाकाल में एवं अनुग्रह कर्म में गुरु का जैसा रूप होता है, उसी रूप का ध्यान करके दैनिक कर्म का प्रारम्भ करे। वैखानसपञ्चरात्र में भी कहा है कि रात्रिशेष होने पर अरुणोदय वेला में जप सहित ध्यान नित्य करना चाहिये। कपिलपञ्चरात्र में कहा गया है कि रात्रि का पाँच विभाग करके अन्तिम भाग में साधक को देवार्चन, जप, होम एवं ध्यान नित्यप्रति करना चाहिये। उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि इस प्रकार स्तुति करके अपने हृदय में इष्टदेवता का ध्यान करे। गुरु एवं देवता में ऐक्य की भावना करे। इष्ट की प्रार्थना करके उससे आज्ञा प्राप्त करे। प्रवाहमान श्वास की ओर के पैर को भूमि पर उठाकर रखे, तब आवश्यक क्रिया करे। इस प्रकार आज्ञा प्राप्त करके देशिक शौच आदि क्रिया करे।

मूलमूत्रशौचादिनिर्णयः

नारदपञ्चरात्रे—

पदे पदे स्मरेदस्त्रं दूरे यायाद् गृहालयात्। तत उद्वासयेद्देवान् मन्त्रेणानेन देशिकः ॥१॥
तृणलोष्टप्रक्षेपेण दत्त्वा तालत्रयं पुनः। उत्तिष्ठन्त्वृषयो देवा गन्धर्वा यक्षराक्षसाः ॥२॥
परितस्त्यजतां स्थानं विण्मूत्रोत्सर्जनाय मे। कृत्वा मलच्युतिं तत्र वाससा कं प्रवेष्ट्य च ॥३॥
(कं मस्तकम्।)

खं दिशश्चानवीक्षेत ततो यायाज्जलाशयम्। शौचं कृत्वा यथाशास्त्रं विधिनाचमनं ततः ॥४॥
दन्तकाष्ठं ततो भुक्त्वा स्नायात्तदनु नारद।

द्विजेति नारदसंबोधनम्। आलयाद् दूरे इषुक्षेपदूरमतीत्य। 'निर्ऋत्यामिषुविक्षेपमतीत्याभ्यधिकां भुव'मिति विष्णुवचनात्। शौचमाह नारदपञ्चरात्रे—

तिस्रो लिङ्गे मृदो देया एकैकान्तरमृत्तिकाः। पञ्च वामकरे देयास्तिस्रः पाण्योर्विशुद्धये ॥१॥
मूत्रोत्सर्गे विशुद्धिः स्यात्पुरीषस्याप्यनन्तरम्। पञ्चापाने मृत्तिकाः स्युरेकैकान्तरमृत्तिकाः ॥२॥
दश वामकरे देयाः सप्त तूभयहस्तयोः। पादयोस्तिसृभिः शुद्धिर्जङ्घाशुद्धिस्तु पञ्चभिः ॥३॥
नियोजयेत्ततो विप्र कट्यां वै सप्त मृत्तिकाः। स्वदेहे स्वेददोषघ्नं ब्राह्मणः कर्मसिद्धये ॥४॥
भक्तानां क्षत्रियाणां च वर्षास्वेवं निरूपितम्। प्रावृण्मुक्तावथैतस्मादेकमृदपनोदनम् ॥५॥
शरद्ग्रीष्मवसन्तेषु नित्यं कार्यं क्रियापरैः। एतस्मादपि चैकैकां मृत्तिकां परिलोपयेत् ॥६॥
हेमन्ते शिशिरे चैव श्रोत्रियः संयतः स्थितः। पथि शौचं विधातव्यं देशकालानुरोधतः ॥७॥
गन्धलेपमपास्यैव मनःशुद्ध्या विशुध्यति। इति।

एकैकान्तरमृत्तिका इत्ययमर्थः—प्रथममेकवारं मृज्जलैर्लिङ्गं प्रक्षाल्य ततो वामकरं मृज्जलैः प्रक्षाल्य पुनर्लिङ्गमिति क्रमेण। कपिलपञ्चरात्रे—

यद् दिवा विहितं शौचं तदर्धं निशि कीर्तितम्। तदर्धमातुरे प्रोक्तमातुरस्यार्धमध्वनि ॥१॥ इति।

नारदपञ्चरात्र में कहा गया है कि पग-पग पर अस्त्रमन्त्र का स्मरण करते हुए घर से दूर जाय। तदनन्तर मन्त्र से देवता को उद्वासित करे। घास-ढेला फेंककर तीन ताली बजाकर इस प्रकार कहे—

उत्तिष्ठन्त्वृषयो देवा गन्धर्वा यक्षराक्षसाः। परितस्त्यजतां स्थानं विण्मूत्रोत्सर्जनाय मे।।

वहाँ पर वस्त्र को माथे में लपेटकर मलत्याग करे। तत्पश्चात् आकाश की ओर न देखते हुये जलाशय पर आये। यथाशास्त्र पवित्र होकर आचमन करे। दतुवन करके स्नान करे।

शौचनिर्णय—नारदपञ्चरात्र में कहा गया है कि शौच के लिये एक-एक कर लिङ्ग में तीन बार मिट्टी लगाये। बाँयें हाथ में पाँच बार मिट्टी लगाये एवं तीन बार दोनों हाथों में मिट्टी लगाये। ऐसा करने से मूत्रोत्सर्ग में शुद्धि होती है। मलत्याग के बाद मलद्वार को बारी-बारी से पाँच बार मिट्टी लगाकर धोये। बाँयें हाथ में दश बार मिट्टी लगाकर धोये। दोनों हाथो को सात बार मिट्टी से धोये। पैरों को तीन बार धोये। जङ्घाशुद्धि पाँच बार मिट्टी लगाकर धोने से होती है। तदनन्तर कमर में सात बार मिट्टी लगाये। शरीर में स्वेद दोष के शोधन के लिये एवं कर्मसिद्धि के लिये ब्राह्मण देह में इस प्रकार मिट्टी लगाये। भक्त और क्षत्रियों के लिये वर्षा ऋतु में एक ही मिट्टी लगाने से शुद्धि कही गई है। शरद-ग्रीष्म और वसन्त में दूसरी क्रियाओं को नित्य करते हुये इनमें से एक-एक मिट्टी का लोप करे। हेमन्त-शिशिर में श्रोत्रिय संयत होकर स्थित रहे। देश-काल के अनुसार रास्ते में शौच करे। रास्ते में गन्ध-लेप को दूर करके मन की शुद्धि होने से ही दैहिक शुद्धि होती है। एकैकान्तर मृत्तिका का अर्थ यह है कि पहले एक बार मिट्टी एवं जल से लिङ्ग धोकर तब बाँयें हाथ को मिट्टी एवं जल से धोकर पुनः लिङ्ग में मिट्टी लगाकर उसे जल से धोये।

कपिलपञ्चरात्र में कहा गया है कि दिन में जो शौच विहित है, उसका आधा रात में करे। उसका भी आधा आतुर के लिये कहा गया है एवं उसका भी आधा रास्ते में कहा गया है।

दन्तकाष्ठमन्त्रः

दन्तकाष्ठे मन्त्रमाह दक्षिणामूर्तिः—

क्लीमन्ते कामदेवाय सर्वान्ते जन चालिखेत्। प्रियायेति हृदन्तोऽयं स मनुर्दन्तशुद्धये ॥१॥ इति।

पञ्चमीश्वरतन्त्रे—

प्रत्यहं दन्तकाष्ठं तु प्लक्षकाष्ठं तु मारणे। मोहने खादिरं प्रोक्तं स्तम्भने चूतपल्लवम् ॥१॥
वश्ये चाश्वत्थकाष्ठं तु रक्षार्थं वञ्जुलस्य हि। अयं क्रमो महादेवि त्रिलोकेषु न विद्यते ॥२॥ इति।

उत्तरतन्त्रे—'वक्त्रं मूलाणुना नित्यं क्षालयेत् सिद्धिहेतवे' इति।

दक्षिणामूर्ति के अनुसार दतुवन का मन्त्र इस प्रकार है—क्लीं कामदेवाय सर्वजनप्रियाय नमः। यह दन्तशुद्धि मन्त्र है।

पञ्चमीश्वर तन्त्र में कहा गया है कि प्रतिदिन दतुवन करे। मारण में पाँकड़ का, मोहन में खैर का, स्तम्भन में आम का, वशीकरण में पीपल का एवं रक्षा में अशोक का दतुवन करना चाहिये। तीनों लोकों में दतुवन करने का यही क्रम मान्य है। उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि सिद्धि के लिये नित्य मुंह धोना चाहिये।

स्नानविधिस्तद्भेदाः

अथ स्नानं, तच्च त्रिविधमौदकमन्त्रध्यानभेदात्। तत्रौदकं स्नानं नारदपञ्चरात्रे—

अथाधिकारसिद्ध्यर्थं स्नानं वक्ष्यामि पूर्वतः। येन भक्तोऽभिषिक्तस्तु यागहोमार्हतां व्रजेत् ॥१॥

शङ्कुनास्त्राभिजप्तेन शुचिस्थानात्तु मृत्तिकाम्। गृहीत्वास्त्रेण संचिन्त्य यायाज्जलनिकेतनम् ॥२॥
तत्रादौ जलकूलं तु क्षालयेदस्त्रवारिणा। मृदं कृत्वा द्विधा तत्र एकभागोपगं ततः ॥३॥
निधानय गोमयं दर्भांस्तिलाश्चाप्यभिमन्त्रितान्। लौकिकं गौणं मध्येन भागेनैकेन यत्नतः ॥४॥
मलस्नानं पुरा कृत्वा विधिस्नानं समाचरेत्। इति।

अभिमन्त्रितानस्त्रेण। विधिस्नानं वैदिकस्नानम्। स्मृतिसमुच्चये—'न प्रातर्मृत्तिकास्नानं न कुर्यान्निशि गोमयै'रिति।

स्नान—स्नान तीन प्रकार का होता है—जलस्नान, मन्त्रस्नान एवं ध्यानस्नान। जलस्नान के विषय में नारदपञ्चरात्र में कहा गया है कि अधिकारी होने के लिये पहले स्नान का वर्णन करता हूँ, जिससे अभिषिक्त होकर भक्त को याग एवं होम की अर्हता प्राप्त होती है। पवित्र स्थान की मिट्टी को खनती से निकालकर अस्त्र मन्त्र से ग्रहण करके जलाशय के पास आये। जल के तट को पहले अस्त्र मन्त्राभिमन्त्रित जल से धोये, तदनन्तर मिट्टी का दो भाग करके एक भाग को अभिमन्त्रित गोबर, कुश, तिल के साथ मिला दे। मलस्नान करके विधिस्नान करे। स्मृतिसमुच्चय में कहा गया है कि प्रातःकाल मृत्तिका स्नान और सायंकाल गोमय स्नान नहीं करना चाहिये।

तान्त्रिकस्नानम्

वसिष्ठसंहितायाम्—

कृत्वादौ वैदिकं स्नानं ततस्तान्त्रिकमाचरेत्। विन्यस्याङ्गे षडङ्गानि प्राणायामपुरःसरम् ॥१॥
श्रीसूर्यमण्डलात् तीर्थमाकृष्याङ्कुशमुद्रया। अत्मरक्षां ततः कुर्याद्वारिक्षेपेण चास्त्रतः ॥२॥
निमज्ज्य तत्र श्रीदेवं ध्यायन् शक्त्या मनुं जपेत्। उन्मज्ज्य कुम्भमुद्राञ्च बद्ध्वा सिञ्चेत्स्वमूर्धनि ॥३॥

तीर्थावाहनमन्त्रास्तु प्रयोगे वक्ष्यन्ते। एतत्तीर्थेऽपि फलातिशयार्थं सावाहनं स्नानमभिधाय वह्निपुराणे—
योऽनेन विधिना स्नायाद्यत्र कुत्र जले द्विजः। स तीर्थफलमाप्नोति तीर्थे दशगुणं फलम् ॥१॥ इति।

सिञ्चेत् सप्तधा त्रिधा वा। 'सप्तकृत्वोऽभिषिच्याथ मनुना मन्त्रितैर्जलै'रिति कपिलवचनात्। 'त्रिधाभिषिच्य मूलेने'ति उत्तरतन्त्रात्। तथा—'ततः संक्षेपतो देवान् मनुष्यांस्तर्पयेत् पितॄन्' इति। स्नाने विशेषमाह त्रिपुरार्णवे—

विधाय वैदिकं स्नानं ततस्तान्त्रिकमाचरेत्। मृदमस्त्रेण चादाय तेन तामभिमन्त्र्य च ॥१॥
शिखामन्त्रेण संशोध्य मन्त्रयेन्मूलमन्त्रतः। मूर्धादिपादपर्यन्तं विलिप्य च तया वपुः ॥२॥
संमुखीकरणीं मुद्रां बद्ध्वा प्राणान्निरुध्य च। निमज्ज्य तूष्णीमुत्थाय नाभिमात्रजले स्थितः ॥३॥
प्राणायामं ततः कृत्वा मूलमन्त्रेण मन्त्रवित्। विन्यस्य च षडङ्गानि कल्पयेत्तीर्थमग्रतः ॥४॥
ततः संप्रार्थयेत्तीर्थं सूर्यात्तन्मण्डलं ततः। सृणिमन्त्रेण मन्त्रज्ञो भित्त्वा चाङ्कुशमुद्रया ॥५॥
तीर्थावाहनमन्त्रेण तीर्थमावाहयेत्प्रिये। मूलमन्त्रेण संयोज्य कल्पिते तीर्थमण्डले ॥६॥
तीर्थशक्तिं च तत्रैव समावाह्यार्कमण्डलात्। ध्यात्वा तन्मनुनाभ्यर्च्य गङ्गामन्त्रेण मन्त्रयेत् ॥७॥
सप्तकृत्वः शिवे वच्मि शृणु मन्त्रद्वयं प्रिये। जलस्थं व्योम षड्दीर्घस्वरभिन्नं सबिन्दुकम् ॥८॥
सर्वानन्दमये तीर्थशक्ति चैहियुगं द्विठः। इति।

जलं वकारः, व्योम हकारः, तेन ह्व एतत् षड्दीर्घस्वरभिन्नं ह्वांह्वींह्वूंह्वैंह्वौंह्वः इति, द्विठः स्वाहाकारः। तथा—'एकविंशाक्षरः प्रोक्तस्तीर्थशक्तिमनुः प्रिये'। अत्र शक्तीति संबोधनपदं दिव्यत्वात्। चकारो विसन्धिद्योतकः एकविंशाक्षर इत्युक्तेः।

तारं नमो भगवति ब्रूयादम्बे ततोऽम्बिके। अम्बालिके महामालिन्येह्येहि भगवत्यथ ॥९॥
अशेषतीर्थालवाले मायाश्रीबीजयोरथ। शिवजटाधिरूढे च गङ्गे गङ्गाम्बिके द्विठः ॥१०॥
गङ्गाविद्येयमाख्याता त्रिपञ्चाशद्भिरक्षरैः। इति।

तारः प्रणवः, माया ह्रीं, द्विठः स्वाहाकारः, अम्बे इति दिव्यत्वात्। अन्यत्सुगमम्। तथा—

भुवनेश्या समालेख्यामृतीकृत्य सुधाणुना। कवचेनावगुण्ठ्याथ संरक्ष्यास्त्रेण मन्त्रयेत्॥११॥
मूलेन देवतां तत्र साङ्गां सावरणां प्रिये। समावाह्य जले ध्यात्वा तत्पदद्वयनिर्गतम्॥१२॥
ध्यात्वा तीर्थं स्मरन् मूलमन्त्रं मन्त्रेण तर्पयेत्। त्रिधा देवीं समुत्तीर्य जलाद्धौते सुवाससी॥१३॥
परिधायाथ तिलकं कृत्वा सन्ध्यां समाचरेत्। इति।

तीर्थशक्तिध्यानं प्रयोगे वक्ष्यते।

वशिष्ठसंहिता में कहा गया है कि पहले वैदिक स्नान करे तब तान्त्रिक स्नान करे। अङ्गों में षडङ्ग न्यास करके प्राणायाम-सहित श्री सूर्यमण्डल से अङ्कुश मुद्रा से तीर्थों का आकर्षण करे। अस्त्र-मन्त्र से जल छींटकर आत्मरक्षा करे। वहीं डुबकी लगाकर इष्ट का ध्यान करके मन्त्रजप करे। पुनः जल से निकालकर कुम्भ मुद्रा बनाकर अपने सात बार या तीन बार शिर का सिञ्चन करे। तीर्थ में भी अतिशय फल-प्राप्ति के लिये आवाहन-सहित स्नान का विधान करते हुयें वह्निपुराण में कहा गया है कि जहाँ-कहीं भी जल में तीर्थावाहन करके इस विधि से स्नान करता है, वह तीर्थों से दश गुना अधिक फल प्राप्त करता है। मन्त्रित जल से शिर का सिञ्चन सात बार करे। कपिल ने कहा है कि उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि मूल मन्त्र से शिर का सिञ्चन तीन बार करे। तब संक्षेप में देव और पितरों का तर्पण करे।

स्नान के सम्बन्ध में त्रिपुरार्णव में कहा गया है कि वैदिक स्नान करके तान्त्रिक स्नान करे। अस्त्र मन्त्र से मिट्टी लाकर उसे अभिमन्त्रित करके शिखामन्त्र से शोधन करके मूल मन्त्र से मन्त्रित करे। शिर से पैर तक अपने देह में उस मिट्टी का लेप लगाये। सम्मुखीकरण मुद्रा बाँधकर और प्राण को निरुद्ध करके डुबकी लगाकर बाहर निकलकर नाभिमात्र जल मे खड़ा होकर मूल मन्त्र से प्राणायाम करे। षडङ्ग न्यास करके अपने आगे तीर्थ कल्पित करे। सूर्य से तीर्थों की प्रार्थना करे। सृणिमन्त्र से उसके मण्डल को अङ्कुश मुद्रा द्वारा भेदन कर आवाहन मन्त्र से तीर्थ आवाहन करे। मूल मन्त्र से कल्पित तीर्थमण्डल से उसे युक्त कर वहीं पर सूर्यमण्डल से आवाहित तीर्थ शक्ति का ध्यान करके उसके मन्त्र से अर्चन करे। गङ्गामन्त्र से मन्त्रित करे। दो प्रकार का तीर्थ मन्त्र है—ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः सर्वानन्दमये तीर्थशक्ति एह्येहि स्वाहा। यह इक्कीस अक्षरों का तीर्थशक्ति मन्त्र है। दूसरा तिरपन अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार है—ॐ नमो भगवति अम्बे अम्बिके अम्बालिके महामालिन्येह्येहि भगवत्यथ अशेषतीर्थालवाले ह्रीं श्रीं शिवजटाधिरूढ़े गंगे गंगाम्बिके स्वाहा।

भुवनेशी 'ह्रीं' लिखकर सुधा बीज 'वं' से अमृतीकरण करे। कवच 'हूं' से अवगुण्ठित करे। अस्त्र 'फट्' से संरक्षण करे। मूल से मन्त्रित करे। मूल मन्त्र से देवता का साङ्ग-सपरिवार आवाहन करे। जल से ध्यान करे। उसके दोनों पैरों से निर्गत तीर्थ का ध्यान करे। मूल मन्त्र से तर्पण तीन बार करे। वस्त्र को निचोड़कर पृथ्वी पर तीन बार जल गिराये। जल से बाहर आकर स्वच्छ वस्त्र पहनकर तिलक लगाये एवं सन्ध्या करे।

मन्त्रस्नानविधिः

अथैतद्वारुणस्नानाशक्तानां मन्त्रस्नानविधिमाह नारदपञ्चरात्रे—

..............अथ मान्त्रं शुभं शृणु। तोयाभावे तु यत्कार्यं दुर्गे काले तु शीतले॥१॥
गमने क्षिप्रसिद्ध्यर्थं गुरुकार्येष्वतन्द्रितः। प्राप्तापद्यथ विप्रेन्द्र निशाभागे तथा मुने॥२॥
प्रक्षाल्य पादावाचम्य प्रोद्धृतेन तु वारिणा। स्थानं दश दिशः प्राग्वत्संशोध्योपविशेत्ततः॥३॥
अस्त्रं हस्ततले न्यस्य क्रमान्न्यासांस्ततस्तु वै। मूलमन्त्रादितः कुर्यात्सर्वमन्त्रगणेन वै॥४॥
केवलादुदकस्नानात् संस्कारपरिवर्जितात्। प्रभासादिषु तीर्थेषु यत्फलं स्नातकस्य तु॥५॥
ज्ञेयं दशगुणं स्नानान्मन्त्रस्नानस्य नारद।

मन्त्रस्नान—जलस्नान करने में असमर्थ लोगों के लिये मन्त्रस्नान का विधान करते हुये नारदपञ्चरात्र में कहा गया

है कि शीतल जल से स्नान करने में कठिनाई होने पर, गुरुकार्य में, शीघ्र गमन में, आपत्काल में, रात्रि में मन्त्रस्नान करे। इसके लिये पैरों को धोकर प्रोद्धृत जल से आचमन करे। दशो दिशाओं का शोधन करके आसन पर बैठकर हाथों में अस्त्रन्यास करके मूल मन्त्र से या सभी मन्त्रों से शेष न्यास करे। संस्काररहित केवल जलस्नान से एवं प्रभास आदि तीर्थों में स्नान से स्नान करने वाले को जो फल होता है, उससे दश गुना अधिक फल मन्त्रस्नान से मिलता है।

ध्यानस्नानम्

ध्यानस्नानमथो वक्ष्ये द्वाभ्यामपि परं च यत् ॥६॥
खस्थितं पुण्डरीकाक्षं मन्त्रमूर्तिप्रभुं स्मरेत्। तत्पादोदकजां धारां निपतन्तीं स्वमूर्धनि ॥७॥
चिन्तयेत्सूक्ष्मरन्ध्रेण प्रविशन्तीं स्वकां तनुम्। तया संक्षालयेत्सर्वमन्तर्देहगतं मलम् ॥८॥
तत्क्षणाद्विरजा मन्त्री जायते स्फुटिकोपमः। इदं स्नानं वरं मन्त्रात्स्नानं शतगुणं स्मृतम् ॥९॥
तस्मादेकतमं स्नानं कार्यं श्रद्धापरेण तु। स्नानपूर्वाः क्रियाः सर्वा यतः सभ्यास्तु नारद ॥१०॥
तस्मात्स्नानं पुरा कुर्याद्यदीच्छेदात्मनो हितम्। इति।

शैवागमे—
मनसा मूलमन्त्रेण प्राणायामपुरःसरम्। कुर्वीत मानसं स्नानं सर्वत्र विहितं च यत् ॥१॥ इति।

पुण्डरीकाक्षमित्युपलक्षणं तेन स्वेष्टदेवतां स्मरेदिति। मन्त्रस्तु स्वेष्टः, शैवे तु 'ततः शिवात्मकैर्मन्त्रैः कृत्वा तीर्थं शिवात्मकम्। मार्जनं संहितामन्त्रैस्तत्तोयेन समाचरेत्' इति शैवागमात्। संहिता तु—'व्योमव्यापी च यो मन्त्रः पञ्चब्रह्माणि यानि च। ये मन्त्राः शिवगायत्र्या रुद्रं चेति यथाक्रमम्। सर्वपापहराः प्रोक्ता विद्येयं शिवसंहिता' इति, व्योमव्यापी तु—'आमीमूमाद्यतो व्योमव्यापी चैव प्रकीर्तयेत्। प्रणवाद्यन्तरुद्धोऽयं व्योमव्यापी प्रकीर्तितः' इति। नारदपञ्चरात्रे—
सुधौतं परिधायाथ वस्त्रयुग्ममखेदकम्। तदभावादधःशाटीयोगपट्टकसंयुतम् ॥१॥
न चैकवाससा यस्माद् भवितव्यं कदाचन। इति।

नृसिंहपुराणे—
जलान्तिकं समासाद्य शुक्ले धौते च वाससी। परिधायोत्तरीयं च न कुर्यात्केशधूननम् ॥१॥ इति।

स्मृतिसमुच्चये—
बहिःस्नातस्तु नद्यादौ स्नानवस्त्रमधस्त्यजेत्। ऊर्ध्वं त्यजेत्स्नानवस्त्रं गृहस्नातो यदा भवेत् ॥१॥
ऊरू करौ मृदाद्भिश्च क्षालयेच्छुद्धिहेतवे। निष्पीड्य स्नानवस्त्रं तु प्रातःसन्ध्यां समाचरेत् ॥२॥
मध्याह्ने तर्पणादूर्ध्वं वस्त्रनिष्पीडनं भवेत्। इति।

यामले—'बिभृयाद्वाससी शुद्धे तिलकं वर्णभेदतः' इति। वसिष्ठः—'ऊर्ध्वपुण्ड्रं त्रिपुण्ड्रं वा कृत्वा सन्ध्यां समाचरेत्'। अत्र वाशब्दस्तूर्ध्वपुण्ड्रत्रिपुण्ड्रयोर्वर्णपरत्वोपस्थापकः। अत एव नारदपञ्चरात्रे—
ब्राह्मणस्योर्ध्वपुण्ड्रं स्यात्क्षत्रियस्य त्रिपुण्ड्रकम्। वैश्यपुण्ड्रमर्धचन्द्रं शूद्राणां वर्तुलाकृति ॥१॥ इति।

ध्यान स्नान—उपर्युक्त दोनों से श्रेष्ठ ध्यान स्नान है। आकाशस्थित पुण्डरीकाक्ष मन्त्रमूर्ति का स्मरण करे। उनके पैरों से निकलती जलधारा अपने मस्तक पर गिर रही है और वह धारा शरीरस्थ सूक्ष्म छिद्रों के माध्यम से मेरे शरीर में प्रवेश कर रही है—ऐसा चिन्तन करे। उससे देह के भीतर स्थित सभी मलों को प्रक्षालित करे। ऐसा चिन्तन करते ही मन्त्री निर्मल स्फटिक के समान स्वच्छ हो जाता है यह स्नान मन्त्रस्नान से सौ गुना अधिक श्रेष्ठ है। इसलिये कोई एक स्नान श्रद्धापूर्वक करे। स्नानपूर्व की सभी क्रियाये करना सामाजिक नियम है। इसलिये यदि अपने कल्याण की कामना हो तो स्नान अवश्य करना चाहिये। शैवागम में कहा गया है कि मूलमन्त्र से प्राणायाम करके सर्वत्र विहित मानस स्नान करे।

नारदपञ्चरात्र में कहा गया है कि स्नान के पश्चात् स्वच्छ निर्मल, अकष्टकर दो वस्त्र धारण करे। उसके अभाव में धोती और गमछा धारण करे; क्योंकि कभी भी एक वस्त्र पहनकर अर्चन नहीं करना चाहिये। नृसिंह पुराण में कहा गया है कि जल के बाहर आकर स्वच्छ सफेद धोती पहने और कन्धे पर गमछा रखे एवं केश में कंघी न करे। स्मृतिसमुच्चय में कहा गया है कि बाहर नदी आदि में स्नान करे तो स्नानवस्त्र का त्याग नीचे की ओर करे। घर में स्नान के समय स्नान वस्त्र को ऊपर से निकाले। शुद्धि के लिये जाँघ और हाथों को मिट्टी से धोये। वस्त्रों को निचोड़कर प्रात:सन्ध्या करे। मध्याह्न में तर्पण के बाद वस्त्र से पानी निचोड़े। यामल में कहा गया है कि शुद्ध वस्त्र पहनकर वर्णभेद से तिलक लगाये। वसिष्ठ ने कहा है कि वर्णानुसार ऊर्ध्वपुण्ड्र या त्रिपुण्ड्र लगाकर सन्ध्या करे। इसीलिये नारदपञ्चरात्र में कहा गया है कि ब्राह्मण को ऊर्ध्वपुण्ड्र, क्षत्रियों को त्रिपुण्ड्र, वैश्य को अर्द्धचन्द्राकार पुण्ड्र और शूद्र को गोल पुण्ड्र लगाना चाहिये।

ऊर्ध्वपुण्ड्रलक्षणम्

ऊर्ध्वपुण्ड्रलक्षणं तु कूर्मपुराणे—

यस्तु नारायणं देवं प्रपन्नार्तिहरं परम्। धारयेत्सर्वदा शूलं ललाटे गन्धवारिभिः ॥१॥
यत्तत्प्रधानं त्रिगुणं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्। धृतं तच्छूलधरणाद् भवत्येव न संशयः ॥२॥ इति।

शैवशाक्तानां तु चातुर्वर्णिकानामपि त्रिपुण्ड्रधारणमावश्यकम्।

विना भस्मत्रिपुण्ड्रेण जलं वा भोजनादिकम्। भक्षणात्सर्वपापानां भस्मेति परिकीर्तितम् ॥३॥
अप्यकार्यसहस्राणि कृत्वा यः स्नाति भस्मना। तत्सर्वं भवति भस्म यथाग्नितेजसा वनम् ॥४॥

इति लिङ्गपुराणवचनात्।

ऊर्ध्वपुण्ड्र लक्षण—कूर्मपुराण में कहा गया है कि सभी शरणागतों के दु:खों को दूर करने वाले जो नारायण देव हैं, वे भी अपने ललाट में सर्वदा गन्ध एवं जल से त्रिशूल का टीका लगाये रहते हैं; क्योंकि शूल को धारण करने के कारण ही वे ब्रह्मा-विष्णु-शिवात्मक सत्त्व-रज-तम—इन तीनों गुणों से युक्त होने के कारण प्रधान हैं।

शैवों, शाक्तों और चारो वर्णों के लिये त्रिपुण्ड्र धारण आवश्यक है। लिङ्गपुराण में कहा भी गया है कि बिना भस्म त्रिपुण्ड्र के जल या भोजनादि भक्षण करने से सभी पुण्य भस्म हो जाते हैं। हजारों दुष्कर्म करके भी जो भस्मस्नान करता है, उसके सभी दुष्कर्मजनित पाप उसी प्रकार भस्म हो जाते हैं, जैसे अग्नि से वन भस्म हो जाता है।

भस्मत्रिपुण्ड्रधारणविधिः

भस्मत्रिपुण्ड्रधारणविधिस्तु वायवीयसंहितायाम्—

शिवाग्नेर्भस्म संग्राह्यमग्निहोत्रोद्भवं तु वा। वैवाहाग्न्युद्भवं वापि पक्वं शुचि सुगन्धि च ॥१॥
कपिलायाः शकृच्छस्तं गृहीतं गगने पतत्। न लीनं नातिकठिनं न दुर्गन्धि न चोषितम् ॥२॥
उपर्यधः परित्यज्य गृह्णीयात्पतितं यदि। खण्डीकृत्य शिवाग्नौ तु निक्षिपेन्मूलमन्त्रतः ॥३॥
अपक्वमतिपक्वं च संत्यज्य भसितं सितम्। आदाय वाससालोड्य भस्माधारे विनिक्षिपेत् ॥४॥
भस्मसंग्रहणं कुर्याद्वह्न्यनुद्वासिते सति। उद्वासने कृते यस्माच्चण्डभस्म प्रजायते ॥५॥ इति।

भस्म त्रिपुण्ड्र धारण-विधि—वायवीय संहिता में कहा गया है कि शिवाग्नि या अग्निहोत्र से उत्पन्न भस्म या विवाहाग्नि से उत्पन्न भस्म को संगृहीत करे अथवा कपिला गाय के गोबर को भूमि पर गिरने से पहले हाथ में लेकर उपला बनाकर जलाकर उसे पवित्र सुगन्धित करके रखे अथवा भूमि पर पतित गोबर, जो न पतला, न कड़ा, न दुर्गन्धित हो; उसके ऊपर-नीचे के भाग का त्याग कर उपला बनाकर शिवाग्नि में मूल मन्त्र से निक्षिप्त करे। अपक्व एवं अतिपक्व भाग को छोड़कर उजले भाग को लेकर वस्त्र से छानकर उस भस्म को वर्तन में रखे। उद्वासित अग्नि से भस्म संग्रह न करे, अनुद्वासित अग्नि से भस्म संग्रह करे। उद्वासित अग्नि का भस्म चण्डभस्म कहा जाता है।

गोमयापहरणादौ विशेषः

गोमयापहरणादौ विशेषमाह तत्रैव—

यद्वा धरामसंस्पृष्टां सद्येनानीय गोमयम्। वामेन पात्रे संशोष्य अघोरेण विनिर्दहेत्॥६॥
पुरुषेण समुद्धृत्य ईशानेन विशोधयेत्। इत्थं तु संस्कृतं भस्म अग्निरित्यादिमन्त्रतः॥७॥
तस्माद्ब्रह्मेति यजुषां मन्त्रयेद्रुद्रसंख्यया। प्रणवाद्यैश्चतुर्थीहृदन्तैर्नामभिरीशकैः॥८॥
पञ्चवर्णाद्यक्षराद्यैर्भालांसोदरहृत्सु च। त्रिपुण्ड्रधारणं कुर्यान्मूर्ध्नि पञ्चाक्षरेण च॥९॥
त्रिपुण्ड्रं धारयेन्मन्त्री साक्षाच्छिव इवापरः। इति।

नामभिः सद्योजातादिभिः। अंसशब्दोऽसद्वयवाचको नामपञ्चकत्वात्।

वहीं पर गोबर-ग्रहणादि के विषय में विशेष कथन यह है कि पृथ्वी पर न गिरे हुये गोबर को तुरन्त ले आये। वामदेव मन्त्र से उसे सुखाये और अघोरमन्त्र से जलाये। तत्पुरुष मन्त्र से उठाये और ईशान से शोधित करे। अग्नि मन्त्र से भस्म को संस्कृत करे। ब्रह्मेति यजुर्मन्त्र के ग्यारह जप से उसे मन्त्रित करे। ॐ शिवाय नमः के एक-एक अक्षर से ललाट, कन्धों, उदर एवं हृदय में त्रिपुण्ड्र धारण करे। मूर्धा में पञ्चाक्षर मन्त्र से त्रिपुण्ड्र धारण करे। इससे धारक दूसरे शिव के समान हो जाता है।

त्रिपुण्ड्रधारणेऽङ्गुलिनियमः

अत्र त्रिपुण्ड्रधारणेऽङ्गुलिनियमो जाबालोपनिषद्ब्राह्मणे—'त्रिपुण्ड्रं धारयेत्पश्चाद् ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्। मध्याङ्गुलिभिरादाय तिसृभिर्मूलमन्त्रितम्। अनामामध्यमाङ्गुष्ठैरथवा स्यात् त्रिपुण्ड्रकमिति'। स्कन्दपुराणे सनत्कुमारं प्रति श्रीशिववचनम्—

सद्यादिभिर्ब्रह्ममयैर्महामन्त्रैश्च पञ्चभिः। परिगृह्याग्निरित्यादिमन्त्रैर्भस्माभिमन्त्रयेत्॥१॥
मा नस्तोकेन संमर्द्य शिरो लिम्पेत्त्रियम्बकम्। तिस्रो रेखा भवन्त्येषु स्थानेषु मुनिपुङ्गव॥२॥
भ्रुवोर्मध्ये समारभ्य यावदन्तो भवेद् भ्रुवोः। मध्यमानामिकाङ्गुल्यो मध्ये तु प्रतिलोमतः॥३॥
अङ्गुष्ठेण कृता रेखा त्रिपुण्ड्रस्याभिधीयते। तिसृणामपि रेखाणां प्रत्येकं नव देवताः॥४॥
अकारो गार्हपत्योऽग्निर्भूश्चात्मा च रजोगुणः। ऋग्वेदश्च क्रियाशक्तिः प्रातःसवनमेव च॥५॥
महादेवश्च रेखायाः प्रथमायाः प्रकीर्तिताः। उकारो दक्षिणाग्निश्च नभः सत्त्वं यजुस्तथा॥६॥
मध्यन्दिनं च सवनं इच्छाशक्त्यन्तरात्मकैः। महेश्वरश्च रेखाया द्वितीयायाश्च देवताः॥७॥
मकाराहवनीयौ च परमात्मा तमोदिवौ। ज्ञानशक्तिः सामवेदस्तृतीयसवनं तथा॥८!
शिवश्चेति तृतीयाया रेखायास्त्वधिदेवताः। एता नित्यं नमस्कृत्य त्रिपुण्ड्रं धारयेच्छुचिः॥९॥
महेश्वरव्रतमिदं सर्ववेदेषु कीर्तितम्। मुक्तिकामैर्जनैः सेव्यं पुनस्तेषां न संभवः॥१०॥
त्रिपुण्ड्रं धारयेद्यस्तु भस्मना विधिपूर्वकम्। ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वनस्थो यतिरेव च॥११॥
महापातकसंघातैर्मुच्यते चोपपातकैः। तथान्यैः क्षत्रविट्शूद्रस्त्रीगोहत्यादिपातकैः॥१२॥
वीरहत्याश्वहत्याभ्यां मुच्यते नात्र संशयः।

इत्यादि।

त्रिपुण्ड्र-धारण में अंगुलिनियम—जाबालि उपनिषद् के ब्राह्मण में कहा गया है कि ब्रह्मा-विष्णु एवं शिवस्वरूप त्रिपुण्ड्र अनामा, मध्यमा एवं तर्जनी से अथवा अनामा मध्यमा एवं अंगूठे से मूल मन्त्र पढ़ते हुये लगाना चाहिये। स्कन्दपुराण में सनत्कुमार से भगवान् शिव ने कहा है कि सद्योजातादि ब्रह्ममय पाँच महामन्त्रों से ग्रहण करके भस्म को अग्निरित्यादि मन्त्र से अभिमन्त्रित करे। मा नस्तोक से उसका मर्दन करे। त्रियम्बक मन्त्र से शिर में इस प्रकार लगाये, जिससे तीन स्थान में तीन रेखा बने। भ्रूमध्य से प्रारम्भ करके भ्रुवों के अन्त तक मध्यमा अनामिका अंगुलियों से एवं मध्य में प्रतिलोम क्रम से अंगूठे से बनी रेखा को त्रिपुण्ड्र कहते हैं। तीनों रेखाओं में से प्रत्येक में नव देवता रहते हैं। अकार गार्हपत्य अग्नि पृथ्वी आत्मा

रजोगुण ऋग्वेद क्रियाशक्ति प्रात:सवन एवं महादेव प्रथम रेखा के देवता हैं। उकार दक्षिणाग्नि नभ सत्व यजुर्वेद मध्यन्दिन सवन इच्छाशक्ति महेश्वर दूसरी रेखा के देवता हैं। मकार आहवनीय परमात्मा अन्धकार दिन ज्ञानशक्ति तृतीय सवन और शिव तृतीय रेखा के अधिदेवता हैं। इन्हें नित्य नमस्कार करके त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये। यह महेश्वर व्रत सभी वेदों में कहा गया है। मुमुक्षुओं के लिये यह सेवनीय है, इससे उनका पुनर्जन्म नहीं होता। जो विधिपूर्वक भस्म से त्रिपुण्ड्र धारण करता है तो वह चाहे ब्रह्मचारी हो, गृहस्थ हो, वनस्थ हो या यति हो; सभी महापातकों से और उपापातकों से मुक्त हो जाता है; साथ ही क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र-स्त्री-गोहत्यादि पातकों के साथ-साथ वीरहत्या एवं अश्वहत्यादि पापों से भी मुक्त हो जाता है।

तिलकप्रकार:

अथ प्रकारान्तरेण तिलकप्रकारस्तु—

इत्थं तु संस्कृतं भस्म अग्निरित्यादिमन्त्रतः। विमृज्याङ्गानि संस्पृश्य पुनरादाय मन्त्रतः ।।१।।
तस्माद् ब्रह्मेति यजुषा मन्त्रयेद् रुद्रसंख्यया। ललाटे ब्रह्म विज्ञेयं हृदये हव्यवाहनः ।।२।।
नाभौ स्कन्दो गले पूषा रुद्रो दक्षिणबाहुके। आदित्यो बाहुमध्ये च शशी च मणिबन्धके ।।३।।
वामदेवो वामबाहौ बाहुमध्ये प्रभञ्जनः। मणिबन्धे च वसवः पृष्ठदेशे हरः स्मृतः ।।४।।
शम्भुः ककुदि संप्रोक्तः परमात्मा शिरः स्मृतः। इति।

अमन्त्रकं वायवीयसंहितायाम्—'पुनर्न्यस्तकरो मन्त्री त्रिपुण्ड्रं भस्मना लिखेत्' इति, एतच्छूद्रादिविषयं ज्ञेयम्। अत्र भस्मधारणे ये विशेषास्ते वक्ष्यन्ते। शाक्तानां वामकेश्वरतन्त्रषट्शत्यां श्रीविद्यायजनप्रकरणे—'त्रिपुण्ड्रकविधारी चेति।' एतत् त्रिपुण्ड्रधारणं चन्दनादिसुगन्धद्रव्येण कार्यम्। 'रम्यं त्रिपुण्ड्रं दधद्। भाले नन्दनचन्दनेन जननि ध्यायामि ते मङ्गल'मिति भगवता श्रीदुर्वाससोक्तत्वात्।

प्रकारान्तर से तिलक-प्रकार—अग्निरित्यादि मन्त्र से संस्कृत भस्म को अच्छी प्रकार छानकर मन्त्रपूर्वक ग्रहण करे। उसे ब्रह्मेति यजुषा के ग्यारह जप से मन्त्रित करे। ललाट में ब्रह्म मानकर, हृदय में अग्नि मानकर, नाभि में स्कन्द, गले में पूषा, दक्षिण बाहु में रुद्र, बाहुमध्य में आदित्य, मणिबन्ध में चन्द्रमा, वाम बाहु में वामदेव, बाहुमध्य में प्रभंजन, मणिबन्ध में वसु, पीठ में हर, ककुद में शम्भु एवं शिर में परमात्मा समझकर स्पर्श कराये। वायवीय संहिता के अनुसार वामकेश्वर तन्त्र एवं षट्शती में श्रीविद्या यजन प्रकरण में कहा गया है कि शाक्तों को त्रिपुण्ड्र-धारण चन्दनादि सुगन्धित द्रव्य से करना चाहिये; क्योंकि दुर्वासा ने भी कहा है कि नन्दन वन-स्थित चन्दन से मनोहर त्रिपुण्ड्र लगाकर हे माते! मैं तुम्हारा ध्यान करता हूँ।

सन्ध्याविधि:

अथ सन्ध्या। तत्र महाकपिलपञ्चरात्रे—

उपविश्य शुचौ देशे प्राणायामत्रयं क्रमात्। मूलमन्त्रेण कृत्वा तु देहे कुर्वीत मार्जनम् ।।१।। इति।

शैवागमे—

प्राणायामत्रयं कृत्वा मूलमन्त्रेण मन्त्रयेत्। अङ्गानि विन्यसेद्देहे करन्यासपुरःसरम् ।।१।।
अमृतीकृत्य पुरतो जलं वं-धेनुमुद्रया। अभिमन्त्र्य च मूलेन सप्तवारं च साधकः ।।२।।
अकारादिक्षकारान्तैर्मातृकार्णैः सबिन्दुभिः। प्रत्यर्णं प्रोक्षयेन्मूर्ध्नि कुशैर्मूलेन च त्रिधा ।।३।।
देवं ध्यात्वाथ मनुविद्भानुमण्डलसंस्थितम्। आदाय तोयमामन्त्र्य बीजैर्भूतात्मकैस्तथा ।।४।।
लंवंरंयंहमिति च तान्युक्तानि सुरार्चिते। सप्तकृत्वस्ततो मूलमन्त्रेण त्रिः पुनश्च तत् ।।५।।
वामहस्ते निधायाथ गलितैर्जलबिन्दुभिः। संप्रोक्ष्य मूलमन्त्रेण दक्षहस्तेन मूर्धनि ।।६।।
नासयाश्लिष्य शिष्टेन तेजोरूपेण तेन तत्। प्रविश्यान्तर्गतं सर्वं मलं संशोध्य निर्गतम् ।।७।।
दक्षनासापुटेनैतत्स्मृत्वा दक्षिणहस्तगम्। वामभागे वज्रशिलां ध्यात्वास्त्रेण च तत्क्षिपेत् ।।८।।
प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य मूलमन्त्रेण मन्त्रवित्। गायत्र्या चाथ मूलेन दद्यादर्घ्यत्रयं सुधीः ।।९।।

शिवाय मण्डलस्थाय रवेर्मूलेन तर्पयेत्। त्रिधा जप्त्वा च गायत्रीमष्टाविंशतिवारकम् ॥१०॥
जपित्वा मूलमन्त्रं च शतमष्टोत्तरं ततः। समर्प्य तज्जपं मन्त्री देवमुद्वास्य मण्डलात् ॥११॥
निधाय स्वीयहृदये ततस्तर्पणमाचरेत्। इति।

मूलेनार्घ्यदानं तु गायत्रीरहितमन्त्रपरं ज्ञेयम्। तथा शैवागमे—
सन्ध्यालोपो न कर्तव्यः शम्भोराज्ञैवमेव हि। दीक्षितः सन्ध्यया हीनो न दीक्षाफलमश्नुते ॥१॥
सन्ध्याहीनोऽन्यसन्ध्यायां पूर्वसन्ध्याक्रियामथ। विधायोत्तरसन्ध्यायाः क्रियां कुर्यादतन्द्रितः ॥२॥ इति।

सन्ध्या—महाकपिलपञ्चरात्र में कहा गया है कि पवित्र देश में बैठकर मूल मन्त्र से क्रमशः तीन प्राणायाम करके देह में मार्जन करे। शैवागम में कहा गया है कि तीन प्राणायाम करके मूल मन्त्र से मन्त्रित करे। कर न्यास करके षडङ्ग न्यास करे। अपने सामने रखे जल का वं धेनमुद्रा से अमृतीकरण करे। मूल मन्त्र के सात जप से उसे अभिमन्त्रित करे। बिन्दुसहित अ से क्ष तक के मातृका वर्णो का कुशमूल से तीन-तीन बार प्रोक्षण करे। मन्त्रज्ञ साधक सूर्यमण्डल-स्थित देव का ध्यान करे। जल लेकर भूतात्मक बीजों से मन्त्रित करे। लं वं रं यं हं का उच्चारण सात बार करके तीन बार मूल मन्त्र का उच्चारण करके जल को बाँयें हाथ लेकर उससे चूते हुए जलबिन्दुओं से मूल मन्त्र से दाँयें हाथ से मूर्धा का प्रोक्षण करे। तब बचे हुए जल को तेजरूप में नासिका से अन्दर ले जाये। सभी मलों का संशोधन करके दाँयें नासापुट से बाहर निकाल कर दाँये हाथ में लेकर वामभाग में कल्पित वज्रशिला पर अस्त्र से पटक दे। हाथ को मूल मन्त्र से धोये। तब गायत्री या मूल मन्त्र से तीन अर्घ्य प्रदान करे। शिव एवं मण्डलस्थ सूर्य के लिये मूल मन्त्र से तर्पण तीन बार करे। गायत्री का जप अट्ठाईस बार करके मूल मन्त्र का एक सौ आठ जप करे। जप को समर्पित करकें देवता का मण्डल से उद्वासन करके अपने हृदय में ले आये। तत्पश्चात् तर्पण करे।

शैवागम में कहा गया है कि भगवान् शिव की यह आज्ञा है कि सन्ध्या का लोप कभी न करे। सन्ध्याहीन दीक्षित को दीक्षा का फल नहीं मिलता। एक सन्ध्या का लोप हो जाने पर दूसरी सन्ध्या में पूर्व सन्ध्या की क्रिया करके उत्तर सन्ध्या की क्रिया करनी चाहिये।

सन्ध्यालोपे प्रायश्चित्तम्

अत्र प्रायश्चित्तमपि कार्यम्। यदुक्तं तन्त्रराजे—स्नानसन्ध्यार्चनालोपे जपेद्विद्यां शतं शिवे' इति। तथा—
ध्यात्वा देवं जले सम्यक् पूजयित्वाथ मूलतः। अष्टोत्तरशतावृत्त्या तर्पयेन्मूलमन्त्रतः ॥१॥
तदर्धेन तदर्धेन दशधा वाथ तर्पयेत्। ततस्तदङ्गावरणदेवतास्तर्पयेत् क्रमात् ॥२॥
एकैकाञ्जलिना तत्तन्नाममन्त्रेण मन्त्रवित्। पुनः संपूज्य देवेशं साङ्गावरणकं ततः ॥३॥
समुद्वास्य हृदि स्वीये स्वात्मानं तन्मयं स्मरेत्। इति।

नारदपञ्चरात्रे—
ततश्चोदकसंपूर्णं भाण्डमादाय पाणिना। एकान्तं निर्जनं यायान्मनोज्ञं दोषवर्जितम् ॥१॥
हृन्मध्यस्थं स्मरन् विष्णुं प्रबुद्धानन्दविग्रहम्। दिगन्तरं न वीक्षेत मौनी संरुद्धलोचनः ॥२॥ इति।

सन्ध्या का लोप होने पर प्रायश्चित्त भी करना चाहिये। तन्त्रराज में कहा है कि स्नान, सन्ध्या एवं पूजा का लोप होने पर एक सौ आठ मन्त्रजप करना चाहिये। साथ ही यह भी कहा है कि जल में देवता का ध्यान करके मूल मन्त्र से सम्यक् पूजा करके मूल मन्त्र से ही एक सौ आठ तर्पण करे। अशक्त होने पर एक सौ आठ का आधा ५४, उसका आधा २७ अथवा १० बार तर्पण करे। तब उसके अङ्ग एवं आवरण देवताओं का क्रमशः तर्पण करे। एतदर्थ प्रत्येक को एक-एक अञ्जलि जल उनके नाममन्त्रों से दे। पुनः साङ्ग सावरण देवता की पूजा करके उसे अपने हृदय में उद्वासित करके स्वयं को तन्मय समझे। नारदपञ्चरात्र में कहा गया है कि हाथ में जलपूर्ण पात्र लेकर दोषरहित एकान्त निर्जन मनोहर स्थान में जाकर हृदय में स्थित प्रबुद्ध आनन्दविग्रहस्वरूप विष्णु का स्मरण करे। उस समय दूसरी दिशाओं में न देखते हुये मौन होकर आँखों को बन्द रखे।

यागमण्डपप्रवेशादि

महाकपिलपञ्चरात्रे—

मूलमन्त्रं जपन् गच्छेद्यावत्प्राप्नोति वै गृहम्। प्राप्य हस्तौ च पादौ च प्रक्षाल्याचम्य यत्नतः ॥१॥
यागमण्डपमासाद्य विशेत् कृत्वा प्रदक्षिणम्। इति।

उत्तरतन्त्रे—

आचान्तः शुचितां प्राप्तं सुस्नातो देवपूजने। पूजावेद्या बहिः स्थित्वा चतुर्हस्तान्तरे धिया ॥१॥
गृहे चेद् द्वारदेशस्थः प्रणम्य मनसा गुरुम्। प्रणमेदिष्टदेवं स्वं दिक्पालानपि चेतसा ॥२॥
यत्पूर्वमर्जितं पापं तद्दिनेऽन्यदिनेऽपि वा। प्रायश्चित्तैर्नापनुदेत्तदा पापं स्मरेद्धिया ॥३॥
तत्पापस्यापनोदार्थं मन्त्रद्वयमुदीरयेत्।

मन्त्रद्वयं तु प्रयोगे वक्ष्यते (२०.४२)। तथा—

एवं कृते प्रथमतः पापोत्सारणकर्मणि। यत् स्याद् दृढतरं पापं तद्दूरे चावतिष्ठते ॥१॥
अतीते पूजने स्थानं स्वं प्रयाति पुनश्च तत्। यत् स्यादल्पतरं पापं तन्नाशमुपगच्छति ॥२॥
पूजया त्यक्तपापस्य काममिष्टं क्षणाद् भवेत्। इति।

महाकपिलपञ्चराज में कहा गया है कि मूल मन्त्र का जप करते हुए अपने घर आये। यत्नपूर्वक हाथ-पैरों को धोकर आचमन करके प्रदक्षिणा कर यागमण्डप में प्रवेश करे।

उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि देवपूजन में आचमन करके स्नान करे। पवित्र होकर पूजा वेदी के बाहर चार हाथों की दूरी पर स्थित होकर गृह के द्वार पर खड़े होकर गुरु को मानस प्रणाम करे। अपने इष्टदेव एवं दिक्पालों को प्रणाम करे। प्रायश्चित्त से समाप्त न होने वाला जो पूर्वार्जित पाप हो या उस दिन अथवा दूसरे दिन का पाप हो, सबका बुद्धि से स्मरण करके उन पापों से मुक्ति के लिये दो मन्त्रों को कहे।

इस प्रकार पहले पापोत्सारण कर्म करने पर दृढ़तर पाप दूर हो जाते हैं और पुनः पूजन में वे चले आते हैं। जो अल्पतर पाप होते हैं, वे नष्ट हो जाते हैं। पूजा से पापों के नष्ट हो जाने पर इष्ट कार्य तुरन्त हो जाता है।

सूर्यार्घ्यदानविधिः

तन्त्रान्तरे—

प्रातः प्रक्षाल्य पादौ च हस्तावाचम्य यत्नतः। दद्यादर्घ्यं दिनेशाय तत्प्रकारमिहोच्यते ॥१॥
गोमयेनोपलिप्तायां भूमौ कृत्वा तु मण्डलम्। सिन्दूरेण ततः पश्चादुपविश्य निजासने ॥२॥
प्राङ्मुखः प्रणमेदिष्टदेवतां भक्तितत्परः। प्राणायामत्रयं कृत्वा सूर्यमन्त्रेण मन्त्रवित् ॥३॥
विन्यस्य च तदृष्यादीन् ध्यात्वा सूर्यमनन्यधीः। तत्कल्पोक्तविधानेन पूजयेदुपचारकैः ॥४॥
पुरतो मण्डले कृत्वा जलेन चतुरश्रकम्। निधाय तत्र साधारं सजलं ताम्रपात्रकम् ॥५॥
गन्धपुष्पाक्षतान् दर्भान् दूर्वासर्षपसंयुतान्। सतिलान् रक्तपुष्पाणि दूर्वाश्चापि प्रविन्यसेत् ॥६॥
सूर्यमन्त्रेण तत्पात्रं स्पृशन्नष्टोत्तरं शतम्। अभिमन्त्र्य च तत्पात्रं समुत्थाप्य करद्वयात् ॥७॥
मूर्धान्तं सूर्यमन्त्रेण दद्यादर्घ्यं विचक्षणः। जपेत्ततो यथाशक्ति सूर्यमन्त्रमनन्यधीः ॥८॥
तदर्घ्याम्बुप्लुतं सूर्यं ध्यायन् देशिकसत्तमः। स्मृत्वा प्रणम्य विसृजेन्मण्डलान्ते दिवाकरम् ॥९॥

सूर्यमन्त्रं त्र्यक्षरं, तत्तु तत्प्रकरणे (२९ श्वा०) द्रष्टव्यम्।

यावन्न दीयते चार्घ्यं भास्कराय दिने दिने। तावन्न पूजयेद्विष्णुं शंकरं वा सुरेश्वरीम् ॥१०॥
अर्घ्यदानमिदं पुंसामायुरारोग्यवर्धनम्। धनधान्यपशुक्षेत्रपुत्रमित्रकलत्रदम् ॥११॥
तेजोवीर्ययशःशक्तिविद्याविभवभाग्यदम्। तत उत्थाय विधिवद्द्वारपूजां समाचरेत् ॥१२॥

तन्त्रान्तर में कहा गया है कि प्रातः यत्न से हाथ-पैर धोकर आचमन करके सूर्य को अर्घ्यदान करना चाहिये। एतदर्थ गोबर से लिपी भूमि में सिन्दूर से मण्डल बनाकर अपने आसन पर पूर्वमुख बैठे। भक्ति से इष्टदेवता को प्रणाम करे। तीन प्राणायाम करके सूर्यमन्त्र से ऋष्यादि न्यास करके इष्ट के रूप में सूर्य का ध्यान करे। कल्पोक्त विधान से उपचारों से उनकी पूजा करे। अपने सामने जल से चतुरस्र मण्डल बनाकर उस पर आधार रखकर उस आधार पर जलपूर्ण ताम्रपात्र रखे। उसमें गन्ध, पुष्प, अक्षत, दर्भ, दूर्वा, सरसों, तिल एवं लाल फूल डाले। उस पात्र को स्पर्श करके सूर्यमन्त्र के एक सौ आठ जप से उसे अभिमन्त्रित करे। उस पात्र को दोनों हाथों से उठाकर मूर्धा पर लाकर सूर्यमन्त्र से अर्घ्य प्रदान करे। तब सूर्यमन्त्र का जप एकाग्र मन से यथाशक्ति करे। उस अर्घ्य जल से प्लावित सूर्य का ध्यान करे। प्रणाम करके दिवाकर को विसर्जित करे। जब तक प्रति दिन सूर्य को अर्घ्य न दे तब तक विष्णु, शङ्कर अथवा देवी की पूजा न करे। यह अर्घ्यदान मनुष्य के आयु तथा आरोग्य का वर्द्धक होता है; धन-धान्य, पशु, क्षेत्र, पुत्र, मित्र, कलत्र को देने वाला होता है तथा तेज-वीर्य-यश-शक्ति-विद्या-वैभव-भाग्य-प्रदायक होता है। अर्घ्यदान के पश्चात् उठकर विधिवत् द्वारपूजा करे।

द्वारपूजादिविधानम्

द्वारमर्घ्याम्बुना प्रोक्ष्य विघ्नं तूर्ध्वे समर्चयेत्। तद्दक्षिणे महालक्ष्मीं वामे चैव सरस्वतीम् ॥१३॥
द्वारश्रियं च तन्मध्ये शाखयोर्दक्षिणान्ययोः। गणपं क्षेत्रपालं च शङ्खपद्मनिधी क्रमात् ॥१४॥
मायाशक्तिं च चिच्छक्तिं गङ्गां च यमुनां ततः। धातारं च विधातारमूर्ध्वादिक्रमतो यजेत् ॥१५॥
अधश्च देहलीमिष्ट्वा द्वारपालान् समर्चयेत्। पश्चिमद्वारमारभ्य द्वारपाला अमी क्रमात् ॥१६॥
नन्दी चैव महाकालो गणेशो वृषभस्तथा। ततो भृङ्गिरिटिस्कन्दावुमाचण्डेश्वरौ ततः ॥१७॥
एते चाष्टौ महेशस्य द्वारपालाः प्रकीर्तिताः। नन्दः सुनन्दचण्डौ च प्रचण्डबलसंज्ञकौ ॥१८॥
प्रबलो भद्रनामा च सुभद्रश्चाष्टमः स्मृतः। क्रमादमी समभ्यर्च्या वैष्णवद्वारपालकाः ॥१९॥
वक्रतुण्डैकदंष्ट्रौ च महोदरगजाननौ। लम्बोदरश्च विकटो विघ्नराजस्ततः परम् ॥२०॥
धूम्रवर्णश्च संप्रोक्ता विघ्नेशद्वारपालकाः। ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा ॥२१॥
वाराही च तथेन्द्राणी चामुण्डा च श्रिया सह। एता देव्याः क्रमादष्टौ शक्तयो द्वारपालिकाः ॥२२॥

एता एव सौरद्वारपालिका अपि ज्ञेयाः। 'सौरं शक्तिमयमहो विजयते सौन्दर्यसीमास्पद'मिति वामदेवतन्त्रवचनात्। 'आर्कमाश्वशिशिरं विश्वेशिकाया वपुः' इति तन्त्रान्तरवचनात्। अत्र द्वारदेवताध्यानानि प्रागेवोक्तानि (५ श्वा०)। तथा—

पश्चिमद्वारमासाद्य तालत्रितयपूर्वकम्। द्वारमुद्घाट्य चास्त्रेण मन्त्रितान् सर्षपाक्षतान् ॥१॥
पुष्पयुक्तांस्तु विकिरेन्मण्डपाभ्यन्तरे बुधः। नाराचमुद्रया सम्यगस्त्रमन्त्रेण देशिकः ॥२॥ इति।

तूर्णायागे—
सिद्धार्थाक्षतपुष्पाणि नाराचास्त्रधिया बुधः। अस्त्रमन्त्रं समुच्चार्य मण्डपान्तर्विनिक्षिपेत् ॥१॥ इति।

नारायणीये—
अपक्रामन्तु भूतानीत्येतन्मन्त्रद्वयं पुनः। पठित्वाक्षतसिद्धार्थपुष्पाणि विकिरेत्ततः ॥१॥
अस्त्रमन्त्रेण मन्त्रज्ञो मण्डपाभ्यन्तरे बुधः।

मन्त्रद्वयं प्रयोगे (२० श्वा०) वक्ष्यते। अस्त्रेण स्वोपास्यमन्त्राङ्गभूतेन। यदुक्तं पारिजाते—
हकाररेफौ च विसर्गवन्तावस्त्रायफट्कारवचस्तदन्ते।
उक्त्वान्तरे सर्षपमक्षतांश्च पुष्पाणि मुञ्चेदिति ॥१॥

तूर्णापद्धतौ—'निर्गच्छतां तु विघ्नानां वर्त्म दद्यात् स्ववामतः' इति। सोमशम्भुः—

मण्डपाभ्यान्तरे विद्वान् वामपादपुरःसरम्। प्रविश्य विघ्नान् त्रिविधान् पातालभ्वन्तरिक्षगान् ॥१॥
उत्सार्यास्त्रं समुच्चार्य पार्ष्णिघातादिभिस्त्रिभिः। विघ्नानुत्सारयेत् ....॥२॥ इति।

तूर्णायागे—
पार्ष्णिघातैस्त्रिभिर्भौमांस्तालैस्तानन्तरिक्षगान्। विघ्नानुत्सारयेद् दिव्यानस्त्रतीक्ष्णावलोकनात् ॥१॥
पार्ष्णिघातैर्वामपादस्य। 'वामपार्ष्णिना त्रिभिर्घातैर्भूमिष्ठानि'ति सोमशम्भुवचनात्।

अर्घ्य जल से द्वार का प्रोक्षण करके ऊपर विघ्न का अर्चन करे। उसके दक्षिण में महालक्ष्मी, बाँयें सरस्वती, मध्य में द्वारश्री, शाखाओं में गणेश, क्षेत्रपाल, शङ्ख, पद्मनिधि, मायाशक्ति, चिच्छक्ति, गङ्गा, यमुना, धाता, विधाता का यजन ऊर्ध्वादि क्रम से करे। दरवाजे के नीचे देहली का पूजन कर द्वारपालों की पूजा करे। उनकी स्थिति इस प्रकार होती है—पश्चिम द्वार से आरम्भ करके नन्दी, महाकाल, गणेश, वृषभ, भृंगी, स्कन्द, उमा, चण्डेश्वर—ये आठ शैव द्वारपाल हैं। नन्द-सुनन्द द्वारपाल चण्ड-प्रचण्ड, बल-प्रबल, भद्र-सुभद्र—ये आठ वैष्णव द्वारपाल हैं; इनका भी अर्चन करे। वक्रतुण्ड, एक दन्त, महोदर, गजानन, लम्बोदर, विकट, विघ्नराज, धूम्रवर्ण—ये आठ विघ्नेश के द्वारपाल हैं। ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा, लक्ष्मी—ये आठ शक्ति की द्वारपालिका हैं। ये ही सूर्य की भी द्वारपालिका हैं।

तदनन्तर पश्चिम द्वार पर आकर तीन ताली बजाते हुये अस्त्रमन्त्र से द्वार को खोलकर अभिमन्त्रित सरसों, अक्षत एवं पुष्प को नाराचमुद्रा का प्रदर्शन करते हुये अस्त्रमन्त्र से मण्डप के भीतर विखेर दे। तूर्णायाग में कहा गया है कि सरसों अक्षत पुष्प को नाराच मुद्रा दिखाते हुये अस्त्र-मन्त्र का उच्चारण करके मण्डप में बिखेरे। नारायणीय में कहा गया है कि 'अपक्रामन्तु भूतानि' इन दोनों मन्त्रों को पढ़कर अस्त्रमन्त्र से मण्डप के भीतर मन्त्रवेत्ता अक्षत-सरसों-फूल बिखेरे। पारिजात में कहा है कि 'ह्रः अस्त्राय फट्' कहकर सरसों-अक्षत-फूल बिखेरे। तूर्णपद्धति में कहा है कि जाते हुये विघ्नों के लिये अपने बाँयें से रास्ता देना चाहिये। सोमशम्भु में कहा गया है कि मण्डप में बाँयाँ पैर आगे बढ़ाकर भीतर प्रवेश कर भूमि-पाताल-अन्तरिक्षगत तीन प्रकार के विघ्नों का उत्सारण अस्त्र मन्त्र को कहते हुये एँड़ी से तीन बार घात करके करे। तूर्णायाग में कहा गया है कि बाँयीं एँड़ी तीन बार पटककर भौम, पाताल, अन्तरिक्षगामी विघ्नों का दिव्य अस्त्रमन्त्रों से उत्सारण करे।

विघ्नोत्सारणपूर्वं मण्डपप्रोक्षणादि

उत्तरतन्त्रे—
विघ्नानुत्सार्य विधिवद् द्वारमाच्छाद्य वाससा। पञ्चगव्यार्घ्यतोयाभ्यां प्रोक्षयेन्मण्डपान्तरम् ॥१॥ इति।

श्रीकुलार्णवे—
संमार्जनोपलेपाद्यैर्दर्पणोदरवत् कृतम्। वितानधूपदीपादिपुष्पदामादिशोभितम् ॥१॥
पञ्चवर्णरजश्चित्रं स्थानशुद्धिरियं मता। नैर्ऋत्यामर्चयेद्वास्तुपुरुषं चन्दनादिभिः ॥२॥
ईशाने दीपनाथं च क्षेत्रपालाज्ञया ततः। संविशेदासनं मन्त्री......................॥३॥ इति।
क्षेत्रपालप्रार्थनामन्त्रः प्रयोगे (२० श्वा०) वक्ष्यते।

उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि विधिवत् विघ्नोत्सारण करके वस्त्र से द्वार को आच्छादित करके पञ्चगव्य एवं अर्घ्यजल से मण्डप के आन्तरिक भाग का प्रोक्षण करे। श्रीकुलार्णव में कहा गया है कि सम्मार्जन-उपलेपनादि से मण्डप को दर्पण के समान स्वच्छ करे। चाँदनी टाँग कर धूप-दीप-पुष्पादि से उसे शोभित करे। पाँच प्रकार के रंगों से चित्रित करके उसकी शुद्धि करे। नैर्ऋत्य में वास्तु पुरुष का अर्चन चन्दनादि से करे। ईशान में दीपनाथ का अर्चन करे। तदनन्तर क्षेत्रपाल की आज्ञा मन्त्री से आसन पर बैठे।

आसनस्थापनविनियोगः

उत्तरतन्त्रे—
अः फडिति च मन्त्रेण पूजावेदीं ततो विशेत्। संस्कुर्यादासनस्थानं चतुर्भिर्वीक्षणादिभिः ॥१॥

संस्कारैस्तत्र संपूज्य वेद्यन्तः पीठदेवताः । आधारशक्तिमारभ्य स्वासनं तत्र विन्यसेत् ॥२॥ इति।

आपस्तंबः—
पूजासनमथानीय चेलाजिनकुशोत्तरम् । तत्रोपविश्य विधिवत्स्मरेद्विष्णुगुरू मुदा ॥१॥ इति।

योगिनीतन्त्रे—'पृथ्वीमन्त्रेणासने सन्निविष्टः' इति। मन्त्रः प्रयोगे (२० श्वा०) वक्ष्यते। भैरवीतन्त्रे—
मेरुपृष्ठ ऋषिः प्रोक्तः सुतलं छन्द ईरितम् । पृथिवी देवता प्रोक्ता विनियोगो निजासने ॥१॥ इति।

उत्तरतन्त्रे—
आसने तु चतुष्कोणे गणेशं च सरस्वतीम् । दुर्गां क्षेत्रपतिं चापि वह्न्यादिषु समर्चयेत् ॥१॥ इति।

गौतमीतन्त्रे—'प्राङ्मुखो वोदङ्मुखोऽपि स्वस्तिकासनमास्थितः' इति। उत्तरतन्त्रे—
उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा भूत्वा प्रयतमानसः । स्वस्तिकासनमासीनः पद्मासनमथापि वा ॥१॥ इति।

उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि 'अः फट्' मन्त्र से पूजा वेदी के पास बैठे। आसनस्थान का संस्कार चारो ओर देखकर करे। संस्कारित वेदी में पीठदेवता का पूजन करे। आधारशक्ति से आरम्भ करके अपने आसन तक का वहाँ विन्यास करे। आपस्तम्ब में कहा गया है कि कम्बल अथवा कुश का आसन पूजा हेतु लाकर उस पर बैठकर प्रसन्न मन से विष्णु और गुरु का स्मरण करे। भैरवीतन्त्र में कहा गया है कि इस आसनस्थापन के मेरुपृष्ठ ऋषि हैं। सुतल छन्द है, पृथ्वी देवता है एवं निजासन हेतु इसका विनियोग किया जाता है। उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि चतुष्कोण आसन में गणेश, सरस्वती, दुर्गा और क्षेत्रपाल का अर्चन आग्नेयादि कोनों में करे। गौतमी तन्त्र में कहा गया है कि पूर्वमुख या उत्तरमुख होकर स्वस्तिकासन पर बैठे। उत्तरतन्त्र में भी कहा गया है कि उत्तरमुख या पूर्वमुख होकर एकाग्रता से स्वस्तिकासन या पद्मासन पर बैठे।

पूजाद्रव्यस्थापनम्

तन्त्रान्तरे—
स्वस्तिकादिक्रमेणैव ऋजुकायो विशेद्बुधः । स्थापयेद्दक्षिणे भागे पूजाद्रव्याणि चात्मनः ॥१॥
सुवासिताम्बुसंपूर्णं सव्ये कुम्भं सुशोभनम् । प्रक्षालनाय करयोः पात्रं पृष्ठे निधापयेत् ॥२॥
घृतादिज्वलितान् दीपान् स्थापयेत्परितः शुभान् । दर्पणं चामरं छत्रं तालवृन्तं च पादुके ॥३॥
यथायथं तु संस्थाप्य संस्कुर्यात्तानि चात्मवान् । इति।

तन्त्रान्तर में कहा गया है कि स्वस्तिकादि क्रम में शरीर को सीधा करके बैठे। अपने दाँयें भाग में पूजाद्रव्यों को स्थापित करे। अपने बाँयें भाग में सुगन्धित जल से पूर्ण सुन्दर कलश रखे। हाथ धोने के लिये पात्र अपने पीछे रखे। घृतादि से ज्वलित दीपों को चारो ओर स्थापित करे। दर्पण चामर छत्र तालवृन्त और खड़ाऊँ को यथायोग्य यथास्थान स्थापित करके उनका संस्कार करे।

समदृष्ट्यवलोकनम्

उत्तरतन्त्रे—
पुष्पनैवेद्यगन्धादि ह्रांह्रूंफडिति मन्त्रकैः । नाराचमुद्रया दृष्ट्या समया च विलोकयेत् ॥१॥
यदात्मना न विज्ञातं सम्यक्पुष्पादिदूषणम् । अस्पृश्यस्पर्शनं वापि यदन्यायार्जितं च वा ॥२॥
तथा निर्माल्यसंस्पृष्टं कीटाध्यारोहणं च यत् । तत्सर्वं नाशमायाति नैवेद्याद्यवलोकनात् ॥३॥

उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि पुष्प-नैवेद्य-गन्धादि को ह्रां ह्रूं फट् मन्त्र से नाराच मुद्रा बाँधकर सम दृष्टि से देखे। पुष्पों के जो दोष स्वयं अच्छी प्रकार दिखाई न दें, जैसे कि अस्पृश्य द्वारा स्पर्श किये गये हों, अन्याय से लाये गये हों, निर्माल्य से संस्पृष्ट हों, उसमें कीटादि प्रविष्ट हों—वे सभी दोष नैवेद्य को देखने-मात्र से ही नष्ट हो जाते हैं।

दीपशिखास्पर्शः

ततो रमिति मन्त्रेण शिखां दीपस्य संस्पृशेत्। स तु स्याच्छुभदो वापि निष्क्रव्यादः सुखप्रदः ॥४॥
पतङ्गकेशकीटादिदाहात् क्रव्यादसंहतेः। वसामज्जादिसंभूतैर्यज्ञादावुपयोजने ॥५॥
अज्ञातरूपं तत्सर्वं दोषः स्पर्शाद्विनश्यति।

तदनन्तर 'रं' मन्त्र से दीपशिखा का स्पर्श करे। वह शुभद हो अथवा हिंसारहित सुखप्रद हो, पतङ्ग-केश-कीटादि के जलने से क्रव्यादयुक्त हो गये हों, वसा मज्जादि सम्भूत होकर यज्ञादि के उपयोग वाले हो, इत्यादि अज्ञात रूप के सभी दोष स्पर्श मन्त्र से नष्ट हो जाते हैं।

जलपात्रावेक्षणम्

नारसिंहेन मन्त्रेण देवतीर्थेन संस्पृशेत् ॥६॥
पानीयं घटमध्यस्थं वीक्ष्य गुह्यं च याजकः। वामेन पाणिना धृत्वा वामपार्श्वस्थितं तदा ॥७॥
पात्रमाधारमन्त्रेण संस्कुर्वन् संस्पृशेज्जलम्। यदज्ञानादपेयादिसंसृष्टिरिह संगता ॥८॥
यदन्यद् दूषणं पात्रे तोये वाज्ञानतो भवेत्। जलाशयशवस्पर्शाज्जनस्नानाच्च संगतम् ॥९॥
दूषणानि विनश्यन्ति तानि वै देवपूजने।

नृसिंहमन्त्र एकाक्षरः, स तत्प्रकरणे (२० श्वा०) ज्ञेयः। आधारमन्त्रस्तु—'स्वसंज्ञाद्यक्षरं बिन्दुचन्द्रार्धपरियोजित'मिति स्वयमुक्तः। संज्ञाद्यक्षरं नामाद्यक्षरमित्यर्थः। उत्तरतन्त्रे—

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा वामदक्षिणपार्श्वयोः। नत्वा गुरुं गणेशानं पुरतः स्वेष्टदेवताम् ॥१॥
सुगन्धपुष्पाण्यादाय चन्दनाक्तानि मन्त्रवित्। मर्दयित्वा करौ सम्यक् सुरभीकृत्य साधकः ॥२॥
वामहस्ते समादाय निर्मथ्याघ्राय तत्पुनः। वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण चैशान्यां दूरतस्त्यजेत् ॥३॥
नाराचमुद्रया त्यागः। 'क्षिपेदुत्तरतः पुष्पं मन्त्री नाराचमुद्रया' इति तन्त्रान्तरवचनात्।

नारसिंह मन्त्र से देव तीर्थ से लाये गये घट में स्थित जल को याजक बाँयें हाथ से छूकर वाम पार्श्व-स्थित पात्र का आधारमन्त्र से संस्कार करके जल का स्पर्श करे। यदि अज्ञानतावश उसमें अपेयादि दोष हो या अन्य दोष पात्रजल में हो, जलाशय में शवस्पर्श या जनस्नान सङ्गत से दोष हो तो वे सब दोष देवपूजन में नष्ट हो जाते हैं। नृसिंह मन्त्र एकाक्षर 'क्ष्रौं' है।

उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि हाथ जोड़कर वाम-दक्षिण पार्श्वों में गुरु एवं गणेश को प्रणाम करे। सामने अपने इष्ट देवता को प्रणाम करे। सुगन्धित फूल लेकर उनमें चन्दन लगाकर उन्हें हाथ से मलकर हाथ को सुगन्धित करके उन्हें बाँयें हाथ में लेकर उसे पुनः मलकर सूँघे। तदनन्तर नाराचमुद्रा प्रदर्शित कर मन्त्रपूर्वक उसे ईशान कोण में दूर फेंक दे।

करशोधनकर्म

कालिकापुराणे—

कुसुमं विष्णुमन्त्रेण स्वाङ्गुल्यग्रेण साधकः। विमर्दनार्थं गृह्णीयात् करशोधनकर्मणि ॥१॥
निर्मन्थ्य रोमबीजेन जिघ्रन् घ्राणेन तत्पुनः। प्रासादेन परित्यागो दिश्यैशान्यां विशेषतः ॥२॥
एवं कृते तु करयोर्विशुद्धिरतुला भवेत्। अङ्गुल्यग्राणि शुद्धानि पुष्पाणां ग्रहणाद्भवेत् ॥३॥
तलद्वयं मर्दनात्तु विशुद्धमपि जायते। निर्मन्थनात् पाणिपृष्ठं घ्राणान्नासाग्रमुत्तमम् ॥४॥
तीर्थानि च समायान्ति नासिकाग्रं करं प्रति। उपान्त्यः साग्निचन्द्रेण रञ्जितः शून्यसंयुतः ॥५॥
रुद्रान्तोपरिसंस्पृष्टो मन्त्रोऽयं वैष्णवः स्मृतः। प्रान्तादिर्वासुदेवान्तवर्णेनापि च संहतः ॥६॥
शम्भुचूडाशिखाबिन्दुयुक्तः प्रासाद उच्यते। (अग्निः सद्यो बिन्दुयुतो रोमबीजमुदाहृतम्) ॥७॥

उपान्त्यो हकारः। अत्र हकारस्योपान्त्यत्वं तु मातृकायाः पञ्चाशदक्षरत्वेन द्वितीयलकारस्याग्रहणात्। अग्नी

रेफः, चन्द्रः सकारः, शून्यं बिन्दुः, रुद्रान्त ऐकारः। एतेन भैरव्या वाग्भवबीजमुक्तम्। प्रान्तादिर्हकारः वासुदेवान्त औकारः। शम्भुचूडाशिखार्धचन्द्रः, बिन्दुरनुस्वारः। एतेन प्रासादबीजं सिद्धम्। रोमबीजं रों। अग्नीति मन्त्रः प्रयोगे वक्ष्यते। नृसिंहकल्पे—

करशुद्धिं समासाद्य कुर्यात्तालत्रयं ततः। रूर्ध्वोर्ध्वं मूलमन्त्रेण दिग्बन्धमपि देशिकः॥१॥
तेन संजनितं तेजो रक्षां कुर्यात् समन्ततः। अस्त्रमन्त्रेण..............................॥२॥ इति।

करशुद्ध्यादिषु त्रिषु संबन्धात् 'पाणिं विशोधयेदस्त्रमन्त्रेण मनुवित्तमः' इति दक्षिणामूर्तिकल्पवचनात्। अस्त्रमन्त्रस्तु तत्तदङ्गभूतः न तु केवलं फट्कारः। 'रः अस्त्राय फट् प्रोच्य भ्रामयेद् दक्षिणं कर'मिति कुम्भसंभववचनात्। अत एव यत्र यत्रास्त्रादिपदेनाभिख्यानं तत्र तत्र तदङ्गभूतास्त्रादिमन्त्रा ऊह्याः। न तु फट्कारमात्रमुक्तवचनात्। न चैवं 'पाद्यं पादाम्बुजे दद्याद् देवस्य हृदयाणुना' इत्यादावप्यङ्गमन्त्रदानप्रसङ्गः निराकाङ्क्षत्वात्, तत्र मन्त्रोद्धारेऽतिप्रसङ्गात् अङ्गमन्त्रग्राहकाभावात्। मन्त्रोद्धारानन्तरमेवाङ्गमन्त्रोद्धारात्। क्वचिदस्त्रपदेन क्वचित् फट्पदेनोद्धाराच्चेति। दिग्बन्ध-स्वरूपमुक्तं प्रयोगसारे—'आच्छाद्य दिक्षु तर्जन्या ज्येष्ठाग्रस्खलिताग्रया' इति। उत्तरतन्त्रे—'प्राकारत्रितयं वह्नेः कृत्वास्त्रेण स्वमुद्रया।' स्वमुद्रयाग्निप्राकारमुद्रया। सा त्वग्रे (२० श्वा०) वक्ष्यते।

कालिकापुराण में कहा गया है कि करशोधन कर्म में साधक विष्णुमन्त्र से अपनी अंगुली के अग्रभाग से मलने के लिये फूल को ग्रहण करे। रोमबीज से मलकर उसे नाक से सूँघे। प्रासाद मन्त्र से ईशान दिशा में फेंक दे। ऐसा करने से हाथों की अतुल शुद्धि होती है। पुष्पों को पकड़ते ही अंगुल्यग्र शुद्ध हो जाते हैं। फूलों को मलने से दोनों करतल शुद्ध हो जाते हैं। निर्मन्थन से करपृष्ठ शुद्ध होते हैं। सूँघने से नासाग्र शुद्ध होता है। नासिकाग्र से सभी तीर्थ हाथों में आ जाते हैं। 'ह्स्त्रैं' विष्णुमन्त्र है। 'ह्रौं' प्रासाद मन्त्र है। 'रों' रोमबीज है।

नृसिंहकल्प में कहा गया है कि करशुद्धि करके तीन ताली बजाये। मूल मन्त्र से ऊपर-ऊपर दिग्बन्धन करे। उससे उत्पन्न तेज चारो ओर से साधक की रक्षा करता है।

भूतशुद्धिः

सनत्कुमारीये गोपालकल्पे—

सुखासनेनोपविश्य प्राणायामं विधाय वै। भूतशुद्धिं ततः कृत्वा न्यासं कुर्यादनन्तरम्॥१॥

न्यासं मातृकायाः। उत्तरतन्त्रे—

भूतशुद्धिं ततः कुर्यात्प्राणायामपुरःसरम्। पादतो जानुपर्यन्तं चतुरस्त्रं सवज्रकम्॥१॥
लंयुतं पीतवर्णञ्च भुवःस्थानं विचिन्तयेत्। जान्वोरानाभि चन्द्रार्धनिभं पद्मेन लाञ्छितम्॥२॥
शुक्लवर्णं स्वबीजेन युक्तं ध्यायेदपां स्थलम्। नाभितः कण्ठपर्यन्तं त्रिकोणं रक्तवर्णकम्॥३॥
स्वस्तिकाभं स्वबीजेन युक्तं वह्नेस्तु मण्डलम्। कण्ठाद् भ्रूमध्यपर्यन्तं कृष्णं वायोस्तु मण्डलम्॥४॥
षट्कोणं बिन्दुभिः षड्भिर्युक्तं बीजेन चिन्तयेत्। भ्रूमध्याद् ब्रह्मरन्ध्रान्तं वर्तुलं ध्वजलाञ्छितम्॥५॥
धूम्रवर्णं स्वबीजेन युक्तं ध्यायेन्नभःस्थलम्। इति ध्यात्वा तु भूतानि स्वकीये देशिकोत्तमः॥६॥
धर्मकन्दसमुद्भूतं ज्ञाननालं सुशोभनम्। ऐश्वर्याष्टदलं चैव परं वैराग्यकर्णिकम्॥७॥
स्वीयहृत्कमलं ध्यायेत्प्रणवेन प्रकाशितम्। कृत्वा तत्कर्णिकासंस्थं प्रदीपकलिकानिभम्॥८॥
सुषुम्नावर्त्मनात्मानं परमात्मनि योजयेत्। योगयुक्तेन विधिना सोऽहंमन्त्रेण साधकः॥९॥
तत्रैव सर्वतत्त्वानि विलीनानि विचिन्तयेत्। इति।

ततः पुरुषनिभं पापमित्यादि (५ श्वा०) प्रागेवोक्तम्।

ततः संशोषयेदेनं पूरकादिक्रमेण वै। विधाय प्राणसंरोधं वायुबीजेन वायुना॥११॥

वह्निबीजेन तेनैव संदहेत्सकलां तनुम्। भस्म तद्वातमार्गेण निर्गतं चिन्तयेत्सुधीः ॥१२॥
ततो वमिति बीजेन प्लावयेत्सकलां तनुम्। संजाते सकले देहे देवतोपासनक्षमे ॥१३॥
आत्मलीनानि तत्त्वानि स्वस्थानं प्रापयेत्ततः। आत्मानं हृदयाम्भोजमानयेत्परमात्मनः ॥१४॥
हंसमन्त्रेण विधिवत्तेजोरूपं कलेवरम्।

अत्र केचित् 'संयोज्य जीवमथ दुर्गममध्यनाडीमार्गेण पुष्करनिवेष्टशिवे सुसूक्ष्मे। हंसेन देहममरेन्द्रपुरोगमेने'ति योगिनीतन्त्रवचनात्।

सोऽहं-मन्त्रेण तामाद्यां नादान्ते सिद्धिभाविताम्। ध्यात्वैवं ब्रह्मरन्ध्राच्च हृदि जीवकलां न्यसेत् ॥१॥

इति वसिष्ठसंहितावचनाच्च हंसमन्त्रेण जीवस्योन्नयनं सोहंमन्त्रेण पुनरानयनं वदन्ति। यथागुरूपदेशमत्र विधेयमिति। अत्र वायुबीजादिजपे चतुःषष्ट्यादिसंख्यामाहुः। तत्र प्रमाणं चिन्त्यम्। वस्तुतस्तु तत्तत्कर्मभावनावधिरेव जपो वायुबीजादीनाम्। यदुक्तं कात्यायनीसंहितायाम्—'ततो भूतात्मकं देहं वायुबीजेन वायुना। वायुमुत्तोल्य संशोष्य ज्ञात्वामुं दक्षया त्यजेत्' इति। तथा योगिनीतन्त्रे—'दक्षिणे वह्निबीजेन प्राग्दग्धमिति भावयेत्' इति। कुम्भसंभवः— भूतशुद्धिविहीनेन कृत्वा पूजाभिचारवत्। विपरीतफलं दद्यादभक्त्यापूजनं तथा। इत्यत एवेयमावश्यकीति। केचित्तु श्रीमच्छङ्कराचार्यचरणैर्योगप्रकरणे प्रोक्तत्वाद्योगिपरमिति वदन्ति। तन्न, प्रत्यवायश्रवणात्। श्रीकुलार्णवे—

आत्मस्थानमनुद्रव्यदेहशुद्धिश्च पञ्चमी। यावन्न कुरुते देवि तावद् देवार्चनं न हि ॥१॥
सुस्नानभूतसंशुद्धिप्राणायामादिभिः प्रिये। षडङ्गाद्यखिलन्यासैर्देहशुद्धिरितीरिता ॥२॥ इति।

उत्तरतन्त्रे—'भूतशुद्धिं विधायेत्थं ततो वै स्थापयेदसून्।' असून् प्राणान्। प्राणप्रतिष्ठाविधानं तु (५ श्वा.) प्रागेवोक्तम्। त्रैलोक्यसंमोहनतन्त्रे—'प्राणायामं ततः कृत्वा मातृकान्यासमाचरेत्' इति। प्राणायामलक्षणं तु (६ श्वा०) प्रागेवाभिहितम्। अतः परं स्वोपास्यमन्त्रस्य ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासान् कृत्वा योगपीठन्यासं कुर्यात्। तत्र ऋष्यादिपदार्थानां न्यासासंभवात्तद्वाचकपदानामेव कार्यः। तथा दक्षिणामूर्तिसंहितायाम्—

ऋषिस्तु दक्षिणामूर्तिरहं शिरसि मां न्यसेत्। पङ्क्तिश्छन्दस्तु विज्ञेयं मुखे विन्यस्य पार्वति ॥१॥
देवतां हृदये बालां विन्यसेत् परमेश्वरि। इति।

न्यासप्रकारस्तु योगिनीतन्त्रे—'ऋष्यादीन् विन्यसेद् देवि चतुर्थीहृदयान्वितान्' इति। ऋषये नमः' छन्दसे नमः। इत्यादि। प्रपञ्चसारे (६ प० २ श्लो०)—

ऋषिर्गुरुत्वाच्छिरसैव धार्यश्छन्दोऽक्षरत्वाद्रसनागतं स्यात्।
धियावगन्तव्यतया सदैव हृदि प्रतिष्ठा मनुदेवतायाः ॥१॥ इति।

भूतशुद्धि—सनत्कुमारीय गोपाल कल्प में कहा गया है कि सुखासन में बैठकर प्राणायाम करके भूतशुद्धि करे। तब मातृका न्यास करे। उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि प्राणायाम करके भूतशुद्धि करे। पैरों से जानु तक लंयुक्त पीले वज्रयुक्त चतुरस्र भूस्थान का चिन्तन करे। जानु से नाभि तक पद्माकृति के समान अर्धचन्द्राकार शुक्ल वर्ण स्वबीज से युक्त जलस्थान का चिन्तन करे। नाभि से कण्ठ तक लाल रंग के त्रिकोण स्वस्तिकाभ स्वबीजयुक्त वह्निमण्डल का चिन्तन करे। कण्ठ से भ्रूमध्य तक काले रङ्ग के वायु मण्डल का षट्कोण, छः बिन्दु और बीज से युक्त चिन्तन करे। भ्रूमध्य से ब्रह्मरन्ध्र तक वर्तुल ध्वजलांछित धूम्र वर्ण, स्वबीजयुक्त नभःस्थल का चिन्तन करे। अपने देह में इस प्रकार भूतों का ध्यान करे। धर्म कन्द से उत्पन्न ज्ञाननाल से शोभित, ऐश्वर्य के आठ दल पर वैराग्य कर्णिकायुक्त अपने हृदय कमल का ध्यान प्रणव से प्रकाशित रूप में करे। उसकी कर्णिका में संस्थित प्रदीपकलिका के समान सुषुम्ना मार्ग से आत्मा को परमात्मा से योजित करे। योगयुक्त विधि से सोहं मन्त्र से साधक वहीं पर सभी तत्त्वों के विलीन होने का चिन्तन करे। तब पुरुषरूप में पापपुरुष का चिन्तन करे। तब इसका शोषण पूरकादि क्रम से प्राण संरोध वायुबीज और वायु से करे। पापपुरुष के सारे शरीर को वह्निबीज से दग्ध करे। उस भस्म के वायुमार्ग

से निर्गत होने का चिन्तन करे। तब वं बीज से सारे शरीर को प्लावित करे। इससे पूरा शरीर निर्मित होता है, जो देवता की उपासना के योग्य होता है। आत्मलीन तत्त्वों को अपने-अपने स्थान में स्थित करे। हृदय कमल में परमात्मा को प्रतिष्ठापित करे। हंस मन्त्र से विधिवत् तेजोरूप कलेवर देवता आराधन के योग्य उत्पन्न हो गया—यह भावना करे।

वशिष्ठसंहिता में कहा गया है कि सोहं मन्त्र से उस आद्या को नादान्त में होने की भावना करे। इस प्रकार ब्रह्मरन्ध्र में ध्यान के बाद हृदय में जीवकला का न्यास करे। इससे यही ध्वनित होता है कि हंस मन्त्र से जीव को ऊपर ले जाये और सोहं मन्त्र से पुनः अपने स्थान पर ले आये। यहाँ पर गुरु के उपदेशानुसार कार्य करना चाहिये।

श्रीकुलार्णव में कहा गया है कि अपनी, स्थान की, द्रव्य की और देह की शुद्धि जब तक नहीं की जाती तब तक देवार्चन नहीं होता। सम्यक् स्थान, भूतशुद्धि, प्राणायाम, षडङ्गादि सभी न्यास से देहशुद्धि होती है। उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि भूतशुद्धि करके प्राणों को स्थापित करे। प्राणायाम के बाद अपने उपास्य मन्त्र से ऋष्यादि कर षडङ्गन्यासों को करके योगपीठ न्यास करना चाहिये। वहाँ ऋष्यादि पदार्थों का न्यास असम्भव होने पर तद्वाचक पदों से ही कार्य करना चाहिये; जैसा कि दक्षिणामूर्ति संहिता मे कहा भी गया है ऋषि तो मैं ही दक्षिणामूर्ति हूँ। शिर में मेरा न्यास करे। छन्द पंक्ति है, इसका न्यास मुख मे करे। देवता बाला का न्यास हृदय में करे।

प्रपञ्चसार में कहा गया है कि गुरु होने के कारण ऋषि को शिर पर ही धारण करना चाहिये। अक्षर होने के कारण छन्द को जिह्वा पर धारण किया जाता है। सदैव बुद्धि से जानने लायक होने के कारण मन्त्रदेवता को हृदय में प्रतिष्ठित किया जाता है।

ऋष्यादिपदार्थनिर्णयः

ऋष्यादिपदार्थास्तूत्तरतन्त्रे—

ऋवर्णादिस्तु गत्यर्थो धातुः प्राप्त्यर्थकस्तथा। षिवर्णादिस्तु विज्ञानमतस्तद्व्यापकं च सः ॥१॥
अनयो रूपसंपत्तौ ऋषिर्गुरुरितीरितः। छादीति धातुरिच्छायां दादिर्दानार्थको भवेत् ॥२॥
छन्दो वक्ति मनोर्वर्णान् द्वयोरिच्छाप्रदानतः। व्रीडार्थकाद्ददातीति संपन्नं देवतापदम् ॥३॥
साधकाय मनोर्भावं ददातीति जगुर्यतः। इति।

ऋष्यादि पद का अर्थ—ऋषि शब्द का ऋ वर्ण गति एवं प्राप्ति अर्थ में धातु है। 'षि' वर्ण विज्ञान का बोधक होने से व्यापक अर्थ वाला है। इन दोनों का संयोग होने पर 'ऋषि' शब्द निष्पन्न होता है, जिसे गुरु कहा जाता है। 'छन्द' शब्द में 'छ' अक्षर इच्छा अर्थ में धातु है एवं 'द' दानार्थक धातु है। छन्द मन्त्र के वर्णों को कहता है। व्रीडार्थक देवृ धातु से देवता पद सम्पन्न होता है; क्योंकि वह साधक के मन के भाव को देने वाला होता है।

षडङ्गन्यासविधिः

ज्ञानार्णवे (२ प० ११३ श्लो०)—

·························षडङ्गन्यासमाचरेत्। हृदयं च शिरो देवि शिखा च कवचं ततः ॥१॥
नेत्रमस्त्रं न्यसेन् ङेऽन्तं नमः स्वाहा क्रमेण तु। वषट्हुंवौषडन्तं तु फडेभिः सह विन्यसेत् ॥२॥ इति।

प्रपञ्चसारे (६ प० ६ श्लो०)—

हृदयशिरसोः शिखायां कवचाक्ष्यस्त्रेषु सह चतुर्थीभिः।
नत्या हुत्या च वषट् हुं वौषट् फडेभिरङ्गकविधिः ॥१॥ इति।

नत्या नमःपदेन। आहुत्या स्वाहाकारेण। शारदायाम् (४ पं० ३३ श्लो०)—

हृदयाय नमः प्रोक्तं शिरसे वह्निवल्लभा। शिखायै वषडित्युक्तं कवचाय हुमीरितम् ॥१॥
नेत्राय वौषडित्युक्तं अस्त्राय फडुदीरितम्। इति।

अयं षडङ्गन्यासः करन्यासपूर्वकः कार्यः। 'आदौ कृत्वा करन्यासं षडङ्गेषु ततो न्यसे'दिति तन्त्रान्तरवचनात्। अत्र केचित्करन्यासे अङ्गुष्ठाभ्यां नमः इत्यादि न्यासान् वदन्ति। तत्र प्रमाणं चिन्त्यम्। वस्तुतस्तु ज्ञानार्णवादिनानातन्त्रदर्शनात्तदज्ञान-विजृम्भितमिति भाति। यथा शारदातिलके (४ .३१) 'अङ्गुष्ठादिष्वङ्गुलीषु न्यसेदङ्गैः सजातिभिः। अस्त्रं तु तलयोर्न्यस्येदिति' सजातिभिर्नमः स्वाहा इत्यादिसहितैः। अङ्गैस्तत्तन्मन्त्रोक्तैः, तेन हृदयाय नमः शिरसे स्वाहा इत्यादिभिरित्यर्थः।

ज्ञानार्णव में कहा गया है कि षडङ्ग न्यास पहले हृदय, तब शिर, तब शिखा, तब कवच में करे। नेत्र में अस्त्र न्यास करे। नमः स्वाहा वषट् हुं फट् के साथ विन्यास करे। प्रपञ्चसार में कहा गया है कि षडङ्ग न्यास हृदय शिर शिखा कवच नेत्र अस्त्र में चतुर्थी के साथ नमः, स्वाहा, वषट्, हुं, वौषट्, फट् लगाकर करना चाहिये। शारदातिलक में कहा गया है कि हृदयाय नमः, शिरसे स्वाहा, शिखायै वषट्, कवचाय हुं, नेत्राय वौषट्, अस्त्राय फट्—इस प्रकार षडङ्ग न्यास करे। यह षडङ्ग न्यास करन्यास के बाद करना चाहिये।

जातिलक्षणम्

जातिलक्षणं तु कारणागमे—

नमः स्वाहाः वषट् हुं च वौषट् फट्कार एव च। जातिषट्कमिदं प्रोक्तं हृदाद्यस्त्रान्तसंगतम् ॥१॥ इति।

नारदपञ्चरात्रेऽपि—'अथ चाङ्गानि योजयेत्। कनिष्ठाद्यासु च ततो हृदयादिक्रमेण तु' इति। हृदयादिक्रमेण हृदयाय नमः शिरसे स्वाहा इत्यादिक्रमेणेत्यर्थः। योगिनीतन्त्रे—

उच्चरेत् प्रणवं पूर्वं मारं बिन्दुसमन्वितम्। खड्गाय हृदयायेति नमोयुक्तं कनीयसी ॥१॥
ईकारं प्रणवाद् देवि चन्द्रबिम्बसमायुतम्। सुखड्गाय ततो वाच्यं शिरसे तदनन्तरम् ॥२॥
स्वाहायुक्तं प्रविन्यसेत्तर्जन्यानामिकाङ्गुलौ। हुंकारं प्रणवाद् देवि बिन्दुलाञ्छितमस्तकम् ॥३॥
श्रीवज्राय ततो वाच्यं शिखायै च ततः परम्। वषडन्तं प्रविन्यस्येत् मध्यमामध्यमाङ्गुलौ ॥४॥
मात्रा द्वादशका ताराद्बिन्दुपाशायसंयुताः। कवचाय हुमित्येतत्तर्जन्यामप्यनामया ॥५॥
अकारादिविसर्गान्तं योजयेत्प्रणवात् परम्। अस्त्ररक्षयमाये चाप्यस्त्राय तदनन्तरम् ॥६॥
फडक्षरसमायुक्तं विन्यसेत् तलयोरिति।

स्पष्ट उक्तः।

इति श्रीमहामहोपाध्यायभगवत्पूज्यपाद-श्रीगोविन्दाचार्यशिष्य-श्रीभगवच्छङ्कराचार्यशिष्य-श्रीविष्णुशर्माचार्यशिष्य-श्रीप्रगल्भाचार्यशिष्य-श्रीविद्यारण्ययतिविरचिते श्रीविद्यार्णवाख्ये तन्त्रेऽष्टादशः श्वासः॥१८॥

●

जातिलक्षण—कारणागम में कहा गया है कि नमः स्वाहा वषट् हुं वौषट् फट्—इन्हें जातिषट्क कहते हैं। ये हृदयादि से अस्त्र तक सङ्गत होते हैं। योगिनीतन्त्र में कहा गया है कि सर्वप्रथम ॐ का उच्चारण करे। तदनन्तर बिन्दु-समन्वित मार का उच्चारण करते हुये खड्गाय हृदयाय नमः कहकर दोनों हाथ की कनिष्ठा अंगुलि में न्यास करे। प्रणव के पश्चात् चन्द्रबिन्दु सम-न्वित ईकार का उच्चारण करके सुखड्गाय शिरसे स्वाहा कहकर दोनों हाथ की तर्जनी एवं अनामिका में न्यास करे। प्रणव के पश्चात् मस्तक पर बिन्दु लगाकर हुंकार का उच्चारण करके श्रीवज्राय शिखायै वषट् कहकर दोनों हाथ की मध्यमा अंगुलि में न्यास करे। प्रणव के अनन्तर बिन्दुसमन्वित द्वादश मात्राओं का उच्चारण कर पाशाय कवचाय हुं कहकर दोनों हाथ की तर्जनी और अनामा में न्यास करे। प्रणव के पश्चात् विसर्गान्त अकारादि जोड़कर अस्त्ररक्षयमाय अस्त्राय फट् कहकर दोनों हस्ततलों में न्यास करे।

इस प्रकार श्रीविद्यारण्ययतिविरचित श्रीविद्यार्णव तन्त्र के कपिलदेव नारायण-कृत भाषा-भाष्य में अष्टादश श्वास पूर्ण हुआ

●

समाप्तमिदं पूर्वार्धम्

पुस्तक परिचय

'श्रीविद्या' शब्द श्रीत्रिपुरसुन्दरी के मन्त्र एवं उसके अधिष्ठात्री देवता—इन दोनों का बोधक है। सामान्यतया 'श्री' शब्द 'लक्ष्मी' अर्थ में प्रसिद्ध है; परन्तु हारितायन संहिता, ब्रह्माण्डपुराण-उत्तरखण्ड आदि पुराणेतिहासों में वर्णित आख्यायिकाओं के अनुसार 'श्री' शब्द का मुख्य अर्थ 'महात्रिपुरसुन्दरी' ही है। श्री महालक्ष्मी ने महात्रिपुरसुन्दरी की चिरकाल-पर्यन्त आराधना कर जो अनेक वरदान प्राप्त किये हैं, उनमें एक वरदान 'श्री' की आख्या से लोक में ख्याति प्राप्त करने का भी है। अस्तु; 'श्री' शब्द का 'महालक्ष्मी' अर्थ तो गौण ही है; मुख्य अर्थ है—'श्री' अर्थात महात्रिपुरसुन्दरी की प्रतिपादिका विद्या—मन्त्र = 'श्रीविद्या'। वाच्य एवं वाचक का अभेद मानकर इस मन्त्र की अधिष्ठात्री देवता भी 'श्रीविद्या' ही सिद्ध होती है। इस श्रीविद्या के उपासकों को लौकिक फल तो प्राप्त होते ही है; आत्मज्ञानी को प्राप्त होने वाला शोकोत्तीर्णतारूप फल भी श्रीविद्यापासकों को निश्चित रूप से प्राप्त होता है; साथ ही यही फल ब्रह्मविद्या से भी प्राप्त होता है; अतः फलैक्य होने के कारण श्रीविद्या ही ब्रह्मविद्या है—यह निर्विवाद सत्य प्रतिष्ठापित होता है।

'श्रीविद्या' का साङ्गोपाङ्ग विवेचन करने वाला सर्वप्रामाणिक महनीय ग्रन्थ 'श्रीविद्यार्णवतन्त्रम्' न केवल श्री विद्या; अपितु दश महाविद्याओं के विशद् विवेचन के साथ-साथ शैव, शाक्त, गाणपत्य, वैष्णव, सौर आदि सभी मन्त्रों एवं उनके तत्तद् यन्त्रों से पाठक को साक्षात्कार कराने वाला एक बृहत्काय ग्रन्थ है। स्वामी विद्यारण्य यति द्वारा छत्तीस श्वासों में गुम्फित यह ग्रन्थरत्न पूर्वार्द्ध एवं उत्तारार्द्ध रूप दो खण्डों में समुपलब्ध है। अंग-उपांगसहित श्रीविद्या के सविधि विवेचन के साथ-साथ अन्य देवी-देवताओं के भी मन्त्र-यन्त्रों का समग्र रूप मे विवेचन, उनके उपसना की विधि एवं उपासना के फलस्वरूप प्राप्त होने वाले फलों को भी स्पष्टतया अभिव्यक्त करना इस ग्रन्थ की सर्वातिशायी विशेषता है। अन्य ग्रन्थों में जहाँ किसी भी उपास्य देवता के एक, दो, चार अथवा कतिपय प्रमुख मन्त्र-यन्त्रों का ही विवेचन उपलब्ध होता है; वही इस ग्रन्थ में विवेच्य समस्त देवी-देवताओं के प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध सभी मन्त्र-यन्त्रों को उनकी विधियों सहित स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया गया है; फलस्वरूप सम्बद्ध देवता के किसी भी मन्त्र-यन्त्र अथवा उसकी विधि को जानने के लिये साधक को किसी अन्य ग्रन्थ का अवलम्ब ग्रहण करने की लेशमात्र भी आवश्यकता नहीं रह जाती। संक्षेप में कहा जा सकता है कि श्रीविद्यारण्ययति-प्रणीत 'श्रीविद्यार्णवतन्त्रम्' एकमात्र ऐसा ग्रन्थ है, जो साधक के समस्त कामनाओं की पूर्ति करने में सर्वतोभवेन समर्थ है।

अस्तु; यह ग्रन्थ अद्यावधि अपने मूल स्वरूप में ही, बिना किसी भाषा-टीका के उपलब्ध था, जिससे जिज्ञासु साधकों को आराधना में पग-पग पर दुरूह कठिनाइयों का अनुभव होता था एवं ग्रन्थ के ताप्तर्य से अवगत ने हो पाने के कारण वे बार-बार विशयग्रस्त हो जाते थे। इसी को हृदयङ्गम कर तन्त्रग्रन्थों के ख्यातिनाम भाषा-भाष्यकार श्री कपिलदेव नारायण ने इस विशालकाय ग्रन्थ को भाषा टीका से अलंकृत कर सर्वनहृद्य बनाने का साहसिक प्रयास किया है। सर्वजनसुलभ इस हिन्दी भाष्य द्वारा श्री नारायण ने कूटाक्षर में निबद्ध मन्त्र-यन्त्रों को भी स्पष्ट करके साधकों का महनीय उपकार किया है।

पूर्वार्द्ध-उत्तरार्द्ध के विभाजन से दो भागों में विभक्त यह विशालकाय ग्रन्थ भाषा-भाष्य से अलंकृत होने के फलस्वरूप और भी बृहद् कलेवर को प्राप्त हो गयाः फलस्वरूप जिज्ञासुओं के सौकर्य को दृष्टिगत कर इसे पाँच भागों (पूर्वार्द्ध—दो भाग एवं उत्तरार्द्ध—तीन भाग) में प्रकाशित किया जा रहा है। वृहत्तन्त्रसार, देवीरहस्य आदि मूल ग्रन्थों को सर्वजनसंवेद्य भाषा भाष्य से विभूषित कर सर्वजन सुलभ बनाने वाले विद्धान् भाष्यकार श्री कपिलदेवनारायण द्वारा प्रयोगपरक भाषा भाष्य से अलंकृत यह ग्रन्थ जिज्ञासुओं की समस्त जिज्ञासाओं का शमन करने में सर्वविध समर्थ होगा—इसमें विचिकित्सा के लिये लेशमात्र भी स्थान नही है।

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी